निर्णय के तट पर—द्वितीय भाग

[शास्त्रार्थ संग्रह]



सम्पादक एवं संग्रहकर्त्ता : (१) अमर स्वामी सरस्वती (२) लाजपत राय अग्रवाल ।

प्रस्तुत पुस्तक में निम्न शास्त्रार्थ महारथियों के शास्त्रार्थ संग्रहीत हैं

आर्य समाज की ओर से—

१. सर्व श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती २. पण्डित देवदत्त शर्मा ३. पण्डित भीमसैन शर्मा (पौराणिक होने से पहले) ४. पण्डित ज्योति स्वरूप ५. शुक्रराज शास्त्री ६. पण्डित तुलसी राम स्वामी ७. पण्डित कृपा राम शर्मा ८. स्वामी योगेन्द्र पाल ९. पण्डित बिहारी लाल शास्त्री १०. पण्डित ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी ११. अमर स्वामी सरस्वती १२. स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती १३. डा० लक्ष्मी दत्त आर्य मुसाफिर १४. पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति १५. पण्डित नृसिंह देव दर्शनाचार्य १६. पण्डित गणपति शर्मा १७. पण्डित सत्य मित्र शास्त्री १८. सत्यवृत शर्मा अज्ञेय (पद्यानुवादक) १९. पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी २०. पण्डित मुरारी लाल शर्मा २१. पण्डित मनसा राम वैदिक तोप २२. पण्डित बुद्धदेव विद्यालंकार २३. पण्डित माधव राव जोशी २४. पण्डित ओम प्रकाश शास्त्री २५. पण्डित शान्ति प्रकाश जी।

सनातन धर्म की ओर से—

१. सर्वश्री पण्डित कमल नयन शर्मा २. पण्डित गुरु हेमराज जी ३. पण्डित गोकुल चन्द जी ४. पण्डित चन्द्र शेखर व्याकरणाचार्य (शंकराचार्य) ५. शंकराचार्य निरञ्जन देव तीर्थ ६. पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री ७. पण्डित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी ८. पण्डित अखिलानन्द कविरत्न ९. पण्डित गुरुदत्त जी १०. स्वामी रामदेव जी ११. पण्डित भीमसैन शर्मा (पौराणिक होने के बाद) १२. पण्डित कालू राम शास्त्री १३. पण्डित हीरानन्द शर्मा १४. पण्डित रामानन्द जी १५. पण्डित देवकी नन्दन जी।

मुसलमानों की ओर से—

१. सर्व श्री मौलवी अबुल फ़रह साहिब २. मौलवी सनाउल्ला साहिब ३. मौलवी अब्दुल हक़ विद्यार्थी ४. गाज़ी महमूद ऊर्फ धमपाल।

ईसाइयों की ओर से—

१. सर्व श्री पादरी विलकटन् महोदय २. पादरी ज्वाला सिंह जी ३. पादरी जानसन साहिब ४. पादरी डीन साहब ५. पादरी गुलाम मसीह

जैनियों की ओर से—

१. सर्व श्री पण्डित छेदा लाल २. पण्डित पन्ना लाल जी ३. पण्डित बनारसी दास जैन ४. पण्डित गोपाल दास वरैया।

निर्णय के तट पर

[शास्त्रार्थ संग्रह]

द्वितीय भाग



प्रकाशक :
अमर स्वामी प्रकाशन विभाग
१०५८, विवेकानन्द नगर, गाजियाबाद-२०१००१
(उ० प्र०) भारत

१००० प्रतियाँ प्रथम संस्करण (मई सन् १९८६ ई०)

(मूल्य : १२५-०० रु०)
विदेशों में : बारह पोण्ड



प्रकाशक : अमर स्वामी प्रकाशन विभाग, १०५८ विवेकानन्द नगर, गाजियाबाद-२०१००१ (उ०प्र०) भारत।

मुद्रक : पूजा प्रेस, क्यू-५२, मोहन पार्क, नवीन शाहदरा, दिल्ली-११००३२

सम्पादक एवं संकलनकर्त्ता : अमर स्वामी सरस्वती तथा लाजपत राय अग्रवाल

आवरण : कौशिक जी, ब्रह्म आर्ट कोटेज, हरसरन निवास, रेलवे रोड़, शाहदरा दिल्ली-११००३२

मूल्य : एक सौ पच्चीस रुपये (विदेशों में बारह पौण्ड) १२ £

संस्करण : प्रथम एक हजार प्रतियां मई सन् १९८६ ई०

पुस्तक प्राप्ति के स्थान :
१. अमर स्वामी प्रकाशन विभाग, १०५८ विवेकानन्द नगर, गाजियाबाद-२०१००१ (उ०प्र०) भारत
२. गोविन्द राम हासानन्द, नई सड़क, दिल्ली-६
३. पाणिनी कन्या महाविद्यालय, पो० तुलसीपुर, वाराणसी-५
४. राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली-६
५. चौखम्बा ओरियेन्टला, चौक वाराणसी
६. चौखम्बा विश्वभारती, चौक वाराणसी
७. चौखम्बा विद्याभवन, चौक वाराणसी
८. सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधिसभा, दयानन्द भवन, रामलीला मैदान, नई दिल्ली-१
९. मुन्शी राम मनोहर लाल, नई सड़क, दिल्ली-६
१०. मोती लाल बनारसी दास, बैंग्लों रोड़, जवाहर नगर, दिल्ली-६
११. मधुर प्रकाशन, बाजार सीता राम, दिल्ली-६
१२. आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली-१
१३. वैदिक साहित्य भण्डार, आर्य समाज, सुलतान बाजार, हैदराबाद (दक्षिण)
१४. पुस्तक विक्रय विभाग, आर्य समाज बड़ा बाजार, १ मुंशी सदरुद्दीन लैन कलकत्ता-७
१५. वेद मन्दिर, विवेकानन्द नगर, गाजियाबाद (उ०प्र०)
१६. सार्वदेशिक, दयानन्द, सन्यासी+वानप्रस्थ मण्डल, ज्वालापुर, जि०सहारनपुर (उ०प्र०)

NIRNAY KE TAT PAR

PUBLISHED By :- L.R. AGGARWAL
(Propriter)
AMAR SWAMI PRAKASHAN VIBHAG
1058, Vivekanand Nagar, GHAZIABAD-201001 (U.P.) INDIA





तब और अब

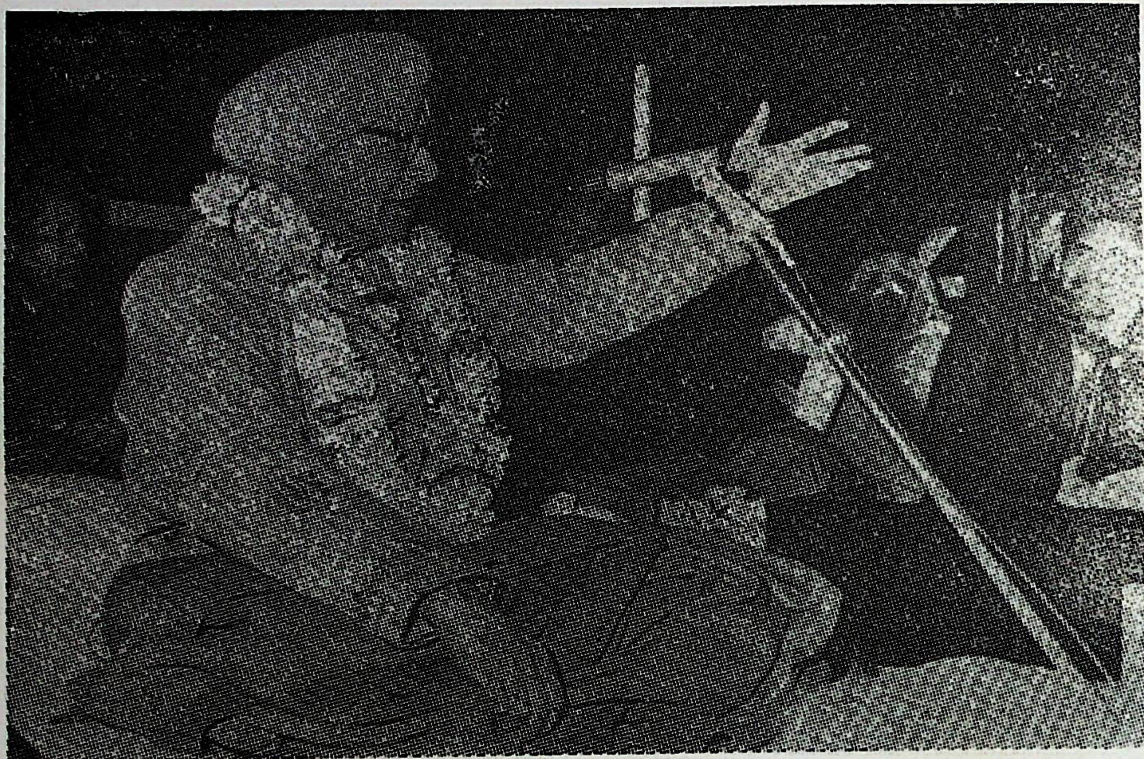
श्री पण्डित ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी (वर्तमान) अमर स्वामी जी सरस्वती

निगाहें कामिलों पर पड़ ही जाती हैं जमाने की।
कहीं छिपता है "अकबर" फूल पत्तों में निहां होकर।।

परिचय—भारत की उर्वर वसुन्धरा ने विश्व को ज्ञान और ज्ञानी दिये हैं, कर्मवीर देश-भक्त दिये हैं। आदिकाल से अब तक विद्वानों और सद् विवेकियों की परम्परा ने अपने ज्ञान के आलोक से अविद्या अन्धकार को छिन्न-भिन्न किया। आर्य समाज ने अक्षपाद गौतम न्यायदर्शनकार के विद्यालय में दीक्षित रूढ़िग्रस्त धारणाओं पर कठोर प्रहार करने वाले तार्किक एवं शास्त्रार्थ महारथी उत्पन्न किये। स्वनाम धन्य स्वामी दर्शनानन्द, पण्डित प्रवर गणपति शर्मा, आर्य पथिक पण्डित लेखराम, पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी जैसे शास्त्रार्थ महारथियों की शृंखला में आर्य जगत के विख्यातनामा श्री अमर स्वामी जी महाराज हैं। आपका जन्म वि० सं० १९५१ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को ग्राम अरनियां, जिला बुलन्दशहर में हुआ था, आपके पिता का नाम श्री ठाकुर टीकम सिंह जी तथा माता का नाम श्रीमति राजकुमारी देवी था। आपने अनेकों सम्प्रदायों से विभिन्न विषयों पर शास्त्रार्थ किये। शास्त्रार्थसमर में आपकी चहुँमुखी तलवार चलती है। आपकी प्रतिभा की प्रशंसा विरोधी भी करते हैं। यह कम गौरव की बात नहीं है। आपने अपने जीवन में सैकड़ों युवक तैयार किये जो आज देश के कौने-कौने में वैदिक धर्म का प्रचार कर रहे हैं। इस ९२ वर्ष की आयु में अब भी वैदिक धर्म के प्रचार में संलग्न है। वर्तमान समय में आर्य समाज के अन्दर आपकी सानी का अन्य कोई संन्यासी नहीं है। स्वामी जी में प्रकाण्ड पाडित्य, पैनी तर्क शक्ति के दर्शन आज भी किये जा सकते हैं। स्वामी जी के बारे में लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है।

"शिवकुमार शास्त्री"
(भू० पू० संसद सदस्य)

इस वृद्धावस्था में भी श्री अमर स्वामी जी महाराज का शास्त्रार्थ गर्जन—

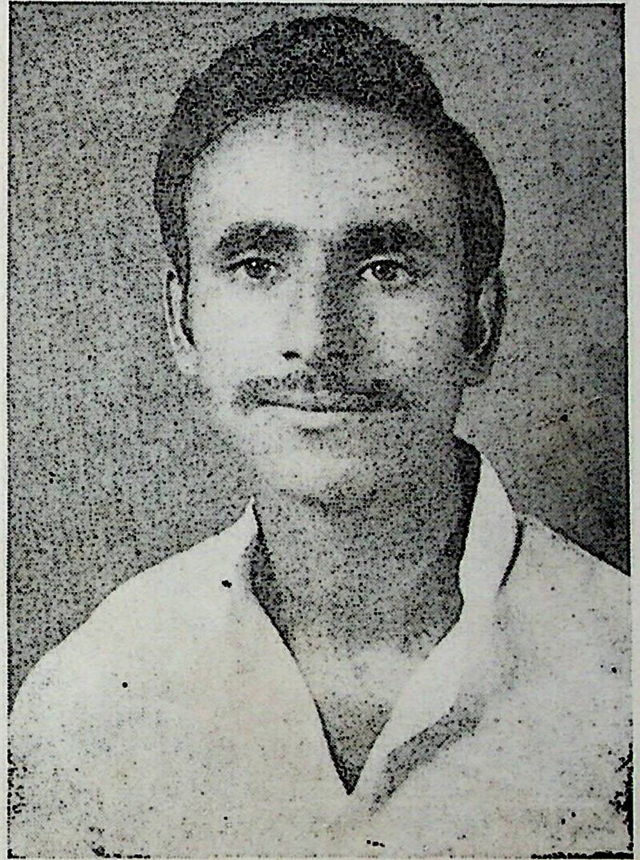


"आये कोई माई का लाल मैदान में"

यह विरक्त, यह वीर पुरुष, यह अमर स्वामि संन्यासी। पाखंडों का सदा सदा विद्रोही, ईश विश्वासी ।।
जीवन भर जो रहा पूजता वैदिक आदर्शों को। सदा सदा आमन्त्रित करता आया संघर्षों को ।।
वेद ज्योति से अपने जीवन को ज्योतित कर डाला। निज वाणी से लेखनी से, जग अलौकिक कर डाला ।।
शास्त्र समर में यह योद्धा जिस जां पर अड़ जाता है। कौन हिला पाये अंगद का पांव गड़ जाता है ।।
दयानन्द का सैनिक यह सेनानी यह आर्य सेना का। बढ़ा जिधर को ॐ ध्वजा ले, फहरी विजय पताका ।।
तर्क बाण, जब यह प्रमाण का वेत्ता बरसाता है। पाखंडों का दुर्ग धराशायी हां गिर जाता है।
क्या साहस ले, साम्प्रदायवादी विवाद की ठाने। हैं पुराण, कुरआन, बाईबिल, सब जाने पहिचाने ।।
इसी मनस्वी, ज्ञान वारिधि का यह अभिनन्दन है। इस विरक्त के स्वागत में पुलकित हर्षित जन मन है ।।
जुग जुग जिये, सदा चमके तेजस्वी! तेरा जीवन। यही कामना है ईश्वर से, "शरर" यही अभिनन्दन ।।

"प्रो॰ उत्तम चन्द शरर एम॰ ए॰"
(पानीपत)

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशक एवं संग्रहकर्ता व सम्पादक—



"LAJ PAT RAI AGGARWAL" (Govt. Contractor)

परिचय— प्रिय लाजपत राय जी एक अच्छे योग्य एवं होनहार युवक है। इनकी कार्य करने की लगन अद्भुत है, यह बच्चा एक प्रसिद्ध सम्पन्न अग्रवाल वंश में उत्पन्न हुआ एवं अपने पूर्वजों की भांति रात-दिन वैदिक धर्म के प्रचार एवं प्रसार में संलग्न है। इनके परिवार को मैं अच्छी तरह जानता हूं। इनके परिवार में से ही इनके तायरे भाई "श्री कृष्ण चन्द जी" दिल्ली राज्य के उप-राज्यपाल भी रहे। जिला सहारनपुर में इनके यहाँ अच्छी-खासी जमींदारी है। श्री लाजपत राय जी के बाबा श्री लाला महताब राय जी आदि कट्टर ऋषि भक्त थे। बड़-बड़े विद्वानों का इनके यहाँ आना-जाना रहता था।

आर्य जगत के मूर्धन्य विद्वान श्री अमर स्वामी जी ने सैकड़ों इतने बड़े-बड़े विद्वान, अपने पास रखकर तैयार किये हैं जो सारे देश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं प्रसार कर रहे हैं, श्री लाजपत राय जी भी उन्हीं में से एक हैं।

श्री लाजपत राय जी के स्तुत्य प्रयास से ही यह शास्त्रार्थों का संग्रह तैयार हो सका, परमेश्वर इस बच्चे को दीर्घायु प्रदान करें एवं यह हमेशा अपने कार्यों में सफलता प्रदान करें। इसके साथ-साथ श्री अमर स्वामी जी भी धन्यवाद के पात्र है जिन्होंने अपने कठिन तप व त्याग से ऐसे अद्भुत लगनशील रत्न तैयार किए हैं।

अब लाजपत राय जी एक अच्छे राजकीय ठेकेदार हैं, विद्युत विभाग व अन्य सरकार विभागों के सभी कार्यों का इनको अच्छा अनुभव है। बल्कि यों कहिए जो एक अच्छे कान्ट्रेक्टर (ठेकेदार) के अन्दर प्रतिभा होनी चाहिए, वो इनमें मौजूद है। इतने व्यस्त कार्यों में से भी समय निकाल कर वैदिक धर्म के प्रचार हेतु प्रकाशन विभाग को चलाना, इनकी लग्न का एक नमूना है।

वैदिक धर्म का—
बिहारी लाल शास्त्री "काव्यतीर्थ"
(बरेली)

शास्त्रार्थ महारथियों की नामावली

आर्य समाज के शास्त्रार्थ महारथी—

१. श्री स्वामी विरजानन्द जी दण्डी, २. महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती, ३. श्री पण्डित भीम सैन जी (इटावा), ४. श्री पण्डित लेखराम जी आर्य मुसाफिर, ५. श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती, ६. श्री पण्डित गणपति शर्मा जी, ७. श्री ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी, ८. श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी ९. श्री स्वामी अच्युतानन्द जी सरस्वती, १०. श्री पण्डित तुलसीराम जी स्वामी (मेरठ), ११ श्री पण्डित भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर (आगरा), १२ श्री पण्डित आर्य मुनि जी महामहोपाध्याय (लाहोर), १३. श्री पण्डित राजाराम जी शास्त्री (लाहोर), १४. श्री स्वामी योगेन्द्र पाल जी (दीनानगर), १५. श्री पण्डित देवप्रफाश जी अरबी फाजिल (अमृतसर), १६. श्री पण्डित छुट्टन लाल जी स्वामी (मेरठ), १७. श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न, १८. श्री पण्डित मुरारी लाल जी शर्मा (सिकन्दराबाद उ०प्र०) १९. श्री डाक्टर लक्ष्मी दत्त जी आर्य मुसाफिर (आगरा), २०. श्री स्वामी अनुभवानन्द जी शान्त, २१. श्री स्वामी विवेकानन्द जी सरस्वती (उत्तर प्रदेश) २२. श्री महाशय बनारसीदास जी (लखनऊ) २३. श्री पण्डित कालीचरण जी (आगरा) २४. श्री पण्डित धर्मभिक्षु जी (लखनऊ) २५. श्री लाला बख्शीश राम जी (दीनानगर) २६ श्री लाला वजीर चन्द जी (रावल पिण्डी) २७ श्री पण्डित दीनानाथ जी फिलास्फर (लाहोर) २८. श्री प्रोफेसर देवी दयाल जी (लाहोर) २९ श्री पण्डित भगवत दत्त जी रिसर्चस्कालर ३०. श्री पण्डित राम गोपाल जी शास्त्री (दिल्ली) ३१. श्री पण्डित बिहारी लाल जा शास्त्री (बरेली) ३२. श्री पण्डित मनसा राम जी वैदिक तोप ३३. श्री पण्डित नन्द किशोर देव शर्मा (उत्तर प्रदेश) ३४. श्री पण्डित शिव शर्मा (सम्भल) ३५. श्री पण्डित शिव शंकर जी काव्यतीर्थ (बिहार) ३६. श्री पण्डित रुद्रदत्त जी शर्मा, ३७. श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी सरस्वती, ३८. श्री मास्टर आत्मा राम जी अमृतसरी ३९. श्री स्वामी कर्मानन्द जी (हरियाणा), ४०. श्री पण्डित पूर्णानन्द जी (लाहोर), ४१. श्री पण्डित देवेन्द्र नाथ जी शास्त्री (सिकन्दराबाद, उत्तर प्रदेश), ४२. श्री दादा बस्ती राम जी, ४३. श्री पण्डित लोक नाथ जी तर्क वाचस्पति, ४४. श्री पण्डित बुद्ध देव जी विद्यालंकार, ४५. श्री पण्डित बुद्ध देव जी मीरपुरी, ४६. श्री पंण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु, ४७. श्री पण्डित युधिष्ठिर जी मीमांसक, ४८. श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति, ४९. श्री ठाकुर इन्द्र वर्मा जी (न्होटी अलीगढ़), ५०. श्री कुंवर सुखलाल जी आर्य मुसाफिर, ५१. श्री रामचन्द्र जी देहलवी, ५२. श्री पण्डित शान्ति स्वरूप जी (मौहम्मद अली कुरेशी), ५३. श्री पण्डित हनुमान प्रसाद जी (कानपुर) ५४. श्री पण्डित वंशीधर जी पाठक (बरेली) ५५. श्री पण्डित बुद्ध देव जी (धार), ५६. श्री पण्डित विद्याभिक्षु जी एम० ए० (रुदौली), उत्तर प्रदेश. ५७. श्री पण्डित धर्मवीर जी आर्य मुसाफिर (आगरा), ५८. श्री मुन्शी बलदेव प्रसाद जी (बरेलो), ५९. श्री बाबू पन्नालाल जी (बरेली), ६०. श्री जगदम्बा प्रसाद जी (शाहजहांपुर), ६१. श्री पण्डित जगदीश चन्द जी (विज्ञान भिक्षु जी), ६२. श्री पण्डित विद्यानन्द जी मन्तकी (वाराणसी), ६३. श्री ठाकुर अमर सिंह जी (वर्तमान अमर स्वामी सरस्वती, गाजियाबाद), ६४. श्री पण्डित भगवान स्वरूप जी (अजमेर), ६५. श्री डाक्टर श्रीराम आर्य (कासगंज), ६६. श्री पण्डित धर्म देव जी विद्या मार्तण्ड, ६७. श्री पण्डित राम दयालु जी शास्त्री (अलीगढ़), ६८. श्री पण्डित ओम प्रकाश जी शास्त्री (खतौली), ६९. श्री पण्डित शान्ति प्रकाश जी (गुडगांवा), ७०. श्री पण्डित देव जी शास्त्री (दिल्ली) ७१. श्री पण्डित शेर सिंह जी कश्यप (मुजफ्फर नगर), ७२. श्री स्वामी मुनीश्वरानन्द जी (पटना), ७३. श्री आचार्य रामानन्द जी शास्त्री (पटना), ७४. श्री पण्डित गंगाधर जी शास्त्री (पटना), ७५. श्री पण्डित सत्य मित्र शास्त्री (गोरखपुर),

जैन सम्प्रदाय के मुख्य शास्त्रार्थ महारथी—

१. सर्वश्री स्वामी कर्मानन्द जी, २. पण्डित राजेन्द्र जी, ३. छेदालाल जी ४. पन्नालाल जी, ५. गोपाल दास जी वरैया, ६. बनारसी दास जी जैन आदि।

ईसाई सम्प्रदाय के मुख्य शास्त्रार्थ महारथी—

१. सर्वश्री पादरी जानसन (यूरोपियन संस्कृतज्ञ), २. पादरी फ्रैंक जानसन, ३. पादरी ज्वाला सिंह जी, ४. पादरी एस० एम० पाल, ५. पादरी रलाराम जी, ६. पादरी अब्दुल हक़ जी, ७. महबूब मसीह नावीना, ८. पादरी खड्ग सिंह जी आदि।

मुस्लिम सम्प्रदाय के मुख्य शास्त्रार्थ महारथी—

१. सर्वश्री मौलाना सनाउल्ला साहिब (अमृतसरी), २. मौलाना रोशन अली अख्तर ३. गाज़ी—महमूद उर्फ धर्मपाल, ४. मौलाना अबुल फ़रह (पानीपती) ५. मौलाना खुदादाद (गुरदासपुर) ६. मौलाना अल्लादित्ता बुख़ारी आदि।

(क़ादियानी अहमदी) सम्प्रदाय के मुख्य शास्त्रार्थ महारथी—

१. सर्वश्री हाफ़िज़ रोशन अली, २. मीर क़ासिम अली, ३. अब्दुर्रहमान मिश्री, ४. मुहम्मद उमर शर्मा, ५. फ़ज़ल मुहम्मद शर्मा आदि।

(लाहोरी-अहमदी) सम्प्रदाय के मुख्य शास्त्रार्थ महारथी—

१. सर्वश्री मोलवी अब्दुल हक़ विद्यार्थी, २. मौलाना इस्मातुल्ला खाँ, ३. मिर्ज़ा मुजफ्फर बेग आदि।

पौराणिक सम्प्रदाय के मुख्य शास्त्रार्थ महारथी—

१. सर्वश्री एवं सर्व पण्डित भीमसेन जी शर्मा (इटावा), २. अखिलानन्द जी कविरत्न, ३. ज्वाला प्रसाद मिश्र (मुरादाबादी), ४. कालूराम जी शास्त्री (कानपुर), ५. माधवाचार्य शास्त्री (दिल्ली), ६. लक्ष्मी चन्द जी कौल (करनाल), ७. श्रीकृष्ण शास्त्री (रोपड़), ८. यदुकुल भूषण शास्त्री (मुलतान), ९. गुरुदत्त जी १०. भीमसेन जी (पंजाबी), ११. प्रकाशानन्द जी (हुजरो वाले), १२. चन्द्र शेखर शास्त्री (स्वामी निरंजन देव जी "पुरी के शंकराचार्य"), १३. रुलिया राम जी (अमृतसरी), १४. प्रेमाचार्य जी शास्त्री (दिल्ली), १५. विश्वेश्वराचार्य जी (बनारस) आदि।

॥ ओ३म् ॥

पोल खुलते ही पुराणों का महातम घट गया।
बुद्ध की बुधि बंध गई, मद जैन मत का घट गया॥
दम घुटा तौरत का, छल, बल जबूरी कट गया।
जी जला-इंजील का, दिल बाइबिल का फट गया॥
सामने कुरआन के ले वेद चारों अड़ गये।
मार मन्त्रों की पड़ी, पर—आयतों के झड़ गये॥
डूब कर बहरे दलायल में, गपोड़े सड़ गये।
कुल हदीसों के हवाले भी, भंवर में पड़ गये॥

महाकवि श्री पण्डित नाथूराम शंकर शर्मा "शंकर"

प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन में देरी का कारण

सज्जनों! इस महान कार्य को करने की योजना तो काफी समय से चल रही थी, परन्तु हमारे सामने बहुत सी कठिनाइयां थी जिनके कारण नहीं हो पा रहा था। सितम्बर १९८५ ई० में इस कार्य को पूरा करने का दृढ़ निश्चय हुआ, जिसमें अनेकों आर्य भाईयों ने इसको पूरा करने के लिए कहा, उनमें मुख्यत: बहन शीला सिहंल (मेरठ निवासी) जी की विशेष प्रेरणा रही। हमने इसके प्रकाशन का विज्ञापन समाचार पत्रों में दे दिया कि हम इस ग्रन्थ को आधे मूल्य में दिसम्बर माह १९८५ ई० तक देंगे। पृष्ठ ३०८ ई० व अन्य सभी विवरण पुस्तक का दे दिया गया और कार्य आरम्भ हो गया। अब इस ग्रन्थ में इतनी देर तैयार होने में कैसे लगी, संक्षेप में देखिये—

१. पुराने शास्त्रार्थों की मूल प्रति, उर्दू या अरबी में होने के कारण! उनको प्रथम अनुवाद क पश्चात प्रेस कापी बनावें फिर वह छपे। इसके लिए अनुवादक (अमरस्वामी जी महाराज) की शारीरिक शक्ति का निर्बल होना। २. अर्थाभाव एवं छपाई शाहदरा में होने के कारण प्रतिदिन कई-कई चक्कर लगाना कभी प्रूफ लाना कभी देकर आना, आदि-२। ३. कभी स्वामी जी बाहर गए हैं, तो कभी प्रेस वालों का तारतम्य गड़बड़ होना। ४. मेरे अपने कार्यों में अधिक व्यस्तता, इन्हीं दिनों एक खास जिम्मेदारी के सरकारी कार्य का टैंण्डर फाईनल होना तथा उसे मार्च से पहले-२ तैयार करके देना, जिसके कारण इस कार्य की प्रगति पर विशेष प्रभाव पड़ा। ५. कभी-किसी वस्तु की कमी पड़ी तो सीधे दिल्ली भागना, वहां के अलावा वह चीज न मिले अगर मिले भी तो दुगने मूल्य पर। ६. स्वामी जी महाराज की शारीरिक स्थिति के कारण भी काफी परेशानी का अनुभव हुआ, मैं अपने कार्यों की साइट पर! स्वामी जी महाराज अस्वस्थ! तो प्रूफ कोन फाइनल करें? ७. बीच में पैसों की कमी का पड़ना जिसके कारण इसकी प्रगति में रुकावट आई अन्त में अपने पास से ही समाधान करना पड़ा। ८. रात्रि को दस बजे साईट से आना तथा एक घंटे में नित्य कर्म से निवृत हो रात्रि के २ बजे तक इसका कार्य करना सुबह ५ बजे उठकर नित्य कर्म से निवृत होकर फिर अपने कामों पर जाना, अर्थात् २४ घन्टों में केवल ३ या साढ़े तीन घन्टे सोना, परिणाम स्वरूप मैं भी अस्वस्थ हो गया। ९. आर्य समाचार पत्रों में प्रार्थना करने के पीछे देश भर के बड़े-२ आर्य समाजों को बार-२ पत्र लिखे गये कि आपके पुस्तकालय में जो भी पुराने शास्त्रार्थ हों उन्हें भेजने की कृपा करें, जब समाजों की ओर से कोई सामग्री न आई तो मैंने स्वयं जा-जा कर पुस्तकालयों की खाक छानी, और बड़ा समय लगा कर रद्दी में से भी पुरानी जीर्ण-शीर्ण और फटे-पुराने हालत में शास्त्रार्थों को ढूंढ़ा, कई बार अस्वस्थ रहते हुए भी स्वामी जी महाराज को इसी कार्य के लिए कई स्थानों पर जाना पड़ा, जिसमें बड़ा भारी समय व पैसा दोनों ही व्यय हुए।

आर्य कहलाने वालों की कृपा—

अमर स्वामी प्रकाशन विभाग सन् १९६९ ई० से जहाँ कार्य कर रहा था, उसके पास सन्यासी व वीतराग कहलाने वालों का एक "सन्यास आश्रम" है, उसके स्वयं सिद्ध सर्वे सर्वा "जनार्दन भिक्षु" व अन्य सन्यासियों ने तथा धर्मोपदेशक रतन सिंह एम०ए० ने सतरह-अठारह वर्ष एड़ी-चोटी का बल लगा कर इसको गिरावाने का महा पुण्य कमाने में सफलता प्राप्त की। लोगों को शरबत पिलाया तथा हलुआ बाँटा। उनके इस भागीरथ प्रयत्न ने पुस्तक के प्रकाशन में बहुत विलम्ब करा दिया हमारी पूरी कठिनाइयां भगवान ही जानता है, थोड़ी-२ आर्य भाई-बहनों को बताई हैं, जिनका बताना परमावश्यक था। इस प्रकार अनेकों अड़चनें आई तो भी मैं अपने कार्य में निरन्तर लगा रहा, ब्लकि कुछ आर्य भाईयों ने तो अधिक लेट होने के कारण अपशब्द भी लिख दिये, ये सब कृपा मैं जानता हूं जिन आर्य कहलाने वालों की है। पर मुद्दई लाख बुरा चाहे तो क्या होता है? होता वही है जो मन्जूरे खुदा होता है। उनको यह पता नहीं है कि मेरा यह मुख्य कार्य नहीं है यह तो केवल अमर स्वामी जी महाराज की प्रेरणा का फल है, मेरा मुख्य कार्य सरकारी ठेकेदारी का है, और ठेकेदार का जीवन कितना व्यस्त होता है? आप स्वयं अनुमान लगा सकते हैं। मेरे पास उनके कुकृत्यों का वैसा ही जवाब देने का समय नहीं है। न हि मैं देना चाहता, परमेश्वर स्वयं उन्हें उनके कियों की सजा दे रहा है। मैं भगवान की कृपा से पहले से अब बहुत मजे में हूं। दूसरे यह कार्य व्यापारिक दृष्टिकोण से नहीं किया जा रहा था, जिसका सबूत यह आपके हाथ में है, आप इसके पेज व बाहरी रूप देखकर अनुमान लगा सकते हैं हमने इसका मूल्य नहीं बढ़ाया ब्लकि पेज बढ़गये पुस्तक का रूप-रंग आकर्षक कर दिया परन्तु पैसा वही रहा। आर्य भाइयों ने इस पवित्र कार्य में जो सहयोग दिया, उसके लिए हम हृदय से आभारी हैं, तथा इस कार्य में "श्री बनारसी लाल जी बिज" एवं मेरी धर्मपत्नी "श्री मति वीना गुप्ता एम० ए०" ने जो सहयोग दिया वे भी धन्यवाद के पात्र हैं! किमधिकम्!!

विदुषामनुचरः

"लाजपत राय अग्रवाल"

(गवर्मेन्ट कान्ट्रैक्टर)

विषयानुक्रमणिका

क्र०सं०	स्थान	शास्त्रार्थ कर्त्ता	सन्	विषय	पृष्ठ संख्या
८.	मजीठा (अमृतसर) पंजाब	स्वामी योगेन्द्र पाल तथा मौलवी सन्नाउल्ला साहिब	१९०४ ई०	वेद इलहामी किताब है या कुरान ?	९२
९.	नानौता (सहारनपुर) उ० प्र०	पं० बिहारी लाल शास्त्री तथा मौलवी साहब	१९२० ई०	ईश्वर, जीव, प्रकृति का अनादित्व ?	१०३
१०.	इलाहाबाद (उ० प्र०)	पं० बिहारी लाल शास्त्री तथा पादरी विलकटन महोदय	—	नियोग	१०६
११.	चूनियां (लाहौर) पाकिस्तान	पं० ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी तथा पं० गुरुदत्त जी	१९२० ई०	सत्यार्थ प्रकाश वेद विरुद्ध हैं ?	१११
१२.	कचौरा (अलीगढ़) उ० प्र०	पं० बिहारी लाल शास्त्री तथा पं० चन्द्र शेखर जी (शंकराचार्य)	—	क्या परमेश्वर निराकार हैं ?	१२१
१३.	अमृतसर (पंजाब)	पं० युधिष्ठर जी मीमांसक तथा श्री स्वामी निरञ्जन देव तीर्थ	१९६४ ई०	क्या वेदों में विज्ञान है ?	१२४
१४.	दिल्ली (सब्जी मण्डी)	अमर स्वामी सरस्वती तथा शंकराचार्य निरंजन देव तीर्थ	१९८० ई०	अवतारवाद	१२७
१५.	अजमेर (राजस्थान)	स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती तथा जैन पं० गोपालदास वरैया	१९१२ ई०	क्या ईश्वर सृष्टिकर्त्ता है ?	१४६
१६.	मक्खनपुर (मैनपुरी) उ० प्र०	डा० लक्ष्मीदत्त जी आर्य मुसाफिर तथा मौलाना अबुल फ़रह साहिब	"	इस्लामी सिद्धान्तों की सच्चाई	१५८

सं०क्र०	स्थान	शास्त्रार्थ कर्त्ता	सन्	विषय	पृष्ठ संख्या
२७.	सिकन्दराबाद (बुलन्दशहर) उ० प्र०	पं० रामचन्द्र जी देहलवी तथा मौलवी अब्दुल हक़ विद्यार्थी	१९२४ ई०	क्या कुरान इलहामी है ?	२६७
२८.	"	पं० रामचन्द्र जी देहलवी तथा गाजीमहमूद उर्फ़ धर्मपाल जी	"	तनासुख (आवागमन)	२७५
२९.	"	पं० मुरारी लाल जी शर्मा तथा मौलवी अब्दुल हक़ विद्यार्थी	"	मुलहिम की मासूमियत ?	२८३
३०.	भिवानी (हरियाणा)	पं० मनसा राम जी वैदिक तोप तथा पं० भीमसैन जी	१९३७ ई०	क्या महर्षि दयानन्द जी का जीवन व उनके रचित ग्रन्थ निष्कलंक हैं ?	२८९
३१.	नीमच (मध्यप्रदेश)	पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार तथा पं० आखिलानन्द जी कविरत्न	१९२८ ई०	क्या स्वामी दयानन्द कृत ग्रंथ वेदानुकूल हैं ?	२९८
३२.	"	"	"	आर्य समाज व स्वामी दयानन्द के सिद्धान्त ?	३०५
	"	पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार तथा पं० कालूराम जी शास्त्री	"	क्या भागवतादि पुराण वेद विरुद्ध हैं ?	३१०
३४.	"	पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार तथा पं० अखिलानन्द जी कविरत्न	"	सनातनी लोग और उनके सनातन सिद्धान्त ?	३१४
३५.	अरनियां (बुलन्दशहर) उ० प्र०	पं० ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी तथा पं० माधवाचार्य जी शास्त्री	—	वैदिक सिद्धान्तों की सच्चाई ?	३१९

दो शब्द

मेरी बहुत समय से यह इच्छा थी कि किसी भी तरह से यह प्राचीन शास्त्रार्थ सामग्री प्रकाशित हो जावे, अनेकों व्यक्तियों ने भी इसे अत्यावश्यक समझा एवं मुझे बार-२ कहा कि स्वामी जी इस कार्य को अगर आपने पूरा न किया तो यह कार्य रह जावेगा एवं यह अमूल्य सम्पत्ति आपके साथ ही चली जावेगी। परन्तु इसे पूरा करने में मेरे सामने कठिनाइयां ही कठिनाइयां थीं मैं बड़ा ही धर्म संकट में पड़ गया, क्या करूं मुझे कोई रास्ता नजर नहीं आता था। अगर किसी को छपाने के लिए दूं तो कहाँ से दूं क्योंकि ये मसाला तो बैठकर बनाना पड़े, सबको बना बनाया हलुआ चाहिए, वो मैं कहां से लाऊं? मेरे पास न लेखक है न कोई सुविधा! कोई कुछ आश्वासन भी देता तो वह आश्वासन ही रह जाता।

आखिर मैंने अपने प्यारे पुत्र लाजपत राय को पकड़ा, जबकि वह इस कार्य को बिलकुल ही छोड़ चुके थे, उन्होंने मेरी बात को मना नहीं किया और यह भार अपने कन्धों पर ले लिया। इस ग्रन्थ की प्रकाशन कहानी को लिखूं तो बहुत लम्बा लेख हो जावे, संक्षेप में इतना ही कहता हूँ कि मैंने उनकी लगन व परिश्रम को देखा है, उन्होंने अपने व्यस्त समय में से भी समय निकाल कर रात-दिन भाग दौड़ करके इस कार्य को पूरा किया, उनकी धर्मपत्नी वीना गुप्ता एम० ए० भी कम पुरुषार्थी नहीं हैं; उसने भी अपना भरपूर सहयोग इस कार्य को प्रदान किया, अनेकों आर्य भाइयों ने भी जो सहायता इस कार्य में दी वे भी कम धन्यवाद के पात्र नहीं हैं, कुछ आर्य भाइयों ने मुझे व इस कार्य को बनावट समझा एवं ग़लत विचारधारा भी फैलाई, परन्तु उनका दोष नहीं है "दूध का जला छाछ को भी फूंक फूंक कर पीता है" उनके साथ कुछ व्यक्तियों तथा संस्थाओं ने ऐसा ही किया कि किसी भी नाम पर पैसा तो लेलिया बाद में न वह चीज मिली न ही पैसा। मैंने सबको एक ही बात कही कि "इस कार्य में देर भले ही हो जाये पर अन्धेर नहीं" कुछ ने मेरी बात पर विश्वास किया कुछ ने नहीं। इस कार्य में जो-२ मुख्यत: अड़चनें सामने आईं वह लाजपत राय जी ने "इस प्रकाशन में देरी का कारण" वाले लेख में उदधृत भी की हैं।

मैं अधिक देर बैठ नहीं सकता, कहीं चल-फिर नहीं सकता, ज्यादा देर लिख नहीं सकता, ये सब आयु का तकाज़ा है। तो भी मन में ये बात ज़रूर है कि जो भी हो सके समाज के लिए कर जाऊं, अब जो शेष शास्त्रार्थ रह गये हैं वो भी तीसरे भाग में आ जायेंगे, मुझे विश्वास है वह भी मेरे जीवन काल में ही प्रकाशित हो जायेंगे। शास्त्रार्थ गये, शास्त्रार्थ का युग गया, अब शास्त्रार्थ के नाम पर स्वप्नमात्र रह गया, मैं चाहता हूं हमारे पूर्वज शास्त्रार्थ महारथियों के शास्त्रार्थ भी मेरे शास्त्रार्थों के साथ-साथ प्रकाशित हो जावें। उनका कुछ संग्रह किया जा चुका है, कुछ हो रहा है। उसे भी जल्दी ही प्रकाशित किया जावेगा। और अधिक क्या लिखूं। आप सभी को पुन: आशीर्वाद व धन्यवाद देता हूं जिनके सहयोग से यह महान पवित्र कार्य सम्पन्न हुआ।

वैदिक धर्म का—
"अमर स्वामी सरस्वती"

नोट—

[प्रकाशन योजना]

निर्णय के तट पर (तृतीय भाग)

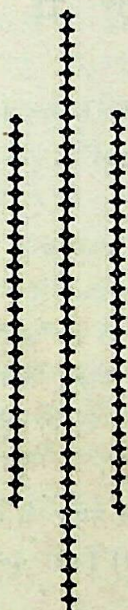
(शास्त्रार्थ संग्रह)

"पूर्ण प्रयास के बाद भी जो-जो शास्त्रार्थ इस भाग में नहीं आ पाये उनको तीसरे भाग में प्रकाशित किया जायेगा, पूर्ण विवरण के लिए इसी ग्रन्थ का पृष्ठ नं० ३६७ देखिये।"

"सम्पादक"

पन्द्रहवां शास्त्रार्थ

स्थान : जिसौला, परगना-खतौली जिला मुज़फ्फ़रनगर (उ० प्र०)



दिनांक : २६ जनवरी सन् १८८७ ई०

विषय : क्या मूर्ति पूजा वैदिक है ?

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्ता : पं० ज्योति स्वरूप, व पं० देवदत्त शर्मा

(हिन्दुओं) सनातन धर्मियों की ओर से शास्त्रार्थ कर्ता : पं० कमल नयन शर्मा

आर्य समाज की ओर से सहायक : शास्त्रार्थ की भूमिका में देखिये ।

हिन्दुओं की ओर से सहायक : " " " "

शास्त्रार्थ के आयोजन कर्ता : ख़ैराती राम, रामसरनदास उर्फ सरनलाल और
: रघुवीर सहाय व नन्दराम एवं मूल चन्द ।

मध्यस्थ : स्वयं पाठकगण (श्रोतागण)

सभापति : देवदत्त शर्मा

नोट – यह शास्त्रार्थ प्रथम बार श्री लाला ख़ैरातीरामजी रईस ग्राम जिसौला की आज्ञा से विद्या दर्पण प्रैस मेरठ में सन् १८८७ ई० में श्री कल्याणराय जी ने प्रकाशित किया था । उसके बाद अब प्रकाशित हुआ है । हम "वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर के अधिकारियों के विशेष आभारी हैं जिनके सौजन्य से हमें मूल कापी प्राप्त हुई ।

आवश्यक द्रष्टव्य—चौदह शास्त्रार्थ प्रथम भाग (निर्णय के तटपर) में प्रकाशित किये जा चुके हैं, जो "अमर स्वामी प्रकाशन विभाग" से ही फरवरी सन् १९८२ ई० में छपे थे । इच्छुक व्यक्ति प्रकाशन से प्राप्त कर सकते हैं !

"प्रबन्धक"

इस शास्त्रार्थ के विषय में "आवश्यक दृष्टव्य"

यह शास्त्रार्थ ग्राम जिसौला परगना खतौली जिला-मुजफ्फरनगर (उत्तर प्रदेश) में २६ जनवरी सन् १८८७ ई० को हुआ था आगामी २६ जनवरी सन् १९८६ को इस शास्त्रार्थ को हुये ९९ वर्ष व्यतीत हो जायेगें और १००वां वर्ष आरम्भ हो जायेगा।

हमारे पास यह सबसे पुराना शास्त्रार्थ है। इस शास्त्रार्थ के कर्ता मुख्य रूप से दो पण्डित थे आर्य समाज की ओर से श्री पं० देवदत्त जी कर्णवास जिला बुलन्दशहर (उ० प्र०) के थे। ऐसा मेरा विचार है वैसे शास्त्रार्थ में यह लिखा नहीं हैं कि पण्डित जी कहां के निवासी थे। कर्णवास के श्री पं० देवदत्त जी को मैं भली भांति जानता था महामहोपाध्याय श्री पं० आर्य मुनि जी दयानन्द एंग्लो वैदिक (डी० ए० वी०) कालेज लाहौर में प्रोफेसर थे। संस्कृत तथा शास्त्रों के दिग्गज विद्वान थे। मेरे साथ उनका भी बहुत प्रेम था। उन्होंने बहुत ग्रन्थ लिखे थे उन ग्रन्थों के प्रकाशक श्री पं० देवदत्त जी कर्णवास निवासी ही थे।

सनातन धर्म की ओर से पं० कमल नयन (कमल नेत्र) जी थे। उनका निवास स्थान भी शास्त्रार्थ की पुस्तक में नहीं लिखा है पर मैं जानता हूं कि वह—(अहमदगढ़) जिला बुलन्दशहर (उ०प्र०) के निवासी थे।

पूर्व जन्म की स्मृति :—

मेरा जन्म चैत्र-शुक्ल प्रति पदा (नये सम्वत का प्रथम दिन) सम्वत १९५१ विक्रमी को ग्राम अरनिया जिला बुलन्दशहर (उ०प्र०) में हुआ था जब मैं तीन चार वर्ष का हुआ तो मैंने अपने परिवार वालों को बताया कि मैं पूर्व जन्म में अहमदगढ़ का पण्डित 'कमल नयन' था। मेरे परिवार वालों ने कई कारणों से इस का पता लगाना अच्छा नहीं समझा ऋषि दयानन्द जी का चित्र (खड़ा) मैंने देखा तो मैंने पिता जी को बताया कि मैंने इनको कर्णवास में देखा था मुझको कुछ पता नहीं लगा कि अहमदगढ़ कहां हैं श्रीमान भाई सरदारसिंह जी उपदेशक मुझको मेरी कही हुई बात सुनाया करते थे कि तुम बचपन में ऐसा कहा करते थे। उन्होंने भी मुझको यह नहीं बताया कि अहमदगढ़ कहां है। मैं अपने ग्राम मे १८ वर्ष की आयु के पीछे रहा ही नहीं, उससे पहले भी विद्याध्यन में था और पीछे भी २३ वर्ष की आयु तक विद्याध्यन में ही रहा पश्चात लाहौर चला गया। सन् १९३९ में हैदराबाद का सत्याग्रह हुआ। मैं और भाई साहब कुं० सुखलाल जी आर्य-मुसाफिर हम दोनों सत्याग्रह करके गुलवर्गा (दक्षिण निजाम स्टेट) की जेल में बन्द थे। वहां अहमद नगर के कुछ युवक थे। मैं उनको मिलकर प्रसन्न होने लगा और यह धारणा मेरी बन गयी कि मेरा पूर्व जन्म का स्थान अहमदनगर ही होगा। मुझको बाल्य काल में यह भी याद था कि मेरी मृत्यु पानी में डूबने से हुई थी। मैं अहमद नगर गया वहां जाकर एक तलाब भी देखा उसको देखकर यह समझने और कहने लग गया कि मेरे जन्म और मृत्यु का स्थान अहमदनगर है।

योग में मेरी बड़ी रूचि थी मैंने पहले भी योग की शिक्षा अनेक योगियों से ली थी। पर विशेष शिक्षा महान विद्वान श्री स्वामी विशुद्धा नन्द जी महाराज से सन् १९३८ से हरिद्वार में लेनी आरम्भ की थी। वह स्वामी जी महाराज योगी सिया राम जी महाराज (एम० ए०) के शिष्य थे उनकी कृपा से मैं योगाभ्यास करता हुआ संस्कारों का साक्षात्कार भी करने लगा।

योग दर्शन में सत्र है :—

"संस्कार साक्षात करणात पूर्व जाति ज्ञानम्"

"संस्कारों का साक्षात्कार करने से पूर्वजन्म का ज्ञान हो जाता है। यह पतंञ्जलि महाराज का सत्य वचन है। मुझको बहुत वातें पूर्वजन्म की याद आयीं ग्राम-घर-मकान भी ज्ञान में आने लगे। महर्षि दयानन्द जी महाराज के पास अनेक बार जाने, उनकी प्रेरणा से गायत्री का जाप करने अम्वादत्त शास्त्री का शास्त्रार्थ ऋषि के साथ कराने पं० हीरा वल्लभ जी का शास्त्रार्थ ऋषि दयानन्द के साथ कराने की प्रेरणा देने तथा शास्त्रार्थों को सुनने की बहुत सी वातें प्रकट हुई तभी पूर्वजन्म के स्थान का निश्चय हो गया कि वह "अ॰मदगढ़" ही था। यद्यपि मूर्ति पूजा पर विश्वास नहीं रहा था तो भी कमल नयन (कमल नेत्र) की अपने बहुत से साथियों के अधिक आग्रह से एक शास्त्रार्थआर्य समाज केसाथ मूर्तिपूजा पर ही करना पड़ा। शास्त्रार्थ में पं० कमल नयन (कमल नेत्र) जी की रूचि नहीं थी तो भी अन्यमनस्क का सा शास्त्रार्थ किया ही है। यह छोटा सा शास्त्रार्थ है।

पं० कमल नयन की प्रेरणा से पं० अम्बादत्त शास्त्री तथा श्री पं० हीरा वल्लभ जी शास्त्री को ऋषि दयानन्द जी के साथ शास्त्रार्थ करने को बुलाया गया था। मेरा विश्वास है कि दर्शनों के प्रकाण्ड पण्डित तथा दर्शनों के भाष्यकार श्री पं० उदयवीर जी शास्त्री पूर्व जन्म में पं० हीरा बल्लभ शास्त्री थे। श्री पं० हीरा बल्लभ जी शास्त्री के पांडित्य का यह प्रवल प्रमाण है कि वह छः (६) दिन तक ऋषि दयानन्द जी के साथ शास्त्रार्थ में टिक सके और अन्त में सत्य को स्वीकार करके अपने साथ लायी हुयी पाषाण आदि की मूर्तियों को गंगा में विसर्जित कर दिया। उन शास्त्रार्थों को सुनने वाले पं० कमलनयन को मूर्ति पूजा पर शास्त्रार्थ करने की इच्छा हृदय से नहीं हो सकतीं थी पर अनेक साथियों के आग्रह से मनोरंजन के रूप में ही यह छोटा सा शास्त्रार्थ कर लिया।

—अमर स्वामी सरस्वती



आवश्यक निवेदन

शास्त्रार्थ का आयोजन कराने वालों की ओर से—

इलतमास ज़रूरी बखिदमत नाज़रीन व सामईन हम लोग बसिदक़ दिल ज़ाहिर करते हैं कि—इस मुबाहिसा से हमारी ग़रज सिर्फ़ अहक़ाक़ हक़ थी, और कुछ नहीं, जो कुछ इस रिसाला में दर्ज हुआ है, वह बिल्कुल सही-सही बिलारू रियायत दर्ज हुआ है, अगर कोई अहले हक़ किसी अमर की सेहत किया चाहे वह बिलातकल्लुफ़ यहां तक क़दम रंज़ा फ़र्मावें।

मकानात की कैफ़ियत और मुबाहिसे की असल कापी दस्तखती फ़रीकेन बचश्म खुद देख लेगें "सपर्य्यगाच्छुक्रं···" इस मन्त्र के अर्थ आखिरी बार पंडितान फ़रीकेन ने बक़लम खुद लिखे हैं, उसमें का-की-को-के वग़ैरा या इमला की दुरुस्ती के लिए भी कलम नहीं उठाया गया। बाक़ी बयान चूंकि एक कातिब लिखता गया था, इसलिए इसका इमला और इबारत दुरुस्त कराई गई है, और वह भी इस अहतियात से कि—मानी पर कुछ असर न पड़े, यानी जहां कहीं किसी लफ़्ज़ के छूट जाने या ज़ियादा लिख जाने से इबारत बे रब्त होती थी, उसको दुरुस्त कर दिया है। और बढ़ाये या घटाये हर्फ़ (लफ़्ज) को खतूत बदानी (ब्रेकेट) के अन्दर लिख दिया है। ताकि लोग समझ जावें कि—असल जो हमारे पास मौजूद है, इसमें इबारत किस तरह दर्ज है। (इसका शुद्ध हिन्दी में अनुवाद, शास्त्रार्थ केशरी महात्मा अमर स्वामीजी महाराज द्वारा नीचे दिया जा रहा है)।

इलतमस

खैराती राम	**रघुवीर सहाय**
रामसरन दास उर्फ़ सरनलाल	**नन्दराम व मूलचन्द**

अनुवाद—हम लोग सच्चे हृदय से यह यह प्रकट करते हैं कि इस शास्त्रार्थ से हमारा प्रयोजन केवल सत्य को जानना ही था और कुछ नहीं। जो कुछ पुस्तिका में लिखा गया है वह सर्वथा सत्य सत्य, बिना किसी पक्षपात के लिखा गया है। यदि कोई सत्य जानने के इच्छुक ठीक-ठीक प्रमाण लेना चाहें तो बिना संकोच यहां पधारें।

शास्त्रार्थ के स्थान की स्थिति तथा शास्त्रार्थ की मूल पाण्डुलिपि दोनों ओर के पण्डितों के हस्तक्षरों सहित अपनी आंखों से देख लेंगे।

सपर्य्यगाच्छुक्रं······ इस मन्त्र के अर्थ अन्तिम वार दोनों ओर के पण्डितों ने अपनी लेखनी से लिखे हैं। उसमें का-की-को-के आदि या लेख कों शोधने के लिए भी लेखनी नहीं उठाई गई। शेष वक्तव्यों को एक लेखक लिखता गया था इसलिए उसको कहीं-कहीं ठीक किया गया है और वह भी यह ध्यान रखते हुए कि कहीं अर्थों पर प्रभाव न पड़े। जहां कहीं कोई अक्षर या शब्द छूट जाने या अधिक लिखे जाने से लेख अव्यवहारिक सा होता था उसको ठीक कर दिया गया है तथा बढ़ाये या घटाये अक्षर को कोष्ठक (ब्रेकिट) में लिख दिया है जिससे कि लोग समझ जायें कि मूल लेख जो हमारे पास विद्यमान है उसमें लेख क्या लिखा हुआ है।

निवेदक

खैराती राम	**रघुवीर सहाय**
राम सरनदास (सरनलाल)	**नन्दराम व मूलचन्द**

दो शब्द

आदरणीय ! पाठकगण !!

मैंने इस शास्त्रार्थ का विवरण ज्यों का त्यों प्रकाशित किया है। ताकि आज के व्यक्ति भी देखें कि एक सौ वर्ष पहले किस तरह के शास्त्रार्थ हुआ करते थे। हांलाकि व्याकरण आदि की दृष्टि से तो इसमें काफी अशुद्धियां है। एवं भाषा के लिखने में तो कहना ही क्या ?

परन्तु अगर आप थोड़ा ध्यान पूर्वक पढ़ेंगें तो आसानी से सभी भाषा का अर्थ समझ में आ जायेगा। मैं समझता हूं किसी भी चीज़ में वास्तविक को फेर बदल करने से उसकी वास्तविकता समाप्त हो जाती है।

रही प्रेस कापी बनाने की बात ? आप स्वयं अनुमान लगा सकते हैं कि ९९ वर्ष पुरानी इस पुस्तक के कागज का क्या हाल होगा। मैं संक्षेप में केवल इतना ही कहूंगा जब तक इसका लेखन कार्य किया, जून की भयंकर गर्मी में। पंखा चलाना तो दूर मैं खिड़की पर भी नहीं बैठ सकता था, तो भी कार्य करना तो आवश्यक था, जैसे-तैसे पूरा किया मूल कापी बहुत ही खस्ता हालत में होने के कारण बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। यह शास्त्रार्थ मुझे "आर्य वानप्रस्थाश्रम-ज्वालापुर (हरिद्वार)" वालों ने दिया था। मैं उनका हृदय से आभारी हूं। जिन्होंने ऐसी लुप्त सामग्री को प्रकाश में लाने के लिए सहयोग प्रदान किया। पाठकगण पढ़ें और लाभ उठावें।

विनीत

"लाजपत राय आर्य"

मूल पुस्तक से (भूमिका)

ग्राम जिसौला (जि० मुज़फ्फर नगर) में सहारनपुर से कुछ आर्य समाजी सज्जन पहुंचे और आर्य समाज का प्रचार करते हुए मूर्तिपूजा का खण्डन किया, उनमें मुंशी मुरारी लाल जी मन्त्री आर्य समाज सहारनपुर, चौबे जगजीवन लाल जी, सभासद आर्य समाज मथुरा, लाला रामप्रसाद जी, पं० राम प्रसादजी लाला मथुरादास जी, सभासद आर्य समाज सहारनपुर, लाला सुभरा मल्ल जी रईस खतौली के साथ 'जिसौला' पहुंचे इन्होंने आर्य समाज के सिद्धान्तों पर अच्छे व्याख्यान दिये। और मूर्तिपूजा का खण्डन भी किया। सनातनधर्मी श्री पं० रामचन्द्र जी भी इसी बीच वहां आ गये, और कुछ बात-चीत आरम्भ हो गई। पं० राम चन्द्र जी ने मूर्ति पूजा के पक्ष में—

"सहस्त्र शीर्षा पुरुषः सहस्त्राराक्षः सहस्त्र पाद्"

(यजुर्वेद अध्याय ३१ मन्त्र १)

बोला, और इसका अर्थ यह किया कि, परमेश्वर के हज़ार सिर हैं, हजार आंख और हजार पांव है। मुंशी मुरारी लाल जी सभासद आर्य समाज सहारनपुर ने कहा कि इस मन्त्र का यह अर्थ नहीं है। इससे पहले कि श्री मुंशी मुरारी लाल जी इस मन्त्र का अपनी ओर से कुछ अर्थ बताते पं० रामचन्द्र जी जोर-जोर से कहने लगे कि इस मन्त्र का पदच्छेद करो, अन्वय करो। और पदार्थ करो। फिर पं० रामचन्द्र जी संस्कृत बोलने लगे। श्री मुंशी मुरारी लाल जी संस्कृत नहीं बोल सकते थे, अत: उन्होंने कहा कि मैं इस मन्त्र का हिन्दी भाषा में अर्थ करता हूं, आप मेरे किये अर्थ का खण्डन करिये, और इस मन्त्र से मूर्तिपूजा सिद्ध करिये—पं० रामचन्द्र जी यह नहीं माने, झगड़ा बढ़ने लगा, तो बहुत से लोगों ने यह निश्चय किया कि, दोनों फ़िरकों के पण्डित यहां बुलाये जावें और इस विषय पर शास्त्रार्थ कराया जावे,

"कि मूर्ति पूजा वेदानुकूल है या वेद के विरुद्ध"?

मेरठ से श्री स्वामी स्वात्मानन्द जी भी आर्य समाज की ओर से आये, दोनों पक्षों के विद्वानों एवं अधिकारियों ने मिलकर कुछ नियम निश्चय किये, जिनमें मुख्य नियम केवल यही था कि दोनों पक्षों से प्रमाण, वेद-मन्त्र भाग के ही दिये जायेंगे। (पाठकों की जानकारी के लिए पूरे नियम जो निश्चय किये गये थे, नीचे दिए जाते हैं।)

१. सम्पूर्ण शास्त्रार्थ को लिखा जाय वा लिखवाया जाय।

२. ऐसे पूर्वोत्तर पक्षों के प्रत्येक लेख पर दोनों के हस्ताक्षर करवा लेवें।

३. प्रत्येक पक्ष के कथन को वक्ता के द्वारा सब प्रकार से समझ कर जो योग्य वक्तृता होगी, वक्ता की भाषा में लिखी जायेगी।

४. आवश्यक व्यवस्था प्राप्त कर लें जिसके अनुसार सम्पूर्ण तात्पर्य पूरा-पूरा प्रकट हो जाय।

५. उक्त नियमानुसार पूर्व पक्ष से पूछ कर वह आवश्यक बातें जो उचित प्रतीत हों लिख लेवें।

६. ऐसे सम्पूर्ण कार्य जो सभा के प्रबन्ध में हानिकारक प्रतीत हों उनके निवारणार्थ प्रधान निज इच्छानुसार उत्तम प्रबन्ध कर लेवें।

७. प्रत्येक प्रश्नोत्तर पत्र की तीन प्रति लिखाकर एक-एक दोनों पक्षों को दी जायेगी और एक प्रधान के पास रहेगी। प्रधान उन प्रतियों पर दोनों पक्षों के हस्ताक्षर करा लेंगें। और अपनी प्रति पर भी हस्ताक्षर करेगें।

८. सम्पूर्ण लेख (शास्त्रार्थ) मातृ भाषा में होंगें, किन्तु प्रमाण उसी भाषा में दिये जायेंगे, जिसमें कि वह उपस्थित होगें।

९. वेद संहिता से अन्य ग्रन्थों का प्रमाण देने का अधिकार किसी पक्ष वाले को न होगा, न लिखा जायगा।

१०. यदि किसी को संहिता के किसी मन्त्रार्थ में किसी प्रकार की शंका उत्पन्न होगी तो उसके निवारणार्थ— एतरेय, शतपथ,-साम, गोपथ, निघण्टु, निरुक्त, ही का प्रमाण होगा।

११. पूर्वोक्त ग्रन्थों से भिन्न भी युक्तियों से स्वपक्ष के सिद्ध करने के निमित्त प्रत्येक पक्ष को अधिकार होगा परन्तु जिन युक्तियों को प्रधान-योग्य समझेगा वह लिखाया करेगा।

१२. शास्त्रार्थ इस प्रकार आरम्भ होगा कि प्रथम प्रश्नकर्ता को अपने पक्ष के सिद्ध करने में जो कुछ प्रमाण रखना होगा सम्पूर्ण कह कर लिख देगा, तदनन्तर उत्तर पक्ष सम्पूर्ण प्रमाण जो पूर्व पक्ष के खण्डन में जानता हो उसी प्रकार कहकर वह भी लिख देगा।

१३. प्रश्न कर्त्ता के प्रशनान्त उत्तर पक्ष का उत्तर होगा और जब तक वह पक्ष समाप्त न हो, शास्त्रार्थ होता रहेगा, किन्तु प्रधान को पक्ष पात देख वा शास्त्रार्थ का तात्पर्य अर्थात् निर्णय का बोध होकर बन्द कर देने का अधिकार होगा।

१४. शास्त्रार्थ समाप्त होने के पश्चात सम्पूर्ण शास्त्रार्थ छपवाया जायगा, इस शास्त्रार्थ के लिए सबको उचित होगा कि अपनी-अपनी बुद्धि अनुसार तात्पर्य निकाल लेवें।

१५. प्रत्येक पक्ष वाले की ओर से पांच से अधिक सम्भाषणकर्त्ता न होंगे। और उनके नाम शास्त्रार्थ होने से प्रथम, प्रधान को लिखा दिये जावेगें और प्रधान प्रत्येक पक्ष को एक दूसरे के नाम बता देगें।

१६. केवल उन पांच महाशयों के जो कि शास्त्रार्थ करने के लिए नियत किये जायेंगे, अन्य मनुष्यों को बोलने का अधिकार न होगा और एक समय में एक से अधिक महाशय न बोल सकेंगे। हां! अन्य सहायक पुरुषों को अधिकार सम्मति मात्र का होगा सो एक प्रश्नोत्तर में दस मिनट पर्यन्त तीन बार तक अर्थात् एक-एक बार सम्मति देने में दस-दस मिनट का समय दिया जायगा।

१७. जब किसी पक्ष वाले को अपना सहायक वदलने की आवश्यकता हो तो नवीन सहायक को पूर्व महाशय के प्रथम कथन का भार अपने ऊपर लेना होगा, अर्थात् पूर्व सहायक के प्रश्नोत्तरों का उत्तरदाता होगा यदि इसे स्वीकार न करे तो उसे सहायक श्रेणी में सम्मिलित न करना चाहिये।

१८. यदि दोनों ओर से कोई किसी प्रकार के अपशब्द का प्रयोग करे वा किसी प्रकार से असभ्यता प्रकट करे तो सभापति स्वयम् वा किसी और की प्रार्थना पर प्रथम रोक दे द्वितीय बार ऐसा होने पर यथोचित्त शासन करे।

दस्तखतकर्ता—

हिन्दू धर्म सभा की ओर से—

१. पं० सेवकराम शर्मा
२. ,, रामचन्द्र
३. ,, हरयश जी हरियशः
४. ,, कमल नेत्र शर्मा
५. ,, दसथ हरि प्रसाद
६. ,, मित्रसैन शर्मा
७. ,, हजारीदत्त शर्मा
८. गंगाधर शर्मा
९. वेद्यराम शर्मा

आर्य समाज की ओर से—

१. भीमसेन शर्मणः
२. देवदत्त शर्मणः
३. वलदेव शर्मणः
४. ज्योति स्वरूप (अंग्रेजी में)
५. राधा कृष्ण (,,)
६. मुरारी लाल (,,)

नोट—हिन्दू धर्म सभा की ओर से श्री पं० कमल नयन शर्मा जी शास्त्रार्थ कर्ता थे, अन्य सहायक थे, आर्य समांज की ओर से, श्री ज्योति स्वरूप जी एवं श्री देवदत्त शर्मा जी शास्त्रार्थ कर्त्ता थे, अन्य सहायक थे।

"यह शास्त्रार्थ श्री लाला खैराती राम जी रईस ग्राम जिसौला की आज्ञा से विद्या दर्पण प्रैस मेरठ में, 'श्री कल्याण राय' जी ने प्रथम बार प्रकाशित किया था, उसके बाद अब छप रहा है। ऐसा हमने वैसे इस शास्त्रार्थ के मुख पृष्ठ पर भी नोट दे दिया है।" नियम निश्चय होने के पश्चात् शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ, उसे पढ़िये और लाभ उठाइये यह सभी प्रमाणित सामग्री मैंने मूल कापी से ही ली है। जो मेरे पास मौजूद है।

वैदिक धर्म का—
"अमर स्वामी सरस्वती"

□□□

शास्त्रार्थ आरम्भ

आर्य उवाचः

वेद में ईश्वर की ओर से जीवों को कर्त्तव्य कर्मों का विधान किया गया है। यदि मूर्ति पूजन वेद विहित है तो इस विषय में भी वेद से ही प्रमाण देना होगा। वेद शब्द से जो मैंने उच्चारण किया है, उससे (यह पद पढ़ना ही छोड़ देना चाहिए) मेरा तात्पर्य ऋग०, यजु०, साम०, और अथर्व० से है, जो मन्त्र भाग के नाम से प्रसिद्ध है।

मूर्ति पूजन के खण्डन को स्पष्ट करने के लिए मैं अपने व्याख्यान में तीन भाग करता हूं।

१. ईश्वर के गुणों का वर्णन।

२. ईश्वर की प्रतिमा नहीं है।

३. प्रतिमा पूजन का वेद में निषेध है।

प्रथम भाग—

ईश्वर स्वरूप के विषय में यजुर्वेद संहिता के अध्याय, ४०, मन्त्र ८, का प्रमाण देता हूं।

सपर्य्यगाच्छुक्रमकामयव्रणमस्नाविरः ँ शुद्धमपापविद्धम।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः॥

यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र ८,

अर्थ—वह परमात्मा सब जगह व्यापक, जगत का उत्पादक और शुद्ध पवित्र शरीर से रहित, अछेद्य अर्थात् फोड़े-फुन्सी, नाड़ी आदि के बन्धनों से रहित, अन्तर्यामी, सबका मालिक स्व प्रकाश (है) उस परमात्मा ने नित्य अपनी प्रजा के लिए सब अर्थों और कर्मों का विधान किया है।

द्वितीय भाग—

ईश्वर की प्रतिमा नहीं है, अब इसके लिए प्रमाण वेद का ही प्रस्तुत करता हूं। प्रथम भाग में अपने कथन के अनुसार 'ईश्वर के गुणों के वर्णन' विषयक वेद का ही प्रमाण प्रस्तुत कर अर्थ भी कर दिया है। अब आप 'प्रतिमा नहीं है ईश्वर की' इसके लिए यजुर्वेद अ० ३२ म० ३ को देखिए—

न तस्य प्रतिमाऽस्ति यस्य नाम महद्यशः।
हिरण्यगर्भ इत्येष मामाहि ँ सी दित्येषः यस्मान्नजात इत्येषः॥

यजुर्वेद अध्याय ३२ मन्त्र ३,

अर्थ – जिस परमात्मा का बड़ा यश प्रसिद्ध है, उसकी प्रतिमा नहीं है, वह हिरण्यगर्भ अर्थात् ऐसा परमात्मा है। जिसके आधारभूत सारे तेजस्वी व यशस्वी (पदार्थ) आधारभूत (यह भी न होना चाहिए क्योंकि यही पद पहले आ चुका है) वह मुझको न मारे, फिर कैसा है वह परमात्मा कि जिससे साक्षात् कोई उत्पन्न नहीं हुआ। इसमें हिरण्य शब्द के अर्थ में प्रमाण :—

"ज्योतिर्वै हिरण्यं ज्योतिरेषोऽमृत ँ हिरण्यम्॥" श० का० ६ अ० ७,

एवं

"अथ एतरेय ब्राह्मणे यशो वै हिरण्यं" पं० ७ अ० ३,

तृतीय भाग—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति ये सम्भूतिमुपासते।
ततोभूय इवते तमोयउसम्भूत्या ँ रताः॥ यजुर्वेद अध्याय ४ मन्त्र ६,

इस मन्त्र में प्रतिमा पूजन का जबर्दस्त निषेध किया गया है, देखिए अर्थ भी—"वह अन्धकार में जाते हैं, जो कारण स्वरूप जगत की उपासना करते हैं, और वह उससे भी अधिक अन्धकार में जाते हैं, जो कार्य स्वरूप जगत की उपासना करते हैं। अर्थात् जो स्थूल पृथ्वी आदि विकार को पूजते हैं।

अधिकोक्तिः—

मनुष्य जब किसी को अपना उपास्य देव मानता है तो उसे अपना पूज्य मान सर्वथा प्रसन्न करना चाहता है, क्योंकि प्रत्येक उपासक अपना कल्याण अपने उपास्य देव की प्रसन्नता ही में जानता, मानता, और प्राप्त कर सकता है।

यदि उसका उपास्य श्रम-गुण विशिष्ठ है, और उसके कर्म एवं स्वभाव उपासक से श्रेष्ठ अर्थात् उत्तम है, तो वह तदनुकूल आचरण स्वीकार करेगा, क्योंकि कोई किसी के विरुद्ध आचरण करता हुआ किसी को प्रसन्न नहीं कर सकता।

यदि मनुष्य अपना उपास्य अपने से अधिक शक्ति वाला और गुण वाला न मान किसी ऐसे पदार्थ में पूज्य वुद्धि करे, जो यथार्थ में न उसकी तरह चैतन्य शक्ति रखता है, न उसमें किसी प्रकार का बल, वीर्य, पराक्रम दीख पड़ता है, वा जिसके गुण-कर्म-स्वभाव, शिष्टाचार विरुद्ध और लोकगर्हित है तो वह कुछ भी उन्नति न करके केवल अवनति को प्राप्त होगा, और मनुष्य की जो अभिलाषा कल्याण प्राप्त करने की थी, वह उसे कदापि प्राप्त नहीं होगी। पुनः उसका वह कर्म निष्फल रहेगा। और मनुष्यत्व का कुछ भी उसे लाभ न होगा, हानि ही होगी, क्योंकि जैसा उपास्य होता है, वैसा ही उपासक भी हो जाता है। अर्थात् उपास्य और उपासक के गुण, कर्म और स्वभाव में किसी कक्षा तक सदृश्यता हो जाती है।

यदि वेद में मूर्ति पूजा का विधान हो तो, मूर्ति पूजन के मण्डन करने वाले महाशय क्या यह वतलावेंगे ?

१. ईश्वर मूर्तिवान हैं ? और उसकी मूर्ति कितने प्रकार की हैं ? कैसी हैं ? और किस-किस प्रकार की वनानी चाहिए ?

२. मूर्ति पूजा के विषय में विधि वाक्य जिससे यह प्रतीत हो कि मनुष्यों को उसकी मूर्ति अवश्यमेव पूजनी चाहिए, और उससे क्या लाभ होगा ? (उत्तर दें)

यह प्रमाण वेद संहिता अर्थात् मन्त्र भाग से जिसको ऊपर स्पष्ट कर चुका हूं, ठीक-ठीक ऐसे ही पते के साथ देना चाहिए जैसा मैंने दिया है।

हस्ताक्षर
"ज्योति स्वरूप"

हिन्दूरुवाच—

जो-जो भाषा मन्त्र के अर्थ की लिखी वह कौन-कौन से पद की है ? उसका जुदा-जुदा छेवा देकर निश्चय कर दें कि कौन-कौन प्रमाणों से इन अर्थों की भाषा लिखी है, हमको उन पदों से निश्चय हो जाना चाहिए कि इस पद का यह अर्थ है और इस प्रमाण से होता है।

दूसरे जो प्रतिमा का निषेध किया वह कौन से मन्त्र से प्रतिमा पाई, और संहिता में कौन सा मन्त्र है ? क्योंकि बिना प्राप्त हुए निषेध नहीं हो सकता है, जो कोई निषेध होता है, वह प्राप्त ही का होता है। जैसे अपने घर में बार-बार चांदी देखी जाती है। उसको सूर्य के तेज प्रताप से सीपी में चांदी प्रतीत होती है। तब उसको शंका होकर के निषेध किया जाता है कि सीपी में चांदी नहीं है। इससे प्रमाण लिखें कि मूर्ति इस मन्त्र से पाई थी। उसका निषेध किया, जो-जो वस्तु प्राप्त है, उसी का निषेध है।

"हस्ताक्षर"
"कमल नेत्रस्य"

आर्य उवाच

पदच्छेद करने और अर्थ करने की विधि को वर्णन करना, उस समय तक आवश्यक नहीं है, जब तक यह सिद्ध न हो कि अर्थ समझने में भ्रान्ति हुई या अर्थ अशुद्ध कर लिया गया।

पहला भाग पं० जी के लेख का केवल समय व्यतीत करना ही प्रतीत कराता है।

बहुत प्रसिद्ध है कि अर्थ व्याकरण और कोष की सहायता से किया जाता है। और किसी विशेष प्रमाण की उस समय तक आवश्यकता नहीं होती जब तक भ्रान्ति या अशुद्धि न बतलाई जावे।

दूसरे भाग में कहा गया है कि प्राप्त वस्तु का ही निषेध किया जाता है, ईश्वर विषय में सर्वथा असंगत है सब ही जानते हैं कि ईश्वर त्रिकालज्ञ है उसे अपनी सर्वज्ञता से उसने ऐसी बातों का निषेध किया है, जिन्हें जीव तीनों काल में से, किसी एक काल में करता है, करेगा, या किया है।

लोक में भी अप्राप्त वस्तु का निषेध दृष्टिगोचर होता है। जैसे कहते हैं, बालू में तेल नहीं है, अथवा वन्ध्या के पुत्र नहीं होता, आकाश में फूल नहीं लगते, शशक के सींग नहीं होते, और वेदों में आज्ञा पाई जाती है, कि गौहिंसा मत करो, तो भी कोई वेदवित् नहीं कह सकता कि गौहिंसा की आज्ञा देने के पश्चात्त निषेध किया गया है। अतः प्रार्थना है कि पूर्वोक्त प्रकार से उत्तर दिया जाये।

हस्ताक्षर—
"ज्योति स्वरूप"

आर्य उवाच—

सपर्यंगाच्छुक्रमकायमव्रण मस्नाविरं शुद्धमपापविद्धं।
कविर्मनीषी, परिभूः स्वयम्भूर्याथा तथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छा-स्वतोभ्यः समाभ्यः ॥ ८ ॥

यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र ८,

सः। पर्य्यगात्। शुक्रम्। अकायम्। अव्रणम्। अस्नाविरम्। शुद्धम्। अपापविध्यं। कविः। मनीषी। परिभूः। स्वयम्भूः। याथा तथ्यतः। अर्थान्। व्यदधात्। शाश्वतीभ्यः। समाभ्यः। (इति पदपाठ)

यो यमत्तीतंमंन्त्रं रूक्त आत्मा सस्वेत रूपेणोत्याह। यम्मन्त्रः (सपर्य्यगात्) सन्त्रान्मापरि समन्तादगात् गतवान् आकाश वध्या पीत्यर्थः। परिउपसर्गः। अगात् क्रिया पदम् (शुक्रम्) शुद्धम् ज्योतिष्मद्दीप्तिमन्त्रित्यर्थः।

(अकायम्) लिंग शरीर वर्ज्जित इत्यर्थः (अव्रणम्) अक्षतम्। (अस्नाविरम्) स्नावाशिरान विद्यन्तेयस्मि न्नित्यस्ना विरम्-अस्नाविरमव्रण मित्याभ्यां स्थूलशरीर प्रतिषेद्यः। (शुद्धम्) निर्म्मलम् (अपापविद्धम्) धर्म्माधर्म्मादि पाप वर्जितम्। शुक्रमित्यादीनिवचांसि लिंगत्वेन परिणीयानि कविर्मनीषी पुंलिगत्वेनोपसंहारात् (कविः) क्रान्तदर्शीः सर्वंदृक (मनीषी) मनसः—ईशिता—सर्वज्ञ ईश्वरइत्यर्थः (परिभूः) सर्वेषामुपरिभवतीति। (स्वयम्भूः) स्वयम्भवतीति तथा सनित्य मुक्तईश्वरोः (याथातथ्यतः) सर्वज्ञत्वात्। यथा तथाभावो याथातथ्यम् यथाभूत् कर्म्म फलसाधनतोर्थान्। कर्त्तव्यपदार्थान्। विहितवान् (शाश्वतीभ्यः) नित्याभ्योनादिरूपाभ्यः। (समाभ्यः) जीवेभ्यः ॥

यद्वा संवत्सराख्येभ्यः ॥ पूर्वोक्त विशेषणै रीश्वरस्य मूर्तिरर्थात्प्रति कृतिर्न प्रत्तीयत।

हस्ताक्षरं—
"देवदत्त शर्म्मणः"

सपर्य्यंगादित्यादि ॥ यजुः ॥ अ० ॥ ४० ॥ मं० ८ ॥

(सपर्य्यगात्)	वह परमेश्वर सर्वव्यापक है।
(शुक्रम्)	शीघ्रता से कार्य करने वाले
(अकायम्)	काया (शरीर) रहित
(अव्रणम्)	फोड़े (जख्म) और छिद्रों से रहित
(अस्नाविरम्)	नस नाड़ी के बन्धन से रहित
(शुद्धं)	सर्व दोषों और अपवित्रताओं से रहित
(अपापविद्धम्)	सर्वथा पाप रहित
(कविः)	बड़ा विद्वान् क्रान्तदर्शी
(मनीषी)	महान् ज्ञानवान्
(परिभूः)	सबका शासक सबका स्वामी है (उसने)
(स्वयम्भूः)	स्वयं प्रकाशमान अपने सर्व कार्य स्वयं करने वाला
(याथातथ्यतः)	ठीक-ठीक यथा योग्य
(अर्थान्)	करने योग्य कार्यों का विधान और
(व्यदधात्)	संचालन किया
(शाश्वतीभ्यः)	प्रवाह से अनादि सृष्टियों
(समाभ्यः)	समयों के लिए

हस्ताक्षर—
"देवदत्त शर्मा"

हिन्दुरुवाच—

जो कुछ सभापति ने "सपर्य्यंगात्" इस ऋचा का अर्थ करा है, यह अर्थ नहीं है।

स पर्य्यंगाच्छुक्र मकायमव्रणमस्ना विरं शुद्धमपाप विद्धम्।
कविः मनीषी परिभू स्वयम्भूः र्याथातथ्यतोऽर्थान् विदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥
सः परि आगात् शुक्रम् अकायम् अव्रणम्। अस्नाविरम् शुद्धम् अपापविद्धम्।
कविः मनीषी परिभूः स्वयम्भूः याथातथ्यतः अर्थान् विअदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥

इति पदच्छेदः एवम्भूतात्मज्ञस्य फलमाह य एव मात्मानं पश्यति स इदृशं ब्रह्म पर्य्यंगात् परिगच्छति प्राप्नोतीत्यर्थः कीदृशं शुक्रम् शुक्तम् शुद्धम् विज्ञानानन्दस्वभावम् अचिन्त्य शक्ति अकायम् न कायः शरीरं यस्यतत् अकायत्वादेवाव्रणम्। अक्षतम् अस्नाविरं न विदन्ते स्नावाः शिरा यत्र तद् स्नाविरम् स्नायु रहितम् अकायत्वादेव शुद्धम् अनुपहतम् सत्वरजसतमोभिः अपाप विद्धम् न पाप विद्धम् क्लेश कर्मविपाकाशयैर स्पष्टम् अकायम् व्रण मस्नाविरमिति पुनरुक्त माथितिश यद्योतनाय अभ्यासे भूयां समर्थम्मन्युन्त, इति यास्कोक्तेः निरुक्त—१-४२ ॥

ई दृशं ब्रह्मात्मज्ञः प्रतिपद्यत इत्यर्थः पुनस्तस्यैव फलान्तरमाह ईदृशं उपासकः शश्वतीभ्यः समाभ्यः निरन्त मनन्त वर्ष प्राप्तये याथा तथ्यतः। याथातथा भावो याथात्थ्यं यथा स्वरूपमर्थान् व्यदधात् विहितवान् तक्त स्व स्वामि सम्बन्धे चेतना चेतने रथे रूप भोगं कृतवान् इत्यर्थः की दृशः कविः क्रान्तदर्शी मनीषी मेधावी परि सर्वतो भवतीतिपरिभूः ज्ञानवलात् सर्व स्वरूपः स्वयम्भवतीतिपरिभूः। ब्रह्मरूपेण भविता ईदृशोपि पूर्वोक्त शुक्र मकाय मित्यादि विशेषण विशिष्टं ब्रह्म प्राप्नोतित्यर्थः एव अनतस्य प्रति मेत्यारम्य सपर्य्यंगाद्यन्तमेतन्मन्त्रत्रयं शुद्ध ब्रह्मोपासना विषयकं ननु मूर्ति पूजन निषेध विषयकं कुतो मूर्ति पद वाचकत्वाभावात्। यच्चात्र प्रतिमा पदं तच्च सादृश्यपरम् ॥

भावार्थ—

जो अस आत्मा कु देखता है, सो अस ब्रह्म कू प्राप्त हो जाता है। कैसा ब्रह्म है विज्ञान आनन्द स्वभाव है, न हि चिन्तमन करीजा है, शक्ति जिसकी नहीं है, शरीर जिसके शरीर के न होनें से फोड़ा फुन्सी रहित है। नाड़ी रहित है। सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण कर कै रहित है, क्लैष कर्म्म फल और आशय अन्तःकरण इन कर कै स्पर्शित नहीं है ऐसे ब्रह्म कू ब्रह्मज्ञानी प्राप्त होता है। ऐसा उपासक बहुत वर्षों के प्राप्त होने के वास्त सो उपासक ऐसा स्वरूप कू विधान कहता है। नाम त्याग दिया स्व स्वामी सम्बन्ध भाव जिस न चेतन जड़ों कर कै उपभोग करता है, वह उपासक कैसा है ? कवि है, मनीषी है। मेधावी है, और ज्ञान बल करकै सर्व स्वरूप है, और ब्रह्म कर कै सर्व स्वरूप हो जाता है। ऐसा वो ज्ञाता है। शुद्ध अकाय इत्यादि विशेषणों कर कै युक्त जो ब्रह्म है, तिस कूं वह प्राप्त होता है।

'न तस्य प्रतिमा' इति मन्त्र से ले कर कै **'सपर्य्यगात्'** इस मन्त्र पर्यन्त तीनों मन्त्रों कर कै मूर्ति का खण्डन होना साबुत नहि हो सक्ता है, क्योंकि मूर्ति पर प्रतिमा शब्द नहीं है, क्योंकि प्रतिमा शब्द सादृश्य पर है।

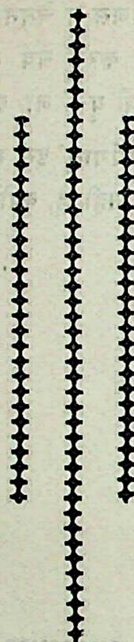
दस्तखत—

"कमल नेत्र" (कमल नयन)



सोलहवां शास्त्रार्थ

स्थान : फ़ीरोजाबाद, जिला आगरा (उ० प्र०)



विषय :	**क्या जैन मत की तालीम मनुष्यमात्र के लिए हितकर है ?**
दिनांक :	**१६ से २० मार्च सन् १८८८ ई०**
आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता :	**१. सर्व श्री पं० देवदत्त जी शर्मा** **२. पं० भीमसेन जी शर्मा**
जैन समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता :	**१. पं० छेदालाल जी** **२. पं० पन्ना लाल जी**
आर्य समाज के मंत्री :	**गंगा राम जी वर्मा**
जैन समाज के मंत्री :	**छेदा लाल जी (जैन धर्मिणः)**
अन्य उपस्थित सज्जन जैनियों की ओर से :	**ला० मञ्जूलाल साहब. ला० प्यारे लाल साहब, सेठ फूल चन्द्र जी, आदि ।**
अन्य उपस्थित सज्जन आर्यों की ओर से :	**श्रीमान राय साहब सोहनलाल जी, पं० ठाकुर प्रसाद शास्त्री, पं० सीताराम चतुर्वेदी, (मैनपुरी) पं० गंगाधर जी, श्रीमान चतुर्वेदी कमलापति जी इत्यादि ।**

शास्त्रार्थ से पहले

जिला आगरा में एक फ़ीरोज़ाबाद नामक कसबा है। वहां जैनियों का तीर्थ है। प्रतिवर्ष चैत्र में मेला होता है। यह प्रसिद्ध है कि जिन नगरों में जैनी आदि की पोपलीला के मुख्यस्थान हैं, वहां आर्यसमाज की उन्नति वा स्थित होना कठिन होता है। इसी के अनुसार नगर फ़ीरोज़ाबाद में भी आर्यसमाज का आरम्भ होना जैनियों को महा अनिष्टकारी हुआ। उन्होंने समाज तोड़ने के कई एक उपाय किए। दो एक वार समाज में अपना आदमी भेजा कि हम मतविषय में शास्त्रार्थ करना चाहते हैं। समाज से पत्र द्वारा उत्तर दिया गया कि हम भी शास्त्रार्थ करने को कटिवद्ध हैं।

इस प्रकार की बातें आर्यसमाज फ़ीरोज़ाबाद और उस नगर के जैनियों में हो रही थी कि इतने में सनातन आर्य-धर्मोपदेशक **श्री स्वामी भास्करानन्द सरस्वतीजी सं० १९४४** फाल्गुन मास में इस फ़ीरोज़ाबाद नगर में पधारे और सनातन धर्म की वृद्धि पर व्याख्यान दिया। इस पर इसी उक्त नगर के रईस जैनधर्मावलम्वी **सेठ फूलचन्द जी** ने कहा कि मतविषय पर वार्त्ता होनी चाहिए। जिसका मत ठीक और सनातन निकले, द्वितीय पक्षवाला उसी का ग्रहण करे। स्वामी भास्करानन्दजी के साथ सेठ फूलचन्दजी ने और उक्त स्वामीजी ने परस्पर प्रतिज्ञा की कि जिसका पक्ष गिर जावे, वह द्वितीय पक्ष को स्वीकार करे। तव स्वामी भास्करानन्दजी ने कहा कि तुम्हारी ओर से जो कोई शास्त्रार्थ करने वाला हो, उसको बुलाओं। इस पर सेठ फूलचन्दजी ने पं० पन्नालाल जैनधर्मी को बुलाया। वे किसी विशेष कारण से न आए। तव यह वात निश्चित हुई कि **प्रथम चैत्रसुदि ३ से ८ तक** मतविषय पर आर्य और जैनियों का शास्त्रार्थ हो।

इस बात का लेख भी समाचारपत्रों में छप गया था और यह बात सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में प्रकट हो गई। दोनों पक्षवालों ने अपने २ पक्ष के पण्डितों को बुलाना प्रारम्भ किया। आर्य्यों की ओर से शास्त्रार्थ करनेवाले पण्डित चैत्रसुदि द्वितीया तक आगए, परन्तु जैनपक्ष के पण्डित द्वितीया तक नहीं आये। आर्य्यों की ओर से द्वितीया के दिन जब पण्डित लोग आ गए, तब सर्वसम्मति के अनुसार **पं० गंगाधरजी उपदेशक** आर्य समाज जसवन्तनगर ने सेठ फूलचन्दजी से जाकर कहा कि शास्त्रार्थ कल तृतीया से आरम्भ होना चाहिये, जैसा कि सर्वत्र प्रसिद्ध हो चुका है। इसलिए (पहिले से) आज ही शास्त्रार्थ के नियम और विषय नियत हो जाने चाहिये, जिससे शास्त्रार्थ होते समय कालात्यय न हो। इस पर उक्त सेठजी ने उत्तर दिया कि हमारे पण्डित लोग तृतीया को आजावेंगे, उसीसमय सब नियमादि हो जावेंगे।

जब जैन पण्डित द्वितीया की रात को आ गए, तो उसी समय में समाज के मंत्री और उक्त पं० गंगाधरजी ने फिर जाकर सेठजी से कहा कि शास्त्रार्थ के नियम बंध जाने चाहिए तथा प्रबन्धकर्त्ता और सभापति भी नियत हो जाने चाहिए, जिससे शास्त्रार्थ के समय में किसी प्रकार की गड़बड़ न हो। तब उन्होंने यह कहा कि ये सब बातें सभा में एकत्रित होकर कर लेवेंगे। इस पर बहुत कहने सुनने से दोनों पक्ष की ओर से दो २ प्रबन्धकर्त्ता नियत किए गए। आर्यों को ओर से सभापति आर्य्य समाज फ़ीरोज़ाबाद श्रीमान् **चतुर्वेदी कमलापतिजी और पं० गंगाधरजी** और जैनियों की ओर से **लाला मञ्जूलाल साहब** तथा **लाला प्यारेलाल साहब** नियत हुए। फिर एक पंचम पुरुष सरपंच सभापति के लिए कहा गया। वह पुरुष सरकारी ओहदेदार वकील आदि हो, वा शहर का कोई प्रतिष्ठित रईस हो वा कोई जमीदार हो, चाहे किसी मज़हब का क्यों न हो, उसको दोनों पक्षवाले निष्पक्षपाती धर्मात्मा समझ के स्वीकार करें। वह सभापति शास्त्रार्थ के नियम और विषयों पर दोनों पक्षों के शास्त्रार्थकर्त्ताओं के हस्ताक्षर करा अपने पास रक्खे। जो कोई नियम वा विषय से चलायमान हो उसको यथोचित रोके।

इस पर सेठ फूलचन्दजी ने कहा कि सभापति और नियमादि सब प्रातःकाल नियत कर लिए जावेंगे, और शास्त्रार्थ का समय भी उसी समय नियत कर दिया जाएगा। मंत्री और पं० गंगाधरजी सबको धन्यवाद देकर अपने स्थान को चले आये और आए हुए आर्य पण्डितजनों से निवेदन किया कि उन्होंने प्रातःकाल शास्त्रार्थ के नियम, पंच और विय स्थिर करने के लिए कहा है। सब की सम्मति हुई है कि प्रातःकाल ही सही। तब प्रातःकाल सेठजी साहब ने रात्रि की बातों पर कुछ ध्यान और प्रबन्ध न किया अर्थात् ऐसा भुला दिया कि जाने स्वप्न हुआ था। प्रातःकाल और का और ही ठाठ रच मारा कि एक पत्र संस्कृत का (जिसमें किसी के हस्ताक्षर भी न थे) लिख भेजा। इस पर मन्त्री ने एक पत्र उर्दू ज़बान में लिखा कि आप कृपाकर यह लिख भेजिए कि यह पत्र आपका ही है। इस पर सेठजी साहब ने अनुयायी पण्डित आदि लाल पीले हुए और कहा कि हमको म्लेच्छभाषा क्यों लिख भेजी। इस पर मंत्री और पं० गंगाधरजी त्रिपाठी पुनः सेठजी के पास गए और कहा कि आपने पंचम प्रबन्धकर्त्ता पुरुष और नियमों का कुछ प्रबन्ध अभी तक न किया। तब उन्होंने उस पत्र पर पं० छेदालाल के हस्ताक्षर करा दिए और उत्तर दिया कि नियम और पंचम मनुष्य का सब निश्चय पत्रों से हो जायगा, आप पत्र का उत्तर दीजिये।

मंत्री ने फिर भी निवेदन किया कि ऐसी बातों के निश्चयार्थ पत्रों की लिखा पढ़ी करने की आवश्यकता नहीं, किन्तु दोनों पक्ष के भद्रपुरुष मिलकर मकान, नियम और जिन जिन विषयों पर शास्त्रार्थ हो, निश्चय कर लेवें। उन्होंने मेरे कथन को सुना अनसुना करके यही जवाब दिया कि आप पत्रका उत्तर दीजिए। मन्त्री ने कहा बहुत अच्छा, परन्तु यह काम इस रीति से कदापि अच्छा न होगा। मंत्री ने अपनी पण्डितमण्डली को वह उक्त संस्कृत का पत्र हस्ताक्षर कराया हुआ उत्तर देने को दिया। इस पत्र के उत्तर की शीघ्रता करने में उनका अभिप्राय यह था कि हमने जो अपनी ओर से दाम देकर पण्डितों को भाड़े का टट्टू बनाया है, आर्य्य लोग इस संस्कृत के पत्र का उत्तर नहीं दे सकते हैं, इसलिए मिलकर प्रबन्ध करना चाहते हैं और जैनियों का मुख्य भीतरी आशय यह था कि इस प्रकार पत्र भेजने करने में ही कुछ समय व्यतीत हो, जब तब कोई और कारण खडा हो जाएगा तो शास्त्रार्थ होना बचा रहे और आर्य्यों का अभिप्राय था कि साधारण बातों के लिए पत्रव्यवहार से कालक्षेप न हो और मुख्य शास्त्रार्थ का आरम्भ शीघ्र होवे।

जैनियों का प्रथम संस्कृत पत्र—

(श्रीः)

श्रीमदार्य्यसमाजसभ्यैः फीरोजाबादनगरस्थजैनधर्मिकृतनत्युत्तरमदोऽवगन्तव्यम्। शराङ्कध्यङ्केन्दुब्दीयप्रथमचैत्र-शुक्लपक्षगुर्वन्विततृतीयायां शास्त्रार्थो भविष्यतीति तत्र २ भवद्भिरणितम्मुद्रितं च। अतस्स पाङ्क्तघण्टाध्वननतः पायोऽधिघण्टाध्वननावध्यद्यैव कर्त्तव्यः' परन्तु शास्त्रार्थपदशक्यस्य शास्त्रीयवाक्यतात्पर्य्यविबोधनिर्णायकतया शास्त्राणां संस्कृतरूपत्वेन च परस्परसंस्कृतालापपूर्वक एव शास्त्रार्थः कर्त्तव्य इत्यस्मदीयेप्सा शास्त्रार्थनन्तरं शास्त्रार्थविषयः संस्कृते भाषायां च जगद्वैदित्यन्नेयः। शास्त्रार्थापेक्षितजयाजयनिर्णेतृमध्यस्थविवेचनं समक्षतः परस्पराभिलाषातो वानुष्ठेयः। एतावतैवालमल्पाङ्कूनतोऽप्यभिप्रायावगन्तृज्ञेषु।

संवत् १९४५ भवत्स्नेहिनः
प्रथम चैत्र शुक्ल ३ फीरोजाबादस्था जैनधर्मावलम्बिनः
गुरुवारे. नियतसमयात्पूर्वं पत्रोत्तराभिलाषिणश्च
ह० छेदालाल जैन.

भाषार्थः

श्रीमान् आर्य्यसमाज के सभ्यों को फ़ीरोज़ाबाद नगरस्थ जैनधर्मवालों के लिए नमस्कार के पश्चात् यह जानना चाहिए कि सं० १९४५ के प्रथम चैत्र शुक्लपक्ष तृतीया बृहस्पतिवार को शास्त्रार्थ होगा, इस प्रकार उन २ शहर आदि

में आप लोगों ने कहा और छपाया है, इससे यह शास्त्रार्थ १० बजे से ४ बजे तक आज ही कर लेना चाहिए, परन्तु शास्त्रार्थ पद का जो अभिप्राय है वह शास्त्रसम्बन्धी वाक्यों से निकले तात्पर्य्य के बोध का निश्चय कराने वाला होने और शास्त्रों में संस्कृतरूप होने से आपस में संस्कृतभाषणपूर्वक शास्त्रार्थ करना चाहिए, यह हमारी इच्छा है। शास्त्रार्थ के पश्चात् उसका विषय संस्कृत में और भाषा में अनुवाद कराके जगत् को विदित करना चाहिए। जय पराजय का निश्चय करने-वाला एक मध्यस्थ विद्वान् शास्त्रार्थ में अपेक्षित है। उसका विवेचन सामने मिलकर वा परस्पर की इच्छा से होना चाहिए। इस थोड़े ही लेख से भी अभिप्राय जानने वालों में उत्तम ज्ञाताओं में समाप्ति है।

समीक्षा :—

सब महाशयों को ध्यान रखना चाहिए कि पूर्वोक्त जैनधर्मियों का संस्कृतपत्र कैसा है। इसमें शब्द, अर्थ और सम्बन्ध की कहां २ अशुद्धि हैं, सो यह पत्र हमारे भ्रातृवर्गस्थ पं० जियालाल तथा पं० मिहिरचन्द्रजी की सहायता से लिखा हुआ है क्योंकि इसका पूर्ण अनुमान इससे हुआ कि जैनों के पं० छेदालालादि ने जो पत्र सभा में सबके समक्ष लिखे (जिसमें मिहिरचन्द्रादि की सहायता नहीं ले सके) हैं, उनमें इससे बहुत अधिक अशुद्धियां हैं। अर्थरूप अशुद्धियां तो उनमें भाषार्थ से ज्ञात हो जावेंगी। (शराब्ध्यंके द्वव्दीय) यहां 'अंकेन्द्व' ऐसा : चाहिए। अस्तु, छोटी २ बातों पर ध्यान-देकर बड़ी अशुद्धि देखिए—(मध्यस्थ विवेचनं··· वानुष्ठेय:) 'विवेचनं' नपुंसक लिग का विशेषण 'अनुष्ठेय:' पुंलिङ्ग के साथ किया है। संस्कृतज्ञ लोगों के सामने यह अशुद्धि छोटी नहीं है। इससे यह अनुमान होता है यदि धनादि के लोभ-वश होकर नास्तिक पक्ष की सहायता न करते तो पं० जियालालादि से ऐसी अशुद्धि होनी सम्भव न थी। ईश्वर-विमुखों को सहायता देने से इन पर अन्तर्यामी ईश्वर की अप्रसन्नता हुई, जिससे उनकी बुद्धि स्वस्थ न रही। आस्तिक जन अपने सब काम ईश्वर की सहायता से करते हैं।

उक्त संस्कृत पत्र के उत्तर में आर्य्यसमाज का संस्कृत पत्र—

॥ ओ३म् ॥

श्रीमज्जैनधर्मावलम्बिषु,

भवतां पत्रं समागतं, रात्रौ यन्निर्णीतं तस्मिन् विषये किमपि न लिखितम्। शास्त्रार्थप्रबन्धकर्त्तारः पञ्च सज्जनाः पूर्वं नियोजनीयाः। पश्चात्स्थानं निर्णेतव्यं यत्र शास्त्रार्थः स्यादिति। ततो यैर्नियमैः शास्त्रार्थः स्यात्तेऽपि निश्चेतव्याः। यत्र यत्र विषये शास्त्रार्थेन भवितव्यं सोऽपि लेख्य एव।

संवत् १०४५ हस्ताक्षराणि "गङ्गारामवर्म्मणः"
चैत्र शु० ३. फीरोजाबादस्थार्य्यसमाजामात्यस्य.

भावार्थः—

श्रीमान् जैनधर्मावलम्बि योग्य—पत्र आपका आया, रात को जो निश्चय हुआ था उस विषय में आपने कुछ नहीं लिखा। पहिले शास्त्रार्थ के प्रबन्धकर्त्ता पांच सज्जन पुरुष नियुक्त करने चाहिए। इसके पश्चात् जहां शास्त्रार्थ हो उस स्थान का निश्चय करना चाहिए। इसके अनन्तर जिन नियमों के अनुकूल शास्त्रार्थ हो उनका निश्चय करना योग्य है। जिस २ विषय में शास्त्रार्थ हो, वह भी लिखना चाहिए।

उपरोक्त पत्र के जाने पर जैनियों का द्वितीय पत्र जो संस्कृत में आया—

श्रीमदार्यमतानुयायिनः,

भवदीरितं पत्रमुपलब्धम्। शास्त्रार्थसमयः संस्कृत एव भविष्यतीति नियमः। मध्यस्थभवनप्रकारश्च पूर्वपत्र एव लिखितः मञ्जुलालप्यारेलालौ प्रबन्धकर्त्तारौ जैनपाठशालास्थानं च हस्ताक्षराणि कारयितुमागतेभ्यो गङ्गाराम-

वर्म्मस्प्रोऽर्त्राणि, विषयनिर्णयश्च शास्त्रार्थकाले भविष्यति, यतो वयं यूयञ्च न दूरस्थाः परन्तु समयनियममध्यस्था-नाँल्लिखितानामप्युत्तरं भवद्भिर्नालेखि। शास्त्रार्थलिखितसमयमतीत्य पत्रोत्तरप्रदाने किं कारणम्।

संवत् १०४५ | १२ बजे | ह० छेदालाल
प्र० चै० शु० ३ बृ० | दिनके | जैनधर्मिणः

भावार्थः—

श्रीमान् आर्य्यमत के अनुयायियो ! आपका भेजा पत्र मिला। शास्त्रार्थ का समय वही होगा जो हम पूर्व संस्कृत में लिख चुके हैं और मध्यस्थ होने का प्रकार भी पूर्व पत्र में लिख चुके हैं। हमारी ओर से गंजूलाल प्यारेलाल प्रबन्ध-कर्त्ता होंगे। शास्त्रार्थ का स्थान जैनपाठशाला होना चाहिए सो हस्ताक्षर कराने को आए गंगाराम वर्मा से कह दिया था। विषय का निर्णय शास्त्रार्थ होने के समय हो जायेगा क्योंकि हम और तुम दोनों दूर नहीं हैं परन्तु समय, नियम और मध्यस्थ विषयक उत्तर आपने नहीं लिखा। शास्त्रार्थ का समय जो १० बजे का लिखा था उसके पश्चात् उत्तर देने में क्या कारण है ?

इस पर आर्य्यसमाज की ओर से उत्तर—

॥ ओ३म् ॥

मायन्मारजित्कक्षान्तसदसद्वुदन्तालब्धगरिष्ठवरिष्ठाः !

तत्रभवतां पत्रमातुङ्गितम्। क्षतार्थनिहाः पूर्वमाविनियमेतरेतरोररीकृतान्तरं वादिप्रतिवादिभ्यां समसातजनने चोरीकर्त्तव्यः। जयाजयनिर्णेता कश्चिदपि भवितकुं नार्हतकि। कस्यचित्सार्वभौमसर्वपरीक्षकाधिगतयाथातथ्यार्थस्य पक्षद्वयकविवेचनसामर्थ्याधिष्ठितत्वाभावात्। वादिप्रतिवादिनोर्लेखनद्वारास्पष्टीकृतो विषयएव जयाजयसूचको भविष्यतीति मन्यध्वम्। यच्चोक्तं शास्त्रार्थकाल एव विषयो निर्णेय इति तन्न, कुतः ? सति कुड्ये चित्रं भवतीतिवत् पूर्वमेव विषयो निर्णेतव्यः। तच्चोल्लिखितं शास्त्रार्थसमयमतीत्योत्तरप्रदाने किं कारणमिति तत्त्वस्मा-भिरङ्गीकृतमन्तरेणात्ययनं वक्तुमशक्यम्।

प्र० चै० शु० ३ | ह०
सं० ४५, | गङ्गारामस्य

भावार्थ—

श्रीमान सहनशील सत्यासत्य को प्राप्त होने वाले महाजनों में श्रेष्ठ जैनधर्मावलम्बियों ! आपका यह पत्र आया, शास्त्रार्थ का समय पूर्व होने वाले नियम परस्पर स्वीकृत हो जाने के पश्चात् दोनों पक्ष वालों की सम्मति से स्वीकार करना चाहिए। जय पराजय का निश्चयकर्त्ता कोई निज मनुष्य नहीं हो सकता। कोई सब पृथिवी पर सर्वोपरि शास्त्री सत्यवक्ता पक्षपातरहित यथार्थभाव का ज्ञाता दोनों पक्ष का विवेचन करने में समर्थ अधिष्ठाता हो, वह मध्यस्थ हो सके सो सर्वगुणाकार पुरुष का मिलना प्रायः असम्भव होने से मध्यस्थ होना आधुनिक समय पर दुर्लभ है। इसलिए वादीप्रतिवादी के लेख द्वारा स्पष्ट किया हुआ विषय ही जय पराजय का सूचक हो जाएगा अर्थात् उस लेख से अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार दोनों पक्ष में बलावल समझ लेंगे और जो आपने कहा कि शास्त्रार्थ होते समय विषय का निश्चय कर लेंगे सो मेरी अल्प बुद्धि से ठीक नहीं क्योंकि जब तक भित्ति (दीवार) न बन जाये, उस पर चित्र-विचित्र चिह्न धरना बन नहीं सकता। इसी प्रकार पहले विषय का निश्चय कर लिया जाय तब उस पर शास्त्रार्थ आरम्भ हो सकता है और जो लिखा कि शास्त्रार्थ का समय हो जाने के बाद उत्तर देने में क्या कारण है ? सो जब केवल अपने पक्ष की सम्मति से तुम लोगों ने नियत किया और हम लोगों की उस पर कुछ सम्मति न हुई हो तो (इकतरफी डिगरी हुई) हमारा पत्रोत्तर देना काल व्यतीत कर हुआ, यह तुम्हारा कहना ठीक नहीं है।

इस पर जैनियों का तृतीय पत्र—

श्री मदार्यमतानुसारिणः

द्वितीयपत्रञ्ज् घण्टात्रयकालात्यय उपलब्धम्, भवद्भिर्जयाजयनिर्णेतृमध्य स्थासम्भवोऽभाणि, लेखद्वारा जयाजयस्पष्टतांऽगीकृता शास्त्रार्थसमयात्पूर्वंम्विषय निर्णयश्चापेक्ष्यते शास्त्रार्थस्थान समयसंस्कृतभाषाशास्त्रार्थविषये किञ्चदपि नाऽभाषि, यदि विषयनिर्णयोत्तरमेवशास्त्रार्थचिकीर्षा तर्हि समाचारपत्रेषु विषयनिर्णयमन्तरा मुद्रापर्णाङ्कविचार्य्याकारि, मध्यस्थासम्भवे शास्त्रार्थासम्भवः। लेखतः शास्त्रार्थस्य वादिप्रतिवादिनोर्विदेशस्यत्वेऽपि सम्भवेऽत्र तत्तत्समाजमन्त्र्यादीनां सङ्गमकृतेः किं प्रयोजनम्। तथापि यदि शास्त्रार्थचिकीर्षा तर्हि सप्तघण्टाध्वनिमारभ्य दशघण्टाध्वनिपर्य्यन्तं जैनपाठशालास्थान आगत्य कर्त्तव्यः, विषयोऽप्येतत्पत्रोत्तरे भवद्भिरेव लेख्यः, नोचेदलम्वृथा समयात्येन।

सं० १९४५	४	ह० छेदालाल
प्र० चै० शु० ३ बु०	बजे	जैनधर्मिणः

भावार्थ—

श्रीमान् आर्य्यमतानुयायियो! आपका दूसरा पत्र तीन घण्टे में मिला, आपने जय पराजय के निश्चयकर्त्ता मध्यस्थ का होना असम्भव कहा और लेख द्वारा जय पराजय स्पष्टता स्वीकार की और शास्त्रार्थ होने के पहले विषय का निर्णय चाहते हो। शास्त्रार्थ का स्थान, समय तथा संस्कृत वा भाषा में होने के विषय में कुछ नहीं कहा। जो विषय का निश्चय होने के पश्चात् ही शास्त्रार्थ करने की इच्छा है तो समाचार पत्रों में विषय का निर्णय किये बिना क्या विचार के छपाया था? (हमारा विचार है कि) मध्यस्थ का होना असम्भव है तो शास्त्रार्थ होना भी असम्भव, लेख द्वारा शास्त्रार्थ तो वादीप्रतिवादी के विदेशस्थ होने में भी हो जाना सम्भव है। फिर उस उस समाज के मन्त्री आदि के यहाँ एकत्र करने का क्या प्रयोजन था? तथापि यदि शास्त्रार्थ करने की इच्छा है तो ७ बजे से १० बजे तक जैन पाठशाला स्थान में आकर करना चाहिए। शास्त्रार्थ का विषय भी इस पत्र के उत्तर में आप ही लिखिए और यह न हो तो व्यर्थ समय न खोना चाहिए अर्थात् शास्त्रार्थ का नाम भी न लेना चाहिए।

नोट—

सब महाशयों को ध्यान देना चाहिए कि हमारे लेख में और इनके लेख में क्या भेद है? हमने लिखा था कि दोनों पक्ष की सम्मति से पहले नियम स्थिर हो जायें, फिर शास्त्रार्थ के समयादि का विचार किया जावे, सो नियमों के लिए तो कुछ उत्तर न दिया। इसका कारण एक तो यह है कि जैनी लोग उस पत्र के अभिप्राय को यथावत् समझे ही नहीं और कदाचित् कुछ समझे भी हों तो शास्त्रार्थ करने से डरते हैं और बखेड़ा करके पीछा छुड़ाना चाहते हैं। शास्त्रार्थ का विषय समाचार पत्रों में न छपाया तो उसका अभिप्राय यह कोई सिद्ध नहीं कर सकता कि बिना ही नियम और विषय के शास्त्रार्थ हो जाएगा। ऐसा हो तब तो बिना कारण के भी कार्य हो जाया करे। जब कोई कहे कि मैं अमुक समय भोजन बनाऊंगा तो उस पर ऐसा आक्षेप नहीं कर सकते कि भोजन बनाने की प्रतिज्ञा के समय यह क्यों नहीं कहा कि मैं आटे से भोजन बनाऊंगा। इस जैनियों के पत्र में कई अशुद्धि हैं, जैसे अभाषि अभाणि आदि के स्थान में प्रयुक्त हैं। (पूर्वंम्विषय) (किम्विचार्य) (दलम्वृथा) इत्यादि में परसवर्ण अनुस्वार को मकार लिखना सर्वथा अशुद्धि है। क्योंकि ओष्ठ्य वकार के परे परसवर्ण हो सकता है, दन्त्योष्ठ्य वकार के परे नहीं होता। इत्यादि अनेक-अनेक अशुद्धियां हैं।

इस पर आर्य्यसमाज की ओर से चतुर्थ उत्तर :—

॥ ओ३म् ॥

श्रमत्सोमन्तपतावलम्बिषु,

भावत्कपत्रमागतमालोक्यैवमुत्तरमाविष्क्रियते शास्त्रार्थस्थानसमयसंस्कृतभाषाविषयकमुत्तरं प्राकृतभाषानिर्मित-

नियमेष्वाविष्कृतमस्माभिः। समाचारपत्रेषु विषयनिर्णयमन्तरेणैव शास्त्रार्थो भवितुमशक्य इत्यत्र किं बाधकं मन्यते भवद्भिः शास्त्रार्थं सम्मुख एव स्यात्तस्य लेखनं तु सर्वसाधारणोपकारार्थं परिणामनिष्कर्षणार्थं च कर्तव्यमेव। समयश्च भवद्भिर्लिखित एव स्वीक्रियतेऽस्माभिरपि। यदि तत्रभवन्तो वास्तवेन शास्त्रार्थं चिकीर्षन्ति तर्हि मुहुर्मुहुः पत्रगमनागमनेन किमपि प्रयोजनं नास्ति, किन्त्वस्मल्लिखितशास्त्रार्थविषयान्प्राकृतभाषानिर्मित्तनियमांश्च स्वीकुर्वन्तु। यदि काचिद्विप्रतिपत्तिः स्यात्तदाभिमतविषयनियमांल्लिखित्वा प्रेरयन्तु। अद्य तु भवन्नियमितकाले शास्त्रार्थो भवितुमशक्यः। यतः कालादारम्य सायं प्रातर्वा श्वो भविता से लेख्यो भवद्भिर्यतः पूर्वं वयमपि जानीयामेति शम्

४॥ बजे ह० गङ्गारामस्य

भावार्थ—

श्रीमान् जैन धर्मियों के समीप निवेदन—आपका पत्र आया, उसका उत्तर दिया जाता है। शास्त्रार्थ का स्थान, समय और संस्कृत वा भाषा में होने के विषयक उत्तर भाषा में बनाये नियमों में है, सो आप के पास भेजे जाते हैं। समाचार-पत्रों में हम लोगों ने ऐसा कहां छपाया है कि विषय निश्चय किए बिना शास्त्रार्थ होगा। विषय का निश्चय हुए बिना शास्त्रार्थ होना अशक्य है, इसमें क्या आप कुछ बाधक समझते हो? शास्त्रार्थ सम्मुख ही होना चाहिए, उसका लिखा जाना सर्वसाधारण के उपकारार्थ और परिणाम निकालने के लिए है। आपने जो ७ बजे से १० बजे तक समय लिखा, उसको हम लोग भी स्वीकार करते हैं। यदि आप लोग वस्तुतः शास्त्रार्थ करना चाहते हो, तो बार-बार पत्रों के आने जाने से क्या प्रयोजन है? किन्तु हमारे लिखे शास्त्रार्थ के विषय और भाषा में बनाए नियमों को स्वीकार कीजिए यदि कुछ विरुद्ध समझो तो अपने अभिमत विषय और नियमों को लिखकर भेजो। आज तो आपके नियत किए समय में शास्त्रार्थ होना अशक्य है पर कल प्रातःकाल वा सायंकाल कब से कब तक होना चाहिए सो आप लिखिए जिससे हम लोग भी पहले से जान लें और उद्यत रहें।

उस उक्त पत्र के साथ शास्त्रार्थ के निम्नलिखित नियम और विषय जैनियों के पास भेजे गए थे :—

१. शास्त्रार्थ में पाँच पुरुष प्रबन्धकर्ता होने चाहिएं, दो-दो उभय पक्ष की ओर से रहें, जिनको अपने-अपने पक्ष वाले नियत करें - एक प्रबन्धकर्ता सभापति मध्यस्थ हो, जिसको दोनों पक्ष वाले सम्मति कर नियत करें।
२. शास्त्रार्थ किसी मध्यस्थ के स्थान में व सरकारी स्थान में होवे अथवा अन्यत्र जिसको उभय पक्ष स्वीकार करे।
३. शास्त्रार्थ में दोनों पक्ष के बराबर मनुष्य होवें, किन्तु सर्वसाधारण मनुष्य न आने पावें।
४. दोनों पक्ष वाले शास्त्रार्थ का विषय आरम्भ से पहले अपनी-अपनी ओर से लिख के एक-दूसरे के हस्ताक्षर कराकर सभापति के पास रखें।
५. सभा में एक बार में एक ही वादी या प्रतिवादी बोले, अन्य कोई किसी के बीच में न बोलने पावे।
६. प्रश्न के लिए जितना समय रहे, उससे चौगुना समय उत्तरदाता को मिले।
७. अपने-अपने पक्ष की ओर से अधिक से अधिक पाँच-पाँच मनुष्य शास्त्रार्थ के लिए नियत करें।
८. जो जो विषय शास्त्रार्थ के लिए नियत हो, उसके विरुद्ध पक्ष पर कुछ भी विषय बीच में न छेड़ा जावे।
९. यह शास्त्रार्थ अक्षर-अक्षर यथावत् तीन प्रतियों में लिखा जावे। दो प्रति दोनों पक्ष की ओर से और एक सभापति की ओर से लिखी जावे। उन सब प्रतियों पर प्रश्न वा उत्तरदाता के तथा सभापति के हस्ताक्षर बीच बीच होते जावें।

१०. शास्त्रार्थ दोनों पक्षों की सम्मत्यनुसार संस्कृत में ही हो। पर प्रश्न का उत्तर लिखाने के पश्चात् उसका आशय नागरी भाषा में अनुवाद कर सभा के सब मनुष्यों को सुना दिया जाया करे।

११. एक साथ में एक प्रश्न ही हो सकेगा, उस पर उत्तर प्रत्युत्तर पांच बार या दस बार से अधिक न होना चाहिए।

१२. संस्कृत की अशुद्धि शुद्धि पर कुछ विचार आ पड़े तो जिस शास्त्र के अनुसार निश्चय किया जावे, उसको प्रथम नियत कर लेवें।

१३. शास्त्रार्थ जैनधर्मियों की इच्छानुसार दिन में या रात्रि में हो, पर चार घण्टे बाद उठने पर ही किसी पक्ष का पराजय न समझा जावेगा, अर्थात् प्रतिदिन चार घण्टा से अधिक न होना चाहिए।

३४. उभय पक्ष के शास्त्रार्थकर्त्ता पण्डित लोग अपने-अपने मत को मानते अवश्य हों, अर्थात् अन्यमतावलम्बी पुरुष अन्य की ओर ने नियत न हो सकेगा।

१५. दोनों पक्षों वाले वादी प्रश्न या उत्तर करने के लिए १० मिनट तक परस्पर सम्मति कर सकेंगे।

१६. यदि कोई अपने पक्ष के वादी प्रतिवादी को बदलना चाहे तो सभापति की आज्ञा से बदल सकेगा। सभापति की आज्ञा विना सभा में कोई अन्य मनुष्य बीच में न बोल सकेगा।

शास्त्रार्थविषयः—

१. अनन्यकर्तृकायाः सृष्टेः कर्त्ता सनातन ईश्वरः कश्चिदस्ति न वा ?
२. जीवः कोऽस्ति, तस्य चेश्वरेण कः सम्बन्धः ?
३. चतुर्विंशतित्तीर्थङ्कराः केभूऽवन्, किं च तेषां सामर्थ्यम ? कियत्परिमाणानि च तच्छरीराणि ?
४. जीवरक्षा च क्वपर्य्यन्तं भवितुं शक्या ?
५. रथयात्रा काऽस्ति, किमर्थं च कर्त्तव्या ?
६. अतस्मिंस्तद्बुद्धिर्मिथ्याज्ञानं तत्वज्ञानं वेति ?

भावार्थ—

१. जिसका एक सर्वोपरि से भिन्न कर्ता नहीं हो सकता, ऐसी सृष्टि का कर्त्ता सनातन ईश्वर कोई है वा नहीं ?
२. जीव कौन है, और उसका ईश्वर के साथ क्या सम्बन्ध है ?
३. चौबीस तीर्थंकर कौन हुए, उनका क्या-क्या सामर्थ्य था, और कितने-कितने बड़े उनके शरीर थे ?
४. जीव रक्षा कहां तक हो सकती है ?
५. रथयात्रा क्या है और किस लिए करनी चाहिए ?
६. और को और समझना मिथ्या ज्ञान है, वा तत्त्वज्ञान ?

इस पर जैनियों का जो पत्र आया—

श्रीमदार्य्यमतानुयायिनः !

समक्षतो लेखनेन च प्रबन्धकर्त्तादिनिर्णयेऽपि यूयन्नायाताः शास्त्रार्थनियतसमयद्वयात्ययनञ्च कृतम्। इदानीं दशघण्टा ध्वनिता अतो यूयं शास्त्रार्थङ्कर्तुमसमर्था इत्यनुमितमित्यलम्।

संवत् १९४५	१०	ह० छेदालाल
प्र० चै० शु० ३ बु०	बजे	जैनधर्मिणः

भावार्थ—

श्रीमान् आर्य मतानुयायियो ! सामने और लिखने द्वारा भी प्रबन्धकर्ता आदि का निश्चय हो जाने पर भी तुम नहीं आये। शास्त्रार्थ के नियत दो समय भी टाल दिए, अब दस बज गए इससे तुम लोग शास्त्रार्थ करने में असमर्थ हो, यह अनुमान है।

नोट—

इससे पहले जो पत्र भेजा, उसके साथ शास्त्रार्थ के नियम और विषय लेकर मन्त्री और श्री चतुर्वेदी कमलापति जी, सभापति सेठ फूलचन्द जी के पास इस अभिप्राय से गए कि पत्रों द्वारा नियमादि शीघ्र निश्चय होने कठिन है और ऐसा ही झगड़ा रहा तो कल ता० १६ को भी शास्त्रार्थ न हो सकेगा, इसलिये सामने नियमों का निश्चय शीघ्र होकर कल से शास्त्रार्थ होने लगे। मंत्री ने सेठजी से कहा कि आप इन नियमों और विषयों को देख व सुनकर सम्मति कर लीजिए। इस पर भी उनके सहकारी लोगों ने यही उत्तर दिया कि सब बातों का निश्चय पत्र द्वारा कीजिए। इस पर मंत्री आदि ने बहुत कुछ कहा, पर उन्होंने सिवाय लवड़ धों-धों के प्रबन्ध की बात एक भी नहीं मानी। इसके पश्चात् मन्त्री आदि चले आए और नियम जो ले गए थे, उनको पत्र द्वारा भेजा। उसका उन्होंने कुछ उत्तर न दिया और एक पत्र (पूर्वोक्त) फिर लिख मारा, जिसका हमारे पत्र से कुछ सम्बन्ध नहीं था। हमने लिखा कुछ उन्होंने उत्तर और ही कुछ दिया, (**आम्रान् पृष्टः कोविदारानाचष्टे**)।

इस उक्त पत्र में लिखते हैं कि "प्रबन्धकर्त्तादि का निश्चय हो चुका तो तुम नहीं आये"। क्या हम लोग इनके नौकर हैं जो इनके बुलाने मात्र से इनके घर पर शास्त्रार्थ के लिए चले जाते और प्रबन्धकर्त्तादि का निश्चय कहां हो चुका था ? क्या मिथ्या लिखते लज्जा नहीं आई ? शास्त्रार्थ के मूल कारण नियमों पर तो अभी झगड़ा ही हो रहा है। बिना ही नियमों के शास्त्रार्थ का समय आपने मनमाना लिख भेजा। क्या तुम्हारा लिखा समय राजाज्ञा के तुल्य था. जिसको हम निर्विवाद मान लेते। (जो महाशय इस पर ध्यान देंगे उनको यथावत ज्ञात हो जाएगा कि जैन लोग बिना नियमों के शीघ्र हल्ला गुल्ला करके अपना पीछा छुड़ाना चाहते थे।

इसके पश्चात् इस उक्त पत्र का आर्यों की ओर से उत्तर दिया गया:—

श्रीमज्जैनमतानुयायिनः,

पूर्वमप्यस्माभिरलेखि नियमनिर्णयमन्तरा नैकान्ततस्तत्रभवन्तो वक्तुमर्हन्ति यन्नियतसमयद्वयमतिक्रान्तमिति। यदि नियमपत्रं स्वीकृत्य तत्र हस्ताक्षराणि कृत्वा ब्रूयुस्तदा तु प्रमाणीकृतं स्यात्। यदि भवन्तः शास्त्रार्थं कर्त्तुमिच्छन्ति तर्हि सद्यो नियमान् स्वीकृत्य हस्ताक्षराणि कृत्वा प्रेरयन्तु। वयं चेदानीमेव शास्त्रार्थं कर्त्तुं सन्नद्धाः। यदि नियमानन्तरेण कर्त्तुमिच्छन्ति तर्हि ज्ञायते न शास्त्रार्थं चिकीर्षन्तीति। अस्माभिश्च यत्पत्रं प्रेरितं तस्योत्तरं किमपि न दत्तं, तदिदानीं सद्यो दातव्यमिति।

हस्ताक्षराणि
गङ्गारामवर्म्मणः फ़ीरोज़ाबाद-
स्थार्यसमाजामात्यस्य,

सं० १९४५
प्र० चै० शु० ३.

भावार्थः—

पहिले भी हमने लिखा था (कि सबसे पहिले नियम स्थिर करना चाहिए तब समय नियत किया जावे) नियमों का निश्चय किए बिना एक अपनी ओर से आप नहीं कह सकते कि तुमने दो समय टाल दिए। ऐसे तो हम भी कह सकते हैं कि तुमने हमारे लिखे नियमों को टाला, कुछ उत्तर नहीं दिया, इससे तुम्हारा पराजय हुआ। यदि आप नियम-पत्रों को स्वीकार कर हस्ताक्षर करके भेज देते तो हमारे न आने का उह्लाना मान भी लिया जाता। यदि आप शास्त्रार्थ

करना वस्तुत: अन्त:करण से चाहते हैं, तो शीघ्र नियमों को स्वीकार करके हस्ताक्षर कर भेजिये और हम लोग इसी समय शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं। यदि आप नियमों के बिना ही हल्ला-गुल्ला किया चाहते हों, तो ज्ञात होता है कि शास्त्रार्थ करने की इच्छा भीतर से नहीं है। हम लोगों ने जो पत्र भेजा था, उसका उत्तर आपने कुछ नहीं दिया, सो उत्तर शीघ्र दीजिए।

नोट: —

यह उक्त पत्र जब भेजा गया, तब इस पर जैनियों ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उनकी ऐसी लीला देखकर सामाजिक पुरुषों ने बस्ती के भद्रपुरुषों को बुलाकर सेठजी के पास भेजा कि यदि आप लोगों को शास्त्रार्थ करना है तो नियम को स्वीकार कर लीजिए। प्रयोजन यह था कि हम लोग जो नियमपूर्वक शास्त्रार्थ करना चाहते हैं, उनको मध्यस्थ होकर देख लीजिए कि वे नियम दोनों पक्ष की ओर एक-सा सम्बन्ध रखते हैं वा हमारा कुछ स्वार्थ है। इस पर नागरिक मध्यस्थ लोगों ने हमारी उनकी बातें सुन के और नियमादि देखकर सेठ फूलचन्दजी और अन्य जैनियों के पास जाकर कहा कि आर्य्य लोग निष्पक्षपात होके नियमपूर्वक शास्त्रार्थ करना चाहते हैं, आप लोग स्वीकार क्यों नहीं करते ? इस पर जैन लोगों ने अनेक जगड्वाल की बातें कहीं। जिससे शास्त्रार्थ होने की कोई आशा न जान पड़ी और उन नागरिक भद्रजनों को विश्वास हो गया कि जैन लोग शास्त्रार्थ करने से हटते हैं।

ऐसा हाल देख के उन लोगों ने आर्य्यसमाज की उपस्थित सभा में आके स्वयमेव उच्चस्वर से कहा कि—"हमको ठीक निश्चय हो गया कि आर्य्यों के सामने जैन लोग शास्त्रार्थ नहीं कर सकते किन्तु टालाटूली करते हैं। हम सब के सामने लिख सकते हैं कि आर्यों का जय और जैनियों का पराजय हुआ।"

इस पर आर्य्यसमाज के लोगों ने उन सत्पुरुषों से एक पत्र लिखा के हस्ताक्षर करा लिए—वह पत्र यह है:—

"हम सत्य परमात्मा को जानकर कहते हैं कि मैं आर्यों की तरफ से जैनियों के पास गया। मैंने शास्त्रार्थ करने में जैनियों को इनकार पाया।

ह० लक्ष्मीचन्द्र गुप्त, ह० गुलजारीलाल, ह० रघुवरदयाल।

और जितने आर्य्यजन एकत्रित हुए थे, सब को विश्वास हो गया कि अब शास्त्रार्थ नहीं होगा, कल अपने २ घर चलेंगे। यह सब समाचार ता० १५ मार्च को हुआ। इसी रात्रि के १२ बजे तक समाप्त हुआ। सब लोग सो गए।

ता० १६ मार्च १८८८ ई० को प्रात:काल आर्य्य लोग नित्य कृत्य शौच सन्ध्यादि करके आए। तब तक शहर में हल्ला मच गया कि जैन लोग शास्त्रार्थ करने से हट गए। बहुतेरे लोगों ने तो जैन सेठजी से जा-जाकर कहा भी कि यह तो सहज में ही तुम पराजय करा बैठे। तब तो सेठजी को बड़ा विचार पड़ा। इधर आर्य्यसमाज की ओर से भी दो एक पुरुष गए और सेठजी से कहा कि अब भी शास्त्रार्थ करावें तो ठीक २ निश्चय कीजिए नहीं तो हमारे पंडित आज अपने २ स्थान को जावेंगे। इस पर सेठजी ने कहा कि हमारे अनुमतिकर्त्ता मंजुलाल, प्यारेलाल जी आजावें तब सलाह करके उत्तर देवें। पश्चात् सामाजिक जन चले आये।

इसके पश्चात् सेठजी ने अपना उपहास जान शहर के दो एक मध्यस्थ पुरुष समाज में भेजे और उन्होंने कहा कि जैनी लोग शास्त्रार्थ करना चाहते हैं और विशेष कर मध्यस्थ नागरिक लोगों की सम्मति हुई कि जैनियों की ओर से सेठ फूलचन्दजी और आर्यों की ओर से पं० भीमसेनजी शर्मा दोनों महाशय जैनपाठशाला में बैठकर नियमों का निश्चय कर लेवें और उनको दोनों पक्ष वाले स्वीकार करें।

जैन लोगों ने भी यह स्वीकार कर लिया। सब की सम्मति से पं० भीमसेन शर्मा और चतुर्वेदी कमलापतिजी सभापति जैन पाठशाला में गए और सेठ फूलचन्दजी वहां इसीलिए जाकर बैठे थे। वहां पहुंच कर दोनों की सम्मति से विशेष कर सेठ फूलचन्दजी की सम्मति से नियम जो पहिले लिखे हुए थे उन्हीं को कांट-छांट के ठीक किया और यह

ठहरा कि इन नियमों की शुद्ध प्रति करा ली जावे। सभा के आरम्भ में पांचों प्रवन्धकर्त्ताओं के हस्ताक्षर भी हो जावें।

इस प्रकार बातें चीतें होते २ दस बज गए थे और बारह बजे से चार बजे तक शास्त्रार्थ ठहरा था। इसलिए उसी समय नकल होकर हस्ताक्षर नहीं हो सकते थे और शास्त्रार्थकर्त्ताओं को भोजन भी करना था। पश्चात् उन नियमों की शुद्ध नकल कराई गई और सब ने भोजन किया, तब तक शास्त्रार्थ का समय आ गया।

मनुष्यों को शास्त्रार्थ में जाने के लिए टिकट बँट गए थे। टिकट सेठजी की ओर से बांटे गए थे। उन नियमों को लेकर ठीक बारह बजे दिन को आर्य्यलोग जैनपाठशाला में पहुंचे और जैन लोग भी आए। कोतवाल साहब कितने ही यमदूतों के साथ प्रवन्धार्थ आये। जब सब लोग यथावस्थित बैठ गए, तब यह प्रस्ताव आर्य्यों की ओर से हुआ कि जो नियम पं० भीमसेन शर्मा और सेठ फूलचन्दजी ने नियत किए हैं वे सभा में सुना दिए जावें। तब इन नियमों के अनुसार कार्य होवे। इस पर सभा की आज्ञा हुई कि नियम सुना दिये जावें।

वे नियम इस प्रकार हैं :—

१. सभाप्रबन्धक के लिए पांच पुरुष प्रबन्धकर्त्ता नियत हुए। आर्य्यों की ओर से चौबे कमलापतिजी और पं० गङ्गाधर त्रिपाठी जी, जैनों की ओर से लाला मंजूलालजी और लाला प्यारेलालजी और उभय पक्ष की ओर से एक चौबे ज्वालाप्रसाद जी सभापति। इन पांचों महाशयों को निम्नलिखित नियमानुसार सभा का प्रबन्ध करना होगा।

२. सभा में वे महाशय जायेंगे कि जिनके पास टिकट होगा, पर वे सभास्थ पुरुष दो सौ से अधिक न होंगे।

३. प्रश्नोत्तर दोनों ओर से बराबर ही होने चाहियें। प्रश्न के लिए पांच मिनट और उत्तर देने के लिए २० मिनट समय नियत किया है और जब तक एक प्रश्न पर पूरी वार्त्ता न हो जाय तब तक दूसरा विषय न छेड़ा जाय।

४. उभयपक्ष की ओर से दो दो पण्डित शास्त्रार्थ में उपस्थित होकर वार्त्ता करें, अर्थात् आर्य्यों की ओर से पण्डित देवदत्तजी और पण्डित भीमसेनजी और जैनियों की ओर से पण्डित छेदालालजी और पण्डित पन्नालालजी। इनसे भिन्न कोई न बोल सकेगा।

५. यह शास्त्रार्थ अक्षर २ यथावत् तीन प्रतियों में लिखा जाएगा। दो प्रति उभयपक्ष की ओर से, तीसरी सभापति की ओर से। और इन तीनों प्रतियों पर उभयपक्ष के पण्डितों और सभापति के हस्ताक्षर होने चाहिए।

६. शास्त्रार्थ दोनों पक्षों की सम्मत्यनुसार संस्कृत ही में होगा परन्तु उसी जगह संस्कृत का अनुवाद करके नागरी भाषा में सबको सुना देना चाहिए।

७. शब्द की शुद्धाऽशुद्धि पर कुछ विशेष वार्त्ता वा विचार न किया जाएगा। सज्जन लोग छप जाने पर अपने आप ही जान लेंगे।

८. उभयपक्ष के शास्त्रार्थकर्त्ता अपने २ ही मत के मानने वाले हों, अर्थात् अन्य मतावलम्बी पुरुष अन्य की ओर से न बोलेंगे।

९. उभयपक्ष वाले अपने २ वर्ग में १० मिनट से अधिक सम्मति न कर सकेंगे।

१०. शास्त्रार्थ जैनियों की इच्छानुसार दिन में वा रात्रि में हो, पर चार घण्टे से अधिक प्रतिदिन न होगा। समय की पूर्ति पर उठने में जयाजय न समझना चाहिए।

११. ता० २० मार्च को शास्त्रार्थ बन्द रहेगा। तथापि साहब कलेक्टर बहादुर आज्ञा दें तो हो सकेगा।

ये सब नियम सुनाए गए। इस पर जैन लोगों ने अनेक शंका पैदा की और कहा कि ये नियम हमारे साथ नहीं नियत हुए। इस प्रकार परस्पर बहुत से झगड़े होते २ छठे नियम पर अधिक विवाद हुआ। इसका कारण यह था कि आर्य लोग कहते थे शास्त्रार्थ संस्कृत में हो और जैन लोग हिन्दी भाषा में करने का हठ करते थे। आर्य लोग संस्कृत में होने पर इसलिए बल देते थे कि जैन लोगों ने प्रथम ही पत्र में संस्कृत में होने की प्रतिज्ञा की थी। उस समय जैनों ने समझा था कि हम अपनी ओर से पं० मिहिरचन्द्र और जियालाल (जिनको कुछ धन देकर लाये थे) से शास्त्रार्थ करावेंगे। वस्तुतः जैनियों में कुछ भी संस्कृत विद्या का बल नहीं था परन्तु उनमें (निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते) जैसे वृक्ष-रहित देश में एरण्ड का वृक्ष भी बड़ा मालूम होता है, वैसे छेदालाल, पन्नालाल साधारण विद्यार्थियों के तुल्य कुछ २ संस्कृत जानते थे, सो सेठ फूलचन्दजी ने भी इनके ऊपर शास्त्रार्थ का आरम्भ नहीं किया था किन्तु पण्डित मिहिरचन्द्र और जियालाल (भाड़े के टट्टुओं) के भरोसे शास्त्रार्थ का बल बांधा था और इसी बल से संस्कृत में करने की प्रतिज्ञा लिखाई थी। पर जब नियम स्थिर किए गए, तब यह निश्चय हो गया कि अन्य पक्ष का पण्डित अन्य की ओर से मुख़्त्यार बनके शास्त्रार्थ न कर सकेगा अर्थात् जो-जो पण्डित जिस-जिस की ओर से नियत हो, वह उस मत को यथावत् मानता हो। इस नियम से भाड़े के पण्डित तो निकल गए। जब जैनियों का भाड़े का बल टूट गया, तब संस्कृत में शास्त्रार्थ करने से इन्कार करते थे और ऊपर से प्रसिद्ध करते थे कि सब लोग कुछ नहीं समझेंगे, इससे भाषा में होवे। इसका उत्तर आर्य लोग देते थे कि संस्कृत की भाषा करके सभा में समझा दी जाया करेगी और यह भी बल देते थे कि तुम लोगों ने प्रथम प्रतिज्ञा की थी, इसलिए संस्कृत में ही होना चाहिए।

इस प्रकार नियमों पर झगड़ा होते होते जैनियों ने एक मध्यस्थ का झगड़ा छेड़ दिया। इस पर दोनों ओर से बहुत विवाद होता रहा। जैनियों की ओर से पं० छेदालाल ने कहा कि स्वामी विशुद्धानन्दजी, श्रीधरजी तथा जो-जो पण्डित आर्य्यसमाजी और जैनियों के मत में नहीं, उनमें से चाहे जो पण्डित मध्यस्थ कर लिए जावें। जो शास्त्रार्थ लिखा-पढ़ी द्वारा हो सो उनके पास भेज दिया जावे, जिसके पक्ष को वे अच्छा बतलावें, उसका पक्ष ठीक समझा जावे। आर्य्यों की ओर से पं० भीमसेन शर्मा ने कहा कि प्रथम ऐसा पुरुष मिलना ही दुर्लभ है कि जो सर्वथा निष्पक्ष और निर्लोभ होकर सत्य कहे। बहुधा पण्डित लोग थोड़े २ धन के लोभ से ईसाइयों तक को अपने मत के खण्डनविषयक पुस्तक बना देते हैं, (जैसे पं० मिहिरचन्द्रादि यद्यपि जैनमत को मानते नहीं तथापि धनलोभ से नास्तिकों की ओर से वेद का खण्डन करने आए हैं), तो किसका विश्वास किया जावे? और कदाचित् कोई निष्पक्ष पुरुष मिल भी जावे और धर्मपूर्वक किसी एक पक्ष का पराजय कह देवे, तो क्या उस समुदाय के लोग सब उस पक्ष को छोड़ देवेंगे? मेरी समझ में जैन पक्ष को पराजित कहें तो भी न मानेंगे। अर्थात् इस मध्यस्थ के झगड़े से यही प्रयोजन होगा कि हजार पांचसौ रुपये खर्च करके अपने पक्ष के विजय का डंका पण्डित रूप बाजीगरों से बजवा देंगे।

इस पर बहुत काल तक विवाद होता रहा और शास्त्रार्थ का आरम्भ न हुआ। आर्य लोग कहते थे कि पहले नियम भले ही मत मानो किन्तु अब पंचों की सम्मति से और नए नियम बना लिए जावें तथा मध्यस्थ कोई नहीं करना चाहिए तथा बिना नियमों के हम शास्त्रार्थ नहीं करेंगे। जैन लोगों का कथन था कि हम नियम एक भी न मानेंगे और मध्यस्थ कोई अवश्य होवे। ऐसे होते २।। घण्टे बीत गए। सभा के सब लोग व्याकुल हो गए और मालूम हुआ कि सभा उठना चाहती है। तब कोतवाल साहब ने कहा कि आज जिस पक्ष के लोग, चाहे किसी कारण से, शास्त्रार्थ न करेंगे, उन्हीं का पराजय समझा जाएगा। यद्यपि आर्य्यसामाजिक लोगों का विचार नहीं था कि बिना नियमों के उट-पंटाग शास्त्रार्थ किया जावे, (अनुमान से ज्ञात होता है कि जैनी लोगों ने यह सम्मति करली थी कि आर्य लोग बिना नियमों के शास्त्रार्थ नहीं करेंगे। इसलिए हम नियमों को तोड़ देवें और कह देवेंगे कि आर्य्य लोगों ने शास्त्रार्थ नहीं किया, इससे उनका पराजय हो गया), तो भी अनिष्ठ परिणाम देखकर विचार किया कि हम अब बिना ही नियमों के शास्त्रार्थ करेंगे, परन्तु कोतवाल साहब ने उर्दू में दोनों पक्ष के शास्त्रार्थकर्त्ता पण्डितों के नाम लिख लिए थे। इसके पश्चात् दोनों पक्ष वालों का विचार हुआ कि शास्त्रार्थ होना चाहिए। तब (अहमहमिका) का झगड़ा हुआ कि पहिले कौन प्रश्न करे। सभा सम्मति से यह निश्चय हो गया कि दोनों पक्ष वाले एक साथ ही अपना २ प्रश्न लिख के अपने २ प्रतिपक्षियों को देवें। इसके अनुसार शास्त्रार्थ का प्रारम्भ हुआ—

शास्त्रार्थ प्रारम्भ

(प्रथम दिन शुक्रवार, ता० १६ मार्च सन् १८८८ ई०)

प्रथमं प्रश्न पत्र जैनियों का :—

भोविद्वज्जनवर्य्याः जगद्वृत्तिपदार्थानां प्रमेयत्वं सर्वसाधारणं। प्रमेयसिद्धेः प्रमाणाधीनत्वेन । प्रथमं प्रमाण-निर्णयोऽपेक्षितः अतः तत्स्वरूपं किं कति च भेदाः कश्च तद्विषयः किञ्च तत्फलं तत्प्रामाण्यं स्वतः परतो वेत्य-स्माकम्प्रश्नः।

ह० छेदालालजैनधर्मिणः ह० पन्नालालजैनमतानुयायिनः।

भाषानुवाद—

भो विद्वानों में श्रेष्ठजनो ! जगत् में वर्त्तमान पदार्थों का प्रमेय होना सर्वसाधारण, (मिहिरचन्द्रकृत भाषानुवाद— "पदार्थों को प्रमेय मानते हैं" ठीक नही है क्योंकि ज्ञान विषयक कोई क्रिया संस्कृत में नहीं है। पदार्थ शब्द पष्ठयन्त है, उसको द्वितीयान्त करना ठीक नहीं, केवल अस्ति सामान्य क्रिया का अध्याहार हो सकता है।) और उस प्रमेय की सिद्धि प्रमाण के आधीन होने से पहले प्रमाण का निश्चय अपेक्षित है, इसलिए उसका स्वरूप क्या है, उसके भेद कितने हैं, उसको विषय क्या है और उस प्रमाण का फल क्या हैं, उसका स्वतः प्रामाण्य वा परतः प्रामाण्य क्या है ? यह हमारा प्रश्न है।

इसके साथ ही आर्यों की ओर से प्रथम विचारणीय प्रश्न किए गए—

प्रथम प्रश्न पत्र आर्यों का—

सुखमार्गान्विषणार्थं सर्वस्य प्राणभृतः प्रवृत्तिस्तत्प्राप्तिर्जैनसम्प्रदायात्कथं सम्भवति। जिनशब्दस्य कः पदार्थो जैनशब्दस्य चानयोश्च कः सम्बन्धः। जिनशब्दवाच्यो यः कश्चिदभिमतोऽस्ति स नित्य आहोस्विदनित्यः। जिनजैनपदार्थ-योर्लक्षणं स्वरूपं च वक्तव्यमिति। तत्पूजनं सफलं विपरीतं वा, यदि सफलं तर्हि किंफलकम् ?

ह० भीमसेन शर्म्मणः ह० देवदत्तशर्म्मणः

भाषानुवाद—

सुख का मार्ग खोजने के लिए सब प्राणी प्रवृत्त हो रहे हैं, उस सुख के मार्ग की प्राप्ति जैन सम्प्रदाय से कैसे हो सकती है ? जिन और जैन शब्द से किस वस्तु का ग्रहण होता है अर्थात् जिन, जैन का वाच्यार्थ क्या है ? और जिन तथा जैन का परस्पर (पितापुत्रादि) क्या सम्बन्ध हैं ? जिन शब्दवाच्य जो कोई पदार्थ माना है वह नित्य है वा अनित्य ? जिन व जैन इन दोनों पदों और इनके वाच्य अर्थों के लक्षण और स्वरूप कहो। उस जिन का पूजन सफल हैं वा निष्फल ? यदि सफल है, तो उसका क्या फल है ?

विशेष—

यह पत्र लिखकर जैनियों को दिया गया और इससे पहला जैनियों का पत्र आर्यों के पास आया। सब महाशयों को विचारना चाहिये कि आर्यों के पत्र का जो उत्तर जैनियों ने दिया है, वह आर्यों के प्रश्न से क्या सम्बन्ध रखता है ? और साथ ही इस पर भी ध्यान रखें कि जैनियों के पत्र का जो आर्यों ने उत्तर दिया है, वह प्रश्न से कितना सम्बन्ध रखता है—

आर्यों के प्रथम पत्र के उत्तर में जैनियों का दूसरा पत्र :—

मानाधीना मेयसिद्धिरिति न्यायेन: युष्मदुक्तपदार्थानां प्रमेयरूपत्वात्प्रथमं आवश्यक:। तन्निर्णयाभावे मेयानां निर्णयो दुर्घट:, अतएव ममोक्तपूर्वपक्षस्य आदौ परामर्शो युक्तः।

ह० छेदालाल ह० पन्नालाल

भाषानुवाद

प्रमेय की सिद्धि प्रमाण के आधीन है। इस न्याय से तुम्हारे कहे (जिनजैनादि) पदार्थों के प्रमेयरूप होने से पहले प्रमाण का निर्णय होना आवश्यक है, क्योंकि प्रमाण निश्चय के बिना प्रमेय का निश्चय होना दुर्घट है, इससे हमारे कहे पूर्वपक्ष का पहले विचार करना चाहिए।

विशेष—इस पत्र में (ममोक्तपूर्वपक्षस्य) यह बड़ी भारी अशुद्धि है। विद्वानों को इनका पाण्डित्य अच्छे प्रकार ज्ञात हो जाएगा। इन पहले दो पत्रों में बड़ी-बड़ी अशुद्धि कम है क्योंकि यह संस्कृत पण्डितों (मिहिरचन्द्रादि) ने पहले ही लिखा दिया था कि तुम यह प्रश्न करना, सो छेदालाल जैन ने सभा के बीच वह पर्चा निकाल के नकल कर दिया था और कुछ भूले तब मिहिरचन्द्र को पूछने लगे। तब आर्यों ने कहा कि वह शास्त्रार्थ आर्यो और जैनियों का है। यदि अन्य कोई पण्डित जैनियों को सहायता देवे तो उचित होगा कि प्रथम यज्ञोपवीत उतार के जैनी बन जावे।

इस पर मिहिरचन्द्र चिढ़ कर बोले कि मैं जैनियों की ओर नहीं, किन्तु दोनों को पतित समझता हूं। परन्तु यह विचार न किया कि धर्मशास्त्र के अनुसार (संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन्) वैदिक धर्म से पतित जैनियों के साथ वर्षों से आचरण करने वा उनका धान्य खाने से मैं भी पतित हो गया हूं। यदि धर्मशास्त्रों को विचारते और अपने को पतित समझ लेते तो क्यों दूसरों को पतित कहते ? एक चोर दूसरे चोर को चोर नहीं कह सकता। चोर-चोर मौसेरे भाई होते हैं। इससे मिहिरचन्द्र का अभिप्राय यह था कि मैं किसी की भी ओर नहीं, दोनों को पतित समझता हूं, परन्तु रुपये की ओर हूं, क्योंकि रुपया पतित नहीं है, उसी से प्रयोजन है।

अब आर्यों ने जैनियों के प्रथम पत्र का जो उत्तर दिया है, उनको ध्यान देकर प्रश्नों के अक्षरों से मिलाइये—

जैनियों के प्रथम पत्र के उत्तर में आर्यों का दूसरा पत्र—

'अपदं न प्रयुञ्जीत' इति शब्दशास्त्रनियमात्। अपदत्वं च विभक्तिरहितत्वं, सुप्तिङन्तं पदमिति शासनात्, प्रथमप्रश्न इति लेखोऽपभाषणम्। यदि जगद्वृत्तिपदार्थानां सर्वसाधारणं प्रमेयत्वं तर्हि प्रमाणस्यापि सर्वसाधारणभावेन प्रमेयत्वात्प्रमाणविषयक: प्रश्न: प्रमेयान्तर्गतत्वात्साध्यसमहेत्वाभासः। अस्य च प्रमाणविषयकप्रश्नस्य जगद्वृत्तिपदार्थान्तर्गतत्वाज्ज्ञेयत्वसिद्धिरिति ज्ञातत्वादङ्गीकृतमेव प्रमाणपूर्वकव्यवहारकरणात्। अतश्च तद्विषयक: प्रश्न: सर्वसाधारणप्रमेयत्वे सिद्धे व्यर्थ एव। तद्भेदाश्च यथाशास्त्रं द्वौ त्रयश्चत्वारोऽष्टौ वा, प्रमाणफलं च व्यवहारपरमार्थयो: सिद्धि:, तत्प्रामाण्यं स्वत: परतश्च।

ह० भीमसेनशर्मण: ह० देवदत्तशर्मण:

भाषानुवाद —

व्याकरण शास्त्र का यह नियम है कि जिसमें विभक्ति नहीं, ऐसे अपद शब्द का प्रयोग न करें। पद उसको कहते हैं जिसके अन्त में सुप् और तिङ् हो। इस कारण "प्रथमप्रश्न" यह शब्द व्याकरण के विरुद्ध होने से 'प्रथमग्रासे मक्षिकापात:' के तुल्य लिखा गया है। (क्या इसी पाण्डित्य के आश्रय से जैनी लोग संस्कृत में शास्त्रार्थ करना चाहते थे ? इस पर पं० मिहिरचन्द्र लिखते हैं—"एक विसर्गमात्र की अशुद्धि है", क्या व्याकरण में विसर्गमात्र की अशुद्धि कम होती है ? कोई पण्डित किसी विद्यार्थी से बोले कि हम तुम्हारी परीच्छा करेंगे। विद्यार्थी ने कहा—महाराज! मेरी परीक्षा तो आप करेंगे ही, पर आप की तो परीक्षा "परीच्छा" शब्द से पहले ही हो गई। वही वृत्तान्त पं० मिहिरचन्द्र जी का

हुआ, कि जिनको विसर्ग, व्यवहार, विषय आदि शब्दों में यह भी नहीं मालूम कि इनमें कौन वकार लिखना चाहिए। इससे इनकी भी परीक्षा हो गई और सबको भी ज्ञात हो जावेगा। क्या उसी पाडित्य के भरोसे अपने को अर्थशास्त्रज्ञ होने का दम्भ करते हैं ? अस्तु !

विशेष—यदि जगत् में वर्त्तमान सब पदार्थों को प्रमेयत्व है, तो क्या जगत् में वर्त्तमान सब पदार्थों में 'प्रमाण' नहीं समझा जावेगा? जब जगत के सब पदार्थों में प्रमाण भी एक पदार्थ होने से पदार्थत्व सामान्य से प्रमाण भी प्रमेयरूप में आ गया, तो उसके भी प्रमेय हो जाने से प्रमाण रहा ही नहीं, फिर उसका प्रश्न करना कभी ठीक नहीं है। जब प्रमाण को साध्य पक्ष में लेकर उसको निर्णय किया चाहते हो तो उसके निर्णय करने में जो कुछ प्रमाण कहोगे, सब साध्य पक्ष में आ जाने से प्रमेय हो जाएगा क्योंकि तुम सर्वसाधारण पदार्थों का प्रमेय कह चुके हो। तो तुम्हारा प्रमाणविषयक प्रश्न भी सब पदार्थों के अन्तर्गत होने से जानने योग्य है। इससे तुम्हारा प्रश्न जाना हुआ नहीं रहा अर्थात् तुम्हारे प्रश्न को यदि तुम सब पदार्थों में मानते हो तो विचारणीय पक्ष में आ गया।

यदि कहो कि हमको अपने प्रमाण विषयक प्रश्न में सन्देह नहीं, तो अपने प्रश्न को प्रमाणरूप मान लेने से तुमने प्रमाण-निश्चत समझ लिया, फिर प्रमाण में सन्देह न रहने से प्रमाणविषयक प्रश्न नहीं बनता। यदि तुमको प्रश्न में भी सन्देह होता तो प्रश्न ही न कर सकते। अर्थात् संसार में जो कुछ व्यवहार होता है, वह सब प्रमाणपूर्वक है। जब भोजन करते हैं तब भी नेत्रादि से निश्चय कर लेते कि यह अन्न है, इससे क्षुधा की निवृति होकर सुख होगा, इसलिए भोजन करें। यदि सन्देह हो कि यह हमारे भोजन योग्य अन्न है या नहीं, तो भोजन करना भी न बने। मनुष्य जिसको नेत्रादि प्रमाणों से अपने सुख का साधन समझ लेता है, उसको ग्रहण करता, और जिसको दुःख का हेतु जानता है, उससे सदा बचा करता है। इत्यादि सब व्यवहार प्रमाणपूर्वक होता है, तो तुम्हारा प्रश्न भी प्रमाणपूर्वक होने से तुमने प्रमाण को जान लिया, फिर प्रमाणविषयक प्रश्न नहीं बन सकता। यद्यपि प्रश्न नहीं बनता, तथापि उत्तर देते हैं कि पृथक्-पृथक् शास्त्रकारों की शैली के अनुसार प्रमाण के भेद दो, तीन, चार और आठ हैं। प्रमाणफल व्यवहार परमार्थ की सिद्धि है। उस प्रमाण का निश्चय स्वतः उसी से और परतः अन्य से भी होता है।

आर्यों के द्वितीय पत्र के उत्तर में जैनियों का तीसरा पत्र—

जगद्वृत्तिपदार्थानां सर्वसाधारणं प्रमेयत्वं तर्हि प्रमाणस्यापि सर्वसाधारणभावेन प्रमेयत्वात् प्रमाणविषयकः प्रश्नः प्रमेयान्तर्गतत्वात्साध्यसमहेत्वाभासरिति भवद्भिरपरामर्शत्वेनोल्लेखोयं कृतः, कुतः प्रमाणस्य तु विषयीरूपत्वात् प्रमेयाणां विषयंरूपत्वाच्च प्रमाणरूपत्वेन प्रमाणस्य न प्रमेयत्वं अन्यथा लक्षणस्यापि लक्षाक्रान्तत्वेन दूषणगणवाणप्रहारपातात् किञ्च प्रमाणपूर्वकव्यवहारकरणात् तद्विषयकः प्रश्नः सर्वसाधारणप्रमेयत्वे सिद्धे व्यर्थ एव। एतदप्ययुक्तंकुतः यदि अस्मत्स्वीकृतं मतं प्रमाणं तर्हि भवन्तोप्यङ्गीकुर्वन्तु नीचेत्समायातो विचारः सोपि प्रमाणाधीनः अतः प्रमाणविषयकः प्रश्नः सार्थिकः किञ्च तद्भेदाश्च यथाशास्त्रं द्वौ त्रयश्चत्वारोऽष्टौ वा इदमप्यविशेषेण लेखनं कस्मिन्शास्त्रे इमे भेदाः केन प्रकारेण उद्दिष्ठाः अपि च प्रमाणविषयो नोक्तः किं तर्हि अस्ति या नवेति स्पष्टतयोल्लेखनीयं। प्रमाणफलं च व्यवहारपरमार्थयोः सिद्धिः इत्यनेनापि प्राप्तः प्रमाणनिर्णयः तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च इत्यनेनानैकांतको हेत्वाभासः निर्पेक्षतयोक्तत्वात्।

ह० छेदालालजैनधर्मिणः

ह० पन्नालालजैनमतानुयायिनः

भाषानुवाद—

आपने यह कहा कि जगत् में वर्त्तमान पदार्थों को साधारण रीति से प्रमेयत्व है तो प्रमाण भी सब में आ गया, इससे प्रमेय हुआ तो प्रमाणविषयक प्रश्न प्रमेयान्तर्गत होने से साध्यसमहेत्वाभास हुआ। यह आपका लिखना बिना विचारे है, क्योंकि प्रमाण विषयिरूप और प्रमेय विषय रूप है, प्रमाण रूप से प्रमाण को प्रमेयत्व नहीं, अन्यथा लक्षण को भी लक्ष्यत्व होने से अनेक दूषण आ जाएंगे, और यह भी आपका कहना अयुक्त है कि प्रमाणपूर्वक व्यवहार के करने से

प्रमाण विषयक प्रश्न सर्वसाधारण प्रमेय होने से व्यर्थ हैं क्योंकि जो हमारे स्वीकृत मत को प्रमाण मानते हो तो अङ्गीकार करो, जो नहीं मानते हो तो विचार करने का अवसर आया, इससे प्रमाणविषय हमारा प्रश्न सार्थक है। और उसके भेद शास्त्र के अनुसार दो-दो, तीन-तीन, चार चार वा आठ आठ हैं, यह लेख भी विशेषरहित संदेहरूप है, क्योंकि यह नहीं लिखा कि किन शास्त्रों में यह भेद है, और किस प्रकार से कहे हैं, और प्रमाणविषयक नहीं कहा, वह है या नहीं, स्पष्ट कहो, और प्रमाण का फल व्यवहार परमार्थ की सिद्धि कहा, सो इस आपके कथन से भी प्रमाण का निर्णय प्राप्त हुआ। और उसका प्रामाण्य स्वतः परतः होता है, इस आपकी उक्ति को निरपेक्ष होने से अनैकान्तिक अर्थात् व्यभिचारी हेत्वाभास की नांई स्वतः परतः की साधकता नहीं हो सकती।

नोट—

जैनियों के इस पत्र में कई अशुद्धियां है, जैसे—१—हेत्वाभासरिति। २—विषयंरूपत्वात्। ३—लक्षाक्रान्तत्वेन। ४—सार्थिकः। ५—उद्दिष्ठाः। ६—नैकान्तकः। ७—भवंतोऽप्यंगीकुर्वंतु। इन तीन शब्दों में तीन अशुद्धियां हैं। यदि कोई लिखने में अक्षर छूट जाता है तो उससे पण्डिताई में हानि नहीं समझी जाती, सो ऐसी अशुद्धि यहां नहीं गिनाई है। इन उक्त अशुद्धियों के अनन्तर इनके पत्र में अन्य भी अशुद्धियां हैं, जिनसे जैन पंडितों की पण्डिताई प्रकाशित हो जावेगी।

जैनियों के द्वितीय पत्र के उत्तर में आर्यों का तृतीय पत्र :—

सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वा। यदि प्रमाणपूर्वकत्वं तर्हि भवत्प्रश्नस्यापि सर्वव्यवहारान्तर्गतत्वासंशयाभावेनानर्थकः प्रश्नः। यदि चाप्रमाणपूर्वकत्वं तर्हि भवत्प्रश्नस्यायोग्यत्वम्। यद्यस्मदुक्तपदार्थानां मेयत्व भवद्भिः स्वीक्रियते तर्हि जिनपदस्य तदर्थस्य च साध्यत्वाद्भवन्मतमूलमेव साध्यं न तु सिद्धमित्यतो भवदनुमतो सर्वस्य साध्यत्वात् प्रमाणाभावेन प्रमेयाभावः।

ह० भीमसेनशर्मणः **ह० देवदत्तशर्मणः**

भाषानुवाद :—

सब व्यवहार प्रमाणपूर्वक होता है वा अप्रमाणपूर्वक ?, अर्थात् सोच समझ के मनुष्य कार्य करने में प्रवृत्त होते हैं वा अन्धाधुन्ध उन्मत्त के समान ? यदि कहो कि प्रमाण से व्यवहार होते हैं, तो आपका प्रश्न भी सब व्यवहारों में होने से प्रमाणपूर्वक हुआ, अर्थात् आपने अपने प्रश्न को प्रामाणिक माना, तो तुमको प्रमाण का बोध हो गया, अर्थात् प्रमाण का बोध था तब ही तुम प्रश्न कर सके, तो प्रमाण में सन्देह न होने से तुम्हारा प्रमाण विषय में प्रश्न करना सर्वथा व्यर्थ हुआ। यदि कहो कि विना प्रमाण के व्यवहार होते हैं, तो तुम्हारा प्रश्न भी अप्रमाणिक होने से अयोग्य है। और यदि हमारे प्रथम पत्र में लिखे जिन जैनादि पदार्थों को तुम प्रमेय अर्थात् विचार पक्ष में लाने योग्य मानते हो, तो जिन पद और उसके वाच्यार्थ के साध्य होने से तुम्हारे कथनानुसार ही तुम्हारे मत का मूल साध्य हो गया, किन्तु सिद्ध नहीं रहा।

इससे यह आया कि तुमको अपने जैनमत पर विश्वास नहीं, यदि विश्वास होता तो उसको प्रामाणिक मानते। जब प्रामाणिक मान लेते तो प्रमाणविषय में संदेह न होने से प्रश्न क्यों करते ? जब तुमको अपने मत के प्रामाणिक होने का विश्वास नहीं तो अन्य मत पर कैसे विश्वास हो सकता है ? इसलिए तुम्हारे मत में सभी साध्य होने से प्रमाण कोई वस्तु न रहा, क्योंकि प्रमाण वही कहाता है, कि जिससे विषय का निश्चय हो, और जिस विषय को उस प्रमाण से निश्चय करे, वह प्रमेय कहाता है, सो जब प्रमाण ही न रहा तो प्रमेय का रहना भी दुस्तर है।

नोट :—

यह पहिले दिन ता० १६ मार्च का शास्त्रार्थ समाप्त हुआ। सब अपने २ घर को चले गए। उसी दिन आर्य्यों को चिन्ता रही कि अब कल कब शास्त्रार्थ होगा। उसका समय पहिले से नियत होना चाहिए। परन्तु जैन लोगों को

कुछ भी फिकर न थी। और पहिले दिन के शास्त्रार्थ से जैनियों को तथा अन्य श्रोताजनों को बलाबल भी ज्ञात हो गया था, इससे जैनियों की भीतरी इच्छा नहीं थी कि दूसरे दिन शास्त्रार्थ हो। पर अपनी ओर से वन्द करने में भी प्रसिद्ध पराजय हुआ जाता था, क्योंकि जैनियों के प्रतिपक्षी आठों पहर कटिबद्ध हो रहे थे। इस कारण आर्य्यों की ओर से कई बार संदेशा जाने से जैनी लोगों को ता० १७ को शास्त्रार्थ स्वीकार करना पड़ा और ता० १७ को भी उसी समय से शास्त्रार्थ का आरम्भ हुआ। पर ता० १६ को आर्य्यों ने जो तीसरा पत्र अन्त में दिया था, उसका उत्तर जैनियों को देना था, और जैनियों के तृतीय पत्र का उत्तर आर्यों को देना था। आर्यों का पत्र जैन ले गए थे और जैनियों का पत्र आर्य ले गए थे और अपने २ घर विचारपूर्वक उत्तर लिखकर लाए। जैनियों को उत्तर लिखने के लिए घर पर अन्य मतावलम्बी पण्डित लोगों की सहायता मिल गई, जिससे अच्छे प्रकार लिखा।

[द्वितीय दिन शनिवार ता० १७ मार्च]

आर्य्यों के तृतीय पत्र के उत्तर में जैनियों का चौथा पत्र—

श्रीमद्भिः यदुक्तं सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वेत्ययुक्तं। नायं नियमः सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वममाप्रमाणपूर्वकत्वं वा कस्मात् व्यवहाराणां वैलक्षण्यात्। प्रश्नस्यानर्थक्यन्तु वक्तुमसक्यं। येन व्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वं तत्प्रमाणं किमिति प्रश्नस्य सार्थक्यात्। नास्माकं प्रमाणस्वरूपादौ संशयः। यूयं जानीथ नवेति पृच्छते। अस्मत्प्रश्नविषयस्य सर्वशास्त्रसंमतत्वेन नायोग्यत्वं। अस्मन्मतविषये भवज्जिज्ञासितपदार्थानां यथा मेयत्वं तथा सर्वेषां पदार्थमात्राणां मेयत्वमस्माभिरङ्गीक्रियते परन्तु यन्मेयं तत्साध्यमिति न व्याप्तेरभावात् इत्यनेन यद्यस्मदुक्तपदार्थानाम्मेयत्वं भवद्भि: स्वीक्रियते तर्हि जिनपदस्य तदर्थस्य च साध्यत्वाद्भवन्मतमूलमेव साध्यं न तु सिद्धमित्युक्तं तदपि निर्मूलं। अपि च मेयं च किं प्रमाणाधीनमिति प्रश्नावकाशः। अन्ततो गत्वा भवद्भिरपि प्रमाणाभावेन प्रमेयाभावः इति लिखद्भिः प्रमाणं त्वंगीकृतं परन्तु पृथ्ठसविशेषप्रमाणस्वरूपादिकम् वक्तुमसमर्थाः इत्यस्माभिरवगतम्।

ह० छेदालालजैनधर्मिणः ह० पन्नालालजैनधर्मिणः

भाषानुवाद :—

आपने जो कहा कि सब व्यवहार प्रमाणपूर्वक हैं या अप्रमाणपूर्वक, यह आपका कहना अयोग्य है क्योंकि यह नियम नहीं है कि सब व्यवहार प्रमाणपूर्वक ही होते हैं या अप्रमाणपूर्वक क्योंकि व्यवहार विलक्षण हैं अर्थात् कोई प्रमाण-पूर्वक कोई अप्रमाणपूर्वक होते हैं तो। और हमारे प्रश्न को तो अनर्थक आप नहीं कह सकते क्योंकि जिस व्यवहार को प्रमाणपूर्वकता है, वह प्रमाण क्या, इससे हमारा प्रश्न सार्थक है और हमको तो प्रमाण के स्वरूपादि में संशय नहीं है। पूछते इसलिए हैं कि आप भी उसको जानते हैं या नहीं। हमारे प्रश्न का विषय सम्पूर्ण शास्त्रों का सम्मत इससे अयोग्य नहीं है। हमारे मत के विषय में जिन पदार्थों के जानने की आपकी इच्छा है, वे जैसे प्रमेय हैं, उसी रीति से हम सम्पूर्ण पदार्थों को प्रमेय मानते हैं। परन्तु जो मेय है, वह साध्य अवश्य होता है, यह नहीं कह सकते क्योंकि व्याप्ति का अभाव है। इसी लेख से आपने कहा कि जो हमारे कहे हुए पदार्थों को तुम प्रमेय मानते हो तो जिन पद और उसका अर्थ भी साध्य हुआ, इससे तुम्हारे मत का मूल साध्य है सिद्ध नहीं, यह आपका कहना भी निर्बल है और मेय किस प्रमाण के आधीन है, इससे हमारे प्रश्न का अवकाश है और अन्त में आपने भी प्रमाण के विना प्रमेय का अभाव होता है, यह लिख कर उस प्रमेय की सिद्धि का कारण तो प्रमाण को माना परन्तु हमारे पूछे हुए प्रमाण के पृथक् २ स्वरूप आदि को आप कहने को समर्थ नहीं, यह हमने जान लिया।

नोट—

यह पत्र लिख कर लाये और जैनियों ने सभा के आरम्भ होते ही सब की सम्मति से सभा में सुनाया और कितनी ही बातें अपनी इच्छानुसार ऊपर से कहीं। पीछे आर्यों की ओर से पण्डित देवदत्त शास्त्री ने भी अपना लिखा उत्तर सुनाया और कुछ उस पत्र के संबंध में कहा। इस पर छेदालाल जैन ने फिर खड़े होकर कहा, उस पर भीमसेन शर्मा ने कहा, जैनियों को सभा के आरम्भ में कहने के लिए समय दिया गया, इस पर तो जैनी प्रसन्न थे, पर जब आर्य पण्डित बोल चुकें तब फिर भी पीछे बोलना चाहें। तब आर्य्य पण्डितों ने कहा कि तुम जितनी बार बोलोगे, उतनी ही बार हम तुम्हारे पीछे अवश्य बोलेंगे अन्त में यह हुआ कि दूसरे दिन अन्त में आर्य्य पण्डितों ने उनके उत्तर देकर जैनमत की पोल खोलने का प्रारम्भ किया (जिसको प्रमाण प्रमेय का झगड़ा डाल के अपने मत की गोल-माल व पोल-पाल को दबाते थे कि हमारे मत पर विचार न चलने पावे) तब तो जैनियों के मुख पर सफेदी आने लगी। इस दूसरे दिन के शास्त्रार्थ को जैन पण्डितों ने इस विचार से बोल चाल अर्थात् लिखा पढ़ी न होकर भाषा में बोलने के लिए टाला था कि हमारे संस्कृत की अशुद्धियां सभा में प्रकट हो चुकीं, फिर लिखेंगे तो और भी अशुद्धियां निकलने से विशेष धूर होगी। इसलिए भाषा में बोलकर समय पूरा करें, परन्तु आर्य्यों की इसमें भी चढ़ बनी अर्थात् प्रमाण विषय में यथावत् वर्णन किए पीछे जैनमत की अच्छे प्रकार सभा को पोल दिखाई।

पहले दिन के शास्त्रार्थ से जैनियों ने अपने मत की हानि देखकर शास्त्रार्थ के स्वीकारकर्त्ता जैनपक्षी सेठ फूलचन्दजी को अनेक जैनों ने जा-जाकर धमकाया और कहा तुमने यह रोग हमारे और अपने पीछे क्यों लगा दिया? हमारा मत जैसा है वैसा मानते हैं। इस प्रकार अनेक जैनियों ने फूलचन्दजी को लज्जित किया। इससे सेठ फूलचन्दजी दूसरे ही दिन से बीमार होकर घर में पड़ रहे और दूसरे ही दिन से सभा में नहीं आए। इस बात का अनेक सज्जनों को पूरा अनुभव हो चुका है कि जैन लोग अपने मत की चर्चा से ऐसे डरते हैं कि जैसे कोई काल से डरे। इससे प्रकट है कि जैनियों के मत में अत्यन्त पोल है। इस दूसरे दिन के शास्त्रार्थ में प्रथम जैनियो में अपना पत्र सुनाया तत्पश्चात् आर्यों ने चौथा पत्र सुनाया—

आर्यों का चौथा पत्र जैनियों के तृतीय पत्र के उत्तर में :—

॥ ओ३म् ॥

तृतीयसङ्ख्याके पत्रे नवाशुद्धयः प्रतीयन्ते ताश्च शब्दशास्त्रबोधाभावेन जाता इति निश्चितमेव। इदञ्च तृतीयपत्रं पूर्वमेव दत्तोत्तरम्। पुनश्च तदुपरि लेखः पिष्टपेषणवत्प्रतिभाति। तथापीदं ब्रूमः। यदि विषयिरूपस्य प्रमाणस्य स्वस्वरूपादचाञ्चल्यं तर्हि जिनजैनादिपदार्थानां विषयिरूपत्वं विषयरूपत्वं वा किं भवद्भिरङ्गीक्रियते? यदि विषयरूपत्वमूरीक्रियते तन्न, युष्मदुक्तपदार्थानां प्रमेयरूपत्वात्, इति पूर्वलेखेन विरुध्यते। यदि च विषयरूपत्वं तर्हि जिनजैनादिपदार्थानां साध्यत्वात् भवन्मतमूलं युष्माभिरेवाप्रमाणीभूतं स्वीकृतमिति निग्रहस्थानप्राप्तिः। अस्मन्मते तु प्रमाणस्य प्रामाण्यं स्वतः परतश्चेति मत्वा न कश्चिद्दोष इति। इदानीं च प्रमाणविषयको विचारः समाप्त इति भवत्प्रश्नस्यावकाशाभावः।

अस्माभिश्चादौ यः प्रश्नः कृतोऽस्ति तस्योत्तरं भवद्भिः किमपि नो दत्तं, तस्योपरि विचारः सर्वस्मात् पूर्वं कर्त्तुं युक्तस्तस्य प्रयोजनरूपेण निमित्तीभूतत्वात्। जैनमतमूलं सप्रमाणकमप्रमाणकं वेत्यादिविचारे प्रवृत्ते जैनमतसमीक्षणं प्रमाणेनैव भविष्यतीति प्रमेयरूपाज्जैनसम्प्रदायात्पूर्वं प्रमाणं सेत्स्यत्येवेति। तत्रेदं विचार्यते—यदि जिनपदार्थः कश्चित्सनातनः सर्वज्ञो नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावो नित्यैश्वर्यसम्पन्नस्तर्हि तस्यैव सनातनसर्वनियन्त्रीश्वरस्य सिद्धावनीश्वरवादो निरस्तः। यदि च कश्चित्कालविशेषोत्पन्नो जिनपदार्थाभिधेयस्तर्हि तस्याधुनिकस्यानित्यत्वात्सर्वज्ञत्वादिगुणासम्भवेन तदुपासनमश्रेयस्करमित्यादयो दोषाः।

ह० भीमसेनशर्मणः ह० देवदत्तस्य

भाषानुवाद :—

तीसरे पत्र में नौ अशुद्धि निश्चित हुई हैं, सो जैनियों के तीसरे पत्र के नीचे दिखा चुके हैं। वे अशुद्धिय व्याकरण का बोध न होने से है, यह निश्चित ही है। यद्यपि इस तृतीयपत्र में जो विषय है, उसका उत्तर हम पहिले ही दे चुके हैं कि प्रमाण उस वस्तु का नाम है जिससे विषय को जाने यदि वह जानने योग्य विषय हो जायगा तो उसको प्रमेय कहेंगे, प्रमाण नहीं कह सकते। फिर प्रमाण का निश्चय करना चाहिए, यह कथन नहीं बन सकता क्योंकि जो स्वयं प्रकाशस्वरूप हो और अन्य पदार्थ उसके प्रकाश से देखे जावें, वह प्रमाण कहाता है। जैसे एक दीपक से अन्य पदार्थ देखे जाते हैं परन्तु उसी दीपक के देखने के लिए द्वितीय दीपक की अपेक्षा नहीं होती, ऐसे ही प्रमाण वही है जिसको सिद्ध करने की अपेक्षा नहीं, किन्तु वह स्वयंसिद्ध है।

कहीं २ किसी प्रमाण का निश्चय करना पड़ता है, तब उसको प्रमेय कहते हैं किन्तु वह प्रमाण कोटि में नहीं कहाता। जब कोई मनुष्य किसी विषय को विचारना वा देखना चाहता है तब वह पहिले अपने नेत्र को निश्चय नहीं करने बैठता कि मेरे कितने नेत्र हैं, कैसे हैं, मैं देख सकता हूं वा नहीं तथा न्यायाधीश जब न्यायालय में न्याय करने को उद्यत होता है, तब वह यह नहीं विचारता कि जिस कानून से मैं न्याय करूंगा, उसी को पहिले निश्चय कर लूं कि वह कानून ठीक है वा नहीं किन्तु कानून के अनुसार न्याय करने लगता है। ऐसे ही मत विषय पर विचार होना चाहिये। प्रमाण के निर्णय की कुछ आवश्यकता नहीं है। यह आशय पूर्व ही प्रकाशित किया गया था। इसलिए इस पर बार-बार लिखना पिसे को पीसना है।

तथापि यह कह सकते हैं कि—यदि विषयिरूप प्रमाण अपने स्वरूप से चलायमान नहीं होता तो जिन जैनादि पदार्थों को आपने विषयरूप माना वा विषयिरूप माना है ? इन दोनों में आप क्या ठीक समझते हो ? यदि कहो कि जिनजैनादिकों को विषयिरूप प्रमाण मानते हैं, तो ठीक नहीं क्योंकि आप पहिले लिख चुके हो कि तुम्हारे कहे जिन-जैनादि पदार्थ प्रमेयरूप विषय हैं, इससे पूर्वापर वदतोव्याघात हो जायगा। यदि विषयरूप प्रमेय मानते हो तो जिन-जैनादि पदार्थों के साध्य होने से तुम्हारे मत के मूल को तुमने ही अप्रमाण मान लिया। इससे तुम्हारा पक्ष पराजय स्थान में पहुंच गया। हमारे मत में तो प्रमाण-निश्चय स्वतः और परतः दोनों प्रकार होता है, इससे कोई दोष नहीं आता।

अब इस पूर्वोक्त सब कथन से प्रमाणविषयक विचार समाप्त हो गया क्योंकि तुमने पूछा था सो सब समझा दिया गया। यदि इतने पर भी न समझो तो कुछ दिन विद्वानों की सेवा करो और पढ़ो, तब प्रमाणविषय को पूछना। परन्तु तुमने जैन मत को ग्रहण किया तो उसको कुछ अच्छा समझ लिया होगा, इसलिये हमको जो तुम्हारे जैनमत में शंका है, उन प्रश्नों का उत्तर दीजिए। हमारे पहिले प्रश्न का उत्तर तुमने अब तक नहीं दिया और हम आपके प्रमाण-विषयक उत्तर बराबर देते आ रहे हैं। ऐसे कहां तक टालोगे। हमारे किये प्रश्न पर सबसे पहिले उत्तर होना चाहिये क्योंकि सब प्रमाणपत्र तथा विशेष मनुष्यों का यही प्रयोजन है कि हमको सुख मिले और दुःखों से छूटें। किसी मनुष्य को पूछिये सभी कहेंगे कि यदि कोई कल्याण का मार्ग ठीक २ समझा देवे तो सर्वोत्तम है क्योंकि सुख की प्राप्ति ही मुख्य प्रयोजन है। सुख की प्राप्ति अर्थात् मनुष्य का कल्याणकारी कौन मत है ? यही हमारा प्रश्न है। इसका उत्तर अब तक जैनियों ने नहीं दिया।

जैनमत पर जब परीक्षा चलेगी कि जैनमत प्रमाणयुक्त वा अप्रमाणयुक्त है, इत्यादि विचार होने में जैनमत की समीक्षा प्रमाण से होगी, तो प्रमेयरूप जैन सम्प्रदाय से प्रमाण पहिले स्वयमेव सिद्ध हो जायगा। इसलिए प्रथम जैनमत पर विचार होना चाहिये। उस जैनमत पर इस प्रकार विचार चलना चहिए कि यदि जिन पदार्थ कोई सनातन, सर्वज्ञ, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव और अविनाशी ऐश्वर्यवाला है, तो वही सनातन सर्वनियन्ता ईश्वर सिद्ध हो जायगा। ऐसा होने से अनीश्वरवाद स्वमेव कट जायगा। यदि कोई काल विशेष में सर्वज्ञ होने से उत्पन्न जिन पद का वाच्यार्थ

होगा, तो उस आधुनिक जिनके अनित्यवादि गुणों का आरम्भ है। क्यों कि जो किसी समय विशेष में उत्पन्न होता है, वह अपनी उत्पत्ति से पहिले होगए समाचारों को नहीं जान सकता, ऐसा हो तो तब पिता के जन्म के समाचार को पुत्र भी प्रत्यक्ष कर लेवे, सो असम्भव है। इसलिए किसी समयविशेष में उत्पन्न हुआ पुरुष सर्वज्ञ नहीं हो सकता। फिर ऐसे अल्पज्ञ जिनकी उपासना कदापि कल्याणकारिणी नहीं हो सकती। इसलिये यह जैन सम्प्रदाय अनेक दोषों से ग्रस्त होने के कारण ग्राह्य नहीं हो सकता।

नोट :—

इस प्रकार द्वितीय दिन आर्यों ने अपना पत्र सुनाकर जैनियों को दिया, और जैनियों ने पूर्वोक्त अपना पत्र सुनाकर आर्यों को दिया तथा कुछ भाषा में अपने २ पक्ष की ओर से दोनों पक्षों के पण्डितों ने कहा। पश्चात् द्वितीय दिन का शास्त्रार्थ समाप्त हुआ। इस दिन भी शास्त्रार्थ होने के वाद जैनियों की इच्छा नहीं थी कि अब फिर शास्त्रार्थ हो परन्तु आर्य लोग कब मानते थे, उन्होंने ता० १७ को सन्ध्या से बार २ संदेश भेजकर फिर जैनियों को खटखटाया कि कल ता० १८ को किस समय से शास्त्रार्थ होगा। और आर्यों की ओर पं० ठाकुरप्रसाद शास्त्रीजी आगरे से आ गए थे, इस पर कई लोगों का विचार ठहरा कि पं० ठाकुरप्रसादजी आर्यों की ओर से बोलें। और विशेषकर श्रीमान् लाला सोहनलाल जी रईस फ़ीरोज़ाबाद की इच्छा थी कि पं० ठाकुरप्रसादजी बोलें तो ठीक हो। अगले दिन ता० १८ को १ बजे से शास्त्रार्थ होना नियत हुआ। सब लोग नियत समय पर सभा में पहुंचे। प्रथम पं० ठाकुरप्रसादजी शास्त्री को नियत करने का विचार चला। इस पर जैनियों ने बहुत वादविवाद चलाया। उनकी इच्छा थी कि वादविवाद में समय कट जावे तो ऐसे ही फंद से छूटें, वा आर्य्य लोग यह कह देवेंगे कि पं० ठाकुरप्रसादजी को न बोलने देओगे तो हम शास्त्रार्थ नहीं करेंगे, तो भी हमारा कार्य सिद्ध हो जावें। सो आर्यसमाजी उनको कब छोड़ते थे। अन्त में अनेक वादविवाद एक घण्टा तक होने के पश्चात् २ बजे शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ।

(तृतीय दिन रविवार, ता० १८ मार्च)

आर्यों के चौथे पत्र के उत्तर में जैनियों का पांचवां पत्र :—

यच्च पूर्वपत्रे भवद्भिरुट्टङ्कितं न लिखितप्रश्नामुत्तरन्तु जातं सूयपिष्टपेषणवदन्न् मइति तन्न सम्यक् प्रमाणस्वरूपनिश्चितसङ्ख्ययोरभिमतप्रमाणलक्षणानां कस्मिंश्चिदपि पत्रे लेखनाभावान्नहि तुलामन्तरेण वस्तुपरिमाणमुपलभ्यते तत् प्रामाण्यं स्वतः परतश्चैत्यशिरश्कवचनं ब्रुवाणैर्युष्माभिः क्रोडीकृतः प्रमाणविषयको विचारश्चरमवर्णध्वंसगत इति। तदपि चित्रं खपुष्पमितिवत्प्रतीयमानत्वात् नहि किञ्चित्पदार्थापेक्षया स्वतः परत इत्यङ्कितं युष्माभिरतोविरहादतिसाहसमात्रमेतत्कथनमिति पश्यामः किं पुनर्बहुविडम्बनेन। यच्च (यदि विषयिरूपस्य प्रमाणस्य स्वस्वरूपादचाञ्चल्यं तर्हि जिनजैनादिपदार्थानां विषयिरूपत्वं विषयरूपत्वं वा किं भवद्भिरंगीक्रियते यदि विषयिरूपत्वमरीक्रियते तन्न युष्मदुक्तपदार्थानां प्रमेयरूपत्वात् इतिपूर्वलेखेन विरुध्यते यदि च विषयरूपत्वं तर्हि जिनजैनादिपदार्थानां साध्यत्वाद्भवन्मतमूलं युष्माभिरेवाप्रमाणीभूतं स्वीकृतमिति निग्रहस्थानप्राप्तिरिति) तदपिबालभाषितं आम्राणां प्रश्ने कोविदारमाचष्ट इतिवत् प्रमाणनिरूपणावसरे भिन्नजिनजैनादिनां विषयविषयित्ववरणनात् नहि साध्यो विषयो भवितुं नार्हतीति यत्र २ साध्यस्तत्र२ विषयो नेति व्याप्तेरभावात्। किञ्च जिनमतं सप्रमाणमस्माकं परन्तु जिनमतं प्रमाणमप्रमाणं वेति विकल्पे प्रमाणपदस्य कः पदार्थो येन जिनमतं युष्माभिः दृढं कारयिष्यामः नित्यत्वानित्यत्वादिकं च प्रमाणाधीनमिति भवद्भिः सविशेषप्रमाणादिः पूर्वं कथनीयः।

ह० छेदालालजैनधर्मिणः

ह० पन्नालालजैनधर्मिणः

भाषानुवाद: —

जो पहिले पत्र में आपने कहा कि आपके लिखे प्रश्नों का उत्तर दे चुके, फिर पिष्टपेषण के समान कहें, सो आपका कहना ठीक नहीं। प्रमाण का स्वरूप और निश्चित संख्या और शास्त्रकारों के माने हुए लक्षणों को किसी पत्र में भी आपने नहीं लिखा। तुला के विना वस्तु का परिमाण नहीं जाना जाता और उस प्रमाण की प्रमाणता स्वत: परत: इस विना शिर के वचन को कहनेवाले आपने स्वीकार किया कि प्रमाणविषयक विचार पूरा हुआ। यह भी अत्यन्त आश्चर्य है, क्योंकि यह कहना आकाश के फूलों के समान है, काहेते कि आपने यह नहीं कहा किस पदार्थ की अपेक्षा से स्वत: और किसकी अपेक्षा से परत:, इस युक्ति के विना इस आपके कथन को अतिसाहसपूर्वक समझते हैं। वहुत विडम्बना से क्या है। और आपने यह कहा कि विषयिरूप प्रमाण अपने स्वरूप से चंचल नहीं, तो जिनजैनादि पदार्थों को तुम विषयिरूप मानते हो कि विषयरूप, जो विषयिरूप मानते हो सो ठीक नहीं, क्योंकि आपके कहे पदार्थों को प्रमेयरूप होने से इस पूर्व लेख के संग विरोध है और जो विषयरूप मानते हो तो जिनजैनादि पदार्थों के साध्य होने से अपने मत का मूल आपने ही अप्रमाण स्वीकार किया, यह निग्रहस्थान की प्राप्ति है, यह आपका कहना भी बालक अर्थात् अज्ञानी का सा है, क्योंकि पूछे आम वताये अमरूद, इसके समान प्रमाणनिरूपण समय में जिनजैनादि का विषय विषयित्व वर्णन करते हो। और यह नियम नहीं कि साध्य विषय न हो सके, क्योंकि जहां जहां साध्य वहां-वहां विषय नहीं, यह व्याप्ति नहीं। और हमको तो जैनमत प्रमाणसिद्ध है, परन्तु जिनमत प्रमाण है या अप्रमाण है। इस आपके विकल्प में प्रमाण पद का क्या अर्थ है, जिससे आपको जिनमत की दृष्टिता करावें। और नित्य और अनित्य का ज्ञान भी प्रमाण के आधीन है, इससे तुम पहिले प्रमाण के स्वरूपादि कहो।

आर्य्यों का पांचवां पत्र जैनियों के चौथे पत्र के उत्तर में :—

जैनानां पूर्वपत्रे व्याकरणानुसारतो दिगशुद्धयः। श्रीमद्भि, सर्वव्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वेत्ययुक्तमिति प्रतिज्ञातम्। एतद्वाक्यान्तर्गतमयुक्तमिति सिषाधयिषितम्। व्यवहाराणां वैलक्षण्यादिति हेतुना। अत्रायं प्रश्नः—व्यवहारवैलक्षण्यरूपहेतोः प्रमाणपूर्वकत्वमप्रमाणपूर्वकत्वं वेत्ययुक्तमिति वाक्यघटितायुक्तत्वरूपसाध्यस्य च क्व व्याप्तिरस्ति, किं पुरुषोऽयुक्तत्वरूपसाध्याभावविशिष्टविलक्षणव्यवहारे न प्रवर्त्तते ? दृश्यते च सर्वेषाम्पुरुषाणां निष्टङ्का सर्वत्र प्रवृत्तिस्तत्रायुक्तत्वरूपसाध्याभावेन व्यवहारवैलक्षण्यरूपहेतोश्च सत्वेनायुक्तोयं हेतुः। निरवच्छिन्नमूलधूमसत्व-वह्नेरवश्यं भावनियमात्। किञ्च व्याकरणशास्त्रोक्तविशानेकाशुद्धिग्रस्तत्वेन पूर्वापरविरोधसद्भावेन चात्यन्त उपेक्ष्यो भवतां लेखः। अशुद्धीनामनेकत्वात् ताश्च समयान्तरे प्रदर्शयिष्यामः। विरोधश्चायं येन व्यवहाराणां प्रमाणपूर्वकत्वं तत्प्रमाणं किमिति प्रश्नस्य सार्थक्यादिति वाक्ये तत्प्रमाणं किमित वाक्येन प्रश्नः कृतः, लिख्यते चाग्रे नास्माकम्प्रमाण-स्वरूपादौ संशय इति रात्रिन्दिवयोरिवात्यन्तविरोधाक्रान्तत्वात्। अपि च सर्वे व्यवहाराः प्रमाणनिर्णयमकृत्वैव प्रवर्त्तन्ते, नायं नियमः। प्रमाणानि च शास्त्राज्ञानवतां प्रमाणत्वेन ज्ञातानि शास्त्राज्ञानवताञ्च प्रमाणत्वेनाज्ञातान्यपि व्यवहाराप्रति-बन्धकानि भवन्तीति सम्मतम्। प्रमाणनिर्णयमनधिगम्यापि प्रवर्त्तन्ते च विद्वांसः प्राकृताश्च जना हट्टादिषु क्रयविक्रय-व्यवहारे। भवद्भिरपि कति प्रमाणानि कानि च तेषां लक्षणानीति निर्णयमकृत्वैव पत्रलेखनं कृतं, ततश्च सिद्धमेतत् वद्वादिनोः सभायां मतप्राबल्यदौर्बल्याभ्यां जयपराजयौ निश्चीयेते। अथ तत्रैव चेदाग्रहः सभायामागत्य तद्विषयकाः प्रश्नाः क्रियन्तामित्यलं भूयसु।

ह० भीमसेनशर्मणः ह० देवदत्तशर्मणः

भाषानुवाद: —

आपने यह प्रतिज्ञा की कि यह वात अयुक्त है कि सब व्यवहार प्रमाणपूर्वक या अप्रमाणपूर्वक होते हैं, इस में अयुक्त साध्य है, और व्यवहारों में वैलक्षण्य हेतु है। इसमें यह प्रश्न है कि व्यवहारवैलक्षण्य हेतु की और अयुक्तत्वरूप

साध्य की कहां व्याप्ति है। क्या मनुष्य अयुक्तत्वरूप साध्य से विलक्षण व्यवहार में नहीं प्रवृत्त होता ? सब मनुष्यों की सब जगह निःशंक प्रवृत्ति देखते हैं। वहां अयुक्तत्वरूप साध्य नहीं और व्यवहारवैलक्षण्यरूप हेतु है, इससे हेतु है अयुक्त है। जहां पर्वत के मूल से आकाश तक धूम हो वहां वह्नि के अवश्य होने का नियम है। और व्याकरण की रीति से अनेक अशुद्धि और पूर्वापर विरोध होने से आपका लेख अत्यन्त उपेक्षा करने योग्य है। वे अशुद्धि कालान्तर में दिखावेंगे। और विरोध यह है कि जिससे व्यवहारों को प्रमाणपूर्वकत्व है, वह प्रमाण क्या, इससे प्रश्न सार्थक है। इसमें 'वह प्रमाण क्या' इस वाक्य से प्रश्न किया और आगे जाकर लिखा कि हमको प्रमाण स्वरूपादि में संशय नहीं, सो यह रात्रि दिन के समान अत्यन्त विरुद्ध है।

और यह नियम नहीं है कि सब व्यवहार प्रमाण निर्णय के विना किये ही प्रवृत्त हों। और शास्त्रज्ञान वालों को प्रमाणरूप से जाने हुए और शास्त्र के अज्ञानियों को प्रमाणरूप से नहीं जाने हुए भी प्रमाण व्यवहार के प्रतिवन्धक नहीं होते, यह सम्मत है। और प्रमाणनिर्णय के बिना किये भी विद्वान और हट्ट आदि के लेने देने में प्राकृत जन प्रवृत्त होते हैं। तुमने भी कितने प्रमाण और उनके क्या लक्षण यह निर्णय किए विना ही पत्र लिखा। इससे यह बात सिद्ध हुई कि वादियों के मत की प्रवलता और दुर्बलता से ही जयपराजय का निश्चय होता है। जो उसी प्रमाण निर्णय में आग्रह है, तो सभा में आनकर उस विषयक प्रश्न करो, विद्वानों में इतना बहुत है।

नोट—

यह उक्त पत्र सभा में सुनाया गया और जैनमत पर कुछ विशेष कहा गया। तव पं० छेदालाल जैनी ने श्रीस्वामि दयानन्दसरस्वतीजीकृत सत्यार्थप्रकाश को लेकर कोई २ दोष दिखाए और कहा कि हमारे मत विषय में सब मिथ्या लिखा है। 'सर्वदर्शनसंग्रह' के पुस्तक में कुछ दिखाया कि यह जैनमत नहीं है, इत्यादि कहा। उसका यथोचित उत्तर दिया गया। जो जो वार्त्ता बिना लिखी हुई है, उन सबको यथावत् कोई नहीं कह सकता, इसलिए सबका लिखना उचित नहीं है। यदि एक वचन वा प्रमाण का स्मरण हुआ और उसके सम्बन्ध की सब युक्ति वा प्रमाण लिखे जावें तो बहुत लेख बढ़ जावे। और ऐसा लेख करना उचित भी नहीं जान पड़ता है, इसलिए विशेष बढ़ाना ठीक नहीं।

(इस दिन भी शास्त्रार्थ होने के बाद जैनियों की इच्छा नहीं थी कि अब फिर शास्त्रार्थ हो, परन्तु आर्य लोग कब मानते थे) इस प्रकार १८ तारीख को ४ बजने में ५ मिनट शेष रहे, उस समय में शास्त्रार्थ का सारांश और जैन पंडितों की कुटिलता पर और जैनमत की समीक्षा पर आर्य पण्डित कह रहे थे, उसको सुनकर जैन बहुत लज्जित हुए और उच्चस्वर से कहने लगे कि समय हो गया। इस पर श्रीमान् चतुर्वेदी राधामोहन जी और श्रीमान् राय सोहनलाल जी ने कहा कि अभी समय बाकी है, हल्ला न करो। श्रीमान् चतुर्वेदी कमलापति जी ने सम्पूर्ण शास्त्रार्थ द्रष्टा और विशेषकर राय सोहनलाल जी की पूर्ण इच्छानुसार श्रीमान् पण्डित ठाकुरप्रसादजी के व्याख्यान होने के लिए सभा से निवेदन किया। इन जैन लोगों ने किसी की एक न सुनी और एक साथ सभा से उठकर चल दिए। (इससे शहर के प्रतिष्ठित रईसों को भी इनकी योग्यता अच्छे प्रकार प्रकट हो गई। सभा में कोलाहल मचजाने से वहां व्याख्यान न हुआ। तात्पर्य यह था कि इस दिन इनकी पोल अच्छे प्रकार खोली गई, कुछ शेष रही थी, यदि बैठे रहते तो सभी इनकी पोपलीला प्रकट हो जाती) आर्य लोग भी अपने २ घर चले गये।

सर्वसम्मत्यनुसार श्रीमान् रायसाहब सोहनलालजी के स्थान पर ता० १८ को संध्या के ७ बजे पं० ठाकुरप्रसादजी शास्त्री का व्याख्यान जैनमत विषय पर ठहरा। तदनुसार सब नगर में विज्ञापन दिए गए, नियत समय पर व्याख्यान हुआ। नगर के सभ्यों को बड़ी प्रसन्नता हुई। पण्डित जी ने न्याय आदि शास्त्रों से जैनमत की अच्छे प्रकार समीक्षा की।

सभा की समाप्ति में पं० सीताराम चतुर्वेदी मैनपुरी निवासी ने आर्यों की प्रशंसा कविताई में पढ़ी—

॥ ओ३म् ॥

दोहा—सत्यासत्य विचारहित, भये विज्ञ एकत्र। वाक्यामृत की वृष्टि करि, सन्तोषे जन तत्र ॥

(कवित्त)

ईश अवराधक, शुभसत्यता प्रकाशक, अवगुणादि नाशक, सुशासक विज्ञान के,
देशगति सुधारैं, वेदसम्मत प्रचारैं, वाक्य उचित उचारैं, नहिं ग्राहक धनदान के।
विद्यानुरागी, असत्य मत त्यागी, ऐसे बड़भागी, हितचिन्तक प्रजान के,
"सीताराम" पुलकित ह्वै, पुनि२ धन्यवाद देत, कहां लगि गाऊं गुण, आर्य्यमहान् के ॥

आपका शुभचिन्तक—
सीताराम चतुर्वेदी
(मैनपुरी)

और उसी दिन अनेक आर्य लोगों ने नगर में जहां तहां व्याख्यान देना प्रारम्भ किया। इस व्याख्यान के पश्चात् आर्य लोगों को फिर वही चिन्ता लगी कि ता० १९ को कब से शास्त्रार्थ होगा। इसलिए एक पत्र सेठ फूलचन्दजी के नाम भेजा—

॥ ओ३म् ॥

सेठ फूलचन्दजी योग्य···आप कृपा करके बहुत शीघ्र उत्तर दीजिए कि कल शास्त्रार्थ का आरम्भ किस समय से होगा। प्रभात समय शास्त्रार्थ का निश्चय होने में बड़ी हानि होती है, इससे अभी शास्त्रार्थ का समय निश्चय करके सूचित कीजिए।

रात्रि ८ वजे, प्र० चैत्रसुदी ६ रवौ
१८-३-८८

द० गङ्गाराम,
मन्त्री, आर्य्यसमाज
फ़ीरोज़ाबाद

इस पत्र का उत्तर सेठजी ने कुछ नहीं दिया। और अनेक लोगों से जैनों की अन्तरंग चर्चा सुनी गई कि अब जैन शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते।

तब ता० १९ को प्रातःकाल एक पत्र जैनियों के पास और भेजा गया कि :—

॥ओ३म्॥

श्रीयुत लाला मञ्जूलाल, प्यारेलाल, फूलचन्दजी जैनधर्मावलम्बियों को विदित हो कि हमारा आपका शास्त्रार्थ इसी समय आरम्भ हो जावे, इसमें क्षणभर भी विलम्ब नहीं होना चाहिये। क्योंकि हमारे महाशय लोग बड़े-बड़े कार्य को छोड़कर बहुत दूर से केवल इसी कार्य के लिए आये हैं। यदि आप कहें कि हमारे मेले में हानि होती है और समय थोड़ा है, तो हमको पहिले ही विज्ञापन क्यों नहीं दिया कि हम मेले के दिनों में शास्त्रार्थ न करेंगे। यदि आपको किसी विषय में प्रश्न करना हो तो सभा में ही आकर कीजिए। यदि आप आज दस बजे से शास्त्रार्थ न करेंगे तो आपका पराजय समझा जावेगा। हम लोग अधिक प्रतीक्षा न करेंगे। इस पत्र का उत्तर तत्काल न देने से भी पूर्वोक्त व्यवस्था सिद्ध होगी।

आपका कृपाकांक्षी—
गंगाराम वर्मा,
मन्त्री, आर्य समाज, फ़ीरोज़ाबाद.

सोमवार,
१९-३-८८ ई०

नोटः—

इस पत्र का भी कुछ उत्तर नहीं दिया और न पत्र लिया। ता० १९ से पत्र लेना भी बन्द कर दिया। तब ता० १८ के संस्कृत के ५ वें पत्र का उत्तर संस्कृत में लिखकर भेजा गया, सो भी नहीं लिया। पीछे समाज के दो चार आदमी सज्जन लोग ले गए तब भी सेठजी ने पत्र न लिया। तब यह कहा गया कि आप पत्र नहीं लेते तो यह लिखा दीजिये कि हम पत्र नहीं लेते। सो यह भी नहीं लिखा। तब आर्य लोगों ने शहर के दो चार लोगों को (जो आर्यसमाज में वा जैनमत में नहीं थे) कहा कि आप इस पत्र को सेठजी के समीप ले जाइए। वे लोग ले गए, तब भी पत्र नहीं लिया, परन्तु आर्य लोगों ने उनको साक्षी कर लिया। वह आर्य्यों का भेजा छठा पत्र यह था कि :—

जैनियों के पांचवे पत्र के उत्तर में आर्य्यों का छठा पत्र :—

पूर्वप्रहितभावत्कपत्रे केवलं प्रमाणस्वरूपभेदविषयाणां प्रश्नो जातः। इतश्च ते प्रदर्शिताः। अधुना प्रतिभाति चैतद्यद्भावत्कैस्तेषां लक्षणानभिज्ञैर्भूयते। अतश्च तानि प्रकारान्तरेण देवानां प्रियावगमाय पुनः प्रतिपाद्यन्ते। प्रत्यक्षानुमानोपमानोपमानशब्दाः प्रमाणानीति संख्या चतुष्टयविशिष्टं तार्किकसंमतं प्रमाणस्वरूपम्। वैशेषिकराद्धान्ते प्रत्यक्षं चानुमानं चेति प्रमाणद्वयम्। साङ्ख्ययोगयोश्च सिद्धान्ते प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणनीति प्रमाणत्रयम्। पूर्वमीमांसक मतानुसारिणस्तु प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दैतिह्यार्थापत्तिसम्भवाभावा अष्टौ प्रमाणानि मन्यन्ते। उत्तरमीमांसकास्तु व्यवहारदशायां ह्यष्टौ प्रमाणान्युररीकुर्वन्ति। लक्षणानि च प्रत्यक्षानुमानिक्यौपमानिकीशाब्दीप्रमाणां करणं तत्तत्प्रमाणम्। यथा च प्रात्यक्षप्रमायाः करणं प्रत्यक्षं प्रमाणमित्यादिवेपेलिमम्। अनिर्दिष्टप्रवक्तृकं पारम्पर्यक्रमगतज्ञानकरणमैतिह्यम्। अर्थादापत्तिरर्थापत्तिः यत्राभिधीयमानेऽर्थे योऽन्योऽर्थः प्रसज्यते साऽर्थापत्तिः सम्भवो नामाविनाभावितोऽर्थस्य सत्ताग्रहणादन्यस्य सत्ताग्रहणम्। अभावविरोध्यभूतं भूतस्येति। प्रदर्शितप्रमाणस्वरूपसंख्यालक्षणेषु सत्यां विप्रतिपत्तौ अर्द्धघटिकापरिमितसमयेन सप्रमाणं प्रदर्शनीया। तुलामन्तरेणेत्यारम्य कथनीयेत्यन्तं पूर्वापरविरोधादनेकपराभूतिविशिष्टत्वात् सर्वथोपेक्ष्यः इलिकुलेख इत्यलमतिपल्लवितेन।

ह० भीमसेनशर्मणः ह० देवदत्तशर्मणः

भाषानुवाद :—

आपके पहिले पत्र में प्रमाण के स्वरूप, भेद और विषय का प्रश्न था, इससे स्वरूपादि विषयों का उत्तर दिया गया। अब जान पड़ता है की आप उनके लक्षणज्ञान से सर्वथा शून्य हैं, इसलिए वे प्रमाणस्वरूपादि प्रकारान्तर से तुमको बोध होने के लिए दिखाये जाते है। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ये चार प्रमाण नैयायिक सम्मत हैं। वैशैषिक शास्त्र में प्रत्यक्ष, अनुमान दो प्रमाण माने हैं सांख्य और योगशास्त्र में प्रत्यक्ष अनुमान और आगम तीन प्रमाण माने हैं। पूर्व मीमांसा के चार न्याय वाले, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव आठ प्रमाण माने हैं। उत्तर मीमांसा में भी व्यवहार दशा में उक्त आठ प्रमाण हैं। प्रमाणों के लक्षण प्रत्यक्षादि बुद्धियों का तत्तद्विषय में यथावत् होना प्रत्यक्षादि प्रमाण हैं, इत्यादि प्रत्येक के लक्षण भी संस्कृत में लिखे हैं। यदि इन लिखित प्रमाण के स्वरूपादि में कुछ सन्देह रहे तो प्रमाणसहित आध घड़ी में उत्तर दीजिए। आगे जो तुम्हारे पञ्चम पत्र में "तुलामन्तरेण०" इत्यादि लेख हैं वह पूर्वापर विरुद्ध होने से अनेक प्रकार से तुम्हारा पराजय प्रकट करता है। इसलिए उपेक्षणीय है। इति शम्॥

नोट :—

यह पत्र न लिया और जैनियों की ओर से प्रबन्धकर्त्ताओं ने सभापति ज्वालाप्रसादजी से यह निश्चय किया कि अब शास्त्रार्थ करना बन्द कर दिया जावे और जैनियों की ओर से यह न मालूम हो कि जैन लोग शास्त्रार्थ नहीं करना चाहते, किन्तु उपद्रव के भय से प्रबन्धकर्त्ताओं ने शास्त्रार्थ होना बन्द कर दिया। इस प्रकार का एक पत्र जैनप्रबन्धकर्त्ताओं ने बनाकर सभापति के हस्ताक्षर करा लिए, पर आर्यप्रबन्धकर्त्ताओं के पास लाये तो इन्होंने हस्ताक्षर न किये

और कहा कि जैन लोग यदि शास्त्रार्थ करना चाहें तो जैनों और आर्य्यों की ओर से दश-दश आदमी एक स्थान में दश-२ हाथ पर बैठे रहें, बीच में पुलिस बैठी रहे, कोई किसी से बोले नहीं। वा कोई प्रतिष्ठित रईस प्रश्न करे उसका उत्तर अपनी-अपनी विद्या वा मतानुसार दोनों पक्ष वाले रईस के प्रति देवें। इत्यादि अनेक प्रकार निकल सकते हैं, कि जिससे उपद्रव कदापि न होवे। परन्तु जैनों ने किसी की न सुनी। शास्त्रार्थ करने से सर्वथा हट गए।

इसके पश्चात् आर्य्य लोगों ने ता० २० दिन मंगलवार को एक विज्ञापन शहर में दिया कि :–

॥ ओ३म् ॥

सर्व सज्जनों को विदित किया जाता है कि किसी कारण से हमारे जैन भाइयों के शास्त्रार्थ न करने के कारण हमारे विद्वान पुरुष स्वस्थान को आज पधारेंगे। इससे हम फिर भी १ घण्टे का अवकाश जैनमतावलम्बियों को देते हैं कि शंकानिवारण या शास्त्रार्थ करना चाहें तो आकर करें। विद्वानों के चले जाने के बाद उनका शास्त्रार्थ के लिए कहना माननीय न होगा।

प्र० चैत्र शु० ८ भौम दिन,
२०-३-८८ ई०

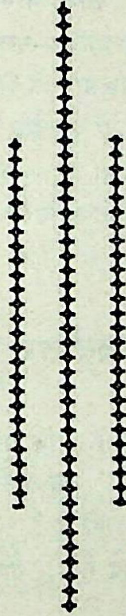
गंगाराम वर्मा,
मंत्री, आर्य्यसमाज, फ़ीरोज़ाबाद.

इसके पश्चात् सब लोग अपने अपने नगरों को पधारे, जो बाहर से आए थे। इस प्रकार शास्त्रार्थ समाप्त हुआ।



सत्रहवां शास्त्रार्थ

स्थान : काशी (उत्तर-प्रदेश)



दिनांक : **सन् १८७९ ई० (लगभग) "स्वामी दयानन्द जी-महाराज के काशी में चतुर्थ बार आने के समय"**

विषय : **विभिन्न वैदिक सिद्धान्तों पर (प्रश्नोत्तर)**

प्रश्नकर्त्ता : **श्री माधवराव जोशी (नेपाल निवासी) (अमर शहीद श्री शुक्रराज जी शास्त्री के पिताजी)**

उत्तर दाता : **महर्षि दयानन्द जी महाराज**

उपस्थित : **जरनल डम्बर जंग बहादुर**

नोट : **यह लुप्त सामग्री पूज्य अमर स्वामी जी महाराज द्वारा प्राप्त हुई।**

महर्षि दयानन्द जी से भेंट

नेपाल राज्य में—ललित पत्तन (पाटन) नामक एक नगर है जिसको पाटन—कहा जाता है, इस नगर में एक समृद्ध और प्रतिष्ठित जोशी परिवार रहता था—उसमें श्री माधवराव जोशी—एक योग्य व्यक्ति थे, नेपाल राज्य में उनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी राज्य परिवार में भी उनका अच्छा सम्मान था।

जोशी ने सुना कि एक अद्‌भुत सन्यासी जिसका नाम दयानन्द है भारत में—सनातन धर्म का प्रबल खण्डन करता है वह मूर्तिपूजा—अवतारवाद और मृतकश्राद्ध आदि—सनातन धर्म के सिद्धान्तों के विरुद्ध—व्याख्यानों द्वारा प्रचार करना तथा इन मन्तव्यों के मानने वालों को शास्त्रार्थ के लिए ललकारता है।

स्वामी दयानन्द जी उन दिनों काशी में आये हुए थे जोशी जी पता लगाते-लगाते उनके पास पहुंच गए—संन्यासी और विद्वान् का सम्मान ही करना चाहिये इस भावना से वह—ऋषि दयानन्द के चरणों में शिव भक्त हाथ जोड़ प्रणाम करके उनके समीप बैठ गए तथा जिज्ञासा के साथ उन्होंने ऋषि से कुछ प्रश्न किए और ऋषि ने बड़ी साधुता द्वारा उनके प्रश्नों का उत्तर दिया। आप भी पढ़िये—

"अमर स्वामी सरस्वती"

प्रश्नोत्तर

पं० माधवराव जोशी—जातिभेद है वा नहीं ?

महर्षि दयानन्द जी महाराज—मनुष्य, पशु, पक्षी आदि पृथक् जाति हैं यही जातिभेद है।

पं० माधवराव जोशी—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जातियों का शास्त्रों तथा लोक व्यवहार में जो भेद पाया जाता है क्या वह जाति नहीं और क्या यह जाति भेद नहीं है ?

महर्षि दयानन्द जी महाराज—यह जाति भेद नहीं, वर्ण भेद है सो यह भेद गुण कर्म, स्वभाव से है, जन्म से नहीं।

पं० माधव राव जोशी—ईश्वर, साकार (मूर्तिमान्) है या अमूर्त—निराकार है ?

महर्षि दयानन्दजी महाराज—परमेश्वर—निराकार—सच्चिदानन्द स्वरूप है।

पं० माधवराव जोशी—परमेश्वर को प्राप्त करने का क्या उपाय है ?

महर्षि दयानन्द जी महाराज—यथावत् योगसाधन करने से परमेश्वर की प्राप्ति होती है।

पं० माधवराव जोशी—वह योग साधन क्या है, और वह किस प्रकार किया जाता है ?

महर्षि दयानन्द जी महाराज—यम, नियम्, आसन, प्राणायाम्, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि यह योग के ८ (आठ) अंग हैं।

भले प्रकार—सिद्धि के लिए तीन घड़ी (लगभग एक घण्टा) रात्रि शेष रहते—उठ—शौचादि से निवृत्त ह आसन लगा, प्राणायाम करके—ओ३म् या ओ३म् सहित गायत्री का अर्थ सहित जाप करते जाओ। यदि तुम्हारा संस्कार अच्छा होगा तो ईश्वर प्राप्ति अवश्य होगी।

पं० माधव राव जोशी—सांख्य शास्त्र में ईश्वर असिद्ध है ऐसा क्यों कहा है ?

महर्षि दयानन्द जी महाराज—सांख्य दर्शन के कर्त्ता—महर्षि कपिलमुनि अनीश्वरवादी नहीं थे।

"ईश्वरासिद्धे" का अभिप्राय यह है कि "ईश्वर जगत्" का उपादान कारण सिद्ध नहीं हो सकता है (अर्थात् वह जगत् का निमित्त कारण है। भ्रष्ट बुद्धि लोगों के भाष्य पढ़ने से यह भ्रम हो जाता है कि इस सूत्र में ईश्वर को "असिद्ध बताया है।"

पं० माधव राव जोशी—क्या छओं दर्शन परस्पर विरुद्ध हैं ?

महर्षि दयानन्द जी महाराज—नहीं ! छओं दर्शनों में अविरोध हैं। छः दर्शनों में सृष्टि के छः कारणों का विशेषता से वर्णन है (१) न्याय में परमाणुओं का, (२) मीमांसा में कर्म का, (३) सांख्य में तत्वों का, (४) योग में बुद्धि ज्ञान का और (६) वेदान्त में सृष्टिकर्त्ता ब्रह्म का विशेष वर्णन है दर्शनों में परस्पर कोई विरोध नहीं है।

पं० माधव राव जोशी—यज्ञोपवीत पहनना चाहिये या नहीं ?

महर्षि दयानन्द जी महाराज—जो सदाचारी, विद्वान्, वेदाभ्यासी, धर्मात्मा लोग हैं उनको यज्ञोपवीत अवश्य पहनना चाहिए। मूर्ख—दुराचारी को नहीं पहनना चाहिए।

इतने प्रश्नोत्तरों के पश्चात् ऋषि ने गायत्री मन्त्र का उपदेश किया। सन्ध्या करने की प्रतिज्ञा स्वामी जी ने कराई। सत्यार्थ प्रकाश ऋषि के पास उस समय नहीं था, इस कारण उससे उस समय वंचित रहे।

काशी से नैपाल पहुंचने पर माधवराव जी जोशी—जनरल डम्बर जंग बहादुर जी के साथ—नैपाल राज्य में ही "पोरवरा" नामक नगर में गए। वहां के नैपाली प्रसिद्ध वैद्य—चिनिया वैद्य ने माधव राव जी को उस ही समय अपने घर पर बुलाया।

वैद्य के घर पर रद्दी में—"सत्यार्थ प्रकाश" ऋषि दयानन्द का अमर ग्रन्थ पड़ा दिखाई दिया। जोशी जी ने उसकी रद्दी में से उठा लिया और वैद्य से कहा कि मैं इसको पढ़ूंगा और आपकी आयुर्वेद की कोई उत्तम पुस्तक भेज दूंगा। वैद्य जी ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया।

जोशी जी ने सत्यार्थ प्रकाश को बार-बार पढ़ा और उससे बहुत ही प्रभावित हुए पौराणिक पन्थ समूल उनके हृदय व मस्तिष्क से निकल गया। सत्यार्थ प्रकाश में बताये वैदिक सिद्धान्तों का जीवन भर प्रचार करने का उन्होंने प्रण कर लिया।

मूर्तिपूजा, मांस भक्षण, मद्यपान आदि बुराइयों के विरुद्ध माधवराव जी ने प्रबल प्रचार प्रारम्भ कर दिया इससे पौराणिक पोंगा पन्थियों ने उनका घोर विरोध किया उस समय नैपालराज्य का सब कारोबार राणाओं के हाथ में था, उनमें सेचन्द्र शमशेर राणा नैपाल के प्रधान मन्त्री थे वह महाराजा और ३सरकार कहलाते थे। नामधारी पण्डितों ने माधवराव जोशी के विरुद्ध उनको बुरी तरह भड़काया और उनको राजद्रोही भी बताया, नास्तिक धर्मविरोधी, धर्मभ्रष्ट आदि न जाने क्या-क्या बताया।

राजपुरोहित ने शास्त्रार्थ का बहाना करके माधवराव जी को चन्द्र शमशेर जी राणा के दरबार में बुलाया माधवराव जी के हितैषियों से माधवराव जी को बताया कि वहां शास्त्रार्थ नहीं होगा, आपको पिटवाया जायेगा यह सुनकर भी वह दरबार में चले ही गये उन्होंने सोच लिया कि—पिटवाने का काम तो वह लोग यहां भी कर सकते हैं जो भी हो वह हो ओखली में सिर दिया है तो मूसलों की चोटें पड़नी ही हैं।

माधवराव जी के साथ पंजाब निवासी मास्टर गुरु दयाल जी बी० ए० भी गए वह भी आर्य समाजी थे। दरबार में दो-चार ऊट-पटांग से प्रश्न करके उत्तर देने पर माधवराव जी को मारना-पीटना आरम्भ कर दिया, खूब पीटा उनका शरीर लोहू-लुहान हो गया, मास्टर जी को भी बुरी तरह पीटा गया।

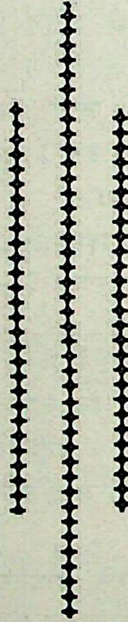
बुरी तरह क्षतविक्षत होने पर माधवराव जी ने कहा कि यह राज दरबार है यहाँ तो सबकी रक्षा ही होनी चाहिए, यहां ही इस प्रकार मारा जाता है तो बाहर क्या कुछ न होगा ? हम भी तो इस राज्य की ही प्रजा हैं आप तो फांसी भी दे सकते हैं फिर दरबार में आपके सामने हमको पीटा जाय तो कहाँ रक्षा होगी ?

ऐसा सुनकर राणा जी ने मार-पीट तो बन्द करवादी पर माधवराव जी को जेल में भेज दिया और मास्टर गुरुदयाल जी बी० ए० को राज्य से बाहर निकालने के लिए पुलिस के हवाले कर दिया।

पंजाबी मास्टर गुरुदयाल जी को पुलिस राज्य से बाहर निकालने के लिए ले गई पर उनका कुछ भी पता नहीं चला कि वह कहां गए अनुभव यह ही किया जाता है कि उनको कहीं ले जाकर समाप्त कर दिया गया। एवं माधवराव जी के पैरों में मोटी-मोटी बेड़ियां डलवाकर जेल भेज दिया गया। **"अमर स्वामी सरस्वती"**

अठारहवां शास्त्रार्थ

स्थान : राज दरबार (नेपाल)



विषय : मूर्ति पूजा उचित है या अनुचित ?

समय : सन् १९४१ ई० (लगभग)

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पं० शुक्रराज जी शास्त्री (अमर शहीद)

पौराणिक पक्ष की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : गुरु श्री पं० हेमराज जी

उपस्थित व्यक्ति : श्री ३ महाराज चन्द्र शमशेर जी एवं अन्य सभी दरबारीगण।

इस शास्त्रार्थ के विषय में आवश्यक बातें

शुक्रराज जी नेपाल से आकर गुरुकुल सिकन्दराबाद में ही रहते थे, जो माधवराव जोशी के पुत्र थे।

माधव राव जी दार्जिलिंग चले गये। वहां आर्य समाज की स्थापना की और बहुत प्रचार कार्य किया। हमारे पूज्य गुरू जी श्री पं० भोजदत्त जी आर्य मुसाफिर दार्जिलिंग जाते थे तब माधव राव जी जोशी के घर में भोजन करना पसन्द करते थे।

श्री शुक्रराज जी जब गुरुकुल सिकन्दराबाद में पढ़ते थे तब मैंने (अमर सिंह आर्य पथिक) ने उनको कई बार देखा, बहुत सुन्दर सुडौल और सुदृढ़ उनका शरीर था। बहुत हंसमुख प्रसन्नचित पुरुषार्थी और परिश्रमी युवक थे। मेरे साथ उनका बहुत अच्छा प्रेम था। वे बड़े ही श्रद्धावान थे।

सन् १९४० में शुक्रराज जी ने लाहौर जाकर पंजाब यूनिवर्सिटी में शास्त्री की परीक्षा दी और उसमें अच्छे नम्बर लेकर उत्तीर्ण (पास) हुए, गुरुकुल महाविद्यालय सिकन्दराबाद से स्नातक हुए और शास्त्री के साथ-साथ गुरुकुल से विद्याभूषण की उपाधि मिली।

नेपाल को प्रस्थान—

स्नातक होकर नेपाल पहुंचे और महाराजा चन्द्र शमशेर ३ सरकार से भेंट की। एवं अपने सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया।

महाराज ने कहा कि आपका यहां पण्डितों के साथ दरबार में शास्त्रार्थ होना चाहिए, जिससे पता लगे कि भारत में क्या-२ पढ़कर आये हो। श्री शुक्रराज शास्त्री जी ने कहा—श्री महाराज। आपने मेरे पिताजी : साथ भी शास्त्रार्थ अपने दरबार में करवाया था और उनको दरबार में ही इतनी मार पड़ी थी जो आयु भर याद रहेगी।

श्री ३ महाराज चन्द्र शमशेर जी ने कहा—उस समय मुझसे बहुत बड़ी भूल हो गई थी, उसके लिए मैं अब तक पछताता हूं। अब ऐसा नहीं होगा। आप आओ आपका शास्त्रार्थ सब लोग शान्ति से सुनेंगे। शास्त्री जी ने शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया और नियत समय में ही दरबार में अकेले ही पहुंच गए।

"अमर स्वामी सरस्वती"

शास्त्रार्थ प्रारम्भ

श्री ३ महाराज चन्द्र शमशेर जी—

हां ! गुरु जी अब इन शास्त्री जी के साथ शास्त्रार्थ आरम्भ कीजिए। आप प्रश्न कीजिए ये उनका उत्तर देंगे। देखते हैं ये भारत में क्या-क्या पढ़कर आये ?

गुरु हेमराज जी—मूर्ति पूजा करना ठीक है कि नहीं ?

पं० शुक्रराज शास्त्री जी—किसकी मूर्ति पूजा करना।

गुरु हेमराज जी—परमेश्वर की।

पं० शुक्रराज शास्त्री जी—परमेश्वर निराकार रूपरहित और अमूर्त है उसकी मूर्ति किस प्रकार ली और वनाई जा सकती है ?

गुरु हेमराज जी—राम तो मूर्तिमान परब्रह्म परमेश्वर हैं उनकी मूर्ति तो बन सकती है।

पं शुक्रराज शास्त्री जी—

बालमीकीय रामायण में लिखा है कि श्री राम जी ने सीता के वियोग में अत्यन्त दुःख अनुभव किया और कहा—

न मद्विधो दुष्कृत कर्मकारी,
मन्ये द्वितीयोऽस्ति वसुन्धरायाम्।
पूर्वं मया नूनमभीप्सितानि,
पापानि कर्मा ण्यसत्कृत कृतानि।
तत्रायमद्या पततो विपाको,
दुःखेन दुःखं यदहम् विषामि॥

अर्थ—मेरे समान पाप करने वाला भूमि पर कोई और है यह मैं नहीं मानता हूं अर्थात् मैं बड़ा पाप करने वाला अद्वितीय व्यक्ति हूं।

कोई यह कहता कि हमने आपको कोई पाप कर्म करते नहीं देखा—तो श्री राम जी ने आगे और कहा कि, 'पूर्व जन्म में मैंने निश्चय ही पाप कर्म किए थे जिनका विपाक—फल अब मेरे साथ विद्यमान है कि दुःख से दुःख में मैं प्रविष्ट होता जाता हूं।

श्री राम जी अत्यन्त दुःखी हो रहे हैं और अपने पिछले कर्मों का फल इस दुःख को बता रहे हैं—पर योग दर्शन में पतञ्जलि जी ईश्वर का लक्षण यह बताते हैं—

"क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः।"

क्लेश, कर्म विपाक—कर्म फल आशय पूर्व जन्म कृत कर्मों के संस्कार इनसे सर्वथा सम्पर्क रहित पुरुष विशेष-ईश्वर है।

जिसको क्लेश होता है जो उत्तम, मध्यम निकृष्ट कर्म करता है और जो पूर्व किए अपने शुभाशुभ कर्मों का सुख दुःख रूप फल भोगता है वह परब्रह्म कैसे हो सकता है ?

ऋषि विश्वामित्र की आज्ञा पाकर श्री राम जी ने संध्या वन्दन किया—

कौशल्या सुपुत्रा राम, पूर्वा संध्या प्रवर्तते।
उत्तिष्ठ नर शार्दूल, कर्त्तव्यं दैवमान्हिकम्॥

विश्वामित्र जी ने कहा—कौशल्या की अच्छी सन्तान राम ! प्रातः संध्या का समय हो गया है । हे नर केसरी ! उठो और संध्यादि नित्य कर्म करो ।

वाल्मीक जी कहते हैं—

तस्यषः परमोवारं, वचः श्रुत्वा नरोत्तमौ ।
स्नात्वा कृतोदकौ वीरौ, जेपतुः परमं जपम् ॥

उस ऋषि के परम उदार वचनों को सुनकर राम और लक्ष्मण दोनों उत्तम नरों ने स्नानादि से निवृत्त होकर परम जप (ओ३म् और गायत्री) का जाप किया ।

परमेश्वर ही परमेश्वर की संध्या, उपासना कैसे और क्यों करता ? अतः स्पष्ट है कि श्री राम जी श्रेष्ठ मनुष्य थे परब्रह्म नहीं ।

तुलसी दास जी की रामायण (रामचरित मानस) में भी कहा गया है—

प्रात समय मुनि आयसु दीन्हा ।
तबहीं सन्ध्या वन्दन कीन्हा ॥
विगत दिवस मुनि आयसु पाई ।
सन्ध्या करन चले दोऊ भाई ॥

ईश्वर, निराकार अमूर्त है इसलिए मूर्ति पूजा असिद्ध है ।

गुरु हेमराज जी—श्रीकृष्ण तो साक्षात् परब्रह्म हैं उनकी मूर्ति बन सकती है ?

पं० शुक्रराज शास्त्री जी—श्री कृष्ण जी ने स्वयं गीता में कहा है कि—

ईश्वर सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।

अर्थात् हे अर्जुन ! ईश्वर सबके हृदय में स्थित है ।

तमेव शरणं गच्छ, सर्व भावेन भारत ।
तत् प्रसादात् परां शान्तिं, स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥
गीता १८/६१-६२

हे अर्जुन ! उस ही की शरण को तुम सर्व भावनाओं से युक्त होकर प्राप्त करो । उसकी ही कृपा से तुम परम शान्ति और मोक्ष को प्राप्त करोगे ।

बहिरन्तश्च भूतानां, अचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वादवज्ञेय दूरस्थं चान्तिके च तत् ॥
सर्वेन्द्रिय गुणाभासं, सर्वेन्द्रिय विवर्जितम् ।
गीता १३/१३-१४

वह ईश्वर सबके बाहर और सबके भीतर है । वह सबको चलाता है और स्वयं अचल है । सूक्ष्म होने के कारण कठिनाई से जाना जाने योग्य है । वह दूर से दूर तक तथा निकट से निकट है । सारी इन्द्रियों के गुणों का उसमें प्रकाश है पर सब इन्द्रियों से रहित है ।

यहाँ श्री कृष्ण जी अपने से भिन्न जानकर ईश्वर का वर्णन कर रहे हैं । इससे सिद्ध है कि वह परमेश्वर नहीं थे ।

गुरु हेमराज जी—

सारे संसार में शिव लिंग की पूजा होती है। शिव लिंग की स्थापना सारे संसार में की जाती हूं तो शिव लिंग की पूजा करने वाले सब संसार के लोग मूर्ख ही हैं ?

पं० शुक्रराज जी शास्त्री—

सारे संसार में तो न शिवलिंग की स्थापना की जाती है, न सारे संसार में शिवलिंग की पूजा होती है। केवल भारत में ही शिवलिंग है सो भी सारे भारत में नहीं है। भारत में भी कहीं है कहीं नहीं है।

भूमण्डल में ३ अरब से अधिक मनुष्य रहते हैं और भारत में लगभग ३३ करोड़, उनमें से भी केवल थोड़े से लोग शिवलिंग पूजने वाले होंगे। भारत में ईसाई, मुसलमान, जैन, बौद्ध, पौराणिकों में भी वैष्णव आदि शिवलिंग की पूजा नहीं करते हैं। क्या इन थोड़े से लोगों का नाम सारा संसार है ?

शिवलिंग की पूजा अर्थात मूत्रेन्द्रिय की पूजा वाम मार्गी मूर्खों और स्वार्थियों ने ही चलाई है। इसमें सन्देह नहीं है। इसी मूर्ति पूजा के कारण देश को भारी हानि उठानी पड़ी, करोड़ों अरबों रुपयों की मन्दिरों की सम्पति लूटी गई।

नोट—

इतने प्रश्नोत्तर होने पर महाराजा चन्द्र शमशेर राणा ने कहा कि अब बहुत देर हो गई है इसलिए शास्त्रार्थ बन्द कर दो। बस बन्द हो गया। कोई विद्वान बुद्धिमान और न्याय प्रिय महाराजा होता तो शुक्रराज जी का भारी सम्मान करता और उनकी विजय की घोषणा करता "अन्धेर नगरी चौपट राजा।"

महाराजा चन्द्र शमशेर ३ सरकार ने मन में सोच लिया कि इसने दयानन्दी ढ़ंग की विद्या पढ़ी है यह राज्य में रहेगा तो उथल-पुथल मचा देगा इसलिए इसको जमने नहीं देना चाहिए।

प्रकट रूप में कहा—

अच्छा शास्त्री जी आप अच्छे विद्वान हैं अब जाइये फिर कभी आपको बुलाया जायगा।

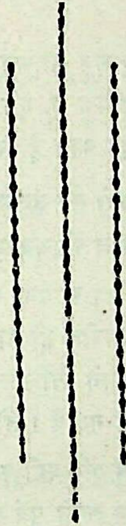
इसके पश्चात् उन पर क्या बीती ? एवं अन्त में उनको फांसी पर लटकना पड़ा पूर्ण जीवन वृत्त जानने के लिए मेरी पुस्तक "शुक्रराज शास्त्री का धर्म बलीदान" जो लाजपतराय जी ने अमर स्वामी प्रकाशन विभाग से ही प्रकाशित कराई है—मंगाकर पढ़ें।

"अमर स्वामी सरस्वती"



उन्नीसवां शास्त्रार्थ

स्थान : किराणा (मुजफ्फरनगर) उ० प्र०



विषय :	मन्त्र-ब्राह्मण दोनों वेद हैं वा केवल मन्त्र भाग ही ?
दिनांक :	१९ दिसम्बर सन् १८९३ ई०
पोराणिकों की ओर से शास्त्रार्थ कर्ता :	श्री पं० गोकुल चन्द जी,
" " " सहायक :	श्री पं० गोकुला नन्द जी,
आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्ता :	श्री पं० तुलसीराम स्वामी जी,
शास्त्रार्थ के अन्त में निर्णयार्थ कुछ मुवाज़िज़ व्यक्तियों-की राय :	श्री सादिक़ हुसैन वकील, श्री मुहम्मद हुसैन बक्स, श्री अहमद हसन, श्री मौहम्मद जफ़रयाब अली-आदि
आर्य समाज के मन्त्री :	रामकृष्ण मन्त्री, आर्य समाज-'बनत' (जि० मुजफ्फर नगर) उत्तर प्रदेश
पौराणिक पक्ष के मंत्री :	श्री पं० किशोरी लाल जी
अन्य उपस्थित उपदेशक व सम्मानित व्यक्ति :	श्रीमान् पं० गोविन्द सहाय शर्मा (उपदेशक-मेरठ सभा) वपौराणिक पक्ष की ओर से श्री पं० हरवंशलाल जी एवं अनेकों अन्य दोनों पक्षों के रईस एवं कस्बे किराणा व बाहर के मुवाजिज़ व्यक्ति ।
आभार :	मैं श्री जगदीश जी वेदालंकार जो गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के पुस्तकाध्यक्ष हैं) का आभार मानता हूं जिनकी मदद से इस शास्त्रार्थ की मूल कापी प्राप्त हुई ।

प्रकाशकीय

प्रिय ! पाठक गण !! इस शास्त्रार्थ को हुए अब लगभग ६२ वर्ष व्यतीत हो गए। जिसके पढ़ने पर पता लगता है कि "शास्त्रार्थ" हमारे वैदिक प्रचार में कितने सहायक थे, एवं पुराने उपदेशकों की लगन एवं व्यवहार का पता भी चलता है। पूज्य अमर स्वामी जी महाराज ने सच ही कहा है कि—

"पुराने आर्य समाजियों ने अपने घरों को उजाड़कर आर्य समाज को बनाया था।
आजकल के आर्यसमाजी आर्य समाज को उजाड़कर अपने घरों को बना रहे हैं॥"

पहले विद्वानों ने कितने परिश्रम व मुसीबतों का सामना कर करके आर्य समाजों की स्थापना की थी, वैदिक धर्म का प्रचार किया था। परन्तु आज उसका बिल्कुल विपरीत हो रहा है, आर्य समाजों में ताले लगे पड़ें हैं। जगह-जगह पर लड़ाई झगड़ों का वातावरण फैला हुआ है। जो अपने निजि स्वार्थों को साबित करता है। अधिकारी गण भी वैसे ही हो गए हैं, एवं उपदेशक भी पक्के व्यापारी बनकर रह गए हैं। तो ऐसी स्थिति में समाज का प्रचार कैसे हो ?

सभी कुछ उल्टा हो रहा है, सभा संस्थाओं में भी वही स्वार्थ घुसा होने के कारण प्रचार बिल्कुल चौपट हो गया है। परमेश्वर करे इन्हें सद्बुद्धि मिले, एवं कम से कम अपने पूर्वजों की इस तपस्या की तरफ ध्यान दें। तो इस स्वार्थ परती से दूर रहकर शान्तिपूर्वक समाज का प्रचार करें। एक बार फिर वही प्रचार की धूम मच जावे।

क्या जमाना था कि अगर कहीं कोर्ट-कचहरी में पता चल जावे था कि ये आर्य समाजी हैं। तो उसे बिना गवाही के छोड़ दिया जाता था, आज उसका बिल्कुल विपरीत है। आखिर क्यों ? मेरे आर्य भाई अपने गिरहबान में झांककर जिस दिन देखेंगे और इसका उत्तर जानना चाहेगें तो स्वयं को ही दोषी पायेंगे।

इस भाग में मैंने और भी पुराने से पुराने शास्त्रार्थ संग्रहीत करने का यत्न किया है। तो भी जो शेष सामग्री रह जावेगी उसे तीसरे भाग में दे दिया जावेगा ! मेरा दृढ़ संकल्प है कि किसी भी तरह की शास्त्रार्थ सामग्री हो प्रकाशित कराकर सुरक्षित करा सकूं : जबकि मेरा मुख्य कार्य तो "सिविल व अन्य कार्यों के निर्माण की ठेकेदारी का है।" अब वही मेरी आय का साधन है. पुस्तक प्रकाशन केवल मेरा शौक रह गया है। जिसके प्रैरणा स्त्रोत केवल **"पूज्य महात्मा अमर स्वामी जी महाराज"** ही हैं। जिनका मैं जन्म-जन्मान्तरों तक ऋणी रहूंगा।

किमधिकम् !!

निवेदक—
"लाजपतराय आर्य"

शास्त्रार्थ से पहले

विदित हो कि मैं पं० तुलसीराम स्वामी जो प्रायः कस्वा किराणा में उपदेशार्थ जाया करता था, और उपदेश वैदिक धर्म का किया करता था, एक वार जब कि मैं बाजार में उपदेश कर रहा था, तो पौराणिक पण्डितों ने एक चिट्ठी मेरे पास भेजी, यथा—

पत्री—आपकी इच्छा कुछ "मूर्ति विषयक शास्त्रार्थ" पैं हो तव आण (आ) कर अपने मन का संदेह कहो हम 'वेद से मूर्ति पूजन निश्चय करे देते हैं, आपको शुभं भूयात् ।

हस्ताक्षर— पं० किशोरीलाल
पं० हरवंशलाल

मैंने उत्तर दिया —

"प्रणाम करता हूं, जो आपने आश्मार्चन में वेद से निर्णय करा है, वह पत्र द्वारा भेज दीजिए खण्डन के सवूत हम पत्र द्वारा ही भेज देंगे ।"

इस पर किसी ने कुछ लेख न दिया परन्तु जुवानी यह निश्चय रहा कि १५ दिसम्बर सनं १८९३ को उभय पक्ष वाले अपने-अपने पन्डितों को वुलाएंगे, तव शास्त्रार्थ होगा । जिस पर आर्य समाज "वनत" (जि० मुजफ्फरनगर) की ओर से मैंने निम्नलिखित नियमों का पत्र रजिस्ट्री कराकर पण्डितों के पास भेज दिया गया—

(उर्दू से नकल तर्जुमा)

॥ ओ३म् ॥

विदित हो कि कुछ आर्य और कुछ हिन्दुओं के दरम्यान यह निश्चय हुआ कि प्रथम (प्रतिमा पूजन) द्वितीय (पितृ कर्म) का शास्त्रार्थ केवल वेद संहिताओं के प्रमाणों से किया जाए और सबको लाभ पहुंचाने के उद्देश्य से सिद्ध कर दिया जाय कि (प्रतिमा पूजन) और मरे हुओं को (पितर) मान कर उसका कर्म करना जैसा कि अविद्वानों के कारण आजकल प्रचरित है, वेद संहिताओं से सिद्ध होता है वा नहीं, इस प्रयोजन से इस शास्त्रार्थ को नियमानुसार करने के लिए और सबको इस शास्त्रार्थ से सत्य के फल प्राप्त होने के अभिप्राय से यह नियम स्थिर हुए हैं, इस शास्त्रार्थ का प्रबन्ध करने के लिए एक या दो महाशय "प्रधान" नियत होकर उनको वे अधिकार दिए जायेंगे । और फिर नियमानुकूल शास्त्रार्थ होगा ।

१. उज्ररत शास्त्रार्थ लिखता और लिखवाता जाय ।
२. ऐसे पूर्वोत्तर (उपरोक्त) पंक्तियों के प्रत्येक लेख पर दोनों के हस्ताक्षर करा लेवें ।
३. प्रत्येक पक्ष के कथन को वक्ता के द्वारा सब प्रकार समझ जो योग्य वार्तालाप होगा वक्ता की भाषा में लिखा जाएगा ।
४. आवश्यक व्यवस्था प्राप्त कर लें जिससे सम्पूर्ण तात्पर्य पूरा-पूरा प्रकट हो जाए ।

नोट · शास्त्रार्थ की नकल (मूल प्रति) से ज्यों की त्यों ली गई है । कहीं-कहीं पर उर्दू व अरवी वाक्यों को, कोष्ठक में देकर हिन्दी शब्दों में पाठकों की सुविधा के लिए उद्धृत कर दिया है । —सम्पादक

५. उक्त नियमानुसार पूर्व पक्ष वालों से पूछकर वह आवश्यक बातें जो उचित प्रतीत हों लिख लेवें।

६. ऐसी समस्त बातें जो सभा के प्रबन्ध में हानिकारक प्रतीत हों उनके रोकने के लिए प्रधान स्वयं इच्छानुसार उत्तम प्रबन्ध कर लेवें।

७. प्रत्येक प्रश्नोत्तर पत्र की तीन प्रति (कापी) कराकर एक-एक कापी दोनों पक्ष वालों को दी जाएगी और एक प्रधान के पास रहेगी, प्रधान कापियों पर उभय पक्ष के हस्ताक्षर करा लेवेंगे। और अपनी कापी पर भी उभय पक्ष के हस्ताक्षर करा लेवें, एवं अपने भी हस्ताक्षर तीनों प्रतियों पर कर देंगे।

८. समस्त लेख और समस्त शास्त्रार्थ मातृभाषा (आम फहम) में होगा परन्तु प्रमाण उसी भाषा में दिए जायेंगे जिसमें कि (जिस भाषा में) वे उपस्थित होंगे।

९. वेद संहिताओं से भिन्न पुस्तकों का प्रमाण अपनी प्रतिज्ञा को सिद्ध करने के लिए हिन्दू पण्डितों को अधिकार न होगा कि दें—क्योंकि आर्य गण वेदातिरिक्त किसी पुस्तक को नहीं मानते परन्तु अपने किए हुए अर्थों के साक्षी में केवल—शतपथ, ऐतरेय, साम, गोपथ, निघण्टु और निरुक्त का ही प्रमाण प्रस्तुत करेंगे, अन्यथा अर्थ अशुद्ध माना जावेगा। और आर्य पण्डितों को अपनी प्रतिज्ञा सिद्ध करने के लिए वेद संहिताओं से लेकर समस्त ग्रन्थों के प्रमाण देने का अधिकार होगा, क्योंकि हिन्दू पण्डित वेद तथा अन्य सब ग्रन्थों को मानते हैं।

१०. उक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त युक्ति से प्रतिज्ञा के सिद्ध करने के लिए प्रत्येक पक्ष को अधिकार होगा, परन्तु प्रधान जिन-जिन युक्तियों को योग्य समझेगा लिखवाया करेगा।

११. शास्त्रार्थ इस प्रकार आरम्भ होगा कि प्रथम प्रश्नकर्त्ता अपने पक्ष अर्थात् प्रतिज्ञा के सिद्ध करने में जितने प्रमाण रखता होगा सम्पूर्ण कह कर लिख देगा तदनन्तर उत्तर पक्षी, सम्पूर्ण प्रमाण जो पूर्व पक्षी के खंडन में जानता हो उसी प्रकार कहकर वह भी लिख देगा।

१२. प्रश्न कर्त्ता के प्रश्नान्त जहां तक इच्छा हो उत्तर पक्षी का उत्तर होगा। जब तक वह पक्ष समाप्त न हो, शास्त्रार्थ होता रहेगा, परन्तु प्रधान कों पक्षपात देखकर वा शास्त्रार्थ के तात्पर्य का बोध होकर शास्त्रार्थ बन्द कराने का अधिकार होगा।

१३. शास्त्रार्थ होने के पश्चात् सम्पूर्ण शास्त्रार्थ छापा जायेगा, इस शास्त्रार्थ के लिए सबको उचित होगा कि अपनी-अपनी सम्मत्यनुसार तात्पर्य निकाल लेवें।

१४. प्रत्येक पक्ष की ओर से पांच से अधिक सम्भाषण कर्ता न होंगे और उनके नाम शास्त्रार्थ करने से पूर्व प्रधान जी को लिखा दिए जायेंगे और प्रधान प्रतिपक्षी को एक-दूसरे के नाम बता देंगे।

१५. उन पांच महाशयों के अतिरिक्त जो शास्त्रार्थ के लिए नियत किए जावेंगे उनके अलावा अन्य पुरुषों को बोलने का अधिकार न होगा, और एक समय में एक से अधिक महाशय न बोल सकेंगे, अन्य सहायक पुरुषों को सम्मत्ति देने मात्र का अधिकार होगा। सो एक प्रश्नोत्तर में दस मिनट पर्यन्त तीन वार तक अर्थात् एक-एक सम्मति देने में दस-दस मिनट का समय सम्मति देने के लिए दिया जाएगा अधिक नहीं।

१६. जब किसी पक्ष वाले को अपना सहायक बदलने की आवश्यकता हो तो नवीन सहायक को पूर्व महाशय के प्रथम कथन का भार अपने ऊपर लेना होगा अर्थात् वह पूर्व सहायक के प्रश्नोत्तर का भी उत्तरदाता होगा, प्रत्येक पक्ष अपने पक्ष वालों में से निर्वाचित महाशय को सहायक नियत करेगा, अन्य को नहीं और सहायक नियत करने का प्रत्येक पक्ष को अधिकार होगा।

१७. यदि दोनों की ओर से कोई किसी प्रकार का अपशब्द यानी ख़िलाफ़ तहज़ीब का प्रयोग करेगा या किसी

प्रकार कोई पक्ष—विपक्ष के विरुद्ध करे तो सभापति स्वयं वा किसी पक्ष की प्रार्थना पर प्रथम रोक दे, दूसरी बार ऐसा होने पर इच्छानुसार प्रवन्ध करे।

१८. जब तक शास्त्रार्थ उक्त दोनों विषयों पर होता रहेगा, अर्थात् आरम्भ से समाप्ति पर्यन्त अन्य किसी विषय पर शास्त्रार्थ न होगा, और न करने का अधिकार किसी पक्ष को कदाचित भी होगा शास्त्रार्थ के पश्चात् सभापति की आज्ञानुसार अन्य विषय पर होगा, यदि आज्ञा न होगी तो नहीं होगा।

१९. प्रत्येक पक्ष को अपने शब्द-प्रमाण-युक्ति से और युक्ति को शब्द प्रमाण से मिला देना होगा, अन्यथा जिन पक्ष की पुष्टि उक्त नियम के प्रतिकूल होगी उसी समय प्रधान महाशय उसके कथन को निष्फल समझकर उसको रोक देंगे।

२०. जो-२ लोग शास्त्रार्थ करेंगे उन-उन को प्रथम स्पष्ट तथा लेख द्वारा यह प्रकट कर देना होगा कि हम अमुक-अमुक देवता की प्रतिमा बनाकर पूजना अपना धर्म समझते हैं, और यह भी सिद्ध करना होगा कि पीतल, चाँदी, सोना, काष्ठ और पाषाणादि की मूर्ति बनाकर पूजने में यह फल है, और न पूजने में यह दोष है। और उनके निर्माण की रीति परिमाण सहित और तोल सहित इत्यादि-२। और यह सब बातें वेद संहिताओं से सिद्ध करनी होंगी, यह नियम, धर्म सभा के पण्डितों के लिए है, और जो निराकार, अद्वितीय व्यापक ब्रह्म ही की उपासना धर्म समझते हैं उनको यह सिद्ध करना होगा कि प्रथम, ईश्वर के गुण, द्वितीय इस विषय की ईश्वर की प्रतिमा नहीं, तृतीय यह कि वेद में प्रतिमा पूजन का निषेध है, और जिसका पक्ष वेद से विवरण पूर्वक स्पष्ट सिद्ध न होगा, वही पक्ष पराजित समझा जायेगा, और उभयपक्ष का यह कर्त्तव्य होगा कि अपनी प्रतिज्ञा को अत्युत्तम रीति से सिद्ध करेगा। और अपर पक्ष को निषिद्ध करेगा, अर्थात् दोनों पक्ष वाले अपने-अपने पक्ष के दोषों को हटावें, और प्रतिवादी के पक्ष में प्रश्न करके दोष खड़े करते जायें, इसी को शास्त्रार्थ कहते हैं, और माना जायेगा, अतएव अन्य सब विषय इसी रीति पर स्पष्टतया सिद्ध करना होगा, परन्तु प्रथम मूर्ति पूजन पर शास्त्रार्थ आरम्भ होगा, क्योंकि यह विषय अन्य सब विषयों में मुख्य तथा प्रसिद्ध है अन्य सब विषय इसकी शाखा हैं और इसी पर हिन्दू धर्म निर्भर है।

२१. और शास्त्रार्थ कर्त्ता, मन्त्री, प्रधान, समाज तथा सभा के अतिरिक्त अन्य जिस किसी को सभापति सभा में आने की आज्ञा टिकट द्वारा वा अन्य किसी प्रकार से देगा वह आ सकेगा अन्य नहीं, क्योंकि उस सभा का भार उसके ऊपर है।

(नकल—राम कृष्ण, मन्त्री आर्य्य समाज-बनत)

वक्तव्य—

बारह दिसम्बर को उक्त नियम और निम्न लिखित पत्र भी आर्य्यों ने भेजा। (नक़ल उर्दू से तर्जुमा)

॥ ओ३म् ॥

आज दफ़्तर आर्य्य समाज बनत, १२ दिसम्बर सन् १८९३ ई०।

श्रीमान्,

श्रीयुत्! पण्डित हरवंश लाल साहब वगैरह नमस्ते!

आपकी सेवा में निवेदन है कि जो चिट्ठी आपकी हमारे पास विनावर शास्त्रार्थ प्रतिमा पूजन के बारे में आई है, बरतबक़ उसके हम आर्य्यगण बमूजिब क़वायद मुबाहसे मुजव्विज़े मुरसिले ख़िदमत वाला करने के साथ निहायत-खुशी के तैयार हैं, या सोलह दिसम्बर तक और निज़तारीख मज़कूरे को बज़रिये इश्तहारात् मुश्तहर करा चुके हैं कि जिसकी आपको ख़ूबी इत्तला है। अब आपको मज़ीद चिट्ठी के इत्तला देता हूं कि मैं ता० मज़कूरे को जरूर वा जरूरमये पं० श्री भीमसेन शर्मा व श्री पं० स्वामी तुलसीराम शर्मा हाज़िर हूंगा आप मन्जूरी क़वायद मुबाहिसा बनीज

शास्त्रार्थ व वापिसी डाक इत्तला फ़रमाइयेगा वरना यह साफ मान लिया जावेगा कि वेद संहिताओं में मूर्ति पूजन नहीं है, और शाये (प्रकाशित) कराया जावेगा, लेकिन यह बात मंजूर हो सकती है कि अगर बिल फ़ैल आपके पास सामग्री शास्त्रार्थ के मुतल्लिक मौजूद न हो तो और कोई तारीख बजाये इसके मुर्करिर करके व वापिसी डाक मुझको इत्तला दो और यह भी बाज़े हो कि मुक़ाम सभा का भी आप ही मुर्क़रिर फ़रमाइयेगा और जिम्मेवार आप ही होंगे लेकिन दर-सूरत न करने शास्त्रार्थ के हार आपकी मानी जावेगी जब तक जवाब चिट्ठी का न आयेगा पंडित लोग वतन मुक़ीम रहेंगे दर सूरत न होने शास्त्रार्थ के आपको सब खर्चा पंडितान का देना होगा क्योंकि अव्वल चिट्ठी तुम्हारी भेजी हुई है और दफ्तर आर्य समाज में मौजूद है।

"राम कृष्ण" मन्त्री—आर्य समाज, बनत

वक्तव्य—

इस पत्र का उत्तर ता० १५ तक नहीं आया न नियमों का स्वीकारास्वीकार भेजा परन्तु—श्रीमान पं० तुलसीराम स्वामी उपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवध तो ता० १४ दिसम्बर को ही क़स्बे (किराणा) में उपस्थित हो गये। क्योंकि उनको ता० १५ के शास्त्रार्थ की सूचना थी। और श्रीमान पं० गोविन्द सहाय शर्मा उपदेशक आर्योपप्रतिनिधिसभा मेरठ प्रान्त भी ता० १५ के प्रातःकाल ही (किराणा) में उपस्थित हो गए, परन्तु पौराणिक पक्ष में बाहर से जो पण्डित आने वाले थे कोई नहीं आया, हमने प्रसिद्ध कर दिया कि हमारे पण्डित नियत तिथि पर शास्त्रार्थ करने को उपस्थित हैं और पौराणिक पक्ष का कोई पंडित ता० १५ की सायंकाल तक भी नहीं आया अस्तु अब ता० १५ भी व्यतीत हो गई, अतएव हम लोग (बनत) को जाते हैं। (क्योंकि इस समय किराणा में आर्य समाज मौजूद न था) और यदि दो दिन तक फिर भी पौराणिक पक्ष के पण्डित आ जायें और हमको सूचित किया जावे तो हम पुनरपि शास्त्रार्थ के लिए उपस्थित होंगे, निदान आर्य पण्डित बनत चले आये, ता० १६ की रात्रि के ६ बजे हमको उर्दू पत्र द्वारा सूचना मिली कि पण्डित आ गए, शास्त्रार्थ को चलिये। इस निमन्त्रण के अनुसार हम आर्य लोग द्वितीय बार फिर किराणा में शास्त्रार्थ के लिए उपस्थित हुए, और ता० १६ को हमने यह खबर उर्दू पत्र द्वारा पौराणिक पण्डितों को दी, कि हम दोबारा शास्त्रार्थ के लिए उपस्थित हैं, नियमों की स्वीकारी से सूचित कीजिए, इस पर रात्रि के साढ़े ६ बजे हमें उत्तर मिला कि—

"श्री : मित्रवर मन्त्री आर्य समाज (बनत) उपस्थित किराणा, जय श्री कृष्ण चन्द्र की! कृपा पत्र आपका आज पांच बजे सायंकाल पहुंचा देखकर अति हर्ष हुआ जिसमें यह वृत्तान्त लिखा था कि हम दो बार शास्त्रार्थ करने को आये अब आप अपने—

(१) नियमों को लिखकर शास्त्रार्थ करना आरम्भ कीजिए, धन्य है आपको जिनके गुरु ऐसे सत्यवक्ता थे, आप उनके शिष्य क्यों न हों। अब हमारे पण्डितों को—

(२) दो दिन हो चुके हैं आए हुए आपके साथ अर्थ जैसे कि आपने लिखा था, अब आप कब आए कहां और किसके सामने शास्त्रार्थ करने को कहा? ज्ञात होता है कि आपने शोकावस्था में कोई स्वप्न वा मनो राज्य देखा होगा अस्तु!! हमारे शास्त्रार्थ नियम यह हैं कि विषय-पाषाण आदि मूर्ति पूजन, इस पर प्रमाण मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेद स्मृति सूत्र और युक्ति होंगे इसका प्रबन्ध ऐसा होगा कि शास्त्रार्थ संस्कृत भाषा में लिखकर होगा, प्रथम वादी अर्थात् आर्य समाजी मूर्तिपूजा खण्डन के प्रमाण और पूर्वोक्त प्रमाणों को आध घण्टा में लिखकर अपने हस्ताक्षर कर धर्मसभा पण्डित प्रति-

---

टिप्पणी—

(१) आपने बढ़ाया है।

(२) दो दिन कहां हुए! १६ ता० रात्रि के नौ बजे सूचित किया जिस पर १७ ता० चार बजे हम उपस्थित हैं।

वादी को देगा। प्रतिवादी उन प्रमाणों का खण्डन करअपने मूर्ति पूजा मण्डन पर उसका डेढ़ गुणा काल अर्थात् पैंतालीस मिनट में अपने हस्ताक्षर कर वादी को देगा। उस पत्र का प्रत्युत्तर वादी उसके डेढ़ गुणा काल अर्थात् एक घण्टा ७५ मिनट में पूर्वोक्त रीति से लिखकर देगा, पश्चात् द्वितीय पत्र का प्रत्युत्तर वादी एक घण्टा ४१॥ मिनट में देगा। पूर्वोक्त रीति से हस्ताक्षर कर देगा यह दोनों शास्त्रार्थ पत्र सभा में सुना दिए जायेंगे, पश्चात यह दोनों पत्र निर्णयार्थ वहां के श्री एडिस साहब बहादुर कलैक्टर एम० ए० जिला की सेवा में या प्रोफेसर संस्कृत लाहोर कालेज की सेवा में भेजे जायेंगे। जिस पत्र को वेदादि प्रमाणों से उक्त जांचकर अपने हस्ताक्षर पूर्वोक्त महाशय वापस भेजेंगे। वही पक्ष विजयी समझा जावेगा। और इसका जो व्यय (खर्चा) साहेब कीं फीस और तुम्हारे पण्डितों का खर्चा तथा हर्जा होगा वह पराजित पक्ष को देना होगा, यदि यह भी शास्त्रार्थ न मानों तो कल १८-१२-९३ को एक बजे दिन के मुन्शी कुवरसैन जीं कायस्थ के (घर) में आप पधार के अपने सत्यवादी स्वामी दयानन्द को तथा उनकी पुस्तक ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका तथा सत्यार्थ प्रकाश मुद्रित १८८४ को सत्य कर दिखाओं तब हम पराजित हो जावेंगे, आप विजयी होंगे।

यदि यह दोनों सुगम शास्त्रार्थ रीति को न मानोगे अपनी गड़बड़ाध्यायी करोगे और शास्त्रार्थ न करोगे, तब हमारे पण्डितों को बुलाने आदि का खर्च और हर्ज; राजकीय नियमानुसार देने को योग्य होंगे। इसका स्वीकार या इंकार पत्र द्वारा आप हमको कल १८-१२-९३ आठ बजे तक कृपा कर दीजियेगा।

यह पत्र हमने आज ९ बजे रात्रि को भेजा हैं

(नकल) हस्ताक्षर—
"पं० किशोरीलाल"

वक्तव्य—

निम्नलिखित उत्तर आर्यों ने दिया यथा—

किराणा
१८-१२-१९९३ ई०

॥ ओ३म् ॥

श्रीयुत् पं० किशोरी लाल जी,

महाशय नमस्ते ! जब कि मैं सो गया था, तो आपकी चिट्ठी पं० तुलसीराम स्वामी जी के पास आई, प्रातःकाल पाकर उत्तर देता हूं, हमारा दो वार आना किराणा में प्रसिद्ध है, यहां के सैकड़ों मनुष्यों ने देखा कि ता० १४ के सायंकाल को हमारे पण्डित शास्त्रार्थ करने को आये परन्तु तब देखा कि १५ ता० की सायंकाल तक आपके पक्ष में पं० गोकुलानन्द आदि नहीं आए, तब (बनत) को वापस चले गए, और आपकी प्रतीक्षा करते रहे। जब १६ ता० की रात्रि को आपने अपने पण्डितों के आने की सूचना दी ता० १७ को हम पुनः उपस्थित हुए हैं। फिर जो आप गाजर-गुठली करते हैं इनसे आपकी इच्छा शास्त्रार्थ न करने की प्रतीत होती है, हम १२-१२-९३ को नियम शास्त्रार्थ रजिस्ट्री पत्र द्वारा आपको लिख चुके हैं कि वापिसी डाक नियमों को स्वीकार कर भेजिए। उन्हीं नियमो का स्वींकार हमने कल फिर मांगा था, जिस पर आप नवीन अधूरे पक्षपात पूर्ण तीन नियम लिखकर शास्त्रार्थ को टालना चाहते हैं, ऐसा कीजियेगा तो आप पर निःस्संदेह हमारी वृथा समय हानि करने का दोष स्थापित् होगा।

हम केवल ऋग् आदि संहिता चतुष्टय को मानते हैं, अर्थ पर विवाद होगा तो ब्राह्मणादि हमारे नियमों में लिखित ग्रन्थों की साक्षिता अवश्य ली जाएगी। हम तो केवल धर्म का निर्णय करने को शास्त्रार्थ करते हैं, आप रुपये की हार जीत द्वारा द्यूत (जूआ) भी खेलना चाहते है, हम जुआ खेलना पसन्द नहीं करते हैं। पण्डित जी ? आप पं० गोकुलानन्द जी की ऐंचातानी में न आइए शुद्ध हृदय से हमारे पूर्व प्रेषित नियमों को स्वींकार कर भेजिए—(जिससे) कि शास्त्रार्थारम्भ हो जावे, वृथा समय न खोइये, इति—

आपका प्रेमी
उर्दू में हस्ताक्षर—"रामकृष्ण"

(१८-१२-९३ को ९ बजे प्रातः कैम्प आर्य प्रचार किराणा पत्र धर्म सभा की ओर से)

मित्रवर, श्री:

मन्त्री आर्य समाज बनत, उपस्थित किराणा, जय श्री कृष्ण चन्द्र जी की ! आपका कृपा पत्र मिला तारीख १८-१२-९३ का हमको साढ़े नौ बजे दिन के मिला, समस्त वृत्तान्त ज्ञात हुआ, मित्रवर हमारे नियमों से अर्न्तगत सब आपके नियम शास्त्रार्थ आ गए हैं जो कृपा दृष्टि से देखियेगा। अस्तु आज जो आपने पूर्व नियमों का हवाला देकर संहिता मात्र को स्वीकार कर शास्त्रार्थ करना चाहते हो, वह नियम नं० ९ में भी लिखा है, अत: आप पहले इसी पर शास्त्रार्थ कर लो, कि एक पण्डित हमारा तथा एक पण्डित आर्य समाज का बाहर जाकर हमारे नियमानुसार वेद निर्णय का शास्त्रों अर्थात् संहिता ही को मान कर शास्त्रार्थ हो सकता है कि मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेद तथा सूत्र स्मृति बिना माने शास्त्रार्थ हो सकता है। लिखकर उभय हस्ताक्षरकर प्रथम सभा में सुनावें पश्चात् वह वेद शास्त्र मिस्टर एडिस साहेब बहादुर एम० ए० (संस्कृत) की सेवा में भेजा जावे, जो साहेब मोमूफ़ (सही) निर्णय कर दें उसी पक्ष वाले की हार जीत समझी जावेगी। और जो आपने लिखा कि हम जुआ नहीं खेलते हैं, तब मित्र क्या कलेक्टर साहेब हमारे नौकर हैं ? जो बिना फीस अपने अमूल्य समय को व्यर्थ खोवेंगे। ओर बिना खर्चा-हर्जा दिए, झूठा पक्ष फिर भी और (अन्यत्र) स्थान में ऐसे ही मिथ्यावाद करने को उपस्थित होगा, अत: पहले ही ५००)-५००) रु० आज कचहरी तहसील में जमा कराकर यह शर्त वहां लिखा दो, कि जिसको कलैक्टर साहेब वेद शास्त्रार्थ में हरा वा जिता दें वही पक्ष हारा वा जीता हुआ समझा जावेगा। जब पक्षी वह रुपया ५००) (पांच सौ) फ़ीस साहेब तथा अपने धर्म काम में लावेगा, अस्तु !

यदि ये भी न हो सके तब क्या हमारा दूसरा शास्त्रार्थ नियम हमारे लिखे पत्र में नहीं देखा कि, अपने स्वामी दयानन्द तथा उनके मिथ्या ग्रन्थों को जिनमें सैकड़ों मिथ्या पाखण्ड भरे हैं, जिनमें से दस ही सिद्ध कर दो तो तब ५००) रु० लेने को योग्य होंगे, जौ आज पहिले ही जमा करा लिया जावेगा।

बिना द्रव्य दण्ड के कौन जानेगा देशान्तर में कि कौन हारा और कौन जीता। यदि आज भी इन पूर्वोक्त दोनों नियमों को न स्वीकार करोगे, तो अपना उन्मत्त-प्रलाप ही करोगे तब आप पराजित (हारे) हुए समझे जावोगे और हमारा हर्जा-खर्चा के देनदार होंगे।

आज बिना इन दो नियमों के स्वीकार या इन्कार के और व्यर्थ लिखा-पढ़ी में समय व्यतीत न करना। इसका उत्तर ठीक १२ बजे दिन तक मिले।

ता० १८-१२-९३ समय दस बजे,

हस्ताक्षर—
"पं० किशोरी लाल"

॥ ओ३म् ॥

किराणा
१८-१२-९३

श्रीयुत, पं० किशोरी लाल जी, महाशय नमस्ते !

कृपा पत्र १० बजे प्राप्त हुआ उत्तर में निवेदन है कि यदि आप हमारे १२ ता० के भेजे २१ नियमों को अपने नियमों के अन्तर्गत समझते हैं तो कृपा करके स्पष्टतया हमारे २१ उक्त नियम स्वीकृत करके ही भेज दीजिए—क्योंकि, आपकी सम्मत्ति में हमारे २१ नियम आपके विरुद्ध तो हैं। ही नहीं किन्तु अन्तर्गत हैं, जब आप २१ नियमों को जो (जो १२ ता० को उर्दू में हमने भेजे थे) स्वीकार पूर्वक हस्ताक्षर करके वापिस कर देंगे तब हम ५००) रु० जमा करने आदि विषय का उत्तर देंगे, क्योंकि बिना नियमों के रुपया जमा करना (न करना) नहीं बन सकता।

विशेष क्या लिखूं। इति ॥

आपका प्रेमी—"रामकृष्ण"

(कैम्प आर्य धर्म प्रचार किराणां साढ़े दस बजे—१८-१२-९३ ई०)

वक्तव्य—

इस पर धर्मसभा ने एक पत्र संस्कृत में भेजा, उसकी प्रति अक्षरशः छाप कर उसका आशय भाषा में प्रकाशित करेंगे। परन्तु इस पत्र का उत्तर संस्कृत ही में हमारी ओर से जाने पर फिर धर्मसभा को संस्कृत लिखने का दुबारा साहस न हुआ, यथा—

श्रीः

मित्रवर मन्त्रिन् आर्य्यसमाजकिराणोपस्थितविदितमस्तु किं यदस्माभिरभयपत्रेषु स्वकीयेषु नियमा लिखिताः तेषामेभिर्विना (६) (१३) (२०) सर्वे स्वीकृता अतएव यदास्माभिर्युष्माकं नियमा उररीकृतास्सन्ति तथा तदास्मदीयणियमा अप्युररीकर्तव्या (१) तत्र प्रथमोयं नियमः मन्त्रब्राह्मणात्मको वेदस्वतः प्रमाणम्। तथा स्मृतिसूत्रस्यापि (२) द्वितीयेऽयं दयानन्दमिथ्यारचितग्रन्थानां सत्यासत्यकरणे भविष्यति एतत् स्वीकारं कृत्वा ५००) पञ्चशतरूपकं तहसील इति राजकीयस्थाने निक्षेपं कृत्वा पूर्वोक्तयोर्द्वयोरेव शास्त्रार्थयोः करणे यद्यकोपि शास्त्रार्थः प्रथमो भविष्यति तथैव जयाजययो. रस्माकं तथा युष्माकं जयपराजययोरस्माकं तथा युष्माकं श्रीमिष्टरएडिससाहब इति प्रसिद्धः निर्णयं करिष्यति य उभयपक्षान्मध्यस्थो भविष्यतीति ग्रतः प्रथमं मन्त्रब्राह्मणात्मको वेद अस्यैव मननोपरि रुद्धः सूच्यते अशास्ति एवं संस्कृतभाषायामस्योत्तरमष्टघण्टावादनात्पूर्वं देवमित्यलम्॥

ता० १८।१२।९३

हस्ताक्षर

"पं० किशोरी लाल"

वक्तव्य—इसके साथ ही दूसरा पत्र विना हस्ताक्षर का आया वो भी नीचे उद्धृत किया जाता है यथा—

श्रीः

भो आर्य्यसभोपदेशका श्रीमल्लिखितपत्रे संहितामात्रो वेदः इति मननं लभ्यते तत्रैवं प्रथमा विचारणा संहितामात्रो वेदइति केनाप्तवचनेन मन्यते प्रत्युत तद्विपरीतलक्षणं दृश्यते यथाहि कात्यायनसूत्रं मन्त्रब्राह्मणयोर्नामधेयं वेद इत्यात्मकमस्ति तदनुकूलं व्याकरणमहाभाष्यम्। यथाहि कियान् शब्दशास्त्रस्य विषयश्चत्वारो वेदास्साङ्गास्सरहस्या बहुधाभिन्ना एकशतमध्वर्युशाखा सहस्रवर्त्मा सामवेदएकविंशतिधावाह्वृचं नवधाथर्वणो वेदः वाकोवाक्यमितिहासः पुराणम्। वैद्यकमित्या इत्येतावान् शब्दशास्त्रस्य विषयः एवमेव मनुवाक्ये प्रत्यक्षं दरिदृश्यते यथाहि उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा सर्वथा वर्त्तते यज्ञइतीयं वैदिकी श्रुति इदञ्च वचनं ब्राह्मणभागेष्वेव लक्ष्यते नतु संहिताभागेषु यथा च उदिते होतव्यमनुदिते होतव्यं समयाध्युषिते होतव्यमित्यात्मकं ब्राह्मणमस्ति विधिर्विधायक इत्यात्मकेन गौतमेन सूत्रेण ब्राह्मणवाक्यतायां निश्चयीकृतमस्ति एवं विधायकवचनानि ब्राह्मणग्रन्थेष्वेव मिलन्ति यथा अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः अहरहस्सन्ध्यामुपासीत इत्यादीनि यथा हि श्रुतिप्रमाणको धर्मं इति वैशेषिकसूत्रमस्ति तथाच श्रुतिप्रमाणकस्यैव स्वीकारे कृते अहरहस्सन्ध्याचमनप्राणायामादिकरणे शन्नोदेवीरित्यादिभिः प्रमाणं नोपलभ्यते मन्त्रभागे यदि संहितामात्रेणाग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकाम इत्यादि तर्हि विधायकत्वादुक्तगौतमीयसूत्रेण संहितानां ब्राह्मणत्वं संघटेत तर्हि संहितानामपि त्वन्मुखाब्राह्मणवन्न प्रमाणमिति भवत्पक्षएव खंड्यते भवत्कथनादेव अन्यत्रापि समारोपणादाल्लन्यप्रतिषेध इत्यस्य भाष्ये वात्स्यायनेन निरणायि यथान्यो मन्त्रब्राह्मणस्य विषयः अन्य इतिहासपुराणधर्मशास्त्रस्य यज्ञो मन्त्रब्राह्मणस्य विषयः पुरावृत्तकथनमितिहासपुराणस्य लोकव्यवहारव्यवस्थानं धर्मशास्त्रस्य एभिर्वचनैरितिहासपुराणसञ्ज्ञाब्राह्मणेभ्योऽन्येषां सिद्धा तथा च इतिहासो भारतादि पुराणं ब्रह्मवैवर्त्तादि अतएव इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समनुबृंहेत् बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति इति मनुवाक्ये वेदार्थस्वीकारे भारतादीनामपि प्रमाणं मन्तव्यमस्ति तथा चायमेव मनोराशयः वेदकथनेन मन्त्रब्राह्मणात्मको गृह्योऽयमेव जैमिनेर्भावः तच्चोदकेषु मन्त्राख्या शेषे ब्राह्मणशब्द अस्यायं भावः तस्य देवस्य चोदका तेषां मन्त्र इति व्यवहारास्स मन्त्रात्मकः शेषो ब्राह्मणात्मक इत्यलम्। शेषमग्रे॥

उत्तर आर्य्यों की ओर से यथा—

ओ३म्

१८।१२-९३

श्रीयुत पं० किशोरीलाल शर्म्मन्नमस्ते,

श्रीमत्प्रेषितं पत्रमागतं तदुत्तरयता सहासं मया निवेद्यते यत् ९।१३।२० एतत्संख्याकान्नियमान्विहायाऽन्यान् स्वीकुर्वाणाः सर्वानिवास्मल्लिखितनियमान् पुनर्भन्तः (१८—यावदुक्तविषयद्वयात्मकः शास्त्रार्थो न समाप्तिं गमिष्यति नहि तावदपरः कश्चित्प्रस्तावः केनापि शक्ष्यते कर्त्तुम्) इत्यस्मल्लिखितसर्वनियमान्तर्भू ताऽष्टादशनियमस्वीकारे सति उक्तप्रतिमार्चामृतश्राद्धविषयाभ्यां भिन्नं वेदसञ्ज्ञाविचारात्मकं विषयमारभमाणाः कथं नाप्रकृतविषयारम्भात् अर्थान्तरादिनिग्रहग्रहग्रहीताः यथोक्तं न्यायदर्शने "प्रकृतादर्थादप्रतिसम्बद्धार्थमर्थान्तरम्" इति यच्च पूर्वापरभावालिखितस्वीयपत्रे "अस्मन्नियमान्तर्गतास्सर्वे भवन्नियमा" इतिविन्यस्तं पूर्वं श्रीमद्भिस्तत्र यदि सर्वेऽप्यस्मन्नियमा भवन्नियमान्तर्गताः तर्हि कथं पुनर्नवम, त्रयोदश, विंशा न स्वीक्रियन्ते पूर्वं स्वीकृत्यानन्तरमस्वीकारो हि प्रतिज्ञान्तररूपनिग्रहस्थाने पातयति भवतः । अत्राह गौतमः प्रतिज्ञातार्थप्रतिषेधे धर्मविकल्पात्तदर्थनिर्देशः प्रतिज्ञान्तरम्" इदानीं विरम्यते विस्तरभिया परन्तु नास्माभिर्विषयान्तरमारभ्यते कुतो यत आहुर्गोतमाचार्य्याः निग्रहस्थानप्राप्तस्याऽनिग्रहः पर्यनुयोज्योपेक्षण" मिति शास्त्रपथमनुसरन्तो वयं निग्रहग्रहगृहीतान्भवत उपेक्ष्य नहि पूर्वोक्तनिग्रहस्थानं गमिष्यामः इति भवत्प्रेष्ठो रामकृष्णः

१८।१२।९३ अष्टघण्टानादसमये लिखितम्

पं० किशोरीलालकरकमलयोर्विलसतु पत्रमदः किराणास्थ धर्मसभायाम् ।

[संस्कृत पत्रों का सङ्क्षिप्ताशय देशभाषा में]

पौराणिकों के पत्रों का आशय—

मित्रवर मन्त्री आर्यसमाज विदित हो कि आपके नियमों में ९ । १३ । २० नियमों को छोड़ अन्य सब स्वीकृत हैं हमने तुम्हारे नियम मान लिए तब तुम हमारे नियमों को मान लो प्रथम यह है कि मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेद स्तुति सूत्र ये स्वतः प्रमाण होंगे, द्वितीय यह कि दयानन्द के मिथ्या ग्रन्थों के सत्यासत्य का निर्णय, हमारे यह दो नियम स्वीकार कर ५००) तहसील में जमा करके पूर्वोक्त दोनों शास्त्रार्थों में से यदि एक भी होगा तो मिस्टर एडिस साहब हमारी तुम्हारी हारजीत का निश्चय कर देंगे जो दोनों ओर से मध्यस्थ होंगे प्रथम मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेद है इस पर विचार होगा आशा है कि आठ बजे तक इसका उत्तर संस्कृत में देना ।

हस्ताक्षर—

"किशोरीलाल"

द्वितीय पत्राशय—

हे आर्य्यसमाज के उपदेशकों ! आपने जो संहितामात्र वेद मानकर लिखा भी हैं सो कोन से प्रमाण से ? किन्तु आप के विरुद्ध कात्यायन कहते हैं कि **मन्त्रब्राह्मणयोर्नामधेयं वेदः** और व्याकरण महाभाष्य में भी शब्दशास्त्र का विषय कितना है यह प्रश्न करके उत्तर दिया है कि ४ वेद अङ्गों और रहस्यों । सहित १०० यजुर्वेद की शाखा, १००० साम की, २१ ऋग् की, ९ अथर्व की शाखा आदि २ इतना शब्द शास्त्र का विषय है तथा मनु० में भी **"उदितेऽनुदिते"** इत्यादि वाक्य वैदिकीश्रुति कहा और **'उदिते होतव्यम्'** इत्यादि ब्राह्मण में मिलता है संहिता में नहीं तथा गोतम ने भी **"विधिर्विधायकः"** इस सूत्र से विधायकों को विधिवाक्य कहा सो ब्राह्मन में विधायक वाक्य हैं जैसा—अग्निहोत्रं जुहुयात् इत्यादि तथा वैशेषिक सूत्र में **"श्रुतिप्रमाणवाला धर्म है"** ऐसा कहा है सो प्रतिदिन सन्ध्या आचमन प्राणायामादि का उपदेश **"शन्नो देवी"** इत्यादि मन्त्रों से नहीं मिलता और यदि विधायकवाक्य संहिताओं में भी हो तो आप

ही के मुख से गौतम सूत्रानुसार (विधिर्विधायकः) आपका पक्ष खण्डन होता है क्योंकि संहिता को भी ब्राह्मणत्व सिद्ध होने से सप्रमाणता हुई । (समारोपणा०) के भाष्य में वात्स्यायन कहते हैं कि मन्त्रब्राह्मण का विषय यज्ञ हैं और पुरावृतान्त इतिहास पुराण का विषय तथा लोकव्यवहार व्यवस्था धर्मशास्त्र का विषय इससे सिद्ध हुवा कि ब्राह्मणों से भिन्न महाभारतादि की इतिहास और ब्रह्मवैवर्तादि की पुराण संज्ञा है और जैमिनि भी (तच्चोदकेषु मन्त्राख्या. शेषं ब्राह्मणशब्दः) करके मन्त्र का शेप ब्राह्मण बतलाते हैं अतएव वेद का भाग ब्राह्मण हुवा—शेष आगे ।

उत्तर आर्य्यों की ओर से का भावार्थसंक्षिप्त—

॥ओ३म्॥

१८।१२।९३

श्रीयुत् पं० किशोरीलाल जी ! नमस्ते,

आपका (संस्कृत) पत्र आया उसके उत्तर में निवेदन है कि जब हमारे (२१) नियमों में केवल ६।१३। २० को त्यागकर अन्य स्वीकृत हैं तो अठारहवां स्वीकृत हुआ जिसमें लिखा था कि जब तक मूर्ति पूजा व मृतक श्राद्ध पर शास्त्रार्थ समाप्त न हो ले तब तक अन्य विषय पर न होगा (देखो नियम १८ पृष्ठ ५) यदि यह स्वीकृत है तो आपने जो मन्त्रब्राह्मणपरक शास्त्रार्थ आरम्भ किया इससे आप न्यायशास्त्र (प्रकृतादर्थात्०) सूत्रानुकूल (अर्थान्तर) नामक निग्रह में गिरे । और पूर्व जो हिन्दी के पत्र में आपने हमारे सब नियमो को अपने नियमों के अन्तर्गत कह कर स्वीकारा था तब फिर अब ६।१३।२० के अस्वीकार करने से आप (न्यायदर्शन-प्रतिज्ञाहा०) सूत्रानुसार (प्रतिज्ञान्तर) नामक निग्रह में भी आ गये, परन्तु यदि आपके समान हम भी उभय स्वीकृत प्रतिमा-पूजा, मृतकश्राद्ध को त्याग आपके मन्त्रब्राह्मणात्मक लेख का उत्तर लिखें तो (पर्य्यनुयोज्योपेक्षण) नामक निग्रह स्थान में आवें सो हम ऐसा न करेंगे—क्योंकि निग्रहीत उपेक्षा, (पर्य्यनुयोज्योपेक्षण) कहाती है ।

(१८-१२-९३ समय ८ बजे धर्मसभा में पं० किशोरीलाल जी को मिले) ।

आपका प्यारा—

"रामकृष्ण"

मन्त्रब्राह्मणात्मक लेख पर टिप्पणी—

प्रथम तो प्रतिज्ञा के विरुद्ध इस विषय का लेख ही उनको हमारे उल्लिखित न्यायसूत्र के अनुसार निग्रहस्थान में गिराता है तिस पर भी उनके प्रमाणों की समीक्षा दिग्दर्शनमात्र की जाती है यथा—

कात्यायन का यह वचन कि—"मन्त्रब्राह्मणयोर्नामधेयं वेदः" यह परिभाषा होने से केवल यज्ञ विषय में चरितार्थ हो सकता है न कि सर्वत्र, तथा व्याकरणमहाभाष्य में—"कियान् शब्दशास्त्रस्य विषयः" इत्यादि से शब्दशास्त्र भर अभिप्रेत है न कि वेद, तब समस्त ग्रन्थ वेद नहीं हो सकते किन्तु शब्दशास्त्र हैं इससे ब्राह्मण को वेदत्व नहीं आता ।

"उदितेऽनुदिते चैव" इत्यादि मनुवाक्य भी केवल यज्ञविषयक होने से सर्वत्र ब्राह्मण का वेदत्वसाधक नहीं—

"विधिर्विधायक" यह न्यायसूत्र विधि का लक्षण करता है न कि वेद का अतएव "अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामः" इत्यादि वाक्यों की विधिवाक्यता सिद्ध होती है न कि (देवता शन्नोदेवीः) आदि मन्त्र यथार्थ में आचमनादि क्रियाओं का संकेत करते हैं क्योंकि (अब् लिङ्ग) अर्थात् जल की व्याख्या युक्त है—यह भी कोई प्रमाण है कि संहिता में विधिवाक्य होने से उसकी ब्राह्मणता सिद्ध हो जावे यदि ऐसा हो तब तो समस्त धर्मशास्त्रादि के विधिवाक्यों को ब्राह्मणत्व सिद्ध हो जावे, "समारोपणा" के भाष्य में जो मन्त्रब्राह्मण का विषय यज्ञ है ऐसा लिखा है इससे मन्त्रब्राह्मण की वेदसंज्ञा नहीं आती किन्तु दोनो का विषय यज्ञ है । रही यह बात कि इतिहास पुराण का विषय भिन्न लिखने से ब्राह्मणों की इतिहासादि संज्ञा नहीं—सो अप्रकृत है इस पर शास्त्रार्थ नहीं है कि ब्राह्मणों को ही इतिहासादि कहते हैं वा अन्य को !

न हमारे पत्रों में ऐसी प्रतिज्ञा है कि ब्राह्मणों की इतिहास संज्ञा है तथा यदि ब्राह्मणों से इतिहास भिन्न भी हो तव भी ब्राह्मण, वेद—नहीं हो सकते, यूं तो मनुस्मृति से इतिहास भिन्न है तब क्या मनुस्मृति वेद हो गई ! यह नियम नहीं कि जिसकी इतिहासादि संज्ञा न हो उसकी वेदसंज्ञा आवश्यक हो इत्यादि, शेष आगे—

नोट—इस पर धर्मसभा से संस्कृत में लिखने का साहस न रहने से भाषा में निम्नलिखित पत्र आया, यथा—

श्रीः

मित्रवर मन्त्री आर्य समाज वनत उपस्थित किराणा को ज्ञात हो कि हमने शास्त्र परीक्षार्थ आपको 'संस्कृत पत्र भेजा था सो शास्त्र में अन्ध परम्परा न्याय लिखा है वह सत्य है या मिथ्या । ज्ञात हुआ कि सत्य है कि आपके गुरु घण्टाल दयानन्द के गुरु विरजानन्द (अन्धवैयाकरण) थे उनके चेले दयानन्द जिन्होंने के प्रथम ग्रन्थ व्याकरण का वाक्य-प्रबोध बनाया हैं जिसमें अनेक अशुद्धियां हैं वह ग्रंथ भी हमारे पास मौजूद है तथा दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश छापा १८८४ के सूची (८) समुल्लास में लिखा है कि (ईश्वर भिन्नस्याः प्रकृतेः) यही अन्ध परम्परा १८८७ तथा ९१ में भी छपी हैं। हम जानते थे आप व्यायाकरण नैयायिक या वैदिक होंगे तब हमारे संस्कृत मन्त्रब्राह्मणात्मक वेद मानने पर कुछ उत्तर लिखोगे। वह तब कुछ न हो सका। यह लिख मारा कि आप निग्रहस्थान में आ गए हो। धन्य हैं ! यदि आपके पत्र में अशुद्ध पदों तथा निग्रह का वर्णन करें तब दूसरा प्रकरण हो जावेगा तथा तुम्हारे बाल-बोधार्थ भाषा ही में लिखते हैं कि हमने तुम्हारे (२०) नियमों का उत्तर व नाम भीमसेन जिसका नाम तुमने अपने नियम पत्र में मिथ्या लिखा था उसके नाम से रजिस्ट्री करा ता० १५-१२-९३ को भेज दिया था जिसकी रसीद हमारे पास हैं जब ज्ञात हुआ कि तुम्हारा लिखना मिथ्या हैकि भीमसेन नहीं आया तब आपको नागरी पत्र जिसमें हमारे (३) नियम हैं उन्हीं नियमों में तुम्हारे १७ नियम अंतर्गत हैं जिसका विवरण यह है कि तुम्हारा ९।२० नियम अस्वीकार करने पर हमने मन्त्रब्राह्मणात्मक वेद स्मृति सूत्र लिखा । यदि आपको प्रथम संहिता ही वेद स्वीकार हो स्वतः प्रमाण और न ऐतरेय आदि ब्राह्मण तथा स्मृति सूत्र तब इस पर शास्त्रार्थ कर लो प्रथम । इससे ९।२० नियमों का निर्णय हो जाएगा । जब कोई मध्यस्थ मानोगे तब इससे १३वें नियम का खण्डत है कि तुम कहोगे हम जीते हम कहेंगे हम जीते सब अपने-अपने बुद्धिनुसार शास्त्रार्थ का परिणाम विचार लेवेंगे । अय! बालमित्र जब दो वादी मुद्दयी मुद्दाअलेह लड़ते हैं तब विना न्यायाधीश के उनका(फैसला) कौन कर सकता हैं ? यदि मुकदमः फौजदारी तब विना दण्ड के एक मिथ्यावादी कब बच सकता है अतः हमने ५००) रु० का पत्र जय-पराजय पर लिखा है । यदि मन्त्रब्राह्मणात्मक वेद का शास्त्रार्थ न कर सको तब दयानन्द मिथ्या ग्रन्थों में ही सत्यासत्य का शास्त्रार्थ बिना मध्यस्थ के कर लो ५००) के हार जीत पर । यह तीन नियमों के बराबर लिखने पर भी न कुछ उत्तर देते हो यही तुम्हारा पाण्डित्य है ? कि निग्रहस्थान में आप आ गए हो । धन्य हो! यदि हम निग्रह का लक्षण लिखें तब तुम्हारे समझ में स्वप्न में भी न आवेगा । और दूसरा प्रकरण हो जावेगा । अतः उसको और व्याकरण अशुद्धियों को नहीं लिखा । अब अन्त में फिर आपको लिखते हैं कि जहां-जहां तुम्हारे गुरु ने शास्त्रार्थ किया है वहां-वहां हारे है ऐसे ही तुम समाजी लोग । व्यर्थ लिखने में काल को व्यतीत करते हो । यदि तुममें कोई पंडित हो तब आज हमारे व्याख्यान स्थान में १२ बजे आवो वहां पुलिस का सब प्रबन्ध आदि नियमों का हो जावेगा । यदि न आ सको तब हमको अपने व्याख्यान स्थान में बुलावो आप पुलिस आदि का बन्दोवस्त कर लो । या तहसील में ५-५ ही पुरुष चलो प्रथम ५००) स्थापन कर विरुद्ध ३ नियमों पर विवाद दूर कर शास्त्रार्थ मन्त्रब्राह्मणात्मक पर या दयानन्द मिथ्या ग्रन्थों के सत्यासत्य पर शास्त्रार्थ हो वह मिस्टर ऐडिस वा प्रोफेसर लाहौर के पास निर्णयार्थ भेजा जावे इसके निर्णय होने पर मूर्त्तिपूजन, श्राद्धादि भी शास्त्रार्थ कर लो । यदि आज इस पत्र का उत्तर यथाक्रम न लिखोगे व यथाक्रम न मानोगे तब तुम्हारा पत्र (तत्र भवति) वाला न लिया जावेगा । हमारे खर्चा-हर्जा के व्यर्थ काल व्यतीत करने से देने के योग्य अदालत से होंगे । इसका उत्तर आज यथाक्रम १० बजे ता० १९-१२-९३, तक देवें ।

"दस्तखत"

(ता० १९-१२-९३ प्रातः ७ बजे)

"किशोरीलाल"

॥ ओ३म् ॥

श्रीयुत महाशय पं० किशोरीलाल जी योग्य !

नमस्ते ! ! आप जो हमारे स्वामी दयानन्द सरस्वती जी को मूख आदि सिद्ध करने पर अधिक घमण्ड करते हैं और उस महात्मा को बुरे शब्दों से पुकारते हैं यह तो प्रकरण विरुद्ध और असभ्यता नहीं समझते ? और जब हमने आपको निग्रहस्थान में घेरा उसका उत्तर विना दिए यह समझ लेना कि इसका उत्तर तो आपको समझ में न आवेगा ऐसा कह कर टालते हैं। निग्रह का अर्थ कदाचित् न समझने से ही आपने उत्तर न दिया हो तो हम समझा देते परन्तु आप तो अपने मुख से ही दयानन्द सरस्वती जी की हार २ पुकारते हैं इससे आपकी जीत नहीं होगी किन्तु निर्णय के पश्चात् हार-जीत का शब्द कहना चाहिए श्री पं० भीमसेन शर्मा जी के पास आपने उत्तर क्यों भेजा मेरे ही पास भेजते तो इतना विलम्व ही क्यों होता। शास्त्रार्थ विषयक नियमों पर बातचीत तो मुझ से और उत्तर कहते हो कि प्रयाग भेज दिये। धन्य हैं ! पराजित पक्ष को इतना दण्ड ही बहुत है कि श्रोता लोग पराजित पक्ष को हीन समझ त्याग देंगे धन दण्ड की आवश्यकता सांसारिक झगड़ों में होती है पारमार्थिक में नहीं। हमारा आपका वाद परमार्थ में है। यह आपने वड़ी कृपा की कि हमको अपने स्थान में बुलाया है सो हम आपके पास बारह बजे आवेंगे आप पुलिस का प्रवन्ध कीजिए वा न कीजिए। यदि आप शान्तिपूर्वक बातचीत करेंगे और अपने पक्ष के साधारण पुरुषों को रोक सकेंगे तो पुलिस का प्रबन्ध भी हो वा न हो हम तो गरीब लोग आपके नगर में धर्मप्रचार व शास्त्रार्थ के लिए आए हैं आप हम को शान्तिपूर्वक आसनादि देकर नियमों का विवाद दूर कर लीजिएगा। जिससे प्रकृत प्रतिमापूजादि विषयक शास्त्रार्थ में विघ्न न हो ॥

आपका प्रेमी—

"रामकृष्ण"

(१० बजे दिन १६।१२।६३)

श्रीः

मित्रवर मन्त्रिन् बनत उपस्थित किराणा जय श्रीकृष्ण !

इस हमारे पत्र का जो हमने यथाक्रम उत्तर (कु) लिखा था सो (आफ) ने कोई क्रम न लिखा कि हम मन्त्र ब्राह्मण पर प्रथम निश्चय करेंगे कि ये वेद है या दयानन्दरचित ग्रन्थों के सत्यासत्य पर. इन दोनों विषयों का उत्तर नहीं लिखकर द्रव्य दण्ड से इन्कार लिखा अतः पूर्वोक्त दोनों विषयों में से किसी विषय पर शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर तत्पश्चात् मूर्तिपूजा शास्त्रार्थ समाप्त होने पर साहब के निर्णय के पश्चात् ५००) रुपया जयपराजय पर लिया दिया जावेगा यदि इस वख्त (आप) के पास न हो तो मूर्तिपूजा के जयपराजय के बाद को लिख दीजिएगा। देनेलेने का पारलौकिक व्यवहार विना लौकिक व्यवहार के होता नहीं ॥ द्रव्य व्यय का (प्रश्न) प्रथम आप ही कि तरफ़ से हुवा था उत्तर शीघ्र यथाक्रम भेज के हमारे पास सभा स्थान में पधारो।

हस्ताक्षर—

"किशोरीलाल पं०"

ता० १६।१२।६३

वक्तव्य—

"प्रिय पाठकगण ! यह पत्र १२ बजे के लगभग ही हमारे पास आया उस समय हम धर्मसभा वालों के स्थान में ही शास्त्रार्थ के निमित्त जाने को तैयार थे अतएव यह सोचकर इसका उत्तर वहीं दे देंगे सभा स्थान को चले—जिनके मकान पर सभा थी उन्होंने उर्दू में रुक्का लिख भेजा आर्य्यों के पास कि आप मेरे मकान पर आवेंगे तो कुछ विघ्न न होगा आप विश्वास रक्खें किन्तु जो संस्कृत न पढ़ा हो वह बातचीत शास्त्रार्थ में न बोले। हमने यह स्वीकार किया और

सभास्थान में पहुंचे वहा स्थानाधीश ने एक ओर पौराणिकों की मेज कुर्सी लगा रक्खी थी दूसरी ओर आर्य्यों के लिए भिन्न मेज कुरसी लगाई थी जब हमने मेज पर समस्त वेदवेदाङ्गों के पुस्तक लगाये तब पौराणिक पक्ष में से पं० गोकुलानन्द बोले कि यह मेज किसका है ! ! ! कि जिस पर आर्य्य पुस्तकें रखते हैं स्थानाधीश ने कहा कि हमारी है जो हमने उनके वास्ते भी लगाई है तब गोकुलानन्द जी चुप हुवे। प्रथम हमारे पं० तुलसीराम स्वामी ने प्रस्ताव किया कि आज तक जो पत्र व्यवहार हुवा है सो सब हम भरी सभा को सुनावेंगे कि जिससे सभा यह जान लेवे कि अब तक पत्रों में टालमटोली और बेक़ायदा बातें कौन पक्ष लिखता रहा इसको पौराणिकों ने नामंजूर किया क्योंकि पत्र पढ़े जाते तौ पोल खुलती और कहा कि हमारे पत्रों का यथाक्रम उत्तर नहीं दिया। इस पर पं० तुलसीराम स्वामी ने कहा कि सब पत्रों को हम सभा में सुना दें कि जिससे यह प्रतीत हो जावे कि कौन यथाक्रम उत्तर नहीं देता. इस पर भी पौराणिकों ने कहा कि सब पत्र पढ़ने में समय नष्ट होगा इत्यादि २ तब पं० तुलसीराम स्वामी के कथनानुसार हमने यह लिख दिया कि—

॥ ओ३म् ॥

किराणा १६।१२।६३

श्रीयुत पं० किशोरीलाल जी नमस्ते, क्रमबद्ध अब तक आपने उत्तर दिये वा हमने ! यह बात आज सभ्य पुरुषों से सामने तै होगी अब तक आप कहते हैं कि आप के उत्तर यथाक्रम नहीं, हम कहते हैं कि आपके नहीं, अतएव आज जुबानी वक्तृताओं आदि से आज तक का वृत्तान्त स्पष्ट हो जावेगा। इति ॥

आपका प्रेमी—

"रामकृष्ण"

वक्तव्य—

पाठकगण ! इतने पर भी पोराणिकों ने पत्रों का पढ़ा जाना और उन पर बहस करना नहीं स्वीकार किया. और पं० गोकुलानन्द ने प्रकृत प्रतिमापूजादि विषयक शास्त्रार्थ को त्याग कर कहा कि दयानन्दचरित समस्त पुस्तकें अशुद्ध हैं और आर्य्यसमाज का यह नियम ३ "वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है आदि २" किस शास्त्र के अनुकूल है और वेद में समस्त विद्याएं कहां हैं इत्यादि तब पं० तुलसीराम स्वामी ने उत्तर दिया कि यद्यपि दयानन्द सरस्वतीरचित पुस्तकें वा आर्य्यसमाज का ३ नियम शुद्ध है वा अशुद्ध इस पर शास्त्रार्थ नहीं है किन्तु वेदों में प्रतिमार्चा वा मृतश्राद्ध है वा नहीं इस पर शास्त्रार्थ ठहरा है ऐसी दशा में यदि दयानन्दसरस्वती की पुस्तकें वा नियम शास्त्रविरुद्ध अशुद्ध भी हों तो भी इस नियत विषय के शास्त्रार्थ में हमारी कोई हानि नहीं और पं० गोकुलानन्द का कथन प्रकरणविरुद्ध है हमको इस पर बहस नहीं करनी है परन्तु इतना तो भी कहते हैं कि मनुजी ने भी यह माना है कि "**भूतं भव्यं भविष्यंच्चसर्वं वेदात्प्रसिद्धयति**" अर्थात् जो हुवा, जो है, जो होगा सो सब वेद से प्रसिद्ध होता है" इससे भी सिद्ध है कि वेद में भूत-भविष्य, वर्त्तमान की उपयोगी सब विद्याऐं हैं उसी के व्याख्यानरूप से ऋषि लोग विद्याओं का प्रकाश करते रहे। इस पर पं० गोकुलानन्द ने मनुस्मृति की पुस्तक लाकर पटक दिया और कहा कि यह श्लोक मनु० में दिखाओ कहां है ? झूठे प्रमाण देते हो ! ! इस पर दो मिनट तक ढूंढने से न मिला तब तौ पौराणिकों के हर्ष का ठीक न रहा मारे हर्ष के आपे से बाहर हुवे जाते थे कि इतने ही में हमारे पं० गोविन्द सहाय जी ने उक्त श्लोक ढूंढ़ कर पं० तुलसीराम स्वामी को इशारा किया और पं० तुलसीराम ने समस्त सभा को दिखा दिया कि जिसका जी चाहे बांच (पढ़) ले, और कहा कि बस अब पौराणिक परास्त समझने चाहिए क्योंकि उन्होंने यह कहा था कि यह श्लोक मनु० में नहीं है जब मनु० में निकल आया तब उनको अपना पक्ष त्याग देना चाहिए इत्यादि—तब पं० गोकुलानन्दादि बोले कि ५००) रुपए की हारजीत लिखो इस पर प्रथम तो पं० तुलसीराम ने यही कहा कि यदि किसी के पास ५००) रुपए न हों तब क्या उसका पक्ष ही ठीक न माना जायगा. परन्तु पौराणिकों के हठ पर हमने यह भी स्वीकार किया कि अच्छा नियमों पर हस्ताक्षर करिए

हम ५००) रु० का प्रवन्ध भी कर देंगे तब तो पं० गोकुलानन्द जी यहाँ से भी हटे और कहने लगे कि तुम हमारा वक्त खराब करते हो यदि तुमको करना है तो १०/१० मिनट वक्त लेकर तफ़रीह (मजे)के वास्ते गुफ़्तगू करो नहीं तो जाने दो इत्यादि पं० गोकुलानन्द सदा ऐसे क्रोध में बोलते थे कि समस्त सभ्य पुरुष अपने जी में उनको जाने क्या खयाल करते होंगे अस्तु. हमने यह भी स्वीकारा कि खैर बिना नियमों के ही हमको १०/१० मिनट के समय विभाग से जुबानी शास्त्रार्थ भी स्वीकृत है परन्तु प्रथम आप संहिता से प्रतिमा पूजा १० मिनट में सिद्ध करें तब हम १० मिनट में खण्डन करेंगे पं० गोकुलानन्द ने मुसलमानों की तरफ इशारा करके कहा कि कोई शख़्स क़ुरान शरीफ़ के १५ सिपारों को (आधे क़ुरान को) मानकर कहे कि इतने से ही फ़लां बात साबित कर दो तब क्या इलाज है इसी प्रकार ये लोग संहितामात्र वेद के एक हिस्से को मानते है और कहते हैं कि इतने ही से मूर्तिपूजा सिद्ध कर दो इत्यादि तब पं० तुलसीराम स्वामीने उत्तर दिया कि यदि आप संहिताओं को केवल वेद का एक भाग मानते हैं और दूसरा भाग ब्राह्मणादि ग्रन्थों को। तब यह लिख दो कि संहिताभाग से प्रतिमापूजा सिद्ध नहीं होती किन्तु दूसरे भाग ब्राह्मणादि से सिद्ध होती हैं—जब आप यह लिखदेंगे तब हम आपके अभिमत ब्राह्मणभाग से सिद्ध हुए मूर्तिपूजन को भी स्वीकार कर लेंगे. परन्तु पौराणिक अपने जी में जानते थे कि संहिता से सिद्ध नहीं होता ऐसा लिखने पर हमारा पराजय हमारे ही मुख से स्पष्ट हो जावेगा अतएव टालमटोले कर प्रथम यही शास्त्रार्थ करना चाहा कि "मन्त्रब्राह्मण दोनों वेद हैं वा मन्त्र ही। हमने यह भी स्वीकार किया तब इस प्रकार शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ प्रथम पौराणिक पण्डितों में से पं० गोकुलचन्द जी खड़े हुए और १० मिनट में निम्नलिखित प्रमाण ब्राह्मणों के वेद होने में दिये। यथा—

पौराणिक पं० श्री गोकुलचन्द जी—

१. **'मन्त्रब्राह्मणयोर्नामधेयं वेदः'**—इस कात्यायन सूत्र से सिद्ध है कि मन्त्र व ब्राह्मण दोनों वेद हैं तथा—

२. **मान्त्रवर्णिकमेव** इत्यादि व्याससूत्र पर भाष्यकार तावनस्य महिमा इत्यादि ब्राह्मण का उदाहरण लिखते हैं इस से सिद्ध है कि भाष्यकार ब्राह्मण को वेद मानते हैं. तथा—

३. **तच्चोदकेषु मन्त्राख्या। शेषे ब्राह्मणशब्दः** इन जैमिनि सूत्रों से सिद्ध है कि इन मन्त्रों से शेष जो वेद भाग है उसकी ब्राह्मण संज्ञा है इससे भी सिद्ध है कि ब्राह्मण वेदों का शेष भाग होने से वेद हैं इत्यादि तथा—

४. **चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्याः** इत्यादि महाभाष्य से भी सिद्ध है कि ४ वेद अंगों व रहस्यों सहित हैं जिनमें ऋग्वेद की २१, यजुर्वेद की १००, साम की १०००, अथर्व की ९ शाखा वेदों में शामिल हैं इत्यादि. तथा—

५. **तदप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः।** न्यायसूत्र पर वात्स्यायन भाष्य में **"पुत्रकामः पुत्रेष्ट्या यजेत"** इत्यादि ब्राह्मण वाक्य उदाहरण दिए हैं जिससे सिद्ध है कि वात्स्यायन को ब्राह्मणों का वेद होना अभीष्ट था। तथा—

६. **उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा।**
सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः॥ (मनुस्मृति)
मनुजी कहते हैं कि उदित, अनुदित, समयाध्युषित सर्वथा यज्ञ वर्त्तमान है यह वैदिकी श्रुति है॥ सो यह श्रुति ब्राह्मण में मिलती है अतएव अनुमान होता है कि मनु जी ब्राह्मण को वेद मानते थे। तथा—

७. **न वियदश्रुतेः।** वेदान्तसूत्र पर शंकराचार्य्य कहते हैं कि आकाश की उत्पत्ति वेद में लिखी है तथा—**तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूत** इत्यादि ब्राह्मण का उदाहरण देते हैं इससे सिद्ध है कि व्यास जी आकाश की उत्पत्ति को वेदविरुद्ध कहते थे अतएव उस पर शंकराचार्य्य दिखलाते हैं कि वेद (उक्त वचन ब्राह्मण का है) में आकाश की उत्पत्ति लिखी है इससे सिद्ध है कि व्यास तो नहीं किन्तु शंकराचार्य्य ब्राह्मणादि को वेद मानते हैं॥

नोट—

इतना कहकर १० मिनट बीत गए तब इसका उत्तर पं० तुलसीराम स्वामी ने हमारी ओर से इस प्रकार दिया। यथा:—

॥ ओ३म् ॥

श्री पंण्डित तुलसीराम स्वामी जी—

पं० गोकुलचन्द जी का प्रथम प्रमाण (**मन्त्रब्राह्मणयोः०**) कात्यायन की यज्ञपरिभाषा है अतएव उसकी प्रवृत्ति सर्वत्र नहीं हो सकती क्योंकि परिभाषा केवल अपने विषय में प्रवृत्त होती है न कि सर्वत्र, आशय कात्यायन का यह है कि जहां २ यज्ञप्रकरण में इस (वेद) शब्द का उच्चारण करें वहां २ मन्त्र व ब्राह्मण दोनों समझो। इससे सब जगह मन्त्र और ब्राह्मण वेद नहीं माने जा सकते। जैसे पाणिनिमुनि अष्टाध्यायी में कहते हैं कि (**वृद्धिरादैच**)··· (**अदेङ्गुणः**) अर्थात् जहां २ (वृद्धि) पद का व्याकरण में हम प्रयोग करें वहां २ आ, ऐ, औ ये ३ अक्षर समझो और जहां २ (गुण) पद का प्रयोग करें वहां २ अ, ए, ओ, ये ३ वर्ण समझो इससे यह नहीं सिद्ध हो सकता कि सर्वत्र (वृद्धि) पद से आ, ऐ, औ समझे जावें और दर्शनशास्त्रों में (गुण) पद से अ, ए, ओ का ग्रहण कोई बुद्धिमान् नहीं करेगा—यद्वा, किसी ने अपने पुस्तक में यह संकेत कर लिया कि लफ्ज़ (अलिफ़) से (आर्य्य) समझो और लफ्ज़ (वे) से पौराणिक। और फिर (अलिफ़) व (वे) की बहस शुरू हो तो क्या कोई अक्लमन्द शख्स (अलिफ़) या (वे) के माने सचमुच सब जगह (आर्य्य) वा (पौराणिक) समझेगा ? कभी नहीं। इसी प्रकार कात्यायन का वचन भी ब्राह्मण की वेदसंज्ञा का विधायक नहीं। तथा—

२. **मान्त्रवर्णिक० व्याससूत्र** जो टीकाकार ने (**तावानस्य महिमा०**) इत्यादि उदाहरण दिया यह उसकी भूल है क्योंकि शुद्धपाठ यजुर्वेद संहिता के ३१ अध्याय में (**एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पुरुषः पादोऽस्य विश्वाभू०**) इत्यादि मौजूद है अतएव उसको यह वेदवाक्य शुद्ध २ उदाहरण में रखना था—इससे सिद्ध हुवा व्यास जी ने तो सूत्र का लक्ष्य इस यजुर्मन्त्र को रक्खा था टीकाकार ने भूल वा अज्ञान से अन्यत्र का उदाहरण लिख दिया अतएव ब्राह्मण वेद नहीं। तथा—

३. **शेषे ब्राह्मण शब्दः** का अर्थ भी जैमिनि के अभिप्राय तथा प्रकरण के विरुद्ध किया क्योंकि जैमिनि जी स्वयं (शेष) पद का अर्थ बतलाते हैं कि (**शेषः परार्थत्वात्**) ब्राह्मण शेष इसलिए कहाते हैं कि पराया अर्थ करते हैं अर्थात् वेद का अर्थ करते हैं अतएव सिद्ध हुआ कि ब्राह्मण वेद नहीं किन्तु वेद के अर्थ करने वाले टीकारूप हैं। तथा—

४. (**चत्वारो वेदाः साङ्गाः**) इत्यादि व्याकरण महाभाष्य में भी शब्द शास्त्र का विषय बतलाया गया है कि, "**कियान् शब्द शास्त्रस्य विषयः**" शब्द शास्त्र का विषय कितना है ? उत्तर—चार वेद अंगों और रहस्यों सहित तथा १०० यजुर्वेद की शाखा १००० साम की २१ ऋग् की ९ अथर्व की वाकोवाक्य, इतिहास, पुराण, वैधक इतना शब्द शास्त्र का विषय है। इतना कहने से ब्राह्मणादि ग्रन्थ, शब्द शास्त्र हुए परन्तु वेद नही हुए और यदि '**चत्वारो वेदाः**" इतने से चार वेद के अन्तर्गत समस्त ब्राह्मणादि समझे जाते तो उन २ के नाम भिन्न न आते इससे भी सिद्ध है कि महाभाष्यकार ने चार वेदों से ब्राह्मणादि को भिन्न समझा तभी तो भिन्न ग्रहण किया, अतएव ब्राह्मणादि वेद नहीं। तथा—

५. "**तद प्रामाण्य मनृतव्या**···" इत्यादि न्यायसूत्र पर भी जो वात्स्यायन जी ने "**पुत्रकामः पुत्रेष्टया यजेत**" ब्राह्मण वाक्य दिया सो यहां भी कुछ वेद परीक्षा प्रकरण नहीं किन्तु शब्द प्रमाण की परीक्षा है, सो हम यह कब कहते हैं कि ब्राह्मण (शब्द प्रमाण) में नहीं हैं, किन्तु हम तो यह कहते हैं कि ब्राह्मण वेद नहीं (शब्द प्रमाण) "मनकूल शहादत" अवश्य ब्राह्मण हुए। परन्तु वेद पद का तो न सूत्र में और न भाष्य में लेश मात्र भी (नाम) नहीं है। अतएव ब्राह्मण वेद नहीं। तथा—

६. उदितेऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा । सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥ (मनुस्मृति)

इस मनु के श्लोकस्थ "वैदिकी श्रुतिः" ये दो पद भी ब्राह्मण परक नहीं क्योंकि ब्राह्मण में भी उक्त श्लोक के सदृश पाठ नहीं यदि मान भी लिया जाय कि आशय मिलता है तो आपके मतानुसार कात्यायन परिभाषा से केवल यज्ञ विषयक ही है, अन्यत्र नहीं अतएव ब्राह्मण वेद नहीं।

७. "न वियदश्रुतेः" इस व्यास सूत्र में व्यास जी आकाश की उत्पत्ति नहीं मानते, क्योंकि वेद विरुद्ध है। ब्राह्मण को वेद नहीं मानते, संहिता में लिखी नहीं व्यास के विरुद्ध, जो शंकराचार्य "तस्माद्वा एतस्मा……" इस ब्राह्मण वाक्यानुसार आकाश की उत्पत्ति मानते हैं तो वेद विरुद्ध और व्यास विरुद्ध और मूल विरुद्ध व्याख्या है, अतएव व्यास के सामने उनके विरुद्ध शंकराचार्य का वचन प्रमाण नहीं, तथा हम पण्डित जी को यह भी सम्मति देते हैं कि यह शंकर का प्रमाण न दें क्योंकि शंकर दिग्विजय में उनके भावी शास्त्रार्थ प्रतिमा पूजा के विरुद्ध भी लेख मिलेंगे, जो पण्डित जी को कठिनाई में डालेंगे, यथा—

शाक्तैः पाशुपतैरपि क्षपणकैः कापालिकैर्वैष्ण वैरप्यन्यैरखिलैः खिलं खलु खलैर्दुर्वादिभि र्वैदिकम् ।।
मार्गं रक्षितुमुग्रवादिविजयं नो मान हेतोर्व्यधात्सर्वज्ञो न यतोऽस्य सम्भवति संमानग्रहग्रस्तता ।। ६५ ।।
(शंकर दिग्विजय सर्ग १५ श्लोक ६५.)

शंकराचार्य जी ने देवी के उपासक, पशुपति के उपासक, क्षपणक, कापालिक, वैष्णव तथा अन्य समस्त खलों के साथ जो शास्त्रार्थ करके विजय किया सो अपनी मान प्रतिष्ठा के लिए नहीं किन्तु केवल वैदिक मार्ग की रक्षा के लिए, अतएव हम पं० जी को सम्मति देते हैं कि—वह शंकर का प्रमाण न दें। क्योंकि ऐसा करने पर उनको आगे कष्ट में पड़ना होगा, हम व्यास के मूल सूत्र को मानते हैं, उसके विरुद्ध शंकराचार्य को नहीं, अतएव ब्राह्मण वेद नहीं।

नोट—

इतना कहकर उनके दिए सातों प्रमाणों का उत्तर श्री पं० तुलसीराम स्वामी जी दे चुके, तब पं० गोकुलचन्द जी का खड़े होने का भी साहस नहीं हुआ, परन्तु पं० गोकुलानन्द जी एक कोरा कागज हाथ में लेकर कहने लगे कि—

पौराणिक पं० श्री गोकुलानन्द जी—

देखो भाईयों हमारे पं० जी श्री गोकुलचन्द जी ने, १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २०, ये (वीस) प्रमाण दिये, परन्तु आर्य पं० ने सिवाय नहीं-नहीं के यानी ये भी नहीं, ये भी नहीं, अन्य कोई प्रमाण नहीं दिया।

श्री पंण्डित तुलसीराम स्वामी जी—

पं० जी हमारी भाष्य संहिता को हम तुम दोनों प्रमाण मानते है, अतःएव हमें प्रमाण देने की आवश्यकता ही नहीं, तुमको ब्राह्मण का देवदत्व सिद्ध करना था, जिसको हम नहीं मानते, उस पर आपके पं० गोकुलचन्द जी ने जो २ प्रमाण दिए उन-उनका मैंने उत्तर देकर स्पष्ट किया कि उक्त प्रमाण आपके पक्ष को पुष्ट नहीं करते।

नोट—

इस पर बहुत से लोग "बोलो सनातन धर्म को जय" बोलते हुए खड़े हो गए, और उठते हुए कुछ पौराणिकों ने एक साधारण मुसलमान से यह कहलाया कि "मेरी समझ में आर्य पण्डित ऐसी गुफ़्तगू करते हैं जैसी (नेचरिये) और हिन्दू पण्डित ऐसी, जैसी कि हम अहले इस्लाम" जिसका तात्पर्य कुछ न था, क्योंकि जब नेचरिये व मुसलमानों में बहस हो और (नेचरिये) वा मुसलमान दोनों में से एक परास्त हो जाये, तब इस दृष्टान्त से आर्य वा हिन्दुओं की जय-पराजय उक्तमुसलमान के कथनानुसार निकले, अस्तु अन्त में बड़े प्रतिष्ठित रईस मुसलमानों ने आर्यों के पक्ष की प्रबलता,

हस्ताक्षर युक्त लिख दी, जिनकी अक्षर-२ की नकल हम नागरी अक्षरों में इस शास्त्रार्थ के अन्त में प्रकाशित कर रहे हैं, पाठकगण वहां देख सकते हैं।

इस शास्त्रार्थ का परिणाम—

इस शास्त्रार्थ (मुबाहिसे) का असर यह हुआ कि बाजार के कई वैश्यों ने आकर आर्यों से निवेदन किया कि आपकी विजय हुई है, आप बाजार में एक-दो व्याख्यान देकर समाज स्थापित् कीजिए, बहुत लोग समाज में भर्ती होंगे। और आर्य धर्म स्वीकारेंगे, तदनुसार श्री पं० तुलसीराम स्वामी जी ने व्याख्यान दिए और २२ दिसम्बर सन् १८९३ ई० **को श्री मान लाला हरवंशलाल साहूकार किराणा के स्थान पर हवन हुआ और नगर निवासी २३ (तेईस) प्रतिष्ठित पुरुषों ने समाज में नाम लिखाये, और आर्य समाज की स्थापना की गई "।**

आभार प्रकट—

परमेश्वर इस समाज को चिरायु करे इस शुभ कामना के साथ में विशेष धन्यवाद श्री पं० तुलसीराम स्वामीजी उपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा पश्चिमोत्तर देश तथा अवध को देता हूं कि जो किराणा में १५ दिसम्बर सन् १८९३ ई० को सराय में ठहरे, जब कि किराणे में कोई समाजिक सहायक इतना प्रबल न था कि उनको ठहरा कर सहायता द्वारा शास्त्रार्थ कराता, परन्तु धन्य हो श्री पं० तुलसीराम जी को, जो ऐसे असहाय नगर में शास्त्रार्थ से न हटे। द्वितीय धन्यवाद यहां के जैनियों को है जिन्होंने धर्म निर्णयार्थ ठहरने को हमें स्थान तथा फ़र्श आदि—सब प्रकार की सहायता दी, अब अन्त में जो एक मुसलमान ने आर्यों की वार्त्ता नेचरियों के सदृश बतलाई थी उसके विरुद्ध कई रईस व मौलवी —मुसलमानों ने "आर्यों की विजय" लेख द्वारा प्रमाणित किया, वह लेख उर्दू से नागरी करके अक्षर-२ देते हैं, विद्वान लोग स्वयं समझ लेंगे। इति ॥

हस्ताक्षर—
"रामकृष्ण"—मंत्री आर्यसमाज (बनत)
जि० - मुज़फ्फरनगर (उ० प्र०)

इस शास्त्रार्थ के विषय में कुछ मुवज़िज़ लोगों की राय—

१. हस्ताक्षर नामा मुबाहसा जलसा मावैन आर्य धर्म प्रचारक कैम्प किराणा व धर्म सभा किराणा जिला - मुज़फर नगर (उ० प्र०)।

मैं करीब ४५ मिनट के जलसे बहस में बैठा रहा जिस मसले पर मेरे रूबरू बहस हो रही थी, उसमें क़ाबिल दलायल आर्य धर्म के पण्डित साहब के और बहमस ला वेद की तहक़ीक़ात और ब्रह्म परमेश्वर के वहदानियत का था, अगरचे मैं हर दो मज़हब से वाकिफ़ नहीं हूं—मगर अक़्ल इस बात को दरयाफ़्त कर सकती है कि किस फ़रीक की हुज्जत पुर ज़ोर और लायक उसूल है। रिवायात नक़्ली को मैं कुछ नहीं समझ सकता था, न मैं उसकी निसबत् (विषय में) कुछ राय ज़ाहिर कर सकता हूं। न करना चाहता हूं। मगर दलायल अक़्ली और क़वायद सर्फ़ी महब जो आर्य धर्म के पण्डित साहब ने अपनी पुरज़ोर तक़रीर में बयान फ़रमाये वह इन्साफ़याने तौर पर पण्डितान धर्म सभा की दलायल और क़वायद से बदरजहा बहतर और पुरज़ोर थे तीन दलायल तक़रीर में आर्य धर्म के पण्डित साहब ने बयान की थी, उनमें से दो का जवाब दलायल नक़्ली से जिसको मैं पहले कह चुका हूं कि मैं नहीं समझ सकता, दिया गया, मगर एक दलील का मुतलक़ जवाब दिया ही नहीं गया, अब उसके मायनी इसमें आग़ाह करने की ज़रूरत नहीं है।

हस्ताक्षर—
"साबिक़ हुसैन वकील मुनसफ़ी"

२. तहरीर मुन्दर्जे वाला से मैं भी इत्तफ़ाक करता हूं। अर्थात् (इस लेख से मैं भी सहमत हूं)।

हस्ताक्षर—

"मोहम्मद हुसैन बख्श" (उर्दू)

३. मैं शुरू वक्त से ता इख़तिताम जलसे नहीं बैठा सिर्फ़ करीब दो घण्टे के हाज़िर जलसे रहा, बवजह होने वक्त नमाज़ के उठकर जलसे मज़कूरे वाला से चला आया लेकिन बहालत नाशिशत (सभा) मेरी जहां तक में गौर करता हूं तक़रीर पण्डित आर्य धर्म की इन्साफ़ाना व पुरज़ोर थी लेकिन नतीजा कोई नहीं निकला मगर पण्डितान हिन्दू के (ने) तीन कलमे ख़िलाफ़े तहज़ीब इस्तेमाल किए, जिनमें कि उनकी तौहीन होती थी, मगर पण्डितान् आर्य निहायत तहज़ीब वो कुशादा पेशानी (प्रसन्न मुद्रा) से जवाब देते थे।

हस्ताक्षर—

"फैजउल्ला"

४. रायवाला से मुत्फ़िक़ हूं। अर्थात् उक्त राय में मेरी भी सहमति है।

हस्ताक्षर—

"अहमदहसन"

५. मेरी राय 'शरीक राय मुन्शी सादिक़ हुसैन मुत्फ़िक है, इस कदर मैं भी ठहरा था। अर्थात् (मुन्शी सादिक़हुसैन के लेख से मेरी भी सहमति है। मैं भी उनकी तरह ही मुबाहसे में रहा)।

हस्ताक्षर—

"अमानत अली वकील"

६. "मैं करीब दो घण्टे के सभा में हाज़िर रहा और हर दो फ़रीक की गुफ़्तगू खूब सुनता रहा, मगर मुझको ज़ुबान संस्कृत से वाक़फ़ियत नहीं है इस वाइस (वजह) से मसायल नक़ली को कुछ नहीं ब्यान कर सकता हूं। मगर दलायल अक़ली जो ज़ुबान गोहरे फ़िशां जनाब पण्डित तुलसीराम से सभा में आए निहायत मुदल्लिल पुर-तक़रीर मुनासिब मालूम होते थे, मगर मैं मज़कूर फ़िकरे दोबारा तहरीर करता हूं के मुझको मसायल नक़ली की तरजीह या गैर तरजीह का कुछ इलम् नहीं, मगर दलायल माकूल वोहत मुसलहसन और क़ाबिले तारीफ़ थे, और ज्यादा मैं कुछ तहरीर नहीं कर सकता, मगर तक़रीर पण्डितान हुनूद (हिन्दू पण्डित) की गुफ़्तगू मसायल अक़ली मेंज्यादे ज़ोर नहीं रखती थी, । मगर सवाल आख़िरूल्ज़िकर (पण्डित) आर्य का जवाव पण्डितान् साहब हनूद (सनातन धर्मी पण्डित) ने नहीं दिया।

हस्ताक्षर—

"मोहम्मद जफ़रयाब अली"

(बख़्त-इंगरेजी)

७. मैं सभा में मौजूद था, पण्डित की तक़रीर अक़ली बहुत ज़ोर की थी, और एक सवाल का जवाब पण्डित साहब मोसूफ़ का पण्डितान् हिन्दू ने नहीं दिया।

हस्ताक्षर—

"ख्वाजा मोहम्मद हुसन"

८. रायवाला से मैं मुत्फ़िक़ हूं। (ऊपर लिखी राय से मैं सहमत हूं)

हस्ताक्षर—

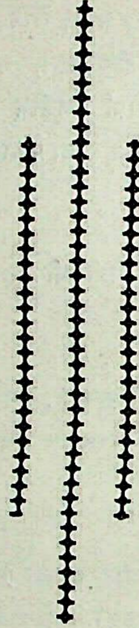
....

(मूल कापी में ठीक नहीं पढ़े गये—इसलिए छपे नहीं)

॥ इति ॥

बीसवां शास्त्रार्थ

स्थान : आगरा (आर्य समाज मोती कटरा) उत्तर-प्रदेश



दिनांक : १२ से १५ सितम्बर सन् १८९९ ई० (प्रथम दिन)

विषय : वेदों की उत्पत्ति, कब ! कहां !! और कैसे !!! हुई ?

शास्त्रार्थ कर्त्ता आर्यसमाज की ओर से : पं० कृपाराम शर्मा जगरानवी (स्वामी दर्शनानन्दजी-सरस्वती)

शास्त्रार्थ कर्त्ता मुसलमानों की ओर से : मौलवी अबुल फ़रह साहिब (पानीपती)

सहायक : मौलवी जहांगीर खां साहब तथा श्री मौलवी अब्दुल मजीद साहिब व काज़ी ज़ुहुरूल्लहसन साहब

आर्य समाज के मन्त्री : पं० कृपा शंकर एम० ए० (प्राज्ञ शास्त्री)

आर्य समाज के प्रधान : बाबू जमनादास बिश्वास "वकील"

सभापति : बाबू जोज़फ़ फ़ारनन साहब (सिविल लाइन आगरा)

शास्त्रार्थ के प्रधान : श्री जलसा बाबू

नोट : पं० कृपाराम जी शर्मा (जो बाद में स्वामी दर्शनानन्द जी) के नाम से विख्यात हुए उनका जन्म स्थान "जगरावां" जिला लुधियाना था, इसलिए उनको जगरानवी कहते थे, मैंने उनके मकान में एक बार तीन व्याख्यान दिए। उनके दो पुत्र थे, श्री नृसिंह देव जी तथा श्री अमर नाथ जी।

"अमर स्वामी सरस्वती"

शास्त्रार्थ से पहले

मालूम होवे कि पं० कृपाराम शर्मा जगरानवी १० सितम्बर १८९९ ई० को वास्ते अपील वेद प्रचार फ़न्ड (बुलन्दशहर) से आगरा में आये, और एक विज्ञापन आम जनता के लिए प्रकाशित कराया गया, जब व्याख्यान हो चुका तो मौलवी जहांगीर खां साहब आगरा ने कुछ सवाल किए, जिनका जवाब दिया गया, दूसरे रोज वेद प्रचार फ़न्ड के वास्ते अपील थी, उसके नोटिस दिए जाने पर शाम को मौलवी साहब कई मुसलमान दोस्तों के साथ तशरीफ़ लाए और बातचीत दरम्यान (बीच) आर्य समाज व मौलवी साहब के साथ होने की ख्वाहिश (इच्छा) ज़ाहिर (प्रकट) की।

पं० कृपा शंकर एम० ए० प्राज्ञ०, सैक्टरी आर्य समाज ने आज के दिन अपील में नुकसान होने के ख्याल से मुबाहिसे के लिए मौलवी साहब को कहा कि आप कल शाम के ६ बजे से ९ बजे तक बाक़ायदा तरीके से मुबाहिसा कर सकते हैं। जिससे अवाम (जनता) को फायदा न पहुंचे उस मुबाहिसे को करना व्यर्थ है, मौलवी साहब ने इस बात को मन्जूर (स्वीकार) कर लिया, और इस बात का आम ऐलान कर दिया गया, परन्तु यह ऐलान बजरिया नोटिस न था, बल्कि जो लोग लैक्चर सुनने आए थे, उन्ही को जुबानी कह दिया गया, अगले रोज सुबह ही बाबू जमनादास विश्वास वकील प्रेजीडेन्ट आर्य समाज ने क़वायद (नियम) बनाकर मौलवी साहब के पास पं० दौलतराम जी के हाथ भेजे, जिस पर मौलवी साहब ने यह कहकर कि ये नियम सख्त हैं अपने दस्तख़त नहीं किए, वे नियम इस प्रकार हैं—

१. मुबाहिसे के लिए एक वक्त मुकर्रर होगा। दो या ढाई घण्टा प्रतिदिन इस कार्य के लिए नियत होंगे, यानी ६ बजे शाम से साढ़े आठ बजे रात्रि तक।

२. जमायत हर दो जानब (दोनों तरफ के आदमी) दस-दस से ज्यादा न होंगे, और कोइ शख्स (व्यक्ति) उनमें जो जामाए फ़सलियत व अलमीयत से मुबर्रा हो अर्थात् (जो आलिम व फाज़िल न हो) उसे उनमें शामिल नहीं किया जाएगा।

३. सिवाय मौलवी साहब और पण्डित साहब के मन्जूर किये बिना किसी को कुछ भी सवालात और जवाब देने का अधिकार न होगा।

४. सभ्यता के खिलाफ कोई बात नहीं कही जाएगी।

५. हर एक तरफ से दो-दो व्यक्ति शास्त्रार्थ को लिखने वाले नियत्त होंगे। पहले सवाल करने वाले के मुंह से जो लफ्ज निकलेंगे उनको लिखकर सुनाया जाएगा। उस पर दस्तख़त सवालकर्त्ता के होंगे। इसी तरह जवाब देने वाले के भी दस्तख़त आदि होंगे। और दोनों तरफ के मुबाहिसा करने वालों के हवाले एक-एक पर्चा किया जाएगा।

६. अपने किए हुए सवाल या जवाब में दोनों वक्ता सुधार कर सकते हैं परन्तु पूरे को ही बदलना चाहें तो नहीं बदल सकते।

७. शास्त्रार्थ में हवाला व सबूत सत्य शास्त्रों और उलूम मुतफ़ारका के काबिल तसलीम होंगे (जिन किताबों को समाज प्रमाण मानती हैं) माने जावेंगे, और वह शास्त्र जिनको समाज नहीं मानती उन्हें नहीं माना जायेगा। एवं सवाल जवाब के बीच में किसी को बोलने का अधिकार नहीं होगा। और उसके मुक़ाबले में मौलवी साहब के लिए कुतुब इस्लामियां (इस्लामी ग्रन्थों) का हवाला दिया जावेगा।

८. मौलवी साहब को कुरान व अन्य मुसलमानों के मान्य ग्रन्थों पर किए गए प्रश्नों को मानना होगा, एवं पण्डित जी को वेद प्रमाण मान्य होंगे।

९. शास्त्रार्थ करने से पहले उसके विषय निश्चित्त कर दिए जावेंगे।

१०. प्रश्नकर्त्ता एक बारी में दस से ज्यादा प्रश्न नहीं करेगा।

११. सवाल करने वाले को दस मिनट और जवाब देने वाले को पन्दह मिनट दिये जायेंगे।

१२. पहले जो साहब सवाल करेंगे उनको मुबाहिसे के अन्त में उत्तर का उत्तर देने का अधिकार होगा अर्थात् वह (ग्यारहवीं बार) बोलने का अधिकारी होगा जिसे दूसरे पक्ष वाले को सुनना होगा।

१३. शास्त्रार्थ के अध्यक्ष को अधिकार होगा कि कोई नियम विरुद्ध बात कहने पर झगड़ा आदि होने के डर से शास्त्रार्थ समाप्त कर दें।

१४. शास्त्रार्थ के बीच में जब तक एक सवाल का जवाब न हो जावे तब तक दूसरा सवाल नहीं किया जावेगा। तथा कोई भी वक्ता विषयान्तर में नहीं जावेगा।

१५. नियम तय हो जाने पर दो प्रतियों पर दोनों शास्त्रार्थकर्त्ताओं के हस्ताक्षर होंगे, और गवाही भी होगी। जिसमें एक कापी (इन्तजाम करने वाले अफसरों) को दी जावेगी।

१६. कोई भी व्यक्ति किसी भी सम्प्रदाय का क्यों न हो उसे शास्त्रार्थ में आने के लिए अध्यक्ष की अनुमति अवश्य लेनी होगी।

१७. सभा के बैठने का तरीक़ा भी दोनों मतों की सहमति पर होगा।

१८. शास्त्रार्थ की मध्यस्थ आम जनता होगी। और रोज़ का शास्त्रार्थ रोज़ ही प्रैस में प्रकाशित किया जावेगा और दोनों तरफ से दस-दस रुपये इसकी छपाई में खर्च वास्ते देने होंगे। यह छपाई का भार दोनों मजहबों की सहमति से होगा और छपा हुआ मैटर ऐसी जगह पर रखा जावेगा जिसे दोनों पक्ष सुरक्षित समझेंगे।

निवेदक—
दस्तख़त—जमनादास (सभापति)
आर्य समाज (आगरा)

नोट—

मौलवी जहांगीर साहब ने इन नियमों को मन्जूर नहीं किया, और न अपने नियम बनाकर भेजे बल्कि ये भी न लिखा कि हमको फ़लां नियम मन्जूर हैं और फ़लां जगह हम ये तजबीज़ करते हैं, केवल मुबाहिसा का नाम सुनते ही **"ये नियम सख्त हैं"** कहकर बात को समाप्त कर दिया। और शाम को दो-तीन सौ मुसलमान भाइयों के साथ आर्य समाज मन्दिर में तशरीफ़ लाये। और उस वक्त भी मौलवी साहब ने नियम तय करने में वक्त टालना चाहा, सिर्फ़ इन नियमों के विरोध में लेक्चर शुरू कर दिया। जिसका जवाब पं० कृपाशंकर M. A. जी ने बहुत ही अच्छे रूप में दिया, लेकिन मौलवी साहब ने नियम सख्त बतलाकर मुबाहिसे से किनारा करना चाहा, चूंकि लोग मुबाहिसा की खबर सुन कर बहुत संख्या में आये थे, इस वास्ते आर्य समाज ने यह मुनासिब न समझा कि अपने क़ायदे (नियमों) पर ज़िद (हठ) करें हालांकि वह नियम दोनों के वास्ते हर तरह ठीक थे। जिनसे मौलवी साहब बहाना बनाकर मुबाहिसे से पिण्ड छुड़ाना चाहते थे, इस पर आर्य समाज ने उनको कहा कि जैसे भी आप चाहें करें, परन्तु जिस तरह भी हो सके शास्त्रार्थ आरम्भ किया जावे। इस वास्ते जो नियम मौलवी साहब ने कहे उन्हीं पर शास्त्रार्थ करना मन्जूर कर लिया। नियम जो शास्त्रार्थ के लिए नियत्त हुए वह निम्न प्रकार हैं।

१. जो भी पक्ष जिस विषय पर बोले वह उसे प्रमाण सहित सिद्ध करे ।
२. बोलते समय कोई ग़लत बात न कही जावे जिससे पूर्वजों की बेइज्जती हो ।
३. बहस मूल बातों को मद्दे नज़र रखकर की जावेगी, इधर-उधर की बातों (विस्तार) पर नहीं होगी ।
४. जब शास्त्रार्थ में किसी पुस्तक का प्रमाण दिया जायेगा तो उसे पुस्तक से पढ़कर सुनाना होगा । यदि पढ़ न सके तो सिर्फ़ उसका अर्थ बताना होगा और वह अर्थ कहां लिखा है उस किताब को भी दिखाना होगा ।
५. जो सवाल हमारी तरफ़ से होंगे उनका जवाब तुमको देना होगा, और जो वे पेश करेंगे उनका जवाब मैं दूंगा ।
६. प्रश्नकर्ता तीन बार बोलेगा, और जवाब देने वाला दो बार बोलेगा, यानीं सवाल करने वाला सवाल करेगा, एवं जवाब देने वाला जवाब देगा, सवाल करने वाला आखिरी जिरह करेगा, जवाब देने वाला उसका जवाब नहीं देगा ।
७. एक दिन अहले इस्लाम की तरफ़ से सवाल होंगे, दूसरे दिन आर्य समाज की तरफ़ से । अगर उस दिन कोई बात अधूरी रह जाएगी तो सोमवार का दिन दोनों पक्षों के लिए होगा ।
८. सवाल करने वाले को दस मिनट तथा जवाब देने वाले को पन्द्रह मिनट का समय दिया जाएगा ।

इन नियमों के लिखे जाने के बाद ये तय हुआ कि नजात (मुक्ति) के वास्ते जो नियम दोनों मजहबों में हों वह लिखे जावें, ताकि उस पर बहस हो सके उस पर अहले इस्लाम ने अपने उसूल (सिद्धान्त) लिखवाये, चूंकि इन्तज़ाम ज़रूरी के वास्ते यह बात आवश्यक समझी गई कि कोई दूसरा न बोल सके । इस पर मौलवी जहांगींर साहब ने कहा कि— सहायता लेना आवश्यक है, इस पर श्री पं० कृपाराम शर्मा जी ने कहा कि -बस एक-एक व्यक्ति ही बोलेगा दूसरे की मदद नहीं ले सकेगा, इस पर बहुत देर तक मौलवी साहब ने कोशिश की, लेकिन जब यह तय हो गया कि दूसरा आदमी इम्दाद नहीं देगा तो मौलवी जहांगीर साहब को अहले इस्लाम ने अलग कर दिया, और वह ख़ुद अपनी कमज़ोरी को समझकर अलग हो गये और उनकी जगह मौलवी अबुल फ़रह साहब पनीपती (सैक्रटरी यतीमखाना, आगरा) नियत्त हुए । मौलवी अबुल फ़रह साहब ने आते ही इस्लाम के उसूल लिखवाये, जो इस प्रकार थे—

१. जमीन और आसमान के बीच अर्थात् दुनियां में खुदा एक है और उस एक की ही पूजा करनी चाहिए । और जिसने इस सच्चे तरीके की शुरूआत की है उसे अपना मार्गदर्शक नियत करें वह मार्ग दर्शक मौहम्मद रसूल हैं ।
२. चौबीस घण्टों में सिर्फ खुदा की इबादत ५ बार करनी चाहिए । जिसको नमाज़ कहते हैं ।
३. वह पवित्र स्थान जहां से ख़ुदा का नाम शुरू होता है, जिसे "बैतुल्ला" (अल्लाह का घर) कहते हैं मालदार मुसलमान जाकर उनके दर्शन करें ।
४. मालदार व्यक्ति गरीबों को ख़ैरात देवें जिसे ज़कात कहते हैं ।
५. अपनी कामवासना को मारने के लिए हर साल एक महीना रोजे रखे । इस्लाम के अन्दर ये पांच फ़र्ज़ हैं । जिनमें से एक को भी इन्कार करने वाला काफ़िर माना जाता है ।

नोट—
वो किताब जो इन पांचों असूलों (नियमों) को बताती है, वह खुदा की भेजी हुई है और उसको "कुरआन-शरीफ़" कहते हैं ।

दस्तखतकर्त्ता—
ख़ादिमउल्कौम (इस्लाम का सेवक)—
"मौ० अबुल फ़रह" पनीपती
सैक्रैट्री-कैशरीयतीमखाना (आगरा)

आर्य समाज के उसूल (नियम)—

१. आर्य समाज के सिद्धान्त में एक सर्वव्यापक परमात्मा की उपासना करने और दूसरे इन्सान को उपासना में दख़ल न देने और ईश्वर के निर्देशों को जो चारों वेदों से सृष्टि के आदि से अन्त तक बग़ैर किसी परिवर्तन के अपने बनाने वाले के सर्वज्ञता और पूर्ण ज्ञानको बताते हैं। उसके अनुसार अमल करना है। जिसके अन्दर कर्म, उपासना, ज्ञान, जीव के मलविक्षेप और आवर्ण रूप दोषों को दूर करने के वास्ते बतलाये गए हैं। उसके अनुसार कर्म करने से आर्य समाज "नजात" (मोक्ष) मानता है।

नोट—

इस पर मौलवी साहब ने अव्वल तो ये सबब हिन्दी और संस्कृत भाषा के न जानने के कारण बहुत से शब्दों को न समझकर मौलवी ने अर्थ पूछने आरम्भ किये। जब वो बतला दिए गए तो हवाला मांगा कि वेद के किस अध्याय में लिखा है? तो उनको हवाला यजुर्वेद अध्याय ३१ का दिया गया। नाज़रीन, हम कल शास्त्रार्थ आरम्भ करने से पहले ये बतलाना चाहते हैं कि जनाब मौलवी साहब ने अहले इस्लाम के रास्ते में उनके नियमों के विरुद्ध चलकर किस कदर कांटे बोये हैं।

आज तक जिस कदर मौलवी साहेबान ने हमसे बातचीत की, ये कभी नहीं माना कि इस्लाम की नींव मुहम्मद साहब ने डाली, बल्कि आदम तक इस्लाम को लेजाकर प्राचीन सावित करने की कोशिश की। यहां तक कि हमने जब इस्लामी नियमों के अनुसार इस्लाम की शुरूआत मुहम्मद साहब से बतलायी तो क़ाज़ी-जुहरूल्लहसन साहब (स्योहारवी) ने जिनका ख़िताब उनसे चार गुणा ज्यादा है, उसकी तरदीद (खण्डन) की। लेकिन शुक्र है कि मौलवी अबुल फ़रह साहब ने हमारे इस एतराज़ को कबूल कर लिया हैं कि इस्लाम की बुनियाद (नींव) डालने वाले हज़रत मोहम्मद साहब हैं। चूंकि दोनों मौलवी साहब इस्लाम की तरफ से वकील होकर आर्य समाज के खिलाफ़ बहस कर रहे हैं, एक इस्लाम को आदम तक लेजाकर क़दीम (प्राचीन) बनाना चाहता है, दूसरा इस्लाम जो मुहम्मद साहब ने नींव डाली ऐसा कहता है। इस वास्ते मौलवी साहेवान को चाहिए कि पहले अपने घर में फ़ैसला कर लें कि मोहम्मद साहब इस्लाम की बुनियाद डालने वाले हैं या नहीं। या तो मौलवी अब्दुल मजीद साहब क़ाज़ी जुहरूल्लहसन साहब के दावे को झूठा साबित करके अपने दावे को सही सावित करें या काज़ी साहब, मौलवी साहब के दावे को ग़लत सावित करके अपने दावे को सही सावित करें।

दूसरी बात यह है कि आज तक किसी अहले इस्लाम का यह दावा नहीं है कि "ख़ुदा का नाम मक्का से शुरू हुआ" और उससे पहले ख़ुदा का नाम नहीं था। जहां तक इस्लामी रिवायातों (परम्पराओं) से पता मिल सकता है, तो मक्का का बनना इब्राहीम पैगम्बर तक जा सकता है, क्या हमारे मुसलमान दोस्त इस बात को क़बूल करने को तैयार हैं कि मक्के से ही ख़ुदा का नाम शुरू हुआ? इससे पहले न था।

अब हम असल मुबाहिसा जो ता० १२ नवम्बर को हुआ लिखते हैं। चूंकि यह दिन मौलवी साहब के सवालात् के वास्ते निश्चित हुआ था, इस वास्ते मौलवी साहब ने सवाल आरम्भ किए—



शास्त्रार्थ प्रारम्भ

मौलवी श्री अबुल फ़रह साहब पानीपती—

हाज़रीन जलसा ! आप साहिबान् को यह मालूम है कि फ़लां मन्त्र और फलां अध्याय से यह लिखा गया है कि—यजुर्वेद या सभी वेद किस वक्त में किस ऋषि पर रचे थे, उस ऋषि की जीवनी बताओ ? कि वह किस जगह का रहने वाला था और क्या उम्र उसने पाई ? और किस-२ शहर में उसने मुनादी की और कौन-२ उसकी मुनादी से वेद के जानने वाले हुए उनके नाम एवं उनके शार्गिद (अनुयायियों) के नाम की जिन्होंने उनको तालीम दी, और इस बात का सबूत भी पेश करो कि वो तुम तक, सिलसिला वार कैसे पहुंचा ? और इस बात का सबूत दो कि सबसे पहली कौन किताब है ? चूंकि ये तवारीख़ी सवाल है, इसलिए पं० जी तवारीख खोलकर दिखावें अन्यथा और कोई जवाब नहीं माना जायेगा ।

पं० श्री कृपा राम जी शर्मा जगरानवी—

वेद—अग्नि, वायु, अंगिरा, आदित्य, चार ऋषियों पर दुनिया के आरम्भ में उतरे । तवारीख बारह सो या दो हजार साल से ज्यादा की नहीं मिल सकती, वेद को नाज़िल (उतरे) हुए एक अरब छयानवें करोड़ से ज्यादा हुए, तवारीख का ऐसे-२ विषयों में दख़ल (नोट) नहीं हो सकता । क्योंकि उस समय सृष्टि का आरम्भ था, जो ऋषि सृष्टि के आरम्भ में उनके बाद पैदा हुए उनको सिखलाना, या देना, या उतरना जो (तिब्बत) देश में हुआ । जो सबसे ऊंचा देश माना जाता है । क्यों कि उस समय दूसरे देश पानी में से निकले ही न थे, और न ही कहीं पर किसी जगह आबादी थी । इस वास्ते उन्होंने अपने चेलों को पढ़ाया जो आज तक सिलसिले वार चला आता है । जिसकी वजह से वेद श्रुति कहलाते हैं, चूंकि वेदों में किसी व्यक्ति का जिकर नहीं, और ना ही कोई इन्सान उसके बनाने वाला साबित हुआ, इस वास्ते उसके क़दीम (पुराना) होने में कोई शक (संशय) नहीं । उन ऋषियों का चाल-चलन योग समाधि और वेदों का प्रचार करना था, "ज़िन्दावस्था" वग़ैरा किताबों में वेदों का नाम मौजूद है, और "तौरेत" वग़ैरा में "ज़िन्दावस्था" के मानने वाले आतिश परस्तों (अग्निपूजकों) का जिकर है और इन्जील, ज़बूर, कुरान में तौरेत का ज़िकर है, लेकिन वेद में इन किसी का ज़िक्र नहीं है । जिससे पता चलता है कि वेद इन सबसे पहले के हैं । चूंकि वेदों का एक-२ अक्षर अपने आप में सुरक्षित है, जिससे वेदों को (गवाही) की कोई ज़रूरत नहीं है । इसलिए वेद पाठी वेद को एक जैसा ही बोलते हैं ।

मौलवी श्री अबुल फ़रह साहब पानीपती—

हज़रात सामईन् ! (उपस्थित सज्जनों) सोचो !! कि पं० जी साहब ने जो वाज़ किया (कहा) है कि वेद जो तिब्बत में हुए तो वह पहले किस भाषा में थे ? उसकी तारीख़ दिखाओं में ज़ुबानी नहीं मानता । हमारे यहां कुरान में मौहम्मद साहब की सवाने उमरी (जीवनी) लिखी हैं, जब वेद क़दीम (प्राचीन) है तो ख़ुदा और ऋषि क़दीम (प्राचीन) थे, इसलिए उनकी तारीख़ दिखाओ, अन्यथा बनावटी बात मानी जायेगी । जीवनी, अर्थात् तारीख़ आदि अगर उनके हाथ की लिखी नहीं है तो हम सही नही मानते । दयानन्द सरस्वती ने चारों नाम घड़ दिए हैं, कोई व्यास को चारों वेदों का निर्माता कहता है, चारों वेदों को हिन्दु मानते हैं । परन्तु उनके बनाने वाला कौन है ? इसमें मतभेद हैं । जब तक किसी व्यक्ति का चाल-चलन न पता हो तो उसे खुदा की पुस्तक दी गई, ऐसा नहीं मानते । कई लोग कहते हैं कि वेद में सच्ची तालीम है, परन्तु हम कहते हैं कि सच्ची तालीम (शिक्षा) "इन्जील और कुरान" में है । 'किस्सा' कहानी का बयान अगर

किसी किताब में न हो तो क्या वह ख़ुदा की बनाई हुई मानी जायेगी ? अगर वेदों के प्रकाश करने वाले ऋषि एक ही ज़माने में हुए तो बताओ किस मुल्क में हुए, उनकी जीवनी आदि बतलाओ अगर कोई तवारीख़ न थी तो एक अरब छ्यानवें करोड़ साल से ज़्यादा होने का हाल कैसे मालूम हुआ ? मेरा सवाल तारीख़ से सम्बन्ध रखता है। जब तक सही समय तारीख़ आदि नहीं बतलायेगें तो मैं जवाब नहीं मानुंगा।

पं० श्री कृपाराम जी शर्मा जगरानवी —

मौलवी साहब ने जो वेदों के नाज़िल (प्रकट) होने में जो अलग-२ राय बतलाई और वेदों के होने में तारीख़ का सबूत मांगा, और ये कहा कि "कई लोग कहते हैं कि वेद महर्षि व्यास जी ने बनाये हैं" मौलवी साहब इस बात को हवाला देकर बतलायें कि 'वेद'—व्यास कृत हैं ? क्योंकि ये बात आज तक किसी हिन्दू से नहीं कही गई। वेदों के (परमात्मा कृत) होने में कुल हिन्दू और आर्य एक मत हैं। जो मैंने बयान किये हैं। आपने जो एक अरब छ्यानवें करोड़ का सबूत मांगा, तो उसका सबूत नित्य पता यानी "अहले हनूद" (हिन्दुओं की जन्त्री) से मिलता है। जिसमें हर रोज़ एक दिन घटता और बढ़ता रहता है। जिसके हिसाब सही होने का सबूत ग्रहण वग़ैरा हैं। क्योंकि हिसाब में एक भी ग़लती हो जाये तो सारा हिसाब ही ग़लत हो जाता है। लेकिन आज तक ज्योतिष का हिसाब ग्रहण वग़ैरा के सम्बन्ध में ग़लत साबित नहीं हुआ। जिससे एक अरब छ्यानवें करोड़ साल से ज़्यादा समय से दुनिया की पैदायश व वेदों का होना साबित होता है। हर एक बात के वास्ते जो दुनिया के आरम्भ से सम्बन्ध रखता है, उसमें अक़्ली और इल्मी सबूत ज़रूरी है। तवारीख़ की ज़रूरत नहीं। क्योंकि तवारीख़ में हर बात लिखी नहीं जाती। आप इस बात का सबूत किताबी पेश कीजिए कि 'वेद'-व्यास ने बनाये ? क्योंकि पहले ही नियमों में यह लिखा जा चुका है कि हर एक को अपने दावे का सबूत पेश करना होगा।

मौलवी श्री अबुल फ़रह साहब पानीपती—

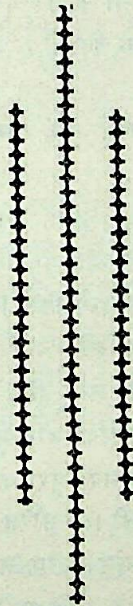
अफ़सोस! मेरे सवाल को ग़ौर से न सुना, या मेरे जवाब कान लगाकर न सुने, मेरा सवाल ये था कि तारीख़ से सबूत दीजिए कि "वेद किस ऋषि पर नाज़िल हुए" ? कौन से मुल्क में ये ऋषि थे ? एवं एक ही ज़माने में वेद उतरे हैं या अलग-२ समयों में ? ऋषियों ने किन-२ को पढ़ाया उनका सिलसिला बताओ ? ये वही वेद हैं जो ऋषियों पर उतरे थे इस बात का क्या सबूत (प्रमाण) है ? अग्नि, वायु, आदित्य, और अंगिरा नाम किसी वस्तु के हैं या ऋषियों के हैं, एक करोड़ की तारीख बतलाइये ? कि तुम पर ये वेद किस तरह सिलसिला वार पहुंचा ? भाईयों ! पं० जी ने मेरे सवाल के उत्तर में कोई भी तवारीख़ी सबूत पेश नहीं किया, और ना ही ऋषियों के पैदा होने की जगह बतलाई, सिर्फ नाम बतलाये हैं, जबकि ऋषि क़दीम थे, और ख़ुदा भी क़दीम था। तो तीन क़दीम हो गये, (वेद, ऋषि, ख़ुदा) और उन देशों का नाम जिनमें ये ऋषि पैदा हुए थे, नहीं बतलाया, मुल्क तिब्बत बतलाया तो उसे साबित करें? और ऋषियों का पाक होना साबित करें, एवं उनके बचपन, जवानी, और बुढ़ापे का हाल साबित करें।

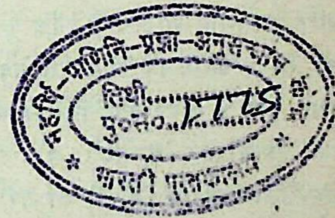
नोट—

बावजूद इसके कि इस बात का जवाब पहली बार दिया गया था, कि अंगिरा आदि ऋषि मुल्क तिब्बत में हुए, अगरचे सवाल से इसका कोई खास सम्बन्ध नही था लेकिन आर्य समाज को अपनी सच्चाई ज़ाहिर करनी थी, इसलिए मौलवी साहब के मामूली से मामूली सवालों का जवाब भी दिया गया। जिस प्रकार समय नियत था १५ मिनट, उसी समय के अनुसार उत्तर भी दिया जाता रहा। नियम के अनुसार मौलवी साहब तीन बार कह चुके, और हमें इसके बाद बोलने का हक़ नहीं था, इस वास्ते अन्त में उनके सवालों का जवाब नहीं दिया गया। ये सवाल मौलवी साहब को चाहिए था कि प्रथम बारी में ही करते, जबकि जवाब देना शेष था, तो इनके जवाब दिए जा सकते थे। परन्तु मौलवी साहब ने उस समय ये सवाल नहीं किये। उसके बाद दूसरे दिन का मुबाहिसा शुरु हुआ जिसमें आर्य समाज की ओर से हले इस्लाम पर सवाल होने थे।

इक्कीसवां शास्त्रार्थ

आगरा (आर्य समाज मोती कटरा) उ० प्र०





दिनांक : १३ सितम्बर सन् १८९९ ई० (दूसरा दिन)

विषय : इलहामी पुस्तक कौन ? वेद या कुरान !

शास्त्रार्थ कर्ता आर्य समाज की ओर से : पं० कृपाराम जी जगरानवी (स्वामी दर्शनानन्द जी)

शास्त्रार्थ कर्ता मुसलमानों की ओर से : मौलाना अबुल फ़रह साहब पानीपती

सहायक : मौलवी जहांगीर खां साहब तथा मौ० अब्दुल मजीद साहब व काज़ी जुहुरूल्लहसन साहब,

आर्य समाज के मन्त्री : पं० कृपा शंकर शर्मा एम० ए० प्राज्ञ-शास्त्री

आर्य समाज के प्रधान : बाबू जमना दास बिश्वास "वकील"

सभापति : श्री जोज़फ़ फ़ारनन्

शास्त्रार्थ के प्रधान : श्री जलसा बाबू

शास्त्रार्थ प्रारम्भ

पं० श्री कृपाराम जी शर्मा जगरानवी—

चूंकि मौलवी साहब ने जो उसूल (नियम) इस्लाम के बतलाए हैं उनका खण्डन खुद उनकी पुस्तक कुरान शरीफ़ से होता है, इस वास्ते इस्लाम बजाय खुदापरस्ती के शर्क (मौहम्मद साहब को शामिल करना) अर्थात् अल्लाह के साथ मौहम्मद साहब को भी जोडने की शिक्षा देता है। उसके खुदाई कलाम (वाक्य) होने में हमारे निम्न एतराज हैं—

१. जो व्यक्ति मकर (मक्कार) दग़ा करने वाला, कर्ज़ मांगने वाला, और कसमें खाने वाला हो तो क्या उसे खुदा कहा जा सकता है?

२. कुरान शरीफ़ १३०० साल से नाज़िल (पैदा) हुआ, उससे पहले दुनिया की नजात (मुक्ति) का क्या तरीक़ा था? अगर मुसलमान भाई ये कहें कि कुरान शरीफ़ से पहले इन्जील और इन्जील से पहले ज़बूर, और ज़बूर से पहले तौरेत, थी, तो ये बतायें कि आदम से लेकर मूसा तक लोग किस किताब पर अमल करते रहे अर्थात् किस किताब के आदेशानुसार चले? अगर कोई किताब थी तो उसे पेश करें। अगर कोई किताब न थी तो खुदा की ज़ात पर अर्थात् खुदा पर बेइन्साफ़ी (अन्याय) का इल्ज़ाम (दोष) लागू होता है। क्योंकि आदम से लेकर मूसा तक जिस क़दर आदमी हुए उनको नजात (मुक्ति) का तरीक़ा ही न बतलाया और मूसा पर तौरेत नाज़िल की (उतारी)। और ये भी बतलायें कि खुदा तौरेत में क्या लिखना भूल गये थे, जिसको पूरा करने के वास्ते ज़बूर भेजी, और ज़बूर में क्या कमी रह गई थी कि जिसको पूरा करने के लिए इन्जील भेजी। "तौरेत, ज़बूर, और इन्जील में ऐसा कौनसा इल्मी उसूल (ज्ञान का सिद्धान्त) न था जिसको बतलाने के वास्ते कुरान शरीफ़ आया जबकि कुरान के बनाने वाले ने बार-२ अपने विचारों को ग़लत समझ कर उनको रदद् किया। तो अब उसके सही होने का क्या सबूत है? और हज़रत मौहम्मद साहब को जो पैग़म्बर माना जाता है पैग़म्बर के माने पैग़ाम (संदेश लाने वाला) और पैग़ाम (संदेश) फ़ासला (दूरी) से आया करता है। तो बतलायें कि खुदा और इन्सान के बीच कितना फ़ासला है, जिस वास्ते पैग़म्बरों की जरूरत पड़ी? और जो खुदा सबका बनाने वाला एवं सब कुछ बनाने वाला, और सबको चलाने वाला, उसको फ़रिश्तों का मोहताज (आधीन) होना पड़ा, और आदम को ज़मीन पर अपना नायब निश्चित करके फ़रिश्तों को शर्क (मौहम्मद साहब को अल्लाह के साथ मिलाकर) की तालीम देनी पड़ी।

मौलवी श्री अबुल फ़रह साहब पानीपती—

हज़रत सामईन्! (उपस्थित सज्जनों), मैंने अपने कल के बयान में ये बात लिखवा दी थी कि शास्त्रार्थ नियमानुसार होगा, और दोनों पक्ष नियम से ही मुबाहिसा करेंगे बिना नियम के नहीं। और हमने ये सब उसूल की बातें पहले ही लिखवा दी थी। परन्तु हमें अफ़सोस है कि उन सबको भुला कर पं० साहब ने वो गुब्बार जो पं० जी के दिल व दिमाग में भरा हुआ था इज़हार (ज़ाहिर) कर दिया। और हमारे सारे उसूल (इस्लामी) को ध्यान में नहीं रक्खा। हमें लगता है कि पं० जी ने उन सब बातों को भुला दिया है। लिहाजा मैं इस गुफ़्तगू का जवाब एक ही लफ़्ज में दूगां। "भाई ये काम ज़िद का नहीं है बल्कि इन्साफ का है" और यहां सब लोग बैठे हैं, और पं० साहब ने लिखवाया है कि कुरान शर्क की तालीम देता है। मैंने कल नियम में लिखवाया था कि कोई भी बात बिना सबूत के पेश न की जावे। परन्तु मुझे अफ़सोस है कि पं० जी ने कोई सबूत पेश नहीं किया। परन्तु मैं अब अपनी बात का

जवाब देने से पहले सबूत पेश करता हूं—देखिए—कुरान पहले आयत पांच पारा की सातवीं आयत में लिखा है—(इसी प्रकार मौलवी साहब ने कई आयतों के पते लिखवा दिए)—और कहा कि पैगाम्बर की ज़रूरत के विषय में जो ऋषियों की आवश्यकता है वही पैगाम्बर की है। अर्थात् जो ऋषियों के विषय में आपका जवाब था, वही पैगाम्बरों के विषय में हमारा जवाब है। हमें अफ़सोस है कि आपने कुरान व तौरेत को पढ़कर नहीं देखा। कि क्या कमी थी, क्योंकि ये बहस उसूल से निकल गई है। इसलिए मैं इस वास्ते दूसरा समय निश्चित करूंगा। क्योंकि ये बहस पांच उसूलों के अन्दर नहीं है जो मुबाहिसा शुरु करने से पहले नियत किए गए थे। तो "खुदा को मक्कार और दग़ाबाज़ कहा गया है" जिस वक्त आप कुरान पढ़ेंगे तो यह छोटी सी बात आपको मालूम हो जायेगी, जब १३०० साल से इस्लाम आरम्भ हुआ तो उससे पहले नजात (मुक्ति) का क्या तरीका था। नियम से इस बहस का कोई सम्बन्ध नहीं है। अगर मैं बहस करना चाहूं तो मैं आर्य समाज के पचास व्यक्तियों पर आक्षेप कर सकता हूं। लेकिन मैं नियम से गिरूंगा नहीं। इसलिए आप भी कान खोल कर सुन लें अर्थात् पुनः याद दिलाता हूं कि बहस नियम के अन्तर्गत ही करें।

हमारा नियम यह है कि एक खुदा की परस्तिश (पूजा) हो। **आप हमारे यहां खुदा की परस्तिश बताओ कहां होती है**? पांच वक्त की नमाज़ के विषय में ज़कात (ख़ैरात) देने के विषय में, अफसोस! कि ये अधूरा सवाल रह गया, आदम का बहिश्त से गिरना, और सीढ़ी वगैरा का इस्लाम के नियम से कोई सम्बन्ध नहीं, आप अगर इस बात को यूं कहे कि "हम पूछते हैं" जब कल के नियमों में यह बातें तय हो गई कि बहस नियमान्तरगंत होगी, तो जो पांच नियम इस्लाम के तय हुए हैं उनके अनुसार ही बहस करें। आदम को नमाज़, रोजा, खाना, काबा और खुदा वगैरा से क्या ताल्लुक है? मुझे सख्त अफसोस है। मैं हर्गिज़-२ जवाब नहीं दूगां। प्रधान जी खड़े होकर इन्साफ़ करें।

पं० श्री कृपाराम जी शर्मा जगरानवी—

आपने नोट में लिखवा दिया था कि कुरान शरीफ़ को हम कलाम इलाही (खुदाई किताब) मानते हैं, और जो व्यक्ति कुरान पर सन्देह करता है, वह आपके ख्याल के अनुसार काफ़िर है। इस वास्ते कुरान शरीफ़ का सम्बन्ध उसूल (नियम) से हैं, दूसरे आदम के सिज़दा के कुरान में होने से शर्क की बहस जारी है। जो पहले नियम से सम्बन्धित है। इस वास्ते आदम के मुताल्लिक (सम्बन्ध में) बहस करना नियम के खिलाफ़ नहीं है। मौलवी साहब कल बावजूद इस बात के बता देते कि वैदिक धर्म के मानने वाले वेद और शास्त्रों के प्रमाण मानेंगे लेकिन अपने खिलाफ़ नियम वेद व शास्त्र को छोड़कर तवारीख़ का सबूत मांगा था। जो कि बिल्कुल नियम विरुद्ध था। आज कुरान शरीफ़ के अन्दर विषय की सच्चाई जानने के लिए सबूत देने से इन्कार किया जाता है।

मौलवी श्री अबुल फ़रह साहब पानीपती—

मैंने कल अपने बयान में पांच उसूल कुरान के लिखवा कर कहा था कि क़ुरान के अन्दर ये नियम इस्लाम के हैं, अगर उसके भेजे हुए, रसूल, रोज़ा, नमाज़, ज़कात, और हज्ज ये पांच को जो न माने वह काफ़िर है। अगर किस्सों पर बहस की जावे तो इस हिसाब से कुरान में मूसा का किस्सा भी तथा औरों का भी है। आदम के किस्से का और हमारी नजात (मुक्ति) से कोई ताल्लुक (सम्बन्ध) नहीं। वेद में हर एक ज्ञान का जिकर है, अगर बहस की जावे तो मैं सब लोगों के सामने ये कहता हूं कि वेद जिसको ईश्वर कृत मानते हो तो पहले उनके "मन्त्र ईश्वर कृत हैं" इसका प्रमाण (सबूत) दो। जिसमें थोड़ी भी समझने की बुद्धि होगी वह जान लेगा कि आदम के किस्से से इसका क्या सम्बन्ध है? किस्से तो "ईसा, मरियम नूह जिकरिया मूसा" सबके हैं, ये मैं भी जानता हूं, और यह भी कि ये बहस फ़रूआत् (विषय से बाहर) से है। एक खुदा की इबादत कुरान शरीफ़ से खिलाफ़ साबित कीजिए तो मैं निहायत खुशी से उस पर ग़ौर करके आपको जवाब देने को तैयार हूं। जब कुरान या वेद का सबूत (प्रमाण) दिया

जावे तो उसके साथ तवारीख़ का सबूत ज़रूरी देना होगा। अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा का जमाना, वेद का सिलसिला, के साथ तवारीख़ी सबूत दो, हम भी कुरान से इसी से सम्बन्धित प्रश्न के जवाब में तवारीख़ सहित जवाब देगें, आप अक़्ली, नक़ली, या दलीली, कोई तो सबूत दीजिए।

पं० श्री कृपाराम जी शर्मा जगरानवी—

आपने पहले दिन आर्य समाज के नियम पर वहस नहीं की थी, वल्कि उसूलों केवजाय वेदों पर वहस की थी, इसलिए पांच नियम कुरान के अनुसार आपने वतलाये, इस वास्ते केवल कुरान पर ही वहस की गई है। क्योंकि जो इन पांचों का मूल है मूल के ग़लत हो जाने से सब उसूल ग़लत हो जायेगें। चूंकि नमाज़ में सज़दा होता है, और फ़रिश्तों को भी आदम के लिए सजदा करने का आदेश दिया गया है। ये मैं भी जानता हूं कि ये पुराना किस्सा है लेकिन इसका उसूल से ताल्लुक है, क्योंकि जैसे इबलीस ने आदम को सिज़दा नहीं किया तो वह काफ़िर हो गया, अगर सिज़दा करने का हुक्म खुदा की तरफ से न होता सिर्फ किस्सा ही होता तो उसका उसूल से ताल्लुक न होता, लेकिन खुदा, खुद सिजदा का हुक्म दे, और सिज़दा न करने वाले को सज़ा दे, जिस तरह सरकार किसी फ़ेल(हुकम)के न मानने पर सज़ा दे तो वह फ़ेल सरकार का हुकम माना जाता है। इस वास्ते जब खुदा ने आदम को सिज़दा न करने पर इबलीस को सज़ा दी तो ये सिज़दा, खुदा का हुकम था, और जो खुदा का हुकम है वही उसूल है यानी "कसमों से शर्क साबित नहीं किया था, ब्लकि ये कहा था जो शख्स कसमें खाता है" वो ख़ुदा कैसे हो सकता है ? खुदावन्द करीम कसमें खाकर यकीन दिलाने वाला "ख़ुदा नहीं", क्योंकि कहा है ? "कसम खुर्दन खुदरा कसम साख्तन् अस्त" कसम खाना अपने आपको सन्देह युक्त सिद्ध करना है। खुदा को किसी कसम की ज़रूरत ही नहीं वो हर एक दिल में जिस ख्याल को चाहे डाल कर यकीन दिला सकता है।

आप सबको मालूम हो गया होगा कि किसी विद्वान् को "क़सम" (शपथ) उठाकर समझाने की ज़रूरत नहीं होती वह तो दलीलों से समझा सकता है। आपने जो ऋषियों पर वेद के इलहाम होने और पैग़ाम्बरों के आने का मुकाबला किया ये ठीक नहीं है। क्योंकि वेदों में यह नहीं लिखा कि—फ़रिश्ते "पैग़ाम लेकर आये," ब्लकि वहां पर तो परमेश्वर के हर जगह मौजूद होने से उन ऋषियों की आत्मा में जो परमात्मा सर्व व्यापक है उन्हीं से उपदेश मिला, यह वतलाया है। इस वास्ते जो शख्स पैग़ाम लाने का दावेदार है उसके लिए यह जरूरी है कि पहले खुदा व इन्सानों के बीच फ़ासला (दूरी) का होना साबित करे। मौलवी साहव मेरे सवाल का जवाब दें कि पैगाम्बर की जरूरत क्यों हुई ? जब तक खुदा और इन्सान के बीच कोई दूरी न मालूम हो जावे तव तक पैगाम्बर की ज़रूरत नहीं साबित हो सकती ? मैंने जो १३०० वर्ष से इस्लाम की बुनियाद बतलाकर कहा था कि उनसे पहले किन उसूलों की पैरवी से इन्सानों की निजात (मुक्ति) होती थी। और जो उसूल (निजात) खुदा की तरफ से जारी थे वो उसूल कुरान शरीफ के मुआफ़िक़ (अनुकूल) थे या नहीं ? और उन उसूलों में क्या कमी थी ? जिसको कुरान ने पूरा किया। उसका सम्बन्ध कुरान के साथ हैं। और जब तक उन किताबों से जो ईसा दाऊद और मूसा पर नाज़िल हुई (उतरी)। जो अहले इस्लाम की तरफ से मानी जाती हैं। [illegible] और उनके नियमों का रद्द होना, साफ़ शब्दों में ज़ाहिर न हो तब तक कुरान की ज़रूरत ही नहीं साबित होती। और जो पुस्तकें हज़रत मूसा-ईसा और दाऊद पर उतरी थी, वह क्यों मन्सूख (रद्द) हुई। और फिर खुदा ने अपना हुक्म तीन बार रद्द किया उसका क्या सबूत है कि वह कुरान को [illegible] बिल्कुल नहीं दिया। मौलवी साहव ने सवालों का जवाब बिल्कुल नहीं दिया। [illegible] है कि सवालों का जवाब "अफ़सोस" से देते हैं। [illegible] अपने दावे में एक भी सबूत न देते हुए अफ़सोस ही [illegible] जो कि जवाब न देने से जाहिर हुआ, देखा जावे तो वह खुद [illegible] को मना किया है, मान लिया जावे। और जिन आयतों में आदम को सिजदा का हुक्म है उन्हें भी मान लिया जावे तो मुतज़ाद (परस्पर विरोधी) हुक़्म के होने से

कुरान को खुदाई होने में और उससे कमी वाक़या (दोष) होता है, कि वह स्वयं ही अपनी बात को आप काटता ही रहा। यह कि कोई शख्स अपने अज़ीज (प्यारा) की क़सम खाये तो क्या हर्ज है ? लेकिन कुरानी खुदा ने तो दौड़ने वाले घोड़ों की क़सम और जमीन व उसके बिछाने वाले आदि ऐसी बहुत सी चीजों की क़सम खाई है जिसको मौलवी साहब खुदा का अज़ीज साबित नहीं कर सकते। और जमीन को बिछाने वाला सिवाय खुदा के दूसरा नहीं। फिर खुदा होते हुए उसे जमीन के बिछाने वाले की क़सम खाने का क्या प्रयोजन है ? और साथ ही यह भी लिखा है कि "क़सम खाने वाले का ऐतबार नहीं होता।" बशर्ते के वो दलील हो, जो बहुत मक्कार है और मकर की आदत रखता है उसके ज़लील (बुरा) होने में क्या शक़ (सन्देह) है ? क्योंकि मकर (दग़ा) के वास्ते दफ़ा ४१७ (चार सौ सत्तरह) नियत्त है, इसलिए जो दग़ा-फरेब करता है उसकी सदाक़त (सच्चाई) किसी चीज से साबित नहीं हो सकती। और कुरानी खुदा ने कुरान की सच्चाई के वास्ते खुद क़समें खाई हैं जो कुरान ही से क़ाबिल सबूत नहीं रहती। इसलिए मौलवी साहब का दावा अक्ली दलील से, जिससे मुद्दल्लिल (दलील के साथ) करके दिखाना चाहिए था, गिरा हुआ है।

मौलवी साहब से ये मेरा सवाल है कि आप किसी प्रामाणिक तवारीख़ से यह सबूत दें कि आदम कितने दिनों तक बहिश्त (स्वर्ग) में रहे ? और जब बहिश्त से गिराये गये तो किस सन् और किस तारीख को गिराये गये ? और जब बहिश्त से हज़रत गिरे थे तो उनकी उम्र क्या थी ? और वो बहिश्त जिससे हज़रत आदम गिराये गए थे वह जमीन पर थी या आसमान पर ? और गिरते समय वो किसी सीढ़ी के द्वारा गिरे थे या ऐसे ही धकेल दिया गया था, इसका प्रमाण आप किसी प्रामाणिक पुस्तक से दीजिए। सिर्फ़ मुसलमानों की लिखी किताब सबूत के काबिल नहीं मानी जावेगी।

नोट—

इस पर ये दिन समाप्त हो गया और अगले दिन मौलवी साहब ने वेदों पर ऐतराज़ किए। और उस रोज़ अन्त में यह बात भी तय हो गई कि अगले रोज से **"वेद के इलहामी किताब होने और कुरान के इलहामी किताब होने पर"** बहस की जावेगी, यह बात आम तौर पर सभी श्रोताओं के सामने तय हो गई। और उसके अनुसार अगले दिन मौलवी साहब ने वेदों के इलहाम होने की बाबत बहस की। और इस बात का प्रमाण मांगा कि इलहामी पुस्तक में क्या प्रमाण होना चाहिए। और ये भी जिस क़दर मौलवी साहब से हो सका वेदों के विषय में बहस की गई, जिस बहस को श्रोता-गण तारीख की बहस से अच्छी तरह मालूम कर सकते हैं। लेकिन जिस रोज़ मौलवी साहब से कुरान की छानबीन के वास्ते सवाल करने का निश्चय हुआ था, उस दिन उन्होंने इजाजत (स्वीकृति) ही न दी, जिससे आम जनता को मालूम हो गया कि मोलवी साहब कहां तक हक़ पसन्द (सच्चाई को पसन्द करने वाले) थे। या उन्होने जिद की, अगचें मौलवी साहब ने स्वयं लिखवाया था कि ये काम "ज़िद का नहीं इन्साफ़ का है" और आर्य समाज ने आरम्भ से ही तहक़ीक़ात (छानबीन) को ही मद्दे नज़र (ख्याल में) रखकर अपने बनाये हुए कुल क़ायदों (नियमों) के खिलाफ़ (विरुद्ध) मौलवी साहब ने अपने बनाए हुए नियमों के अनुकूल बहस मन्जूर की लेकिन मौलवी साहब ने अपने नियमों को खुद ही तोड़ दिया, और तहक़ीक (सच्चाई) से किनारा किया। उसका हाल सभी वहां उपस्थित सज्जनों को मालूम है। इस वास्ते ज्यादा कहने की आवश्यकता नहीं है।



तीसरा दिन

१४ सितम्बर १८९९ ई०

मौलवी श्री अबुल फ़रह साहब पानीपती—

साहेबान ! **"क्या वेद इलहामी किताब है"** इस पर मेरे सवालात् इस प्रकार हैं।

१. किसी पुस्तक की (मिन्ज़ानब अल्ला) अल्ला की तरफ से अर्थात् "ईश्वर कृत" साबित करने के लिए किन-किन गवाहियों की जरूरत है ?

२. ये के वो दलायल और क़वायद (दलीलों और नियमों) में से वो कौन से हैं जिन पर कसने से किसी किताब का अल्ला की तरफ से "ईश्वर कृत" होने का सबूत होता है ?

३. ये के वो नियम और कायदे कौन से हैं जो इस बात के लिए नियत्त किए जावें ? खुदा की किताब उन विशेषताओं के अनुकूल होनी चाहिए कि तमाम ज़माने के अकलमन्दों को समझा सके।

४. वो कायदे व उसूल जो खुदा की किताब पहचानने के लिए नियत्त किए गए हों वह उकलेदस (ईश्वरीय ज्ञान) के पक्ष में है या कम है या ज्यादा है या बराबर है ?

५. वो सब कायदे या मियार (रुतबा) कौन सा है जिससे खुदा की किताब पहचानी जा सके। और वो कौन से रुतबे का शख्स होना चाहिए जिसकी तारीफ़ से खुदा की किताब पहचानी जा सके।

६. गवाहियां किसी किताब की "मिन्ज़ानब अल्ला"(ईश्वर कृत) साबित करने के लिए पैश की जा सकती है वो कितनी किस्म की हैं ?

७. वो शहादतें (गवाहियां) जो किसी किताब को ईश्वरकृत होना साबित करती हों अन्दरूनी गवाहियां होनी चाहिए या बाहर की ?

८, यदि वो गवाहियां अन्दर की हैं तो कौन-कौन किस्म की हैं ? और अगर बाहर की हैं तो किस व्यक्ति की बनाई हुई है या वो चुनी हुई है ?

९. ये के जो शख्स अपने ज्ञान की ताकत से या अपनी मज़हबी ज़िद की ताकत से किसी किताब पर ज़ोर देता है, क्या ? उसके बयान में गलती हो सकती है या नहीं ? और अगर वो "ईश्वर कृत" उसे साबित करना चाहे। बस इन नौ सवालों पर जवाब। पं० साहब एक नज़र डालकर ग़ौर फ़रमावें और विस्तारपूर्वक हर एक का जवाब व पता दें।

पं० श्री कृपाराम जी शर्मा जगरानवी—

१. पहले सवाल का जवाब ये हैं कि परमेश्वर की बनाई हुई किताब के लिए इस बात की आवश्यकता है कि वह किताब परमेश्वर की ज़ात (परमेश्वर) पर किसी प्रकार का इल्ज़ाम (दोष) न लगाती हो।

२. दूसरी बात का उत्तर ये है कि परमेश्वर ने इस दुनिया को बनाया है और दुनिया का कुल सिलसिला परमेश्वर के हाथ का बनाया हुआ है। बस जो किताब उसके विरुद्ध न हो वह ईश्वर की किताब है।

३. उसके लिए जो नियम जरूरी है कि वह किसी मुल्क की भाषा में न हो दूसरे उसमें किसी आदमी का किस्सा कहानी न हो तीसरे जिस तरह परमेश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में सूर्य की रोशनी दी है, और इन्सान ने चिराग़ों की रोशनीं बीच में वनाई है, इसी तरह वह दुनियां के आरम्भ से हो, चोथे उस किताव में आपस में विरोध न हो , पांचवें कोई बात इल्मी उसूल के विरुद्ध न हो, छटे उस किताव में एक ही बात को विना मतलब के वार-बार दोहराया न गया हो।

४. इस सवाल का जवाब ये है कि परमेश्वरीय नियम केवल व्यक्ति की वनावट से सम्वन्ध रखते हैं, अन्य किसी चीज से नहीं, और वह बनावटी भी है ईश्वरीय किताव के लिए जो नियम लागू किये जा सकते हैं वो ईश्वरीय सिफ़ात (परमेश्वर के गुणों) के अनुसार लिए जावेंगे।

५. परमेश्वर की किताव को सावित करने के लिए जो नियम करने के लिए हो सकते हैं वह परमेश्वर के गुणों से हो सकते है, किसी आदमी के फ़र्जी ख्यालात (वनावटी विचारों) से नहीं हो सकते।

६. हर एक किताव की छानबीन करने के लिए दो तरह की गवाहियों की जरूरत है, एक उन वेग़र्ज़ व्यक्तियों को जिन्होंने नियमानुसार उसके नियमों को समझकर उनके बारे में अपनी राय दी हो। दूसरे उसके मज़मूनों (विषयों) के अन्दर से।

७, ८, ९, सातवें सवाल का जवाव छटे उत्तर में आ गया, कि अन्दरूनी व वहरूनी शहादतों की जरूरत है, अन्दरूनी शहादतों के लिए ये वात जरूरी है, (१) कि वो उस किताव की जरूरत को सावित करें (२) हर किस्म के ज्ञान के विरुद्ध न हो (३) जिस तरह परमेश्वर के वनाए हुए एक बीज के अन्दर एक बड़े भारी वृक्ष के वनने की ताकत होती है, इसी तरह उसके अन्दर भी थोड़े शब्दों में अच्छे दर्जे के उलूम (ज्ञान) होने चाहिए।

पुरानी कहानी-किस्से नहीं होने चाहिए। अगर बाहरी गवाहियां ली जावें तो उन आदमियों की ली जानी चाहिए जिनमें कामवासना (विषयवासना) न हों। जिनकी वाणी सच्चाई के लिए, उनके लिखे अनुसार में से एक भी शब्द अक़्ल (वुद्धि) के खिलाफ़ न मिल सके। जो व्यक्ति ईश्वर के साथ योग और समाधि का सम्बन्ध करके किसी सच्चे उलूम (ज्ञान) के बारे में जानकारी प्राप्त करके अपनी राय (मशवरा) दे। तो उसका कथन ठीक माना जा सकता है। जिस तरह आग के निकट रहने पर लोहे के अन्दर आग के गुण आ जाते हैं, उसी तरह परमेश्वर की उपासना करने वाले योगी हर एक वात के तत्व को समझ सकते हैं। हां अगर कोई आम विषयी व्यक्ति अपनी जानकारी के जोर से कोई वात कहे तो उसका झूठा-सच्चा दोनों हो सकते हैं। अर्थात् सब तरह के प्रमाण अब अगर मौलवी साहब चाहें तो मैं अन्दरूनी व बहरूनी वेदों के सम्बन्ध में देने को तैयार हूं। और रहा इन सवालों का विस्तारपूर्वक जवाब देना, तो वो १५ मिनट के समय में मुश्किल है, लेकिन फिर भी मेंने जवाब लिखवा दिए हैं।

मौलवी श्री अबुल फ़रह साहब पानीपती—

१. यजुर्वेद के अध्याय १३ में मन्त्र २०, व अध्याय २१ में मन्त्र १४ व अध्याय १९ में मन्त्र ९४ के दयानन्द भाष्य में इसका अनुवाद इस प्रकार किया है—.

२. जिस औरत को औलाद न होती हो उसको जरूरी है कि दूसरे पति से औलाद प्राप्त करे।

३. तीसरा सवाल यह है कि, जब परमेश्वर औरतों को हिदायत (शिक्षा) करे, अगर औरत पति वाली हो तो वह भी दूसरे पति से औलाद पैदा कर सकती हैं जबकि उसका पति नपुंसक हो।

४. मुल्की ज़ुबान (देशी भाषा) की किताब पर ऐतराज़ है कि संस्कृत किस देश की भाषा है ?

५. आप साहेबान का ये दावा है कि ये चार वेद परमेश्वर की किताब है इसलिए मेहरबानी करके आप केवल ये किताबें किस देश में उतरी हैं और वहां कौन लोग रहते हैं ? पैग़ाम्बर को जरूरी है कि नेकचलन(सदाचारी) हो, किसी तारीख़ से बतलाइये ? कि ये लोग एक ही समय में थे, या भिन्न-भिन्न समयों में थे । और क्या ये चारों वेद एक ही समय में उतरे हैं या अलग-अलग समय में । और अगर एक ही वक्त में दिए थे तो किस तरह दिये दिए थे ? लिखवा दिये थे या याद करवा दिए गये थे ? और उन्होंने किस-किस तरह सुना ? इसका हवाला दो कि आपके पास सीधे आए थे ? क्योंकि पण्डितजी ने कहा है कि पहले तारीख़ का सिलसिला नहीं था ।

६. नजूम (ज्योतिष) के हिसाब से प्राचीनकाल की बातें कैसे ज्योतिष से बताई गई हैं ? और इस बात का प्रमाण दीजिए कि जिन्होंने वेदों की तालीम दी थी वो कहां मरे, और कहां रहते थे ? और रहन-सहन उनका क्या था ? क्या परमेश्वर ने हाथों हाथ उनको अपना क़लाम (उपदेश) दिया था या किसी से द्वारा पहुंचाया था ? और अगर वह खुदा की किताब थी तो क्यों यह कोशिश न कीं गई कि यह खुदा की किताब है ? और तुमको ये वेद किस व्यक्ति से मिले ? जिसने यह कहा हो कि ये वेद हैं ? एवं तुम तक सिलसिलेवार ये वेद कैसे पहुंचे ?

जब तक ठोस प्रमाण आप नहीं दिखायेंगे तो हम मानने को तैयार नहीं हैं । आप इसका हवाला तारीख़ी दीजिए वर्ना हम उनका जवाब विस्तारपूर्वक देंगे ।

पं० श्री कृपाराम जो शर्मा जगरानवी—

चारों वेद सृष्टि के आरम्भ से हैं जो चार ऋषियों पर उतरे, जिनका नाम, अग्नि, वायु, आदित्य. और अंगिरा था । जिसके लिए ये प्रमाण मौजूद हैं, जो आज नहीं बनाये गए बल्कि लाखों वर्ष पहले के मौजूद हैं. देखो ? (**ऐतरेय ब्राह्मण पन्चकापन्च कण्डिका ३२**) यानी ऋग्वेद अग्नि ऋषि पर उतरा, यजुर्वेद, वायु ऋषि पर उतरा, सामवेद आदित्य ऋषि पर उतरा एवं अथर्ववेद अंगिरा ऋषि पर उतरा । इसके बाद देखो—"**सायणाचार्य के ऋग्वेद के भाष्य की भूमिका पृष्ठ ३, छापा बम्बई ।**"

सृष्टि के आरम्भ में पैदा होने वाले खास जीव यानी देवर्षि अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा पर वेद का प्रकाश होने से, क्योंकि अग्नि वगैरा के दिल में ईश्वर ने वैदिक ज्ञान का प्रकाश किया । इस वास्ते योग सूत्र ने भी ईश्वर को सबका गुरु माना है जैसे लिखा है—"**स एषः पूर्वेषामपि गुरुः**" यानी वो परमेश्वर दुनिया में सबसे पहले होने वाले इन्सानों का गुरु है । यानी उसने उनको शिक्षा दी थीं, उसके साथ अथर्व वेद जो बम्बई में छपा है उसका पृष्ठ नं० २ देखिए— वहां भी अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा, इन चारों ऋषियों का सृष्टि के आदि में होना और उनके दिल में वेदों का प्रकाश होना बतलाया है । अलावा उसके यह कहना कि वेद किस मुल्क में उतरे, उसका जवाब यह है कि जिस जगह पर सृष्टि का आरम्भ हुआ उस जगह का नाम "तिब्बत" है जो आजकल की खोज से भी यही बात प्रामाणिक है । क्योंकि दुनिया में सबसे ऊंचा पहाड़ हिमालय है । और जमीन पानी के अन्दर से निकली है । जिसका सबूत देखो -- कि सबसे पहले परमात्मा ने प्रकृति को हरक़त देकर आकाश पैदा किया, अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी, आकाश, इन तत्वों की पूर्व हालत अर्थात् ये परमाणु रूप में थे उनको हरक़त (क्रिया) दी तो उस हरक़त से सर्व प्रथम आकाश पैदा हुआ, आकाश से वायु हुई, वायु के बाद अग्नि पैदा हुई, अग्नि के बाद जल पैदा हुआ, जल के बाद जमीन ज़ाहिर हुई, क्योंकि सबसे पहले हिमालय की चोटियां पानी में से निकलीं, इस वास्ते जिन पर सृष्टि का आरम्भ हुआ और वहीं पर ऋषियों के दिल में जो कि सृष्टि के आरम्भ में पैदा हुए थे उनमें अलग-अलग वेदों का प्रकाश हुआ । ये सवाल करना कि वेदों को लिखवा दिए थे या समझा दिए थे यह कहना गलत है बल्कि इस वेद रूपी ज्ञान को उन ऋषियों के दिल में प्रकाश किया था ।

मौलवी श्री अबुलफ़रह साहब पानीपती—

ज़र्रा (परमाणु) आसमान व जमीन खुदा ने अलग कर दिया, क्या पण्डित जी ये पहले मिले हुए थे ? पहली चोटियाँ हिमालय की पानी में से निकलीं इसका प्रमाण क्या किसी किताब में है ? पण्डित साहब का यह कहना कि चार वेद सृष्टि के आरम्भ में उतरे और आगे चलकर ये ज़िकर करते हैं कि खुदा ने ज़र्रात (परमाणुओं) को हरकत (क्रिया) दी और सब अलग-अलग हो गये, तो इस क़ौम (हिन्दुओं) में साफ समझा जाता है कि वायु, हवा को कहते हैं, ये बतलाना चाहिए कि ये ऋषियों के नाम हैं या अनासर (तत्व) के नाम है। तो किस मुवर्रख़ (इतिहासकार) ने। लिखा है कि सबसे पहले हिमालय पहाड़ निकला। आपका यह कहना कि चारों ऋषि एक ही ज़माने में मौजूद थे तो इसका हवाला किसी प्रमाणिक पुस्तक से दो। मेरी समझ में नहीं आता भाईयों ! कि अल्लाह को क्या ज़रूरत पड़ी थी कि चारों वेद एक ही ज़माने में उतारें ? मेहरबानी करके पंडित जी महाराज आप किताब से सबूत पेश कीजिए। कि हिमालय पहाड़ पहले निकला था, और ये ऋषि लोग उस वक़्त थे, वेद के किसी पन्ने या मन्त्र से बताइयें। कि तिब्बत देश में ये ऋषि एक ही ज़माने में थे। ये भी बताइये, कि खुदा ने किस तरह उनके दिल में तालीम (शिक्षा) डाल दी, क्या ख़तरा (डर) के तौर पर कोई ख्याल (विचार) दिल में पैदा हुआ था या ये समझा दिया गया था कि तुम खुद के दोस्त हो। जिस क़दर हवाले पंडित जी साहब ने दिए थे, उनमें से किसी से भी ये साबित नहीं होता कि लगभग एक अरब छयानवें करोड़ की बात कोई लेखक बतला दे, तो कैसे ये बातें मान ली जावें ?

यह इतिहासकार बतलावें कि 'ऋषि हिमालय पर उतरे' वे लेखक उसी जमाने में के थे ? एवं यह बतलायें कि तिब्बत में जो औलाद पैदा हुई वह किस तरह हुई। वह औलाद उन्हीं ऋषियों से पैदा हुई या किसी औरत से ? और फिर ऋषि तो मौजूद थे ऋषियन कहां से आ गई, औरतें तो आरम्भ में थी ही नहीं। तो औरतें कहां से आई या बिना औरतों की ही ओलाद पैदा हो गई ? एवं ये बतलाइयें कि कौन-२ ऋषियों के शागिद (शिष्य) थे जिनको उन्होंने वेद सुनाया था, उस वक़्त का पूरा हाल बताओ। एवं उस हाल को सिलसिले वार बताओ कि जिसके माध्यम से वेद तुम तक पहुंचे ? और ये भी बतलाइये कि जब वो किसी मुल्क की ज़ुबान न थी तो वेद संस्कृत भाषा में कैसे बना दिये हैं ?

नोट—

इसके बाद क्योंकि तीसरे दिन का समय नियमानुसार तीन बार सवाल करने वाले का एवं दो बार जवाब देने वाला बोल चुका था, इसलिए, इस बार उस सवाल को वहीं पर छोड़ना पड़ा अगले रोज़ मौलवी साहब पर आर्य समाज की तरफ़ से सवाल होने थे, लेकिन मौलवी साहब पहले दिन भी जवाब देने के वास्ते तैयार न थे बल्कि उन्होंने यह सोच लिया था कि जिस तरह हो सकेगा, उस तरह सवालों पर भी टालूंगा और पहले दिन "विषय से बाहर है" यह कहकर वक़्त टालते रहे। लेकिन दूसरे दिन यह बात तय हो चुकी थी कि मौलवी साहब वेद के विषय में ऐतराज़ करेंगे। जैसा कि तीसरे रोज़ अपनी योग्यता के अनुसार सवाल किये थे। उनके पास पूरी तारीख़ का सबूत मांगने के सिवाय और कोई दलील न थी। लेकिन आदम के सम्बन्ध में आपका तारीख़ी सबूत देने में इन्कारी थे, जिसको कह दिया कि "उसूल-इस्लाम से कोई सम्बन्ध नहीं है"। उस रोज़ मौलवी साहब घर से यह फ़ैसला करके आये थे कि वह शास्त्रार्थ नहीं करेगें। क्योंकि आज आर्य समाज की तरफ़ से कुरान पर ऐतराज़ का दिन निश्चित था, जिसको सुनना मुत्तास्सब मुसलमानों (ज़िद्दी मुसलमान) को नागवार (बुरा) लगता था। इस वास्ते बजाय उसके कि आर्य समाज को सवालों का मौका दिया जावे, क्योंकि नियमानुसार ये आवश्यक था, लेकिन मौलवी साहब ने अपने सब नियमों को अलग रख कर के कहा कि आज उस शर्क (मौहम्मद साहब को अल्लाह के साथ जोड़ना) वाले सवाल का जवाब दूंगा। जब उनसे यह कहा गया कि ये सवाल नियमानुसार समाप्त हो चुका है, यानी आर्य समाज की ओर से तीन बार कहा जा चुका है

और अहले इस्लाम की तरफ़ से नियमानुसार दो बार जवाब दिया जा चुका है, इस वास्ते वायदे के अनुसार आज आर्य समाज को क़ुरान पर ऐतराज़ का अवसर दिया जावे।

लेकिन अफ़सोस ! कि मौलवी साहब उसके लिए तैयार न हुए और अपने तमाम वायदों को एक-दम छोड़ दिया और कहने लगे कि मैं अन्त में अवश्य बोलूंगा। जब उनसे कहा गया कि आज पहले आपके बोलने का समय नहीं है। तो मौलवी साहब ने कहा कि जिस शर्क के वास्ते अहले इस्लाम ने जंगल कसनून (...............) से भर दिये और लाखों के खून बहा दिये उस शर्क के मसले का फ़ैसला इस तरह से नहीं हो सकता। इस वास्ते आज से उसी मसले पर बहस होनी चाहिये। जब जवाब दिया गया कि आपने तो क़ायदे बनाते समय यह तय कर लिया था कि सायल (सवाल करने वाला) तीन बार बोलेगा, जवाब देने वाला दो बार बोलेगा। जब इस नियम के अनुसार बहस समाप्त हो चुकी है और आप कुरान पर बहस करने का वायदा भी कर चुके हैं तो सिवाय शोर मचाने और झगड़ा करने के कोई अनुकूल जवाब नहीं दिया। जब कोई व्यक्ति कुछ बोलता तो मौलवी साहब ज़रूर उसके प्रत्युत्तर में बोलने को तैयार होते। और उन्होंने ऐलानियां (खुले आम) कहा कि मैं सिवाय शर्क वाले मसले के और नये सवाल करने नहीं दूंगा और न ही सवाल करने का मौका दिया। यहां तक कि आर्य समाज की तरफ़ से बहुत नर्मी से कोशिश की गई कि इस क़दर लोगों का वक़्त फ़िज़ूल ज़ाया (बर्बाद) न किया जावे, बल्कि असली मज़मून (विषय) पर बहस की जावे। लेकिन मौलवी साहब इस बात पर तैयार न हुए। जिसकी वजह ये थी कि मौलवी साहब खुद हिन्दी-संस्कृत से नावाकफ़ (अनभिज्ञ) और असूल मुबाहिसा (शास्त्रार्थ के नियम) से भी बेख़बर थे। और सच्चाई की छानबीन करना उन्हें स्वीकार न था। वे मुसलमानों को जोश दिलाकर झगड़ा कराना चाहते थे। जिन लोगों ने मौलवी साहब की हालत को उस वक्त देखा होगा, उनसे ये बातें छुपी हुई नहीं हैं।

अगर उस रोज़ मौलवी साहब बहस करते तो कुरान की तहक़ीकात (छान-बीन) हो जाती, लेकिन मौलवी-साहब की ज़िद पर और बहस न करने से पब्लिक ने जो नतीजा निकाल लिया वह हर एक आदमी दिल से जानता है। मौलवी साहब का उस रोज़ बहस से गुरेज़ (टालना) करना, जिस दिन उन पर ऐतराज़ों का जवाब देना आवश्यक था। इस बात को साबित करता है कि मौलवी साहब बिल्कुल भी हक़ पसन्द (सच्चाई पसन्द) नहीं हैं। उस शास्त्रार्थ के बाद जो आगरा वालों ने मौलवी साहब के खिलाफ़ एक विज्ञापन निकाला था जिससे उनकी योग्यता और सच्चाई का नक्शा दिखाई देता है। अफ़सोस इस बात पर हुआ कि हमारे मुसलमान दोस्तों ने अपनी मज़हबी छान-बीन के वक्त पर एक ऐसे व्यक्ति को अपना वकील बनाया जो विपक्ष के सिद्धान्तों से नावाकफ़(अनभिज्ञ)होने के अलावा इल्म माकूल "सत्य ज्ञान" से भी नावाकफ़ था जिस पर ये फ़र्ज़ था कि वो अपने दावे के अनुसार व अपनी शर्त के अनुसार बुद्धि से सिद्ध करके दिखलायें। लेकिन जो गरजते हैं वो बरसते नहीं। मौलवी साहब ने दावे तो बहुत किये, जिनमें बहत्तर इल्मों की किताबें लाने का ज़िक्र किया, लेकिन दावे सब खोखले ही नज़र आये, ख़ैर ! मौलवी साहब ने खुद आर्य समाज को शास्त्रार्थ के वास्ते चेलेन्ज दिया था, यानी मौलवी जहांगीर खां साहब खुद आर्य समाज में मुबाहिसा "शास्त्रार्थ" करने आये और खुद ही शास्त्रार्थ में जवाब न दे सकने से मौलवी अबुल फ़रह साहब को अपनी जगह छोड़कर चल दिये।

लेकिन मौलवी साहब ने कुरान की सच्चाई के उत्तर में सिवाय इन अलफ़ाज "शब्दों" के "ये ऐतराज़ उसूल से बाहर हैं" मैं हरगिज़ जवाब नहीं दूंगा, और कुछ भी सबूत नहीं दिया। अगर्चे मौलवी साहब ने खुद ही नियमों के ख़िलाफ़ बहस की, क्योंकि वे वैदिक सिद्धान्तों से बिल्कुल अनभिज्ञ थे। लेकिन इस तरफ से सच्चाई को जानने के लिए अपना ध्येय समझ कर उनके हर एक सवाल का जवाब दिया गया। और मौलवी साहब ने अव्वल तो पहले रोज़ ही सवालों के जवाब देने से मना कर दिया, और दूसरे रोज़ तो सवालों के करने से पहले ही इतना घबरा गये कि शास्त्रार्थ का जलसा ही प्रधान जी को समाप्त करना पड़ा, अगर मौलवी साहब इस दिन पूरे तौर से बहस करते और हमारे ऐतराज़ों

का जवाब देने से इन्कार न करते तो हमें कुरान की छान-बीन लिखने की मेहनत बर्दाश्त न करनी पड़ती क्योंकि सवालात् का जवाब मौलवी साहब से ही मिल जाता। हमने जो कुछ लिखा है उसका कारण सिर्फ़ हमदर्दी है कि हमारे मुसलमान भाई जो कुछ समय पहले हमारे भाई थे, और सिर्फ़ ना समझी की वजह से एक अलग सम्प्रदाय में बंट गये, और अपने बाप-दादों (पूर्वजों) के मुकम्मल (पूरे) धर्म को छोड़कर जिसमें सिवाय खुदा के दूसरे की उपासना जायज़ न थी, मर्दम परस्ती और कावा परस्ती में चले गये। इस मुवाहिसा के साथ "कुरान की छान-बीन" का हिस्सा अलग छापा गया है। मुवाहिसा आर्य समाज आगरा व अहले इस्लाम का समाप्त हुआ।

इस शास्त्रार्थ के विषय में सभापति व प्रेज़ीडैन्ट की राय–

१. शास्त्रार्थ के प्रधान (जलसा बाबू) की राय –

"मैंने मौलवी अबुल फ़रह और पं० कृपा राम की तक़रीर (व्याख्यान) वेद या कुरान के इलहामी किताब होने पर सुनी, मेरी राय में पं० जी की तक़रीरे बामायनी (ठोस) मोजूं (सही) होती थी, मौलवी साहब की तक़रीरों से यह पता चलता था कि या तो उन सवालों को जो पं० जी पूछते थे वह समझ नहीं पाते थे या अगर समझते भी थे तो जवाब नहीं दे सकते थे मौलवी साहब ने पं० जी के एक भी सवाल का सही जवाब नहीं दिया बल्कि अपनी ही इधर-उधर की हांकते रहे, पं० जी ने जवाब लगभग ठीक-ठीक दिये थे,

आपका ख़ैरअन्देश—
"जलसा बाबू"

२. शास्त्रार्थ के सभापति श्री जोज़फ़ फ़ारनन् की राय—

"मैं एक रोज़ शास्त्रार्थ देखने की दृष्टि से जो उर्दू की जुबान में हो रहा था. आर्य समाज मन्दिर में गया, पं० कृपा राम शर्मा व पं० मौलवी अबुल फ़रह साहब के बीच उर्दू जुबान में हो रहा था, क्योंकि मेरा किसी फ़रीक (पक्ष) से कोई ताल्लुक़ (सम्बन्ध) न था, इसलिए उन लोगों ने मुझे मीर मजलिस (सभापति) बना दिया।

इस मुवाहिसा के आरम्भ को मैं बिल्कुल नहीं जानता था, और इस वजह से जो वार्तालाप उनके बीच हुई समझ न सका, मगर थोड़ी देर के बाद मुझे मालूम हुआ कि मौलवी साहब इस बात की कोशिश करते थे कि जो बात आज बहस के लिए है, उस पर बहस न हो। बल्कि बजाये उसके किसी ख़ास विषय पर बहस करना चाहते थे। जिस पर कई दिन पहले बहस हो चुकी थी, और साथ ही जलसे में उपस्थित लोगों की तरफ़ ध्यान देकर कहते थे कि हमको जो कुछ कहना है वही कहेंगे। ये बात ध्यान में रहे कि इस तरह की वार्तालाप करने से मने रोका, मगर मौलवी साहब ने नहीं सुना, और ना ही ऐसी गुफ़्तगू (वार्तालाप) करने की स्वीकृति ली।

अंतिम पं० जी ने मौलवी साहब की इस दरख़्वास्त (प्रार्थना) को भी मंजूर कर लिया और कहा कि जो शर्तें मौलवी साहब ने बहस के लिए मन्जूर की थी, उन्हीं के अनुसार शास्त्रार्थ आरम्भ किया जावे। बाद कुछ वार्तालाप के जो ज्यादातर मौलवी साहब की तरफ से थी, जिसको मैं शोरोगुल की वजह से अच्छी तरह न समझ सका, और यह मालूम हुआ कि आम लोगों में किसी तरह का सख़्त जोश फैल गया है, इसलिए मैंने शान्ति भंग न हो शास्त्रार्थ बन्द कर दिया।

दस्तख़त—
"जोजफ़ फ़ारनन्"
(सिविल लाईन-आगरा)

नोट—उपस्थित सज्जनो! एक विज्ञापन जो इस अवसर के बाद मौलवी साहब के ख़िलाफ़ निकला है। उसको हमने इसलिए नहीं लिखा कि उसका शास्त्रार्थ से सीधे तौर पर कोई सम्बन्ध न था।

बाईसवां शास्त्रार्थ

स्थान : मजीठा जि० अमृतसर (पंजाब)



दिनांक : १६ अक्तूबर सन् १९०४ ई०

विषय : वेद इलहामी किताब है या कुरान ?

शास्त्रार्थ कर्ता आर्य समाज की ओर से : स्वामी योगेन्द्र पाल जी

शास्त्रार्थ कर्ता मुसलमानों की ओर से : मौलवी सन्नाउल्ला साहिब

मुसलमानों की ओर से मन्त्री : मौलवी इमामुल्लद्दीन जी

शास्त्रार्थ के प्रधान : सरदार कृपाल सिंह जी,

आर्य समाज के मन्त्री : श्री पं० दुर्गादत्त जी

शास्त्रार्थ से पहले

मौलवी सनाउल्ला ने आर्य समाज मजीठा के वार्षिकोत्सव पर हदीसों को मानने से मना किया, हमारे पास उस समय किताबें न थी, इसलिए १६ अक्तूबर सन् १६०४ ई० को मुबाहिसा आर्य समाज और दीनेइस्लाम के बीच होना तय हुआ जिसका विषय था कि—

"वेद इल्हामी किताब है या कुरान ?"

इसका इन्तज़ाम चार प्रसिद्ध व्यक्तियों के हाथ में था, जिनका नाम था—

१. सरदार प्रगट सिंह जी,
२. प्रद्युम्न सिंह जी,
३. कृपाल सिंह जी,
४. हरनाम सिंह जी।

मुसलमान लोग मुबाहिसे से घबराये हुए अपनी पोल खुलती हुई देखकर पहले ही अपने ओसान्‌बाख्ता (होशो हवास) खोये हुए थे।

अगर्चे तालीम इस्लाम में हदीस प्रामाणिक पुस्तक थी, और उन पर भी हमें ऐतराज़ करने का हक़ था, लेकिन मौलवी साहब एवं उनके साथ के लोगों ने हदीसों से साफ मना कर दिया। और कह दिया कि "हदीसें" इस्लाम में शामिल ही नहीं हैं। अफ़सोस !!

दो दिन की बहस के बाद मुबाहिसा कल डेढ़ घन्टा हुआ, अगर्चे शास्त्रार्थ के उत्सव की बैठक ११ बजे से ३ बजे तक रही, लेकिन मौलवी साहब ने चालाकी से बाक़ी सारा समय बर्बाद कर दिया, उस डेढ़ घन्टे के अन्दर जो बहस हुइ थी, उसमें फैसला इस बात पर लिखा गया था कि, मौलवी साहब ने जो ये कहा है, कि **"कुरान में कहां लिखा है कि हव्वा आदम की औलाद थी ?"** और उसकी पसली से निकली थी। इसका सबूत आर्य समाज दे और ये बात कि वेदों में मूर्ति पूजा लिखी है, वो मन्त्र जिसमें मूर्ति पूजा लिखी है, मौलवी साहब लिख दें, परन्तु आर्य समाज की तरफ से आयत कुरान की जो सूरतनिशा की पहली आयत लिख दी गई। जिसका अनुवाद है—**"वो रब्ब तुम्हारा वो है जिसने पैदा किया तुमको एक जान से, और अंगिक्ता (सकेंत) किया उसने उसकी औरत को"** अर्थात मौजुल कुरान में साफ लिखा है कि **"हव्वा आदम से पैदा हुई"** और पैदा होने से वह उसकी औलाद थी, बस आदम ने अपनी सगी वेटी से निकाह किया। मौलवी साहब का ऐतराज़ था कि वेद आवागमन को मानते हैं इसलिए वेद मां और बहन में कोई भेद नहीं रखता। हमारा जवाब था कि मौत के बाद हमारा शारीरिक सम्बन्ध नहीं रहता। मां और बहन का सम्बन्ध शारीरिक है, और वह यहीं समाप्त हो जाता है। बस इसलिए हम पर कोई ऐतराज़ नहीं। हां ! कुरान बाप का सगी वेटी के साथ निकाह करना जायज़ मानता है, जैसा कि आदम और हव्वा के निकाह की मिसाल यहां मौजूद है। आर्य समाज की तरफ से लिखकर पेश किया गया था कि इसका ज़िकर फलां आयत (कुरान) में है। लेकिन मौलवी साहब न कुछ लिख सके और न कुछ जवाब दे सके। इस वास्ते उनकी बड़ी बुरी तरह से हार हुई। और तांगे पर सवार होकर फ़ौरन भाग गये।

मजीठे का बच्चा-२ इस बात का गवाह है। और आर्य समाज का प्रशंसक है।

"स्वामी योगेन्द्र पाल"

शास्त्रार्थ आरम्भ

१६ अक्तूबर सन् १६०४ ई० को आर्य समाज मजीठा व दीने इस्लाम के वीच शास्त्रार्थ हुआ – जिसमें आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता स्वामी योगेन्द्र पाल जी व दीने इस्लाम की तरफ से मौलाना सनाउल्ला साहिब जी नियत्त हुए।

मौलवी सन्नाउल्ला साहिब—

नियमानुसार जब तक कोई मुद्दयी (दावा करने वाला) न हो, दावा चल नही सकता, इसके लिए यह आवश्यक है कि हम वेद व कुरान के सम्वन्ध में वहस करते हुए यह देखें कि मुद्दयी कौन-२ हैं ? वस मेरे मुख़ातिव (विपक्षी) यह बतलावें कि वेद किन-२ लोगों पर इलहाम हुआ था ? हिन्दु ! ब्रह्माजी, चार मुख वाले पर इलहाम हुआ कहते हैं। क्या आर्य समाज वाले भी उसी पर इलहाम हुआ कहते हैं या कुछ और कहते हैं ? ग़र्ज ! जो उनका दावा हो उसे बतलादें, और वेद से ही उसका सबूत पेश करें। कुरान कहता है कि, **"मौहम्मद रसूलल्लिलाह"** यानी मुहम्मद, अल्लाह के रसूल (पैग़ाम्वर) हैं। ये इस वात का बुनियादी रास्ता है।

स्वामी योगेन्द्र पाल जी—

वेद परमात्मा का ज्ञान है, यजुर्वेद में लिखा है कि—**"तस्मात् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे"** (यजुर्वेद अध्याय ३१) फिर यजुर्वेद के अलावा अथर्व वेद में भी है, कि यजु,० साम०, अथर्व०, परमात्मा का ज्ञान है, देखो— 'अथर्व वेद कांड १३" एवं मनुस्मृति में कहा है कि "वेद"—अग्नि, वायु, आदित्य. अंगिरा ऋपियों के हृदयों में प्रकाशित हुए।

अग्नि वायु रविभ्यस्तु त्रयम् ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञ सिद्धयर्थम्, ऋग्, यजु, साम, लक्षणम् ॥

इलहामी किताव के लिए उस इल्म इलाही के अनुसार होना जरूरी है, और इसलिए वेद का ज्ञान, इल्म इलाही (ईश्वर के ज्ञान) के अनुसार है। इसलिए वेद ईश्वरीय ज्ञान है, कुरान, इल्म इलाही के अनुसार नहीं हैं इस वास्ते कुरान इलहामी किताव नही है।

नोट—

इस पर मौलवी सनाउल्ला ने लिखित रूप से कहा कि स्वामी योगेन्द्र पाल जी ने ग़ैर मुतल्लिक (विपयान्तर) सवाल पेश किये हैं। स्वामी जी ने कहा कि जो शर्तें मैंने मंजूर की हैं उसी में ये शर्त है कि सवालों का जवाब देते हुए फ़रीकेन को अख्तियार होगा कि इलज़ामी जवाव दें और ऐतराज़ करें, और अपने सवालात् ऐतराज़ी जो फ़रीक़ सानी (दूसरे पक्ष) की इलहामी किताव पर हो तहरीर (लिखें) करें। अगर केवल जवाव ही दिया जावे तो वो फ़रीक जो पहले मौतरिज़ (प्रश्न कर्त्ता) वना है फिर जवाब के जवाव में लिखता रहेगा। उसको ऐतराज़ करने का अवसर न मिलेगा, इस पर मौलवी साहव ने वहुत देर के इशरार (आग्रह) के वाद कहा कि वहुत अच्छा ! जिस किस्म का और जिस विषय का मेरा सवाल हो उसी मज़मून और किस्म का सवाल मुझ पर किया जावे।

तहरीरी दस्तख़्त—
"सन्नाउल्ला"

जिसका जवाब आर्य समाज की ओर से लिख कर यह दिया गया था—

"मैं हर विषय का सवाल जो मौलवी साहब पेश करेंगे या जिस पर वो बहस करेंगे, इलज़ामी सवाल उन पर करूंगा, और उनका जवाब लूंगा।"

तहरीरी दस्तख़त—
"योगेन्द्र पाल"

इस पर मौलवी सन्नाउल्ला ने लिखकर यह पेश किया था—

"मैं इलज़ामी जवाब जो इसी किस्म से होगा, सुनूंगा और जवाब दूंगा. और ग़ैर मुतल्लिक (विषय से हटकर) पर ऐतराज़ करके प्रधान जी का ध्यान इधर दिलाऊंगा, प्रधान जी उसका जो भी फैसला करेंगे मैं उसका पावन्द रहूंगा।"

दस्तख़त—
"सन्नाउल्ला"

प्रेज़ीडैन्ट साहब (प्रधान) सरदार कृपाल सिंह जी का लिखित आदेश—

मौलवी साहब ! आप अपने इस पर्चे को वापिस लें, जिसमें आपने शर्तों के विरुद्ध अपनी बातें लिखी हैं कि कुरान पर ऐतराज़, बहस के सम्बन्ध में नहीं, और ये नाजायज़ हैं।"

—"कृपाल सिंह"
(प्रधान-मुबाहिसा)

मौलवी साहब—

"मैं इस पर्चा को वापिस हरगिज़ नहीं लूंगा"।

प्रधान जी—

"मेरा कहना नहीं माना जाता"।

मौलवी साहब—

"अच्छा मैं वापिस ले लेता हूं"।

मौलवी सन्नाउल्ला साहिब—

मेरे सवाल के जवाब में आपने मान लिया है कि वेद का मुद्दयी कोई नहीं, या यूं कहिये कि वेद अपना मुद्दयी किसी को नहीं बताता, बस इसकी मिसाल इस तरह की हुई कि, हम हाकिम के पास दरख़्वास्त गुज़ारें कि मुझको फलां व्यक्ति से इतना रूपया लेना है फ़लां-फ़लां गवाह हैं, मगर अर्ज़ी देने वाले का नाम ही न हो तो कौन मुन्सिफ़ (हाकिम) उस अर्ज़ी पर ग़ौर करेगा ? बल्कि उसको रद्दी के सन्दूक में डाल देगा, आप इसी पर उसको भी समझ लीजिए। कुरान इल्म इलाही के अनुसार है, उसमें कोई भी बात इल्म इलाही के विरुद्ध नहीं है। मगर ये सब कुछ तहक़ीक़ (छान-बीन) करने के बाद पता चलेगा कि दोनों किताबों का मुद्दयी कौन है ? कुरान कहता है कि—

"ला यति कलबातिल मनयदीबुल मन खलफ़"

अर्थात् कोई बाहरी वस्तु उसके दायें या उसके पीछे से उसके पास नहीं आती, और न ही कोई (प्राचीन खोज) से और न ही आने वाले समय से, कुरान की तक़ज़ीब (झूठी साबित) हो सकती है। मगर ये सब गवाहियों का दर्जा है। आप पहले दावा क़ायम करें, मुद्दयी बतलावें, तथा ये बतलावें कि मेरा ये दावा है, फिर गवाह लावें, आप ये समझ लें कि, मैं इन्साफ़ के ख़िलाफ़ न खुद चलूंगा और न आपको चलने दूंगा।

स्वामी योगेन्द्र पाल जी—

वेद का मुद्दयी (दावेदार) स्वयं परमेश्वर है। यह हमने पहले भी कहा है, इस वास्ते आपका यह कहना कि वेद का कोई मुद्दयी नहीं यह सही नहीं है। आपकी मिसाल भी सरासर ग़लत है, जबकि वेद का मुद्दयी परमात्मा मौजूद है, और कुदरत का निज़ाम (प्रवन्ध) उसका गवाह है।

"आपका यह कहना कि वेद का कोई मुद्दयी नहीं, या वेद अपना मुद्दयी किसी को नहीं बनाता, सरासर इन्साफ़ का खून करना है,"

कुरान ज़मीन को बिछौना और आसमान को छत बतलाता है, हालांकि ज़मीन गोल है, और आसमान कोई चीज़ नहीं, और कुरान में शैतान का मुबाहिसा खुदा से, और खुदा का शैतान की दलीलों से हार जाना और खुदा का शैतान को "दुनिया को गुमराह करने वाला" मुकर्रर (नियत्त) करना बुद्धि के विरुद्ध है।

याजूज माजूज (फरिश्तों के नाम) की कहानी और असहाब का किस्सा, और सद् सिकन्दी का किस्सा और यद् बैज़ा का किस्सा कोई सबूत ईश्वर की क्रिया में और इतिहास में नहीं है। अर्थात् जो बातें वास्तविक नहीं हैं, कुरान उनको वास्तविक बतलाता है इस वास्ते वह कलाम इलाही "ईश्वरीय ज्ञान नहीं है।

मौलवी सन्नाउल्ला साहिब—

वेद का मुद्दयी खुदा कहना ये तो एक वही मिसाल है कि "जिसका कोई नहीं उसके हम"। खुदा ने कहां कहा है कि मुद्दयी मैं हूं? और किसने उसे यह दावा करते हुए सुना? इसका जवाब दो। इसलिए हमारी ऊपर दी गई मिसाल ठीक है। खुदा 'इलहाम' देता है, तो उसको किस व्यक्ति द्वारा प्रकट किया? किस कदर गज़ब की बात है कि हिन्दु तो ब्रह्मा जी को कहें, और आर्य समाज उसका उल्टा कहे, और अग्नि वगैरा को लिखे। फिर ये अन्तर कि हिन्दु तो "ब्राह्मण और संहिता" दो हिस्से वेद के बताते हैं, और आर्य समाज उसका आधा कहे, अर्थात् केवल संहिता मात्र भाग को प्रमाण माने। दावे में अन्तर! मुद्दयी का पता नदारद!! और कहते जावें कि वेद इलहामी हैं!!!

"पीरा न मे परन्द मूरीदां में परानन्द" अर्थात् पीर खुद नहीं विख्यात होते बल्कि मुरीद उनको प्रसिद्ध करते हैं। और वैदिक धर्म की शिक्षा ये है कि दूसरे का बेटा अपना बना लो जिससे कि कोई सम्बन्ध नहीं। ज़मीन को बिछौना कहना, इस वास्ते ठीक है कि हम उस पर सोते हैं, ज़मीन की गोलाई जो आप कहते हैं, वह किसी को सोने से नहीं रोकती, आसमान को हम बराबर देखते हैं, यूनान के दार्शनिक इसको साबित करते हैं। आपने किस दलील से इसको मना किया है? एवं खुदा और शैतान का संवाद कुरान में नहीं हैं, आर्य समाज की मामूलीं गज़ाफ़ज़ानी (झूठी बात) है, वो केवल उसका अर्ज़ मारूज़ (निवेदन) है जिस तरह से प्रजा, राजा से निवेदन करती है। बाकी अगली टर्न में कहूंगा, आप पहले मुद्दयी को लावें वक्त तंग है, प्रधान जी का इशारा हो रहा है। वो न हो स्वामी जी कि, "मुद्दयी शुस्त और गवाह चुस्त" इस बात का ख्याल रखकर जवाब दीजिए। कि मुद्दयी भी चुस्त व मजबूत हो। बोदा (कमजोर) व नकली मुद्दयी हरगिज़ न माना जावेगा।

स्वामी योगेन्द्र पाल जी—

वेद में परमेश्वर ने कहा है कि हम उसके मुद्दयी हैं, वेदों को—

अग्निवायु रविभ्यस्तु त्रयम् ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञ सिद्धयर्थम्, ऋग्, यजु, साम, लक्षणम् ॥ मनु० ॥

अर्थात् वेदों को ऋषियों के हृदय में प्रकट किया। उन्होंने उपदेश किया, हिन्दु ब्रह्मा से कहते हैं, परन्तु हिन्दुओं का इस बहस से कोई सम्बन्ध नहीं, क्योंकि बहस आर्य समाज से हो रही है मौलाना साहब! हिन्दुओं से नहीं। अन्यथा

हम भी कह सकते हैं कि "शेखों का कहना है कि मौजूद क़ुरान अहले सुन्नत व ज्जमात, ब्याज उसमानी यानी (मौजूदा कुरान सिर्फ़ सुन्नत जमात वालों का हैं, क्योंकि यह ख़लीफ़ा उस्मान का जमा किया हुआ) है, देखो—

"तोहफ़ा असनाग्रसरीया वो क़सफुल अन रूल बसायर"

दूसरों को अपना बेटा बनाना यह विषयान्तर में जाना है, आपने अपनी शर्त की पावन्दी नही की ये हम कहते हैं कि मुत्ता (किसी दूसरे की औरत को पैसा देकर एक-दो रात के लिए अपनी बना लेना) जैसी खराब रसम कुरान में हैं, खुदा का शैतान से मुवाहिसा कुरान में मौजूद है। देखो—

कुरान सुरत, ऐराफ़ असादुल्-हजर व बक़र, देखो –**"मुवाहिसा तक़ज़ीब बराहीन अहमदिया जिल्द १"** आपने झूठ कहा और सच से गुरेज़ (किनारा) कर गये। खुदा ने शैतान को बहकाया, शैतान ने जब "फ़ीहा अगोतेनी" कहा तो खुदा ने कोई जवाब नहीं दिया, बस खुदा, खुद ही हार गया।

आसमान क्या चीज है जिसे आप देखते हैं? साईंस की किसी किताब से हवाला दें, इसके अतिरिक्त कुरान दुराचार और शराब पीने की शिक्षा देता है। जो शरह व क़वायद तबिया (इन्सानियत) के ख़िलाफ़ है। इसमें न तिब्बीयात् (चिकित्सा) का बयान है और न आत्मिक ज्ञान और न फ़िलासफ़ी (दार्शनिकता) की कोई बात है अर्थात् कुरान गुनाह करने की शिक्षा ज़बर्दस्ती देता है, और गुनाहगारी का इलज़ाम खुदा को देता है। और कुरान ही तमाम बदकारियों की जड है, हमने वेद का मन्त्र व हवाला पेश कर दिया है कि वह वेद परमेश्वर का अपना ज्ञान है। आपने उसका बिल्कुल ख़याल नही किया, और शोरबे की तरह डकार गये। (जनता में हंसी- - - -) हम अपने हर दावे का सबूत देते हैं। लाफ़-गज़ाफ़ (झूंठी बातों) का तरीक़ा कुरान का है हमारा नहीं।

नोट —

"जिस वक़्त ये बातें स्वामी जी ने कहनी आरम्भ की थी तो बीच में ही मौलवी साहब ने सभ्यता एवं शर्तों के विरुद्ध अनाप-सनाप बोलकर विघ्न डालना चाहा, बजाय इसके कि वो चुप बैठकर सुनते बल्कि बहुत जोर-२ से शोर मचाने लगे। इस विघ्न डालने व शोर मचाने का मक़सद ये था कि स्वामी जी की बातें श्रोतागण न सुन सकें, इस लिए उनको प्रधान जी ने खड़े होकर ज़बर्दस्ती मना करके चुप किया। इसी जद्दो-जहद में समय समाप्त हो गया।

मौलाना सन्नाउल्ला साहिब—

मेरी समझ में नहीं आता कि आर्य लोग इन्साफ़ के रास्ते से क्यों जी चुराते हैं? मैं हैरान हूं कि आर्य समाज जैसी शिक्षित संस्था, कानून के ख़िलाफ़ कार्यवाही करें कि मुद्दयी का तो पता ही नहीं और दावे का कोई मसाला नहीं। इस पर भी बेमतलब आर्य कहे जा रहे हैं कि "वेद इलहामी हैं"! "वेद इलहामी हैं"!! बेमतलब रट्ट लगाये जा रहे हैं!!! क्यों ऐसी किताब को इलहामी बतलाते हैं जो किसी गुमनाम व्यक्ति ने घड दी हो? साहिबान! इलहामी होने का दावा एक बड़ा आला (अच्छे) दर्जे का है। जब तक उसके मुद्दयी व हालात मालूम न हों उसका दावा ही सुनने के काबिल नही है मैं हैरान हूं कि आर्य समाज किस तरह पब्लिक की आंखों में ख़ाक (मिट्टी) ड़ालता है। शैतान को खुदा ने दुनिया के गुमराह करने को मुकर्रर नहीं किया, इसलिए स्वामी जी से मेरी अर्ज़ है कि आप किसी आयत का हवाला दीजिये और उसे पढ़कर सुनाइये जिस किताब का हवाला दें, क्योंकि ये शर्तों में शामिल है कि असली इबारत (लिखित रूप में) दिखानी होगी। असहाब क़हफ़ किसको कहते हैं? और वह क्यों निज़ाम (इन्तजाम) के ख़िलाफ़ है?

स्वामी योगेन्द्र पाल जी—(बीच में)

अफ़सोस ! बेहद अफ़सोस !! मौलाना ने चालाक़ी की राह से कितनी नावाक़फ़ियत ज़ाहिर की, क्या ही अच्छा होता कि अगर मौलवी साहब मुझसे पूछते कि कुरान किसे कहते हैं ? और रसूल किसका नाम है ? और ईमान क्या चीज है ? और अल्ला किस जानवर का नाम है ? ताकि मौलवीयत और इस्लामीयत सब धरी रह जाती ! और मुसलमान हज़रत बिगड़ खड़े होते, और हज़रत मौलवी को तो भागते रास्ता न मिलता । "मुसलमानों में ज़बर्दस्त खलबली व शोरोगुल..." नाजरीन् ! (उपस्थित सज्जनों) कुरान के इन शब्दों से मना करना तथा नादान बन जाना, क्या पब्लिक की आंखों में मिट्टी झोंकना न था ?

मौलाना सन्नाउल्ला साहिब—

आप खामोश रहिये ! और तहज़ीब से बात करिये !! क्या आप बतायेगें कि— असहाब क़हफ़ का किस्सा क्या है ? और क्यों इल्मे इलाही (ईश्वरीय ज्ञान) के ख़िलाफ़ है ? सिर्फ़ किसी बात को ये कह देना कि वो ख़िलाफ़े अक़्ल है, वह ख़िलाफ़े अक़्ल नहीं कहलाता याजूज़ माजूज़ की बाबत बतलाइये कि कुरान में कहां लिखा है ?

स्वामी योगेन्द्र पाल जी—

मौलवी बनें और कुरान के इतने बड़े किस्से से मना ! "झूठ पर खुदा की मार" देखो कुरान सूरतल्कहफ़ में लिखा है कि—

"कहा उन्होंने ए ज़ुलकरनैन तहक़ीक़ (निश्चय) याजूज़ और माजूज़ फ़िशाद करने वाले बीच ज़मीन के पस आकर देवें तेरे वास्ते कुछ माल ऊपर इस बात के कि कर देवे तु दरम्यान हमारे और दरम्यान उनके एक दीवार"

फिर लिखा है कि—

"लाओ मेरे पास टुकड़े लोहे के, यहां तक के जब बराबर कर दिया दरम्यान दोनों पहाड़ों के कहा फूकों यहां तक कि जब कर दिया इसको आग, कहा ले आओ मेरे पास. डालूं ऊपर उसके गला हुआ तांबा पस न कर सके ये कि चढ़ आवे ऊपर और न कर सकें कि करे वास्ते उसके सुराख़" देखो—"सूरत कहफ़" ।

नोट—

जिस पर मौलवी साहब ने शास्त्रार्थ के बीच में ही, विद्वान मुसलमानों के सामने, जो वहां बैठे थे, याजूज़ माजूज़ का किस्सा कुरान में कहां है ? कहकर मना कर दिया, अगर इसी तरह मुवाहिसा होता रहा तो उम्मीद है कि मौलवी सन्नाउल्ला कुरान से भी मुन्किर हो जावेगा । अर्थात् (नास्तिक) हो जायेगा ।

मौलाना सन्नाउल्ला साहिब—

सद् सिकन्दरी का क्या जिक्र है ? उसे लिखा हुआ पढ़कर दिखाना होगा, स्वामी जी ये कान खोलकर सुन लें कि आज ऐसे ही पिण्ड छोड़ने वाला मैं नहीं हूं । वो लाठी से सांप बनने वाली आयत भी बतलाईये ? और लफ़्ज सुनाइये, मगर इन सब बातों से पहले आपका फ़र्ज़ है कि वेद का मुद्दयी बतलावें, और उसको पेश करें, एवं उसकी ज़िंदगी के हालात सुनावें, दूसरे के नुतफ़ा (वीर्य से) के बच्चों को अपना बनाना भी जरा अक़्ल के मुताबिक कीजिए । मैं अफ़सोस करता हूं कि आप आर्य समाज की मेम्बरी में क्यों ऐसे मजबूर हैं ? मैं ये बात प्रधान जी को भी कहता हूं एवं उनका ध्यान इधर दिलाता हूं कि स्वामी जो से किताब मंगवाकर दिखलवायें, जिसमें इनकी कही बातें लिखी हों । ऐसे ही मूज़बानी जमा खर्च से कुछ होने वाला नही । इसके जवाब में ये काफी है कि वेद तमाम बुराईयों और गुनाहों की जड है (जनता में शोरोगुल - - - -) वेद बाक़ायदा तनासुख (आवागमन) के सिद्धान्त से मां-बहन में भेद नहीं रखता । यानी तमीज़ नहीं रखता, वेद ने कोई मुक्ति के उपाय नहीं बतलाये जिससे कि खुदा के बन्दे मुक्ति पा सकें ।

वेद दुनिया में बुतपरस्ती (मूर्ति पूजा) फैलाता है। हिन्दुस्तान के हिन्दु इसकी ज़िन्दा मिसाल मौजूद है। जो एक ऐसी शर्मनाक कार्यवाही है कि अगर तमाम किस्म की खूबियां ही हों तो उस बुत-परस्ती के मुकाबले में सब हेच (नीचे) हैं। क़ुरान में "मुता" का सबूत पेश करें। वह आयत पढ़ो और सिर्फ़ तर्जुमा सुनाओ कि क़ुरान में कहां लिखा है कि खुदा हार गया, और शैतान जीत गया? इस पर मैं क्या कहूंगा कि 'झूठों को खुदा समझें' दूसरे के लड़के को अपना बतलाना, जब वेद की शिक्षा है, और अक़ल के ख़िलाफ है, तो मैं ख़िलाफ अक़ल के उदाहरण के रूप में इसकों पेश कर सकता हूं। आप इसको अक़ल के मुताबिक़ बनायें, दुराचारी व शराबी होने का सबूत दो कि क़ुरान कहां इसकी शिक्षा देता है। वरना झूठ कहते हुए शर्माओ। आगे के लिए मैं प्रधान जी का ध्यान दिलाता हूं कि कोई भी दावा बिना किताब की नकल के दर्ज न होने दें। वेद को अगर तिब्बीयात (चिकित्सा) का दावा है तो क्या स्वामी जी बतायेगें कि पेशाब में कितने अजज़ा (कण) वेद ने बताये हैं?

आर्य समाज की ये ग़लती है कि शिक्षा देने वाली पुस्तक को तिब्बीयात (चिकित्सा शास्त्र) समझता है। मेहरबानी करके मुद्दयी को लाइये। सज्जनों वो देखो स्वामी जी की तरफ़ उनकी यह खामोशी बेवजह नही है, खुदा के मुद्दयी होने की बाबत मैं कह चुका हूं कि वो इलहाम करने वाला है, तो इलहाम लाने वाला कौन है? इसका जवाब दें।

स्वामी योगेन्द्र पाल जी —

नाज़रीन्! जिस तरह मौलवी साहब ने याजूज-माजूज के किस्से से मना किया, उसी तरह शहाब, साकब से भी इन्कार किया। फिर यह बेज़ा और सांप की लाठी और लाठी का सांप बनना और मौजज़ा मूसा (मूसा के चमत्कार) को भी मना किया, हलांकि क़ुरान सूरत "ऐराफ़" में और लाठी का सांप बनना सूरत "कशिस" में बराबर मौजूद है। देखिये उसका तर्जुमा सुनिये—

तर्जुमा –

"और निकाल लिया उसने हाथ अपना फिर वह सफेद था, वास्ते देखने वालों के, कहा अमीराने फ़िरऊन ने तहक़ीक़ यह अलबत्ता जादूगर है बड़ा," फिर देखो—सूरतुल्ल कशिस में है—

"और यह कि डाल दे असा (लाठी) अपना, पस जब देखा उसको हिलता है गोया कि वह सांप है"।

मौलवी साहब! अपने खलल दिमाग का इलाज कीजिये, और कुरान की इन आयतों पर नज़र मारिये, ताके आपकी ज़हालत और अज्ञानता का बोझ आपके सिर पर से उतरे। और खुदा तुमको सद् उपदेश दे। वेद कोई गुम-नाम किताब नही है, परमेश्वर का नाम उसमें दर्ज है। माफ़ कीजिये! आप झूठ बोलते हैं, क़ुरान में लिखा है—

"अन्नाजालनांअलशयातीन औलयाअल्ज़ीना लायोमनून्"

अर्थात सूरत ऐराफ़ में है कि—

"हमने बनाया शैतानों को उन लोगों का दोस्त जो ईमान नही लाते जिससे ज़ाहिर है कि शैतान को खुदा ने आदम के बहकाने के वास्ते बनाया और उसको इजाज़त दी कि वह दुनिया को बहकावे"

सूरत कहफ़ में चन्द शख़्सों का कई सौ साल तक ग़ार में सोना ख़िलाफ वाक़या है? "याजूज-माजूज" का किस्सा और उनका बाहर निकलना तथा उनके रोकने के लिए सद् सिकन्दरी बनाना ख़िलाफ़ वाक़या है?

कोई दीवार लोहे व तांबे की ढ़ली हुई दुनिया में नही है। दूसरे के बेटे को अपना बनाना खिलाफ़ बहस है, वेद तनासुख़ (आवागमन) के सिद्धान्त में मां-बहन और बेटियों में फर्क नही करता है, यह भी ख़िलाफे बहस है। इसका जवाब यह है कि इन्सान का सम्बन्ध (ताल्लुक) मां-बहन से ज़िस्मानी है जो मौत के बाद नही रहता, फिर न कोई आत्मा किसी का बाप है और न बेटी, और न बहन बल्कि यह ताल्लुक इसी दुनिया में इसी शरीर के साथ है। मौत

के बाद नही। हां ! कुरान बेटी और बाप में हर्गिज़ तमीज़ (फर्क) नही करता, हव्वा का आदम से पैदा होना, और आदम का इससे समागम करना अर्थात् अपनी सगी बेटी से व्यभिचार करना है। ज़ैद और मौहम्मद साहब का किस्सा सूरत अहज़ाब में हैं, ज़ैनब से जो मौहम्मद साहब के बेटे की बहु थी उससे मौहम्मद साहब ने बिना निकाह सोहबत (व्यभिचार) किया जो सरासर नाजायज़ थी, कोई भला-मानस ऐसा नही करता, वेद-मूर्ति पूजा की शिक्षा नही देता है मगर कुरान संगे असवद (जो मक्का की दीवार में लगा हुआ भारी काला पत्थर है) को बोसा देने की और तवाफ़ (परिक्रमा) करने की शिक्षा देता है। जो सरासर शिर्क व गुमराही है। अलावा इसकेकुरान आदम परस्ती की मक़रूह (बुरी) तालीम देता है, और फरिश्तों से आदम को सिजदा (प्रणाम) कराता है।

नोट—

स्वामी जी इतना कह ही रहे थे कि मौलवी सन्नाउल्ला तैस में आये, कि प्रैजीडैन्ट साहब इन्हें समझावें कि यह (आर्य) किताबी हवाला पेश करें इस पर प्रैजीडैन्ट साहेब शास्त्रार्थ के प्रधान श्री सरदार कृपाल सिंह जी ने कहा कि हव्वा का आदम की औलाद होना स्वामी जी कुरान से साबित करें, और वेद का बुतपरस्ती फैलाना मौलवी साहब वेद मन्त्र लिख कर के साबित करें, और लिखें कि वेद के किस मन्त्र में मूर्ति पूजा की हिदायत है। जो अपना सबूत न दे सके वोहारा हुआ समझा जावेगा, और दूसरा पक्ष अपना सबूत दे देगा तो वह जीता हुआ समझा जावेगा।

नोट—

चुनाचे स्वामी साहब ने अपने दावे के सबूत में ये आयात् कुरान की लिखकर के प्रैजीडैन्ट साहब की सेवा में पेश कर दी, जिनका तर्जुमा यह है —

"ऐ लोगों डरो ! परवरदिगार अपने से जिसने पैदा किया तुमको एक जान से और पैदा इससे जोड़ा उसका और फैलाये उनसे मर्द और औरत बहुत से"।

"सूरतुल निशा" इस आयत की व्याख्या में मौज़ुल कुरान में सफ़ा ११७ में दर्ज है कि **"हव्वा आदम से पैदा हुइ"** यही ज़िकर है, —**"ज़िकर तौरेत किताब पैदायश अध्याय २ में"** ।

तर्जुमा—

"जब लिया परवरदिगार तेरे ने बेटों आदम के से बेटों उनके से और औलाद उनकी को और गवाह किया उनको ऊपर जानों उनकी के"।

नोट—

प्रैजीडैन्ट साहब ने इस पर्चे के पहुंचने के बाद फ़र्माया कि जनाब मौलवी साहब ! "स्वामी जी ने अपने दावे के सबूत में कुरान से आयतें लिख दीं" आप भी वेद से वो मन्त्र जो मूर्ति पूजा की आज्ञा देते हैं, लिखकर पेश करो। मौलवी साहब ने साफ इन्कार किया, तो उस वक्त प्रधान जी ने कहा कि तो मेरी तरफ़ से शास्त्रार्थ समाप्त है। और हाज़रीन् मज़लिस ! तकलीफ़ न फ़र्मावे बल्कि अब तशरीफ़ ले जावें। फिर मौलवी साहब बिना कुछ वेदों के सबूत दिये ही चले गये। इसके बाद स्वामी जी ने वहां उपस्थित श्रोताओं के सामने उनके कहने के अनुसार व्याख्यान दिया, और वो हदीसे सही मुस्लिम में से अहले मजलिस को सुनाई। अहले मजलिस, आर्य, मुसलमान, और खालसा भाई और सनातनी थे, जिनके सामने मजीठा के वार्षिकोत्सव पर मौलवी साहब ने सही मुस्लिम की हदीस से मना किया था, कि ये हदीसे वहां नहीं लिखी, और स्वामी जी ने उनके जवाब में कहा था कि अगर वहां न लिखा होगा तो हम मुसलमान हो जायेंगे। वर्ना सन्नाउल्ला को आर्य बनना पड़ेगा। जिस पर सन्नाउल्ला कुछ जवाब न दे सके थे, और उस समय मौलवी साहब की हालत वाक़ई देखने लायक थी।

नोट—

वे हदीसें जो शास्त्रार्थ में पेश की गई थी, उनका तर्जुमा इस प्रकार है

(१) **"आयशा से रिवायत है कि हममें से जो कोई हायजा होती हो तो रसूलिल्लाह उसको हुकम करते तयवन्द बांधने का, फिर मुबाशरित करते हैं उसके साथ"।**

फिर लिखा है—

(२) **"जाबर से रिवायत है कि हम एक मुट्ठी खजूर और आटा देकर मत्ता किया करते हैं, कई दिन के लिए रसूल और आवा बक्र के अहद में हत्ता के मना किया उससे उमर ने"।**

जब ये हदीसे पेश हुई तो तमाम मुसलमानों का रंग फक्क पड़ गया, और मौलवी सन्नाउल्ला की खूब कलई खुली। और लोग आर्य समाज की हक़वयानी पर ईमान लाये। क्या ही अच्छा होता ये तर्जुमा मौलवी सन्नाउल्ला साहब के सामने सुनाया जाता!

और इस तरह इस अज़ीमुश्शान मुबाहिसे का बसद अमनो-ईमान ख़ातमा हुआ। हम सरदार साहब श्रीमान् सरदार कृपाल सिंह जी व सरकार के शुक्रगुज़ार हैं कि जिन्होंने हमें इस मुबाहिसा में बड़ी मदद दी। "तमाम शुद"

"पं० दुर्गादत्त" मन्त्री
आर्य समाज "मजीठा" जि० अमृतसर

मजीठा के शास्त्रार्थ का निर्णय—

वाक़या १६ अक्तूबर १९०४ को स्थान मजीठा तहसील अमृतसर में मुबाहिसा, स्वामी योगेन्द्र पाल साहब व मौलवी सनाउल्ला साहब के दरम्यान बाबत **"दीने इस्लाम व आर्य समाज की तालीम"** पर हुआ। इस शास्त्रार्थ में, मैं प्रधान था, मेरे सामने फ़रीक़ेन की रज़ामन्दी से ये अमर करार पाया मुबाहिसा आरम्भ होने से पहले अहले इस्लाम की तरफ़ से तजवीज़े (सोच विचार) हुई कि मुबाहिसा बन्द हो जावे। चूनाचे मौलवी साहब की तरफ से एक दो पैग़ाम आये कि मुबाहिसा बन्द हो जावे, परन्तु इसकी सूचना दूर-दूर तक पहुंच चुकी थी, इस वास्ते शास्त्रार्थ का बन्द करना ठीक नहीं समझा गया। आखिरकार सरकार तक बात पहुंची कि शास्त्रार्थ बन्द हो—चूनाचें इसमें मेरी और दूसरे आदमियों की तलबी होकर जो कि मेरे साथ इस काम में शामिल थे, जनाब तहसीलदार साहब अमृतसर की अदालत में पेशी हुई। हमने तमाम हाल बयान कर दिया, और तहसीलदार साहब को यक़ीन दिला दिया कि झगड़ा होने का कोई डर नहीं, चूनाचे उन्होंने उसी वक़्त जनाब डिप्टी साहब बहादुर जि० अमृतसर को सूचना दे दी कि झगड़ा होने का कोई ख़तरा नहीं जब उनकी उसमें भी कोई पेश न गई तो उन्होंने एक और चाल चली जो ये है कि वाक़या १५ अक्तूबर १९०४ को ६ बजे शाम के क़रीब रुक्का बाज़ी शुरू कर दी, और हर चन्द चाहा कि टाल मटोल हो, मगर क्योंकि हम प्रबन्धकों को ये ख़्याल था कि लोग दूर-दूर से आवेंगे और निराश होकर लोट जावेंगे तो उनको व्यर्थ में तकलीफ़ पहुंचेगी, आखिर कार यह बात तय हुई कि शरायत (शर्तें) लिखित रूप में पेश हों। चूनाचें मौलवी साहब की तरफ से मौलवी इमामुल्लद्दीन साहब और स्वामी योगेन्द्र पाल साहब की तरफ से श्री पं० दुर्गा दत्त सक्रेटरी आर्य समाज—मजीठा वास्ते तय करने शरायत के मुकर्रर हुए, सबसे बड़ी शर्त ये थी कि फ़रीकेन सवालों का जवाब भी देंगे और लगे हुए इलज़ामों पर एतेराज भी करेंगे। इस बात के तय करने के वास्ते मौलवी इमामुल्लद्दीन साहब,

नोट—मेरे पास हदीसों की मूल कापी जो इस शास्त्रार्थ में पेश की गई थी, मौजूद है। उनके छापने का यहां कोई औचित्य नही था। एवं तर्जुमा भी मूल कापी के अनुसार ही दिया है। इसका शुद्ध हिन्दी में अनुवाद नही किया क्योंकि इन आयतों का बहुत ही गन्दा अर्थ है।

—"संकलन कर्त्ता"

मौलवी सनाउल्ला साहब के पास गये मगर उस रोज़ करीब ११ बजे रात तक कोई जवाब न मिला। और दूसरे रोज़ जब बहस आरम्भ हुई तो स्वामी जी ने ऐतराज़ किया कि जब तक मौलवी साहब शर्तों पर हस्ताक्षर नहीं करेंगे, तब तक बहस शुरू नहीं होगी। क़रीबन डेढ़ घन्टा तक मौलवी साहब टाल-मटोल करते रहे। हालांकि ये दस्तख़्त शर्तों पर बहस आरम्भ करने के पहले ही कर देने चाहिये थे, आख़िर मजबूरन दस्तख़त करने पड़े तब बहस शुरू हुई तो मौलवी साहब ने इलज़ामी एतराज़ों से मना कर दिया, कि जब तक मेरा सवाल समाप्त न हो ले, इलज़ामी जवाब न दिया जावेगा। मौलवी साहब का यह कहना शास्त्रार्थ की शर्तों के विरुद्ध था, मगर आखिर कार जब दोनों पक्षों में झगड़ा इस कदर बढ़ गया कि दो घन्टे समय बर्बाद हो गया, तो लाचार होकर मुझे दोनों साहिबानों को ये कहना पड़ा कि शर्तों के अनुसार मुबाहिसा फ़रीकेन को इलजामी ऐतराज़ करने का हक़ है। जिससे मौलवी साहब पहल करते थे, चूनाचे बहुत कहने-सुनने के बाद मौलवी साहब ने मान लिया कि इलज़ामी ऐतराजों को सुनुंगा, बहस फिर शुरू हुई, आखिर कार - सवाल—जवाब में बात शुरू हुई, मौलवी साहब ने सवाल किया कि बुत परस्ती (मूर्ति पूजन) वेदों में ज़ायज़ है। स्वामी साहब ने इसका यह जवाब दिया कि वेदों में बुतपरस्ती ज़ायज़ नहीं है। बल्कि कुरान में लिखा है कि "हव्वा, आदम से पैदा हुई और इसलिए आदम की औलाद है। इस पर मौलवी साहब ने कहा कि कुरान शरीफ में यह कहां लिखा है ? बस मुबाहिसा इस बात पर समाप्त हुआ कि मौलवी साहब मूर्ति पूजा के पक्ष में वेद मन्त्र पेश करें। और स्वामी जी "हव्वा आदम से पैदा हुई और उसकी औलाद है" इस वाक्य के पक्ष में कोई क़ुरान की आयत पेश करें। चुनाचे इस बात को तमाम लोगों के सामने पुकार-पुकार कर कहा गया, कि जो अपना सबूत दे वह सच्चा है, और जो सबूत न दें वह झूठा समझा जावेगा।

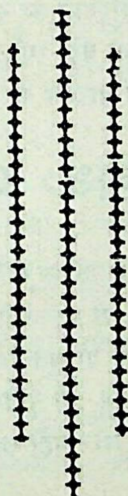
स्वामी जी ने क़ुरान सुरत निशा की पहली आयत अपने सबूत में लिख कर पेश कर दी। अब मौलवी साहब को दो-तीन बार उठकर सबके सामने पुकार-पुकार कर कहा गया कि आप भी कोई वेद मन्त्र पेश करें जिसमें मूर्ति पूजा का बयान हो। मौलवी साहब ने कहा कि "मैं नहीं लिख सकता" और "ना हि सबूत दे सकता हूं" बस जब मौलवी साहब अपना कोई सबूत न दे सके तो सब लोगों को पुकार कर कह दिया गया कि बहस अब ख़तम हो गई है, मौलवी साहब सबूत नहीं दे सकते, और ज़्यादा बैठना बे फ़ायदा है, इसके कहने पर कुछ लोग चले गये और ये बहस मेरे सामने इसी बात पर ख़तम हो गई। उसके बाद स्वामी साहब का व्याख्यान हुआ जो वहां बैठे सभी श्रोताओं ने सुना जिसमें स्वामी साहब ने बहुत-सी हदीसें आदि पेश की। बक़लम खुद --

"कृपाल सिंह" (प्रधान मुबाहिसा)
मजीठा (अमृतसर)



तेईसवां शास्त्रार्थ

स्थान : नानौता, जि० सहारनपुर (उ० प्र०)



दिनांक : (मूल कापी पर समय नहीं छपा था)

विषय : ईश्वर, जीव, प्रकृति का अनादित्व

शास्त्रार्थ कर्ता आर्य समाज की ओर से : श्री पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री "काव्यतीर्थ"

शास्त्रार्थ कर्ता मुसलमानों की ओर से : मौलवी साहब (जिनका नाम मूल कापी में से प्रयास-करने पर भी नहीं पढ़ा जा सका)

अन्य उपस्थित विद्वान व रईस व्यक्ति : श्री पं० देवदत्त जी भजनोपदेशक एवं सर्व श्री लाला रईस लक्ष्मी नारायण जी, साहू जम्बू प्रसाद जी एवं शास्त्रार्थ के अन्तिम दिन आगरा से श्री डा० लक्ष्मीदत्त जी आर्य मुसाफिर जी भी आ गये थे।

शास्त्रार्थ से पहले

नानौता कस्वा, जिला सहारनपुर (उ०प्र०) में दिल्ली-सहारनपुर (बस मार्ग) पर विल्कुल सड़क पर स्थित है, जहां पर अधिक संख्या में मुसलमान लोग निवास करते हैं, यहां के धनी-मानी रईस लाला लक्ष्मी नारायण जी ने आर्य मुसाफ़िर विद्यालय, आगरा से, उपदेशक, भजनोपदेशक वुलाये तो विद्यालय की ओर से पं० देवदत्त जी भजनोपदेशक एवं उपदेशक के रूप में मुझे भेजा गया।

भजनोपदेशक जी को तो एक दिन प्रचार कराने के वाद विदा कर दिया गया परन्तु मुझे मौलवी साहव ने मुवाहिसे का चैलेन्ज दे दिया अतः रुकना पड़ा, शास्त्रार्थ का स्थान यहां के प्रमुख रईस साहू जम्बू प्रसाद जी की हवेली पर निश्चित हुआ। सैकड़ों हिन्दू-मुसलमान आ बैठे, मौलवी साहव चौगा पहन व पगड़ी वांध वड़ी सजधज के साथ साभिमान आकर कुर्सी पर विराजे और वोलना प्रारम्भ कर दिया।

"बिहारी लाल शास्त्री"

शास्त्रार्थ आरम्भ

मौलाना साहब—

उपस्थित साहेबान एवं पं० जी महाराज। मैं १७ ज़ुबाने जानता हूं, आर्या वाले मेरा क्या मुकाबला करेंगे? आर्य समाजी तो तीन खुदा मानते हैं, ईसुर, जीउ तथा परकरती। (ईश्वर, जीव, प्रकृति) अब बतायें कि दुनियां का ख़ालिक़ व मालिक कौन है? और माद्दा साकिन है या मुतहर्रिक है? अगर मुतहर्रिक (क्रियाशील) है तो हादिस (नाशवान्) है, अनित्य है, नाशवान है, और साकिन है तो दुनिया वन नहीं सकती, फिर कदीम कहां रहा। इसलिए रूह (आत्मा) माद्दा (प्रकृति) खुदा ने पैदा किये हैं और वही ख़ालिक है, ख़ालिक वही होता है जो शय (वस्तु) को अदम (अभाव) से वजूद (भाव) में लावे।

पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री—

सज्जनों! मौलाना साहव १७ भाषाएं जानते हैं, यह आप लोगों ने अपने कानों से सुना, बहुत खुशी की वात है। मगर मुझे बेहद अफ़सोस है कि उन सव भाषाओं की जननी देव वाणी (संस्कृत) का एक वाक्य भी नहीं जानते, अर्थात् मामूली सा ज्ञान भी नहीं है। और शास्त्रार्थ करने आ गये हम लोगों से जिनके सभी धर्म ग्रन्थ संस्कृत में हैं।

जनाब! मौलाना साहव!! कुछ चीजों की एक सिफ़त मिलने से एक नहीं हो जाती, उनके साम्य में वैषम्य भी देखा जाता है, अस्तित्वमान तो ईश्वर, जीव, प्रकृति, इस समय भी है, फिर आपके मतानुसार वह अस्तित्व जीव और प्रकृति में नित्य नहीं है। ईश्वर में नित्य है, यही भेद है तो हमारे सिद्धान्त में ईश्वर, जीव, प्रकृति, तीन पदार्थों का अस्तित्व नित्य होते हुए भी दो पराधीन हैं, जीव और प्रकृति अपनी अज्ञानता के कारण!

परन्तु ईश्वर सर्वज्ञ है, अतः इन दोनों का अधिपति है, सृष्टि का निमाता है इसी लिए वह ख़ालिक है, आप क्योंकि अदम (अभाव) से वजूद में आना मानते हैं इसलिए ख़ालिक उसे कहते हैं कि जो अदम से वजूद (भाव) में लावे।

हम कहते हैं यह ईश्वरीय ज्ञान के विरुद्ध है कि मिथ्या ज्ञान रक्खे। अभाव! अभाव है, तथा भाव! भाव है, कारण—बिना कार्य नहीं, इस रचना का उपादान कारण ईश्वर तो हो नहीं सकता, क्योंकि यह संसार यदि ईश्वर से वना है तो सब चेतन ही और पवित्र ही होना चाहिये। उपादान कारण के गुण, कार्य में अवश्य आते हैं। और यदि अभाव से यह भाव रूप संसार ईश्वर ने रचा है तो ईश्वर के ज़हन (दिमाग़) में वजूद आया तो खुदा का ज़हन ग़लत रहा, और खुदा के ज़हन में यह परिवर्तन क्यों हुआ? ईश्वर, जीव, प्रकृति, अनादि होते हुए भी और-२ गुणों में भेद रखते हैं। मौलाना साहव सुनिये! प्रकृति है - सत्, जीव है—सच्चित्, और ईश्वर है—सच्चिदानन्द, इसलिए तीनों एक नहीं।

चपरासी व जज दोनों मनुष्य होते हुए भी दोनों की योग्यता अलग-अलग है। इसी तरह प्रकृति न चल है न अचल, अचेतन होने से अचल हैं, परन्तु ईश्वर उसे गति देता है इसलिए चल है, कोई भी पदार्थ अनित्य तब होता है जब कि वह संयुक्त हो, मुरक्किब हो । मुफ़रद (असंयुक्त) पदार्थ अनित्य नहीं होते प्रकृति परमाणु रूप है, अतः नित्य है, यह सब पदार्थ परमाणुओं से मिलकर बने हैं, अतः अलग-अलग हो जायेंगे, इसलिए अनित्य हैं, इल्लत (कारण) नित्य है। मालूल (कार्य) अनित्य है।

मौलाना साहिब—

पण्डित जी मेरी दलीलों को आप समझे नहीं, अगर रूह (जीवात्मा) और माद्दा (प्रकृति) क़दीम (अनादि) है तो खुदा का उन पर क़ब्ज़ा हो ही नहीं सकता। वे खुदा का हुकम भी नहीं मानेंगे। फिर दुनियां ही नहीं बन सकती, और तीन चीजें क़दीम मानने से तौहिदे अल्लाह नहीं रहती। हम तो यह मानते हैं कि फ़क़त अल्लाह ही अल्लाह है जो अपनी क़ुदरत से रूह व माद्दे को बनाता है। और फ़ना (ख़तम) भी कर देता है। फ़कत वही क़दीम (अनादि) है।

पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री -

मैं मौलवी साहब की बात नहीं समझता, जब कि मैं उर्दू अच्छी तरह समझता व जानता हूं, बल्कि मैं ये समझता हूं कि मौलवी साहब जो संस्कृत भाषा का जानना तो दर किनार हिन्दी भी अच्छी तरह नहीं जानते, वह मेरी बातों को नहीं समझे अल्लाह (ईश्वर) अपने गुणों में वाहिद (अद्वितीय) है। पर और चीजों के होने से उसकी तौहीद को क्या ख़तरा ?

प्रकृति और जीव पर उसका अधिकार हो नहीं गया बल्कि वह अधिकार तो सदा से है। अलपज्ञ जीव उस सर्वज्ञ (परमात्मा) के सहारे है। अज्ञ (प्रकृति) उसके हाथ का खिलौना हैं। आपका अल्लाह बेमुल्क का नवाब हैं। वे मिलक का मालिक। पास कौड़ी नहीं है, पर साहूकार है। आपका अल्लाह खाली हाथ है।

हमारा ईश्वर असंख्य जीवों तथा प्रकृति का स्वामी है और सदा से स्वामी है। और सदा तक रहेगा, यह सम्बन्ध स्वामी-स्वामित्व तथा सेवक, सेव्य का नित्य है।

मौलाना साहिब —

तो आपका खुदा (परमेश्वर) एक कुम्हार व बढ़ई की तरह है, कि मिट्टी से घड़ा बना दिया और लकड़ी से चौखट-किवाड आदि बना दिये।

पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री—

तो मौलाना ! इसमें बुराई ही क्या है ? कुम्हार और बढ़ई छोटे कारीगर हैं, वह ईश्वर महान कारीगर है। परन्तु तुम्हारे अल्लाह मियां तो एक मदारी से ज़्यादा नहीं है। मदारी खाली हाथ रुपये बनाता है, पेड़ लगाता है। अल्लाह मियां यह सृष्टि का शोब्दा तैयार करते हैं, फिर तो अद्वैत वादियों और बौद्धों की बात ही सच रहती है कि यह संसार वस्तुतः कुछ नहीं केवल स्वप्न ही स्वप्न है कोरी बाज़ीगरी भर ही है।

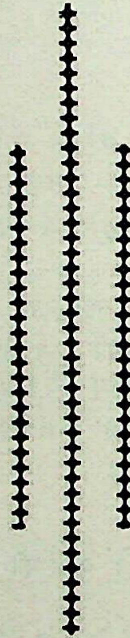
नोट ---

बस यहीं पर शास्त्रार्थ समाप्त हो गया, क्योंकि मौलाना साहब का रोज़ा था, इसलिए वे ज़्यादा बोल नहीं सकते थे, इस कारण दूसरे समय का शास्त्रार्थ नहीं हुआ फिर मौलवी साहब ने जगह की अड़चन लगाई, और शास्त्रार्थ टालने का यत्न किया गया इसके बाद श्री डा० लक्ष्मीदत्त जी आर्य मुसाफ़िर आगरा से आ गये, क्योंकि भजनोपदेशक महाशय ने यहां की शास्त्रार्थ वाली स्थति को वहां जाकर बताया था, उसे सुनते ही डाक्टर साहब ने अपने आने का प्रोग्राम बना लिया था। उनके आने पर, जब उनके आने की सूचना मौलवी साहब ने सुनी तो वे घर छोड़कर ही कहीं चले गये।

जब हम कई मुसलमानों को साथ लेकर उन्हें बुलाने उनके घर पहुंचे तो उनके वालिद साहब (पिताजी) ने कहा कि –क्या मेरे लड़के ने ही मुबाहिसे का ठेका लिया है ? इस पर मुसलमानों ने कहा कि—चैलेञ्ज भी तो तुम्हारे लड़के ने ही दिया था। और हम लोग वापिस आ गये फिर शास्त्रार्थ न होकर समाज का प्रचार बड़ी धूमधाम से हुआ तथा आर्य समाज की छाप सभी व्यक्तियों के हृदयों पर बहुत अच्छी पड़ी।

चौबीसवां शास्त्रार्थ

स्थान : इलाहाबाद (उत्तर-प्रदेश)



दिनांक : (मूल कापी पर समय नहीं छपा था)

विषय : क्या "नियोग प्रथा" मनुष्य मात्र के लिए हितकर है ?

शास्त्रार्थ कर्त्ता आर्यसमाज की ओर से : श्री पं० बिहारीलाल जी शास्त्री "काव्यतीर्थ"

शास्त्रार्थ कर्त्ता ईसाइयों की ओर से : श्री विलक्टन् जी महोदय

शास्त्रार्थ के प्रधान : श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी "शास्त्रार्थ महारथी"

भूमिका

आर्य समाज चौंक (इलाहाबाद) के उत्सव पर प्रति वर्ष शास्त्रार्थ हुआ करता था, और प्रायः आर्य समाज की ओर से श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी ही शास्त्रार्थ किया करते थे, इस बार देहलवी जी के विद्यमान होते हुए भी शास्त्रार्थ मुझे करना पड़ा, ईसाई मत की ओर से श्री विलक्टन् महोदय निश्चित हुए।

"बिहारीलाल शास्त्री"

शास्त्रार्थ आरम्भ

पादरी विलक्टन् साहब जी—

सत्यार्थ प्रकाश में नियोग करने का क़ानून है, औलाद न होने पर बेवा (विधवा) और ख़ाविन्द वाली बीवी भी नियोग कर सकती है, मर्द भी अपनी औरत के अलावा और औरतों से नियोग कर सकता है। यह नियोग प्रथा खुले तौर पर "ज़िनाकारी" (व्यभिचार) है। जो मज़हब ऐसी व्यभिचारी प्रथा को मानता हो वह ईश्वरीय मज़हब नही हो सकता। ग़ैर मर्द से अपने ख़ाविन्द के लिए औलाद पैदा कराना कैसे जायज हो सकता है? और सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि "अगर न रहा जाये तो किसी से नियोग करके उसके लिए औलाद पैदा कर दे", अफ़सोस ! साहिबान अफ़सोस !! बतलाइये यह ज़िनाकारी की तालीम (व्यभिचार की शिक्षा) हैं या नही ?

पं० बिहारीलाल जी शास्त्री—

पादरी साहब ! आपको पता होना चाहिये कि "ज़िनाकारी होती है बिना किसी नियम के, औरत और मर्द अगर अपनी कामवासना के वशीभूत होकर मिलें", परन्तु क़ायदे-क़ानून के साथ मिलना और ऊंचे कार्यों को पूर्ण करने के लिए मिलना, ज़िनाकारी (व्यभिचार) नही। रही नियोग की बात ? वह भी विवाह की तरह कानून में बधां हुआ होता है। देखो सत्यार्थप्रकाश समुल्लास चार में—उत्तर देते हुए **"और नियोग में विवाह के समान नियम है"** पादरी साहब ! संसार में कुकर्म और व्यभिचार को रोकने का एक यही श्रेष्ठ उपाय है। और वह है "नियोग"।

औलाद की इच्छा होना स्वाभाविक है, और ख़ानदान चलाने के लिए औलाद पैदा की जाती है। यही सत्यार्थ प्रकाश कहता है, और जब संतान का सर्वथा क्षय (अभाव) हो तब नियोग होवे।

ईसाइयों में तो विधवा स्त्री और तलाक लेकर सुहागन स्त्री भी और पुरुष भी पुनः विवाह करते हैं, तो यह तरीक़ा विषय भोगों को बढ़ावा देता है, मगर नियोग में नियम करना पड़ता है, नियोग केवल सन्तान प्राप्ति के लिए है, विषय भोगों के लिए नही, अर्थात काम वासना की तृप्ति के लिए नियोग नही है। देखो सत्यार्थ प्रकाश "सन्तानोत्पत्ति हो जाने पर पुनः वे नियुक्त-आपस में समागम करें तो पतित हो जायें"। देखा ! नियोग में कितना बड़ा इन्द्रिय निग्रह है पादरी साहब ! नियोग करना तलवार की धार पर चलना है; इसकी तुलना विलासिता से अर्थात् व्यभिचार से करना गुड़-गोबर को बराबर बताना है।

पादरी विलक्टन् साहब जी—

नियोग में बेहयाई है, ख़ाविन्द के होते हुए औरत दूसरे के पास जाती है और मर्द भी ग़ैर बीवियों से मिलते हैं, और पं० जी महाराज! नियोग के द्वारा पैदा की गई औलाद तो वैसे भी जायज नहीं हो सकती, क्योंकि सन्तान पैदा किसी और से होती है और कहलाती किसी और की है।

पं० बिहारीलाल जी शास्त्री—

औरत का अपने पति को छोड़कर दूसरे के पास जाना और मर्द का अपनी स्त्री को त्याग कर दूसरी स्त्री को रखना तो आपके यहां होता है, स्त्री ने पति को तलाक दी और औरत दूसरे के पास चली गई। इसी तरह पति ने अपनी पहली स्त्री को तलाक दिया, और दूसरी स्त्री को ले आया, उससे औलाद पैदा की, बस अन्तर केवल इतना है कि—नियोग होता हैं, केवल कुछ समय के लिए और आपके यहां दूसरी-तीसरी-चौथी व बहुत सी औरतों को एक मर्द कर सकता है और इसी प्रकार बहुत से मर्दों को एक औरत अपना सकती है ऐसा तलाक स्वयं मानने वाले व्यक्ति, नियोग जैसी पवित्र प्रथा को बुरा बताते हैं? घोर आश्चर्य है!

पादरी साहब! रोजाना शराब पीना ठीक है या एक दो बार!! वह भी रोग होने पर पीना। जनाब! ज़रा ग़ौर फ़रमायें, तलाक है मनमानी शराब का पीना, और नियोग है एक-दो बार वह भी रोग पर (औषधि रूप में) शराब पीना, इसलिए इसको आपद् धर्म भी कहते हैं, औलाद के लिए नियोग करना और अपने पति के लिए दूसरे से औलाद पैदा करना।

भाइयो! दूसरे से पैदा होकर दूसरे का होना तो बाइबिल को भी मन्जूर है, देखिये—"बाईबिल उत्पत्ति अध्याय ३८ यहूदा याकूब (इस्त्रायल का पुत्र) का चरित्र—

नोट—

पं० बिहारीलाल शास्त्री जी रात के धीमें प्रकाश में पढ़ नहीं सकते थे, इसलिए उन्होंने शास्त्रार्थ के प्रधान (पं० रामचन्द्र देहलवी) जी से पुस्तक का अध्याय खोलकर दिया, और जनता के सम्मुख पढ़ देने की प्रार्थना की। जिसको अंग्रेजी की बाइबिल से प्रधान जी ने पढ़कर जनता को सुना दिया, जिसका हिन्दी अनुवाद यह है।

"और यहूदा ने तामार नाम की एक स्त्री से अपने जेठे (बेटे) "एर" का विवाह कर दिया, पर यहूदा का वह जेठा एर जो यहोवा के खेमे में दुष्ट था, इसलिए यहोवा ने उसको मार डाला तब यहूदा ने "औनान" अपने मझले पुत्र से कहा कि तू अपनी भोजाई (भाभी) के पास जा, और उसके साथ देवर का धर्म (नियोग) करके अपने भाई के लिए सन्तान पैदा कर। "औनान" तो जानता था कि यह सन्तान मेरा नही कहलायेगा इसलिए जब वह अपनी भाभी के पास गया तो उसने भोग करते समय भूमि पर ही लिंग रखकर वीर्य का नाश कर दिया, न कि उसको अपने भाई के लिए सन्तानोत्पत्ति के लिए योनि के अन्दर स्खलित करता। यह उसका कुकृत्य यहोवा को बहुत बुरा लगा, सो उसने - - - - - ईसाइयों द्वारा शोर मचाना - - - - आप लोग ध्यान पूर्वक व शान्ती से सुनिये! मैं अपनी तरफ से नही बल्कि बाइबिल का तर्जुमा जो है उसे बता रहा हूं, हां तो मज्जनो! उसने उसको भी मार डाला तब यहूदा ने इस डर के मारे कि कहीं ऐसा न हो कि अपने भाइयों की तरह "सेला" भी मरे, अतः उसने अपनी बहु "तामार" से कहा कि जब तक मेरा पुत्र सेला समर्थ न हो अर्थात् सन्ताम पैदा करने के क़ाबिल न हो तब तक तुम अपने पिता के घर में जाकर बैठी रहो। इसलिए "तामार" अपने पिता के घर जाकर बैठी रही, बहुत दिनों के बीतने पर यहूदा की स्त्री, जो "सू" की बेटी थी, वह मर गई। फिर यहूदा शोक से छूटकर अपने मित्र हीरा "अदुल्लाम वासी" समेत "तिम्ना" नगर को अपनी भेड़-बकरियों का रोयां कतराने के लिए गया, और तामार को यह समाचार मिल गया कि, तेरा ससुर तिम्ना को अपनी भेड़-बकरियों का रोयां कतराने को जा रहा है, तब उसने यह सोच कर कि सेला समर्थ तो हो गया पर मैं उसकी

स्त्री नही हो पाई, उसने अपना विधवापन का पहरावा उतारा, और बुर्का डालकर अपने को ढाप लिया, और ऐनम नगर के फाटक के पास जो तिम्ना के मार्ग में पड़ता था जा बैठी, उसको देखकर यहूदा ने उसे वेश्या समझा, क्योंकि वह अपना मुंह ढांपे हुए थी, सो उसने उसे अपनी बहु न जानकर मार्ग में उसकी तरफ़ फिर कर कहा, 'मुझे अपने पास आने दे' उसने कहा मैं तुझको अपने पास आने दूं तो तू मुझे क्या देगा ? उसने कहा मैं अपनी इन बकरियों में से एक बच्चा तेरे पास भेज दूगां, तब उसने कहा—भला उसके भेजने तक क्या तू हमारे पास कुछ बंधक रख जायेगा ? उसने पूछा मैं कौन सा बंधक तेरे पास रख जाऊं ? उसने कहा अपनी वह छाप और डोरी और अपने हाथ की छड़ी । तब यहूदा ने तामार को वे वस्तुएं दीं, और उसके पास गया, सो वह उससे (अपने श्वसुर) से गर्भवती हुई ।

(बाईबिल-उत्पत्ति अध्याय ३८)

कहिये पादरी साहब ! यह नियोग है या नही ? अपने भाई के लिए औलाद पैदा करने के लिए भाभी के पास जाना, और ओनान् ने औलाद के लिए भोग न करके वासना के लिए भोग किया, जिसके कारण ईश्वर ने उसे मार डाला, फिर तामार को भी तो देखिए कि वह सन्तान के लिए कितनी व्याकुल है कि ससुर से भोग करती है, और वह भी धोखा देकर । पादरी साहब ! यदि उचित नियोग होता तो ! ससुर व बहू का यह सम्बन्ध हर्गिज़ नहीं होता । और लूत की लड़कियों ने तो सन्तान के लिए अपने पिता से ही भोग कर डाला, देखिये—**"बाईबिल उत्पत्ति अध्याय १९, आयत ३२—**

"लूत की लड़की अपनी बहन से कहती है—सो आ हम अपने पिता को दाखमधु (अंगूरी शराब) पिलाकर उसके साथ सोवें और इसी रीति से अपने पिता के द्वारा वंश उत्पन्न करें" ।

कमाल है भाइयो ! देखा आपने कितनी प्रबल इच्छा है वंश चलाने की ! ! लूत की बेटियों में ! ! ! यदि विधि पूर्वक नियोग न होगा तो--यहूदा जैसे बेहूदे काम होगें, और लूत जैसी अधम रीति फैलेगी । बाइबिल में नियोग पर इतना जोर दिया है कि इतना वैदिक स्मृतियों में भी नहीं है ।

और देखिये बाइबिल में **"व्यवस्था विवरण अध्याय २५ में"—**

"तो उसके भाई की स्त्री पुरनियों के सामने उसके पास जाकर उसके पांव से जूती उतारे, और उसके मुंह पर थूक दे, और कहे कि—जो पुरुष अपने भाई के वंश को चलाना न चाहे उससे यों ही व्यवहार किया जावेगा" ।

देखा भाइयों ! सुना आपने ! ! पवित्र ग्रन्थ बाईबिल क्या कहता है ? (जनता में हंसी - - - -) वो कहता है कि जो नियोग को मना करेगा वो जूते खायेगा, ये है बाइबिल का उपदेश । पादरी साहब ! आप बाईबिल को मानने वाले होकर नियोग को किस मुंह से बुरा कहते हैं ?

पादरी विलक्टन् साहब जी—

पण्डित जी महाराज ! ये सब बातें जो आपने बयान की, पुराने अहदनामे की हैं, हम इन्हें नहीं मानते, यहूदा और लूत से हमें कोई वास्ता नहीं, अपनी औरत को दूसरे (ग़ैर) आदमी के पास भेजना बेहयाई है, औलाद के लिए बेवा औरत दूसरी शादी कर ले, मगर नियोग जैसा ख़राब काम उसे कदापि नही करना चाहिये ।

नोट—

पादरी साहब ने इसी विषय पर ऊट-पटांग की बातों में व्यर्थ समय पूरा करना चाहा, परन्तु फिर भी अपने बोलने का वक्त पूरा न कर सके एवं बीच में ही बैठ गये ।

पं० बिहारीलाल जी शास्त्री—

पादरी जी ! ये आप क्या कह गये जनाब ! ! पुराना अहदनामा तो नये अहदनामें की जड़ है । जब जड़ को ही काट डालोगे तो शाखाओं की सुरक्षा किस प्रकार करोगे? आप यीसू का वचन भी तो देखिए, यीसू जी क्या फ़रमाते हैं—

"मत समझो कि मैं व्यवस्था को लोप करने आया हूं, बल्कि व्यवस्था का एक-२ हरफ़ पूरा होगा"।

यीसू पुराने अहदनामें को मानता था, उसका विरोध तो यहूदी पुजारियों के ढोंग भरे व्यवहार से था, पुराने अहदनामे से नही, इसीलिए वह पुराना अहदनामा नये अहदनामें के साथ जुड़ा रहता है। और पुराने अहदनामें सहित पूरी बाइबिल ही "होली बाईबिल" यानी पवित्र पुस्तक मानी जाती है।

बाइबिल के यहूदा और लूत, आपके मानवीय पुरखा थे। सुनिये पादरी जी ! लूत तो था पैग़ाम्बर इब्राहीम का भतीजा और यहूदा था पैग़ाम्बर याकूव का पुत्र, इनकी सब विधियां आपके सिर पर रखने योग्य हैं। अपनी स्त्री को ग़ैर के पास जाने देना बुरा है, बेहयाई है। परन्तु पादरी साहब यह बात आपके ही यहां ज्यादा है। आपके यहां तलाक के बाद अपनी औरत दूसरे की हो जाती है या नही ? आपके यहां तलाक के ज़रिये रोजाना मर्द, औरत बदल सकता है। और औरत मर्द को त्याग कर नित नया ताज़ा पति ढूंढ़ सकती है। (जनता में हंसी..................),

नियोग में इतनी छूट नही है। वहां केवल सन्तान के लिए ही स्त्री-पुरुष मिल सकते हैं, फिर कभी नही, इस लिए कामी पुरुष अजितेन्द्रिय (शहवत परस्त) औरत-मर्दों के लिए नियोग का विधान नही। व्यभिचार वह होता है जो अवैधानिक सम्बन्ध भोग के लिए हो, और जिसका विधान है सामाजिक अनुमति, जो कर्म हैं वे व्यभिचार नही, यदि किसी विशेष हित के लिए हो तो।

देखो नियोग की मर्यादायें—

"जैसे बिना विवाहितों का सम्भोग करना व्यभिचार होता है वा कहलाता है इसी प्रकार बिना नियुक्तों का व्यभिचार कहलाता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि— जैसे नियम से विवाह होने पर व्यभिचार नहीं कहलाता तो, वैसे ही नियमपूर्वक नियोग होने से वह भी व्यभिचार नहीं कहलावेगा।

जैसे दूसरे की कन्या का दूसरे के कुमार के साथ शास्त्रोक्त विधि पूर्वक विवाह होने पर समागम में व्यभिचार वा पाप लज्जा नही होती वैसे ही वेद शास्त्रोक्त "नियोग" में व्यभिचार लज्जा न मानना चाहिये।

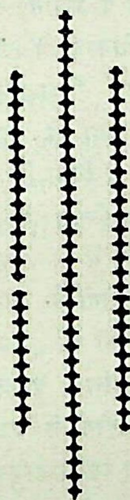
नोट—

इस प्रकार यह छोटा सा शास्त्रार्थ शान्तिपूर्वक समाप्त हुआ।



पच्चीसवां शास्त्रार्थ

स्थान : चूनियां (जिला लाहौर) वर्तमान पाकिस्तान



दिनांक : मार्च सन् १९२० ई०

विषय : सत्यार्थ प्रकाश वेद विरुद्ध है।

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पं० ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी (वर्तमान महात्मा अमर स्वामी सरस्वती)

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पं० गुरुदत्त जी

शास्त्रार्थ के प्रधान : श्री लाला बुलाकी राम जी (एडवोकेट)

आर्य समाज के मन्त्री : श्री महाशय कुन्दन लाल जी

आर्य समाज के प्रधान : श्री लाला बरकत राम जी वकील

शास्त्रार्थ से पहले

एक पौराणिक फक्कड़ पण्डित गुरुदत्त जी थे, जो आर्य समाज के विरुद्ध बहुत ही असभ्यता पूर्ण व्याख्यान दिया करते थे, बल्कि यूं कहिये कि महर्षि दयानन्द व आर्य समाज को गाली देना ही जिनका मुख्य काम था।

वो एक बार चूनियां, जिला लाहौर में आये, और अपने उसी पुराने ढर्रे पर आर्य समाज को बुरा-भला कहते हुए प्रचार करने लगे। वहां पर आर्य समाज के प्रधान श्री लाला बरकतराम जी वकील व मन्त्री श्री महाशय कुन्दन लाल जी बहुत ही लगनशील व उत्साही अधिकारी थे। उन्होंने पंडित गुरुदत्त से वार्तालाप किया, परन्तु पंडित जी ने किसी भी तरह उनके पञ्जें जमने नहीं दिये। मैं उन दिनों दर्शनानन्द उपदेशक विद्यालय का आचार्य था, जो लाहौर में ही सन् १९२० में खोला गया था। मेरा पता तो वहां आसपास के सारे इलाके में सबको मालूम ही था। पंडित गुरुदत्त ने अपने रात्रि के व्याख्यान में चैलेन्ज दे दिया कि—**"है कोई आर्य समाज में माई का लाल जो हमारे एक भी प्रश्न का जवाब दे दे तो हम उसे ५००) रु० ईनाम में देंगे"**। ये बात आर्य समाज के अधिकारियों को बहुत चुभी और वे परेशान हो उठे। उन लोगों ने रात्रि में ही अपनी सभा की, और लाहौर से मुझे बुलाकर शास्त्रार्थ कराने का निश्चय कर लिया। और आपस में उन लोगों में वार्तालाप के बीच प्रधान जी ने कहा—कि अगर गुरुदत्त को बराबर की चोट देना है, और इसकी इन गालियों का हमेशा के लिए मुंह बन्द करना है तो ठाकुर साहब को ही लाहौर से बुलाना उपयुक्त होगा, जिसने अनेकों पौराणिक पंडितों के दांत खट्टे कर दिये। वही इसका इलाज कर सकते हैं। (उन्होंने मेरे शास्त्रार्थ सुने हुए थे) सब लोगो ने प्रधान जी के इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और तय हुआ कि सुबह होते ही मन्त्री जी व अन्य दो-तीन व्यक्ति ठाकुर साहब को लाहौर उपदेशक विद्यालय से बुला लावें। वे लोग अगले दिन मेरे पास विद्यालय में सुबह ही दस बजे के लगभग पहुंच गये।

मैं महाशय कुन्दन लाल जी को जानता वप हचानता था, मैंने कहा—महाशय जी आज सुबह ही सुबह कैसे आना हुआ ? महाशय जी ने कहा—ठाकुर साहब ! किसी तरह हमारी लाज बचा लीजिये, चूनियां में एक पण्डित आया हुआ है। जिसने नाक में दम कर दिया है, जो-२ गालियां वो आर्य समाज व ऋषि दयानन्द को देता है, हमने तो आज तक सुनी नहीं। जिसके कारण हमारा समाज बदनाम हो रहा है। सभी लोग कहते हैं कि अगर तुम्हारे मत में सच्चाई है तो क्यों नहीं शास्त्रार्थ करते ? मैंने महाशय जी से पूछा कि कौन पण्डित है ? उन्होंने कहा कि कोई गुरुदत्त है। मैंने कहा वही एकाक्षी होगा फक्कड़ गुरुदत्त ! महाशय जी एकदम उछल कर बोले हां ! हां !! ठाकुर साहब आपने ठीक पहचाना वही है। ठाकुर साहब वह बहुत ही धूर्त्त है। मैंने कहा—कोई बात नहीं महाशय जी आप चिंता न करें, उसका इलाज हो जावेगा। आप लोग नास्ता पानी कर लें फिर मैं चलता हूं।

ठाकुर साहब ! रात से भूख व नींद उड़ गई है। जब से उसने भरी सभा में चैलेन्ज किया है। कि **"है कोई आर्य समाज में माई का लाल जो हमारे एक भी प्रश्न का उत्तर दे दें तो हम उसे पांच सौ रुपये ईनाम में देंगे"**। अच्छा तो इसका मतलब है महाशय जी आप विद्यालय के लिए पांच सौ रुपये की आमदनी कर लाये हैं। सब लोग आपस में हंसने लगे·······

उन लोगों ने इतने नाश्ता पानी किया तो मैंने चूनियां जाने की तैयारी की, एवं कुछ आवश्यक पुस्तकें भी साथ ले ली। और हम लोगों ने चूनियां के लिए प्रस्थान कर दिया।

जिला लाहौर में चूनियां एक तहसील थी जहां पर लाहौर से—मुलतान-सक्खर रोड़ी—करांची—क्वेटा—बिलोचिस्तान जाने वाली मुख्य रेलवे लाईन पर "छांगा-मांगा" स्टेशन पर उत्तर कर तांगे से चूनियां जाया जाया था। चूनियां के बारे में एक बहुत ही मशहूर कहावत प्रसिद्ध थी कि "चार चोजें तोहफाये चूनियां। ढाये बंगां गाजरां ते मूलियां" हम लोग चार बजे से पहले-२ चूनियां पहुंच गये। हमारे पहुंचते ही आर्य समाजियों में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई।

सब लोगों ने गुरुदत्त की बातों को अलग-अलग ढंग से आकर मुझे बयान किया। पहले से ही दोपहर बाद का समय नियत किया गया था, जो चार से छः बजे तक था। मैंने तुरन्त शास्त्रार्थ स्थल जो आर्य समाज के प्रांगण में पहले से ही तैयार था पहुंच कर सनातन धर्मियों को शास्त्रार्थ करने के लिए निमंत्रण भिजवाया, मुझे समाज के प्रधान श्री बरकत लाल वकील जी ने कहा कि ठाकुर साहब! पहले थोड़ा कुछ खा लीजिए, चलकर आये हो, दम तो ले लो! मैंने कहा वकील साहब! मेरा कुछ पैसा एक पण्डित के पास है पहले जरा उसे ले लूं बाद में विश्राम भी करेंगे और खायेंगे भी! सभी लोग आपस में बहुत ही हंसे·········

ठीक साढ़े चार बजे शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ, बल्कि सज्जनों! शास्त्रार्थ क्या हुआ? एक बड़ी ही दिलचस्प मुठभेड़ हुई। जिसका परिणाम यह हुआ कि सनातन धर्मियों की झूठी कलई तो खुली सो खुली बल्कि जीवन पर्यन्त उस पण्डित गुरुदत्त ने आर्य समाज को उस प्रकार से गालियां देना बन्द कर दिया, और बाद में तो यहां तक हो गया कि यकायक एक-दो जगह उससे सामना हुआ तो उसने साफ शब्दों में कह दिया कि मैं इनसे शास्त्रार्थ नहीं करूंगा। आप भी इस छोटे से वाद को पढ़िये और प्रसन्नता प्राप्त करिये।

वैदिक धर्म का—

"अमर स्वामी सरस्वती"



शास्त्रार्थ आरम्भ

चार बज कर बीस मिनट पर बहुत से सनातन धर्मियों ने अपने पंडित गुरुदत्त को आगे-२ किये घण्टे घड़ियाल बजाते हुए एक ग्रुप के रूप में आर्य समाज मन्दिर में प्रवेश किया। आर्य समाज का प्रांगण श्रोताओं से खचाखच भरा हुआ था। हम लोग अपनी किताबें जमाये अपने मंच पर पहले से ही विराजमान थे। वे लोग भी अपने मंच पर आकर बैठ गये और कुछ पौराणिक लोग वहीं अपने मंच के इर्द-गिर्द जमकर बैठ गये। समाज के प्रांगण में पहले से ही दो मंच तैयार किये हुये थे। एवं शास्त्रार्थ में जैसी जनता के बैठने की व शास्त्रार्थ कर्त्ताओं के बैठने की व्यवस्था होनी चाहिये वैसी पहले से ही विद्यमान थी। कुछ सनातन धर्मी लोग बाद में अपने पण्डित को पहनाने के लिए मालायें आदि भी ले आये थे। ठीक चार बजकर तीस मिनट पर शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ।

श्री पण्डित गुरुदत्त जी—

उपस्थित सज्जनों! हमें यहां पर आये कई दिन व्यतीत हो गये, आज बड़ी ही खुशी की बात है कि—आर्य समाज ने हमारे प्रश्नों का उत्तर देने के लिए शास्त्रार्थ का आयोजन किया, हमारा कहना है कि—सत्यार्थ प्रकाश वेद विरुद्ध है, हमारे प्रश्नों के अनुसार जो कोई भी व्यक्ति सत्यार्थ प्रकाश को वेदनुकूल सिद्ध कर दे पांच सौ रुपये इनाम में ले लें। हमारा प्रश्न हैं कि—

१. सत्यार्थ प्रकाश में सिक्खों के ग्रन्थ साहव के नाम से लिखा है **"वेद पढ़त ब्रह्मा मरे"** यह ग्रन्थ साहव में कहीं भी नहीं हैं, सत्यार्थ प्रकाश में झूठ लिखा है, इसे सत्य सिद्ध करो?

२. सत्यार्थ प्रकाश में मनुस्मृति के नाम से एक श्लोक का आधा भाग दिया है, देखिये····**"विविधानि च रत्नानि विविक्तेषूप पादयेत्"** यह मनुस्मृति में कहीं भी नहीं है स्वामी दयानन्द ने अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए यह श्लोको बना कर मनुस्मृति के नाम से लिख दिया। और इससे यह सिद्ध करने का असफल प्रयास किया है कि····"सन्यासियों क धन दिया जावे" जबकि संन्यासियों को धन देना हमारे धर्म में पाप माना गया है।

३. **यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात्"** यह मंत्र चारों वेदों में कहीं नही है, आर्य समाजी लोग वेदों का नाम लेकर ठगी करते हैं। मैंने इन लोगों की यह चोरी पकड़ी है आर्य समाज में कोई ऐसा पण्डित नहीं है जो इस मंत्र को वेद में दिखा सके।

सज्जनों! ये महाशय तो ठाकुर हैं और ठाकुर का वेदों और शास्त्रों से क्या सम्बन्ध है? मेरे ये तीन प्रश्न कोई भी आर्य समाजी उत्तर नहीं दे सकता है। इन मेरे तीन प्रश्नों का उत्तर दिया नहीं जा सकता ये मेरा दावा है, वज्र के समान हैं, इनका इनके उत्तर दो और पांच सौ रुपये इनाम में लो! इन प्रश्नों से सिद्ध है कि **"सत्यार्थ प्रकाश वेद विरुद्ध"** है।

श्री पं० ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी—

सज्जनों! अभी आप लोगों के सम्मुख पण्डित जी महाराज ने पांच सौ रुपया देने की घोषणा की है। इसलिए मेरी पण्डित जी महाराज से ये प्रार्थना है कि पहले वे पांच सौ रुपया निकाल कर यहां जमा करे फिर उत्तर सुनें। यदि पण्डित जी रुपया जमा नहीं करेंगे तो इस बात का क्या सबूत है कि "सत्यार्थ प्रकाश वेदानुकूल सिद्ध" होने पर आप पांच सौ रुपया दे देंगे?

नोट—

पण्डित गुरुदत्त जी के पास उस समय पांच सौ रुपये नहीं निकले एवं वहां उपस्थित कोई पौराणिक अपने पांच सौ रुपये खटाई में डालने को तैयार न हुआ, हर एक पौराणिक डरता था कि अगर "सत्यार्थ प्रकाश वेदानुकूल सिद्ध" हो गया तो पांच सौ रुपये चले जावेंगे। काफी देर तक पण्डित जी इधर उधर काना फूसी करते रहे। और फिर बड़े जोश के साथ बोले।

श्री पण्डित गुरुदत्त जी—

मैं लिखकर देता हूं कि अगर मैं पांच सौ रुपये न दे सकूंगा तो एक वर्ष तक आपका सेवक बन कर रहूंगा।

श्री पं० ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी —

"तत्काल ऊंची आवाज में..............मुझे पण्डित जी महाराज पर इस बात का भी भरोसा नहीं है कि ये अपने वचन को पूरा करेंगे। यहाँ पर लगभग एक दर्जन वकील बैठे हैं, चलो उनमें से इसी बात की किसी से भी जमानत दिलवा दीजिये। वैसे मुझे "भ्रंग भंग" सेवक स्वीकार नहीं है। (जनता में बड़ी भारी हंसी व तालियों की गड़गड़ाहट... ....सज्जनो! सुनों!! ध्यान पूर्वक सुनों!!! पण्डित जी महाराज ने इनाम की व्यर्थ ही डींग मार दी परन्तु यहां बहुत से वकील लोग बैठे हुए हैं क्या कोई वकील श्री पं० गुरुदत्त जी की जमानत देने को तैयार है? मैं यहां बैठे हुए मानवीय वकीलों से प्रश्न करता हूं। (कोई भी वकील हां करने को तैयार नहीं हुआ) तब ठाकुर साहब बोले...."मुझे दु:ख है और बेहद अफ़सोस भी है कि पण्डित जी पर किसी को भी विश्वास नहीं है" जनता में हंसी SSSSS....... ...

भाइयो! क्या मैं यह समझ लूं कि श्री पण्डित जी ने केवल अपना झूठा रौब जमाने के लिए ही ये घोषणायें की हैं? फिर हंसी...............

श्री पण्डित गुरुदत्त जी—

यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है तो ऐसा ही समझ लीजिये (श्रौताओं में से बैठे बहुत से लोगों ने कहा.. हां! हां!! यही ठीक है!)।

श्री पण्डित ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी —

धर्मानुरागी सज्जनों! **"खोदा पहाड़ और निकला चूहा, वह भी मरा हुआ"** श्री पं० गुरुदत्त जी ने यह दावा किया था कि **"सत्यार्थ प्रकाश वेद विरुद्ध है"** इसको सिद्ध करने के लिए आपने सिक्खों के ग्रंथ साहिब सम्बन्धी प्रश्न क्या इससे सत्यार्थ प्रकाश वेद विरुद्ध सिद्ध हो गया? वाह! वाह!! पण्डित जी!!! **"मारे घुटना, फूटे आंख"** पहिले तो मैं पूछता हूं कि—क्या सिक्खों ने आपको अपना वकील बनाया है? यदि नहीं तो फिर आप इसको पूछने किया?वाले कौन है? **"मान न मान, मैं तेरा मेहमान"**....**"मुद्दयी सुस्त-गवाह चुस्त"** मैं पूछता हूं कि—क्या ग्रंथ साहिब आपका वेद है? यदि यह सिद्ध हो जाये कि यह वाक्य या भाव ग्रंथ साहिब का नही है, जो सत्यार्थ प्रकाश में ग्रंथ के नाम से दिया है तो सत्यार्थ प्रकाश वेद विरुद्ध कैसे हो गया?

सुनिये! महाराज जी!! आप तो न ग्रंथ साहिब को समझते हैं न सत्यार्थ प्रकाश को! ग्रंथ साहब में यह पाठ है – **"वेद पढ़े पढ़ ब्रह्म जनम गंवाया"** इसका भाव स्वामी जी ने लिख दिया, तो क्या प्रलय हो गई?

एक बात मेरी लिख लीजिये—जिस बात को आप वेद विरुद्ध कहें उसके लिए वेद का मंत्र बोलिये—कि उस मंत्र के विरुद्ध है। जब तक आप उस बात के विरुद्ध वेद का मंत्र न दे सकें उसको वेद विरुद्ध कहना हठ है, दूराग्रह है, अन्याय है, अनर्थ है, और अज्ञान का प्रमाण है।

सज्जनों ! पण्डित जी ने तीन प्रश्न किये जिनमें से एक प्रश्न का उत्तर आपने सुन लिया । अब दूसरे प्रश्न का उत्तर सुनिये ।

पण्डित जी आप सदा के लिए ऐसे प्रश्न और शास्त्रार्थ करना छोड़ दीजिए । यह तो निश्चय सा ही है कि आप न कभी स्वयं मेरे सामने आयेंगे और ना ही ये सनातन धर्मी भाई कभी आपको मेरे सन्मुख लायेंगे । आपका कथन है कि—**"विविधानि च रत्नानि......"** यह श्लोक मनुस्मृति के नाम से बनाकर स्वामी दयानन्द जी महाराज ने सत्यार्थ प्रकाश में लिख दिया है । जबकि मनुस्मृति में कहीं भी नही है । मैं कहता हूं कि—यह प्रश्न आपने किसी से सुन कर यहां कर दिया है, मनुस्मृति आपने पढ़ना तो दूर की बात देखी तक नही है । देखिये थोड़े से पाठ भेद से, "अर्थ भेद से नही" मनुस्मृति अध्याय ग्यारह का छटा श्लोक—

धनानि तु यथाशक्ति विप्रेषु प्रति पादयेत् ।
वेद वित्सु विविक्तेषु प्रेत्य स्वर्ग स मश्नुते ॥

इस श्लोक में कहा है कि वेदज्ञ ब्राह्मण और संन्यासी को यथा शक्ति धन देने वाला मर कर स्वर्ग (सुख) भोगता है । इस श्लोक में **"वेद विद् विविक्त"** कहा है, **"विचर प्रथक् भावे"** धातु से **"विविक्त"** शब्द बनता है, जिसका अर्थ है—

स्त्री पुत्र आदि को जिसने त्याग दिया है ऐसा पुत्रैषणा त्याग देने वाला संन्यासी ही होता है । उसको धन देने वाला स्वर्ग को प्राप्त करता है ।

कुल्लुक भट्ट ने इसके अर्थ में लिखा है—**"पुत्र कलत्रादिषु अवशक्तेषु"** अर्थात् स्त्री और पुत्रों में जिसकी आशक्ति नही है जो ग्रह त्यागी व परिवार त्यागी है, उसको धन देना चाहिये । आपके संन्यासियों क्या बल्कि "धन्यासियों" कहिये जो **"निर्वाणी अखाडे"** वाले और **"निरञ्जनी अखाडे"** वाले महन्तो और नामधारी जगत् गुरु कहलाने वाले शंकराचार्यों, मण्डलेश्वरों, व महामण्डलेश्वरों, के पास तो गृहस्थियों से लिया हुआ लाखों-करोड़ों रूपया है । उनके पास हाथी हैं, मोटरें हैं । ऐंश्वरीय के वो साधन व भण्डार हैं कि जो किसी राजा से कम नही । कहिये इनको धन देने वाले पापी हैं या ये लेने वाले पापी हैं ?

श्री पंडित गुरूदत्त जी—

जरा ये ग्रन्थ मुझे दिखलाइये !

श्री पं० ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी—

बिल्कुल बड़े शौक से लीजिये, और हो सके तो पण्डित जी आप ही अपनी जुबान से पढ़कर सुना भी दीजिये । (जनता में हंसी......)

नोट—

इस बात को सुनकर पण्डित गुरुदत्त जी घबरा गये, जैसे उन्हें सांप सूंघ गया हो । सारा पौराणिक समुदाय उन पर आशा जमाये उनकी ओर देख रहा था, कि पण्डित जी क्या कहते हैं ? परन्तु गुरुदत्त जी के मुख से कोई बात नही निकली, वे बार-२ कुल्लुक भट्ट की टीका को देखते व अपने हाथों में उलटते पलटते रहे तो बीच में ही ठाकुर साहब बोले –

"पण्डित जी मैटर पुस्तक के अन्दर होता है बाहर नहीं, आप बार-२ इसको बाहर से देख रहे है" श्रोताओं में जबंदस्ती हंसी व तालियों की गड़गड़ाहट ऽ ऽ ऽ ......,

श्री पं० गुरूदत्त जी—

(घबराये हुए से) ठाकुर साहब ! इसमें तो "पुत्र कलत्रादिषु शक्तेषु" लिखा है।

श्री पं० ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी—

क्या पण्डित जी ! अब एक आंख से भी कम दीखने लगा है ? किसी और को बुलवा कर पढ़वा लो।

नोट—

वहां के एक शास्त्री जी आगे आये जो एक हाई स्कूल में अध्यापक थे। और पुस्तक को पण्डित जी के हाथ से लेकर पढ़ने लगे, जो पाठ मैं कहता था, वही उन शास्त्री जी ने बयान किया, जो अर्थ मैं कहता था वही उन्होंने पढ कर सुनाया, जिसको सुनकर वहां पर उपस्थित आर्य भाइयों के हर्ष की सीमा न रही और चारों ओर से जयकारों के साथ करतल ध्वनि होने लगी, जिसको कौशिश करने के बावजूद भी बहुत देर बाद रोका जा सका।

श्री पं० ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी—

सज्जनों ! शान्तिपूर्वक बैठो !! मेरे ऊपर पं० जी का एक प्रश्न और उधार है, मुझे उधार रखने की आदत नही है। मैंने कितने करारे उत्तर दिये वो आप लोगों ने सुन लिये, उनसे भी करारे अब सुनिये, मैं झूठे को उसके घर तक पहुंचा के छोड़ता हूं, बीच में नही।

पण्डित जी ने पांच सौ रूपये की झूठी घोपणा की थी। जिसकी पोल आप सब लोगों के सामने खुल गई। अब मेरी घोषणा व प्रतिज्ञा सुनिये—**"तुरन्त दान महा कल्याण"** यह लीजिये नकद पांच रूपये, और स्वामी दयानन्द जी के किसी भी ग्रन्थ में यह लिखा हुआ दिखाइये कि **"यज्ञोपवीतं परमं पवित्रम्-......"** यह मन्त्र वेद का है।

दिखाइये पण्डित जी महाराज ! और पांच रूपये नकद लीजिये। पांच रूपये से अधिक न आप देने के योग्य हैं, न लेने के योग्य हैं। जनता में फिर हंसी ऽ ऽ ऽ ... ।

एक मजे की बात यह है कि आप सत्यार्थ प्रकाश को **"वेद विरुद्ध"** सिद्ध करने को आये थे, पर आपको यह भी पता नही है कि सत्यार्थ प्रकाश में यह मन्त्र कहीं है भी या नही। एक और बात ध्यान देने योग्य है कि सत्यार्थ प्रकाश वेद विरुद्ध सिद्ध नही हुआ। तो भी यह बताइये कि यह मन्त्र वेद का न होते हुए भी वेदानुकूल है या वेद विरुद्ध ? यदि वेद विरुद्ध है तो आप सारे सनातन धर्मी कहलाने वाले पण्डित लोग इस मन्त्र से ही यज्ञोपवीत क्यों पहनते हैं ?

पण्डित जी ! न सत्यार्थ प्रकाश वेद विरुद्ध है न यह मन्त्र ! बल्कि वेद विरुद्ध हैं केवल आप ! **"बिभेति अल्प श्रुतात् वेदः मामयं प्रहरष्यति"** अर्थात आप जैसे थोड़ा ज्ञान रखने वाले मनुष्य से वेद भी डरता है। कि कहीं यह मुझ पर ही न प्रहार कर बैठे ! श्रोताओं में अपार हर्ष......हां ! एक बात और सुनिये !

पण्डित जी महाराज ने मेरे ठाकुर होने पर आपत्ति की। भाइयो ! अगर मैं ठाकुर हूं तो क्या ठाकुर वेद व शास्त्रों के ज्ञान से शून्य होते हैं ? और क्या मूर्ख होते हैं ? पण्डित जी व इनके बाप-दादे पूर्वज लोग ठाकुरों की पूजा कर-कर के उनका पुजापा ले-लेकर सैंकड़ों वर्षों से पेट भरते आ रहे हैं, ठाकुरों के तो चरण धो-धो कर ये लोग पीते हैं। पं० जी महाराज ! मैं ठाकुर हूं तो आपका पूज्य हूं, आपका इष्ट देव हूं। ......श्रोताओं में चारों ओर हंसी का वातावरण व तालियों की गड़गड़ाहट व वैदिक नारों से आकाश गूंज उठा......बोलो वैदिक धर्म की जय ! महर्षि दयानन्द की—जय ! सत्यार्थ प्रकाश—अमर रहे, वेद की ज्योति—जलती रहे, ठाकुर अमर सिंह शास्त्रार्थ केशरी—जिन्दाबाद !, जिन्दाबाद !!

"और मुझे मालाओं से लाद दिया, मेरे ऊपर नोटों की वर्षा की" उधर पौराणिक समुदाय में मुर्दनी छा गई, चुप चाप आर्य समाज नन्दिर से निकल कर बाहर जाने लगे, तो समाज मन्दिर के दरवाजे पर पहुंच कर बाहर निकलने से पहले एक पौराणिक ने गुरुदत्त के गले में माला पहना दी। इसको महाशय कुन्दनलाल जी ने उनको देख लिया, तो उन्होंने शेर की तरह झपट कर गुरुदत्त जी के गले से वो माला तोड़ कर फेंक दी तथा पौराणिकों को ऊंची आवाज

में गर्ज कर कहा—"**तुम्हें शर्म नही आती, हारे हुए के गले में माला पहनाते हो?**" पौराणिक मण्डल अपने घण्टे घडियाल ताक पर रखकर चुप चाप भाग गये।

पण्डित गुरुदत्त के साथ केवल दो-चार व्यक्ति जो पौराणिक समुदाय के थे, साथ जा रहे थे जैसे उनका कोई सगा मर गया हो, उसे फूंक कर जा रहे हों। सारे नगर में आर्य समाज की विजय की धूम मच गई। मेरा बड़ा भारी स्वागत व सम्मान आर्य पुरुषों द्वारा किया गया।

पुराने आर्य समाजी अधिकारियों की लगन का एक नमूना—

श्री महाशय कुन्दनलाल जी जो आर्य समाज चूनियाँ के मन्त्री थे उनके पास एक बच्चों के खेलने की तड़बड़ गाड़ी की भांति उससे बड़ी गाड़ी थी उसमें एक छोटा सा नक्कारा रखा रहता था। गाड़ी को खींचने से उस पर बांस की चट्टियां पडने लगती थी, जिनके पडने से वह नक्कारा ऊंची आवाज में तड़-तड़-तड़-तड़ बजने लगते था। सारे नगर में उस गाड़ी को खींचते हुए और हाथ में घण्टी बजाते हुए व्याख्यानों की घोषणा श्री महाशय जी स्वयं ही करते थे। जब किसी पौराणिक, ईसाई, मुसलमान, या अहमदी का लैकचर आपत्तिजनक होता, और उसका उत्तर देने के लिए कोई बाहर से आने वाले आर्य समाजी उपदेशक न होते तो महाशय जी स्वयं ही उसका खण्डन अपने व्याख्यान में किया करते थे। और स्वयं ही उसकी घोषणा अपनी तड़बड़ गाड़ी से घन्टी बजाते हुए इस प्रकार करते थे कि—

"आज आर्य समाज मन्दिर में रात्रि के . . . . . बजे . . . . (अमुक) . . . पण्डित, पादरी, या मौलवी की ग़लत बयानियों का दन्दा शिकन जवाब दिया जायेगा, आप लोग भारी संख्या में आइये और सुनिये"।

महाशय जी का व्यक्तित्व बहुत ही अद्भुत था, वह बड़े ही कर्मठ व्यक्ति थे। वे तहसील में अर्जी नवीसी का काम करते थे, पर दिन रात आर्य समाज के प्रचार की उनको धुन रहती थी, सारे नगर चूनियाँ में बच्चा-२ इनको जानता था, इस प्रकार से वह आर्य समाजी नही बल्कि "आर्य समाज" ही माने जाते थे। चूनियां में एक सरकारी हाई स्कूल था, उसमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों को महाशय जी आर्य समाज मन्दिर में बुलवा लेते थे, उनके द्वारा सन्ध्या और हवन कराते थे। आर्य समाज के सिद्धान्तों की उनको शिक्षा देते थे। उनसे भजन व कहानियां कहलवाते थे, इस प्रकार महाशय जी के असंख्य शिष्य पक्के सिद्धान्तवादी व कट्टर आर्य समाजी बने। पच्चीस-तीस विद्यार्थियों की सेना उनके पास सदा तैयार रहती थी। ये थी पुराने व्यक्तियों की लगन! जिसके कारण समाज का प्रचार दिन दुनी—रात चौगुनी उन्नति करता था। मेरी प्रभु से यही प्रार्थना है कि—"**भगवान आर्यो में पहली सी लगन लगा दे**" जिससे फिर वही एक बार वैदिक धर्म की दुन्दुभि बज उठे। मैं कभी-२ सोचता हूं कि वो व्यक्ति भी क्या व्यक्ति थे? जिनको उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते, आर्य समाज के ही प्रचार की धुन सवार रहती थी।

नोट—

मेरा इस कथन को लिखने का यह तात्पर्य नही है कि अब भी समाज का हर मन्त्री महाशय जी की तरह से तडबड गाड़ी व घन्टी खरीदे और मुनादी करे। आजकल विज्ञान का युग है, वो साधन उस समय के थे, जब ये आधुनिक साधन आसानी से उपलब्ध नही होते थे। बल्कि अब जो साधन उपलब्ध हैं उन्ही के द्वारा महाशय जी की तरह से पूर्ण लगन के साथ प्रचार करें और स्वाध्याय करें! मैंने स्वाध्याय की बात कही तो मुझे एक बात याद आ गई—"जब हमारे लाजपत राय जी पुस्तक विक्रय का कार्य घूम-घूम कर बड़े ही उत्साह व मेहनत से सारे देश में करते थे, तो मेरे सामने ही एक समाज के मन्त्री ने उनको कहा कि लाजपत राय जी आपके पास आर्योद्देश्यरत्नमाला अगर हो तो एक प्रति दे देना तथा बिल समाज के नाम बनाकर जो भी उचित कमीशन हो ज्यादा से ज्यादा काटकर देना" पैसा मुझसे ले लेना, लाजपत राय जी कुछ जवाब न देकर हंसने लगे, मैंने माथे पर हाथ मारा! हे मेरे भगवान! समाज का कार्य कैसे चलेगा!!! उस समय उस पुस्तक की कीमत दस पैसा थी, मन्त्री जी की बातों से साफ पता चलता था

कि उन्होंने इस पुस्तक का नाम कहीं सुन लिया होगा, पढ़ना तो दूर ! देखा तक नही होगा । उन्होंने सोचा होगा कोई बड़ा ग्रन्थ होगा जिसका मूल्य पचास-सौ रूपया होगा । मुझे वह समाज अच्छी तरह याद है मैं उसका नाम यहां लिखना नही चाहता, अब आप ही सोचिये जिस समाज के अधिकारियों का ये स्वाध्याय होगा तो वे समाज को कैसे चला पायेंगे ? इसलिए स्वाध्याय करो, विना किसी पद की लालसा के निस्वार्थ भाव से समाज का कार्य करो तभी समाज का प्रचार व प्रसार सम्भव है, आप लोगों के कारनामें देखकर आर्य समाज पुकार-२ कर कह रहा है—

हो चुकी, आपस की बस तक़रार रहने दीजिये,
आये दिन की जूतियों पैंजार रहने दीजिये ।
क्यों पडे हो हाथ धोकर जान के पीछे मेरी,
मुझको जिन्दा ऐ मेरी सरकार रहने दीजिये ।।

हो चुकी हिकमत तुम्हारी बस करो रहने भी दो,
अयः मसीहा बस मुझे बीमार रहने दीजिये ।
अपने घर में तो हजारों तीर तुम बरसा चुके,
दुश्मनों के लिए भी दो-चार रहने दीजिये ।।

आपकी हालत पे दुश्मन हंस रहे हैं देख लो,
कुछ तो नीचा ही सरे अग़यार रहने दीजिये ।
वह 'अमर'' पद पा गया जिसने दिया मुझको फ़रोग़,
इसलिए किस्मत मेरी बेदार रहने दीजिये ।।

वैदिक धर्म का—

"अमर स्वामी सरस्वती"





पुरी के शंकराचार्य
श्री निरंजन देव जी तीर्थ
व
आर्य समाज के तीन दिग्गज़ विद्वानों
के बीच
क्रमश: तीन शास्त्रार्थं



नोट—

यहां पर क्रमश: से तीनों शास्त्रार्थ उद्धृत किये जाते हैं, जबकि ये तीनों शास्त्रार्थ अलग-२ समय व अलग-२ विद्वानों के साथ अलग-२ विषयों पर हुए थे।

पढ़िये और लाभ उठाइये !

—"सम्पादक"

छब्बीसवां शास्त्रार्थ

स्थान : कचौरा, जि० अलीगढ़ (उ० प्र०)

दिनांक : (मूल कापी पर समय नहीं छपा था)

विषय : क्या परमेश्वर निराकार है ?

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्ता : श्री पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री (काव्यतीर्थ)

पौराणिक पक्ष की ओर से शास्त्रार्थ कर्ता : व्याकरणाचार्य श्री पं० चन्द्रशेखर जी (वर्तमान श्री शंकराचार्य निरञ्जन देव जो तीर्थ)

सहायक : श्री शंकराचार्य करपात्री जी महाराज

शास्त्रार्थ से पहले

कचौरा, जिला अलीगढ़ में पौराणिकों ने यज्ञ कराया था। उसमें श्री स्वामी करपात्री जी महाराज अपने दल-बल के साथ पधारे थे। इस अवसर पर पौराणिकों ने स्थानीय आर्य समाजियों को शास्त्रार्थ की चुनौती दी। अतः आर्य भाई ऊंझानी (जिला बदायुं) से मुझे बुला कर ले गये।

पौराणिकों के पण्डाल में तो शास्त्रार्थ इसलिए नही हुआ कि वहां आर्य पण्डित को कुर्सी पर नहीं बैठने दिया गया। कहा गया कि श्री करपात्री जी के सामने कोई कुर्सी पर नहीं बैठ सकता। अतः जनता के जोर डालने पर पौराणिक मण्डल शास्त्रार्थ करने पर विवश हुआ, और आर्य समाज के सभा मण्डप में शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। श्री करपात्री जी के साथी, व्याकरणाचार्य श्री पं० चन्द्रशेखर जी शास्त्रार्थ करने के लिए पौराणिक पक्ष की ओर से तथा आर्य समाज की ओर से (मैं) लेखक नियुक्त हुए। श्री चन्द्रशेखर जी ही इस समय पुरी के शंकराचार्य निरञ्जन देव जी तीर्थ हैं।

"बिहारी लाल शास्त्री"

शास्त्रार्थ प्रारम्भ

पौराणिक पं० चन्द्रशेखर जी व्याकरणाचार्य—

भाइयो ! सुनो !! आर्याभिविनय पुस्तक स्वामी दयानन्द की बनाई हुई है जिसमें दयानन्द ने लिखा है कि—

"मेरे सोम रसों को हे ईश्वर सर्वात्मा से पान करो"

क्या निराकार सोम रस पान करता है ? यह ईश्वर को भोग लगाना नहीं है तो और क्या है ? हम श्री ठाकुर जी को भोग लगाते हैं तो ये आर्य आक्षेप करते हैं, और आप निराकार को सोमरस पिला रहे हो तो कुछ नहीं ? "निराकार" सोमरस कैसे पी रहा है हमारे भगवान तो साकार है ? इसलिए हमारा भोग लगाना तो उचित ही हुआ न ? परन्तु तुम आर्यो का कमाल है, कि एक तरफ़ उसे निराकार मानों, दूसरी तरफ़ उसे सोमरस पिलाओ। ये कैसे हो सकता है ?

पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री—

महाराज ! वास्तव में तो निराकार ही खाता पीता है, साकार नहीं !! देखिये कैसे ? मैं समझाता हूं। जब जिस समय शरीर से यह निराकार जीवात्मा निकल जाता है, तब यह साकार शरीर कुछ भी नहीं खाता-पीता, अगर किसी ने कहीं मुर्दे को खाते-पीते देखा हो तो बताओ ? (जनता में हंसी…… …………) निराकार ईश्वर सर्वत्र व्यापक है। वह सोमरस में भी व्यापक है। इसी कारण यहां सर्वात्मा शब्द का प्रयोग हुआ है। सर्व व्यापक ईश्वर को हमारे अर्पित सोमरस का ज्ञान है। सर्वज्ञत्व से वह पान करता है, यह ज्ञान रूपी पान एक आलंकारिक वाक्य है, देखिये वेदान्त दर्शन में ईश्वर को "अत्ता" अर्थात् खाने वाला कहा है। देखिये— "अत्ताचराचर ग्रहणात्"। क्योंकि वह ईश्वर सर्व व्यापक होने से सबका 'अत्ता' अर्थात् खाने वाला है। आपके मान्य ग्रंथ वेदान्त दर्शन का ही ये वचन मैंने बोला है।

पौराणिक पं० चन्द्रशेखर जी व्याकरणाचार्य—

ईश्वर साकार ही भोग ग्रहण करता है। निराकार को भोजन की आवश्यकता नहीं। सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है—"सोमसदः पितरस्तृप्यन्ताम्" यह चन्द्रलोक में रहने वाले पितरों का तर्पण नहीं है तो और क्या है ? आर्य समाजियों के गुरु अपने ग्रंथ में पितरों का तर्पण मानते हैं, परन्तु आर्य समाजी पितृ श्राद्ध का खण्डन करते हैं, यह अपने ग्रंथों का तथा अपने गुरु का विरोध है।

पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री—

पण्डित जी ! निराकार भगवान् सर्व व्यापक है ! साकार सर्वव्यापक नहीं है, साकार सर्वव्यापक हो ही नहीं सकता। जिसे खाने पीने की आवश्यकता हो वह भगवान हो ही नहीं सकता। भगवान सब आवश्यकताओं और इच्छाओं से मुक्त है। पूर्ण काम है। वह अपनी सर्वज्ञता से हमारे तैयार किये सोमरस, शुद्ध प्रेम भावों को जानता है, स्वीकार करता है। यहां सोमरस कोई भौतिक पदार्थ नहीं, किन्तु इस मंत्र में उस सोम रस का संकेत है जिसे वेद ने कहा है—

"सोमं यंब्राह्मणा विदुर्नतस्याश्नाति कश्चन"

वह सोमरस जिसे ब्राह्मण जानते हैं। उसको कोई नहीं खाता, अर्थात् वह है शुद्ध ब्रह्मज्ञान, आध्यात्मिकता, भगवान का प्रेम उसका रस तो योगी ही ले सकता है। उसी प्रेम भाव को यहां भक्त अपने इष्ट देव के अर्पण कर रहा है। और सोम, सद पितरों के तर्पण से पहले यह जानना चाहिये कि पितर हैं क्या ? देखिये श्री उव्वट और आचार्य महीधर जी के यजुर्वेद भाष्य में लिखा है—**"ऋतवो वै पितरः"** ये छै ऋतुयें पितर हैं। इन्हीं को वेद में कहा है —**"नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो रसाय"** आदि।

ये ऋतुएं चन्द्रमां से सम्बद्ध हैं। अतः सोमसद् कही गई हैं। ऋतु-ऋतु पर यज्ञ करके इन पितरों को तृप्त करो तो कोई रोग नहीं फैलेगा, प्रकृति में विकार नहीं होगा।

यदि सब मरने वाले चन्द्रलोक में जाकर पितर बन जाते हैं, तो पुर्नजन्म किसका होता है ? और चन्द्रलोक में जन्म लेने वालों की तृप्ति का प्रबन्ध हम क्यों करें ? प्रजापति भगवान सबका प्रबन्ध तत् कर्मानुसार करते ही है। पण्डित जी महाराज ! आपको पता होना चाहिये कि कर्मों का फल संस्कारों द्वारा ही मिलता है। संस्कार-सूक्ष्म शरीर पर स्वकृत कर्म से पड़ते हैं। परकृत कर्म से नहीं। मृतक श्राद्ध मान लेने से स्वकृत कर्मफल हानि और परकृत कर्म फलाप्ति से दो दोष आते हैं, (१) और कर्म सिद्धांत को दूषित कर देते हैं, क्या तमाशा है कि अपनों की तो सुध-बुध है नहीं, दौड़ते है चन्द्र लोक तक थाल लिये पितरों को ! देश के सहस्रों बालक भूख से वेचैन होकर ईसाई वनते हैं। आप चन्द्रलोक की प्रजा का पालन करने चले हैं।

नोट—

इन वातों पर जनता में जबरदस्त अट्ठास हुआ जिससे पौराणिक पण्डित शास्त्रार्थ के बीच में ही विगड़ खड़े हुए, कि हमारी बातों को तमाशा कह दिया, उनसे बहुतेरा अनुनय विनय किया गया कि "तमाशा" शब्द, अपशब्द वा गाली नहीं है। ये उर्दू का शब्द है। जो क्रीड़ा व खेल के अर्थो में आता है पर वे न माने, क्योंकि वे तो पीछा छुड़ाने का कोई न कोई बहाना ढूंढ़ रहे थे, वह उनको मिल गया, और वह क्रोध में भरे हुए अपनी पुस्तक भी मेज पर ही छोड़ कर चल दिये।

इस शास्त्रार्थ के वाद वे फिर कभीं यहां नहीं पधारें, और आर्य समाज की चहुंमुखी उन्नति हो उठी, बाद में यहां पर आर्य समाज मन्दिर बना पाठशाला खुली, बड़े-२ विशाल उत्सव होते रहे। ये केवल उसी शास्त्रार्थ का प्रभाव था ! **(शास्त्रार्थ ! हमारे वैदिक धर्म प्रचार में सबसे अधिक सहायक थे)।**

"बिहारी लाल शास्त्री काव्यतीर्थ"

टिप्पणी—(१) मृतक श्राद्ध में न्यायानुसार दो दोष—एक **"कृतहानि"** दूसरा—**"अकृताभ्यागम"** है। जो पुत्र अपने परिश्रम से कमाये धन से श्राद्ध करेगा, उसको श्राद्ध का फल कुछ भी नहीं मिलेगा—अतः यह—**"कृतहानि,"** दोष हुआ। और मरे पिता आदि को—बिना कुछ कर्म किये श्राद्ध का भोजन मिलेगा तो यह **"अकृताभ्यागम"** दोष हुआ।

"अमर स्वामी सरस्वती"

सत्ताईसवां शास्त्रार्थ

स्थान : अमृतसर (पंजाब)

दिनांक : १६ व १७ नवम्बर सन् १९६४ ई०

विषय : १—क्या वेदों में विज्ञान है ?
२—क्या ब्राह्मण ग्रन्थ भी वेद हैं ?

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्ता : श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थ कर्ता : श्री स्वामी निरञ्जन देव तीर्थ (पुरी के शंकराचार्य)

मुख्य संचालक : श्री स्वामी हरिहरानन्द (करपात्री) जी महाराज

नोट—यह सामग्री श्री पं० भवानी लाल जी भारतीय द्वारा सम्पादित "आर्य समाज के शास्त्रार्थ महारथी" नामक पुस्तक से ली गई है।

शास्त्रार्थ से पहले

अमृतसर में दिनांक ११ नवम्बर से १६ नवम्बर सन् १६६४ ई० तक अखिल भारतीय सर्व वेद शाखा सम्मेलन का सप्तम अधिवेशन हुआ। इसके अध्यक्ष गोवर्धन पीठ के अधीश्वर जगद्गुरु नामधारी स्वामी निरञ्जन देव तीर्थ (पुरी के शंकराचार्य) थे। स्वामी हरिहरानन्द (करपात्री) इसके मुख्य संचालक थे, पण्डित युधिष्ठिर जी को इस सम्मेलन में विशेष रूप से आमन्त्रित किया गया था। अतः श्री पण्डित मीमांसक जी दिनांक १५ नवम्बर को अमृतसर पधार गये। दिनांक १६ नवम्बर को जव मीमांसक जी विचार स्थल पर पहुंचे तो पौराणिक विद्वानों ने पूर्व से ही कोई योजना वनाई हुई थी। तो उस योजनानुसार उनमें से एक पौराणिक विद्वान् खड़ा होकर—संस्कृत भाषा में वेद, में विज्ञान की सत्ता को देखकर अस्वीकार करते हुए कहने लगा—

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पौराणिक पण्डित—

स्वामी दयानन्द ने आधुनिक विज्ञान को देखकर तदनुसार वेद से विज्ञान को सिद्ध करने की चेष्टा की है। उदाहरणार्थ, "आयं गौः पृश्निरक्रमीत्" इस मन्त्र से पृथ्वी का सूर्य के चारों ओर घूमना स्वामी जी ने सिद्ध किया है। जव कि वेद का सिद्धांत है कि सूर्य घूमता है।

श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक—

वेद में विज्ञान है, इतना ही नहीं वल्कि वेद ही ज्ञान का मूल स्त्रोत है। अतः स्वामी दयानन्द ने वेदार्थ करते समय जिस पृथ्वी भ्रमण का प्रतिपादन किया है, वह भारतीय विज्ञान है। आर्य भट्ट अपने सिद्धान्त शिरोमणि ग्रन्थ में पृथ्वी भ्रमण का विस्तार से प्रतिपादन करते हैं। उन्होंने वलपूर्वक वेद का वैज्ञानिक अर्थ करने का समर्थन किया।

श्री निरञ्जन देव जी तीर्थ—

वेद का मन्त्रार्थ तीन प्रकार का नहीं हो सकता। आप "अग्निमीडे पुरोहितं" इस ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र का तीन प्रकार का अर्थ सिद्ध कर दिखावें।

नोट—इस समय तक शास्त्रार्थ का प्रथम दिवस का समय समाप्तं हो गया था।

द्वितीय दिन १७ नवम्बर सन् १९६४ ई०

शास्त्रार्थ से पहले

द्वितीय दिन जब मीमांसक जी अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र का त्रिविधार्थ प्रदर्शित करने लगे तो पूर्व पक्षी ने पैंतरा बदलकर **"ब्राह्मण ग्रन्थ वेद हैं या नहीं ?"** यह विषय विचार के लिए प्रस्तुत कर दिया—श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक जी ने इस विषय को भी सहर्ष स्वीकार कर लिया—

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक—

"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम्" इस वचन के अनुसार ब्राह्मण की वेद संज्ञा मानी जाती है। वह वचन केवल कृष्ण यजुर्वेद के श्रौत सूत्रों में ही मिलता है। ऋग्वेद, शुक्ल यजुर्वेद और सामवेद की मन्त्र संहितायें स्वतन्त्र हैं। और इनके ब्राह्मण भी स्वतन्त्र पृथक् हैं. जबकि कृष्ण यजुर्वेद की संहिताओं में मन्त्र और ब्राह्मण का शम्मिश्रण है। अतः प्राचीन परम्परानुसार उनके एक देश मन्त्र की ही वेद संज्ञा प्राप्त थी, ब्राह्मण भाग की नहीं। इस प्रकार सम्पूर्ण संहिता का वेदत्व सिद्ध करने के लिए कृष्ण यजुर्वेद के श्रौत सूत्रकारों को ही ऐसा वचन बनाना पड़ा।

(मीमांसक जी ने इस विषय का समग्र विवेचन अपनी एक पुस्तक—**"मन्त्रब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम् इत्यत्रकश्चिद्-भिनवो विचारः"** में पृथक रूप से किया है।)

नोट—

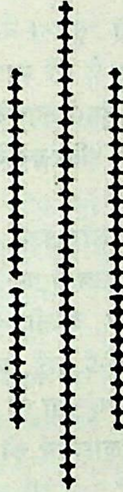
इसके मुख्य संचालक श्री करपात्री जी ने मीमांसक जी के इस समाधान पर कोई आक्षेप नहीं किया।

एवं उसी दिन मध्यान्ह में मीमांसक जी ने गोपथ ब्राह्मण के **"एवमिमे सर्ववेदाः निर्मिताः सकल्पाः सरहस्याः सब्राह्मणा सोपनिषत्काः।"** इस वचन को प्रस्तुत करते हुए वेदों से ब्राह्मण ग्रन्थों का पार्थक्य निरूपित किया, इस प्रकार ९ घण्टों तक चलने वाले इस शास्त्रार्थ का श्रोता लोगों पर अद्वितीय प्रभाव पड़ा। लोगों को यह स्पष्ट विदित हो गया कि आर्य समाज के एक महारथी विद्वान् ने ही सम्पूर्ण पौराणिक विद्वानों को चुप कर दिया है।



अट्ठाईसवां शास्त्रार्थ

स्थान : दिल्ली (पुरानी सब्जी मण्डी)



दिनांक : १८ दिसम्बर सन् १९८० ई०

विषय : क्या अवतारवाद वेदानुकूल है ?

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री महात्मा अमर स्वामी जी महाराज (जो पूर्व श्री पं० ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी के नाम से विख्यात थे)

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री स्वामी निरञ्जनदेव जी तीर्थ (पुरी के शंकराचार्य)

शास्त्रार्थ के आयोजन कर्त्ता : ब्र० राजसिंह जी आर्य (प्रधान) "केन्द्रीय आर्य युवक परिषद" दिल्ली

शास्त्रार्थ में अन्य उपस्थित विद्वान् : श्री पं० ओमप्रकाश जी शास्त्री, श्री पं० रामदयालु जी शास्त्री, श्री स्वामी यज्ञानन्द जी सरस्वती, श्री पं० प्रेमपाल जी शास्त्री।

नोट—

श्री शंकराचार्य जी ने अपनी सहायतार्थ, श्री पं० प्रेमाचार्य जी शास्त्री को उनके निवास स्थान—कमला नगर में कार भेज कर बुलवाया था, परन्तु जब तक श्री प्रेमाचार्य जी शास्त्रार्थ स्थल तक पहुंचे, तब तक शंकराचार्य की बोलती स्वयं ही बन्द हो चुकी थी।

"सम्पादक"

शास्त्रार्थ की पृष्ठभूमि

मुझे बहुत समय पूव सारे देश से जगह-जगह से सूचना आती थी कि, जगन्नाथ पुरी के शंकराचार्य जी को आर्य समाज की निन्दा किये बिना भोजन ही नहीं पचता है। वे स्थान-स्थान पर आर्य समाज को शास्त्रार्थ का चेलेञ्ज देते है। और कहते हैं कि "है कोई माई का लाल जो हमारे सामने शास्त्रार्थ को आवे ?" मैंने वार-वार उनकी इन घोषणाओं को सुनकर यह समझ लिया कि—ये महानुभाव "निरंजन देव तीर्थ" कोई गम्भीर विद्वान् और विचार शील व्यक्ति नहीं हैं।

श्री स्वामी कृष्णवोधाश्रम जी महाराज गम्भीर और बहुत सज्जन थे, पर उनको एक संकीर्ण हृदय व्यक्ति स्वामी करपात्री जी का संग दोष लग गया था, मुझको शास्त्रार्थ करते हुए सत्तर वर्ष व्यतीत हो गए।

श्री स्वामी निरंजन देव तीर्थ ने मौखिक रूप से वरेली, बीकानेर, वयाना, कैथल आदि स्थानों में अपने भाषणों में वही डींग मारी कि-- आर्य समाजियों में "है कोई माई का लाल तो हमसे शास्त्रार्थ करे"। मुझको स्थान-२ से आर्य जन दौड़े हुए बुलाने के लिए आते। मैं जब तक पहुंचता तो शंकराचार्य जी वैनतेय गरुड़ होकर उड़ जाते थे। इसलिए मैंने इस स्थिति को देखकर खुली विज्ञप्ति "शास्त्रार्थ की चुनौती स्वीकार" प्रकाशित की --जिसमें लिखा कि "जगन्नाथ पुरी के शंकराचार्य और जगत्गुरु कहलाने वाले श्री स्वामी निरंजनदेव तीर्थ यत्र तत्र आर्य समाज को शास्त्रार्थ का चैलेन्ज देते फिरते हैं, मैं उनकी चुनौती स्वीकार करता हूं। वह मेरे साथ आठ दिनों तक निरन्तर आठ विषयों पर दिल्ली या दिल्ली के निकट कहीं भी शास्त्रार्थ कर लें, और लगभग दो माह आगे की तिथियां निश्चय कर लें, जिससे शास्त्रार्थ की सूचना यत्र-तत्र भेजी जा सके आदि-२।

दूसरे मैंने यह भी लिखा कि—आद्य श्री शंकराचार्य जी महाराज का प्रान्त केरल तथा उनका जन्मस्थान भी घोर वेद विरोधी ईसाई मत से आक्रान्त हैं, उसकी तो आपको कोई चिंता है नहीं, केवल आर्य समाज को ही कोसना आपने अपना मुख्य लक्ष्य वना लिया है।

इस पत्र के उत्तर में लखनऊ से एक तार आया जो ३० दिसम्बर सन् १९७९ ई० की सायं काल मुझको प्राप्त हुआ, जिसमें लिखा था कि—"३१ दिसम्बर की दोपहर तक शास्त्रार्थ के लिए लखनऊ पहुंचो नहीं तो आपकी हार घोषित कर दी जायेगी"।

तार देने वाले का नाम लिखा था
"जगद्गुरु"

मैंने उसका उत्तर "पुरी" के पते पर दिया कि—"तार देते ही हार घोषित हो गई" शास्त्रार्थ का क्या निराला ढंग है ? शास्त्रार्थ के लिए सुरक्षित स्थान निश्चित किया जाता है, शांति व्यवस्था करने के लिए उत्तरदायित्वों का निश्चय होता है। शास्त्रार्थ का विषय व उनके कायदे-कानून तय किए जाते हैं।

इन सबको निश्चय किए बिना अचानक तार देकर इस प्रकार की वात कहना, जो अपने आप में ही यह प्रकट करती है कि शास्त्रार्थ करने का शंकराचार्य जी में कितना दम है !"

इसके उत्तर में एक लम्बा पत्र श्री मान जी का लिखा हुआ आया—जिसका लेख इतना सुन्दर है कि हमने यादगार के लिए फोटो करवा लिया। "स्वलिखितं स्वयंमपि न वाचयति" अर्थात् अपने लिखे को खुद ही न पढ़ सकना, जिसमें लिखा था कि—"हम शास्त्रार्थ करने दिल्ली क्यों आवें आप ही पुरी में क्यों न पधारें" ?

मैंने इसके उत्तर में लिखा कि—**"शास्त्रार्थ का चैलेञ्ज तो आप, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा आदि प्रान्तों में करते हैं और शास्त्रार्थ करने के लिए वहां समुद्र में बुलाते हो, ये कौनसी तुक है ?**

इसके उत्तर में एक पत्र और सुलेख युक्त आया उसका भी फोटो हमारे पास है। जिसमें लिखा है कि—**"कोई भद्र पुरुष आर्य समाज के मंच पर नहीं आयेगा।"** मैं पूछता हूं, इन शंकराचार्यजी के मत में, पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र, पं० कालूराम शास्त्री, पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, पं० अखिलानन्द कविरत्न, पं० माधवाचार्य जी आदि सब विद्वान **"अभद्र"** थे? जिन्होंने सैकड़ों शास्त्रार्थ आर्य समाज के मंच पर ही किये। क्या केवल एक निरञ्जन देव जी ही **"भद्र पुरुष"** हैं ?

कुछ समय व्यतीत होने के पश्चात् विज्ञापनों द्वारा पता चला कि दिल्ली में निरञ्जन देव जी महाराज १५ से २२ दिसम्बर १९८० ई० तक पौराणिकों के एक यज्ञ में आ रहे हैं। हमारे कर्मठ कार्य कर्त्ता ब्रह्मचारी, राजसिंह जी आर्य (प्रधान, आर्य युवक परिषद दिल्ली) मेरे पास आए, और इसी समय पर शास्त्रार्थ के आयोजन करने हेतु मुझसे स्वीकृति ले गये। ब्र० राजसिंह जी ने नवम्बर मास में ही सारे दिल्ली शहर में बड़े-२ विज्ञापन शास्त्रार्थ करने हेतु लगवा दिए। एवं श्री करपात्री जी को व निरञ्जनदेव जी को भी सूचना दे दी। उन शंकराचार्यों का तो कोई उत्तर आया नहीं। पत्रों व विज्ञापनों में जवाब के लिए १० दिसम्बर का समय नियत्त किया गया था, कोई जवाब न आने पर पुनः एक विज्ञापन उनकी करारी हार का लगवा दिया और अपनी सब्जी मण्डी समाज का वर्षिकोत्सव भी उसी समय पर रख लिया गया, उत्सव में श्री पं० रामदयालु जी शास्त्री, अलीगढ़ से तथा श्री पं० ओम प्रकाश जी शास्त्री को खतौली से आमन्त्रित कर लिया, एवं अन्य भी अनेकों उपदेशक-भजनोपदेशक बुलवा लिए गये।

ब्र० राजसिंह जी के इन विज्ञापनों को देखकर "सनातन धर्म शास्त्रार्थ मण्डल दिल्ली" की ओर से एक विज्ञापन निकाला गया कि—**'हम शास्त्रार्थ के लिए तैयार हैं'** परन्तु इस विज्ञापन पर पं० प्रेमाचार्य शास्त्री का नाम था। शंकराचार्य का नाम नहीं था। जिससे साफ़ पता लग गया कि श्री शंकराचार्य की हार हो गई। वे शास्त्रार्थ नहीं करना चाहते।

इस विज्ञापन के उत्तर में मैंने सूचना भिजवाई कि—**"इस समय तो हम एक जगत् गुरु नामधारी के साथ शास्त्रार्थ करने आये हैं, यदि जगत्गुरु नामधारी किसी प्रकार भी शास्त्रार्थ न कर सकें तो, श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी को जगत्गुरु घोषित कर दें, एवं पुरी की गद्दी उन्हें सौंप दें, तब फिर हम उनसे ही शास्त्रार्थ कर लेंगे।"**

इसका कोई उत्तर हमारे पास नहीं आया, और १७ दिसम्बर को स्वामी निरञ्जन देव जी उस यज्ञ में आ गये और उसी दिन रात्रि के व्याख्यान में अपनी वही पुरानी डींग मार दी···**"है कोई माई का लाल जो हमारे साथ शास्त्रार्थ करे, हम शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं, परन्तु आर्य समाज के मंच पर हम नहीं जायेंगे।"** अगले दिन १८ दिसम्बर को प्रातः काल ही श्री ब्र० राजसिंह जी व श्री प्रेमपाल जी शास्त्री श्री जगत्गुरु के पास पहुंच गये। और उनको एक पत्र दिया जिसमें लिखा गया था कि—**"यदि आप अपनी रात्रि को घोषणा पर दृढ़ हैं तथा शास्त्रार्थ करने को तैयार हैं, और आर्य समाज के पण्डाल में आने को तैयार नहीं है तो शास्त्रार्थ के लिए स्थान व समय बतला दीजिए।"** दोनों आर्य पं० लगभग दो घण्टे तक जमे रहे, कि हमारा पत्र लेकर उसकी प्राप्ति के हस्ताक्षर कर दीजिए। उत्तर बाद में भेज देना। परन्तु उन जगत्गुरु नामधारी ने न तो वह पत्र लिया, और न ही शास्त्रार्थ विषयक कोई बात की बल्कि झल्ला कर कहा—**"मैं तुम्हारे बाप का नौकर नहीं हूं।"** जिससे साफ़ जाहिर हो गया कि वो शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते। दोनों आर्य महानुभाव निराश लौट आये, १८ दिसम्बर की रात्रि को प्रचार करने के बाद सभी विद्वान अपनी-२ जगह पर विश्रामार्थ लेट गये। लगभग साढ़े दस बजे रात्रि को पता चला कि उन्होंने वही अपनी पुरानी डींग फिर हांकी है।

उस समय ब्र० राजसिंह आदि उनके साथी पौराणिकों की उस सभा में मौजूद थे, उन्होंने वहीं खड़े होकर घोषणा कर दी कि..."आप शास्त्रार्थ के लिए तैयार रहें हम अभी अपने विद्वानों को बुलाते हैं।" इस पर जगत्गुरु नामधारी ने कहा कि ठीक है—हम पन्द्रह मिनट या आधा घण्टा प्रतीक्षा करेंगे, यदि कोई आ गया तो रात्री के तीन वजे तक शास्त्रार्थ करते रहेंगे।" ब्र० राज सिंह जी को तो पौराणिकों ने पुलिस की हिरासत में रखवा दिया, परन्तु उनके साथी दौड़े हुए हमारे पास आ गये। हम तुरन्त अपनी मनों पुस्तकें साथ ले सभी विद्वान...पौराणिकों के पास जा धमके। हम पौराणिकों के पण्डाल में पहुंचे ही थे कि, जगतगुरु नामधारी ये घोषणा कर रहे थे, कि आर्य समाजियों के पास कोई शास्त्रार्थ करने वाला नहीं है। इसलिए सभा विसर्जित की जाती है। मैंने गर्ज कर कहा...हम लोग आ गये हैं, कोई न जावे, जगत् गुरु जी के कथनानुसार शास्त्रार्थ रात्रि के तीन बजे तक चलेगा। और वहां कोई दूसरा मंच न देख हम लोग जगत् गुरु के मंच पर ही जा धमके। जगत् गुरु ऊंचे आसन पर विराजमान थे, हम लोग मंच पर ही नीचे वैठ गये। मैंने निरञ्जन देव जी से पूछा—कि शास्त्रार्थ आरम्भ किया जावे? उन्होंने स्वीकृति देते हुए पूछा कि कितना-कितना समय बोलना है? मैंने कहा उभय पक्ष से दस-दस मिनट वोला जाया करेगा। घण्टी द्वारा समय विभाजन हेतु निर्देश के लिए पौराणिकों ने अपना ही व्यक्ति वैठा दिया। पश्चात् क्या हुआ? इस शास्त्रार्थ में पढ़िये!

वैदिक धर्म का—

"अमर स्वामी सरस्वती"



शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री अमर स्वामी जी महाराज—

श्री आचार्य जी ! आप ईश्वर का जन्म मानते हैं, परन्तु वेदों से सिद्ध है कि—ईश्वर अजन्मा है, निराकार है, और सदा निराकार ही रहता है। देखिये यजुर्वेद के अध्याय ४०, मन्त्र ८, में कहा है—**"सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम-स्नाविरं शुद्धमपाप विद्धम्"** अर्थात् वह परमेश्वर सर्वव्यापक तथा **"अकायम्"** काया अर्थात् शरीर रहित है। और देखिये यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में ही मन्त्र ४ में कहा है—**अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्।** अर्थात् वह परमेश्वर कांपता और चलता नहीं है। इसी जगह पर अगले मन्त्र ५ में कहा है कि—**"तदेजति तन्नैजतितद्दूरे तद्वन्तिके** ... ... " अर्थात् वह परमेश्वर संसार को चलाता है, स्वयं नही चलता है, वह निकट भी है, वह दूर भी है, सब जगत के भीतर और बाहर है। यही बात गीता में भी कही गई हैं, देखिये···**"बहिरन्तश्च भूतानां, अचरंचर मेव च।** ·········" अर्थात् वह परमेश्वर सबके भीतर व बाहर है, उसको जन्म लेने और अवतार धारण करके आने की कोई आवश्यकता नहीं है। उसने अब तक कभी जन्म नहीं लिया है। आप ईश्वर के अवतार का कारण धर्मोद्धार करना और भूमि का भार उतारना मानते हैं, पर जिनको आप ईश्वर का अवतार कहते हैं उनके जन्म के **"कारण"** तो—आपके पुराणों में तीन बताये गये हैं। १. **वरदान**, २. **शाप**, ३. **कर्मफल भोग**, इन तीनों के प्रमाण देता हूं, सुनिये—और इनका खण्डन करके ईश्वर का जन्म सिद्ध करिये—

१. भगवान विष्णु को अपना "वरदान" पूरा करने के लिए अवतार लेना पड़ा—

स्वायम्भुव राजा और शतरूपा रानी ने विष्णु भगवान से यह वर मांगा कि आप हमारे पुत्र बनें, विष्णु भगवान ने तीन जन्म तक उनका पुत्र बनना स्वीकार कर लिया, इसी से राम का अवतार हुआ, इसी से कृष्ण का अवतार हुआ तथा एक और होगा जिसका नाम कल्कि अवतार होगा। ये जन्म सब **"वरदान"** पूरा करने के लिए हुए। ऐसा **"पद्म पुराण उत्तर खण्ड अध्याय २६९ श्लोक १ से १२"** तक में वर्णन है। जिससे पता चलता है कि ये अवतार भूमि का भार उतारने व धर्मोद्धार के लिए नहीं हुए बल्कि अपना **"वरदान"** पूरा करने के लिए हुए।

२. भगवान विष्णु को "शाप" दिये जाने पर अवतार लेना पड़ा—

वृन्दा से विष्णु जी ने व्यभिचार किया, और उसके पति (जालन्धर) का रूप बनाकर वृन्दा को धोखा दिया, भेद खुलने पर वृन्दा ने विष्णु को **"शाप"** दिया कि जैसे तुमने मेरे साथ छल किया है, इसी प्रकार तेरी पत्नी के साथ भी कोई छल करेगा, इस शाप से ही विष्णु को राम बनना पड़ा, और शाप से ही सीता का अपहरण हुआ। यह वर्णन भी **"पद्म पुराण के उत्तर खण्ड अध्याय १०५"** में वर्णित है।

अब दूसरा **"शाप"** सुनिये जो आपके ही मान्य ग्रन्थ **"शिव पुराण श्री रुद्र संहिता"** में वर्णित है कि, एक बार नारद ने किसी स्वयंवर में जाने और कन्या को प्राप्त करने के लिए विष्णु से अपना चेहरा सुन्दर बना देने को कहा। विष्णु ने सुन्दर न बनाकर नारद जी का मुख बन्दर का सा बना दिया। और विष्णु जी स्वयं सुन्दर बनकर उस स्वयंबर में जा विराजे, और कन्या को विवाह कर ले आये। पश्चात् नारद ने अपना मुख देखा जो बन्दर का सा था, तो क्रुद्ध होकर विष्णु को शाप दे दिया. उस शाप से राम के रूप में विष्णु को जन्म लेना पड़ा, और शाप के वश सीता का अपहरण हुआ। इस प्रकार भृगु के शाप की कथा का वर्णन है, जिसके कारण विष्णु के जन्म हुए। "मैंने तीसरा कारण अवतार लेने का **"कर्म फल"** बताया था, सो वह भी सुनिये—

३. भगवान विष्णु को "कर्म फल" के कारण जन्म धारण करना पड़ा—

"ब्रह्मायेन कुलाल वन्नियमितो, ब्रह्माण्ड भाण्डोदरे........ " आदि विस्तृत पाठ आपके **"गरुड़ पुराण पूर्वखण्ड आचार काण्ड'** में मौजूद है। जिसमें कहा है कि—ब्रह्मा, विष्णु व शिव को केवल **"कर्म"** के कारण सब कुछ करना पड़ा, अतः साफ पता चलता है कि विष्णु जी के जन्म के ये तीन कारण आपके पुराणों में बतलाए गए हैं, पृथ्वी का भार उतारना या धर्मोद्धार इनके जन्मों का कारण नहीं है। टर्न टन टनऽऽऽऽ.........

श्री स्वामी निरञ्जन देव जी तीर्थ—

"सपर्यगाच्छुक्रमकायम्........ में **'अकायम्'** का अर्थ यदि शरीर लिया जाएगा तो, **"अव्रणम्"** और **"अस्नाविरम्"** यह दो पद व्यर्थ हो जायेंगे। वेद में कहा है कि, वह शरीर धारण कर लेता है। तब चलता है, और शरीर रहित होता है तो नहीं चलता है। **"तदेजति तन्नैजति** ...." इस मन्त्र का स्वामी दयानन्द जी ने भी यही अर्थ किया है। कि वह चलता है, और वह नहीं चलता है। दोनों विपरीत गुण उसमें हैं।

भगवान अवतार धारण करते हैं, यह वेद में स्पष्ट कहा है देखिए—**'प्रजापतिश्चरतिगर्भे अन्तंजायेमानो बहुधा विजायते'**। इस मन्त्र में कहा है कि प्रजापति परमात्मा गर्भमें विचरण करता है, जन्म लेता है, और बहुत प्रकार से जन्म लेता है। स्वायम्भुव राजा और शतरूपा रानी की कथा इस प्रकार नहीं, जिस प्रकार इन्होंने बताई है। उसमें यह नहीं है कि— उन्होंने कहा हो कि आप हमारे पुत्र बनो। बल्कि, वहां यह कहा है कि, हमको आप जैसा पुत्र प्राप्त हो, भगवान ने कहा, मेरे जैसा तो मैं हूं ही, इसलिए भगवान ने स्वयं जन्म लिया।

वृन्दा की कथा से तो यह सिद्ध होता है कि—पतिव्रता की बात भगवान को भी माननी पड़ती है, पतिव्रता भगवान से भी बड़ी होती है, वृन्दा पतिव्रता थी, उसका पति जालन्धर दुराचारी था। जब तक वृन्दा का पतिव्रत धर्म भङ्ग न हो तब तक उसका पति मर नहीं सकता था, इसलिए भगवान ने उसका पतिव्रत धर्म भंग किया। (जगत् गुरु जी ने अपना बोलने का समय पूरा किए बिना ही अपना व्याख्यान बन्द कर दिया)

श्री अमर स्वामी जी महाराज—

"अकायम्" का अर्थ शरीर रहित ही है, इस अर्थ से **"अव्रणम्"** और **"अस्नाविरम्"** यह दो पद क्यों व्यर्थ हो जायेंगे? कैसे व्यर्थ हो जायेंगे? यह आचार्य जी ने नहीं बतलाया, केवल कहने मात्र से इनको व्यर्थ नहीं माना जा सकता और मेरा दावा है कि दोनों शब्द कदापि व्यर्थ नहीं होते, बल्कि यह शब्द शरीर रहित होने के पोषक हैं। मन्त्र कहता है कि...वह शरीर रहित क्योंकि...उसमें छिद्र, जख्म आदि नहीं होता है। वह नस-नाड़ी के बन्धन से रहित है। इसलिए वह शरीर रहित है।

"तदेजति तन्नैजति........." का अर्थ स्वामी दयानन्द जी महाराज ने कहीं पर भी यह नहीं किया कि, वह चलता भी है, और नहीं भी चलता! आचार्य जी को पता होना चाहिए कि दो विरोधी गुण एक गुणी में नहीं होते।

"तदेजति" में **"अन्तर्हित"** **"णित"** है, जिससे अर्थ हुआ कि वह चलाता है, चलता नहीं है। वैशेषिक दर्शन में कहा है कि...**"उत्पेक्षण मवक्षेपण माकुंचन प्रसारणं गमन मिति कर्माणि"** अर्थात् ऊपर जाना, नीचे आना, सिकुड़ना, फैलना, और इधर-उधर घूमना ये पांच प्रकार के कर्म है।

"प्रजापतिश्चरति गर्भे .... " इसका यह अर्थ नहीं है कि परमात्मा गर्भ में विचरण करता है, गर्भस्थ बालक विचरण करेगा तो गर्भिणी मर जायेगी। बच नहीं सकती है। परमेश्वर का गर्भ में आना-जाना बन ही नहीं सकता, क्योंकि आवे-जावे तो वह! जो वहां पहले विद्यमान न हो, वह तो पहले ही सर्वत्र विद्यमान हैं। देखिए वेद में कहा है कि...**"तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः**........." अर्थात् वह परमेश्वर सबके भीतर है और सबके बाहर

है। वह सर्वत्र विराजमान है। गीता में भी कहा है कि—"**बहिरन्तश्च भूतानां अचरं चर मेव च** ...." अर्थात् वह परमेश्वर सबके अन्दर भी है और बाहर भी है। आपने जो मन्त्र अवतारवाद के पक्ष में प्रस्तुत किया है "**प्रजापतिश्च गर्भे**........" इसमें तो अवतारवाद की गन्ध भी नहीं है, उसमें "**जायमान**" नहीं "**अजायमानः**" कहा है। उसका अर्थ है, जन्म न लेता हुआ, महीधर जी ने भी "**अजायमानः**" पद मान कर उसका अर्थ "**अनुपद्यमानः**" उत्पन्न न होता हुआ ही किया है। योग दर्शन में देखिए ईश्वर का लक्षण ! पतञ्जलि ऋषि लिखते हैं कि – "**क्लेश कर्म विपाकाशैर परामृष्ठः पुरुषः विशेष ईश्वरः**" अर्थात् क्लेश, कर्म, कर्मफल, वासना रहित विशेष पुरुष ईश्वर है। अब कहिए आप ! आचार्य जी !! आपने विष्णु पर परस्त्रीगमन (व्यभिचार) का दोष लगा दिया। जालन्धर को अन्य किसी प्रकार से मारते, उसे निकम्मा कर देते। स्वयं पतिव्रता का धर्म नष्ट क्यों किया ? यह पाप क्यों किया ? जबकि ईश्वर तो "**अपाप**" है। अर्थात् पाप रहित है।

नारद और भृगु के शाप तथा कर्मफल से "**विष्णुर्येनदशावतार गहनेक्षिप्तो महासंकटे**" विष्णु कर्मफल भोगने के लिए दश अवतार ग्रहण करके महासंकट में पड़े, इसको तो आपने छुआ तक नहीं—और टर्न टन टन टन......

श्री स्वामी निरञ्जन देव जी तीर्थ—

जालन्धर बहुत व्यभिचारी था, उसको मारना आवश्यक था, बहुत स्त्रियों से व्यभिचार करने वाले को मारने के लिए भगवान ने एक स्त्री का पतिव्रत धर्म भंग किया तो ठीक किया, उस पापी दुरात्मा को वैसे मारा ही नहीं जा सकता था, पतिव्रत के धर्म और उसकी शक्ति को भगवान ने माना। अर्थात् भगवान को भी उसके सामने......... (भक्त जनों द्वारा वाक्य पूरा करना)...... ...झुकना पड़ा।

हमारे धर्म में पतिव्रतधर्म और पतिव्रता की बड़ी महिमा और शक्ति मानी जाती है। यजुर्वेद के मन्त्र "**प्रजापतिश्चरति गर्भे**........" वाले मन्त्र में "**विजायते**" पद आया है। जो स्पष्ट कहता है कि भगवान बहुत योनियों में अवतार लेते हैं। अर्थात् भगवान के बहुत प्रकार के अवतार होते हैं। "**विजायते**" ! "**विजायते**" !! "**विजायते**" !!! (इसी "**विजायते**" पद को आचार्य द्वारा अपने हाथों को भाँति-२ से नचा-२ कर आँखों को मटका-२ कर एवं मुह से भाँति-२ के हाव-भाव बनाकर व्यक्त करते हुए बोलना) जनता में हंसी.........

नोट—

इस प्रकार का नाटक कोई विद्वान् या गम्भीर विचारक, साधु नहीं कर सकता, जैसे जगत् गुरु ने किया, जिसमें उन्होंने कथावाचको, व पौराणिक प्रपञ्चियों, बहुरूपियों को भी मात कर दिया। जिससे साफ उनके व्यक्तित्व व उनकी विद्वता का पता चल गया कि जगत् गुरु कहलाने वाले कितने पानी में हैं।"

श्री स्वामी निरञ्जन देव जी तीर्थ—

मैं पूछता हूं एक ही धातु के दो अर्थ कैसे हो जायेंगे ? एक जगह जन्म न लेना, और एक जगह अपने गुणों और कार्यों से प्रकट होना, यह दो अर्थ कैसे हो जायेंगे ? उसका यही अर्थ है कि · भगवान जन्म लेते हैं। और बहुत योनियों में जन्म लेते हैं, "**अकायम्**" का अर्थ यह है कि...ईश्वर के स्थूल, सूक्ष्म, और कारण तीनों शरीर नहीं होते हैं। वह तीनों शरीरों से रहित है। (समय समाप्ति से पहले ही व्यक्तव्य समाप्त किया)

श्री अमर स्वामी जी महाराज—

धन्य हो आचार्य जी ! आपने "**अकायम्**" का अर्थ "**तीनों प्रकार के शरीरों रहित**" किया। परमात्मा आपको हजार वर्ष की आयु प्रदान करे। आर्यों द्वारा..... **बोलो वैदिक धर्म की जय**.........(पौराणिक दल में मुर्दनी का छा जाना.........) एवं अमर स्वामी जी महाराज द्वारा नारे बाजी को बन्द कराना।

हां ! तो आचार्य जी अब शेष बात सुनिये !! "**अजायमान**" में "**अ**" नकारार्थ में है। इसलिए इसका ३८ ;

जन्म नहीं लेता। "विजायते" में "वि" उपसर्ग विशेष अर्थ में है। "उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यः प्रतीयते………" अर्थात् उपसर्ग से धातु का अर्थ बलात् दूसरा हो जाता है। सभी विद्वानों को दूसरा अर्थ प्रतीत होता है, अर्थ यह है कि परमेश्वर जन्म नहीं लेता है। और बिना जन्म लिए बिना शरीर धारण किए अपने गुणों और अपनी अद्‌भुत रचनाओं से बहुत प्रकार से सदा ही रहता है। मन्त्र के अगले भाग में कहा है कि…"तस्य यो परिपश्यन्तिधीराः" उसके स्वरूप को बुद्धिमान लोग देखते हैं, और आचार्य जी कहते हैं कि "अनेक शरीर धारण करता है और जन्म लेता है" अगर वह शरीर धारी हो जाता है तो उसको बुद्धिमान ही क्यों देखते हैं? मूर्ख भी देखेंगे! गधे, घोड़े, बैल, कुत्ते, बिल्ली आदि सब ही देखेंगे? परन्तु उपनिषद में भी कहा है कि—उसे बुद्धिमान ही देखते हैं, यथा—"दृश्यते त्वग्रया बुध्या सूक्ष्मया सूक्ष्म दर्शिभिः"। अर्थात् सूक्ष्म से सूक्ष्म देखने वाले मनुष्यों की सूक्ष्म बुद्धि से वह परमेश्वर देखा जाता है, विद्वान और बुद्धिमान लोग उसके गुणों और उसकी कृतियों को देखते तथा उसको बुद्धि से अनुभव करते हैं। वह कभी जन्म नहीं लेता मैंने अवतार के तीन कारण पुराणों से बताए, १. वरदान, २. शाप, ३. कर्मफल, मुझे अफ़सोस है, आचार्य जी ने इन तीनों को छुआ तक भी नहीं। मैंने श्री राम जी का वचन जो सीता हरण के बाद श्री रामचन्द्र जी ने कहा कि—"न मद्विधो दुष्कृत कर्मकारी, मन्ये द्वितीयोऽस्ति वसुन्धरायाम्………" सुनाया था, कि रामचन्द्र जी कहते हैं कि—"मैंने निश्चय ही पूर्व जन्म में पापकर्म किए थे, उन पापों का फल यह है कि मैं निरन्तर एक दुःख से दूसरे दुःख में फंसता जाता हूं।" अर्थात् श्री रामचन्द्र जी महाराज कभी झूठ नहीं बोलते थे, साफ ज़ाहिर है कि ये सब कुछ उनके "कर्मफल" के कारण हुआ। महाकवि तुलसी दासजी ने भी इन भावों को इस प्रकार वर्णन किया है कि—

को केहिकर सुख दुःखकर दाता। निज निज कर्म भोग सब भ्राता॥

इससे साफ पता चलता है कि—श्री राम जी के "कर्मफलों" के ही ये भोग थे। अब मैं इस पर कुछ प्रमाण देता हूं—

उपनिषदों में कहा है—

"अपाणि पादो जवनो ग्रहीता पश्यत्य चक्षुः स श्रणोत्य कर्णः……।"

एवं

"अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथा रसं नित्यमगन्ध वच्च यत्……।"

और भी बहुत से प्रमाण मेरे पास मौजूद हैं जिसमें साफ शब्दों में कहा गया है कि…वह परमेश्वर—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध से रहित है। वह सर्वत्र विद्यमान है, सर्वज्ञ है, निराकार है। उसे जन्म लेने की कोई जरूरत नहीं है। मेरे सारे प्रश्न ज्यों के त्यों रखखे हुए हैं, एक का जवाब आचार्य जी नहीं दे रहे। अपने वाक्यों की पुष्टी अपने भक्त जनों से करवा रहे हैं, मैंने भी सारी आयु भर बड़े-२ दिग्गज पण्डितों के साथ शास्त्रार्थ किए, पर आचार्य जी का निराला ही ढंग बोलने का देखा, कि हर बात का अन्तिम वाक्य अपने भक्तजनों से ही कहलवाते हैं। क्या इससे आचार्य जी को शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त हो जाएगी? (जनता में हंसी………) तथा मैं…… टन…टन…टन…… अच्छा फिर सही………

श्री स्वामी निरंजन देव जी तीर्थ—

आप "निग्रह स्थान" में आ गए हैं, इसलिए शास्त्रार्थ समाप्त हो जाना चाहिये।

श्री अमर स्वामी जी महाराज—

(ऊंचे स्वर से) किस "निग्रह स्थान" में आ गया हूं?

श्री स्वामी निरंजन देव जी तीर्थ—

(गर्ज कर………बड़े आवेश में………) निग्रह स्थान में आ गए! कौन सा क्या? "अजायमानः" में "अ" नकारार्थ में नहीं है। वहां "अट्" का आगम हो गया है, यदि "अ" उपसर्ग सिद्ध हो जायेगा तो मैं अपनी गद्दी छोड़ दूंगा।

श्री अमर स्वामी जी महाराज—

मैंने नहीं कहा कि —"अ" उपसर्ग है पर नकारार्थ में अवश्य हैं। और आप "निग्रह स्थान" के लक्षण जानते ही नहीं तभी यह कह रहे हो, न्याय दर्शन में...... ..(बीच में)

श्री स्वामी निरंजन देव जी तीर्थ—

आप बोलते जाते हैं, आपको पता होना चाहिए मैं इस सभा का अध्यक्ष भी हूं, इसलिए घोषणा करता हूं "शास्त्रार्थ समाप्त"।

श्री अमर स्वामी जी महाराज—

(उच्च स्वर में......... आचार्य जी! साफ क्यों नहीं कहते कि अब आपके पास मशाला समाप्त हो गया... ......(स्वामी निरंञ्जन देव जी का अपने भक्तों को उठने का संकेत करना) सभी भक्त जन.........हू! हू!! हू!!! करते हुए उछलने लगे। और सभा विसर्जित हो गई।

नोट—

इसी बीच पौराणिक दल के कई एक गुण्डे मंच पर आए और श्री पं० ओम प्रकाश जी शास्त्री "विद्याभास्कर" जी को व श्री पं० प्रेमपाल जी शास्त्री जी को पकड़ कर मंच के पीछे घसीटने लगे, व हाथा-पाई करने लगे। इसी बीच—

श्री अमर स्वामी जी महाराज का जबर्दस्त गर्जन—

उच्च स्वर के साथ......यह इन पौराणिकों का अन्तिम अस्त्र है, यही इन लोगों ने काशी में ऋषि दयानन्द के साथ किया था, ये लोग जहां हारते हैं वहां इसी प्रकार की हुल्लड़ बाजी व हाथा-पाई करते हैं। मैं इससे साफ़ शब्दों में ऐलान करता हूं कि जगत् गुरु में दम हो तो शास्त्रार्थ करे। पर उनके पास सामग्री समाप्त है जो इनकी हार का जबर्दस्त सबूत है। आप लोग बिल्कुल न घबरायें।

पुलिस का आगमन—

उसी समय पुलिस स्टेज के पास आ गई, और झगड़ा नही होने दिया। आर्य समाजी युवकों ने वैदिक जय घोषों से आकाश गुंजा दिया।

हार गये जी हार गये! जगत् गुरुजी हार गये!!

वैदिक धर्म की—जय।

अमर स्वामी जी महाराज की—जय।

अमर स्वामी जी महाराज—जिन्दावाद! जिन्दावाद!!

नारे लगाते हुए आर्य जनों ने शास्त्रार्थ स्थल से आर्य समाज स्थल तक सारी गलियां जय-जय कार से आर्य युवकों ने गुंजा दी और जगत् गुरु जी की हार की सर्वत्र घोषणा करते हुए स्व: स्थान पर आकर पूज्य पाद अमर स्वामी जी महाराज को फूलों से लाद दिया व स्वामी जी महाराज पर नोटों की वर्षा की।

इस शास्त्रार्थ में आर्य समाज की महती विजय हुई, बहुत ही अच्छा प्रभाव आर्य समाज का रहा यह एक "ऐतिहासिक" शास्त्रार्थ है।

श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री का आगमन—

शास्त्रार्थ की समाप्ति पर जब सभा विसर्जित हो रही थी तब कार में श्री पण्डित प्रेमाचार्य जी शास्त्री जो "स्वर्गीय श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री" के सुपुत्र हैं, को उतरते देखा गया, पता चला कि नामधारी जगत् गुरु ने अपनी दुर्गति बचाने के लिए उनको बुलाया था, परन्तु समय की बात है, कि जगत् गुरु की दुर्गति उनके पहुंचने से पहले ही हो चुकी थी।"

"सम्पादक"

नोट—

इस शास्त्रार्थ में पुराणों के जो-जो प्रकरण आए हैं, उनके बारे में विस्तृत प्रमाण आगे परिशिष्ठ भाग में पढ़िए। संक्षेप में यहां भी निर्देश मात्र आ गये हैं।

"जगत् गुरु शंकराचार्य कहलाने वाले" स्वामी निरंञ्जन देव जी तीर्थ मेरे दिये प्रमाणों का खण्डन करने की हिम्मत रखते हों तो उन्हें मेरा खुला चेलेंन्ज है, वो कभी भी निम्न विषयों पर शास्त्रार्थ करें, मैं हर समय तैयार हूं। १. अवतारवाद २. मूर्तिपूजा ३. मृतक श्राद्ध ४. वर्ण व्यवस्था ५. नियोग और विधवा विवाह ६. द्वताद्वैत ७. भागवत् आदि पुराणों की वैदिकता आदि-२ जिस भी विषय पर (जिसमें हमारे व उनके) मत भेद हैं जब चाहें शास्त्रार्थ कर लें। परन्तु मुझे पता है कि—"जान बची और लाखों पाये" वाली बात बिचारों के गले पड़ गई थी जो मुश्किल से ही उनकी जान छूटी, मैं यह भी जानता हूं कि—वो इस जन्म में तो क्या जन्म जन्मान्तरों में भी मेरे अकाट्य प्रमाणों व ठोस दलीलों का कोई जवाब कदापि न दे सकेंगे।

'अमर स्वामी सरस्वती"

(इस शास्त्रार्थ का परिशिष्ठ-भाग)

अगर जगत् गुरु नामधारी शंकराचार्य द्वारा शास्त्रार्थ में विघ्न न होता ?—

सज्जनों! अगर ये गड़बड़ पौराणिकों की ओर से न होती, और शास्त्रार्थ शान्ति पूर्वक ढंग से चलता तो जो-जो प्रसंग शास्त्रार्थ में आए थे मैं उनको पूर्ण विस्तार से कहता, जिससे पौराणिकों की कलई अच्छी प्रकार खुलती, अब मैं उन प्रसंगों पर प्रमाण सहित यहां लिख रहा हूं। आप पढ़िए, और जानकारी हासिल करिए।

१- "वरदान" पूरा करने के लिए विष्णु का अवतार लेना—

स्वायम्भुवो मनुः पूर्वं, द्वादशार्णं महामनुम जगाम गोतमीतीरे, नैमिषे विमले शुभे ॥१॥ तेन वर्ष सहस्त्रेण, पूजितः कमलापतिः। मत्तोवरं वृणीष्वेति, प्राहतं भगवान्हरिः ॥ ततः प्रोवाच हर्षेण, मनुः स्वायम्भुवो हरिः ॥२॥, मनुरुवाच— पुत्रत्वं भजदेवेश, त्रीणि जन्मानि चाच्युत। त्वां पुत्र लालसत्वेन, भजामि पुरुषोत्तमम् ॥३॥ विष्णुरुवाच—भविष्यति नृपश्रेष्ठ, यत्तेमनसि कांक्षितम्। ममैवा च महाप्रीतिस्तव—पुत्रत्वहेतवे ॥५॥ रूद्र उवाच—एवं दत्वा वरं तस्मै, तत्रैवान्तर्दधे हरिः। अस्याभूत् प्रथमं जन्म, मनोः स्वायम्भुवस्य च ॥८॥ रघूणामन्यवे पूर्वं राजा दशरथो ह्यभूत। द्वितीयो वासुदेवोऽभूद्वृष्णो नामन्यवे विभुः ॥९॥ कलेर्दिव्य सहस्त्राब्दे, प्रमाणस्यान्त्यपादके। सम्भल ग्रास के मुख्ये, ब्राह्मणः सं जनिष्यति ॥१०॥ कौशिल्या समभूत्पत्नी राज्ञो दशरथस्य हि। यदोर्वंशस्य सेवार्थं, देवकी नाम विश्रुता ॥११॥ हरिगुप्तस्यविप्रस्य, भार्यादेव प्रभा पुनः। एव मातृत्वमापन्ना, त्रीणि जन्मानि शार्ङ्गिणः ॥१२॥

"पद्म पुराण उत्तर खण्ड अध्याय २६९, आनन्दाश्रम प्रैस पूना"

भावार्थ—

नैमिषारण्य में गौतमी नदी के किनारे स्वायम्भुव मनु ने "विष्णु" का जप किया ॥१॥ उससे सहस्त्र वर्ष में पूजित हुए विष्णु ने प्रसन्न होकर मनु से कहा कि—मुझसे वर माँगो, तब हर्षित होकर मनु ने विष्णु से यह वर माँगा ॥२॥ हे देवेश अच्युत! आप तीन जन्म तक मेरे पुत्र बनो। विष्णु जी ने कहा हे राजन् जो तुम चाहते हो वही होगा, आपका पुत्र बनने में मेरी बहुत प्रीति है ॥५-८॥ ऐसा कह कर विष्णु जी अन्तर्धान हो गए स्वायम्भुव मनु का प्रथम जन्म—राजा दशरथ और दूसरा वासुदेव का हुआ ॥८-९॥ तीसरा जन्म सम्भल ग्राम में एक ब्राह्मण रूप में होगा "शतरूपा रानी" दशरथ की पत्नी कौशल्या का और यदुवंश में देवकी रूप में हुआ। तीसरे जन्म में—हरिगुप्त ब्राह्मण की पत्नी देव प्रभा होगी।

इस प्रकार विष्णु की तीन जन्म में तीन मातायें हुई। और विष्णु के राम तथा कृष्ण के रूप में दो जन्म हो चुके, जों केवल अपना "वरदान" पूरा करने के लिये हुए न कि भूमि या भार उतारने या धर्मोद्धार के लिए!

२- वृन्दा के शाप के कारण विष्णु का अवतार लेना—

विष्णु जालन्धरं गत्वा, तद्दैत्य पुट भेदनम्। पातिव्रतस्य भङ्गाय, वृन्दा याश्चकरोन्मतिम् ॥१॥ वृन्दामालिंग्य तद्वक्त्रं चुचुम्बे प्रीतिमानसः ॥२५॥ रेमे तदैवन् मध्यस्थो, तद्युक्ता बहु वासरम् ॥२६॥ कदाचित् सुरतस्यान्ते, दृष्ट्वा विष्णुं तमेवहि। निर्भर्त्स्यं क्रोध संयुक्ता, वृन्दा वचनमब्रवीत् ॥२७॥ धिक् तवेदं हरेशीलं, परदाराभिगामिनः। ज्ञातोऽसित्वं मया सम्यङ् माया प्रच्छन्न तापसः ॥२८॥ त्वया मायया द्वा स्थौ, स्वकीयौ दर्शितौमम्। तावेत राक्षसी भूत्वा, भार्यां तव विनेष्यतः ॥२९॥ त्वं चापि भार्या दुःखार्तो, वने कपि सहायवान् ॥३०॥

"पद्म पुराण उत्तर खण्ड ६, अध्याय १०५, श्लोक १ व २५ से ३०"

भावार्थ—

विष्णु ने वृन्दा के पति "जालन्धर" का रूप वना कर वृन्दा के पतिव्रत धर्म को भंग करने का विचार किया ॥१॥ विष्णु ने वृन्दा का आलिंगन कर उसके मुख को चूमा ॥२५॥ वृन्दा भी उसके साथ वहुत दिनों तक रमण करती रही ॥२६॥ एक वार सम्भोग के अन्त में उस विष्णु को ही जो उसके पति के रूप में था वृन्दा ने पहचान लिया, तव क्रोध युक्त होकर विष्णु की निन्दा करती हुई बोली ॥२७॥हे ? पर दारा से गमन करने वाले तुम्हारे इस शील हरण वाले स्वभाव को धिक्कार है, मैं तुमको अच्छे प्रकार जान गई, छली, कपटी, मायावी, (झूठे) तपस्वी हो ॥२८॥ तुमने जो मुझको दो रूप माया से दिखाये ये ही दोनों राक्षस वनकर तुम्हारी पत्नी को हरण करेंगे ॥२९॥ और तुम भी अपनी पत्नी के वियोग में दुःखी होकर वन में वन्दरों की सहायता लेने वाले वनकर दुःखी होओगे ॥३०॥

अहं मोहं यथा नीता त्वया माया तपस्विना। तथा तव वधूं माया तपस्वी कोऽपि नेष्यति ॥५५॥

"पद्म पुराण उत्तर खण्ड अध्याय ६"

अर्थात्—

जैसे तुझ छलयुक्त तपस्वी ने मुझको अज्ञान में डाला है, ऐसे ही तुम्हारी पत्नी को कोई कपटी तपस्वी हरण करके ले जायेगा। "इसी शाप से राम का जन्म और सीता का हरण हुआ।"

(क) नारद के शाप के कारण विष्णु का अवतार लेना—

नारद ने विष्णु से निवेदन किया कि—आपका भक्त राजा शील निधि है, उसकी कन्या सुन्दरी, श्रीमती नाम वाली स्वयंवर करना चाहती है। सो आप मेरा रूप इतना सुन्दर बना दीजिये कि मैं उस स्वयंवर में जाऊं और वह मेरा ही वरण करे। और मैं उसे विवाह कर ले आऊं। **"विष्णु ने नारद का रूप वन्दर का सा बना दिया"** और अपना रूप सुन्दर वनाकर उस स्वयंवर में स्वयं जा विराजे। परिणाम स्वरूप उस राज-कन्या ने विष्णु को ही वरण कर लिया, और विष्णु जी स्वयं उसे अपनी पत्नी वनाकर ले आये और नारद जी देखते ही रह गये, पश्चात्त नारद जी ने दर्पण में अपना मुख देखा तो वह वन्दर का सा था, जिसे देखकर क्रोध से आग-बबूला हो गए और विष्णु को आकर शाप युक्त ये वचन कहे—

हे हरे त्वं महादुष्टः, कपटी विश्वमोहनः। परोत्साहं न सहसे, मायावी मलिनाशयः ॥६॥ मोहिनी रूपमादाय, कापट्यं कृतवान् पुरा। असुरेभ्योऽपापास्त्वं, वारुणीममृतंनहि ॥७॥ शशाप क्रोधनिर्विण्णो, ब्रह्मतेजः प्रदर्शयन् ॥१४॥ स्त्रीकृते व्याकुलं विष्णो, मामकार्षीविमोहकः। अन्वकार्षी स्वरूपेण, येन कापट्य कार्य कृत ॥१५॥ तद्रूपेण मनुष्यस्त्वं, भवत दुःख भुग्घरे। यन्मुखं कृतवान्मेत्वं, ते भवन्तु सहायिनः ॥१६॥ त्वं स्त्री वियोगजं दुःखं, लाभस्य पर दुःखदः। मनुष्य गतिकः प्रायो, भवाज्ञान विमोहितः ॥१७॥

"शिव पुराण श्री रुद्र संहिता २, अध्याय ४, छापा श्री वैंकटेश्वर प्रैस वम्बई"

भावार्थ—

नारद ने कहा, हे ! हरि 'विष्णु' तुम महाकुटिल, कपटी, संसार को मोहने वाले हो, माया वाले और मलिन चित्त वाले हो किसी, के उत्साह को तुम सहन नहीं करते हो ॥६॥ पहिले तुमने मोहनी रूप धारण कर कपट किया असुरों

को तुमने मदिरा पिलायी, अमृत नहीं दिया। "नारद ने अति दुःखी व क्रोधित होकर ब्रह्मतेज को दिखाते हुए विष्णु को "शाप" दे दिया ॥१४॥ हे विष्णु ! आपने स्त्री के निमित्त मुझको व्याकुल और मोहित किया है। और जिस (मनुष्य) रूप से मेरे साथ कपट का व्यवहार किया है ॥१५॥ हे हरि ! तुम उसी रूप से मनुष्य होकर दुःख भोगो, और जैसा मेरा (बन्दर का सा) मुख तुमने बना दिया वैसे ही मुख वाले तुम्हारी सहायता करेंगे ॥१६॥ हे दूसरों को दुःख देने वाले विष्णु ! तुम स्त्री वियोग के दुःख को प्राप्त करो और मनुष्य की गति को पाकर अज्ञान से मोहित होओ ॥१७॥ "नारद के इस शाप से विष्णु को राम बनना पड़ा और इससे ही सीता का हरण हुआ तथा राम ने उसके वियोग का दुःख भोगा अर्थात् "राम का जन्म नारद के शाप से हुआ धर्मोद्धार के लिए नहीं।"

(ख) भृगु के शाप के कारण विष्णु का अवतार लेना—

भृगु ऋषि की पत्नी का सिर विष्णु जी ने इन्द्र के कहने पर काट दिया। इस पर भृगु ऋषि ने विष्णु को शाप दया—

अवतारा मृत्यु लोके, संतुमच्छाप संभवाः। प्रायोगर्भभवं दुःखं भुक्ष्वं पापाज्जनार्दन ॥८॥

"देवी भागवत स्कन्ध ४०, अध्याय १२, श्लोक ८"

अर्थात्—

भृगु ने कहा—हे विष्णु ! मेरे शाप से मृत्यु लोक में तुम्हारे अवतार हों, हे विष्णु ! तुम (अपने इस) पाप से गर्भ में होने वाले दुःखों को भोगो।

शप्तो हरिस्तु भृगुणा कुपितेन कामं मीनो बभूव कमठः खलु शूकरस्तु।
पश्चान्नृसिंह इति यच्छल कृद्धरायां तान् सेवतां जननी मृत्यु भयंज किं स्यात् ॥१८॥

"देवी भागवत स्कन्ध ५, अध्याय १९, श्लोक १८"

अर्थात्—

कुपित भृगु के द्वारा दिये गए शाप से "विष्णु" मछली बना, अवतार धारण करके कच्छप वना, शूकर बना, पश्चात् नृसिंह बना और भूमि पर छल करने वाला "वली राजा को ठगने वाला" वामन अवतार हुआ।···कहते हैं कि हे जननी ! उनको सेवन-पूजन करने वालों को मृत्यु का भय क्यों न होगा ? अर्थात् अवश्य होगा।

(ग) भृगु द्वारा दिये गये शाप के कारण विष्णु की गति ?

भृगु पत्नी शिरच्छेदात् भगवान्हरिरच्युतः ॥३४॥ ब्रह्मा शापात्पशोर्योनौ, संजातो मकरादिषु। विष्णुश्च वामनो भूत्वा, यचनार्थं बलेर्ग्रहे ॥३५॥ अतः किं परम् दुःखं, प्राप्नोति दुष्कृती नरः। रामोऽपि वनवासेषु, सीता विरहजं बहुः ॥३६॥ दुःखं च प्राप्तवान् घोरं भृगुशापेन भारत ॥३७॥

"देवी भागवत् स्कन्ध ६, अध्याय ७, श्लोक ३४ से ३७"

भावार्थ—

भृगु ऋषि की पत्नी का सिर काट देने के कारण भगवान विष्णु भृगु ब्राह्मण के शाप से पशु योनियों में जन्में ॥ और वामन बनकर राजा बली के घर में भिक्षा मांगने के लिए गये, पाप कर्म करने वाला मनुष्य इससे अधिक और क्या दुःख भोग सकता है ? राम जी भी बनवास में सीता के वियोग से उत्पन्न हुए घोर दुःखों को भृगु शाप से प्राप्त हुए।

३—पाप कर्मों का फल भोगने के कारण विष्णु के अवतार—

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो, ब्रह्माण्ड भाण्डोदरे। विष्णुर्येन दशावतार गहने, क्षिप्तो महासंकटे ॥ रुद्रोयेन कपालपाणि, पुटके भिक्षाम्नं कारितः। सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव, गगने तस्मै नमः कर्मणे ॥१५॥

"गरुड़ पुराण पूर्वखण्ड आचार काण्ड, अध्याय ११३, श्लोक १५"

अर्थात्—

ये सब विष्णु जी का मछली आदि की योनियों में जन्म लेना पाप कर्मों का फल भोगने के कारण हुआ न कि धर्मोद्धार के लिए !

(क) विष्णु द्वारा अत्यन्त दुःख भरा वर्णन—

यदिच्छा पुरुषो भूत्वा, विचरामि महार्णवे । कच्छपः कोल सिंहश्च, वामनश्च युगे-युगे ।।५६।। न कस्यापि प्रियो लोके, तिर्यक्योनि संभवः । नाभवं स्वेच्छयावाम्, वाराहादिषु योनिषु ।।५७।। विहाय लक्ष्म्यासह सं विहारं, को याति मतस्या दिषु हीन योनिषु । शय्यां च भुक्त्वा गरुडासनस्थ, करोति युद्धं विपुलं स्वतन्त्रः ।।५८।। पुरा पुरस्तेऽज शिरो मदीयं, गतं धनुर्ज्यास्खलत्वचापि । त्वयालवा वाजिशिरो गृहीत्वा, संयोजिनं शिल्पिवरेण भूयः ।।५९।। ध्यानोऽहं परिकीर्तितश्च, प्रत्यक्ष मे तत्तव लोक कर्त्तः । विडंवनैयं किल लोक मध्ये, कथं भवेदात्म परो यदिस्यात् ।।६०।। तस्मान्नाहं स्वतन्त्रोऽस्मि··· ।।६१।।

"देवी भागवत पुराण स्कन्द १, अध्याय ७, श्लोक ५६ से ६०"

भावार्थ—

विष्णु कहते हैं—मैं उसकी इच्छा से पुरुष होकर महासागर में विचरण किया करता हूं और युग-२ में कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, अवतार लेता हूं ।।५६।। पशु योनि में जन्म लेने की कोई भी इच्छा करता है ? परन्तु मुझे वामन वराह आदि योनियों में जन्म लेना पड़ता है ।।५७।। लक्ष्मी के साथ विहार करना छोड़ कर कोन मतस्य (मछली) आदि की हीन योनि में शरीर धारण करेगा ? और कौन स्वतन्त्र होकर चाहेगा कि—शय्या छोड़ कर गरुड़ पर वैठ-कर महासमर करे ? ।। ५८ ।। हे अज ! प्राचीन काल में आपके सामने ही धनुष की प्रत्यञ्चा के टूटने से मेरा मस्तक जाता रहा अर्थात कट गया था । तव बड़े त्वष्टा (शिल्पी) ने घोड़े का मस्तक लेकर हमारे धड़ पर जोड़ दिया था ।। ५९ ।। तव से हमारा नाम "हयग्रीव" पड़ गया, और हे लोक सृष्टा ! यह सब घटना आपके प्रत्यक्ष में हुई थी। यह निश्चित है कि, यदि मैं अपने वश में होता तो यह विडम्बना क्यों होती ? ।। ६० ।। इससे मैं स्वतन्त्र नहीं हूं ।। ६१ ।।

इसी प्रकार "देवी भागवत् पुराण के स्कन्ध ४ के अध्याय १८" में विस्तार से विष्णु के दुःख और परतन्त्रता का वर्णन है।"

(ख) पाप कर्मों का फल भोगने के लिए राम का अवतार—

न मद्विधो दुष्कृत कर्मकारी, मन्ये द्वितीयोऽस्ति वसुन्धरायाम् । शोकेन शोकोहि परम्परायामामेति, भिन्दन् हृदयं मनश्च ।।३।। पूर्वमया नूनमभीप्सितानि पापानि कर्माण्य संस्कृत कृतानि । तत्रायमद्यापततो विपाको दुःखेत दुःखं यदहं विशामि ।।४।।

"वालमीकीय रामायण अरण्यकाण्ड सर्ग ६३ श्लोक ३ व ४"

श्री राम जी कहते हैं कि—मैं मानता हूं कि मेरे समान "पाप कर्म" करने वाला दूसरा मनुष्य इस भूमि पर नहीं है । शोक से शोक परम्परा से हृदय तथा मन को भेदन करता हुआ मुझको प्राप्त होता है । निश्चय ही मैंने पूर्व जन्म में वहुत पाप बार-२ किए हैं । उन्ही का फल मुझको यह है कि दुःख पर दुःख प्राप्त हो रहा है ।

अब "कृष्णावतार" के बारे में देखिये

(१) कृष्णावतार का पहला कारण—

"त्रेता युगे रामरूपी, विष्णुः संप्राप्य जानकीम् । नो तृप्तः स्त्री विलासानां, वित्तस्य चं सुखस्य च ।।६२।। रेतः सं प्रषणश्चापि, प्रोषितस्य स्त्रिया मपि । तस्मात् कलियुगे भूयो, गृहीत्वा जन्म केशवः ।।६३।। वासुदेवस्य देवक्यां, मथुरायां

महाबलः । बालस्तु गोप कन्या भिवने क्रीडा चकारसः ॥६४॥ दक्ष लक्षाणि पुत्राणां, गोपालानां ससर्जंह् । ततस्तु यौवनाक्रान्तो, रूक्मिणी प्रददर्शंहः ॥ ६५ ॥ विवाहयित्वा पुत्रांश्च प्रद्युम्नाद्यांश्च निर्ममे । तथापि नरकं दैत्यं प्राग्ज्योतिष पति बलात् ॥ ६६ ॥ हत्वा स्त्रीणां सहस्त्राणि, शोड़शैव जहारसः । तासां रतिफलं भुक्त्वा, पुत्राणां नर्वात तथा ॥ ६७ ॥ सहस्त्राणि ससजीशु, मतस्ये चांड महाद्भुतम् स्त्रीणां तथापि नो तृप्तो, दिव्यानां तु रतेयर्दा ॥ ६८ ॥ तदा राधास्त्रियं काचिन्, निशि स्रैर्या दधर्षयत् । तथापि परनारीणां, लम्पटो नित्य मेवहि ॥ ६९ ॥

"शिव पुराण धर्म संहिता अध्याय ९"

नोट—

इस प्रसंग में आगे-पीछे बहुत अश्लील बातें लिखी हैं, अधिक अश्लील होने के कारण न मैं उनको लिख सकता हूं और न बोल सकता हूं। सनातन धर्म की सभ्यता में वह चाहे जितने भी पवित्र माने जाते हों पर हम आर्यों को तो उनके बोलने और लिखने में भी लज्जा आती है। अब आप संक्षेप से सार रूप में इन श्लोकों का अर्थ पढ़िये—

"त्रेता युग के अन्दर राम के रूप में विष्णु सीता को प्राप्त करके स्त्री विलासों से तृप्त न हो सके इसलिए "स्त्री भोग से तृप्त होने के लिए" कलियुग में वसुदेव की पत्नी देवकी से जन्म लेकर "कृष्ण" बने। बाल्यकाल में ही गोप कन्याओं से क्रीड़ा करते रहे। दश लाख पुत्र "गोपाल" उत्पन्न किए। फिर युवावस्था में रूक्मिणी को देखा और उससे विवाह करके प्रद्युम्न आदि को उत्पन्न किया। (तब भी तृप्ती न हुई तो)—प्राग्ज्योतिषपुर के राजा जरकासुर को मार कर सोलह हजार स्त्रियों को हर कर ले आये उनसे भोग करके नब्बे हजार पुत्रों को उत्पन्न किया। जैसे मछली से "असंख्य" अण्डे होते हैं। (इतने पर भी तृप्त न हुए तो) रात्री मे धैर्यच्युत होकर राधिका नाम वाली स्त्री से सम्भोग किया इस प्रकार नित्य ही स्त्री लम्पट बनकर रहे।"

(२) कृष्णावतार का दूसरा कारण—

"पुरा महर्षयः सर्वेः दण्ड कारण्य वासिनः। दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तुमैच्छन् सुविग्रहम् ॥१६६॥ ते सर्वे स्त्रीत्वमापन्नाः, शमुद्भूतास्तु गोकुले। हरिं संप्राप्य कामेन, ततोमुक्ताः भवार्णवात् ॥ १६७ ॥"

"पद्म पुराण उत्तरखण्ड अध्याय २७२, श्लोक १६६-१६७, आनन्दाश्रम प्रैस पूना"

अर्थात् –

पुराने समय में सारे दण्ड कारण्यवासी ऋषि राम से ......?...... करने के इच्छुक हुए, वह सब स्त्री बनकर गोकुल में जन्में, तब कृष्ण को प्राप्त करके राम के द्वारा उस पाप से छूटकर भवसागर से पार हुए।

नोट –

भाइयों! ये तो बात मैंने बहुत ही संक्षेप में कही अवतार के कारणों की! अब मैं बताता हूं कि कृष्ण जी अवतार किसके थे? जबकि उनको पूर्णावतार कहा गया है, क्या वे पूर्ण अवतार थे? एक झांकी इस पर मारिये—

श्री कृष्ण पूर्णावतार थे—एते चांश कला पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ॥

(श्रीमद् भागवत् स्कन्ध १ अध्याय ३)

अर्थात्—

और सब अवतार "अंशावतार" थे केवल श्री कृष्ण स्वयं भगवान् अर्थात् "पूर्णावतार" थे।

कृष्ण के पूर्णावतार के विषय में पुराणों का कथन—

(१) - "अवतीर्णो भगवानंशेन जगदीश्वरः ॥ २७ ॥

"श्रीमद्भागवत् स्कन्ध १०, अध्याय ३३"

अर्थात्—भगवान के अंश से कृष्ण का अवतार हुआ।

(२) "एवं संस्तूय मानस्तु भगवान् परमेश्वरः। उज्जहार आत्मनः केशौ, सितकृष्णौ महामुने ॥६०॥ उवाचसुरान् सर्वागतौ वसुधातले। अवतीर्य भुवौभारक्लेश हानिं करिष्यतः ॥६१॥ वसुदेवस्य या पत्नी, देवकी देवतोपमा। तस्यामष्ठमोगर्भो मतकेथो भविता सुराः ॥६४॥ अवतीर्य च तत्रायकंसं घार्तायतः भुवि। कालनेमि समद्भूतं इत्युवाक्तवंधे हरिः ॥६५॥"

"विष्णु पुराण अंश ५, अध्याय१, श्लोक ६०, ६१, ६४, ६५,"

"इस प्रकार स्तुति किये जाने पर विष्णु ने अपने सिर में से दो बाल उखाड़े एक सफेद और दूसरा काला ॥६०॥ देवों को भगवान विष्णु ने कहा कि—यह मेरे दोनों बाल भूमि पर अवतार लेकर क्लेश की हानि करेंगे ॥६१॥ वासुदेव की पत्नी देवकी देवता के समान जो है उसका आठवां गर्भ यह मेरा "काला" बाल होगा ॥६४॥

यही प्रकरण महाभारत में देखिये—

स चापि केशौ हरिरुद्बर्ह शुक्ल मेकमपरं चापि कृष्णाम् ॥३२॥ तौ केशौ निविशेतां यदूजां कुले स्त्रियौ देवकी रोहिणी च ॥ ह्यो रेको बलदेवो बभूव, योऽसौ श्वेतस्य देवस्य केशः कृष्णो द्वितीयः केशवः सम्बभूल केशो योऽसौ वर्णतः कृष्ण उक्तः ॥३३॥

"महाभारत आदि पर्व अध्याय १९७, श्लोक ३२, ३३,"

अर्थात्—

नारायण ने अपने माथे से दो बाल तोड़े, इनमें एक बाल सफेद और एक बाल काला था ॥३२॥ यह दो बाल यदुकुल की देवकी और रोहिणी नाम वाली स्त्रियों के गर्भ में आए, विष्णु का जो सफेद बाल था उसमे बलदेव उत्पन्न हुए और काले बाल से श्री कृष्ण उत्पन्न हुए ॥३३॥

(३) श्री कृष्ण पार्वती के अवतार थे—

"यदि त्वं मे प्रसन्नासि, तवा पुंस्त्वमवाप्नुहि। कुत्रचित् पृथिवी पृष्ठे, यास्पेऽहंस्त्री स्वरूपताम् ॥१६॥ भविष्येऽहंत्वत् प्रियार्थं, निश्चितं धरणीतले पुरूपेण महादेव, वसुदेव गृहे प्रभो ॥१८॥ कृष्णोऽहं मत् प्रियार्थं स्त्री भवत्वेहि त्रिलोचन ॥१९॥ पुंरूपेणाजगद्धात्रि प्राप्तायां कृष्णानां त्वयि। वृषभानोः सुताराधा, स्वरूपाहं स्वयं शिवे ॥२०॥ तव प्राण समा सूत्वा, विहारिष्येत्वयासह ॥२१॥

"महाभागवत महापुराण अध्याय ४९"

भावार्थ—

शिवजी ने पार्वती से कहा कि—यदि तुम मुझसे प्रसन्न हो तो! तुम पुरुष बनो और मैं पृथ्वी पर कहीं स्त्री बनूं ॥१६॥ पार्वती जी ने कहा—हे महादेव जी! मैं आपकी प्रसन्नता के लिए निश्चय पृथ्वी पर वासुदेव के घर में उत्पन्न होऊंगी ॥१८॥ मैं कृष्ण का रूप लूंगी आप मेरी प्रसन्नता के लिए, हे तीन नेत्र वाले कहीं स्त्री का जन्म लीजिये ॥१९॥ शिवजी ने कहा—हे जगत्जननि तुम्हारे कृष्ण बन जाने पर मैं वृषभानु की पुत्री राधा के रूप में जन्मूंगा ॥२०॥ तुम्हारे प्राणों के समान प्यारा मैं शंकर तुम्हारे साथ विहार करूंगा ॥२१॥ "उसके बाद शिवजी वृषभान के घर में जन्म लेकर राधा बन गये और वही राधा कुछ दिनों बाद कृष्ण को प्राप्त हो गयी।"

अब रामावतार के सम्बन्ध में देखिये

राम का अवतार और उसका कारण—

"पुरा कोलिक मार्गस्य, निन्दा वै विष्णुना कृता। तत् पातक वशाज्जातो, मत्तो दशरथात्मजाः ॥२२६॥ यत्तेन निन्दिता शक्तिः, तत् सोता रक्षसाहृता। दुःखञ्च समनु प्राप्तं, वियोगश्चानु कालिकः ॥२२८॥

"मेरुतन्त्र प्रकाश, १७ पृष्ठ ३८४, वैंकटेश्वर प्रेस बम्बई"

अर्थ—पुराने समय में विष्णु ने कौलिक मार्ग (वाम मार्ग) की निन्दा की थी, उस पाप के वश दशरथ का पुत्र (राम जन्मा) जिस शक्ति (देवी) की विष्णुने निन्दा की थी वह सीता बनी सो राक्षस (रावण) के द्वारा हरी गई।

राम (अवतार) के अनेक अज्ञानों का वर्णन—

सर्वज्ञत्वं गतं कुत्र, प्रभुशक्तिः कुतोगताः ? यद्धेममृग विज्ञानं न ज्ञातं हरिणा किल ॥३६॥ योऽपृच्छत् पादयान् मूढः, कव्गता जनकात्मजा। भक्षिता वा हृता केन, रूदन्नुच्चतरं ततः ॥४१॥ (देवी भागवत पुराण स्कन्ध ४ अध्याय २०) तथा—"यथा हेम मृगं रामो, न बुबोध पुरोगतम्। जानक्या हरणं चैव, जटायुर्मरणं तथा ॥१०॥ अभिषेक दिने रामो, वनवासं न वेद च। तथा न ज्ञानवान् रामो स्वशोकान्मरणं पितुः ॥११॥ अज्ञ वद् विचचारासौ, पश्यमानो वने वने। जानकीं न विवेदाय, रावणेन हृतां बलात् ॥१२॥ प्रेषयामास सर्वासु, दिक्षु तान् कपि कुंजरान्। संग्रामं कृतवान् घोर दुःखं प्राय रणांजिरे ॥१४॥ अदूष्यत्वं च जानक्या, नविवेद जनार्दनः। दिव्यं च कारयामास, ज्वलितेऽग्नौ प्रवेशनम् ॥१७॥ लोकाप वादाच्च परं, ततस्तत्याज तां प्रियाम्। अदूष्यां दूषितां मत्वा, सीतां दशरथात्मजः ॥१८॥ न ज्ञातौ स्वसुतौ तेन, रामेण च कुशीलवौ। मुनिना कथितौ तौ तु, तस्य पुत्रौ महाबलौ ॥१९॥ पाताल गमनं चैव, जानक्या ज्ञातवान् न च। राघवः कोप संयुक्तो, भ्रातरं हन्तु मुद्यु तः। कालस्यागमनं चैव, न विवेद खरान्तकः ॥२०॥

"देवी भागवत पुराण स्कन्ध ४ अध्याय २५"

भावार्थ—

(विष्णु) के अवतार (माने जाने वाले राम की) सर्वज्ञता कहां (हवा खाने) चली गई? उनकी ईश्वरीय शक्ति कहां (चरने चली) गई। जब वे इतना भी न समझ सके कि सोने का हिरण भी कहीं होता है? ॥३९॥ वह मूढ़ वृक्षों से पूछता फिरा कि—जनकात्मजा सीता कहां गई? किसी ने खा ली या हर ली? ऐसा कह कर ऊंचे स्वर से रोते रहे ॥४१॥ "आगे जाते हुए सोने के मृग को भी राम ने नही पहचाना" सीता के हरण और जटायु के मरण का भी राम को ज्ञान न हुआ ॥१०॥ वह यह भी नहीं जानते थे कि राज्याभिषेक के दिन मुझको वनवास मिलेगा। और वह यह भी नहीं जानते थे कि मेरे शोक के कारण मेरे पिता की मृत्यु हो जायेगी ॥११॥ वह अज्ञानियों की तरह सीता को वन-वन खोजता फिरा यह भी न जान सका कि सीता को रावण बलात् हरण करके ले गया है ॥१२॥ वानरों को अपना सहायक बनाया, इन्द्र के पुत्र बाली को अन्याय से मारा, सागर पर पुल बांध कर समुद्र के पार गये ॥१३॥ सीता को ढूंढ़ने के लिए प्रधान-प्रधान बानरों को सब दिशाओं में भेजा, रावण से लड़ाई छेड़ दी, युद्ध में बड़े-बड़े क्लेश सहे ॥१४॥ दोष रहित सीता की निर्दोषता को नहीं जान सके और प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश कराके उसकी शुद्धता की परीक्षा ली ॥१७॥ फिर उसी दशरथ पुत्र ने लोकापवाद (बदनामी) के भय से सीता को कलंकनी मानकर वन में छोड़ दिया ॥१८॥ वे ही राम अपने दोनों पुत्रों लव-कुश को नहीं पहचान सके महर्षि बाल्मीकि के कहने पर पता लगा कि—यह दोनों उन्हीं के वीर पुत्र हैं ॥१९॥ सीता जी पाताल में चली जायेंगी, यह भी वह राम नहीं जानते थे, वह रघुनाथ जी क्रोध में भरकर भाई को मारने के लिए उद्यत हो गये थे ॥२०॥ मृत्यु के आगमन को भी वह खर को मारने वाले राम ने नहीं जाना ॥

नोट—

इस प्रकार बहुत से 'अज्ञान' राम के देवी भागवत पुराण में गिनाये हैं, बाल्मीकिय रामायण के पुराणों से हम भी राम जी के अज्ञान बता सकते थे, हमने ऐसा न करके "देवी भागवत पुराण" से वह दिखाये हैं, जो महर्षि व्यास जी का बनाया सभी पौराणिक लोग मानते हैं, इसका यह अर्थ हुआ कि—महर्षि व्यास जी भी जानते थे कि—"राम अज्ञानी थे, वह न सर्वज्ञ थे न सर्वशक्तिमान! अर्थात उनके मत में भी वह परमेश्वर नही थे।

राम (अवतार) के बारे में चाणक्य का कथन—

व भूतपूर्वं न श्रुतं त दृष्टं कथंचिदपि हेम मृगस्य जन्म ॥
तथापि तृष्णापि रघुनन्दनस्य विनाशकाले विपरीत बुद्धिः ॥ १५ ॥
असम्भवं हेम मृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभ मृगाय ।
प्रायः स्मापन्न विपत्ति काले, धीयोऽपि पुंसांमलिना भवन्ति ॥१६॥ "चाणक्य नीति"

अर्थात्—

न कभी पहले हुआ, न कभी सुना, न कभी देखा कि सोने का मृग होता है, तो भी रघुनन्दन राम की उसके लिए तृष्णा हुई इससे सिद्ध हुआ कि—विनाश काल में उनकी बुद्धि उल्टी हो गई थी ॥१५॥

सोने के मृग का जन्म असम्भव है, तो भी राम जी उसके लोभ में पड़ गये, पता लगा कि विपत्ति काल में मनुष्य की बुद्धि मलीन हो जाती है। अर्थात् आचार्य चाणक्य जी भी उनको परमेश्वर न मानकर एक साधारण मनुष्य मान रहे हैं।

नोट—

ये हुई कथाएं अवतारों की, जिनसे साफ पता चलता है कि राम आदि सबको क्लेश हुए इनमें राग और द्वेष भी दिखाई देता है। ये कर्म फल भी भोगते थे, इसलिए ये सब ईश्वर नहीं थे। वल्कि सनातन धर्म के अनुसार तो यह भी सिद्ध होना कठिन है कि—ब्रह्मा, विष्णु, शिव, और दुर्गा इन चारों में से परमेश्वर कौन है ? क्योंकि पुराणों में कहीं ब्रह्मा जी को सबसे बड़ा बताया है, कही शिव जी को तो कहीं विष्णु जी ही सबसे बड़े कहे गए हैं, कहीं शक्ति को ही इन सब पर शासन करने वाली बताई गई है। इतना ही नही, कहीं ब्रह्मा की निन्दा लिखी है, कही शिव की और कहीं विष्णु की ! अतः क्या सनातन धर्मी बता सकते है कि इनमें से उनका ईश्वर कौन है ? ईश्वर के जो लक्षण योग दर्शन में दर्शाये गये हैं, उन पर इन भगवानों में से क्या कोई कसौटी पर पूरा उतरता है ? कस कर देखो ?

योग दर्शन में परमेश्वर के लक्षण—

"क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः ॥ २९ ॥
"योग दर्शन पाद-१, सूत्र २९"

अर्थ—अविद्या (विपरीत ज्ञान) अस्मिता (अहंकार) राग- द्वेष और अभिनिवेष (मृत्यु का भय) ये पांच क्लेश जिनसे सुख और दुख प्राप्त हो वह शुभाशुभ कर्म विपाक कर्म फल आशय (कर्मों की वासना) इनसे सर्वथा रहित पुरुष विशेष "परमेश्वर" है।

नोट—

क्या इन लक्षणों पर सनातन धर्मियों का कोई परमेश्वर का अवतार घट सकता है ? कदापि नही अतः साफ़ पता चलता है कि वह परमेश्वर नही थे। परमेश्वर का अवतार कभी होता ही नही है।

मैं इन बातों को पूर्ण विस्तार से लिखूं तो यह एक विशाल ग्रन्थ बन जायेगा, इसलिए एक-दो बातें जो इस शास्त्रार्थ में विशेष कर आई थी, उन पर संक्षेप में लिखकर समाप्त करूंगा।

इस शास्त्रार्थ में "अकायम" और "अ"- उपसर्ग पर विवाद

१ – देखिए आचार्य उव्वट क्या कहते हैं ?—

"अकायं न विद्यते काय शरीरं यस्य संतघोक्तः ॥
अव्रणं काम रहित त्वादेवास्नाविरं स्नायुरहित मकायत्वादेव" ॥

अर्थात्—

"अकायम्" नहीं है काया (शरीर) जिसका ! ऐसा कहा गया है "अव्रणम्" फोड़ा रहति होने से।

"अस्नाविरम्" नस नाड़ी रहित "अकायम्" होने से ही ।।

२—देखिये आचार्य महीधर क्या कहते हैं—

"अकायं न कायः शरीरं यस्य तत् । अकायत्वादेवाव्रणमक्षतम् अस्नाविरं न विद्यन्ते स्नावाः शिरा यत्र तदस्नाविरं स्नायु रहितम् अकायत्वादेव शुद्धमनुण्हतं सत्वरजस्तमोभिः ।।"

अर्थात्—

"अकायम्" नही है शरीर जिसका। "अकायम्" होने से ही "अव्रणं"—अक्षत) फोड़ा छिद्र) रहित। 'अस्नाविरं" नहीं है, स्नायु (नस-नाड़ी) जहां वह अस्नाविरं स्नायु (नस-नाड़ी) रहित अकायम् होने से ही शुद्ध सत्य, रज, तम से रहित।

"इन दोनों भाष्यों में "अव्रणम्" और "अस्नाविरम्" दोनों शब्द व्यर्थ नही सर्वथा सार्थक बताये हैं। स्पष्ट सिद्ध है कि —जगत गुरु जी ने पढ़ा कुछ नहीं है। और फिर पढ़ें भी क्यों ?

"पढ़ना लिखना ब्राह्मण का काम।
भज-भज साधो सीता राम ।।

"अ" उपसर्ग नहीं है—

मैंने यह कहा कि—"अजायमानः" में "अ" नकारार्थ में हैं, इसमें क्या झूठ है ? उदाहरणार्थ—१. सत्य-असत्य, २. ज्ञान-अज्ञान, ३. ज्ञानी-अज्ञानी, ४. विद्या-अविद्या, ५. विद्वान-अविद्वान, ६. नीति-अनीति, ७. रस-अरस, ८. विनाशी अविनाशी ९. न्याय-अन्याय, १०. प्राकृतिक-अप्राकृतिक, ११. जायमान-अजायमान, इत्यादि बहुत शब्दों के साथ जुड़कर "अ" नही का अर्थ देता है।

इसी भाव से आचार्य महीधर जी ने भी "अजायमान" पद मानकर इसका अर्थ "अनुत्पद्यमान" उत्पन्न न होने वाला किया है। मैंने 'अ" को उपसर्स नहीं कहा, पर यदि "दुर्जनतोष" न्याय से यह मेरी भूल मान ली जावे तो क्या इससे "ईश्वरावतार" सिद्ध हो गया ? अतः मेरा दावा है कि एक जगत् गुरु" तो क्या सैकड़ों जगत् गुरु भी ईश्वरावतार का होना सिद्ध नहीं कर सकते हैं।

श्री स्वामी निरञ्जन देव तीर्थ को निग्रह स्थान की पहचान—

श्री स्वामी निरञ्जन देव जी तीर्थ ने इस शास्त्रार्थ में मुझे कहा कि—"आप निग्रह स्थान में आ गये हैं" इस लिए शास्त्रार्थ समाप्त हो जाना चाहिए। मैंने पूछा कि—मैं किस निग्रह स्थान में आ गया हूं ? स्वामी जी निग्रह स्थान का नाम नहीं बता सके। और गुस्से में भरकर ऊंचे स्वर से बोले— "निग्रह स्थान में आ गये, कौन क्या ?" पता लगा कि—निग्रह स्थान का केवल उन्होंने नाम ही सुना है, वह यह नहीं जानते कि निग्रह स्थान कितने और कोन-कोन से हैं। उनके लक्षण क्या हैं ? जानते तो किसी एक का नाम लेते।

न्याय दर्शन में निग्रह स्थान है - और जो व्यक्ति निग्रह स्थान में न हो और उसको निग्रह स्थान में कोई व्यक्ति बतावे, तो वह स्वयं निग्रह स्थान में आ जाता है। इस प्रकार स्वयं स्वामी निरञ्जन देव जी तीर्थ निग्रह स्थान में आ गये, मैं किसी निग्रह स्थान में नहीं आया था।

श्री स्वामी निरञ्जन देव जी का मत भगवान शंकराचार्य जी के मत के विरुद्ध है—

भगवान शंकराचार्य जी के मतानुयायी होकर ईश्वरावतार कैसे मानते हैं ? भगवान शंकराचार्य जी तो ब्रह्मसूत्र (विदान्त दर्शन) में लिखते हैं कि—"करण वच्चेन भोगाविम्यः। (वेदान्त दर्शन २-२-४०) के भाष्य में लिखते हैं कि—**स शरीरत्वे रिसति संसारिवद् भोगादि प्रसंगात् ईश्वरस्याथ नीश्वरत्वं प्रसज्येत्।"**

अर्थात्—

ईश्वर के शरीर धारी होने पर अन्य संसारी जीवों की तरह भोगादि का प्रसंग होने से ईश्वर का ईश्वरत्व समाप्त होकर अनीश्वरत्व हो जायेगा। शरीर धारण कर लेगा तो ईश्वर—"ईश्वर" रहेगा ही नही। आप तो ईश्वर का अवतार सिद्ध करते हुए ईश्वर को ही खो बैठेंगे। **"चौबे जी गए छब्बे बनने, पर दुबे भी न रहे"**।

कहिये ! आप आद्य शंकराचार्य जी के मतानुयायी है या नहीं ? यदि आप यह घोषणा कर दें कि - मैं आद्य शंकराचार्य जी के मत को नहीं मानता हूं तो इस गद्दी से उतार दिए जायेंगे। और यदि अवतारवाद को नहीं मानोगे तो सनातन धर्मी लोग आपकी पाद पूजा नहीं करेंगे। इसलिए आप दुरंगी चाल चलते हैं।

मुसीबत में पड़ा है सीने वाला सीमे दामां का।
जो यह टांका तो वह उधड़ा, जो वह टांका तो यह उधड़ा॥

तथा —

दुरंगी छोड़ के इक रंग होजा। सरासर मौम हो या संग हो जा॥

खोदा पहाड़ निकला चूहा ! वह भी मरा हुआ—

भाइयो ! मैं पूर्व पत्राचारों व व्यवहार से इतना तो अवश्य समझ गया था कि ये स्वामी निरञ्जन देव जी कोई विशेष विद्वान् व्यक्ति नहीं हैं तो भी मैंने सोचा था कि आखिर शंकराचार्य की पदवी वैसे ही थोड़े मिल गई, परन्तु अब शास्त्रार्थ करने पर पता चला—

बहुत शोर सुनते थे, पहलू में दिल का।
जो चीरा तो एक क़तरा खूं न निकला॥

मैंने सोचा था कि नियम से दो-चार दिन शास्त्रार्थ चलेगा, कुछ कहने का कुछ सुनने का मौका मिलेगा, परन्तु वहां तो **"खोदा पहाड़ निकला चूहा वह भी मरा हुआ"** दो-चार दिन की बात तो दर किनार—दो-चार मिनट का भी मसाला नामधारी जगत गुरु के पास नहीं था। जिससे उनकी विद्वता का पता चल गया, मुझे वहां शास्त्रार्थ मण्डप में तो इतना कहने का अवसर न मिला था, इसलिए इन प्रश्नों पर मैंने थोड़ा विस्तार से यहां लिख दिया है। अगर इन बातों को पूर्ण विस्तार से लिखूं तो एक बहुत बड़ा ग्रन्थ बन जाएगा। इसलिए इसी संक्षेप रूप में लिखी गई सामग्री से ही लाभ उठाइये।

समस्त पौराणिक जगत को मेरा चैलेञ्ज व घोषणा—

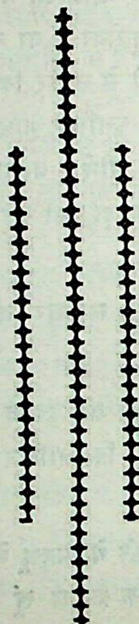
"जगत् गुरु शंकराचार्य कहलाने वाले" श्री स्वामी निरञ्जनदेव जी तीर्थ मेरे दिये प्रमाणों का खण्डन करने का उत्साह रखते हों तो अवश्य कुछ पुस्तकाकार में लिखें, मैं उसकी भी धज्जियां उड़ाऊंगा। **"श्री स्वामी जी को अगर अब भी शास्त्रार्थ करने का साहस हो तो मेरे साथ अवश्य पत्र व्यवहार करें"**। अवतारवाद, मूर्तिपूजा, मृतक श्राद्ध, वर्ण व्यवस्था, पत्यन्तर विधान "नियोग और विधवा विवाह", द्वैताद्वैत, भागवद् आदि पुराणों की प्रमाणिकता। इन विषयों पर **'मैं शास्त्रार्थ करने को हर समय तैयार हूं"**।

"अमरस्वामी सरस्वती"



उन्नतीसवां शास्त्रार्थ

स्थान : अजमेर (राजस्थान)



विषय : **क्या ईश्वर सृष्टिकर्त्ता है ?**

दिनांक : **३० जून सन् १९१२ ई०**

आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : **श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती (पूर्व श्री पं० कृपाराम जी शर्मा)**

जैनियों की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : **श्री जैन पं० गोपाल दास जी वरैया**

सभापति : **१. श्री बाबू मिट्ठन लाल जी वकील**
२. श्री सेठ ताराचन्द जी दिगम्बरी

उपस्थित मुख्य व्यक्ति : **श्री पं० दुर्गादत्त जी शास्त्री, श्री पं० शम्भुदयाल जी आदि ।**

नोट—यह शास्त्रार्थ स्वामी दर्शनानन्द जी के जीवन का अन्तिम शास्त्रार्थ है । जिसे पटियाला निवासी श्री श्यामलाल जी ने उर्दू में छपा हुआ भिजवाया, इसका हिन्दी अनुवाद श्री पूज्य महात्मा अमर स्वामी जी महाराज ने किया, जहां तहां उर्दू के कठिन शब्दों का हिन्दी अर्थ भी कोष्ठक में दिया गया है। मूल प्रति बहुत ही ख़स्ता हालत में होने के कारण स्वामी जी को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा, हम पूज्य स्वामी जी महाराज के तो कृतज्ञ है ही जिन्होंने इस वृद्धावस्था में यह महान परिश्रम कर इस लुप्त सामग्री को जीवित किया, साथ-साथ श्री श्यामलाल जी के भी आभारी हैं जिनके माध्यम से इसकी मूल प्रति प्राप्त हुई ।

—"सम्पादक"

शास्त्रार्थ आरम्भ

जैन पं० श्री गोपाल दास जी वरैया—

पदार्थों का उद्देश्य लक्षणों से निश्चित किया जाता है, सृष्टि के बनने में ईश्वर कर्त्तव्य क्या है ?

परमाणु में क्रिया और सूर्य-चन्द्रमा आदि की सूरतें रहने से वह उन रूपों में परिवर्तित हो गए, एक स्थान से दूसरे स्थानों में जाने का नाम क्रिया है, जब परमेश्वर से कोई स्थान खाली नहीं है, तब इसमें क्रिया कैसे हो सकती है ? जिसमें स्वयं क्रिया न हो वह दूसरे को क्रिया कैसे दे सकता है ?

यदि यह माना जावे कि—परमेश्वर ने सृष्टि बनाने की इच्छा की, और परमाणुओं को सूर्य-चन्द्रमा के रूप में बन जाने की आज्ञा दी, और वह आज्ञा पाते ही इन रूपों में बदल गए, तो ईश्वर जीव में कुछ अन्तर नहीं रहेगा । परमाणुओं में भी हरकत (चेतनता) आ जाती है ।

यदि परमात्मा ने एक-एक परमाणु को पकड़-पकड़ कर जोड़ा तो परमात्मा साकार हुआ, और साकार होगा तो एक देशी होगा, और उसकी सर्व व्यापकता जाती रहेगी ।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती—

क्रियावान (मुतहर्रिक) ही क्रिया दे, यह कोई नियम नहीं है । चकमक पत्थर स्वयं नहीं हिलता है, पर लोहे को हिला देता है । इससे सिद्ध हुआ कि, क्रिया से क्रिया उत्पन्न नहीं होती है । किन्तु शक्ति से क्रिया उत्पन्न होती है । इच्छा अप्राप्त वस्तु की हुआ करती है, कोई वस्तु परमात्मा को अप्राप्त नहीं है । इसलिए परमात्मा में इच्छा नहीं बन सकती । क्रिया अर्थात् हरकत दो तरह की होती है, एक इच्छा के अनुसार अर्थात् इरादे के साथ (बिल इरादा) क्रिया । दूसरी नियम पूर्वक (क़ायदा में हरकत इन्तज़ामी) (बाक़ायदा हरकत) तथा (बिला इरादा हरकत) । इच्छा पूर्वक क्रिया—यह जीव की होती है, और नियम पूर्वक क्रिया (क़ायदा में) परमात्मा की होती है । ईश्वर में हरकत (क्रिया) स्वाभाविक मानी जाती है ।

यथा—"स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रिया च"

सृष्टि यानी दुनिया में हर एक हरकत (क्रिया) ज़ेर क़ायदा या नियम पूर्वक हो रही है । सूर्य-चन्द्रमा आदि सब में हरकत (बाक़ायदा) (नियम पूर्वक) है । वृक्ष आदि के एक-एक पत्ते के अन्दर नियम पूर्वक हरकत (क्रिया) हो रही है । जो अपने नियामक यानि क़ायदा बांधने वाले की ओर संकेत (इशारा) करती है ।

सृष्टि और जगत दोनों शब्द भी अपने बनाने वाले का निशाना बतलाते हैं, अर्थात् इसकी तरफ इशारा करते हैं । अतः पता चला कि, सृष्टि वह है जो बनाई गई हो, और जगत् वह है जो चले । न कोई चीज़ अपने आप चल सकती है और न अपने आप बन सकती है । यह साफ ज़ाहिर हो गया ।

अनासरों, ज़र्रात या परमाणुओं में हरकत (क्रिया) नहीं है, इसलिए इस सृष्टि (जगत) का कोई बनाने या चलाने वाला अवश्य होना चाहिए ।

अगर ज़र्रात (परमाणुओं) में स्वाभाविक-ज़ाती हरकत-क्रिया होती तो इनका मेल नहीं हो सकता था क्योंकि ज़ाती-स्वाभाविक क्रिया (हरकत) वाली वस्तुओं में भेद यानी तफावत हमेशा बना रहता है । जो परमाणु जिस परमाणु से जितनी दूर पर जा रहा था, वह उतनी ही दूर पर रहा आता है । परमाणुओं में कार्य का रूप भी नहीं है, हर एक कार्य में यानी (मालूल) में तीन चीजें होती हैं । एक 'आकृति' यानी शक्ल दूसरे 'व्यक्तित्व' यानी जसामत तीसरी 'जाति' या किस्म ।

मिट्टी में ईंट की शक्ल (आकृति) नहीं है, और न ही ईंट में मकान की आकृति है। तब शक्ल कहां से आई ? हर कोई कहेगा कि ईंट की शक्ल कुम्हार, और मकान की शक्ल इन्जीनियर के ज्ञान से आई।

इससे साबित हुआ कि आकृति (शक्ल) कर्ता (फ़ाईल) के ज्ञान से आती है, नेस्ती से हस्ती नहीं हुआ करती (अभाव से भाव अथवा शून्य से उत्पत्ति को कोई बुद्धिमान नहीं मान सकता), उपादान कारण (इल्लते माद्दी) से जसामत यानी व्यक्तित्व आता है। प्रकृति नित्य है, जगत आकार वाला है, जन्म यानी (पैदा शुदा) है। साकार पैदा शुदा यानी जन्य होता है। जैसे घड़ा साकार है, जन्य (पैदा शुदा) है।

परमाणु इस जगत के आकार वाले नहीं हैं। तब परमाणुओं में यह आकृति कहां से आई ?

परमात्मा ने हुक्म दिया और परमाणुओं-यानी जर्रात ने सुना यह आर्य समाज का दावा नहीं है, परमात्मा एक-एक पदार्थ को लेकर जोड़ता है, यह ठीक नहीं है। यह दोष महदूद (एक देशी) और (जवाल पज़ीर) नाशवान पदार्थों में होता है, परमात्मा सर्व व्यापक है, जगत उसके अन्दर है। अन्दरूनी पदार्थ में हरकत देने के लिए हाथ-पांव आदि इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं इसलिए कहा गया था—

"अपाणि पादो जवनो ग्रहीता, पश्यत्य चक्षु: सः श्रणोत्यकर्णः।"

अर्थात् परमेश्वर के हाथ-पैर नहीं, पर वह चलाता और पकड़ता है, आंख के विना देखता और कान न होते हुए भी सुनता है। आदि-आदि।

अर्थात् वह सब शक्तियां रखता है, शरीर के जख्मों (घावों) को भरने के लिए जो खून (रुधिर) आता है, उसको कौन हाथ से खींचकर लाता है ? कौन सा हाथ रक्त खींच कर लाता है ?

जैन पं० श्री गोपालदास जी वरैया—

चकमक पत्थर में (कशिश) आकर्षण नित्य है, परमाणु नित्य है, ईश्वर भी नित्य है, इसलिए ईश्वर प्रदत्त क्रिया भी नित्य ही रहनी चाहिए। सृष्टि नित्य रहनी चाहिए, सृष्टि और प्रलय दो विरुद्ध वातें हैं।

एक क्रिया से संयोग और वियोग दो विरोधी गुण किस तरह हो सकते हैं ? द्रव्य-गुणवान् है संयोग वियोग में गुण होने चाहिए।

न्याय शास्त्र का सिद्धान्त है कि, किसी द्रव्य की उत्पत्ति और विनाश नहीं होते हैं तव सृष्टि का विनाश होकर प्रलय कैसे हो सकती है ? कार्य-दोष युक्त होता है। कोई-कोई कार्य (फाइल) कर्ता से होता है। कोई विना फाईल (कर्त्ता) के।

जौ, चना आदि खेत में वोने से होते हैं, पर घास-फूंस जड़ी-बूटी आदि विना कर्त्ता के स्वयं ही उत्पन्न हो जाते हैं।

और यह कहना भी ठीक नहीं कि सृष्टि में कार्य-नियम पूर्वक ही होते हैं, किसी मनुष्य को इन्द्रिय या इन्द्रियों से रहित देखते हैं और किसी को इन्द्रियों या इन्द्रिय वाला, कोई धनवान कोई निर्धन। कार्य-कारण तीन तरह के होते हैं। देखिये—**क्षेत्र व्यतिरेक, कालव्यतिरेक, अन्वयव्यतिरेक।**

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती—

परमात्मा का स्वभाव मैंने सृष्टि के आधार पर वेद के अनुकूल क्रिया वतलाया। ईश्वर की शक्ति से ही हुई क्रिया-नित्य अर्थात् सदा रहने वाली है। संयोग (मिलाप) और वियोग (पृथकत्व) दो विरुद्ध क्रियायें नहीं हैं बल्कि क्रिया के दो फल हैं। क्रिया के दो परिणाम होते हैं, मेल-मिलाप अर्थात् (संयोग) या पृथकत्व अर्थात (वियोग)।

एक गेंद पूर्व की ओर से फेंकी गई, और दीवार से टकराकर लौट आई। इसी तरह जीवों के कर्मों से व्यवधान, (पृथकता) से संयोग और वियोग अर्थात सृष्टि और प्रलय होते हैं।

संयोग और वियोग गुण है, लेकिन गुण चार प्रकार के होते हैं, १. स्वाभाविक २. नैमित्तिक ३. उत्पादक ४. पाकज।

कर्त्ता की क्रिया से पैदा होने वाला गुण-पाकज होता है। न कोई वस्तु उत्पन्न होती है? न किसी वस्तु का विनाश होता है। कारण से कार्य रूप में आने का नाम उत्पत्ति है। और कार्य का अपने कारण में मिल जाने या (लय) हो जाने का नाम विनाश है। घास, जड़ी-बूंटी आदि स्वयं उत्पन्न नहीं होती, बल्कि जिस तरह घड़ी के फिनर में चाबी देने से जैसे बाकी पुर्जे चल पड़ते हैं, इसी तरह इस पृथ्वी रूपी घड़ी के सूर्य रूपी फिनर में ईश्वर की शक्ति प्रदत्त क्रिया से अर्थात् ईश्वर की शक्ति के द्वारा दी गई क्रिया से मेघ अर्थात बादल बनता है, वर्षा होती है, घास आदि पैदा होती है।

"ईश्वर में दो गुण हैं" - ईश्वर दयालु-यानी (रहीम) है और न्यायकारी यानी (मुंसिफ) भी है। इसलिए क्रिया के दो परिणाम हैं।

सृष्टि दो तरह की है, एक न्याय यानी अदल और इन्साफ की सृष्टि यानी दुनिया, दूसरी—दया, यानी (रहम) की सृष्टि या उत्पत्ति।

दया की सृष्टि में—सूर्य, अग्नि, वायु, जल आदि हैं, जो ईश्वर-दया करके जीवों को उनके कल्याण के लिए देता है। और आंख, कान, धन, माल आदि – न्याय की सृष्टि अर्थात् इन्साफ की सृष्टि है, जो ईश्वर···न्याय करके जिस जीव के जैसे कर्म यानी अफ़आल हैं उस जीव को उसी तरह कमोवेश (न्यूनाधिक) कर देता है।

परमात्मा में व्यतिरेक (इम्तियाज़ या तफ़रीक़) नहीं, परमात्मा के लिए यह नहीं कहा जा सकता कि वह फलां देश में है, फलां मुकाम में नहीं, फलां वक्त में था, फलां वक्त में नहीं था। न यह कि फलां चीज के होने से परमात्मा होता है, और उसके नष्ट हो जाने से वह नष्ट हो जाता है।

श्री जैन पं० गोपालदास जी बरैया—

गेंद के लौटने की हरकत (क्रिया) फेंकने वाले की नहीं, बल्कि वह हरकत (क्रिया) दीवार से पैदा हुई। और टक्कर लगना उसका हेतु कारण या एक बाअस हुआ। जब परमाणु नियमित मिलने से गतिशील यानी (मुतहर्रिक) होते हैं वह खुद गतिमान (मुतहर्रिक) नहीं।

जब ईश्वर अनादि है तो उसकी स्वाभाविक क्रिया यानी ज़ाती फ़ेल से हरकत मिलने के बाअस सृष्टि हमेशा रहनी चाहिए, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि—सृष्टि कभी उत्पन्न हुई। उत्पन्न विभाव यानी गैर ख़ासा (अस्वाभाविक) कहा जायेगा, स्वभाव यानी ज़ाती खासा नहीं। इसलिए अनादि हैं।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज—

श्री पण्डित जी ने अभी कहा था कि क्रियावान यानी (मुतहर्रिक) ही (हरक़त) क्रिया दे सकता है, अब यह कहना कि गेंद के लौटने की हरकत दीवार से पैदा हुई—

यह तो वदतोव्याघात यानी अपने वचन को ख़ुद रद्द करना अर्थात् काटना है, जब ग़ैर मुतहर्रिक (क्रिया रहित) चीज़ से हरकत (क्रिया) नहीं आ सकती तो दीवार से हरकत (क्रिया) क्यों कर आई?

ईश्वर नित्य है, उसकी क्रिया यानी हरकत भी नित्य है, संयोग और वियोग – दो क्रियायें नहीं है।

मैं पहले ही बतला चुका हूं कि—एक यानी हरकत के संयोग और वियोग दो फल हैं, परिणाम है।

एक ही पावर, इन्जन से निकली हुई हरकत (क्रिया) जुदी-जुदी (पृथक-पृथक) मशीनों में जाकर (पृथक-पृथक) काम करती हैं, कहीं काटती हैं, कहीं जोड़ती हैं। इस ही तरह दैविक क्रिया यानी ईश्वर प्रदत्त क्रिया एक है, मगर जीवों के कर्मों के सम्बन्धों से होने वाली सृष्टि और प्रलय के कारण भिन्न-२ परिणामों अर्थात् (फलों) वाली ज्ञान पड़ती है।

जिन परिमाणुओं का मेल होगा, उनके लिए यह आवश्यक है कि इनकी पृथकता (वियोग) भी हो, इसलिए सृष्टि के बाद प्रलय और प्रलय के बाद सृष्टि होती चली आई है।

हम यह नहीं कहते कि सृष्टि कभी (पहले-पहल) उत्पन्न हुई, सृष्टि सदा से ऐसे ही चली आई और ऐसे ही चलती जायेगी। सृष्टि सावयव (मुरक्कब चीजों का मजमुआ) अर्थात पदार्थों का समूह है। सावयव पदार्थों की छः अवस्थाये यानी हालतें साफ़ स्पष्ट दिखाई देती हैं। देखिये—

"जायते वर्धते विपरिणम्यते"

हर एक मुरक्कब चीज़ (सावयव वस्तु) पहले पैदा होती है यानी कारण से कार्य रूप में आती है। अर्थात् (इल्लत से मालूल) में आती है। फिर बढ़ती है, फिर उसकी हालत में तब्दीली (परिवर्तन) आती है। अर्थात् उसकी अवस्था में परिवर्तन आता है। परिवर्तन होगा तीसरा विकार, यह तीसरी अवस्था है।

जब सृष्टि परिवर्तनशील (क़ाबिले मुतबद्दल) है तो पहली दो अवस्थायें भी वैसी ही अनिवार्य हैं। यह पैदाइश से रहित नहीं हो सकती।

क्या वादी कोई ऐसी मिसाल ऐसा उदाहरण दे सकता है कि—कोई पदार्थ, कोई वस्तु परिवर्तनशील तो हो पर उसकी पैदाइश न होती हो ?

जैन पं० श्री गोपालदास जी वरैया—

मैं विषयान्तर यानी दूसरे मज़मून में नहीं जाना चाहता, स्वामी जी की तरह ! ये स्वामी जी की चालाकी है जो मुझे भी विषयान्तर में घसीट रहे हैं। मैं एक-एक विषय का निर्णय करूंगा, मेरा सवाल यह है कि—ईश्वर का स्वभाव नित्य है। और स्वभाव में अन्तर (फ़र्क़) हो नहीं सकता इसलिए सृष्टि सदा बनी रहनी चाहिए। अग्नि का स्वभाव जलाना है, वह हमेशा बना रहता है, इसमें विच्छेद कभी नहीं होता।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती—

पं० जी ! मैं मज़मून (विषय) से बाहर नहीं जाता हूं। हां ! आप अपना ख्याल अवश्य रखिये, आपने सृष्टि के उत्पन्न होने के विषय में कहा था, इस प्रश्न का मैंने दलील से उत्तर दिया, दलील देना, दृष्टांत देना और मानना 'विषयान्तर' में जाना नही है। मज़मून (विषय) से बाहर जाना इसको नही कहा जाता, सृष्टि पहले-पहल बनी यह आर्य समाज का सिद्धान्त नहीं है, आर्य समाज सृष्टि को प्रवाह से अनादि मानता है, यह आर्य समाज का सिद्धान्त है, जो सत्य एवं अटल है। सूर्य के बिना रात और दिन नहीं होते इसी तरह सृष्टि और प्रलय का हेतु परमेश्वर है।

सृष्टि और प्रलय, यह स्वभाव में विच्छेद नहीं बल्कि हरकत के दो फल हैं। जो जीवों के कर्मों के मेल से होते हैं। सूर्य की एक हरकत (क्रिया) गर्मी देना है, पर जिसका स्वभाव गर्म है उससे उसको दुःख होता है, और जिसका स्वभाव ठण्डा है, उसको सुख अनुभव होता है।

जैन पं० श्री गोपालदास जी वरैया—

जब ईश्वर का स्वभाव क्रिया यानी हरकत देना है तो क्रिया हमेशा बनी रहनी चाहिए। ईश्वर प्रदत्त क्रिया को यानी ईश्वर से दी गई हरकत को जीव रोक नहीं सकता, यदि रोक सके तो 'जीव'—'ईश्वर' से भी बलवान हो गया।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती—

इन्सान चीज़ों की हरकत को बदलता है, रोकता नहीं। सूर्य की किरण हर रोज़ निकलती हैं, कोई उनको रोक नहीं सकता, पानी के तेज बहाव को मनुष्य पत्थर आदि लगा कर बदल देता है क्या कोई कह सकता है कि किसी ने पानी के बहाव को रोक दिया ? बदलना भी तो हरकत (क्रिया) है। जीव ईश्वर की प्रजा है, न कि प्रति पक्षी (शरीक या मुखालिफ़)।

पाप-पुण्य, नेकी-बदी करती हुई प्रजा राजा की शत्रु यानी दुश्मन नहीं होती। प्रलय में भी एक क्षण भर के लिए भी क्रिया बन्द नहीं होती है।

जैन पं० श्री गोपालदास जी वरैया—

प्रलय में क्रिया यानी (हरकत) नही रहती, सृष्टि में भी दीवार आदि को स्थिर देखते हैं। क्रिया यानी हरकत अगर स्वाभाविक होती है तो कहां चली जाती है?

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती—

सत्य के लिए दृष्टान्त होता है, जीव का स्वाभाविक ज्ञान नित्य है, यानी हमेशा रहने वाला है, सुपुप्ति अवस्था में ज्ञान कहां चला जाता है? न सुषुप्ति में क्रिया ही नष्ट होती है। पता चलता है कि सुपुप्ति में भीतरी क्रिया (अन्दरूनी हरकत) रहती है, (जागने की हालत में बाहरी क्रिया रहती है)।

परमाणु प्रलय में टूटते हैं, परन्तु दीवार आदि में परमाणु प्रत्यक्ष में टूटते रहते हैं। स्वाभाव-रूपान्तर यानी दूसरे रूप में होना है, यह रूपान्तर हरकत (क्रिया) के बिना नहीं हो सकता सब पदार्थों में क्रिया (तब्दीली) होती रहती है। बनना और बिगड़ना दोनों स्वभाव नहीं हैं, जीवात्मा दिन (जाग्रति) में सज्ञान यानी ज्ञान के साथ या इल्म वाला होता है। रात को (सुषुप्ति में) ज्ञान या इल्म रहित। मगर यह स्वभाव में भेद या फ़र्क कहलाता है।

रोशनी शीशे के रंगों के मुआफ़िक (अनुसार) तब्दील होती दिखायी देती है। वह रोशनी बदलती नहीं है।

नोट—

यहां पर पाठ कट गया है, छपी पुस्तक उर्दू में अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण हालत में हैं। जिसको काफी प्रयास के बाद भी नहीं पढ़ा जा सका हमें इस बात का खेद है।

जैन पं० श्री गोपालदास जी वरैया—

जीव का ज्ञान अशुद्ध और·········**मूल कापी से मैटर गायब**·········हो गया। स्वभाव नहीं रहा मगर ईश्वर का विभाव नहीं ·········**मूल कापी से मैटर गायब** ·········या विरोध भाव नहीं होता। प्रलय और सृष्टि में हरकत एक सी रहती हैं, क्रिया यानी हरकत मुबद्दल नहीं, यानी तब्दील होने वाली या परिवर्तन शील नहीं, क्योंकि—स्वभाव यानी जाती खासा (गुण) है। अगर हरकत हमेशा नहीं रहती तो ईश्वर की दी हुई नहीं।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती—

पण्डित जी जरा बतलाइये—

(१) जीव में अशुद्धि कैसे आई?

(२) क्रिया में फल कैसे आये?

(३) परिणाम यानी तब्दीली या नतीजा आदि कैसे?

अग्नि में गर्मी और पानी में सर्दी स्वाभाविक है। कार्य यानी मालूल अनित्य या जवाल पज़ीर (नाशवान् होता है।

क्रिया यानी हरकत अनित्य नहीं होती है। घड़ी में हरकत या घड़ी का चलना कर्त्ता प्रदत्त या फ़ाइल से दिया हुआ स्वभाव या फ़ेल है। परिवर्तन (परिणामन्) यानी तब्दील होना आप सबका बतलाते हैं, मगर तब्दीली तीसरा विकार है।

क़ाबिल तब्दील या परिणामन् (परिवर्तन) शील चीज़ों के (जायते) (वर्धते) पैदा होना और बढ़ना—दो कारण होते हैं, यानी दो इल्लत हैं, जब क़ाबिल तब्दीली मानोगे तो पैदा होना और बढ़ना भी मानना पड़ेगा। पैदाइश के बग़ैर तब्दीली नहीं। क्रिया अर्थात (फ़ेल) की शक्ति नहीं बदलती बल्कि कार्य यानी मालूल बदलता है। आप एक मिसाल तो दीजिये जिसमें तब्दीली अर्थात (परिणामन्) हुआ हो। मगर इस चीज़ का पैदा होना साबित न हो।

जैन पं० श्री गोपालदास जी वरैया—

स्वभाव अर्थात ख़ासा नित्य या हमेशा रहने वाला है। जब क्रिया अर्थात हरकत ईश्वर का स्वभाव है, तो सृष्टि काल में जो सूर्य आदि नजर आते हैं, वे प्रलय के वक्त क्यों नहीं रहते ? आप बार-२ विषयान्तर (दूसरे मज़मून) में आ जाते हैं।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती—

क्रिया के फल अर्थात् नतायज संयोग और वियोग या मिलाप और अलहदगी दोनों हैं, संयोग सृष्टि अर्थात् पैदाइशी दुनिया और वियोग, प्रलय या क़यामत है। स्वाभाविक क्रिया अर्थात् ज़ाती हरकत बाक़ायदा होती है। वभाषिक क्रिया अर्थात् ग़ैर ख़ासा जो ज़ाति न हो बल्कि आरज़ी हो, ऐसी हरकत या हस्व-इरादा या इच्छा पूर्वक होती है। सूर्य आदि दया की सृष्टि है, और चक्षु या आंख, कान आदि न्याय इन्साफ़ की सृष्टि है। और हां ! दृष्टान्त या मिसाल मांगना मज़मून (विषय) से बाहर (विषयान्तर में) जाना नहीं है।

जैन पं० श्री गोपालदास जी वरैया—

प्रलय के परमाणु अर्थात् ज़र्रात मिलाये जावेंगे तो स्थिति अर्थात् क़ायमी साबित हो गई, अगर कुल परमाणुओं में क्रिया आ गई तो फिर वे मिलने नहीं चाहिये, चकमक-पत्थर, लोहे को खींचता ही है, हटाता नहीं। अगर कोई जबर्दस्ती हटा दे तो वह इसका कार्य या काम शुमार होगा या कहा जायेगा। संयोग और वियोग एक हरकत से नहीं होते, व्यवधान अर्थात् कमी आने पर वियोग होता है।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती—

वाह ! वाह !! मिसाल भी दी तो क्या दी ? चकमक पत्थर की ! पं० जी महाराज मिसाल गति अर्थात् हरकत की नहीं मांगी गई, बल्कि मिसाल इस बात की मांगी गई है कि कोई चीज़ ऐसी नहीं जो तब्दील तो होती हो, पर पैदा न होती हो। ऐसी मिसाल दीजिये। चकमक पत्थर इसकी मिसाल नहीं।

तब्दीली नित्य अर्थात् हमेशा रहने वाले पदार्थों में होती ही नहीं। पानी की हरकत को पत्थर रोकता नही इसलिए पत्थर जोरदार नहीं हो सकता कोई चीज़ पैदा शुदा (उत्पन्न होने वाली) न हो और क़ाबिले तब्दीली (परिवर्तन शील) हो इसकी मिसाल दीजिये।

जैन पं० श्री गोपालदास जी वरैया—

मैं बहरा होने के बाअस (कारण) सुन नहीं सका (दूसरे ने बताया) सब चीज़ें नित्य हैं। कोई कभी पैदा नहीं हुआ, किसी चीज़ की पैदाइश या नाश, न्याय शास्त्र के ख़िलाफ़ है। वस्तुओं (चीज़ों) का अवस्थान्तर होता है अर्थात दूसरी हालत में हो जाना।

परमेश्वर में भी विकार है, कभी सृष्टि को बनाता है कभी दुनियां को बिगाड़ता है, प्रश्न मेरा यह है, अगर परमेश्वर ने स्वभाव से क्रिया अर्थात् हरकत दी तो भी क्रिया अर्थात् हरकत दी हुई चीज़ों में संयोग या मिलाप नहीं होना चाहिये, वह तो एक ही तरफ़ दोड़ते चले जाने चाहिये।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती—

ईश्वर सर्व व्यापक है, सब पदार्थ उसके अन्दर है, अन्दर के पदार्थों में दिशा-भेद नहीं, एक तरफ से हरकत नहीं दी जा सकती, रूपान्तर प्रतिपत्ति परिणाम है। शक्ल में तब्दीली होने को परिणाम कहते हैं। और अवयवान्तर प्रतिपत्ति विकार है।

अर्थात् परमाणुओं में कमावेशी होना विकार कहलाता है। प्रकृति अवस्था है, द्रव्य नहीं ईश्वर में रूप नही, इसलिए रूपान्तर नहीं।

जैन पं० श्री गोपालदास जी वरैया—

एक स्वभाव के दो विरोधी गुण नहीं हो सकते, ईश्वर अखण्ड है, जिसके टुकड़े नहीं हो सकते, एक क्रिया की दोनों तरफ़ से हरकत नहीं, क्या दोनों हाथों से परमात्मा हरकत देता हैं ?

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती—

अन्दर की हरकत के लिए यह नियम नहीं है, ज़ख्म अर्थात् घाव भरने के लिए किसी इन्द्रिय या हवास की ज़रूरत नहीं है, पेट में मल्ल (गन्दगी) अर्थात विष्ठा है, मगर वदबू नहीं मालूम होती। परमात्मा विभु है, अन्दर-वाहर सव जगह मौजूद है। इसमें दिशा का भेद नहीं हो सकता, यह ख़राबी - परिच्छिन्न (ज़वाल-पन्जीर) में हो सकती है, ईश्वर को आपने परिणामी वताया था, तो परिणामी की शक्ति तो वदली गई। और अखण्ड की शक्ति नहीं वदलती, तव्दीली आ गई तो खण्ड-खण्ड हो गया। अखण्ड वो होता है जिसके टुकड़े न हो सकें, जो टुकड़े-२ हो गया ? वह अखण्ड कैसे रहा ?

अखण्ड को अगर परिणामी कहो तो आप ईश्वर के स्वरूप को ही नहीं समझे। स्वरूप को समझे बिना उसके गुणों का ख़याल किस तरह हो सकता है ? जब ईश्वर को अखण्ड वतलाते हो तो कोई जन्म या पैदा शुदा चीज़ ऐसी वतलाइये जिसमें कोई परिवर्तन न होता हो, या जिसमें परिवर्तन होता हो परन्तु वह पैदाशुदा न हो। ऐसी मिसाल मांगी थी, आप नहीं दे सके।

जैन पं० श्री गोपालदास जी वरैया--

स्वभाव एक जैसा होता है, हरकत भी एक जैसी होनी चाहिए, अन्दर की हरकतों में भी दो विरोधी दिशाओं में हरकतें नहीं हो सकती। अखण्ड और परिणामी में भेद नहीं है। अखण्ड उसे कहते हैं जिसके टुकड़े न हों रूपान्तर या दूसरी शक्ल में परिणाम होता है, जिसे खण्ड या टुकड़े नहीं कहा जा सकता, जीव भी कभी घोड़ा होता है, कभी चिऊंटी (चींटीं) होता है, चींटी से घोड़ा होना जीव का रूपान्तर होना या तव्दीली शक्ल होना सावित करता है खण्ड-खण्ड या टुकड़े होना नहीं।

मेरा सवाल फिर वही रहा है कि दो विरोधी दिशाओं में एक क्रिया नहीं हो सकती।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती—

अन्दरूनी हरकत चक्करदार होती है, इसमें दिशा-भेद नहीं है। दृष्टान्त से अपने वचन को सिद्ध कीजिए। घोड़ा हाथी-चींटी आदि की दलील कमज़ोर दलील है। घोड़ा आदि जिस्म (शरीर) बनता है, न कि जीवात्मा एक आदमी जो महल में बैठा हुआ है, उसे अगर जेलखाने में विठला दिया जावे तो उसकी अवस्था अर्थात् हालत में फ़र्क़ हो, जायेगा, न कि उसके जीव में। शरीर और जीव एक नहीं, शरीर मकान है, जीव (मकीन) अर्थात् मकान में रहने वाला, मकान बदलता है, उसमें रहने वाला नहीं बदलता, एक मनुष्य जो बड़े भारी कमरे में बैठा हुआ है, अगर उसको एक छोटी-सी कोठरी से विठला दिया जावे, तो क्या जीव की शक्ल बदलेगी ? कभी नहीं। हाथी, घोड़ा, शरीर में परिवर्तन अर्थात् तवदीली है, किसी चीज की शकल आकाश और वायु के निकल जाने से बदलती है। गेंद को दवाया उसके अन्दर से आसमान और वायु निकल गया, अर्थात् कुछ कम होने से खंडन होता है, जीव में से कुछ भी भाग (हिस्सा) कम नहीं होता, इसलिए इसका खण्डन नहीं होता, इसी वास्ते जीव परिणामी नहीं, अपरिवर्तन शील है। सूक्ष्म अर्थात् लतीफ़ में कशीफ़ अर्थात् स्थूल के गुण नहीं आ सकते , लोहे में अग्नि आती है, अग्नि में लोहा नहीं आता, आग में पानी की सर्दी नहीं आ सकती, मगर पानी में अग्नि की गर्मी आती है। इसलिये सूक्ष्म पदार्थ में स्थूल के गुण नहीं आ सकते, जीव और परमात्मा सूक्ष्म है, चेतन सबसे सूक्ष्म अर्थात् लतीफ़ है, इसलिए उनमें रूप या शक्ल नहीं, जव रूप नहीं तो रूपान्तर कैसा ?

जैन पं० श्री गोपालदास जी वरैया—

एक रूप से दूसरे रूप अर्थात् दूसरी शक्ल में होना परिणाम है। रूप का अर्थ वर्ण नहीं बल्कि स्वरूप है, जीव जब क्रोधी हुआ तब उसका रूप बदल गया, जब क्षमावान हुआ तब दूसरा रूप हो गया, यह शरीर का रूप बदलना नहीं कहा जा सकता, जीवात्मा का रूप बदलना है।

और ऐसा न माना जावे तो मुर्दे शरीर का रूप क्यों नहीं बदलता? इस वास्ते अखण्ड जीव में भी परिणाम होता है। आकाश सर्वव्यापी है, निकल कहां गया, आकाश जहां का तहां मौजूद है। एक चीज दूसरी चीज नहीं हो सकती। प्रकृति के परमाणुओं का कभी नाश नहीं होता, घट (घड़ा) आदि में न कोई दूसरी चीज़ आती है, और न जाती है।

हमारे मत में तो जीव ही परमेश्वर हो जाता है। और परमेश्वर ही जीव हो जाता है।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती—

रेल में बैठे हुए हम रोजमर्रा (नित्य) कहा करते हैं कि अजमेर आ गया, लाहौर आ गया, आगरा आ गया, मगर क्या दर हक़ीक़त (वास्तव) में यह शहर आते हैं? नहीं! कभी नहीं!! यह कौल (कथन) औपचारिक प्रयोग है, आकाश का निकल जाना भी औपचारिक प्रयोग है, अर्थात् (ताल्लुकात) सम्बन्ध से वह बात कहना जो दूसरे के अमल (व्यवहार) से ताल्लुक (सम्बन्ध) रखती हो। जब जीव ईश्वर होकर सिद्ध शिला पर हमेशा के लिए लटका रहा तो ईश्वर, जीव कैसे हो सकता है?

जीव ईश्वर हो जाता है, यह ख्याल (विचार) कमजोर है, ईश्वर कहते हैं ऐश्वर्य वाले को, और सब शक्तियां रखने वाले को, पर जैनियों का जीव तो वीतराग होता है, जिसके पास कुछ न हो, उसे वीतराग कहते हैं। जिसके पास कुछ हो ही नहीं उसे ईश्वर कैसे कह सकते हैं? फ़क़ीर को ईश्वर बतलाना अक़्लमन्दी (बुद्धिमता) नहीं है। परमात्मा वाचक जितने शब्द हैं उनके अर्थों से वीतराग का मेल कभी नही हो सकता। विष्णु शब्द का अर्थ है कि जो सब में व्यापक हो, एक देशी अर्थात् (महदूद) न हो, मगर जैनियों का जीव हालत नजात (मुक्तावस्था) में शरीर से निकलकर उर्ध्वगमन (ऊपर को जाता हुआ) सिद्ध शिला से जाकर लग जाता है, जिससे उसका एक देशी होना स्पष्ट सिद्ध है, जब एक देशी अर्थात् महदूद हुआ तो विष्णु कैसे? इसी तरह महेश और ब्रह्मा आदि शब्दों का अर्थ करने से वीतराग के लक्षण नहीं मिलते। अगर वीतराग जीव- ब्रह्मा, विष्णु, महेश, परमात्मा वाच्य ईश्वर बन जाता है तो लफ़्ज़ी तर्जुमा (शाब्दिक अर्थ) करके लक्षण अर्थात् तारीफ़ बताओ, सिर्फ कहने से काम नहीं चलता।

जैन पं० श्री गोपालदास जी वरैया—

"जीव चेतन लक्षणत्वम् गुण समुदायो द्रव्यम्" कारणाम् वर्गणायें। पुद्गल स्पर्श रस रूप लक्षणत्वम्॥

अर्थ—द्रव्य अर्थात् जौहर (मजमुआसिफ़ात) अर्थात गुणों का समूह होता है। चेतन सिफ़ात (गुण) वाला जीव है, स्पर्श स्वाद रूप (शकल) लक्षणों वाला पुदगल है, 'कारमाण दुर्गुणाय' सारी दुनिया में फैली हुई है, राग और द्वेष आदि से जब कारमाण दुर्गुणाय खीचती हैं, तब कर्म होता है, और साबिका (पूर्व) किये कर्मों से राग-द्वेष आदि का अनादि से सम्बन्ध है।

नोट—

सभापति अर्थात् मीर मजलिस ने पं० जी को रोक दिया, तथा निर्देश किया कि पण्डित जी महाराज आप मज़मून (विषय) से बाहर न जाइये। तब वादी अर्थात् मौतरिज़ ने सवाल किया कि क्या ईश्वर सृष्टि का कर्त्ता है? इतना कह कर बैठ गए।

यहां मूल कापी फटी हुई है... ....

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती—

जगत वह है जो चले और सृष्टि उसे कहते हैं जो बनाई गई हो, कार्य क्रिया अर्थात् हरकत से होता है, हरकत क्रिया विना फ़ाइल (कर्त्ता) के होती नही इसलिए सृष्टि का कर्त्ता अर्थात् फ़ाइल खुद ब खुद साबित है। फ़ाइल (कर्त्ता) दो किस्म (भांति) के होते हैं, एक स्वाभाविक तथा दूसरा नैमेत्तिक नियम पूर्वक, बतौर कायदा, हर एक चीज संयोग युक्त है, इसलिए संयोग का देने वाला या करने वाला कर्त्ता अर्थात् फ़ाइल होगा। हर एक फूल-पत्तें आदि चीजों में जो बनावट या सिनअत है वह शाने या वाक़ायदा फ़ैल करने वाले फ़ाइल का इज़हार कर रही है। ग्रहण आदि बाक़ायदा अर्थात् नियम से लगते है। फ़ेल का फ़ाइल (कार्य का कर्त्ता) बग़ैर चेतन या दख्ल रखने वाले के हो नहीं सकता इसलिए साबित है कि सृष्टि का कर्त्ता चेतन ईश्वर है।

जैन पं० श्री गोपालदास जी वरैया—

फ़ेल विना फ़ाइल के नहीं होता यह सवाल ठीक नहीं, अर्थात् (कार्य विना कारण के नहीं होता) यह सवाल ठीक नहीं, घास-फूंस आदि खुद्रो (स्वयं पैदा होने वाले) है। इन्हें कोई नहीं बोता, हरकत (क्रिया) स्वभाव से है। तो प्रलय में क्रिया (हरकत) क्यो नहीं होती ? कितने ही फ़ैल (कार्य) फ़ाइल (कर्त्ता) से पैदा होते हैं, कितने ही विना फ़ाईल के, देखिये स्वामी जी महाराज ! जौ, चना आदि कर्त्ता से पैदा होते हैं, घासफूंस विना कर्त्ता के।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती—

पं० जी ने सृष्टि का कर्त्ता मान लिया, घास-फूंस आदि सूर्य के आकर्षण अर्थात् (कशिश) और पानी के कारण से होते हैं। यह मैं पहले ही कह चुका हूं। विना फ़ाइल (कर्त्ता) के सृष्टि का उदाहरण दीजिए। घड़ी बिना चलाये नहीं चलती। ईश्वर के सब काम क़ायदे के अन्दर हैं, अन्दर की हरकत (क्रिया) में दिशा भेद (तफ़रीक सिम्त) नहीं होता। लेकिन वह हरकत चक्र में होती है। ग्रहण आदि नियम पूर्वक कर्त्ता का इज़हार कर रहे हैं, इसका आपने जवाब नहीं दिया।

जैन पं० श्री गोपालदास जी वरैया—

मैंने सृष्टि का कर्त्ता कबूल (स्वीकार) नहीं किया, मैंने यह कहा था कि कार्य दो तरह से होते हैं: एक फ़ाइल के ज़रिये दूसरे विना फ़ाइल के। बिना चेतन के भी फ़ाइल यानी कर्त्ता हो सकता है, जैसे सूर्य !

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती—

एक शय (वस्तु) की दो मुख़तलिफ़ हरकात यानी (विरोधी क्रियायें) हो सकती हैं, एक जीव, जिसके स्वभाव में गर्मी अधिक है, उसको सूर्य से कष्ट होता हैं, और जिसके स्वभाव में गर्मी कम है, सर्दी अधिक है उसको सूर्य से सुख होता है, इसमें सूर्य............

नोट—यहां मूल कापी से मैटर गायब है: ....

सूर्य की क्रिया में भेद नहीं है। फल में भेद है। मैंने बताया था कि भीतरी क्रियाओं में दिशा भेद नहीं होता।

नोट—यहां मूल कापी से मैटर गायब है..................

मिलने के स्वभाव वाले पदार्थ जब एक दूसरे के सामने आते हैं तो एक दूसरे से मिल जाते हैं। आग का स्वभाव संयोग (मिलाना) वियोग (अलग करना) हुआ, आग की हरकत स्वाभाविक है। ईश्वर बाहर से हरकत नहीं देता, वह आग की तरह अन्दर से हरकत देता है। क्योंकि वह परमाणु अर्थात् ज़र्रा-ज़र्रा में व्याप्त अर्थात् मौजूद है। हरकत संयोग-वियोग में रहती हैं। हरकत जाती नहीं। हमेशा बनी रहती है। हरकत (क्रिया) के दो फल साफ ज़ाहिर (स्पष्ट प्रकट) हैं। सूर्य की एक क्रिया के दो फल सुख और दुःख दोनों हैं।

जैन पं० श्री गोपालदास जी वरैया—

सुख-दुःख देना सूर्य का स्वभाव नहीं है, इसका स्वभाव गर्मी देना है, अग्नि के परमाणु सबमें मौजूद हैं; इसलिए वह खण्ड पदार्थ हैं।

खण्ड पदार्थ का उदाहरण—अखण्ड परमात्मा में नहीं घट सकता। साइंस (विज्ञान) भी ईश्वर को सृष्टि कर्त्ता नहीं मानती, साइंस-चीजों के स्वभाव से सृष्टि मानती है।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती—

सुख और दुःख अपने स्वभावानुसार पाये जाते हैं, साइंस भी हर एक चीज का सबब (कारण) मानती है, जिससे सृष्टि का हेतु-अर्थात् सबब-परमात्मा साबित होता है।

अग्नि की दलील-कमज़ोर नहीं, मिसाल धर्म में दी जाती है, अग्नि परमाणुओं ज़र्रों में मौजूद है, वह चारों ओर से हरकत (क्रिया) देती है, ईश्वर भी सारे विश्व में मौजूद है, देगची में गर्मी, एक देशी नहीं। इसी प्रकार ब्रह्माण्ड में परमात्मा भी एक देशी नहीं, इसलिए अग्नि का उदाहरण, विषम अर्थात् कमज़ोर नहीं।

आप धान और चावल का उदाहरण (दृष्टान्त) जो कि भिन्न-भिन्न समय अर्थात् (मुख्तलिफ़ औक़ात) में पैदा होते हैं, अनादि के साथ कैसे दे दिया करते हैं? चावलों को जो क्रिया (हरकत) मिलती है वह भी अन्दर की क्रिया (हरकत) है। और सृष्टि की हरकत (क्रिया) भी परमात्मा अन्दर से देते हैं।

जैन पं० श्री गोपालदास जी वरैया—

स्वामी जी महाराज! दृष्टान्त सब देशों में नहीं मिलता (घटता)। ईश्वर एक है, इस (अग्नि) में दो मुख्तलिफ़ (भिन्न-भिन्न) हरकात (क्रियाय) है। ईश्वर एक पदार्थ है, अग्नि के परमाणु (मुख्तलिफ़) भिन्न-भिन्न होते हैं। द्रव्य कर्म, भाव कर्म, विषय धर्म (गुण कर्म) मिलाने के लिए धान का दृष्टान्त दिया गया था।

नोट—यहां मूल कापी अधिक जीर्ण होने के कारण मैटर नहीं पढ़ा गया है...............

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी सरस्वती—

अग्नि एक है दो नहीं, जहां इख्तिलाफ़ न हो वहां दृष्टान्त घटता हैं, हमेशा पंडित जी इस बात को अपने ज़हन (दिमाग) में रक्खो। ईश्वर विभू है इसलिए वैशम्य (कमी-वेसी) या इख्तिलाफ़ नहीं, हरकत देने की ईश्वर और अग्नि दोनों में बराबरी है, हरकत क्रिया या तो अग्नि से आयेगी या ईश्वर से। इसलिए अग्नि शब्द ब्रह्म के नाम में भी आता है, अग्नि और ईश्वर के धर्म विषम अर्थात् मुख्तलिफ़ (भिन्न-भिन्न) हैं, ये किसी शास्त्र से साबित कीजिए।

शास्त्रार्थ के अन्त में—

स्वामी जी महाराज के बोलने के बाद ५ मिनट रह गये, तो यहीं पर श्री बाबू मिट्ठनलाल जी ने शास्त्रार्थ बन्द करने का आदेश देकर तभी सरकार (अंग्रेजी सरकार) का धन्यवाद किया, जिसके राज्य में शान्ति पूर्वक शास्त्रार्थ सम्पन्न हुआ।

शास्त्रार्थ का नतीजा (परिणाम)—

शास्त्रार्थ के अन्त में सभा के बीच में ही वहां उपस्थित श्री पं० दुर्गादत्त जी शास्त्री, और श्री पं० शम्भुदयाल जी ने जैन धर्म छोड़ने की घोषणा कर दी, एवं अगले दिन बाक़ायदा उनको वैदिक धर्म की दीक्षा दी गई। और उन्होंने जैन धर्म का सदा के लिए परित्याग कर दिया।

इन व्यक्तियों ने जब सभा में ऐसी घोषणा की तो जैन समुदाय को मानो सांप सूंघ गया हो, सारे जैन समुदाय में उदासीनता की लहर फैली हुई थी, एवं सभी जैन समाज बैठा हुआ ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे इनका कोई सगा मर गया हो और उसका बैठकर सभी 'चौथा' मना रहे हों।

नोट—

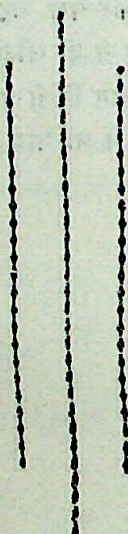
श्री स्वामी जी ने शास्त्रार्थ जारी रखने के लिए जैन पण्डितों से बार-बार आग्रह (तकाज़ा) किया मगर उन्होंने यह कह दिया कि आप सन्यासी हैं हम गृहस्थी है हमें पेट का भी फिक्र है। शास्त्रार्थ होता हुआ जब न देखा तो स्वामी जी एक दिन ठहरकर पंजाब चले गये लेकिन जिस कारण हमारे जैनी भाई खिसिया रहे थे उन्होंने मैदान खाली देखकर फिर शास्त्रार्थ का चेलेंज दिया। इत्तफ़ाक से सिकन्दराबाद गुरुकुल के अध्यापक श्री पं० यज्ञदत्त जी शास्त्री यहां आ गये और उन्होंने बेखौफ़ होकर हौंसले से जैन सभा में जाकर शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया और रात के डेढ़ बजे तक वह संस्कृत में शास्त्रार्थ करते रहे और प्रातःकाल तक शास्त्रार्थ करने की तैयारी दिखायी। मगर कर्म द्रव्य हैं या गुण? द्रव्य है तो उसका गुण क्या है? सुख और दुख एक विरोधी गुण एक द्रव्य में हो नहीं सकते—यदि गुण हैं तो किस द्रव्य का? इस प्रश्न पर जब जैन पण्डित कोई उत्तर न दे सके तब मीर मजलिस (सभापति) जी ने शास्त्रार्थ बन्द कर दिया। इससे जैनी लोग और भी खिसिया गये फिर लेख बद्ध शास्त्रार्थ के लिए नोटिस बाजी आरम्भ हुई श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज पंजाब जाते-जाते दिल्ली से ही लौटा लिये गये शास्त्रार्थ सुनने के लिए भीड़ बहुत हो गई थी शास्त्रार्थ में शान्ति रखने का उत्तर दायित्व जैनी लोग किसी प्रकार भी लेने को तैयार नहीं हुए इसलिए शास्त्रार्थ नहीं हुआ। "श्री पं० यज्ञदत्त जी के साथ जो संस्कृत में शास्त्रार्थ हुआ उसका विवरण प्रयास करने पर भी प्राप्त नहीं हो सका"!

"अमर स्वामी सरस्वती"



तीसवां शास्त्रार्थ

स्थान : मक्खनपुर, जि० मैनपुरी (उ० प्र०)



दिनांक : २१ मार्च सन् १९१२ ई०
(अपराह्न २ बजे से ५ बजे तक)

विषय : इस्लामी सिद्धान्तों की सच्चाई ?

शास्त्रार्थ कर्त्ता आर्य समाज की ओर से : श्री डा० लक्ष्मीदत्त जी आर्य मुसाफिर

शास्त्रार्थ कर्त्ता मुसलमानों की ओर से : श्री मौलाना अबुल फ़रह साहिब पानीपती

सहायक : श्री अब्दुल मजीद साहिब

मीर मजलिस अर्थात् शास्त्रार्थ के प्रधान : श्री बाबू रामसरूप साहिब गुप्ता, रिटायर्ड तहसीलदार' डाईरेक्टर,—ग्लास मैन्युफेक्चरिंग फैक्टरी लिमिटेड, मक्खनपुर

तमहीद अर्थात् (भूमिका)

मुवज़्ज़िज़ नाज़रीन। इन चन्द वर्कों को मैं आपके पेशे नज़र करना चाहता हूं। इसके लिये मैं किसी लम्बी-चौड़ी भूमिका लिखने की आवश्यकता नहीं समझता, मैं चाहता हूं कि आपको एक मिनट भी इन दिलचस्प लैक्चरों की इन्तज़ार न करा के असल विषय आरम्भ कर देता। लेकिन मुझे सन्देह है कि हमारे बहुत से भाई मेरी इस भूमिका को लिखना आवश्यक समझेंगे। और शायद उन्हें इन लैक्चरों को ठीक से समझ न आवे, इसलिए मैं मजबूर हूं। कि मैं आपको बतलाऊं कि मक्खनपुर जिला मैनपुरी में एक छोटा-सा कस्बा है। यहां पर सिर्फ़ चन्द घराने आर्य पुरुषों के हैं, जिसमें चौधरी रामफल साहब ज़िक्रे क़ाबिल हैं। इस साल सामाजिक पुरुषों ने हमेशा की तरह अपना उत्सव निश्चित करके जोर-शोर से तैयारियां आरम्भ की। हमारे मेहरबान-मुसलमान भाइयों ने भी उत्सव की सूचना पाते ही इन्हीं तारीख़ों में अपना उत्सव भी रख दिया। और लगे मुकाबले के लैक्चर होने। नौबत यहां तक आई कि मुबाहिसा (शास्त्रार्थ) तक बात पहुंच गई। और सारे इलाके में शास्त्रार्थ की ख़बर बिजली की तरह फैल गई। लोग बहुत संख्या में आने आरम्भ हो गये। यहां तक कि हमारे अक़लमन्द मुसलमान भाइयों ने मनादी तक भी करा दी कि—आज मुबाहिसा (शास्त्रार्थ) आर्य समाज से होगा। हालांकि उस समय तक शास्त्रार्थ का कोई पूर्ण निश्चय नहीं हुआ था, न ही नियम आदि तय हुए थे। उन्होंने पहले ही मुनादी करवा दी। शास्त्रार्थ की चर्चा हुई, तो आगरे से श्री डॉ० लक्ष्मीदत्त जी आर्य मुसाफ़िर साहिब जी को शास्त्रार्थ के लिए बुलवाया। डॉ० साहब ने मौक़े पर पहुंचकर अपने विपक्षी मुसलमान भाइयों को ललकारा और मुक़ाबले में शास्त्रार्थ करने का चैलेंज दे दिया।

डॉ० साहिब की शक्ल देखकर अंजुमन इस्लामियां में एक सन्नाटा-सा छा गया, तरह-तरह के बहाने मुसलमान भाई बनाने लगे। लेकिन हिन्दू ! मुसलमानों का शास्त्रार्थ के लिए बेहद शौक़ देखकर एक लम्बी-चौड़ी वार्तालाप के बाद जिसका लिखना यहां पर व्यर्थ है। डॉ० साहब ने आख़िर अपने मुसलमान भाइयों को शास्त्रार्थ के लिए तैयार कर ही लिया।

दो सम्मानित सरकारी अधिकारियों के सामने, बहुत बात-चीत के बाद शास्त्रार्थ हेतु नियम आदि निश्चय किये गये, जिनके आधार पर शास्त्रार्थ करना तय हुआ। जिनमें से कुछ मुख्य नियम नीचे दिये जाते हैं।

१. शास्त्रार्थ दिन में दो बजे से पांच बजे तक, और शाम को सात बजे से नौ बजे रात्रि तक होगा।
२. पहले आर्य समाज इस्लाम पर ऐतराज़ करेगा, फिर दूसरे वक्त इस्लाम-आर्य समाज के सिद्धान्तों पर ऐतराज़ करेगा।
३. आर्य समाज के दस नियम हैं। जिनकी कापी दी जावेगी।
४. शास्त्रार्थ के बीच कोई भी शास्त्रार्थ कर्ता एक दूसरे को अपनी ओर से सभ्यता के विरुद्ध, या कोई अपशब्द नहीं बोल सकेगा। अगर गवाही के लिए किसी पुस्तक को पढ़ना पड़े, और पुस्तक में ही ऐसी इबारत (पाठ) मौजूद हो तो उसके पढ़ने पर कोई ऐतराज़ न होगा।
५. इस्लाम, केवल-क़ुरान, हदीस मुस्लिम, (प्रामाणिक) को प्रमाण रूप में स्वीकार करेगा। और आर्य समाज चारों वेद, छः शास्त्र, उपनिषद प्रमाण रूप में मानेगा।
६. शास्त्रार्थ के प्रधान को अधिकार होगा कि—शास्त्रार्थकर्त्ता में से कोई भी अगर एक दूसरे को भड़कायेगा तो शास्त्रार्थ बन्द कर दें।

नोट—

शेष कुछ नियम—समय व प्रबन्ध के सम्बन्ध में थे। जिनको यहां लिखना व्यर्थ है।

मक्खनपुर के सम्मानित रईस जिनके सम्बन्ध दोनों पक्षों से एक जैसे ही थे। अर्थात् (निष्पक्ष) थे। काफ़ी विचार विमर्श के बाद श्री बाबू रामसरूप साहिब गुप्ता डाइरैक्टर ग्लास मैन्युफैक्चरिंग फैक्टरी (लिमिटेड) मक्खनपुर निश्चित्त हुए। जिनको दोनों पक्षों ने ही मिलकर चुना था।

आर्य समाज की तरफ़ से श्री डॉ० लक्ष्मीदत्त जी साहब और अहले इस्लाम की तरफ़ से श्री मौलवी अबुलफ़रह साहब पानीपती "शास्त्रार्थ कर्त्ता" निश्चित हुए। और अन्त में इन शर्तों पर शास्त्रार्थ होना २१ मार्च को तय हुआ। जिसके विवरण का पता मुबाहिसा करने वालों की तक़रीरों से अच्छी तरह लगेगा।

निवेदक—
"तारादत्त-एडवोकेट"

शास्त्रार्थ से पहले

शास्त्रार्थ का इन्तज़ाम एक बड़े खुले अहाते में किया गया। जो शामियानों से ढका हुआ था, पन्द्रह-पन्द्रह कदमों की दूरी पर दोनों पक्षों अर्थात् इस्लाम व आर्य समाज के प्लेट फार्म बड़ी खूबी से तैयार किये गये थे।

दोनों प्लेटफ़ार्मों के बीच एक तरफ़ बड़ी मेज रखी गई, जिसके आगे कुर्सियों पर जनाब प्रधान जी, तहसीलदार साहिब, कोतवाल साहिब, आदि बैठे हुए थे।

हर एक प्लेट फ़ार्म पर शास्त्रार्थ कर्त्ता की कुर्सी बीच में नियत की गई एवं उसके दोनों तरफ़ चार-चार, पांच-पाँच कुर्सियां और रक्खी गईं, जिन पर शास्त्रार्थ कर्त्ता के अलावा सम्मानित व्यक्ति व अधिकारी एवं अन्य उपदेशक विराजमान थे। आर्य समाज के प्लेट फ़ार्म पर डॉ० लक्ष्मीदत्त जी के अलावा एक स्वामी जी साहब व अन्य उपदेशक तथा श्री पण्डित शान्ती स्वरूप जी मौजूद थे। और इस्लामी प्लेट फ़ार्म पर, मौलाना मोलवी अबुल फ़रह, अब्दुल हमीद अफ़ज़ल, मुनाज़िर (पनिपती) के अलावा अंजुमन हिदायत लमुस लमीन देहली के चार-पाँच फ़ाज़िल मौलवी साहिबान् तशरीफ़ फ़रमा थे। हाज़रीन की तादाद चार-पांच हज़ार होगी। और तमाम मैदान खचाखच लोगों से भरा हुआ था। मकानात की छतों पर स्त्रियों का जबर्दस्त हुज्जूम जमा हुआ था। पहले साहब प्रैजीडैण्ट जलसा ने खड़े होकर बुलन्द आवाज में शास्त्रार्थ के नियम सुनाए। और थोड़ी सी प्रार्थना की कि शास्त्रार्थ के नियमों का पालन करें। और डॉ० साहिब से जिन्होंने पहले ऐतराज़ करने थे, उनको लैक्चर शुरू करने अर्थात् शास्त्रार्थ आरम्भ करने के लिये अर्ज़ की। और यथा स्थान बैठ गये।



शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री डॉक्टर लक्ष्मीदत्त जी आर्य मुसाफ़िर—

श्रीमान् प्रधान जी ! एवं सम्मानित अन्य अधिकारीगण !! व उपस्थित सज्जनों !!!

आपने शास्त्रार्थ की शर्तों को सुनकर ये नोट कर लिया होगा कि किस तरह मेरे प्यारे दोस्त मौलवी साहब ने इस मौक़े पर क़ुरान को बहस में लाने के लिये गुरेज़ (किनारा) किया । मैं चाहता था कि आज इस शास्त्रार्थ के मैदान में इस्लाम की जड़ बुनियाद व कुरान शरीफ़ को कसौटी पर कसा जाता । लेकिन अफ़सोस है कि मेरा ख़ास दोस्त मेरी नियत और क़ुरान की कमज़ोरी को पहले ही महसूस कर गया । इसलिये क़ुरान को मेरे ऐतराज़ात् से बचाने के लिए आपने इसका कलाम इलाही मानने को इस्लाम का उसूल करार न देना, और अपनी समझ में मेरे सामने इस्लाम के वो पांच नियम बराये ऐतराज़ात् पेश कर दिये, जिनकी निस्बत् मौलवी साहब को ख्याल होगा कि मैं इन पर शायद ही कोई ऐतराज़ कर सकूं । लेकिन मैं अपने दोस्त को बतला देना चाहता हूं । कि ये समझने में भी उसने सख्त ग़लती खाई है । क्यों कि जो पांच उसूल आपने इस्लाम के शास्त्रार्थ की शर्तों में ऐतराज़ात के लिये पेश किये हैं । मुझें उन पर भी ऐसे ज़बर्दस्त ऐतराज़ हैं । कि जिनका जवाब देना मेरे दोस्त के लिये बहुत ही मुश्किल होगा । और मैं अपने सम्मानित श्रोताओं को पहले लैक्चर में ख़सूसियत (विशेषता) के साथ ये नोट कराये देता हूं । या यूं कहो कि मैं पहले शुरूआत इसी से करता हूं । जो ऐतराज़ मैं आज इस्लाम के उन उसूलों पर करूंगा, आप यक़ीन और विश्वास रखिये कि मौलाना साहब उनका जवाब क़यामत (प्रलयकाल) तक भी नहीं दे सकेंगे । ग़ौर से सुनिये - मौलवी साहब ने उन पांच उसूलों में से सबसे पहले उसूल **"लाइलाहइल्लिला, मौहम्मदरसूलल्लिलाह"** बताया है । जिसका अर्थ है कि—नहीं है सिवाय कोई अल्लाह के, और मोहम्मद उसका रसूल है । जो इस्लाम का पहला सिद्धान्त है । मगर क्या ही मजे की बात है ? कि इस्लाम के इस सिद्धान्त पर जो सबसे पहला मेरा ऐतराज़ है । उसे एक मुसलमान शायर ने ही एक शैर के अन्दर किस खूबी के साथ अदा (प्रकट) किया है ।

रसूलो क़ासिदो पैग़ामों व नामा हाजिते नेस्त ।
कि दरम्यान मन वा तु हमीमन् तु बस एम ॥

श्री मौलवी साहब बीच में ही बैठे-२ बोले—

डॉ० साहब जी से गुज़ारिश है कि इस शैर को फिर पढ़ दें ।

श्री डॉक्टर साहब जी—

व्याख्यान के बीच में बोलना शास्त्रार्थ की सभ्यता के विरुद्ध है, (श्रोताओं को इशारा करते हुये) हां ! तो मैं कह रहा था कि मेरा पहला ऐतराज इस शैर के अन्दर ही बन्द है । इसका मतलब ये है कि शायर परवरदीगार को मुख़ातिब करके कहता है कि, "क्योंकि मेरे और तेरे बीच में, मैं और तू ही हैं, इसलिए मुझ तक ख़बर पहुंचाने के लिये तुझे किसी रसूल (पैग़ाम्बर) क़ासिद (पत्र वाहक) पैग़ाम (सन्देश) या नामा (पत्र) भेजने की ज़रूरत नहीं है । दूसरे शब्दों में इस पहले उसूल पर मेरा सबसे पहला ऐतराज़ ये है कि इस कलमा के आख़िरी हिस्सा में जो यह बतलाया गया है कि और मौहम्मद उसका रसूल या पैग़ाम्बर है । इस पर मैं कहता हूं कि ये बिल्कुल ग़लत है । क्योंकि किसी खास जगह से पैग़ाम भेजना, भिजवाना स्थूल वस्तु का काम है । जब वो सबके हृदयों में अन्दर व बाहर विराजमान है तो उसे मुजस्सिम (शरीरधारी) से पैग़ाम भेजने या पैग़ाम्बर की जरूरत नहीं । दूसरा ऐतराज़ मुझे उस कलमे पर है जिसमें मौहम्मद साहब को ही पैग़ाम्बर माना गया है । मैं पूछता हूं कि अगर अल्ला ताला का काम

बिल्कुल ही बिना पैग़ाम्बर के नहीं चल सकता था, तो क्या पैग़ाम के लिये उनको हज़रत मौहम्मद ही मिले ? ऐसी उनमें क्या विशेषता थी जिसके कारण खुदा ने मौहम्मद साहब को ही पैग़ाम्बर चुना । जब कि मौहम्मद साहब बिल्कुल ही उम्मी (अनपढ़) थे । और उस ज़माने में जबकि बड़े बड़े आलिम (विद्वान) मौजूद थे । तो फिर ख़ुदा ने क्यों नहीं किसी विद्वान को इस कार्य के लिए नियत किया ? तीसरा ऐतराज़ यह है कि कलमा में ख़ुदा के नाम के साथ ही साथ मौहम्मद साहब का नाम भी शामिल करना "शिर्क" की शिक्षा है । चौथा ऐतराज़ यह है कि—आप इस बात का सबूत दीजिये कि क्या मौहम्मद साहब ख़ुदा की ही तरफ़ से भेजे गये थे ? पांचवा ऐतराज़ यह है, कि अगर वाक़ई मौहम्मद-साहब के बिना भेजें ख़ुदा का काम नहीं चल सकता था, अर्थात् दुनियां को मार्ग दर्शन करने के लिये ख़ुदा का काम नहीं चल सकता था, तो क्यों न ख़ुदा ने उनको सृष्टि के आरम्भ में ही पैदा किया ? ताकि वो लोग जो हज़रत साहब के पैदा होने से पहले मर चुके थे, आपकी ज़ात (व्यक्तित्व) से फ़ायदा उठा सकते । इनके अतिरिक्त मुझे इस उसूल पर और भी बहुत से ऐतराज़ हैं, परन्तु मुझे यक़ीन नहीं है कि मौलाना साहब इन्हीं पांच सवालों के माक़ूल जवाब दे सकेंगे । इसलिए बकाया सवालात् में अपने पास सुरक्षित रखता हूं ।

श्री मौलवी अबुल फ़रह साहब—

साहिबान् ! डॉ० साहब ने कहा है, कि कुरान को बहस में हमने इसलिये नही रखा, कि हम डरते थे । वाह ! जनाब !! ये आपने क्या कहा ? वल्लाह ! अब मैं इस शास्त्रार्थ से पहले क़ुरान मजीद, फ़ुरकान हमीद के इलहामी होने पर बहस करूंगा । और चाहे छः महीने तक बहस जारी रहे, मैं हर्गिज़ नहीं हटूंगा । बल्कि क़ुरान मजीद को इलहामी साबित कर दिखाऊंगा, अभी पुलिस व थाना का इन्तज़ाम कर दीजिये, और महीना-दो महीना, साल-दो साल जब तक ये बहस ख़त्म न हो जावे मैं न ख़ुद हटूंगा और न आपको हटने दूंगा । और ख़ुदा की क़सम अगर मैं क़ुरान को इलहामी साबित न कर दिखाऊं तो मेरी जुबान कटवा डाली जाये । बस मेरी और आपकी बहस पहले इसी बात पर हो जाये कि इलहामी पुस्तक कौन सी है ? वेद या कुरान ?

एक अरब सतानवें करोड़ वर्ष से पहले वेदों का दुनियां में कहीं नामो निशान नहीं था । और वेदों को आर्य-समाज से पहले कोई जानता भी नहीं था, मगर कुरान का मज़हब बराबर दुनियां में चला आ रहा है । बस ! अब पहले वेद और क़ुरान ही की बहस शुरू कर दीजिये । और डॉ० साहब कहते हैं कि हमारे सवालात् का कोई जवाब ही न दे सकेगा ! अजी साहब !! आपके ऐतराज़ ही क्या है ? अगर आप अरबी अच्छी तरह जानते तो ये ऐतराज़ ही न करते । (मौलवी साहब ने दो-तीन आयतें पढ़ते हुए कहा) वाह ! वाह !! क़ुरान मजीद फ़र्माता है कि सिवाय ख़ुदा के कोई नहीं है । और आप कहते हैं कि शिर्क ! शिर्क !!, माज़ल्ला ! इस्लाम में "शिर्क" आप अरबी की लुग़ात (कोश) को अभी नहीं समझे । अन्यथा यह ऐतराज़ ही पैदा न होता । बराये मेहरबानी आप रसूल के मायने ही बता दीजिये । और रसूल व पैग़ाम्बर में भेद बतलाओ ? भेद कितने प्रकार के होते हैं ? रसूल—पैग़ाम्बर के सच्चे-झूठे जैसे भी बताओ कुछ तो मायने बताओ कि उसमें क्या निस्बत् (फ़र्क) है ?

नोट—

यह कहकर मौलवी साहब अपने निश्चित्त समय से पहले ही बैठ गये, और डॉ० साहब जवाब देने के लिये खड़े हुए तो प्रेजीडैण्ट साहब ने मौलवी साहब से कहा—कि "नहीं मैं इस वक्त उन्हीं विषयों पर बहस करने की स्वीकृति दे सकता हूं । जो शास्त्रार्थ की शर्तों व नियमों में तय हुए हैं । अगर आप निश्चय किये गये विषयों पर नहीं बोलना चाहते तो मैं आपका बकाया समय श्री डॉ० साहब जी को दिये देता हूं" । ये फ़ैसला सुनकर मौलवी साहब खड़े हो गये, और फिर तक़रीर (लैक्चर) शुरू कर दिया । इसी जद्दो-जहद (झगड़े) में पाँच मिनट व्यर्थ बीत गये ।

श्री मौलवी अबुल फ़रह साहब—

"शिर्क" के मायने बतलाओ ? "शिर्क" कितनी किस्म का होता है ? कौन सा शिर्क, इल्म हैं ? और कौन सा इबादत ? अगर आप इन बातों के मायने समझ जायेंगे तो जनाब ! आपको कोई ऐतराज़ ही न रहेगा ।

श्री डाक्टर लक्ष्मीदत्त जी आर्य मुसाफिर —

"कासिद के आते-आते, इक खत और लिख रखूं।
मैं जानता हूं वो जो लिखेंगे जवाब में ॥"

क्यों साहेबान् ! मेरी भविष्यवाणी कितनी सच्ची निकली !! मैंने ऐतराज़ात् पेश करने से पहले ही कह दिया था कि मेरे सवालात् का जवाब देना मौलवी साहब की ताक़त व लियाकत से बिल्कुल बाहर है। मैं पहले ही जानता था कि मौलवी साहब मेरे सवाल का क्या जवाव देंगे ? और आपने देख लिया कि मेरे प्यारे दोस्त ने मेरे ऐतराज़ात् को छुआ तक नहीं। बल्कि मेरी बातों का जवाब दिया तो ये कि उल्टे मुझ पर ही सवाल जड़ दिये। अब मैं हैरान हूं कि मौलवी साहब के साथ इस्लाम के सिद्धान्तों पर बहस करूं या आपको यहां बैठकर अरबी (व्याकरण) पढ़ाऊं ? मेरा ख्याल था कि मेरे मुकाबले में कोई पढ़ा-लिखा (आलिम) मौलवी खड़ा किया जावेगा। जो अरबी व इस्लामी सिद्धान्तों की जानकारी रखता होगा। जो मेरे पेचीदा सवालात का जवाब देने की कोशिश करेगा। मुझे बेहद अफसोस है कि—

"खुद गलतबूद आंचे मन् पन्दास्तम्"

अर्थात्—जो स्वयं गलत रास्ते पर है वह मुझे क्या रास्ता बतलायेगा ?

साहेबान् ! आपको याद होगा कि मैंने पांच सवाल किये थे। आपने देख लिया ना ! मौलवी साहब ने मेरे कौन-कौन से सवालों का जवाब दिया !! मोलवी साहब बार-बार मेरे लिए कहते हैं कि मैं अरबी नहीं जानता। लेकिन माशाअल्ला ! आप बड़ी अरबी जानते हैं। देखिये — **"लाइलाहइल्लिाह मुहम्मद रसूलल्लिाह"** इसके मायने आप करते हैं, कि "नहीं सिवाय खुदा के कोई माबूद" मैं पूछता हूं कि क्या मौलवी साहब बता सकते हैं कि माबूद का अर्थ किस शब्द में आता है ? साहिबान् ! इसके मायने हैं "तहकीक नहीं है सिवाय खुदा के कोई" अब मौलवी साहब बतावें कि ये बेरबत् जुमला (बेमुहावरा वाक्य) कैसे ठीक है ? कौन नहीं जानता कि सिवाय खुदा के हम छः-छः फ़ुट के हट्टे-कट्टे इन्सान मौजूद हैं। अजी ये मेज है, कुर्सी है, ज़मीन है, इसी प्रकार सैकड़ों चीजें है। और फिर इस पर आपका कलमा कहे कि कोई है ही नहीं। वाह ! वाह !! क्या बढ़िया कलमा है !!!

इसके अलावा मैं फिर कहता हूं कि अगर खुदा को अपने बन्दों को मार्ग दर्शन की ज़रूरत थी तो किसी काबिल आदमी को अपना पैगाम्बर या रसूल क्यों न बनाया ? दुनिया जानती है कि जो जिस बात के काबिल होता है, उसको उसी प्रकार का दर्जा दिया जाता है। अगर कोई व्यक्ति डाक्टरी का काम जानता है तो सरकार उसी को डाक्टर बनाएगी, न कि किसी घस खोदे को !

आपने यह कभी नहीं देखा होगा कि हमारी सरकार ने किसी डाक्टर की कुर्सी पर किसी पटवारी को बिठा दिया हो। या वकालत के लिए किसी अनपढ़ व्यक्ति को बिना परीक्षा लिए कोई डिग्री (प्रमाण पत्र) दे दिया हो। जब हम ये मामूली सा नियम सांसारिक कारोबार में देख रहे हैं, तो ये हो नहीं सकता कि खुदाई दरबार में बिना किसी योग्यता के वैसे ही दर्जा दे दिया जाता हो। मेरे मुकाबले में खड़े साहब का फ़र्ज़ है कि वे बतावें कि आं हज़रत में ऐसी कौन सी विशेषता थी, जिसके लिए आपको ये ओहदा (पैग़म्बरी) दिया गया। और दूसरे अगर आपको पैदा ही करना था, तो दुनिया के शुरू में ही पैदा क्यों नहीं किया। क्योंकि ऐसा न करने से खुदा के इन्साफ़ पर धब्बा आता है। आपके सिद्धान्तों के अनुसार, मौहम्मद साहब से पहले के आये सभी आदमी गुमराह हो गए और सब दोज़ख़ में ही जायेंगे। आपने कई दफ़ा कहा कि रसूल के मायने बतलाये जायें, लीजिये मौलवी साहब। आप भी क्या याद रखांगे, हम आपको रसूल के मायने ही बतलाये देते हैं। रसूल के मायने **"भेजा हुआ"** के लिए जाते हैं।

श्री मौलवी अबुल फ़रह साहब —

भाईयो ! मेरे मुख़ालिफ़ श्री डा० साहब हर बार चिल्ला-चिल्ला कर यही कहते हैं कि मौलवी साहब जवाब नहीं

दे सकेंगे ! मौलवी साहब जवाब नहीं दे सकते !! जिससे आपका यह मतलब है कि लोग ये समझें कि बस ! मौलवी साहब जवाब नहीं दे सके। लेकिन मैं कहता हूं कि दावा कमज़ोर इन्सान किया करता है। इस्लाम की सदाक़त (सच्चाई) के सामने आज दुनिया सर को झुकाये हुए है। वरें आज़म युरोप के बड़े-बड़े फ़िलासफ़र, बड़े-बड़े आलम मुद्दतों सर पटकते रहे, लेकिन कुछ जवाब न दे सके, आप तो चीज ही क्या हैं जनाब ?

मैं कहता हूं कि सारी दुनिया के आलिम भी जमा होकर इस्लाम पर ऐतराज़ करें तो वे इसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। आपने रसूल के अर्थ किये हैं "भेजा हुआ" लेकिन आप इलम नहीं रखते। नोट कर लें, क्योंकि जिसके मायने 'गश्तन्-गुफ्तन्" के वजन पर भेजना होते हैं। रसूल उस पाक ज़ात को कहते हैं जो ख़ुदा की तरफ से भेजा जाये। किताब उसके हाथ में हो।

आप बड़े जोरों से ऐतराज़ करते हैं कि जनाब आं हज़रत मोहम्मद साहब को क्यों मैं रसूल बनाया ? मैं कहता हूं। भला ये भी कोई सवाल है ? क्या आप बता सकते हैं कि आदित्य अंगिरा, वायु आदि ऋषियों ही पर मुक्कदस वेद नाज़िल करने की क्या ज़रूरत थी ? अगर खुदा ताला योरुप में से किसी को ले लेता और उसको अपना पैगाम्बर बना लेता तो आप यही कहते कि क्यों साहब इसी को क्यों बनाया ? अगर और किसी को लेता तब भी यही सवाल आता। अगर आपका चुना हुआ ही, ख़ुदा रसूल बना देता तो भी एक फरीक मुख़ालिफ़ रहता, और यही सवाल करता।

इस पर दूसरे आपका ऐतराज़ है कि खुदा ने मोहम्मद साहब को दुनिया के शुरू में पैदा क्यों नहीं किया ? अजी ! एक लाख चौरासी हजार नबी आये और चले गए। मोहम्मद साहब का नम्बर जब आगा तो खुदा ने उनको रसूल बनाया, जो पैगेम्बर जिस जमाने में व जिस कौम में आया, उसकी नज़ात (मुक्ति) हो गई। अभी लार्ड कर्जन थे फिर जनाब मिण्टो साहब आये, अब जनाब हार्डिग साहब हैं, लेकिन हां अब नवव्वत (नबी बनाने) का सिलसिला खत्म हो चुका है, अब किसी मुल्क या देश में कोई नबी नहीं आयेगा। अब किसी कौम में कोई नबी आया हो तो बतायें, अगर किसी ने नबी होने का झूठा दावा किया होगा तो उसे सारी दुनियां तो एक तरफ बल्कि दस बीस व्यक्तियों ने भी नबी न माना होगा। आप कहते हैं कि मोहम्मद साहब शुरू दुनिया में क्यों नहीं आये। मैं कहता हूं कि दयानन्द शुरू दुनिया में क्यों न आये ? "उम्मी" के मायने आप नहीं जानते, इसके ये मायने हैं कि जो किसी मकतब (मदरसे) में पढ़ा हुआ न हो, वर्ना आं हजरत को खुदा ने मां के पेट से पैगेम्बर बनाया और उनके सीने में कुरान को भरा।

श्री डाक्टर लक्ष्मीदत्त जी आर्य मुसाफिर—

साहिबान् ! आपने सुन लिया कि मौलवी साहब ने इस दफ़ा क्या गौहर अफ़सानी (मोती बिखेरना) की है, खुशी की बात है कि इस बार मौलवी साहब ने मेरे एक सवाल का जवाब देने की कोशिश की। ये दूसरी बात हैं कि वो इस बात में नाकामयाब रहे।

आपने फ़रमाया कि दावा करने वाला कमजोर होता है। लेकिन मालूम होता है कि मौलवी साहब की यादगार मजबूत नहीं है। क्योंकि आप साहिबान् ने सुना होगा कि आपने अपनी पहली ही तकरीर में ज़ोर-शोर से दावा किया था कि मैं कुरान को इलहामी साबित करूंगा। ना करूं तो मुझें फांसी पर लटका दिया जावे। ये किया जावे-वो किया जावे। क्यों मौलवी साहब ! क्या दावा कमजोर किया करता है ? अगर ऐसा ही हैं तब तो आप ख़ुद ही अपनी बात को कमज़ोर साबित कर रहें हैं। (जनता में हंसी······ · ······)

रहा दुनिया भर को चैलेञ्ज ! सो जनाबेमन !! पूरब के फिलासफरों को तो आप क्या जवाब देंगे, जबकि मुझ जैसे नाचीज ही ने चन्द मिनट में आपका काफ़िया तंग कर दिया। अर्थात् (गोलती उन्द कर दी)।

साहिबान् ! आपने देखा कि मौलवी साहब ने मेरे किए हुए रसूल के मायने को गलत बताया, और उसके मायने "मसबरी" के बताये। लेकिन मजे की बात यह है कि मायने आपने भी फजूल किये। यानी ,,भेजा जावे" और मौलवी साहब आप तो अरबी की वाक्फियत में बड़ी डींग मार रहे थे। ज़रा ये तो बताइये, कि "किताब उसके हाथ

में हो" ये कौन से कोश में लिखा है ? अजी हमने तो आज तक किसी को किताब हाथ में लाते हुए नहीं देखा, बल्कि जैसे हम पैदा होते हैं वैसे ही बेचारे नबी आते और चले जाते हैं। जरा बतलाईये तो सही कि ये मायने आपने लिये कहां से ? हम भी इस लुग़त (कोश) को देख लें। हो सकता है वह कोश हमारे देखने में न आया हो।

दूसरी बात यह है कि—

जादू वो जो सर चढ़ कर बोले।
क्या मजा जो ग़ैर पर्दा खोले॥

क्यों ? अय हाज़रीन जलसा !

आप साहिबान् को याद होगा कि अपनी पहली तकरीर (व्याख्यान) में मैंने क्या अर्ज किया था। कि जो ऐतराज़ात् मैं इस समय पेश करूंगा, उनका मौलवी साहब अकेले तो क्या, दुनिया भर के मौलवी भी मिलकर क़यामत तक भी माकूल जवाब न सकेंगे। आपने देख लिया कि मौलवी साहब भी साफ़ शब्दों में मान रहे हैं कि मेरा सवाल ऐसा जबर्दस्त सवाल है कि जिसका कोई जवाब नहीं। और वह सवाल हमेशा कायम रहेगा।

मौलवी साहब ! मैंने भी तो आरम्भ में आपसे यही कहा था कि मेरा सवाल आपसे हल न होगा, और हमेशा कायम रहेगा। लेकिन मैं आपको बतला दूं कि मेरे सवाल का जवाब जब तक आप मुसलमान बने हुए हैं तब तक नहीं दे सकते। इस्लाम को तिलाञ्जलि दे दीजिए, मेरे सवाल का जवाब कर्म थ्योरी (कर्म विज्ञान) से हल हो जायेगा। हम उनके अच्छे कर्म का नतीजा मानते हैं, लेकिन आप बतलाये कि आं हज़रत को किस परिणाम में रसूल की पदवी मिली ?

में फिर कहता हूं। और बड़े जोर से कहता हूं कि आप क्या बल्कि दुनियां भर के मुसलमान मिल कर भी इसका जवाब न दे सकेंगे। और आप तो खुद मान ही चुके हैं कि इसका कोई हल (समाधान) नहीं। जनावेमन् इसका हल सिर्फ़ वेदमुक्कद्दस से हो सकता है। आपने कहा है कि एक लाख चौरासी हजार नबी आये।

मैं कहता हूं कि लाख की बात तो छोड़िये केवल दस-बीस हजार नबियों के नाम ही गिना दीजिये तो मैं आपको मर्द जानूं। आपका ये कहना कि स्वामी दयानन्द शुरू दुनिया में क्यों न हुये ! यह ग़लत ऐतराज़ है। स्वामी जी को हम मुलहिम (जिस पर इलहाम हुआ हो) नही मानते। फिर आप इस सवाल को ये मिसाल देकर हल करना चाहते हैं, कि हिन्दुस्तान के लिये बादशाह जिसे पसन्द करता है। उसे वायसराय बनाकर भेज देता है। जैसे कि लार्ड कर्जन, मिन्टो व हार्डिंग आदि एक के बाद दूसरे आये। मगर मुझे मालूम होता है कि मौलवी साहब का दिमाग मेरे ऐतराज़ात् की वजह से बिल्कुल चक्कर खाने लगा है। वर्ना वो ये मिसाल अपनी सफ़ाई (पक्ष) में पेश न करते। क्योंकि दरअसल ये मिसाल तो मेरे ऐतराज़ात् के पक्ष में है। क्योंकि देश के बादशाह को जब हिन्द में नया वायसराय भेजने की जरूरत पड़ती है तो अपनी सलतनत में से सबसे क़ाबिल व्यक्ति को चुन करके ये पद्वी देता है। और हर हालत में उस चुने हुये व्यक्ति के पिछले किये गये कार्यों पर ख़ास ग़ौर करके उसे नियत किया जाता है। ना कि आपके अल्लामियां की तरह अन्धाधुन्ध बिना किसी योग्यता व बिना किसी की गई सेवाओं के किसी को यूं ही पकड़ कर वायसराय की हैसियत में भेज दिया जाता है। रहा आपका ये फ़रमाना कि मौहम्मद साहब के बाद अगर किसी ने नबव्वत (पैग़म्बरी) का दावा किया भी तो उसको दस-बीस व्यक्तियों ने भी न माना। अर्थात् ये बात विपयान्तर की है। बहस के अन्दर ही नहीं। लेकिन मैं मौलवी साहब की तमाम जानकारियों में और विस्तार पूर्वक बढ़ाकर बता देना चाहता हूं कि आप दूर क्यों जाते हैं। अपने घर ही में ऐसे आदमियों की तलाश शुरू कीजिये, और सबसे पहले आपको "मिर्जा क़ादयानी" मिलेगा, जिसके आज लाखों आप ही के भाई चेले (अनुयायी) हैं। और उसे मसीह मानते हैं। मगर, ख़ैर ! इन बातों से क्या लेना-देना। आप अगर दे सकते हैं तो मेरे सवालों का जवाब दीजिये।

श्री मौलवी अबुल फ़रह साहब—

वाह् जनाव ! क्या खूब !! बड़े ऐतराज़ लिये फिरते हो। इधर-उधर के ऐतराज़ लेकर और ईसाइयों की किताबों से पढ़-पढ़ाकर आप बड़े अकड़ते हैं। कि मौलवी साहब मेरे सवालों का जवाब ही न दे सकेंगे। क़यामत तक न दे सकेंगे। अजी वाह् ! आपके सवाल ही ऐसे क्या हैं ? अगर मैंने एक भी सवाल कर दिया तो आपको यहां से समाज का ताम-तोपड़ा उठाकर भागना पड़ेगा, आप तो अभी बच्चे हैं, मैंने हिन्दुस्तान भर में बड़े-२ मुनाज़िरे (शास्त्रार्थ) किये हैं। पण्डित लेखराम से मैंने मुनाज़िरा किया, स्वामी दर्शनानन्द से मैंने मुनाज़िरा किया, जब वो पण्डित कृपाराम थे। जब आपके ऐसे बड़े २ शास्त्रार्थ महारथी मेरे सामने पांव न जमा सके तो आप तो चीज ही क्या हैं ? मालूम होता है कि डाक्टर साहब की समझ में भी कुछ फ़र्क़ है। क्योंकि मैंने कहा था कि रसूल वो होते हैं जिनके ऊपर किताब होती हैं। मगर आप कहते हैं कि किताब हाथ में लेकर कोई नहीं आता। वाह् डाक्टर साहब ! मैंने तो आपको बड़ा क़ाबिल आदमी सुना था। मगर अब मुझे आगरा पहुंच कर पूछताछ करनी पड़ेगी कि आप कितने "मरीज" रोज मारते हैं। और जलसे में उपस्थित व्यक्ति सब इस बात को खूब जानते हैं कि मैंने आपके सवाल का जवाब दे दिया है मगर आप वार-वार इसी सवाल को दोहराये जाते हैं। भला ये भी कोई बुद्धिमता का सवाल है ?

मैं आपसे पूछता हूं कि बतलाइये, अग्नि, वायु, आदित्य पर क्यों वेद नाज़िल हुये ? उनमें क्या ख़ुसूसीयत (विशेषता) थी। उनके अलावा और किसी पर वेद क्यों नहीं नाज़िल हुये ? अंगिरा, आदित्य वैग़ैरा आपके ऋषि कौन सी यूनिवर्सिटी में पढ़े थे ? और एक ही वक़्त में चार ऋषियों की क्या जरूरत थी ? ये भी आपका कोई सवाल है ? कि मौहम्मद साहब को ही खुदा ने क्यों रसूल निश्चित किया, और किसी को क्यों नहीं किया। (मुसलमानों में चारों तरफ आमीन·········आमीन·········) और खुदानखास्ता किसी और को रसूल कर देता तो भी आप यह कहते कि उसको क्यों किया, अन्य किसी को क्यों नहीं किया। अर्थात् ये सवाल तो कभी भी ख़त्म नहीं हो सकता। और खुदा बन्द ताला किसी और को रसूल बना देता, आपका यह सवाल बदस्तूर क़ायम रहता। लेकिन आपकी कोई शेखी नहीं है, क्यों कि ये सवाल तो बड़ा पुराना है, और सवाल करने वाले जानकारी न होने की वजह से हमेशा से इस सवाल को करते चले आए हैं।

कुरैश (मुहम्मद साहब की जाति के लोग) ने भी यही सवाल किया था। मगर आपका इसमें क्या कसूर ! अगर आप पब्लिक को धोखा न दें तो आपकी रोटी-रोजी न चल सकें। और आप भूखों मर जायें। और जो आप ईसाइयों की वजह से टुकड़ा खा रहे हैं, वो फौरन छिन जाए। और इस्लाम पर आप क्या ऐतराज करेंगे। इस्लाम की बड़ी-२ बादशाहतें इस वक़्त भी क़ायम हैं, तुम्हारा क्या है ? इस्लाम आज सारी दुनियां में फैला हुआ है। तुर्किस्तान, चीन, तातार, रगून, अर्थात् हर मुल्क में इस्लाम का दबदबा क़ायम है। मगर तुम सिर्फ़ यहीं भारत में मर रहे हो। हमारी सलतनतें हैं, हमारी बादशाहतें हैं, बताओ अगर इस्लाम खुदा की तरफ़ से न होता और सच्चा मजहब न होता तो किस तरह दुनियां भर के करोड़ों आदमी उसके सामने सर झुका देते ? (जनता में हंसी············

आप इस्लाम में "शर्क" बतलाते हैं, (बहुत सी आयतें पढ़ते हुए) मौलवी साहब ने कहा कि— इस्लाम ही "शर्क" का बड़ा दुश्मन है। और मुसलमान आध्यात्म के सबसे बड़े मानने वाले हैं, मुसलमानों का बच्चा-बच्चा सरकार का वफ़ादार है। क्यों कि मुसलमान सिवा खुदा के किसी बादशाह तक के आगे भी नहीं झुकते। मुझे आप एक लाख नबियों के नाम पूछते हैं ? भला एक लाख नबियों के नाम कैसे कलम बन्द (लिखे हुए) हो सकते हैं। और ये आप झूठ कहते हैं कि कुरान ने एक लाख नबियों के होने का दावा किया है। ये भी सरासर आपका झूठ है कि मिर्जा क़ादयानी ने नबव्वत (नबी होने का) का दावा किया। आप बार-२ हमारे रसूल पर हमला करते हैं। मैं पूछता हूं कि हमारे रसूल ने क्या तुम्हारी बकरियां खदेड़ी (भगाई) थी जो तुम उन्हें बार-२ "उम्मी" (अनपढ़) कहते हो !

श्री डॉक्टर लक्ष्मीदत्त जी आर्य मुसाफिर—

लगे हो मुह चढ़ाने, देते देते गालियां साहब।
जबां बिगड़ी तो बिगड़ी थी, खबर लीजे जहन बिगड़ा॥

उपस्थित सज्जनो ! अब एक घण्टा हो चुका है। कि मैंने अपने दोस्त मौलवी अबुल फ़रह साहब के सामने पांच ऐतराजात् इस्लाम के सिद्धान्तों पर पेश किए थे। उनमें से सिर्फ़ एक सवाल को मौलवी साहब ने हल करने की कोशिश की। और बाकी तमाम वक़्त इधर-उधर की उलम-गुलम बातें कहने व खाली हवाई फ़ायरें करने में तथा मुझ पर नाजायज व तहज़ीब के ख़िलाफ़ हमले करने में बर्बाद किया। जिनके जवाब में मैं फ़ाजिल मौलवी साहब को सिर्फ़ इतना ही बता देना काफ़ी समझता हूं। कि मौलवी साहब इस्लाम की इन बातों से मेरे ऐतराजों से पीछा नहीं छुड़वा सकते। और अगर इन भड़काने वाली बातों से व गालियों से आपका ये मतलब हो कि मैं भी जवाब में ऐसी ही बातें सुनाऊं और यों झगड़ा होकर मुबाहिसा (शास्त्रार्थ) से जान बचे, सो मुझसे ये उम्मीद करना भी व्यर्थ है। क्योंकि मुझे आर्य समाज ने कुछ मसलों पर मुबाहिसा करने के लिए अपना वकील बनाकर खड़ा किया है। ना कि किसी की गाली-गलौच वा ज़ाति हमलों का जवाब देने के लिए ! और ये देखकर मेरा अफसोस और भी बढ़ जाता है कि मेरे ऐतराजात् ने मौलवी साहब को ऐसे चक्कर में डाला है, कि आपको मुझ पर कोई माकूल ज़ाति हमला भी तो करने की ताक़त नहीं है।

मैं हैरान हूं कि इन हजारों उपस्थित व्यक्तियों के दिलों पर, मौलवी साहब की जुबान से ये सुनकर क्या असर पड़ा होगा। कि "डाक्टर साहब की आर्य समाज से रोटियां बन्द हो गयीं तो ये भूखे मरने लगेंगे "आदि" जब कि उपस्थित लोगों में से ज्यादातर लोग ये अच्छी तरह जानते हैं कि मैं किसी धार्मिक कार्यों के लिए आर्य समाज से कोई पैसा नहीं लेता। ईश्वर की कृपा से मेरे हाथ में वो हुनर है, कि मैं अपनी कमाई से दस और आदमियों की परवरिश कर सकता हूं।

ख़ैर ! मैं इन बातों का कोई प्रचार नहीं करना चाहता, और मौलवी साहब से भी प्रार्थना करता हूं कि वो मेरा --अपना व पब्लिक का कीमती समय इन व्यर्थ की झूठी बातों में न बर्बाद करें।

अब रहा मज़मून बहस के विषय में, सो इतनी देर की बहस के बाद यहां बैठे लोगों ने समझ लिया होगा कि दरअसल मेरे ऐतराज़ात् के मुतल्लिक़ कोई जवाब नही दे सकते। इतनी देर में सिर मारकर बेचारों ने पांच में से सिर्फ़ एक सवाल को हाथ लगाया, मग़र आख़िरकार वो भी जवाब देने में कामयाब न हुए। और साफ़ शब्दों में कह दिया कि ये सवाल तो हल ही नहीं हो सकता। बल्कि हर सूरत में बदस्तूर क़ायम रहता है। मौलवी साहब ! यही तो मैं कहता था कि जब तक मुसलमान रहते हुए इन ऐतराजात् को हल करना चाहेंगे, तब तक आपसे ये हर्गिज़-२ हल नहीं होंगे। मगर इसका ये मतलब नही कि इस सवाल का कोई हल नहीं। आप वैदिक धर्म की शरण में आ जायें, वेद मुक्कद्दस के सामने सर झुकाइए और इस सवाल का समाधान पाइये। क्योंकि इस सवाल का हल सिर्फ़ मसलये तनासुख व कर्मथ्योरी (कर्म विज्ञान व आवागमन) के बिना माने नहीं हो सकता। और जो लोग इन दोनों मसलों के मानने वाले हैं उनके लिए ये कोई मुश्किल सवाल ही नही है। मिसाल के तौर पर जो ऐतराज़ मैंने आप पर किया था, जब आप इसका जवाब न दे सके तो आपने चार ऋषियों के बारे में वही सवाल मुझ पर डाल कर मेरा ऐतराज़ मुझसे ही हल कराया। लेकिन क्योंकि मेरे लिए ये कोई मुश्किल सवाल न था इसलिए मैंने फौरन कह दिया कि चार ऋषियों को इलहाम की अनुभूति उनके पिछले कर्मो की वजह से मिली। मगर आप तो पिछले जन्म के कर्मों को मानते नहीं, ना आवागमन को मानते हैं।

बस ! आप मेरे इस ऐतराज का कोई जवाब न दे सके। और न क़यामत तक दे सकेंगे, कि—"अल्ला ने मौहम्मद साहब ही को रसूल क्यों क़ायम किया ?" लेकिन जब बार-२ तकाजा करने पर भी आप अपनी योग्यता के

अनुसार मेरे पहले सवाल का कोई जवाब नहीं दे सकते तो मैं अब यही ठीक समझता हूं कि इन ऐतराजात् को हमेशा के लिए आपके सिर पर रख करके आपके दूसरे चार उसूलों पर अपने ऐतराजात् पेश करूं। इस ख्याल से कि शायद आपके पेश करदा दूसरे उसूल इस्लाम, यानी हज्ज करने पर मुझे ये ऐतराज हैं कि—

१. पहले तो हज्ज में काबा का तवाफ़ (परिक्रमा) करना तथा संगे असवद को बोसा देना (चूमना)। क्या बुत परस्ती नहीं है ?
२. हज्ज करने से किस प्रकार पिछले गुनाह किस तरह नाश होकर किस तरह मुक्ति मिल सकती है ?
३. तीसरा ऐतराज यह है कि खुदा ने आपके कहने के अनुसार नज़ात (मुक्ति) देने वाले इस खाना क़ाबा को मक्का में ही क्यों बनाया ? दुनियां के किसी और हिस्से में क्यों नहीं बनाया ?
४. ख़ुदा ने ईसाइयों व यहूदियों के बेतउल्ल मुक्कद्दस में ऐसी कौन सी कमी देखी थी जो उसकी पूर्ति में मक्का में नया घर बनाना पड़ा ?
५. अगर इस मकान के दर्शन करने से मुक्ति मिल सकती है, तो खुदा ने इसे दुनियां के आरम्भ में क्यों नहीं बनाया ? इसके बनने से पहले के जो लोग आकर मर चुके हैं, वो भी माफ़ी मांग कर जन्नत (स्वर्ग) में दाख़िल हो जाते ?

फिर नमाज़ के विषय में आप मेरे एक ही सवाल का जवाब दे दीजिए कि जिस तरह नमाज़ में आप बार-बार उठते-बैठते हैं, ऐसी हालत में परमात्मा के ध्यान में मन कैसे लग सकता है ? और रोज़ा पर भी मैं फ़िलहाल केवल एक ही सवाल करूंगा कि एक माह तक रात भर खाने और दिन भर भूखा रहने से मुक्ति किस प्रकार मिल सकती है ? गो मुझे इन तीन उसूलों पर और भी बहुत से ऐतराज़ात् है। लेकिन क्योंकि मुझे उम्मीद नहीं कि आपसे इनमें से किसी एक सवाल का भी माकूल जवाब मिले। इसलिए मैं इस समय इन्हीं पर ही पूछता हूं।

श्री मौलवी अबुल फरह साहब—

डाक्टर साहब ने अपने जो पुराने एतराजों को छोड़कर नये एतराज किये हैं, ये आपकी चालाकी है। मगर जब तक पहले सवालों का फैसला न हो जावेगा, मैं आपको आगे हरगिज़-२ नहीं चलने दूंगा। और जो एतराज अब किये गए हैं। दरअसल इन सवालों के जवाब में हजारों किताबें लिखी पड़ी हैं। अगर डाक्टर साहब उन्हें देख लेते तो फिर एतराज न करते। और खुदा कसम मैं सच कहता हूं कि मैं इनमें से एक-एक सवाल पर, साल-साल भर तक बहस करूंगा। और हज्ज का फ़िलसफ़ा एक हफ़्ता तक ब्यान करूंगा। डाक्टर साहब को पहले ये मालूम होना चाहिए कि बुत किसे कहते हैं। बुत उसे कहते हैं जिसके आंख, नाक, कान वगैरा हों, और उससे कोई ख्वाहिश करे। मगर क्योंकि संगे असवद् के कोई आंख, कान, नाक, नहीं थी इसलिए वो बुत नहीं कहा जा सकता, और क्योंकि कोई भी मुसलमान उसे मुक्ति पाने के लिए नहीं चूमता, और न ही तवाफ़ काबा से कोई ख्वाहिश रखता है। इसलिए ये बुतपरस्ती नहीं है। हज्ज एक तरह से दुनियां भर के मुसलमानों की एक कान्फ्रेंस (सभा) है। और आपस में मेल-जोल का अच्छा बेहतरीन तरीका है। ग़र्ज़ इससे सिर्फ़ यही है कि दुनियां के अलग-अलग हिस्सों के मुसलमान साल भर में एक मर्तबा आपस में यहां आकर मिले। और अपना विचार विमर्श करें। काबा का तवाफ़(परिक्रमा)करने का यह मकसद है कि जिस मकान के लाखों आदमी परिक्रमा करें उससे दुनिया की दूसरी कौम के लोग उनसे डरें। कि जिस मकान के इर्द-गिर्द हर साल लाखों आदमी फिरता है उसकी तरफ़ निगाह उठाकर देखना भी मुश्किल है। और यही वजह है कि रसूल्लिाह के ज़माने से लेकर आज तक हज़ारों इन्कलाब होने के बावजूद भी काबा मुसलमानों के ही कब्जे में हैं। और संगे असवद को जो बोसा देते हैं अर्थात् चूमते हैं। वो इसलिए चूमते हैं कि हमारे इस्लाम के पैगैम्बर ने उसको हाथ लगाया था। और क्योंकि हमारे प्यारे नबी के हाथ से ये पत्थर छुआ हुआ है इसलिए यादगार व मौहब्बत की वजह से मुसलमान उसको चूमते हैं। लेकिन बोसा देने से कहां से ये मतलब निकला कि उसकी परस्तिस (पूजा) करते हैं ? आप अपने

लड़के को बोसा देते हैं, अपनी बीवी को बोसा देते हैं। तो क्या आप लड़के व बीवी की पूजा करते हैं ? फिर आप पूछते हैं कि मुसलमान वहां जाकर क्या करते हैं ? अजी ! करते क्या हैं, जानवरों को मारते हैं। ताकि उन्हें हथियार चलाने की आदत बनी रहे और वक्त आने पर दुश्मन को तलवार के घाट उतार सकें। ये दरअसल मुसलमानों को वहां जहाद (लड़ाई) के लिए तैयार किया जाता है। ताकि वो अल्ला की राह पर वक्त आने पर खूब लड़ सकें। इसलिए हज्ज करना जरूरी करार दिया गया है। कुछ दूर से दोनों हाथ कन्धों पर रख कर जो चलते हैं, इससे मनसा ये है कि लोग देख लें कि मुसलमानों के हाथ टूटे हुए नहीं हैं। काबा के हज्ज से हम मुक्ति का होना नहीं मानते। रहा आपका ये सवाल कि ये स्थान मक्का में ही क्यों बना, और किसी मुल्क में क्यों नहीं बना ? ये बच्चों वाला सवाल है। क्योंकि काबा मक्का में न होकर फ़ारस में होता तो तब भी आपका यही सवाल रहता कि फ़ारस में क्यों बना ? अगर चीन में होता तो भी ये सवाल होता कि चीन में क्यों बना ? अर्थात् काबा दुनिया में कहीं भी कायम होता तो यही सवाल उस पर आपका होता जो कभी समाप्त होने वाला नहीं है। जैसे सरकार जिसे चाहती है उसे वहीं पर कायम कर देती है। और कोई उसे ये नहीं कह सकता कि उसे क्यों वहां कायम किया, इसी तरह का ये भी मामला है। और काबा दुनिया के आरम्भ से है। और आपको पता होना चाहिए कि दुनिया की आबादी मक्का से ही शुरू हुई थी।

श्री डाक्टर लक्ष्मीदत्त जी आर्य मुसाफिर—

मौलवी साहब ने भी ये समझकर कि कुछ भी जवाब न देने से मनघड़न्त दलीलें देकर मुसलमानों को खुश करना बेहतर है। मेरे एक सवाल का जवाब देते हुए खूब मनघड़न्त बातें बयान की हैं। लेकिन बेचारे मौलवी साहब जी को क्या मालूम था कि मैं एक ही हदीस पढ़कर इनकी इस सारी की कराई मेहनत पर पानी फेर दूंगा। (हदीस सही मुस्लिम से एक हदीस पढ़ते हुए डाक्टर साहब ने मौलवी साहब को मुख़ातिब करते हुए कहा) मौलवी साहब ! देखा ये हदीस क्या बयान कर रही है। और आप क्या कह रहे हैं। ये हदीस तो बसाफ शब्दों में बयान कर रही है। **"कि हज्ज करने से पिछले सारे गुनाह माफ होकर इन्सान जन्नत में बैरंग अर्थात् बिना किसी रोक-टोक के पहुंच जाता है"** और आप कहते हैं कि हज्ज करना एक कांफ्रेंस करना है। अब बतलाईये मैं आपकी बात मानूं या आपके इस्लामी पैगाम्बर की ? बस आपका कथन गलत हुआ। और मेरा सवाल बराबर कायम रहा। आगे चलकर जो कई एक दलीलें मौलवी साहब ने बनाई हैं, उन्हें सुनकर मुझे सख्त अफ़सोस होता है। जैसे आपने बतलाया है कि मुसलमान वहां जाकर लड़ाई में तैयार होने के लिए जानवरों को मारते हैं, वैसे तो आजकल बहुत से मुसलमान लड़ाई-झगड़ा व फ़िसाद को अच्छा नहीं समझते। लेकिन अगर लड़ाई-झगड़ों के बिना इस्लाम का काम चलना ही मुश्किल है और उसके लिए हर वक्त तैयार रहने की प्रेक्टिस जानवरों के मारने पर ही आधारित है तो मैं पूछता हूं कि क्या हिन्दुस्तान के बूचड़खानों में यह प्रैक्टिस (अभ्यास) नहीं हो सकता ? जो मुसलमान इस काम के लिए इतनी दूर जाते हैं।

फिर आपने कहा कि संगे असवद् को इस वास्ते बोसा देते हैं कि वो हमारे नबी के हाथ से छू गया है। क्यों मौलवी साहब ! क्या आप उन दूसरी तमाम चीजों को भी बोसा देते हैं जो जिन्दगी भर हजरत के हाथों से वक्त बेवक्त छुई जाती रही हो। (जनता में हंसी............) और औरत व बच्चों को बोसा देने की आपने एक ही कही। मैं पूछता हूं कि क्या कोई शख्स अपनी औरत व बच्चों को इस नियत से भी बोसा देता है कि इसके तमाम पिछले गुनाह माफ होकर वो जन्नत का हक़दार बन जाये। अगर नहीं तो आपकी मिसाल, दलील सहित गलत साबित होती है। अब रहा मेरा असल सवाल कि काबा मक्का ही में क्यों बना ? सो इसके विषय में मुझे कुछ ज्यादा कहने की जरूरत नहीं महसूस होती। क्योंकि मौलवी साहब खुद मान चुके हैं कि मेरे इस सवाल का कोई हल ही नहीं। और ये सवाल हर सूरत में कायम रहेगा।

मौलवी साहब ! मैं भी तो यही कहता हूं कि मेरा सवाल आपसे क़यामत तक भी हल नहीं हो सकता। और जब तक आप एक मुस्लिम शास्त्रार्थ कर्त्ता की हैसियत से मेरे सामने खड़े हैं, आपके लिए यह सवाल बिल्कुल हल होने

के बाहर है। क्यों साहेबान्! आपने जलसा में देख लिया, कि मेरे जो आज वाले प्रश्नों के जवाब मौलवी साहब देने में कैसी मजबूरी ज़ाहिर कर रहे हैं। और अपनी जुबान से यह मान रहे हैं कि मेरा यह सवाल भी मेरे पहले सवाल की तरह हल नहीं हो सकता।

आपको याद होगा मैंने शुरू में ही दावा किया था कि मौलवी साहब मेरे एक भी सवाल का जवाब नहीं दे सकेंगे। और मैं खुश हूं कि मौलवी साहब ने अपनी जुबान से मेरे इस दावे पर सदाकत (सच्चाई) की मोहर लगा दी है। क्योंकि अब तक मेरे दस-पन्द्रह सवालों में से आपने सिर्फ़ दो सवालों को हल करने की कोशिश की है, और आपने अपने कानों से दोनों दफा मौलवी साहब को साफ शब्दों में वह मानते हुए सुन लिया है कि इन दोनों सवालों का कोई हल नहीं हो सकता। और यह कि दोनों सवाल हर सूरत में ज्यों के त्यों बने रहेंगे। चाहे कोई उनका कितना भी जवाब दें। लेकिन इससे आप यह न समझें कि मौलवी साहब खुदा न ख़ासता किसी अयोग्यता की वजह से इन सवालों का जवाब नहीं दे सकते बल्कि मौलवी साहब खुद.एक विद्वान व क़ाबिल व्यक्ति हैं। लेकिन बेचारे मजबूर हैं कि इस्लाम की कमज़ोरियों व कमजोर सिद्धान्तों को सही (मजबूत) साबित नही कर सकते जिसमें इन बेचारे मौलवी साहब का कोई कसूर नहीं है।

श्री मौलवी अबुल फरह साहब—

देखिए डाक्टर साहब ने फिर वही बात कही कि मेरे सवालों का जवाब नहीं देते। मैं एक-एक इस्लामी उसुल पर महीनों और सालों बहस कर सकता हूं, दो-चार दिन डाक्टर साहब बहस करें तो हक़ीकत मालूम हो। इस्लाम के सिद्धान्त कुछ ऐसे-वैसे नहीं हैं। आज योरुप के बड़े-बड़े दार्शनिक इनको मान रहे हैं। और दुनियां भर पर इस्लाम का दबदवा है। आप बच्चे बनते हैं, यूं नहीं कहते कि न मालूम आपने कितने बच्चे जन्माये होंगे। आपने जो कहा है कि हज्ज में कन्धे क्यों हिलाते हैं? कंकरियां क्यो फेंकते हैं? कंकरियाँ फेंकने की वजह ये है कि पहले अरब में पत्थरों से भी लड़ाई हुआ करती थी, सो पैगेम्बर-खुदा ने मुसलमानों को हुक्म दिया कि तुम भी पत्थर मारो। बस ये कंकरियां फेंकना, पत्थरों वाली लड़ाई के लिए तैयार होना है। (जनता में हंसी·········) कन्धे हिलाने से ये मतलब है कि पहले अरब के काफ़िर जब हजरत के पास आते तो अपनी आस्तीनों में मूर्ति छुपा-छुपाकर ले आया करते थे। इस पर हजरत ने कन्धे हिलाकर ख़ाना काबा में दाखिल होने का हुक्म दिया, ताकि किसी की बगलों या आस्तीनों में बुत (मूर्तियां) छुपे हुए हों तो गिर पड़ें। और काबा के तवाफ़ (परिक्रमा) से जो आपने बताया की गुनाह माफ़ होते हैं। सो यह बिल्कुल गलत है। और संगे असवद को बोसा देने के विषय में, मैं पहले कह चुका हूं कि महज इसलिए बोसा दिया जाता है कि हज़रत मोहम्मद साहब के हाथ इस पत्थर ः लगे हुए थे। इसलिए हम मुसलमान लोग इसे मुतबर्रिक (पवित्र) मानते हैं। और ये एक आम बात है कि अपने बुजुर्गों के समय की चीज़ या निशानी को दुनिया में सब लोग अजीज समझते हैं। और हम मुसलमान इसे इज्जत के काबिल समझ कर मुंह इसलिए लगाते हैं कि हज़रत ने इसे हाथ लगाया था। और ये बात भी गलत है कि हज्ज से गुनाह माफ होते हैं। कोई चीज किसी का बोझ हलका नहीं कर सकती, न काबा किसी के गुनाह माफ़ करा सकता है, और न कोई और माफ़ करा सकता है। गुनाहों की सजा हर एक को जरूर मिलेगी। और इससे कोई नहीं बच सकता, और ये तो एक मामूली बात है कि हर अच्छे उत्सव में जाने से इन्सान गुनाहों (बुराइयों) से बच सकता है। क्योंकि जितनी देर वह सत्संगति में रहेगावह बुराई नहीं कर सकेगा, और शिवालय में हर एक मूर्ति के आंख-कान-नाक होते हैं, और बुत (मूर्ति) उसी को कहते हैं जिसके चेहरा हो। बस इसलिए संगे असवद् बुत नहीं हो सकता। (मौलवी साहब समय पूरा किए बिना ही बैठ गये)

श्री डाक्टर लक्ष्मी दत्त जी आर्य मुसाफिर—

सम्मानित उपस्थित सज्जनो! इससे पहले कि मैं मौलवी सांहब जी की किसी बात का जवाब दूं, मैं चाहता हूं कि सबसे पहले मौलवी साहब और आपके तमाम साथी मुसलमानों को हृदय से बधाई दूं, क्योंकि हम तो आज तक यही

सुनते आये थे, कि इस प्रकार के बहस-मुबाहिसों से कुछ नतीजा ही नहीं निकला करता, लेकिन शुक्र है कि इस चन्द घन्टों के शास्त्रार्थ से और कुछ नहीं तो, कम से कम एक तो बहुत ही अच्छा परिणाम निकला है। वो यह कि इतनी देर की बहस के बाद मेरे प्यारे दोस्त मौलवी साहब ने बड़े विशाल हृदय के साथ एक बड़े जबर्दस्त वैदिक सिद्धान्त के सामने सिर झुका लिया है। और वो वैदिक सिद्धान्त ये है कि गुनाहों को कोई व्यक्ति या चीज़ माफ़ नहीं करवा सकती हालांकि इस्लाम का कौमी सिद्धान्त है कि तौबा पैगाम्बरों की शिफ़ाअत (गुण) वा हज्ज वगैरा से पिछले गुनाह बख्शे जा सकते हैं। मैं कहता हूं कि क्या इस्लाम के एक इतने बड़े सिद्धान्त से सर फेर कर मौलवी साहब का वैदिक सिद्धान्त ग्रहण करना, सचमुच मौलवी साहब की इख़लाकी ताकत का सबूत है।

क्या एक भरी सभा में और वह भी एक मुसलमानी मंच पर खड़े होकर मौलवी साहब का इस आजादी व निर्भयता के साथ इस्लाम के एक बुनियादी सिद्धान्त से इन्कार करके वैदिक सिद्धान्त की शरण में आना कुछ कम हिम्मत का काम नहीं है। श्रोताओं में तालियों की गड़गड़ाहट से वातावरण गूंज उठा ············।

बस मैं इस इख़लाकी जुरंत व हक़ पसन्दी पर मौलवी साहब को खासकर और बाकी सब मुसलमानों को आमतौर से सहृदयता से मुबारिकवाद देता हुआ उम्मीद करता हूं कि अगर मुसलमानों ने इसी तरह तहक़ीक़े हक़ (सच्चाई) के लिए आर्य समाज के साथ कुछ रोज और बहस-मुबाहसे जारी रक्खे तो वह दिन दूर नहीं है जब हमारे बिछड़े हुए भाई नये सिरे से वेदों की शान के सामने सिर झुका कर हमारे गले लगने के लिए तैयार होंगे। अब रहा मसला निश्चित विषय की बहस का! मुझे आपकी सेवा में इतना ही कहना है कि ये पहला वक़्त शास्त्रार्थ की शर्तों के अनुसार आर्य समाज को इस्लाम पर ऐतराज़ करने के लिए दिया था, इसलिए मैंने वकील की हैसियत से आर्य समाज की ओर से इस्लाम पर पन्द्रह ऐतराज़ किए, जो आपने सुन लिए हैं, मेरे इन पन्द्रह ऐतराजात् में से तीन घण्टों में सिर्फ़ दो ऐतराज़ों के जवाब देने की कोशिश की, लेकिन आख़िर अपनी ज़ुबान से ही इकरार कर लिया अर्थात् मान लिया कि इन एतराज़ात् का कोई जवाब ही नहीं हो सकता। और ये ऐतराज़ात् हर सूरत में ज्यों के त्यों क़ायम रहेंगे। ये सब कुछ आपने अपने कानों से सुना और आंखों से देखा। अब मैं इन्साफ़ आप ही पर छोड़ता हूं। कि आप ही बतलाइए कि आर्य समाज की इस्लाम पर इससे बढ़कर खुली जीत और क्या हो सकती है। और इस्लाम की कमज़ोरी का इससे बढ़कर और क्या सबूत हो सकता है कि उसका वकील खुद मेरे सवालों को लाहल (जिसका कोई समाधान नही) मानता है। और अपनी मुसन्नद् वा मुस्सल्लमा हदीस मुस्लिम के हुकम पर अपनी बेतुकी दलील को मान्यता देता है। अब रही मौलवी साहब की हज्ज के विषय में दिलचस्प दलीलें। सो दरअसल मेरा इरादा इनको बहस में लाने का न था, क्योंकि ये सब तावीले (सफाइयां) मनघडन्त है। और किसी एक तावील (सफ़ाई) के लिए भी मौलवी साहब ने कोई हदीस या आयत या कुरान पैश नही की। हालांकि मैंने अब तक कोई बात बिना प्रमाण या हवाले के नहीं की। बस दरअसल मौलवी साहब की मनघडन्त तावीलों (सफ़ाइयों) पर बहस करने की कोई जरूरत न थी।

लेकिन यह मैंने ख्याल करके इन झूठी तावीलों (सफ़ाईयों) की भी कलई खोलनी ठीक समझी कि मेरे असल सवालों का तो मौलवी साहब क़यामत तक भी जवाब नहीं दे सकेंगे। चलो यही सही, पब्लिक का समय तो व्यर्थ न जावेगा, कुछ तो पब्लिक को जानकारी मिलेगी, और मैं खुश हूं कि इन तावीलों पर बहस करने से भी हमें बड़ा फ़ायदा हासिल हुआ है। यानी पहले तो मौलवी साहब ने इस्लाम के एक बड़े सिद्धान्त को इन हजारों मुसलमानों की उपस्थिति में साफ़ जवाब दे दिया है, दूसरा मसला जहाद (लड़ाई) को जिससे आज आमतौर पर मुसलमान जी चुराते हैं ज़रूरी मान लिया।

अब ये मेरी इस मुबाहिसे में आख़िरी तक़रीर है। इसके बाद मौलवी साहब तक़रीर करेंगे। और फिर इसके जवाब का मुझे मौका न मिलेगा। इसलिए मैं इसका जवाब भी अभी दिये देता हूं। क्योंकि मैं पहले ही से जान गया

हूं कि मौलवी साहब मेरी इस तक़रीर का क्या जवाब देंगे।

क़ासिद के आते-आते, इक़ ख़त और लिख रक्खूं।
मैं जानता हूं, जो वो लिखेंगे जवाब् में॥

ग़ौर से सुनिये! और नोट कर लीजिये कि मौलवी साहब अब अपनी आख़िरी तक़रीर (व्याख्यान) में मेरे किसी ऐतराज़ का जवाब तो देंगे नहीं। क्योंकि जब आप तीन घण्टा में एक भी सवाल का जवाब न दे सके तो अब पन्द्रह मिनट में क्या तीर मारेंगे? हां! अपनी इस तक़रीर में मौलवी साहब बजाय किसी ऐताराज़ का माक़ूलियत से जवाब देने के दो-चार इधर-उधर की कहेंगे। दस-पांच झूठी तावीलें (सफ़ाईयां) घड़ेंगे, दस-बीस मुझे गालियां देगें। और वक़्त पूरा करके बैठ जायेंगे। और इन बातों के जवाब देने की मैं कोई ज़रूरत नहीं समझता, और आपकी हक़पसन्दी व मुन्सिफ़ मिज़ाजी पर इन तीन घण्टों की बहस का फ़ैसला छोड़कर बैठ जाता हूं। अब आप मौलवी साहब के तीर देखे, कैसे-२ चलते हैं।

श्री मौलवी अबुल फ़रह साहब—

जनाब! आप जायेंगे कहां? मैं तो आपका आगरा तक पीछा न छोड़ूंगा, और वहां जाकर भी आपकी ख़बर लूंगा। मैं आप पर मुक़दमा चलाऊंगा, आप मुझे जानते नहीं, मेरा नाम अबुल फ़रह है। आप मुझे नहीं जानते, और मैं आपको खूब जानता हूं। आपकी योग्यता ही क्या है? जो आप इस्लाम पर ऐतराज़ कर सकें, जब कि आज तमाम दुनियां इस्लाम का लोहा मान रही है। और पूरब से लेकर पश्चिम तक सारी ज़मीन पर इस्लाम फैला हुआ है, आपने डींग मारी कि मेरे एक भी सवाल का जवाब नहीं दिया गया, यही कह कर चले जाना कि मेरे सवालों का जवाब नहीं मिला! जवाब नहीं मिला!! इससे क्या होता है। आपके ऐसे सवाल ही कौन से थे?

पब्लिक ने डॉ० साहब को खूब देख लिया है, कि आपकी असलियत क्या है, दो-चार किताबें पढ़कर आप भी आलिम (विद्वान) बन बैठे हैं। इसाइयों की किताबें पढ़कर इस्लाम पर ऐतराज़ करने चल दिये, अजी जनाब! आपने इस्लाम को अभी तक समझा ही नहीं, अगर किसी अलिम (विद्वान्) से समझ लेते तो आपको ऐतराज़ ही कोई न रहता और माशाअल्ला! आप कहते हैं कि मैंने पैग़ाम्बर की अज़मत (महत्ता) से इन्कार कर दिया।

तौबा! तौबा!! इतना बड़ा झूठ!!! अगर आप ये समझ लेते कि गुनाह कितने किस्म का है तो मुझ पर दोष न लगाते कि मैंने गुनाहों की माफ़ी से इन्कार किया है। जनाब गुनाह शग़ीरा (छोटा) व कबीरा (बड़ा) दो तरह के होते हैं, जिसमें से शग़ीरा गुनाह माफ़ हो सकते हैं। कबीरा नहीं। और जहाद (लड़ाई) के बारे में आपने महज़ गलत और पब्लिक को धोखा देने के लिए कहा है, कि जहाद (लड़ाई) हमारे यहां इजाज़त है। मैं आपको एक हजार रुपया इनाम देता हूं अगर आप कुरान शरीफ़ से एक आयत भी जहाद की दिखला दें।

नोट—

(१) - इस मौके पर डॉ० साहब ने बैठे ही बैठे कहा—कि आप कुछ भी न दें, मगर मुझे सिर्फ़ इजाज़त दें, मैं अभी-२ आपको एक क्या दस-पांच आयतें दिखला सकता हूं।

(२)—मौलवी साहब ने गर्ज कर कहा, खामोश! आपको मेरे वक़्त में बोलने का कोई हक़ नहीं है। आपको याद होना चाहिए कि मैंने शास्त्रार्थ के शुरू में आपको वह शेर दोबारा पढ़कर सुनाने के लिए कहा था, मगर आपने मुझे बोलने पर मना कर दिया था, एवं उसे..................जलसे में उपस्थित लोगो, आपको महज़ धोखा दिया जा रहा है कि क़ुरान में जहाद (लड़ाई) की तालीम है। क़ुरान में जहाद व फ़साद की कोई तालीम नहीं है। बल्कि मुसलमान तो सरकार की एक वफ़ादार प्रजा है। और सरकार के लिए मुसलमानों का बच्चा-२ अपनी जान तक देने के लिए तैयार है। इस्लाम दुनियां में अपनी सच्चाई की वजह से फैला है। न कि जहाद की!

(दिनांक २१ मार्च का दूसरा वक्त)
(७ से ६ बजे शाम तक)

यह दूसरे वक़्त का शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ, जिसमें इस्लाम की तरफ़ से आर्य समाज के सिद्धान्तों पर ऐतराज़ होने निश्चित्त हुए थे। श्रोताओं की संख्या इस दूसरे समय में पहले वक़्त से बहुत ज़्यादा हो गई थी। ठीक ७ वजे शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ।

श्री मौलवी अबुल फ़रह साहब—

इससे पहले कि मुनाज़रा शुरू हो, मैं यह पहले ही कहे देता हूं कि इस वक़्त कोई मुनाज़िर पहले मुनाज़रा के सम्बन्ध में कोई बात न कहे, और·········(बीच में ही)

श्री बाबू रामस्वरूप साहिब गुप्ता (शास्त्रार्थ के प्रधान)—

आपको इस किस्म की तक़रीर करने और नये नियम व शर्तें निश्चय करने का कोई हक़ नहीं है। इसलिए मेहरबानी के साथ मुबाहिसा आरम्भ करिये।

श्री डॉक्टर लक्ष्मीदत्त जी आर्य मुसाफ़िर -

इससे पहले कि शास्त्रार्थ आरम्भ हो मुझे पांच मिनट क़ुरान से जहाद की आयतें दिखाने के लिए दिये जायें। क्योंकि·····················(बीच में)

श्री बाबू रामस्वरूप साहिब गुप्ता (शास्त्रार्थ के प्रधान) -

बराये इनायत आप अपनी जगह पर तशरीफ़ रखिये। वक़्त इन व्यर्थ की बातों में न खोइये, मैं कोई इजाज़त किसी बात के लिए इस वक़्त न दूंगा।

श्री मौलवी अबुल फ़रह साहब—

सामईन जलसा! इससे पहले कि मैं पहले आर्य समाज के नियम पढ़ना शुरू करूं, ये ज़रूरी मालूम होता है कि मैं आपको यह बतला दूं, क्योंकि मज़हब किसी इन्सान का बनाया हुआ नहीं है। बल्कि ख़ुदा की तरफ़ से है, इसलिए मज़हब के उसूल भी ख़ुदा के बनाये हुए होना जरूरी है। ना कि इन्सान के। बस! आर्य समाज को चाहिये कि अपने दसों नियम, वेद के मन्त्रों के अनुकूल साबित कर दे।

दूसरे जब हम आर्य समाज के उसूलों पर ऐतराज़ करते हैं तो हमें जवाब दिया जाता है कि, क्योंकि तुम संस्कृत नहीं पढ़े हो, इसलिए तुम नहीं समझ सकते। अतः अब आर्य समाज का फ़र्ज़ है, कि इन सब उसूलों को उर्दू में तर्जुमा करके हमें दे। और आर्य समाज के नियमों में जिस क़दर भी ग़ैर उर्दू लफ़्ज है। जैसे सर्वशक्तिमान आदि, इन सबका एक-२ करके सलीस (सरल) उर्दू में हमें तर्जुमा करके दे दें, तब मैं इन उसूलों पर ऐतराज करूंगा। और साइन्स के हवालों व दलीलों से तथा हर तरह से उन्हें ग़लत साबित करूंगा। और अगर मैं इनको सत्यार्थ प्रकाश के ख़िलाफ़ लिखे हुए दिखला दूं, तो आप ये न कह सकेंगे कि हम सत्यार्थ प्रकाश को नहीं मानते। उसूलों में यह भी होना चाहिए कि ख़ुदा से मिलने के क़ायदे हों। और यह भी दिखलायें कि आपके उसूलों में मुक्ति के क़ायदे-कानून कहां हैं? बस आप सबसे पहले मुझे अपने हर एक उसूल व हर उसूल के संस्कृत शब्द का सलीस (सरल) उर्दू में तर्जमा कर दें। तब मैं ऐतराज़ करूंगा। और इसी बात के लिए मैं अपना बाक़ी समय भी आपको देता हूं, कि आप मुझे कुल अलफ़ाज के तर्जुमे की लिस्ट बना कर दे दीजिये। (यह कह कर मौलवी साहब अपना बोलने का समय समाप्त किए बिना ही बैठ गये)

श्री डॉक्टर लक्ष्मीदत्त जी आर्य मुसाफिर—

न खंजर उठेगा न शमशीर उनसे।
ये बाज़ू मेरे आज़माये हुये हैं॥

मुवज्जिज़ सामईनजलसा ! देख लिया आपने, मौलवी साहब का मुवाहिसा, मैं तो पहले ही जानता था, कि ना तो आप मेरे ऐतराज़ात् ही का जवाब दे सकेंगे, और ना ही आप आर्य समाज पर कोई माकूल ऐतराज़ ही कर सकेंगे। जो उत्तर आपने मेरे प्रश्नों के दिये वो तो आप सुन ही चुके होंगे। अब जो प्रश्न आपने आर्य समाज के नियमों पर किए हैं, वो भी मुलाहज़ा फ़रमा लीजिए। मौलवी साहब कहते हैं कि मुझे पहले आर्य समाज के दसों नियम व देव नागरी भाषा से उर्दू में तर्जुमा करके फिर उन नियमों में जिस क़दर भाषा के शब्द हैं, उन सबका सलीस (सरल) उर्दू में तर्जुमा करके दो। तब कहीं जाकर आप आर्य समाज के नियमों पर प्रश्न कर सकेंगे। मैं कहता हूं—ये शास्त्रार्थ का मैदान है, या कोई मकतब या मदरसा ? कि पहले मैं मौलवी साहब को बैठा कर भाषा पढ़ाऊँ और आर्य समाज के नियमों में जिस क़दर भी भाषा के शब्द आये हैं उन सबका आपको अनुवाद करके समझाऊँ। (जनता में बेहद हंसी······फिर मौलवी साहब मुझ पर प्रश्न करें। मौलवी साहब ! ये कोई पाठशाला या ट्रैनिंग स्कूल नहीं है। कि मैं आपको पढ़ाऊं, मैं तो यहां आर्य समाज की तरफ़ से शास्त्रार्थ करने आया हूं। और मुझे उम्मीद थी कि यहां की अंजुमन इस्लामियां कम से कम मेरे मुक़ाबले पर किसी ऐसे शख्स को लाकर खड़ा करेगी जो आर्य समाज के उसूलों को समझ-कर उन पर ऐतराज़ कर सके। मैं मौलवी साहब से दरयाफ़्त करता हूं कि अगर मुसलमानों की तरह आर्य समाज भी आपके मुकाबले में ऐसे व्यक्ति को खड़ा कर देता जो आपसे इस्लाम के उसूलों व शब्दों का भाषा में अनुवाद करके देने की प्रार्थना करता, तो क्या पहले तीन घण्टा जो मुवाहिसा हुआ, ये मुमकिन था ?

बस मुझे यहां के मुसलमानों पर अफ़सोस है कि उन्होंने ऐसा व्यक्ति मुक़ाबले में पेश न किया। जो कम से कम सिद्धान्त तो दर किनार, भाषा तो जानता होता। भला जो शख्स मामूली भाषा तक न जानता हो, वो आर्य समाज के सिद्धान्तों पर क्या बहस कर सकता है ? और मेरे ख्याल में मुसलमानों के लिए यह बड़ी शर्म की बात है। इसलिए मुसलमान लोग पहले इन मौलवी साहब को किसी गुरुकुल में पढ़ने के लिए भेजें। ताकि ये कुछ पढ़ कर आयें, तब इन्हें शास्त्रार्थ के लिए खड़ा करें। शास्त्रार्थ करना बच्चों का खेल नहीं है। ऐरा-गैरा, नत्थू खैरा जो चाहे शास्त्रार्थ कर ले। या मैं ये समझूं कि शास्त्रार्थ से जान छुड़ाने के लिए मौलवी साहब ने ये बहाना अख्तियार किया है।

(शास्त्रार्थ स्थल में बैठे हुए मुसलमान भाईयों में आपस में काना-फूंसी करना ········) कि उनका मुनाज़िर इस्लामी प्लेटफ़ार्म पर खड़ा होकर शास्त्रार्थ के बीच में फ़रीक़ मुख़ालिफ़ (विपक्ष) से इस किस्म की प्रार्थना करे। रही मौलवी साहब की ये बात ! कि आर्य समाज के उसूलों में कि ख़ुदा से मिलने व मुक्ति का क़ायदा कहां बतलाया है ? ये सवाल करके मौलवी साहब ने आर्य भाषा से अपनी अज्ञानता की दलील पर सदाक़त की मोहर लगा दी है। क्योंकि अगर मौलवी साहब आर्य समाज के नियम पढ़ सकते तो उन्हें मालूम हो जाता कि आर्य समाज का दूसरा नियम साफ़ शब्दों में बता रहा है कि जो परमात्मा ऐसे-२ गुणों वाला है उसकी उपासना करनी चाहिए।

मौलवी साहब यहां तो सिर्फ़ परमात्मा की उपासना ही मुक्ति का तरीक़ा है। गुनाहगार भी मोहम्मद साहब की सिफ़ारिश से नजात पा जायें।

मैं हैरान हूं ! साहेबान !! आपको भी याद होगा कि मौलवी साहब ने मुनाज़रे के बीच में कहा था कि अजी आप क्या चीज हैं। मेरे सामने पण्डित लेखराम व स्वामी दर्शनानन्द जी जैसे शास्त्रार्थ महारथी भी न टिक सके ये इस बात का सबूत है, कि मौलवी साहब भाषा तक जानते नहीं, और शास्त्रार्थ किए इतने बड़े-२ शास्त्रार्थ महारथियों से ! क्या आप लोगों को यकीन आता है कि मौलवी साहब ने शास्त्रार्थ करना तो दर क़िनार उनके दर्शन भी किए हों। जनता में हंसी······) मौलवी साहब ! यहां सिफ़ाअत का मसला नहीं है कि गुनाहगार भी मोहम्मद साहब की······

श्री मौलवी अबुल फरह साहब—

(बीच में ही बड़े गुस्से में भड़क कर) बस ख़ामोश ! बार-२ मौहम्मद साहब ! मौहम्मद साहब !! अगर फिर मौहम्मद साहब जी का नाम लिया तो मैं गर्दन पकड़ कर ज़मीन पर दे मारूंगा । तुम्हारी ज़ुबान खींच लूंगा !!

नोट—

मौलवी साहब की ये गुस्से भरी हरक़त देखकर आर्य समाज कैम्प में शख़्त गुस्से का वातावरण बन गया, देहाती हिन्दू जो हजारों की संख्या में इस शास्त्रार्थ में बैठे हुए थे मौलवी साहब की इस हरक़त पर भड़क उठे । और क़रीब ही था कि चारों तरफ़ से लट्ठ चलने लगते । **चारो तरफ शोर मचा दिया कि—मारो···मारो आज मौलवी को जिन्दा ही····· में गाड़ दो !!**

मगर शास्त्रार्थ के योग्य प्रधान ने फ़ौरन जनाब तहसीलदार साहब ने दरोग़ा साहब के परामर्श से खड़े होकर बड़ी ऊंची आवाज में ऐलान करके कहा—

श्री बाबू रामस्वरूप जी गुप्ता—(शास्त्रार्थ के प्रधान)—

साहेबान ! क्योंकि मौलवी साहब की तरफ़ से शास्त्रार्थ के नियमों का उल्लघंन हुआ है । और सख़्त झगड़े का अनुमान है, इसलिए मैं यहीं पर शास्त्रार्थ बर्ख़ास्त करता हूं ।

नोट—

इस ऐलान के होते ही एक मौलवी साहब, पहले मौलवी साहब की नाजायज़ हरक़त पर इज़हारे अफ़सोस करके प्रेजीडैण्ट साहब से प्रार्थना करने लगे कि आप इनकी हरक़त को माफ़ कर दीजिए । और अब आप मुझे इजाज़त दीजिए कि बजाये उनके मैं मुबाहिसा करूं । लेकिन क्योंकि पब्लिक बिगड़ खड़ी हुई थी । और सख़्त शोरो-शर होने के अलावा फ़साद का बड़ा अन्देशा था, लिहाज़ा प्रेजीडैण्ट साहब ने अधिकारियों से परामर्श करके शास्त्रार्थ के लिए नया प्रार्थना-पत्र अस्वीकार कर दिया । और अधिकारियों की समझदारी व अक़्लमन्दी की बदौलत हजारों व्यक्तियों का मजमा, देखते ही देखते बिना किसी लड़ाई-झगड़े के तितर-बितर हो गया । और श्री प्रधान जी ने आर्य समाज की प्रार्थना पर अपना फैसला अंग्रेजी ज़ुबान में लिख दिया जिसका तर्जुमा नीचे दिया जाता है ।

(शास्त्रार्थ मक्खनपुर के विषय में फैसला—मीरमजलिस)

मैं इस मुबाहिसा का जो मक्खनपुर में आज ता० २१ मार्च को आरम्भ हुआ, जिसमें अहले इस्लाम की ओर से मीरमजलिस (प्रधान) मुझे चुना गया । मैंने दोनों पक्षों की तक़रीरें सुनीं, पहले वक़्त में डाक्टर लक्ष्मीदत्त साहब ने निहायत अच्छे तरीक़े से इस्लाम के उसूलों पर ऐतराज़ किए, जिनका जवाब मौलवी साहब देते रहे । दूसरे वक़्त में मौलवी अबुल फ़रह साहब पानीपती को प्रश्न करने का अवसर दिया गया, और आपने अपनी पहली तक़रीर की जिसका जवाब डाक्टर साहब देने को खड़े हुए, और निहायत माक़ूलियत से अभी दे ही रहे थे कि मौलवी साहब उठे और ख़ामख़ां में उनको गर्दन से पकड़ कर नीचे गिरा दूंगा वग़ैरा ! वग़ैरा !! अलफ़ाज कह डाले ।

मैं समझता हूं कि मौलवी साहब ने डाक्टर साहब के मुदल्लिल (दलील व ठोस प्रमाणों सहित) प्रश्नों की ताब (सहन न करते हुए) न लाकर मुबाहिसा से गुरेज़ (किनारा) करने की वजह से किया । जो कि सरासर शास्त्रार्थ के नियमों के ख़िलाफ़ था । इसलिए मैंने तहसील दार साहब व दरोगा साहब की सलाह से शास्त्रार्थ बन्द कर दिया ।

आखिर में एक दूसरे मौलवी साहब ने मुझसे मौलवी अबुल फ़रह साहब के इस कार्य पर अफ़सोस प्रकट करते हुए प्रार्थना की कि इजाज़त मुनाज़रा मुझको दी जावे । लेकिन क्योंकि ये कानून के विरुद्ध था तथा झगड़ा होने का डर था, इसलिए ये प्रार्थना-पत्र स्वीकार न करते हुए शास्त्रार्थ बर्ख़ास्त कर दिया ।

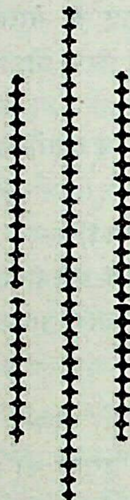
दस्तख़त—

"रामस्वरूप गुप्ता" मैनेजिंग डाईरैक्टर

ग्लास मैन्यु० फैक्टरी लि० (२१ मार्च मक्खनपुर)

इक्कतीसवां शास्त्रार्थ

स्थान : पतरेड़ी, जिला अम्बाला (हरियाणा)



दिनांक : २ से ५ बजे तक १५ मार्च सन् १९३७ ई०

विषय : क्या मृतक श्राद्ध वेदानुकूल है ?

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री ठाकुर पं० अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी (वर्तमान अमर स्वामी सरस्वती)

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ के प्रवन्धकर्त्ता : श्री पं० विशम्बर दत्त जी आर्योपदेशक एवं श्री ठाकुर गजासिंह जी (प्रधान) आर्य समाज "पतरेड़ी"

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थ के प्रबन्धकर्त्ता : श्री ठाकुर नसीबसिंह जी जैलदार तथा श्री ठाकुर तुमनसिंह जी (प्रधान) सनातन धर्मसभा "पतरेड़ी"।

नोट --

उस समय आर्य समाज के प्रधान श्री ठाकुर गजासिंह जी थे, अब श्री डा० रामलाल जी प्रधान तथा मन्त्र श्री कुंवर जगमाल सिंह जी चौहान हैं एवं सनातन धर्म सभा के अधिकारी भी शास्त्रार्थ के प्रबन्धकर्ता ही थे।

"सम्पादक"

॥ ओ३म् ॥

नोट—

इसी मास मार्च, अम्बाला छावनी में आर्य समाज और जैन मत के बीच शास्त्रार्थ पहले हो चुका था, जिसका विषय था—**"क्या ईश्वर सृष्टि कर्त्ता है ?"**। यह शास्त्रार्थ लगातार तीन दिन तक चला था, प्रथम दिवस में आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता श्री पं० बुद्धदेव जी मीरपुरी थे। और दूसरे व तीसरे दिवस श्री ठाकुर पण्डित अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी, शास्त्रार्थ कर्त्ता के रूप में नियत्त किए गए थे। विपक्ष अर्थात् जैन मत की ओर से प्रथम व द्वितीय दिन शास्त्रार्थ कर्त्ता के रूप में श्री राजेन्द्र कुमार जी शास्त्री थे, व तीसरे दिन श्री स्वामी कर्मानन्द जी नियत्त किये गये थे। इन शास्त्रार्थों में आर्य समाज की भारी विजय हुई थी, जिसका बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा था, इसके पश्चात् "पतरेडी" में शास्त्रार्थ होना निश्चित किया गया। ऐसा समाचार पाकर **"दो बसें भरकर जैनी लोग पतरेडी के शास्त्रार्थ में आये थे और सनातन धर्मियों की ओर बठे थे**। उनके अतिरिक्त लगभग दो सौ ब्राह्मण इधर-उधर दूर-दूर के भी सनातन धर्म की ओर से आये थे, वे सभी सनातन धर्मियों की ओर ही बैठे थे।

जिला अम्बाला, नारायणगढ़, शहजादपुर तथा जिला करनाल से भी आर्य गण इस शास्त्रार्थ में बड़ी भारी संख्या में उपस्थित हुए थे, अतः इस प्रकार इस शास्त्रार्थ में अत्याधिक भीड़ हुई। तारीख १५, दिन के दो बजे शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। जिसमें सनातन धर्म की ओर से श्री पं० माधवाचार्य जी शास्त्री एवं आर्य समाज की ओर से मैं (अमर सिंह) शास्त्रार्थ कर्त्ता निश्चय हुए थे।

वैदिक धर्म का—

"अमर स्वामी सरस्वती"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी—

ओ३म् शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा। शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः ॥

सभा में उपस्थित सत्याभिलाषी, सज्जन पुरुषो! आज हमको यह विचार करना है कि—**"मृतकों का श्राद्ध वेदानुकूल है या वेद विरुद्ध ?"** हमारा पक्ष यह है कि——**"मृतकों का श्राद्ध वेदानुकूल नहीं है"** तथा तर्क से भी मृतकों का श्राद्ध करना बिल्कुल भी सिद्ध नहीं हो सकता। मैं श्री पं० माधवाचार्य जी पर यह भार नहीं डालता हूं कि वह चारों वेदों में एक मन्त्र भी ऐसा दिखायें कि जिसमें "मृतक श्राद्ध" या "श्राद्ध" शब्द हो! मैं यदि यह मांग करूंगा तो पण्डित जी कहीं दिखला नहीं सकेंगे, और शास्त्रार्थ इसी पर समाप्त हो जाएगा कुछ आनन्द न आयेगा। आप सज्जनों का मनोरंजन भी कुछ न होगा। मेरी विजय हो जायेगी पर आप सज्जनों को सोचने विचारने को कुछ सामग्री नहीं मिलेगी, इसलिए मैं आप लोगों के विचारने के निमित्त कुछ ठोस सामग्री उपस्थित करता हूं। देखो—यजुर्वेद में कहा है कि—

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा, यत्रानश्चक्रा जरसं तनूनाम।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मानो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥२२॥ (यजुर्वेद अध्याय २५)

हे परमेश्वर! हम लोग—सौ वर्ष की आयु, प्राप्त करें और बुढ़ापे तक जीवित रहें। हमारे पुत्र भी जब **"पितर"** हो जावें। अर्थात् पुत्रों-पौत्रों वाले हो जावें, तब तक हमारी आयु को हे प्रभो! कम न कीजिए।

आचार्य महीधर और उव्वट ने भी यह ही अर्थ किया है कि—**"अस्मत् पुत्रा पितरोः भवन्ति"** अर्थात् **"अस्मत् पौत्रा भवन्तित्यर्थः"**—हमारे पुत्र, पितर हो जावें अर्थात् हमारे पौत्र हो जावें तब तक हमारी आयु नष्ट न हो। यहां

पितर का अर्थ—सन्तान वाले जीवित मनुष्य हैं, मरे हुए नहीं। कोई माता-पिता नहीं चाहते कि—हमारे सामने हमारे पुत्र मर जावें। माता-पिता कामना करते हैं कि—हमारे पुत्र हमारे सामने "पितर" हो जावें, वह पुत्रों वाले हो जावें। अर्थात् हमारे पोत्र हो जावें। "पितर" शब्द कहीं भी वेद से "मृतक" के अर्थ में नहीं है। मैंने यह एक अकाट्य प्रमाण दे दिया। अब पण्डित जी से पूछता हूं कि आप वेद का कोई मंत्र बताइये कि—

१. क्या मरे हुए माता-पिता के नाम पर ब्राह्मणों को खिलाया हुआ भोजन—मरे हुए माता-पिता को प्राप्त हो जाता हैं?

२. यदि मरे हुओं को प्राप्त हो जाता है तो बताइये कि—मरे हुए लोग स्वयं यहां भोजनादि को लेने के लिए आते हैं या वहां ही भोजन उनके पास पहुंचता है?

३. गीता में कहा है—"**वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरो पराणि तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-न्यन्यानि संयाति नवानो देही**" अर्थात्—जैसे मनुष्य पुराने कपड़े त्याग कर नये वस्त्र ग्रहण कर लेता है। वैसे ही यह जीव बूढ़े दुर्बल शरीर को त्यागकर नया शरीर धारण कर लेता है। गीता में ही और भी कहा है कि—"**जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च**" अर्थात्—जो जन्मता है उसकी मृत्यु अवश्य ही होती है, और जो मर गया है, उसका जन्म भी अवश्य होता है। इस पर मेरा प्रश्न यह है कि—जीव ने इस शरीर को त्यागकर नया शरीर धारण कर लिया तो श्राद्ध का भोजन लेने के लिए वह नए शरीर को छोड़कर आयेगा या नये शरीर सहित आयेगा? इस पर मैं और भी कई प्रश्न करूंगा पर इस बारी मैं केवल एक ही प्रश्न करता हूं, इसका उत्तर दें!

४. श्राद्ध करने वाले पुत्रादि तथा श्राद्ध की खीर आदि खाने वाले ब्राह्मण को भी यह पता नहीं है कि "जिसका श्राद्ध हो रहा है उसने किस योनि में जन्म लिया है?" यदि मरने वाला—बैल या घोड़ा आदि की किसी पशु योनि में गया तो इस खीर आदि से उसका क्या बनेगा? उसके लिए तो घास-भुस (चारा) आदि चाहिये।

बस! इस समय केवल इन चार प्रश्नों के उत्तर दीजिए और ध्यान रखिए! में हर बारी में नये-नये प्रश्न करता जाऊंगा, आप बुरी तरह फंस गये हैं, यह शास्त्रार्थ आपको बहुत ही महंगा पड़ेगा।

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

सज्जनो! श्री ठाकुर जी ने कहा—वेदों में "**मृतक श्राद्ध**" तो क्या बल्कि "**श्राद्ध**" शब्द भी नहीं है। उनको पता नहीं कि—वेदों में "**यज्ञोपवीत**" और "**शिखा**" भी नहीं है। वेदों में मृतकों के नाम पर ब्राह्मणों को भोजन कराने का विधान है, श्री पण्डित सातवलेकर जी वेदों के महान् विद्वान् हैं, और वह आर्य समाजी हैं, उन्होंने मृतक श्राद्ध को सिद्ध करने वाले डेढ़ हजार मन्त्र वेदों से निकाल कर छपाये हैं। यह पुस्तक मेरे हाथ में हैं। किसी आर्य समाजी विद्वान् ने आज तक इस पुस्तक का खण्डन नहीं किया। सभी आर्य समाजी विद्वानों ने मान लिया है कि—इसका कोई उत्तर या खण्डन नहीं हो सकता।

ठाकुर साहेब तो ठहरे ठाकुर साहब! इन्होंने तो यह देखी भी नहीं है। यदि इसको एक बार भी देखा होता तो मृतक श्राद्ध पर कभी शंका न उठाते। ठाकुर साहब कहते हैं कि जब यह पता ही नहीं है कि—जीव शरीर छोड़ने के बाद किस योनि में गया है तो उसके लिए वैसा खाना कैसे दिया जायेगा। घोड़ा आदि बन गया हो तो उसको खीर क्या करेगी? उसको तो घास चाहिए आदि-आदि। ठाकुर साहिब जी को पता नहीं कि—मनीआर्डर करने वाले लोग यहां नोट दें तो वहां आवश्यकतानुसार रुपये दिये जा सकते हैं। और यहां सिक्के दिये जायें तो पाने वाले को आवश्यकता-नुसार नोट दिये जा सकते हैं।

सज्जनों ! हमारा मृतक श्राद्ध का सिद्धान्त ऐसा है कि जिसको सारा संसार मानता है, ईसाई, मुसलमान, सिक्ख भी मानते हैं। ठाकुर जी ! पितर का अर्थ तो "मृतक माता-पिता" ही हैं।

भाइयों ! ठाकुर साहब जी की तलवार भी हमारी खीर पर ही चली। न जाने इनके पेट में दर्द क्यों होता है ? जनता में हंसी...........।

श्री पण्डित ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी—

भाइयो ! आपने श्री पण्डित जी का भाषण सुन लिया ? मैंने एक वेद मन्त्र पढ़ा था जिसमें पिता कहता है या "पितर" माता-पिता कहते हैं कि हमारे पुत्र हमारे सामने "पितर" हो जावें। उनके पितर होने से पहले हम न मरें। सज्जनों ! आपने देख लिया। पण्डित जी ने इस मन्त्र को छुआ तक नहीं। पण्डित जी को वेदों से क्या लेना-देना है ? इनको तो "गरुड़ पुराण" चाहिए। पण्डित जी कहते हैं कि पितर का अर्थ तो मरे हुए ही है। क्यों सज्जनों ! आप लोगों में ऐसे माता-पिता कोई हैं जो यह प्रार्थना करते हों कि—हमारे मरने से पहले हमारे पुत्र मर जायें। चारों तरफ से आवाजें आयीं.........कोई नहीं ! कोई नहीं !! .. ..दूसरे पण्डित जी कहते हैं कि जैसे मनीआर्डर करने वाले के नोट पाने वाले के लिए सिक्के भी बन जाते हैं अर्थात् आवश्यकतानुसार बदल जाते हैं। ऐसे ही घोड़े के पास जाकर खीर-पूरी आदि से बदलकर घास भी हो सकती है। जनता में हंसी.........।

लो सज्जनों ! पण्डित जी का उत्तर बड़ा मजेदार है। यहां खिलाई गई खीर वहां खास भी बन सकती है, इसका अर्थ यह भी हुआ कि नहीं ? कि यहां खिलाई हुई घास आवश्यकतानुसार वहां खीर भी बन सकती है ? बढ़िया रही। अब श्राद्ध में पण्डितों को बढ़िया घास खिलाना। यदि कोई मर कर घोड़ा बना होगा तो घास-घास ही रही आयेगी और यदि कोई मनुष्य वना होगा तो उस घास से खीर भी वन जायेगी।......इस पर अपार अट्टहास हुआ एवं लोगों की हंसी को रोक पाना कठिन हो गया.........ठाकुर साहब ने कहा—

सज्जनों ! देखा मेरे उन प्रश्नों का क्या हुआ ? जिनमें मैंने पूछा था कि—भोजन पितरों के पास पहुंचता हैं या पितर लोग भोजन करने यहां आते हैं ? इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया, मैंने पूछा था कि—यदि पितर भोजन लेने को श्राद्ध करने वाले के घर पर आते हैं तो जो शरीर उनको मिला है, उसको छोड़कर आते हैं या साथ लेकर आते हैं ? दोनों प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं, मेरे दोनों प्रश्नों को श्री पण्डित जी खीर की तरह पी गए। जनता में भारी हंसी...... मेरा एक प्रश्न और सुन लीजिए, यदि पितर श्राद्धकर्त्ता के घर पर आते हैं तो खीर आदि पहले ब्राह्मण खाते हैं या पहले पितर खाते हैं। यदि पहले ब्राह्मण खाते हैं तो पितरों को उनका झूठा खाना पड़ता है। यदि पितर पहले खाते हैं तो ब्राह्मणों को पितरों का झूठा खाना पड़ता होगा ? या दोनों साथ ही खाते हैं तो भी झूठा ही हुआ। इसका पण्डित जी के पास क्या उत्तर है ? कृपया जवाब दें !

सज्जनों ! जिस पुस्तक को हाथ में लेकर पण्डित जी बार-बार कहते हैं कि उसमें डेढ़ हजार मन्त्र मृतक श्राद्ध को सिद्ध करने वाले हैं। और महाराज कहते हैं कि ठाकुर साहब ने यह पुस्तक कभी देखी ही नहीं। कोई आर्य समाजी इसका उत्तर या खण्डन नहीं कर सका।

मेरी सुनिये ! मैं पण्डित जी को खुला चैलेञ्ज करता हूं कि जिस पुस्तक में डेढ़ हजार मन्त्र मृतक श्राद्ध को सिद्ध करने वाले हैं उसमें से केवल डेढ़ ही मन्त्र पढ़ दीजिए। फिर देखिये मैं उसमें लिखे अर्थों की कैसी धज्जियां उड़ाता हूं। चलो एक ही मंत्र पढ़ दो ! इस पुस्तक को मैंने खूब पढ़ा है। इसके लेखक "पण्डित सातवलेकर" जी नहीं है। बल्कि "पण्डित तड़ित कान्त" हैं इसका नाम "यम और पितर" है। इसमें लिखे अर्थों का खण्डन मेरे मित्र और सहपाठी "श्री पंडित प्रिय रत्न जी आर्ष" ने लिखा है। उसका नाम है "यम पितृ परिचय" वह आपने नहीं देखी। इसमें से एक-दो मन्त्र पढ़िये और देखिये कि—उसमें किए गए अर्थों की कैसी बखिया उधेड़ता हूं। जनता में हंसी...... ॥

पण्डित जी कहते हैं कि आपकी तलवार हमारी खीर पर ही चली। भाइयों ! कोई भी उत्तर मेरे प्रश्नों के न

हुए और न कभी होंगे। पर इनकी खीर और तलवार वाला प्रश्न सुनकर मुझको बड़ी दया आई। भाइयो ! पण्डित जी की खीर बिल्कुल बन्द मत करना। इनको खूब खीर खिलाया करो परन्तु यह समझकर खिलाया करो कि हम एक जीते-जागते मनुष्य को खीर खिला रहे हैं किसी मुर्दे को नहीं···जनता में हंसी का वातावरण······और पंडित जी ! आप मुर्दों के नाम पर खीर क्यों खाते हैं ? आपको अपने आप पर क्यों विश्वास और भरोसा नहीं है ? अपने नाम पर खीर खाइये और खूब खाइये ! मिलेगी और खूब मिलेगी !! हम तो लोगों को कहते हैं कि हमारे लिए खीर मत बनवाना, फिर भी हमको नित्य खीर मिलती है, और खूब मिलती है। पण्डित जी कहते हैं कि—वेदों में यज्ञोपवीत और शिखा शब्द नहीं है। वास्तविकता यह है कि पण्डित जी वेदों को पढ़ते ही नहीं, वेदों को पढ़ते हैं हम लोग। क्योंकि पण्डित जी के शब्दों में, मैं ठाकुर हूं। पण्डित जी और इनके पूर्वज सैकड़ों वर्षों से ठाकुरों की पूजा करते और उनका चरणामृत पीते आये हैं······जनता में अपार हंसी······ यज्ञोपवीत और शिखा पर पृथक शास्त्रार्थ रखिये। मैं वेदों में दोनों दिखलाऊंगा। मृतक श्राद्ध सिद्ध न कर सके तो इधर-उधर भागने लगे ! मेरे सारे प्रश्न वैसे के वैसे पड़े हुए हैं जिन्हें पण्डित जी छूने का नाम ही नहीं लेते पण्डित जी महा टर्न टर्न टन टन टन ऽऽऽऽऽ·········,

श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री—

(अपने भक्तों से काना-फूंसी करके कहने लगे कि—चुपचाप सौ रुपया मुझको दे दो, शास्त्रार्थ में उपस्थित लगभग दो सौ ब्राह्मणों ने एकत्र कर एक सौ रुपये पण्डित जी को दे दिये, एक सौ रुपये हाथ में लेकर पण्डित जी बोले)—लीजिए ठाकुर साहिब ! यह वाक्य जो सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है—"सानुगाय इन्द्रायनमः" चारों वेदों में कहीं से भी निकालकर दिखा दीजिए ! और ये नकद एक सौ रुपये लीजिए बस ! इसी पर शास्त्रार्थ समाप्त हो जायेगा। सौ रुपये भी आपको मिल जायेंगे और जीत भी आपकी हो जाएगी।······ गर्ज कर····· लीजिए रुपये और निकालिये वेदों में यह वाक्य कहां है ? इसके लिए मैं अपना बाकी समय भी आपको देता हूं। सभा में सन्नाटा······।

श्री पण्डित ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी—

पांच सौ रुपये के नोट हाथ में लिए हुए····· ऊंची आवाज में···सभा में आये हुए सज्जनों ! आज जुआ खेलना पड़ेगा। आज मेरा पाला शास्त्रार्थ कर्त्ता पण्डित से नहीं बल्कि जुआरी से पड़ गया है। धर्मराज युधिष्ठिर को भी दुर्योधन और शकुनि के सम्मुख जुआ खेलना पड़ा था। पर सज्जन पुरुषों ! मैं दावे से कहता हूं कि युधिष्ठिर जी महाराज तो जुए में हार गए थे, परन्तु आप देखिए मैं हरगिज नहीं हारूंगा और पण्डित जी को चारों खाने चित्त मारूंगा। सभा में जबर्दस्त सन्नाटे का वातावरण······ लीजिए पण्डित जी ! मैं पांच सौ रुपये देता हूं आप सत्यार्थ प्रकाश में ये दो बातें लिखी दिखा दीजिए।

१. यह वाक्य "पितृ यज्ञ" में हैं जिसको आप "मृतक श्राद्ध" कहते हैं।

२. आपने जो वाक्य बोला "सानुगायन्द्राय नमः" के साथ क्या सत्यार्थ प्रकाश में वेद मन्त्र का पता लिखा हुआ है ?

यदि ये दोनों बातें आप दिखला दें तो पांच सौ रुपया ले लें। यदि यह वाक्य न तो पितृ यज्ञ में है और न इस वाक्य को वेद का मन्त्र ही कहा है तो सौ रुपया दिखाकर लोगों की आंखों में धूल क्यों झोंकना चाहते हो ? क्या आपने समझा है कि यहां सब अनपढ़ और मूर्ख बैठे हैं ?

सज्जनों ! मुझको पता है कि अम्बाला में एक सौ से भी अधिक जो जैन सज्जन आये हुए हैं उनमें वकील भी हैं कृपा करके दो जैन सज्जन वकील मेरे पास आ जायें और सत्यार्थ प्रकाश देखें। मैं "सानुगायन्द्राय नमः" यह वाक्य सत्यार्थ प्रकाश में से उनको दिखलाता हूं। वह अच्छी तरह देखकर बतलावें कि ये वाक्य "पितृ यज्ञ" में है या "बलिवैश्वदेव यज्ञ" में है ? और क्या इसके साथ यह लिखा है कि ये अमुक वेद का मन्त्र है।

नोट—

दो सज्जन जैन वकील जी ठाकुर साहब जी के पास आये और उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश का वह स्थल देखा तो दोनों वकीलों ने उसे पढ़कर घोषणा की कि—"यह पंच यज्ञों का प्रकरण है, ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, और पितृयज्ञ समाप्त करके चौथा **"बलिवैश्वदेवयज्ञ"** है यह वाक्य उसी में है **"पितृयज्ञ"** में नहीं है। एवं इस वाक्य पर कहीं भी यह नहीं लिखा है कि यह वेद का मन्त्र है। **"इसलिए वेद से यह वाक्य दिखाने के लिए श्री माननीय पं० ठाकुर साहब जी को कहना अनुचित है"**

अद्भुत दृश्य—

इतना सुनते ही चारों ओर से……बोलो वैदिक धर्म की जय………कई हजार श्रोताओं की भीड़ में **"श्री ठाकुर तुमन सिंह जी प्रधान सनातन धर्म सभा"** ने दोनों हाथ उठाकर जोर से कहा कि—

"हमारे सनातनी पण्डित से कुछ नहीं बना, ठाकुर साहब ने उनको हरा दिया"

इतना सुनते ही श्री पण्डित विश्म्वर दत्त जी ने श्री ठाकुर तुमनसिंह जी को अपने मंच पर बुला लिया और कहा कि—प्रधान जी आप यहां खड़े होकर कहिए आपको क्या कहना है? इस पर पुनः सनातन धर्म के प्रधान जी ने वही घोषणा पुनः कर दी कि—"हमारे पण्डित से कुछ नहीं बना श्री ठाकुर जी ने उनको हरा दिया" चारों ओर से करतल ध्वनि के साथ आकाश गूंज उठा……बोलो वैदिक धर्म की जय ! ठाकुर साहब की जय !! आदि-आदि।

दूर-दूर से सैकड़ों ब्राह्मण आये हुए थे वह सब इस प्रकार मुंह लटकाये चुपचाप चले गए जैसे किसी अपने बहुत प्यारे की अन्त्येष्टि करके लौटते हैं।

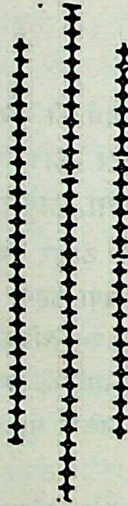
आर्य पुरुषों ने तुरन्त बढ़िया घोड़ी मंगवाई, बैंड वाजा मंगवाया, गांव की गली-गली में ठाकुर साहब को घोड़ी पर चढ़ाकर बैण्ड वाजे के साथ शोभा यात्रा निकाली गई। हजारों पुरुष बार-बार ठाकुर जी की जय ! ठाकुर जी की जय !! के नारे लगाते हुए शोभा यात्रा के साथ चल रहे थे, जिसे सुनकर गांव की स्त्रियां घरों में से निकल-निकल कर गली के खरंजों पर मत्था टेकती देखी गयीं। उन्होंने समझा था कि उन्हीं ठाकुरों की सवारी निकल रही है जिनको हम मत्था टेकती हैं एवं जिनकी पूजा ब्राह्मण लोग करते-कराते और जिनका चरणामृत पीते हैं।

दूसरे दिन—१६ मार्च को मूर्त्ति पूजा पर शास्त्रार्थ होना था वह सनातन धर्मियों ने न किया। आर्य समाज का प्रचार दो दिन (१६ व १७ मार्च) को बड़ी धूमधाम के साथ होता रहा। इस शास्त्रार्थ में आर्य समाज को भारी विजय और सनातन धर्मियों को घोर पराजय प्राप्त हुई। जो प्रत्यक्ष रूप में दिखाई दे रही थी।



बत्तीसवां शास्त्रार्थ

स्थान : हरिद्वार (गुरुमण्डलाश्रम) उत्तर प्रदेश



दिनांक : १२ जून सन् १९१६ ई० दिन शुक्रवार
समय : सुबह ८ बजे से ११ बजे तक
विषय : क्या मृतको का श्राद्ध करना वेदानुकूल है ?
आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पण्डित इन्द्र जी विद्या वाचस्पति (श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के कनिष्ट पुत्र व गुरुकुल कांगड़ी के प्रथम स्नातक)
सहायक : श्री पण्डित पूर्णानन्द जी "शास्त्रार्थ कला प्रवीण" महोपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा (पंजाब), (लाहौर)
सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पण्डित गिरिधर शर्मा जी चतुर्वेदी (आचार्य ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम—हरिद्वार)
शास्त्रार्थ समिति के मन्त्री : श्री पं० विश्वनाथ जी त्रिपाठी "मुख्यअधिष्ठाता—गुरुकुल मण्डलाश्रम"
शास्त्रार्थ के सभापति : श्री लाला बलदेव सिंह जी (देहरादून-निवासी)
अन्य उपस्थित विद्वान : श्री महात्मा मुंशीराम जी (स्वामी श्रद्धानन्द जी सरस्वती), पं० शालिगराम जी, पं० दुर्गादत्तजी पंत, प्रोफेसर महेश चरण जी व अन्य अध्यापकगण व गुरुकुल-कांगड़ी के विद्यार्थीगण।

शास्त्रार्थ से पहले

सज्जनो ! यह शास्त्रार्थ बारह जून सन् उन्नीस सौ सोलह में गुरु मण्डलाश्रम (हरिद्वार) में हुआ था, और उस ही वर्ष यह गुरुकुल कांगड़ी प्रैस हरिद्वार से श्री महात्मा मुंशीराम जी से प्रकाशित भी करा दिया था। अब सन् १९८६ ई० में जून से आगे ७१ वां वर्ष इस शास्त्रार्थ को हुए चलेगा। इस शास्त्रार्थ ने उस समय में पौराणिक समुदाय के अन्दर खलबली मचा कर रख दी थी। इस शास्त्रार्थ में पौराणिकों की ओर से भी कई अच्छे-२ पण्डित विराजमान थे, परन्तु इनकी ओर से जो पत्र व्यवहार और वार्तालाप हुआ वह सत्य से तो दूर है ही—पर सभ्यता तथा शिष्टाचार से भी पृथक् ही है। प्रस्तुत प्रकाशित शास्त्रार्थ के साथ इक्कीस पृष्ठ उसी पत्राचार से भरे हुए हैं, मैंने उनको इस शास्त्रार्थ के साथ इस ग्रन्थ में नहीं दिलवाया, उसके देने से पाठकों का समय तथा धन व्यर्थ ही जाता। सभ्यता और शिष्टाचार का एक छोटा सा नमूना यह है कि—श्री महात्मा मुंशी राम जी अपने अनुपम तप, त्याग और गुरुकुल संचालन में घोर परिश्रम के कारण सारे देश में—महात्मा मुंशी राम जी ही कहे और माने जाते थे। और इस शास्त्रार्थ के एक वर्ष व्यतीत होते ही वह **"महात्मा स्वामी श्रद्धानन्द—संन्यासी" सन् १९१७ में बन गये थे।** उनको पौराणिक पण्डितों ने अपने पत्रों और वाक् व्यवहार में एक बार भी "महात्मा जी" नहीं कहा, अपितु "लाला मुंशी राम" जी ही लिखा तथा बोला। यह उनके हृदय की संकीर्णता का एक छोटा सा उदाहरण है।

इस शास्त्रार्थ में आर्य समाज की ओर से पुराने दिग्गज शास्त्रार्थ कर्त्ता आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (लाहौर) के महोपदेशक श्री पं० पूर्णानन्दजी भी विद्यमान थे। परन्तु श्री महात्मा मुंशीरामजी चाहते थे कि, गुरुकुल के प्रथम स्नातक श्री पं० इन्द्रजी विद्यावाचस्पति ही शास्त्रार्थ करें। हो सकता है कि, महात्माजी अपने सुपुत्र का शास्त्रार्थ कौशल देखना चाहते हों ! यह भी अस्वाभाविक नहीं है। गुरुकुल के प्रथम स्नातक का कौशल देखना और दिखाना आवश्यक ही था। इसलिए प्रसिद्ध शास्त्रार्थ कर्त्ता श्री पंडित पूर्णानन्द जी के उपस्थित होते हुए पण्डित इन्द्र जी से ही शास्त्रार्थ कराया गया। श्री पण्डित पूर्णानन्द जी का शास्त्रार्थ कौशल कमाल का था, वे अपने प्रतिद्वन्दी को चुटकियों में ही उड़ा देते थे। इस शास्त्रार्थ में भी उनका कौशल उनकी वाग्मियता और चतुराई छुपी हुई नहीं रह सकी। शास्त्रार्थ से पहले शास्त्रार्थ सम्बन्धी नियमों का निश्चय करने में श्री पण्डित गिरधर शर्मा जी चतुर्वेदी के सम्मुख उनका प्रभावशाली व्यक्तित्व स्पष्ट दिखलाई देता है। श्री पण्डित पूर्णानन्द जी ने श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति को पूर्ण सहयोग प्रदान किया। बल्कि शास्त्रार्थ के अन्त में उनको दो मिनट किसी तरह मिल गये, उसी से आपको उनका परिचय मिल जावेगा। उनके नाम से उस समय का पौराणिक सम्प्रदाय कांपता था।

इस शास्त्रार्थ से कुछ ही काल पहिले गुरुकुल कांगड़ी में श्री पण्डित गिरधर शर्मा जी चतुर्वेदी और श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति के मध्य एक शास्त्रार्थ **"वर्ण व्यवस्था"** पर भी हो चुका था। जिसमें **"महात्मा गांधी"** जी भी मौजूद थे। वह भी प्रकाशित हुआ था। परन्तु मेरे प्यारे पुत्र लाजपत राय के अधिक परिश्रम करने पर भी वह हमको अभी तक नहीं मिल सका है। इसका हमको दुख है। उसके मिल जाने पर मैं अपनी टिप्पणियों सहित उसको भी प्रकाशित कराऊंगा वह भी बड़े ही काम की चीज होगी।

परन्तु यह भी बहुत ही चर्चित शास्त्रार्थ रहा है, इसको व अन्य इसी प्रकार की प्राचीन अलभ्य शास्त्रार्थ सामग्री के प्राप्त करने में लाजपत राय जी ने धन व समय के साथ साथ घोर परिश्रम भी किया है। जिसकी प्रशंसा न करना एक बहुत बड़ी कृतघ्नता होगी। सच पूछिए तो मेरा यह स्वप्न जिसे मैं चिरकाल से देखता आ रहा था, कि किसी तरह प्राचीन शास्त्रार्थों का संग्रह प्रकाशित हो, इस बच्चे ने मेरा स्वप्न साकार कर दिया। और अपने घोर परिश्रम से आर्य जगत की दबी हुई सम्पत्ति को प्रकाश में लाने हेतु इनका स्तुत्य प्रयास है। अब आप लोग भी इस प्राचीन शास्त्रार्थ सामग्री को पढ़िए और सैद्धान्तिक जानकारी प्राप्त करिये।

वैदिक धर्म का—
"अमर स्वामी सरस्वती"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित गिरधर शर्मा जी चतुर्वेदी—

शरिदन्दुसुन्दररूचिश्चेतासि सा मे गिरां देवी अपहृत्य तमः संततमर्थानखिलान् प्रकाशयतु ।

माननीय सज्जनों ! व्यर्थ के विवाद में बहुत सा समय निकल गया, जो युक्ति-युक्त बात है वह सब कोई समझ गया है । किन्तु यदि ये आर्य सज्जन अतिथि के तौर पर दवाव डालना चाहते हैं तो और बात है !

नोट—

श्री पंडित पूर्णानन्द जी ने बीच में ही गर्ज कर कहा—यह कहना हमारा अपमान करना होगा, ये शब्द वापिस लीजिये, हम किसी पर कोई जोर दबाव डालकर नहीं बल्कि जो युक्ति संगत बात है वह आपको माननी ही पड़ेगी ! (श्री चतुर्वेदी जी सहम गए) । और बातों को वापिस ले लिया ………। पश्चात्त पं० पूर्णानन्द जी द्वारा शास्त्रार्थ के आरम्भ करने का आदेश दिया जाना ।

श्री पण्डित गिरिधर शर्मा जी चतुर्वेदी –

सज्जनो ! हमारे धर्म के प्राण यज्ञ हैं, उनमें भी महायज्ञ पांच हैं, शास्त्रों में हिन्दु मात्र के लिए पञ्च यज्ञों का अनुष्ठान आवश्यक बताया है । उन पांच यज्ञों में से पितृयज्ञ भी एक है । इस पितृयज्ञ के सम्बन्ध में किसी की भी विप्रतिपत्ति नहीं इसे आर्य समाजी भी मानते हैं । यहां केवल मात्र यही विप्रतिपत्ति है कि वे पितृगण जिनके लिए यज्ञ करना है मृत हैं वा जीवित ?

यह विषय प्रत्यक्ष गोचर नहीं अतः इस विषय में शास्त्र की ही शरण लेनी चाहिए शास्त्र ही हमें बतलायेगा कि वे पितृगण मृत हैं या जीवित ! शास्त्रों में संहिताएं तो सबको मान्य हैं, हम स्मृति-पुराणादि को भी मानते हैं, किन्तु आर्य समाजी इस अंश में हमसे विप्रतिपन्न हैं । किन्तु **"वेदोऽखिलोधर्ममूलम्"** वेद तो सभी को प्रमाणरूपेण मान्य हैं । पूर्व मीमांसा के **"विरोधेत्वनपेक्ष्यंस्यात् असति ह्यनुमानम्"** सूत्र के अनुसार संहिता और स्मृति में यदि किसी को विरोध दीखे तो वहां संहिता ही प्रमाणभूत है । उपोद्बलकतया ब्राह्मणादि के भी प्रमाण लिए जा सकते हैं, अब मैं मृतक पितरों का श्राद्ध करने में आपके सामने प्रमाण रखता हूं । देखिए ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त १४ का आठवां मन्त्र—

सं गच्छस्व पितृभिः संयमेनेष्टापूर्त्तेन परमेव्योमन ।
हित्वाया वद्यं पुनरस्त मेहि संगच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ॥

अर्थात्—

मरते हुए मनुष्य का पुत्र उसे सम्बोधन करता हुआ कहता है, कि हे पिताजी ! आप इष्टापूर्त्त साधन के द्वारा यमराज्य में स्थित पितरों के साथ मिलें, और फिर इस लोक में जन्म लेकर भी पितरों से मिलें । यम राज्य में स्थित पितृगण जीवित नहीं हो सकते । अतः यहां पर पितृ शब्द जीवित के लिए नहीं । और प्रमाण लीजिये—अथर्व वेद अठाहरवें काण्ड के दूसरे अनुवाक् का अडतालिसवां मन्त्र—

"उदन्वतीद्यौरवमा पीलुमतीति मध्यमा । तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते ॥"

अर्थात्—

इस मन्त्र में अधम, मध्यम और उत्तम तीन प्रकार के द्युस्थान बताये हैं जहां कि पितृगण निवास कर सकते हैं !

अतः यह स्पष्ट है कि यहां पितृ शब्द से मृत पितर ही लिए जाते हैं। न कि जीवित पितर ! और लीजिए—अथर्व वेद १८ वां काण्ड अनुवाक् ४ मन्त्र ५७—

"ये च जीवा ये च मृता ये जाता ये च यज्ञियाः ।
तेभ्यो घृतस्यकुल्यैतु मधुधारा व्युन्दती ॥

अर्थात्—

जो जीवित हैं और मृत हैं (ये जाता) और जो गर्भ में स्थित है और ये च याज्ञियाः इन सब पितरों को हमारी घृत की कुल्या पहुंचे। इस मन्त्र में स्पष्ट "ये च मृता" पड़ा है। और देखिए—अथर्व वेद काण्ड १८, अध्याय ४, मन्त्र ७८—

"स्वधा पितृभ्यः पृथिवीषदभ्यः स्वधा ।
पितृभ्यः अन्तरिक्षसद्भ्यः स्वधा पितृभ्यः द्युषद्भ्यः ॥"

अर्थात्—

पृथिवी अन्तरिक्ष तथा द्युलोक के अन्तर्वर्ती पितृगणों के लिए स्वधा हो। क्या अन्तरिक्ष में रहने वाले पितृगण जीवित हो सकते हैं ? यदि अब भी सन्तोष न हो तो और प्रमाण लीजिये—अथर्व वेद काण्ड १८, द्वितीय अनुवाक् का ३८ वां मन्त्र—

"ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः ।
सर्वांस्तानग्न आवह पितृन् हविषे अत्तवे ॥"

अर्थात्—

हे अग्ने ! जो पितर गाड़े गए हैं, नदी में वहाए गए हैं, या जला दिये गये हैं, उन्हें हवि का उपभोग करने के लिए बुलावें। इस मन्त्र में स्पष्ट ही "गाड़े गये" आदि मृत पितरों का निर्देश किया गया है। और भी देखिए—अथर्व-वेद काण्ड १८, अनुवाक् ८, मन्त्र ५४—

"पूषात्वेतश्च्यावयतु प्रविद्वान नष्ट पशुर्भुवनस्य गोपाः ।
सत्वेतेभ्यः परि ददत् पितृभ्योग्निर्देवेभ्यः सुविद्त्रियेभ्यः ॥"

अर्थात्—

इस मन्त्र में साफ-२ मरते हुए मनुष्य के प्रति कहा गया है कि पूषा अग्नि तुम्हें पितरों के पास ले जावे। मरते हुए आदमी मृत पितरों के पास ही जा सकते हैं। न कि जीवित पितरों के पास ! अतः सिद्ध है कि "पितृ" शब्द "मृतपितरों" के लिये ही आया है। "ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्येदिवसत्वधया मादयंते" इत्यादि मन्त्र में भी "मृतपितरों" का ही वर्णन है।

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति—

प्रिय बन्धुगण ! विचार यह करना है कि—पण्डित जी ने अपने पक्ष की पुष्टि में जो प्रमाण दिए हैं, वे उनके पक्ष के साधक भी हैं वा नहीं ? पण्डित जी ने जितने भी मन्त्र दिखलाए उनसे यह कदापि सिद्ध नहीं होता कि मृत पितरों के लिए कोई श्राद्ध होता है। आपने जो कुछ कहा उससे केवल मात्र यही सिद्ध करना चाहा कि – वेदों में पितृ शब्द" मृतों के लिए भी आता है। किन्तु यह विलकुल सिद्ध नहीं होता कि—"मृत पितरो का श्राद्ध करना चाहिये"। और जिस प्रकार श्राद्ध शब्द वेदों में कहीं नहीं मिलता उसी प्रकार "पिण्ड पितृयज्ञ" यह शब्द भी वेदों में नहीं मिलता यह शब्द-सूत्र ग्रन्थों से लिया गया है, जब तक आप इस शब्द को वेदों में न दिखला दें तब तक इसका कोई मूल्य नहीं। अच्छा अब मैं आपसे तीन प्रश्न पूछता हूं, कृपया आप उनका स्पष्ट-२ उत्तर दीजिए—

१. "पिण्ड पितृज्ञ" शब्द वद में कहां है ?
२. "मृतक श्राद्ध" शब्द वेद में कहां है ?
३. श्राद्ध में ब्राह्मणों को दिया गया भोजन मृत पितरों को कैसे मिल सकता है ?

सज्जनगण ! अब मैं आपके सम्मुख पण्डित जी के कहे प्रमाणों को तोलता हूं और यह दिखलाता हूं कि उनमें कितना सार है ! आपका प्रथम मन्त्र—'संगच्छस्व पितृभिः.........' इत्यादि था इस मन्त्र में मृत पितरों का वर्णन कहां है ? इसका अर्थ तो स्पष्ट है कि -हे। पितृः आप यज्ञादि कर्मों द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करने वाले बनकर सच्चे पितरों अर्थात् पालकों की श्रेणी में मिलें। यहां 'यम' का अर्थ 'ईश्वर' है। तीसरे पद में पण्डित जी ने अद्भुत अर्थ कौशल दिखाया है आप वहां "अस्तिमेहि" का अर्थ करते हैं जन्म लेकर। यह अद्भुत अर्थ कहां से हुआ ? अस्त होने का अभिप्राय है—मरना या डूबना—न कि उत्पन्न होना।। आपके अगले मन्त्र "उदन्वती द्यौख मा........" और "स्वधा पितृभ्यः........" इत्यादि दोनों मन्त्रों में "पितृ" शब्द से "ऋतु" लिया जाता है। वहां "मृत पितरों" का कोई वर्णन ही नहीं है। एवं "पूषात्वेतश्च्यावयतु ...." इत्यादि मन्त्र में आपने यह तात्पर्य कहां से निकाला कि —"पितृभ्यः" का अर्थ "मृत पितरों के लिए" है। इसमें तो मृत होने की छाया भी नहीं है। विचित्रता यही है कि —जहां "पितृ" शब्द का प्रयोग है वहां पण्डित जी झट से "मृत पितर" अर्थ कर देते हैं, किन्तु प्रमाण कोई नहीं देते। सज्जनो ! मैंने आपको अच्छी तरह से दिखा दिया है कि—पण्डित जी ने जो-जो प्रमाण दिए उनमें क्या कुछ सार है। और वे प्रमाण उनके पक्ष को सिद्ध भी करते हैं वा नहीं। अब मैं अपने पक्ष की पुष्टी में—कि वेद के सूक्तों में पितृ शब्द से जीवित पितरों का ग्रहण है, प्रमाण दिखलाता हूं, देखिए—यजुर्वेद के १९ वें अध्याय का ५८ वां मन्त्र—

आ यन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः ।
अस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥

"अग्निष्वात्त" अर्थात् "औपासनाग्नि" से पवित्र हुए पितर श्रेष्ठयान वाले मार्गों से आवें। इस यज्ञ में मन्त्र द्वारा प्रसन्न हों। तथा हमारे हित की बातें कहें और हमारी रक्षा करें। यहां पितरों के बोलने का स्पष्ट कथन है ! कहिये पण्डित जी महाराज !! क्या कभी मरे हुए पितर भी बोलते हुए सुने गए हैं ? जनता में हंसी ऽऽऽऽऽ ... ., जब बोलना लिखा है—तब भला मृत पितरों का ग्रहण कैसे हो सकता है ? देखिए यजुर्वेद अध्याय १९ का ६३ वां मन्त्र क्या कहता है ?—

आसीनासो अरुणीना मुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्य पितरस्तस्य वस्वः प्रयच्छत इहोर्ज दधात ॥

अर्थात्—

ऊन वाले लाल आसनों पर विराज कर हे पितरो ! आप दानी पुरुष के लिए सम्पत्ति के देने वाले हो। सन्तान के लिए ऐश्वर्य का भाग दो तथा इस यज्ञादि में बल धारण कराओ। क्या कभी मृत पितरों का भी आसनों पर बैठना हो सकता है ? अतः साफ पता चलता है कि ये सब संकेत जीवित पितरों के लिए है न कि मृत के लिए। और भी देखिए —यजुर्वेद अध्याय १९ में ६८ वां मन्त्र—और हां ! "अरुणीनाम्" इसका अर्थ आपके ज्वाला प्रसाद जी ने भी "ऊन के लाल आसन" ही माना है। बीच में ही पं० गिरधर शर्मा जी ने कहा—इसका प्रतीक बोलिए ? इस पर पण्डित इन्द्र जी ने कहा—

"यदि पण्डित जी महाराज ! आप पहिले ही ध्यान पूर्वक सुनें तो शायद कभी यह परिश्रम न हो, और मेरा समय भी खराब न हो। हां तो मैं यजुर्वेद का मन्त्र कह रहा था सुनिए वह क्या कहता है—

इदम्पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो ये उपरासईयुः।
ये पार्थिवे रजस्यानिषत्ता ये वा नूनँ सुवृजनासु विक्षु॥

इसमें पितरों के विषय में दो विषेषण विचारणीय हैं। जो पार्थिव (रज) लोक में स्थित् है। और "जो उत्तम बलयुक्त प्रजाओं में वर्तमान हों"।

पार्थिव लोक में रहता और उत्तम बल वाली प्रजाओं में रहना भी क्या मृत पितरों के लिए सम्भव है। यहां जीवित पितर ही अभिप्रेत है। यदि अन्य प्रमाण भी लेना चाहो तो और भी लीजिए और देखिए—अथर्ववेद काण्ड १८, अध्याय १, मन्त्र ५२—

आच्याजानु दक्षिणतो निषद्येदं नो हविरभिगृणन्तुविश्वे।
माहिंसिष्ट पितरः केनाचिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम॥

हे पितरो! तुम सब वाम घुटने नंवा कर, दक्षिण में बैठकर इस यज्ञ का अभिनन्दन करो! क्या मरे हुए पितर भी एक घुटने को झुका कर दूसरी जांघ पर बैठ सकते हैं? ये सब चिन्ह केवल जीवित पितरों को ही सूचित करते हैं।

श्री पं० गिरिधर शर्मा जी चतुर्वेदी—

मित्रवर! आपने मुझ पर पहिला ऐतराज यह किया है कि—मेरे कथन से केवल मात्र यही सिद्ध होता है कि "पितर" मृत भी होते हैं, किन्तु यह सिद्ध नही होता कि मृत पितरों के लिए श्राद्ध भी होता है। अच्छा! श्राद्ध तो दोनों के मत में माने जाते हैं। आपके स्वामी दयानन्द ने भी लिखा है कि पितृयज्ञ दो प्रकार का होता है। एक 'तर्पण' और दूसरा 'श्राद्ध'। तो जैसे हमारे यहां आप दोष देते हैं वैसे ही आपको भी श्राद्ध की वैदिकता सिद्ध करनी होगी। श्राद्ध विधान में मन्त्र भी हैं, किन्तु भेद यह है कि—आप उन मन्त्रों का अर्थ जीवित पितरों पर लगाते हैं और हम मृत पितरों पर लगाते हैं। दूसरा आपने प्रश्न किया था कि क्या श्राद्ध शब्द वेदों में हैं? यदि हम शब्द पर ही झगड़ा करते रहेंगे तो यह नितान्त निरर्थक होगा और समयापन करना ही होगा। आपने अगला प्रश्न किया था कि—"**क्या-ब्राह्मणों को खिलाया भोजन मृत पितरों को मिल सकता है?**" यह प्रश्न तो किसी नास्तिक के मुख पर शोभा देता! जिस प्रकार इस लोक में किये हुए पुण्य-दानादि का फल परलोक में प्राप्त होता है इसी प्रकार पुत्र से किये हुए संस्कार का फल भी अदृष्ट द्वारा वा किसी ईश्वरीय नियम द्वारा पितरों को मिल जाता है, इसीलिए कहा भी है कि—"शास्त्र **र्शितंफलमनुष्ठानकर्तरीत्युत्सर्गइति**" और पुत्र से किये संस्कार का फल पितरों को मिलता है, यह अपवाद है। अब यह बात रही कि पितृ शब्द मृतों का वाचक है या नही? परन्तु आप कहते हैं कि-पितृ शब्द के कई अर्थ हैं। भला यह तो बताइये कि आप इस प्रकार कहां क्या-२ अर्थ करेंगे? अतः यदि पितृ शब्द के कई अर्थ मानेंगे तो अव्यवस्था होगी, इससे अच्छा है कि निश्चित अर्थ माना जाय। आपने शंका की, कि यदि श्राद्ध में पितरों का आह्वान किया जाता है तो बताइये यह किस तरह सम्भव है कि वे गोड़े (घुटने) टेक कर आसन पर बैठ सकें। इसके लिए देखिये—शतपत ब्राह्मण २ का० ४ अ० २ का० क्या वर्णन करता है—

"**अथैनं पितरः प्राचीनावीतिनः सव्यं जान्वाच्यो पासीदंस्तान ब्रवीन् मासि-मासि वोऽशनँस्वधा**" इत्यादि॥

इससे स्पष्ट सिद्ध हुआ है कि—मृत पितर घुठने टेक कर बैठ सकते हैं और मास-मास के बाद उन्हें अन्न मिलना चाहिये। आपने "**संगच्छस्व पितृभिः**" इसका अर्थ यह है कि—पुत्र अपने मरते हुए पिता को सम्बोधन करता है। मैं आपसे पूछता हूं कि क्या कभी पुत्र भी पिता को उपदेश दिया करता है? आपने इस मन्त्र को यम का अर्थ परमात्मा किया, सो ऐसा सम्भव है कि यम का अर्थ परमात्मा भी हो। किन्तु यह नही कहा जा सकता कि सब जगह यही अर्थ होगा। आपने "**येऽग्निदग्धाः, ये अनऽग्निदग्धाः,......**" मन्त्र का अर्थ भोज्य पदार्थों पर लगाया है। मैं पूछता हूं कि क्य

कभी पका हुआ पदार्थ अन्तरिक्ष में जा सकता है ? और यह मन्त्र पितृ सूक्त का है अतः इस मन्त्र का अर्थ पितृ परक करना आवश्यक है। और इस मन्त्र में आगे चल कर आया है कि—हे अग्ने! तुम उन पके पदार्थों को जानते हो। पके हुए पदार्थों को तो हम भी जानते हैं, अतः अग्नि को यह कहने की आवश्यकता प्रतीत नही होती। हमें पितर दीखते नही—"तिरोसिबै पितरो मनुष्येभ्यः" अतः उनका बैठना हमें चाहे न दीखे: किन्तु वे बैठ सकते हैं।

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति—

मैंने पण्डित जी से प्रश्न किया था कि—"श्राद्ध" शब्द वेद में कहां है ? पण्डित जी ने कहा कि – जैसे यह ऐतराज हम पर है वैसे ही आप पर भी है। जैसे इस शब्द की वैदिकता हमको सिद्ध करनी आवश्यक है वैसे ही आप को भी इसे दिखलाना चाहिये। खैर! कुछ भी हो पण्डित जी ने श्राद्ध शब्द वेदों में न दिखाकर अपना दोष तो स्वीकार कर लिया और मुझ पर भी वही दोष दिया है। गौतम के न्याय अनुसार आप यहां "मतानुज्ञा निग्रह स्थान" में जकड़े गये। पण्डित जी ने अपने पक्ष की पुष्टि में "ये च जीवा ये च मृता ये जाता" इत्यादि मन्त्र सामने रक्खा, परन्तु यह तलवार तो पलट कर फिर उन्ही पर पड़ी। मैं पूछता हूं कि "जीवा" और "जाता" इन दोनो में भेद है वा नही ? यदि आप "जाता" शब्द से बालक का ग्रहण करें, तो क्या बालक भी "पितर" होते हैं! बोलो पण्डित जी! अब क्यों मौन साध कर बैठे हो ? (जनता में हंसी ऽ ऽ ऽ......)

आगे आप ने कहा जैसे हमारे दान पुण्यादि का फल हमें परलोक में मिलता है वैसे ही पुत्र के किये संस्कार का फल पितरों को मिल सकता है। क्या खूब! पण्डित जी आपको भी मान गये!! क्या पण्डित जी आपको पता है कि इस प्रकार आपके कथन में "कृतहान्यकृताभ्यागम दोष" दोष आवेगा। भला यह कैसे सम्भव है कि दान करे कोई, और फल पावे कोई! अर्थात् खांऊ तो मैं ओर पेट भरे किसी दूसरे का!! संस्कार तो किया पुत्र ने! किन्तु फल मिले पितरों को ?? वाह ? कैसा न्याय है ? दर्शनों का सिद्धान्त यह है कि—जो कर्म करे वही फल भोगे। (श्रोताओं में हंसी ऽ... आपने तो संहितामात्र को दोनों पक्षों का मान्य कहा था, परन्तु आप ब्राह्मण ग्रन्थों के भी प्रमाण दे रहे हैं। "पौराणिक मण्डल में शोरगुल ··· सभापति द्वारा शान्ति स्थापित करना" पण्डित जी कहते हैं कि, भाइयों! यदि आप पितृ शब्द के अनेकार्थ मानेंगे तो किस-२ जगह क्या-२ अर्थ हो यह व्यवस्था कौन करेगा ? अतः एक ही निश्चित अर्थ होना चाहिये। मेरा पण्डित जी से निवेदन है कि, यह दोष आप मुझ पर न लगावें। किन्तु सायणाचार्य, शतपथ के कर्त्ता ऋषियों तथा महीधर पर आप इस दोष को थोंपे, क्योंकि वे ही कहते हैं कि—पितृ शब्द के अनेक अर्थ हैं, मनु भगवान ने कहा है—

"जनकश्चोपनेता च यश्च विद्यां प्रयच्छति। अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः" ॥

शतपथ में वसन्त ग्रीष्म आदि ऋतुओं का नाम भी पितर आया है। और आपके मान्य आचार्य सायणाचार्य ने "अरुरुचत्‌रुशसः" इत्यादि मन्त्र में "पितृ" शब्द का अर्थ "रश्मि" किया है। एवं आचार्य महीधर ने भी यजुर्वेद के अध्याय २ के बत्तीसवें पृष्ठ में "पितृ" शब्द का अर्थ "ऋतु" माना है। सो आप अव्यवस्था का दोष अपने आचार्यों पर थोंपे। निरूक्तकार यास्काचार्य ने "गो" शब्द के अनेक अर्थ किये हैं, सो आप ही बताइये कहां-२, क्या-२ अर्थ होगा ? इसलिए आपको भी मानना पड़ेगा कि प्रकरणानुसार इन अनेक अर्थों की व्यवस्था होगी। यही व्यवस्था पितृ शब्द के अनेक अर्थों के साथ भी रखनी पड़ेगी। यदि आप यह मानने को तैयार न हों तो आपके मत में यास्काचार्य का निरूक्त भी अव्यवस्था दोष ग्रस्त होने से अनादरणीय होने के कारण गंगा में प्रवाहित कर दिया जाना चाहिये।...... पौराणिक मण्डल में शोरगुल......शान्ति...... सज्जनों शांतिपूर्वक सुनो! आगे पण्डित जी फरमाते हैं कि—पितरों को हर माह भोजन देना चाहिये। यह विधान है, और यदि यहां जीवित पितरों का ग्रहण हो तो क्या वे जीवित पितर एक मास तक भूखे रहेंगे ? परन्तु पण्डित जी! मैं आपसे पूछता हूं क्या उन जीवित पितरों के अपने-अपने घर नही हैं ? जब अपने-अपने घर मौजूद हैं तो वे एक मास तक भूखे क्यों कर रहेंगे ? हां आदर के लिए उन जीवित पितरों-विद्वान जनों को मास-मास के बाद अपने घर में भोजन कराना चाहिये। अच्छा मैं अब पण्डित जी से ही पूछता हूं कि

आपके मृत पितर जिनका कोई घर-बार भी नहीं, एक मास तक भूखे क्यों न रहेंगे ? अतः यह मानना पड़ेगा कि यहां पितृ शब्द से जीवित पितर ही लिए जाते हैं न कि मृत पितर ! **"संगच्छस्व पितृभिः"** इस मन्त्र के अर्थ पर आशंका करते हुए पण्डित जी पूछते हैं कि—क्या पुत्र भी पिता को उपदेश देता है ? मैं पण्डित जी से फिर पूछता हूं कि जो व्यक्ति जिस किसी के प्रति जो कुछ भी कहे क्या वह उपदेश ही होता है ? ,**'विश्वानि देव सवितः"** इस मन्त्र में क्या मनुष्य ईश्वर को उपदेश दे रहा है अथवा प्रार्थना कर रहा है ? कभी सम्भव कि है अल्पज्ञ मनुष्य सर्वज्ञ ईश्वर को उपदेश दे ? अतः स्वीकार करना पड़ेगा कि—यहां मनुष्य ईश्वर से प्रार्थना कर रहा है एवं **"संगच्छस्व पितृभिः"** इस मन्त्र में पुत्र पिता से प्रार्थना करता है कि हे पितः आप सच्चे पालक बनिये और यज्ञादि से परमात्मा के गुणों को प्राप्त कीजिये। मैं पण्डित जी से हां या ना में पूछता हूं कि **"संगचछस्व पितृभि संयमेनेष्टा पूर्त्तेन……"** इस मन्त्र में **"यम"** शब्द का अर्थ **"ईश्वर"** है वा नहीं ? यदि पण्डित जी इसका अर्थ ईश्वर ही मानते तो मैं प्रमाण से सिद्ध करने को तैयार हूं कि यहां **"यम"** का अर्थ **"ईश्वर"** ही है, और कुछ नहीं। बस केवल पण्डित जी एक बार हां या ना में इसका साफ-साफ जवाब दे दें यदि आप **"ये अग्नि दग्धा ये अनग्निदग्धा……"** इस मन्त्र का अर्थ भोज्य पदार्थ परक मानने को तैयार नहीं और मृत पितरों पर ही यदि इसका अर्थ करते हैं तो मैं आपसे एक आशंका करता हूं—आप बतावें आपके मृत पितर स्थूल शरीर हैं वा आत्मा ? चूंकि वे दीखते नहीं, अतः यह नहीं माना जा सकता कि वे स्थूल शरीर हों, और यदि वे आत्मा हैं, तो क्या आत्मा का दग्ध होना सम्भव है ? आप कहते हैं **"ये अग्निदग्धा……"** पर दूसरी तरफ भगवान् कृष्ण जी पुकार-२ कर कह रहे हैं **"नैनं वहति पावकः……"**, अतः यह हो नहीं सकता कि इस मन्त्र का अर्थ मृत पितरों पर लगाया जाये, किन्तु भोज्य पदार्थ परक ही इसका अर्थ मानना होगा **"ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते"** जो पदार्थ अग्नि में पकाये जाते हैं, और जो पदार्थ अग्नि में नहीं किन्तु सूर्य की धूप से ही पकते हैं, यहां **"दिवः"** से निरुक्तकार के अनुसार **"सूर्य"** भी अर्थ हो सकता है। अच्छा अन्त में मैं पण्डित जी के सामने एक अन्य मन्त्र भी रख जाता हूं। पण्डित जी बतावें आप इस मन्त्र का अर्थ मृत पितरों पर किस प्रकार लगा सकते हैं ? देखिये अथर्व वेद काण्ड १८, अनुवाक २, मन्त्र २९, क्या कहता है ?—

"संविशन्त्विह पितरः स्वानः स्योनं कृण्वन्तः प्रतिरन्तु आयुः।
तेभ्य सकेम हविषा नक्षमाणा ज्योग् जीवन्तः शरदः पुरूची।।

इस मन्त्र में स्पष्ट-२ कहा कि हे पितरो ! आप आवें और विराजें, मैं पण्डित जी से फिर पूछता हूं कि क्या जीवित पितर—विद्वज्जन बैठ सकते हैं अथवा मृत पितर ? ।।

श्री पण्डित गिरिधर शर्मा जी चतुर्वेदी—

मित्रवर ! आपने कहा कि मैं **"मतानुज्ञा"** निग्रह स्थान में जकड़ा गया। पर कहिये तो किस प्रकार ? हां यदि मैं आपके पक्ष को मान लेता तो मैं निग्रहीत होता, मेरा कहने का अभिप्रायः तो यह था कि जो ऐतराज आप मुझ पर लगाते हैं वह आप पर भी हैं। जैसे मुझे उस दोष का परिहार करना होगा तैसे ही आपको करना होगा। **"ये च जीवा ये च मृता ये जाता……"** इस मन्त्र के अर्थ में आपने जो शंका उठाई थी कि क्या **"जाता"** बालक भी पितर होते हैं, वह निर्मूल ही है, क्योंकि **"जाता"** का मतलब है जो जन्मान्तर ग्रहण कर चूके हैं और **"जीवा"** जो गर्भ दशापन्न हैं। आगे आप कहते हैं कि यदि पुत्र के किये संस्कार का फल पितरों को मिलेगा तो **"कृत हान्य कृताभ्यागम"** दोष उपस्थित होगा। ठीक है जिसका कर्म से कोई सम्बन्ध नहीं उसको फल चाहे न मिले किन्तु जिसको उद्देश्य करके कर्म किया जायेगा उसको फल मिलने में तो बाधा नहीं। सेना फ़तह करती है, किन्तु उसका फल तो राजा को ही मिलता है। अर्थात् जीत का सेहरा तो राजा के ही सिर पर बांधा जाता है। मित्रवर ! आप पूछते हैं कि—**"वेद"** का प्रमाण न देकर **"ब्राह्मण ग्रन्थ"** का प्रमाण क्यों देते हैं ? सो मैंने पहले भी कहा था कि **"उपयोद्वलकतया"** सहायता के लिए

ब्राह्मण ग्रन्थ का प्रमाण देने में क्या हानि है ? आप कहते हैं कि जिस प्रकार **"गो"** शब्द से निरुक्तकार ने अनेक अर्थ बताये हैं उसी प्रकार **"पितृ"** शब्द के भी अनेक अर्थ हैं। परन्तु यहां मेरा वक्तव्य यह है कि—गौण अर्थों का आश्रयण तभी किया जाता है जबकि मुख्यार्थ से सिद्धि न हो, जिस प्रकार लक्षणादि में मुख्य अर्थ से काम न चलने पर गौण अर्थ का आश्रयण आवश्यक है। परन्तु जब **"पितृ"** शब्द के मुख्यार्थ से सिद्धि होती है तो गौण अर्थ की अपेक्षा क्यों कर हो सकती है ? अन्यथा, यूं तो मैं यदि **"पावक"** का अर्थ पानी कर दूं तो क्या सब जगह यही अर्थ लिया जायेगा ? कभी नहीं।

मित्रवर ! आप जानते हैं कि भारत में शुरू से ही **"सम्मिलित फैमिली प्रथा"** चली आई है तो यदि श्राद्ध जीवित पितरों का ही माना जायेगा तो क्या उस घर का पिता एक मास भूखा बैठा रहेगा, और फिर **"मासि-मासि"** के अनुसार एक मास में केवल एक बार ही भोजन पायेगा ? हमारे यहां तो **"मृत पितरों"** का अहोरात्र ही एक मास का होता है, अतः वे भूखे नहीं रह सकते। प्रिय सज्जन ! ठीक है कि **"विश्वानि देव सवितः..."** में स्वल्पज्ञ मनुष्य सर्वज्ञ परमात्मा की प्रार्थना कर रहा है। न कि उसे उपदेश दे रहा है। किन्तु मैं पूछता हूं कि क्या **"संगच्छस्व पितृभिः......"** इस मन्त्र में भी पुत्र पिता की प्रार्थना कर रहा है ? प्रार्थना अपने लिए होती है न कि पराये के लिए, तो क्या पुत्र-पिता के लिए प्रार्थना कर रहा है ? कभी नहीं। रही बात गीता के इस श्लोक की, कि **"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि......"** यह तो जीव के लिए है, आपने तो इसको सूक्ष्म शरीर के लिए कह डाला।......पौराणिक मण्डल में......वाह ! वाह !! वाह !! ......धन्य हो ! धन्य हो !! '......शिव ! शिव !! ......चारों तरफ हर्ष का वातावरण...... ।

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति—

"गर्जकर...पण्डित जी ! आपको याद होगा गत वर्ष **"वर्ण व्यवस्था"** पर हो रहे शास्त्रार्थ में गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिकोत्सव पर हजारों की जनता उपस्थित थी, उनमें से किसी ने भी **"वाह! वाह!"** नाम को भी नहीं कहा। किन्तु जिस प्रकार आप **"वाह! वाह!"** की डुगडुगी पीट रहे हैं उसी प्रकार यदि गुरुकुल कांगड़ी के वार्षिकोत्सव पर भी **"वाह ! वाह! !"** की बुलन्दी दी जाती तो आपका कुछ भी कथन सुनाई न पड़ता। अगर कोरी **"वाह! वाह! !'** करने से ही अपना पक्ष सिद्ध होता हो तो मैं भी प्रमाण देने के स्थान पर **"वाह! वाह! !"** ही कहलवाऊं ?

नोट—

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति जी ने ये बात ऐसे ढंग से कही कि तमाम सभा में एक दम सन्नाटा छा गया। एवं दो मिनट बाद पौराणिक मण्डल में......ठीक है ! ठीक है !!......कोई न बोले! कोई न बोले !!...... सभी शान्ति पूर्वक सुनें......आप पं० जी शास्त्रार्थ आरम्भ करिये, अब कोई नहीं बोलेगा।

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति—

पण्डित जी फ़रमाते हैं कि यदि हमारा **"मृतक श्राद्ध"** शब्द वेदों में नहीं मिलता तो आपका **"श्राद्ध"** शब्द भी तो वेदों में नहीं है। अस्तु कुछ ही हो पण्डित जी ने अपना दोष तो मान ही लिया। अपना दोष माने बिना आप मुझ पर दोष कैसे दे सकते हैं। अब यदि पण्डित जी **"मतानुज्ञा"** निग्रह स्थान की बेड़ियों में नहीं कसे गये तो और क्या है? **"ये च जीवा ये च मृताः......"** आदि मन्त्र का अर्थ करते हुए पण्डित जी ने **"जीवा"** का अर्थ **"गर्भ स्थित पितर"** का किया है। भला इसमें कोई वैदिक आधार भी है ? हां ? मनमानी ही चलाना हो तो अलग बात है। पण्डित जी के अनुसार जिसको उद्देश्य करके कर्म किया जाता है उसका फल उसे अवश्य मिल जाता है। एवं पुत्रादि द्वारा किये श्राद्ध का फल पितरों को मिलने में कोई बाधा नहीं होती। अच्छा, यह मान लिया। परन्तु पण्डित जी महाराज ? यह तो बताईये कि पितरों के उद्देश्य से ब्राह्मणों को खिलाये भोजन का तृप्ति रूप फल तो मिलना है पितरों को ? तब ब्राह्मण देवता का पेट क्योंकर भर जाता है ? पिता के संस्कार जो पुत्र में आते हैं उनमें पुत्र के ही कर्म कारण हैं, और पिता को अपने संस्कार करने का फल पृथक ही होता है। आगे पण्डित जी का फिर वही आग्रह है कि यदि पितृ शब्द के

अनेक अर्थ माने जायेंगे तो बड़ी अव्यवस्था होगी किन्तु इस अव्यवस्था दोष की निवृत्ति के लिए पहिले आप मनु भगवान् और सायणाचार्य तथा महीधर का द्वार खटखटा आईये। हां? यदि आप उधर से आंखे ही मूंद कर निकल जावें, और मेरे ही दरवाजे पर आवें तो इसमें मेरा दोष नही है। और देखिये? पण्डित जी ने अब नया ही रास्ता पकड़ा है—लौट-पौटकर उन्ही वातों पर जमा रंग चढ़ाकर सामने लाना शुरू किया है। आप कहते हैं कि—"भारतवर्ष में शुरू से ही सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा रही है।" जब आप जीवितों का ही श्राद्ध मानते हैं तो क्या "मासि-मासि" के अनुसार उन-२ घरों के पिता लोग एक-२ मास फाके ही उड़ाया करेंगे? पर? पण्डित जी मैं तो पहले ही आपको मनु भगवान का श्लोक याद करा आया हूं, "जनकश्चोपनेता च......" इत्यादि। क्या सम्मिलित कुटुम्ब पृथा के अनुसार राजा गुरु आदि सब एक ही घर में भोजन करते थे। यह लोग अपने-२ घर में तो भोजन पाते ही रहेंगे किन्तु इन पितरों की पूजार्थ आप को भी एक-२ मास के बाद अपने घर पर ही भोजनार्थ बुलाना चाहिये। क्योंकि यदि विद्वज्जन आदि पितृगण प्रसन्न रहें तो समाज का भी कल्याण होता है। "नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि......" का प्रमाण मैंने सूक्ष्म शरीर के लिए नही कहा था बल्कि आत्मा के लिए कहा था, कदाचित् आपके सुनने में भूल हो गई हो। आगे जब भी कभी ऐसा अवसर आवे तो पहले कान साफ करा लिया करें। वात मैंने कही थी उसको इन श्रोताओं ने भी सुना है, आप अकेले में नही। अपने ही किसी पक्ष के व्यक्ति से पूछ लीजिये। और हां? प्रथम तो प्रधान जी से ही पूछिये।......ठीक है! ठीक है!!......पण्डित जी के सुनने में भूल हो गई......। श्रोताओं में हंसी......"पण्डित **गिरिधर शर्मा जी** - जोश में .....आपको हमारे "वाह? वाह??" पर आपत्ति थी? इस हंसी पर नही है?...... "**पं० इन्द्र जी**—महाराज? दोनों ही पक्षों के श्रोता हंस रहे हैं, आपने वात ही ऐसी की है, आप प्रथम अपने पक्ष के व्यक्तियों को हंसने से रोकें। आपका भी कमाल है पं० जी स्वयं का घर देखते नही दूसरों को उपदेश करने चले हो। सभा में जवर्दस्त हंसी का वातावरण......प्रधान जी द्वारा...मुश्किल से शान्ति स्थापित् करना......ठीक है अब मैं पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति जी से प्रार्थना करता हूं कि वे समय नष्ट न जाने दें शास्त्रार्थ आरम्भ करें!

सभ्यगण! इस हंसने-रोने के के चक्कर में मेरे पांच मिनट चले गये, भाईयो! सुनो, आजकल हम आश्चर्य से देख रहे हैं कि पौराणिकों ने अपने पैंतरे बदल लिए हैं। पहिले शास्त्रार्थों में, बड़ी युक्तियों से सिद्ध किया जाता था कि—"ब्राह्मणों को खिलाया भोजन पितरों को पहुंच जाता है" किन्तु जान पड़ता है कि इस बात की निर्मूलता आपको भी स्वयं अनुभव होने लग गई है, इसलिए इस प्रश्न को सामने लाने तक का भी यत्न नहीं किया जाता, बल्कि जहां तक हो सके टाला जाता है। पण्डित जी कहते हैं कि मृत पितरों का अहोरात्र एक-एक मास का होता है इसमें आपने कोई भी वैदिक प्रमाण नहीं दिखलाया। एवं आपने मेरे पहिले दिए हुए मन्त्रों का कोई उत्तर नहीं दिया। अब मैं आपके सामने दो अन्य मन्त्र भी रखता हूं। जरा इन पर भी अपना बुद्धि बल प्रकाशित कीजिए, देखिए, यजुर्वेद अध्याय १६, मन्त्र ५७, में कहा है—

"उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु।
त आगमन्तु त इह श्रुवन्त्वधिब्रुवन्तुतेऽन्त्वस्मान्॥

इस मन्त्र में साफ-साफ "अधिब्रुवन्तु" शब्द पढ़ा है जिसका अर्थ यह है कि वे पितर बोलें! मैं पूछता हूं पण्डित जी महाराज? क्या मृत पितर बोला भी करते हैं? क्या आप लोगों ने कभी बोलते सुना है? हां! यदि पण्डित जी ने कभी सुना हो तो पता नहीं। श्रोताओं में हंसी············अच्छा और भी देखिए—उसी अध्याय का सैतालिसवां मन्त्र—

"उदीरता मवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः।
असुं य ईयुरवृकाऋतास्ते नोऽवन्तु पितरोः हवेषु॥

इस मन्त्र में स्पष्ट ही पितरों के लिए "असुं यईयुः" शब्द पढ़े हैं। जिनका तात्पर्य यह है कि यहां प्राणधारी

जीवित पितर लिए जाते है। पण्डित जी से मेरा आग्रह है कि आप अपनी इस बात पर दृढ़ रहें कि "ब्राह्मण के शरीर में आकर पितर भोजन करते हैं।" अच्छा अब मैं पण्डित जी के सामने कुछ प्रश्न रखता हूं, पण्डित जी कृपया इनका उत्तर दें—

१. भला जो पितर गर्भ में स्थित है वे ब्राह्मण के पेट में क्यों कर आ सकते हैं ? जिस समय वे आते होंगे उस समय क्या गर्भ में बच्चा नहीं रहता ?
२. जो पितरगण मुक्त हो चुके वे मोक्ष से लौटकर किस प्रकार ब्राह्मणों के पेट में आ सकते हैं ?
३. कल्पना कीजिए कि कोई पितर पशु यौनि में गए हैं, तो ऐसी अवस्था में ब्राह्मण के मन की मिठाई खिलाने से उस पशुयोनिस्थ पितर की तृप्ति होगी या धास आदि पशु के रूचिकारक वस्तुयें खिलाने से ? साथ ही यह भी बताइये कि यह व्यवस्था कौन करेगा कि अमुक-२ के पितर अमुक-२ योनि में गए हैं ? ताकि तदनुसार ही भोजन ब्राह्मण देवता के पेट में डाला जाये ?
४. ब्राह्मण को खिलाया भोजन पितरों को पहुंच जाता है इसमें वेद का क्या प्रमाण है ?

श्री पण्डित गिरिधर शर्मा जी चतुर्वेदी—

आपने "मतानुज्ञाग्रह" निग्रह स्थान मुझ पर किस प्रकार लगाया है, मेरा तो कथन है कि आप भी श्राद्ध को ठीक मानते हैं, मैं भी ठीक मानता हूं। जिस प्रकार मुझे अनेक पक्ष की पुष्टी करनी होगी, वैसे ही आपको भी करनी होगी। मित्रवर ! आपने यह कैसे कह दिया कि—पितरों के उद्देश्य से खिलाए भोजन द्वारा या तो पितरों की ही तृप्ति होगी, और या ब्राह्मणों की ही तृप्ति होगी, दोनों की तृप्ति नहीं होगी ? क्या एक ही क्रिया से दो कार्य नहीं हो सकते ? अग्नि जलाने से मकान भी काला हुआ और चावल भी पक गए। सेना की विजय से सैनिकों को तमगे मिल गए, राजा की जीत हो गई और शत्रु का पराजय भी हो गया। इसी प्रकार उसी भोजन से ब्राह्मण की भी तृप्ति हो गयी और पितर भी तृप्त हो गए। ऐसी-ऐसी शंकाओं से वृथा समय यापन ही होता है। प्रिय सज्जन ! जब पितृ शब्द के मुख्य अर्थ से ही काम चल जाता है तो अन्नदाता, भयत्राता, आदि गौण अर्थों के आश्रय की क्या आवश्यकता है ? मित्रवर ! "पौराणिक पैंतरे बदल रहे हैं यह कैसा कटाक्ष है ? हमारे सिद्धान्त तो लाखों बरस बीते सदा से एक ही चले आये हैं। यह तो आपकी समाज का ही हाल है कि तीस साल में ही पार्टियें खड़ी हो गई हैं। आगे आप पूछते हैं कि मृत पितरों का अहोरात्र एक-एक मास का होता है। उसमें वेद का क्या प्रमाण ? वाह ! वाह !! क्या अजीब बात कही !!! क्या हर बात वेद में से निकलेगी ? क्या लोटा भरने का विधान भी वेद ही बतलायेगा। शब्द शक्तिग्रह के लिए वेद की आवश्यकता नहीं किन्तु—

"शक्तिग्रहं व्याकरणोकपमानकोशाप्तवाक्याद्व्यवहाराश्च।
वाक्यस्य शेषाद्वि नृतेर्वदन्ति सांनिध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धा ॥"

"ये च मृता ये च जीवा ···········" इस मन्त्र में जो "घृत कुल्या" है वह जीवित पितरों के लिए कैसे हो सकती है ? आप बताइए कि— "ये निखाताः···········" इत्यादि मन्त्र का क्या अर्थ है ? यदि आप इसका अर्थ भोज्य पदार्थों पर लगाते हैं तो यह कैसे उत्पन्न होगा कि—हे अग्ने ! तुम उन पदार्थों को लाओ। यदि आप मृत पितरों का श्राद्ध नहीं मानते तो "मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते" इसके अनुसार द्युलोक में आप किसको अन्न देंगे ? "ये अग्निदग्धाः" आदि विशेषण स्थूल शरीर के ही दग्ध होने से उपचरित हुए हैं। वे मृत पितर जिनका स्थूल शरीर दग्ध हो चुका है। जिस प्रकार आत्मा के न चल सकने पर भी "मैं चलता हूं" यह व्यवहार होता है। जिस प्रकार मेरा जमा किया हुआ धन वसीयत वाले को मिलेगा वैसे ही हमारे कर्मों का फल पितरों को मिलता है।

आपने कई प्रश्न किए थे ? किन्तु वे सब विषयास्पृष्ट हैं "मरे हुए पितरों का जन्म कब होता है" इसका विषय से कोई सम्बन्ध नहीं है ॥

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति—

पण्डित जी ने "मतानुज्ञा" निग्रह स्थान से पीछा छुड़ाने के लिए एक नई तरकीब निकाली है। आपने कदाचित् यह समझा होगा कि इतना कह देने मात्र से कि—"आप भी श्राद्ध को ठीक मानते हैं और मैं भी मानता हूं" मैं बचकर निकल जाऊंगा। पर हम तो वेदमें श्राद्ध शब्द का आना नहीं मानते और पितृयज्ञ का विधान जीवितों के लिए मानते हैं न कि मृतों के लिए! इस बात को हम वेद के प्रमाणों से सिद्ध भी कर रहे हैं। सो यह विचार न कीजिए कि आप निग्रह स्थान से बच निकले। वह तो आपको दबोचे बैठा ही है। सज्जनो! पण्डितजी ने फ़रमाया कि जिस तरह सेना विजय से सैनिकों को तमगे भी मिल जाते हैं और राजा की भी जीत हो जाती है। अर्थात् दो उद्देश्य पूरे हो जाते हैं, तैसेही ब्राह्मण के पेट की और पितरों की, दोनों की ही तृप्ति हो सकती है। मैं पूछता हूं, क्यों पण्डित जी! क्या तमगे लेना भी सेना विजय का उद्देश्य होता है? "ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति" के अनुसार तमगे भी मिल जाते हैं। किन्तु तमगे देना उद्देश्य नहीं होता। इस सकल संहारी महायुद्ध में ब्रिटिश सरकार उस उद्देश्य से नहीं कूद पड़ी कि अमुक-२ व्यक्तियों को तमगे ही देने थे। दूसरे आपने कहा कि अग्नि से चावल भी पक गए, और मकान भी काला हो गया, धन्य हो! पण्डित जी महाराज!! फिर आप श्रोताओं पर दोष रखेंगे कि हंसते हैं, आप बातें ही ऐसी कहते हैं, क्या दुनिया में कोई व्यक्ति मकान काला करने के उद्देश्य से आग जलाता है? नहीं महाराज जी? अग्नि जलाने में केवल चावल पकाना ही उद्देश्य होता है। मकान काला करना नहीं,·······श्रोताओं में जबर्दस्त हंसी·········" भला पण्डित जी आप यह तो बतलाइए कि—"श्राद्ध" कब से चला है? अनुशासन पर्व में·········(बीच में)

श्री पण्डित गिरिधर शर्मा जी चतुर्वेदी—

यह आपकी लास्ट टर्न है अतः आप नया दोषोदोघाटन नहीं कर सकते।

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति—

अच्छा! अच्छा!! रहने दीजिये, चलो पूर्व किए गए प्रश्नों का ही उत्तर दो, अभी तो उन्हीं का भार बहुत है। मैं तो भूल ही गया था कि पण्डित जी में इतना भार सहने की शक्ति नहीं है।·········जनता में हंसी······ ··· तो आगे पण्डित जी······

श्री पण्डित गिरिधर शर्मा जी चतुर्वेदी—

(झल्लाते हुए)—आप फिर टोंट कसते हैं, क्या गुरुकुल में यही पढ़ाया जाता है? आप शास्त्रार्थ नहीं कर सकते तो साफ मना क्यों नहीं करते।

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति—

सज्जनो! मैंने ऐसी तो कोई गलत बात कही नहीं है जिस पर पण्डित जी गुस्सा दिखा रहे हैं। वास्तव में गुस्सा इन्हें आ अपने ऊपर रहा है, उतार मुझ पर रहे हैं, ········· जनता में फिर हंसी ········· भाइयो! आगे पण्डित जी कहते हैं कि पितृ शब्द के मुख्य अर्थ से ही काम चल जाने से, मनु और सायणाचार्यादि के लाक्षणिक अर्थ करने की कोई आवश्यकता नहीं है। पर पहले आप मनु आदि के किए अर्थों की लाक्षणिकता तो सिद्ध कीजिए? आप चाहें तो यजुर्वेद २९/४६ में साफ-साफ देख सकते हैं कि वेद में जीवित पितरों का वर्णन है मन्त्र भी नोट कर लीजिए—

"स्वादुषः सदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवंतोगभीराः।
चित्रसेनाइषुबला अमृध्राः सतो वीरा उरवो व्रातसहाः॥"

इसमें आयु धारण करने वाले विचित्र सेनाओं वाले बाण प्रहारी पितर कहे हैं? मैं पूछता हूं! क्यों पं० जी? क्या मरे हुए पितर भी धनुष बाण लेकर अन्तरिक्ष लोक में एक दूसरे को मारते हैं। अब मैं एक मन्त्र और पेश करता हूं जिसके अर्थ समझ लेने पर कोई भूल कर भी पितृ शब्द से मृत पितरों का ग्रहण न करेगा। देखिए अथर्ववेद १८-४-८७,—"ये इह पितरो जीवा इह वयं स्मः। अस्मां स्तेनु वयं तेषां श्रेष्ठा भूयास्म॥" इस मन्त्र

में जीव तथा पितृ शब्द विशेष्य-विशेषण हैं। यहां स्पष्ट ही जीवित पितर कहे गए हैं। इस पर पण्डित जी क्या कहते हैं ? इस मन्त्र से कोई भी सन्देह नहीं रहता कि जीवित पितरों का ही आवाहन किया जाता है। **"ये निखाता…………"** इत्यादि मन्त्र का अर्थ करते हुए पण्डित जी फ़रमाते हैं कि वे पितर जो गाड़े गए हैं। भला पण्डित जी महाराज ! यह तो बताइए कि क्या हमारे प्राचीन काल में कोई ऐसा भी समय था जब कि हमारे यहां मुर्दा गाडने की प्रथा जारी थी ? क्या आप मुर्दा गाडने में कोई वैदिक विधान दिखाने को तैयार हैं ? वेद तो सुना रहा है **"भस्मान्तं शरीरं ………"** और आप वेदों में मुर्दों का गाडना दिखाते हैं **"ये निखाता ………"** इत्यादि मन्त्र का आपका किया अर्थ कभी वेद सम्मत नहीं हो सकता, अतः उक्त मन्त्र को "भोज्य पदार्थ परक" ही लगाना पड़ेगा अन्यथा आपके कथनानुसार **"मृत पितृ परक"** लगाने से वेदों को दूर से ही तिलाञ्जली देनी पड़ती है। सज्जनो ! आपको याद होगा पण्डित जी ने प्रमाण देते हुए बड़े जोर से कहा था कि—**"अहोरात्र"** के शब्द शक्तिग्रह के लिए वेद की आवश्यकता नहीं, परन्तु पण्डित जी ! यह तो **"मम मुखे जिह्वा नास्ति"** वाली बात हुई ना ? …………श्रोताओं में हंसी………एक तरफ तो आप कहते हैं कि शब्द शक्तिग्रह के लिए वेद की आवश्यकता नहीं है। किन्तु दूसरी तरफ़ **"पितृ"** शब्द के निर्णय के लिए अपने वेदो के कितने ही प्रमाण दिए हैं, क्या यहां परस्पर विरोध नहीं है ? अनुशासन पर्व में, युधिष्ठर ने भीष्म पितामह से प्रश्न किया है कि—**"श्राद्ध की प्रथा कब से आरम्भ हुई ?"** इसके उत्तर में भीष्म पितामह ने कहा कि—**"निमि नाम के राजा के समय से यह प्रथा जारी हुई है"** तो क्या **"निमि"** से पूर्व बिचारे मृत पितरों की दुर्गति ही हुआ करती थी ? अतः मानना पड़ेगा कि श्राद्ध जीवित पितरों का ही होता था। क्यों पण्डित जी ? मैंने पूछा था कि—**"श्राद्ध"** और **"पिण्ड पितृ यज्ञ"** शब्द वेदों में से दिखाइए, किन्तु पंडित जी ने अब तक इसके लिए कोई उत्तर नहीं दिया। ब्राह्मणों को खिलाया हुआ मृत पितरों को कैसे पहुंच जाता है ? इसका भी आपने कोई उचित उत्तर नहीं दिया। मैंने जिस मन्त्र द्वारा यह स्पष्ट रूप से साफ-साफ बताया था कि—**"जीवित पितरों का ही श्राद्ध होता है"** उस मन्त्र के विषय में पण्डित जी बिल्कुल चुप्पी साध गए हैं, मैंने दिखाया था कि वेद में पितरों का उठना, बैठना तथा बोलना लिखा है। इस प्रश्न के ऊपर से श्री पण्डित जी बिल्कुल साफ कदम उठा कर निकल गए। सज्जनो ! उधर सभापति जी का निर्देश हो रहा है कि समय समाप्त हो गया है। इसीलिए………बीच में ही—टर्न टन टन………

श्री पण्डित गिरिधर शर्मा जी चतुर्वेदी—

सज्जनो ! यह लास्ट टर्न होने पर भी नये-२ दोषोद्भाषण किए गए हैं अतः मैं सभापति जी से प्रार्थना करता हूं कि एक-एक टर्न और मिलनी चाहिए।

श्री लाला बलदेव सिंह जी सभापति—

अच्छा ! एक-एक टर्न यदि आप दोनों लोग चाहें तो हो सकती है।

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति—

बड़े शौक से ! हम तैयार हैं, जब तक पूर्ण तसल्ली न हो जाय हम हटने वाले नहीं हैं।………श्रोताओं में नया उत्साह, उमंग व चारों तरफ़ हर्ष का वातावरण………।

श्री पण्डित गिरिधर शर्मा जी चतुर्वेदी—

१. मित्रवर ! **"मृत पितरों"** को घृत की कुल्या मिलने के विषय में आपने कोई उत्तर नहीं दिया। २. **"पूषा त्वेत श्च्यावयतु………'** इसका भी आपने उत्तर नहीं दिया, आपकी यह आदत है कि अन्तिम टर्न में ही आप दूसरों के दोष निकाला करते हैं। ३. जिस प्रकार **"युद्ध"** का आवान्तर उद्देश्य सिपाहियों को तमगा देना भी होता है इसी प्रकार श्राद्ध का आवान्तर उद्देश्य ब्राह्मणों की तृप्ति होना भी हो सकता है। ४. **"ये निखाता………"** इत्यादि मन्त्र का आपके कथनानुसार यह अर्थ होगा कि—हे अग्ने ? हवि खाने के लिए तुम उन निखात पदार्थों का

आवाहन करो। "निखाताः" है प्रथमान्त और "हविषे" है चतुर्थ्यन्त, भलायह तो बताइए कि आप इनका समन्वय किस प्रकार करेंगे ? ५. प्रिय सज्जन ! महाभारत में जो "निमि" से श्राद्ध प्रथा का आरम्भ बताया गया है, वह सतयुग से ही प्रारम्भ हुई थी, और "निमि" ने वेद से देखकर "श्राद्ध प्रथा चलाई थी"। ६. शब्दार्थ निर्णय के लिए वेद से तब आश्रय लेना पड़ताहै जब कि व्यवहार में विप्रतिपत्ति हो। मनु भगवान ने जो "पितृ" शब्द के अन्य अर्थ किए हैं वे लाक्षणिक हैं। मुख्य अर्थ तो लोक में प्रसिद्ध ही है कि "पितृ" शब्द से जनक ही लिया जाता है। ७. आपने "य इह पितरो जीवाः........." यह मन्त्र दिया था कि इसमें तो स्पष्ट-स्पष्ट जीवित पितरों का विधान है, परन्तु मित्रवर ? "मृत पितर" कहने से हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि—"जो पितर नितान्त नेस्तोनाबूद हो गए हैं," किन्तु वे अपनी योनि में तो जीवित ही हैं। ८. आगे ही चलकर मन्त्र में आया है कि "इहवयंस्म" अर्थात् हम यहां हैं और तुम अन्यत्र हो अतः इससे मृत पितरो का ही निर्देश है। ९. "स्वधापितृभ्यो अन्तरिक्ष सद्भ्यः ?" इस मन्त्र में साफ-साफ लिखा है कि अन्तरिक्ष में रहने वाले पितरों को अन्न मिले, भला यह तो कहिए कि—अन्तरिक्ष में रहने वाले मृत पितर हो सकते हैं या जीवित पितर ? कदाचित् आपके जीवित पितरों को पर लग गए होंगे जिनसे वे अन्तरिक्ष में भी उड़ान भरा करने हैं।......जनता में हंसी.........। १०· "श्राद्ध" शब्द वेद में नहीं है, पर उसका अर्थ तो वेद में मिलता है वो तो कहीं नहीं भाग गया, अतः श्राद्ध शब्द के विषय मे झगड़ा करने की क्या जरूरत है ? चाहे वो वेद में हो या न हो ?

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति—

सज्जनो ! लोक में प्रसिद्ध है कि—**"हारा हुआ जुआरी फिर दाव लगाता है"** पर बेचारे का पासा ही सीधा न पड़े तो वो कहां तक प्रयास करे।......गर्ज कर......याद रखना वह कितने भी दाव लगाए हमेशा हारेगा।......... पौराणिक मण्डल में खलबली.........सभापतिं द्वारा बड़ी मुश्किल से शान्ति स्थापित् करना.........अच्छा सुनो ? हमारा आधा प्रश्न तो हल हो गया, पण्डित जी ने मान लिया कि—**"श्राद्ध"** शब्द तो वेद में कहीं नहीं पाया जाता अच्छा अब......पौराणिक समुदाय में पुनः शोरगुल......अन्याय......अन्याय।

श्री पण्डित गिरिधर शर्मा जी चतुर्वेदी—

यह मैंने कब कहा कि **"श्राद्ध"** शब्द वेद में नहीं है ? मेरा तो कहना है कि इस पर झगड़ा करने की ज़रूरत ही क्या है ?

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति—

आश्चर्य ! महा आश्चर्य !! इतना सफ़ेद झूठ !!! चलो मैं साक्षी दिलवाने के बजाय अब कहता हूं कि— **"यदि आपने यह नहीं कहा तो अब भी बता दीजिए कि "श्राद्ध शब्द वेद में है या नहीं ?"** मैं अपने समय में से ही एक मिनट इसके उत्तर के लिए आपको देता हूं, आप इसका उत्तर साफ-साफ दें। सब झगड़ा तय हो जाएगा।

नोट—

"वक्ता" महाशय का एक मिनट तक मौन रहना और पण्डित गिरिधर शर्मा जी के उत्तर की प्रतीक्षा करना ? ....कोई उत्तर न मिलने पर.........(पण्डित गिरिधर शर्मा जी का चेहरा पीला पड़ गया).........।

"लो सज्जनो ! आपने देख लिया कि पंडित जी को मैंने अपना एक मिनट भी दिया, किन्तु फिर भी पंडित जी ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया कि वेद में **"श्राद्ध"** शब्द मिलता है वा नहीं ? परन्तु पण्डित जी का चेहरा साफ बतला रहा है। जुबां न खुले तो क्या ? **"कि वेद में "श्राद्ध" शब्द नहीं है"** अब मैं पौराणिक श्रोताओं से भा पूछता हूं कि वो तालियों की गड़गड़ाहट अब कहां गायब हो गई ? वेद में कहीं **"श्राद्ध"** शब्द हो तो अपने पण्डित जी से दिखलवायें ?

नोट—

पौराणिक मण्डल से एक व्यक्ति ने कहा—"उपनिषद में श्राद्ध शब्द आता है"।

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति—

वेद में तो कहीं नहीं आता है ना ?······पौराणिक मण्डल से······नहीं······नहीं······नहीं······बस !बस !! ···भाइयो मुझे यही सुनना था। पण्डित जी ने कहा, कि—"यह मेरी आदत है कि जब लास्ट टर्न आती है तो मैं नए-२ दोष दिखाया करता हूं।" मैं भी पं० जी की एक आदत आपको बतलाता हूं कि—"जब लास्ट टर्न दूसरे की हो तो पण्डित जी अपने पक्ष की निर्बलता देख कर घबरा जाया करते हैं। जैसे आपने शंका उठाई कि—आप प्रथमान्त और चतुर्थ्यन्त का समन्वय किस प्रकार करेंगे ? मैं पूछता हूं कि "हविषे अत्तवे" दोनों चतुर्थ्यन्त हैं तो आप "हवि के खाने के लिए" ऐसा चतुर्थी का षष्ठ्यर्थ किस प्रकार करेंगे ?··· ···पौराणिक मण्डल में······शी······शी······शी······" जिस प्रकार वहां "हविषे" की जगह षष्ठी का अर्थ करना पड़ता है उसी प्रकार यहां पर व्यत्यय से "पितॄन्" का अर्थ "पितॄणां" होगा और मन्त्र का यह अर्थ होगा कि—"हे अग्ने ! तू उन निखातादि भोज्य पदार्थों को पितरों के "हवि" खाने के लिए ला।" इसके बाद आपने कहा कि—महाभारत में आया है कि यह "मृत पितरों" का श्राद्ध सत्युग से चला है। परन्तु वहां ऐसा बिल्कुल भी नही आया, वहां तो आया है कि—

अकृतं मुनिभिः पूर्वं किं मयवे मनुष्ठितम् कथं न शापेन न मांद हेयु ब्रह्मिणा इति।

महाभारत अनुशासन पर्व अध्याय ९१/१७

अर्थात्—

मैंने यह "मृत पितृ श्राद्ध" करे मुनियों द्वारा दिखाये मार्ग से विरुद्ध कर्म किया है, अत: अब मुझे ब्राह्मण अपने शाप से कहीं दग्ध तो न कर देंगे ? इसलिए "मृत पितृ श्राद्ध" सर्मथापि शास्त्र विरुद्ध है। और······बीच में······

श्री पण्डित गिरिधर शर्मा जी चतुर्वेदी—

अच्छा आप थोड़ा और आगे तो पढ़ें !

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति—

मेरे पास इतना समय नहीं है।······पौराणिक मण्डल में······शोरोगुल······गुल गपाड़ा·· ···तालियें··· हो हुल्लड़······" यह आपकी सभ्यता और शिष्टता है ?···

श्री पण्डित गिरिधर शर्मा जी चतुर्वेदी—

महाशय जी कृप्या आप अगले श्लोक भी पढ़ देवें, आपको उतना समय और मिल जायेगा।

श्री लाला बलदेव सिंह जी सभापति—

हां ! आप अगले श्लोक भी पढ़ देवें आपको उतना समय और मिल जायेगा।

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति—

ठीक है ! परन्तु सभापति जी आपको पता नहीं है इन पण्डित जी की ये आदत है कि—"अगुली पकड़ कर पौंचा पकड़ना" अब पढ़ने को कहते हैं फिर अर्थ के लिए कहेंगे। खैर ! मैं पण्डित जी की तसल्ली के लिए पढ़ दूंगा, अच्छा पण्डित जी आप पुस्तक से वह स्थल निकालिए, इतने मैं अपना व्यक्तव्य पूरा करता हूं।

पण्डित जी ने फ़र्माया कि "अहोरात्र" शब्द पर जब विप्रत्तिपत्ति ही नही तो वेद में से प्रमाण देने की जरूरत ही क्या ? क्या खूब ! भाई वाह !! सुना आपने !!! मैं इतनी देर से स्पष्टतया विप्रतिपत्ति उठा रहा हूं। किन्तु पण्डित जी कहते हैं कि किसी की विप्रतिपत्ति ही नहीं। क्या पण्डित जी सुनी को भी अनसुनी करियेगा ? पण्डित जी ने कहा कि—"मृत पितर" से हमारा यह अभिप्राय नहीं कि जो नितान्त नेस्तोनाबूद हो गए हैं, किन्तु जो अपनी योनि में तो जीवित ही है। तो भला पण्डित जी आप यही अर्थ करेंगे कि—"जो मेरे जीते हैं" ? यदि यही अर्थ करना

है तो दोनों शब्दों की क्या आवश्यकता है ? कि—"ये च जीवा ये च मृता" । और य इह पितरो जीवः" इसका अर्थ आपके मतानुसार सर्वथापि संगत नहीं हो सकता । अच्छा महाभारत में से वह स्थान निकल आया है, मैं उसे आपके सामने पढ़ देता हूं सभापति जी देख लें कि मेरा कितना समय अवशिष्ठ है, वह समय मैं बाद में ले लूंगा ।

श्री लाला बलदेव सिंह जी सभापति—

आपका एक मिनट अवशिष्ठ है, वह आपको बाद में मिल जायेगा ।

नोट—श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति द्वारा अगले श्लोकों को पढ़ना······वीच में······"

श्री पण्डित गिरिधर शर्मा जी चतुर्वेदी—

उनके अर्थ भी सब कर दीजिये, ताकी पूर्ण बात श्रोता लोग समझ सकें !

श्री पण्डित इन्द्र जी विद्यावाचस्पति—

देख लिया भाइयो ! आपने देख लिया मैंने पूर्व ही भविष्य वाणी कर दी थी······जनता में हुंसी······" पण्डित जी आप मुझे बार-२ टोकते हैं ताकि जो बात मैं कहना चाहता हूं वह पूरी न कर सकूं, ये लीजिये ग्रन्थ आप स्वयं ही अर्थ पढ़ कर सुना दीजिये । ······पण्डित गिरिधर जी द्वारा अर्थ का पढ़ा जाना······पौराणिक समुदाय में ······वाह ! वाह !!······व शोरो गुल······ !!······पश्चात् श्री पण्डित इन्द्र जी का अपना वक्तव्य पूरा कराना···

"सज्जनो ! पण्डित जी ने आपके सामने वे श्लोक व अर्थ पढ़ दिया, किन्तु उनमें कहीं भी "मृत पितरों" का वर्णन नहीं आया । अच्छा अब मैं अपना एक मिनट लेता हूं ।

"मैंने पण्डित जी से पूछा था कि वेद मन्त्रों में तो पितरों के लिए आता है "अधिब्रुवन्तु" क्या "मृत पितर" कभी बोल सकते हैं ? परन्तु पण्डित जी ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया, बल्कि ये लोग शोर गुल्ल करके सच को दबाने की चेष्टा करते हैं । किन्तु जो वैदिक पक्ष है वह आज स्थित हो गया ।"पौराणिक मण्डल में से······बोलो सनातन धर्म की जय की ध्वनि······व तालियों की गड़गड़ाहट······।।

श्री पण्डित पूर्णानन्द जी—

(पौराणिकों में से दुगुने आवेश में ऊंची आवाज में······बोलो वैदिक धर्म की······जय,······महर्षि दयानन्द की···जय······श्री पण्डित विश्वनाथ जी मन्त्री मेरी बात का उत्तर दें—

"भला यह आप लोगों का कैसा शिष्ठ व्यवहार है ? यदि आप हमारे यहां आते और हम आपकी पगड़ी उतारते तो हमें कैसी शर्म आती ?

नोट—

इसके अनन्तर शनै-२ शास्त्रार्थ स्थली खाली हो गई, परन्तु श्री पण्डित दुर्गादत्त पन्त जी ने 'जो चुप बैठे थे' अन्त में उठते हुए बड़े आवेश में आकर श्री पण्डित पूर्णानन्द जी को संकेत करके कहा कि—"मैं चैलेञ्ज देता हूं यदि आप "गुरुकुल और यज्ञोपवीत" शब्द वेद में से निकाल दें ।" इसके उत्तर में पंडित पूर्णानन्द जी ने कहा—"कि हां ! चलिए गङ्गा के किनारे पर मैं बीस साल तक शास्त्रार्थ करने को तैयार हूं" मैं आपको दिखलाऊंगा कि वेद में इसका मूल कहां-२ पाया जाता है ।

श्री लाला बलदेव सिंह जी का अन्तिम भाषण—

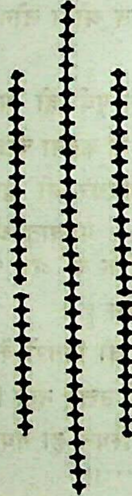
आओ अन्त में सब मिलकर परम पिता परमात्मा से प्रार्थना कर लें····"हे परम् पिताजी ! वक्ताओं के मुख पवित्र हो जावें, सुनने वालों के कान पवित्र हो जावें, सारे आकाश में पवित्रता फैल जावे और परम पिता अनुचित भावों को दूर करें । अच्छा ! सब मिलकर तीन बार बोलें "परम पिताजी सब आपके भक्त बन जावें ।'

नोट—"इस प्रकार यह शास्त्रार्थ समाप्त हुआ, एवं कितना अच्छा "मृतक श्राद्ध" का नीर-क्षीर विवेक इसमें हुआ वह आप पाठक लोग स्वयं निर्णय करें । जिन लोगों ने स्वयं अपनी आंखों से देखा व कानों से सुना वे लोग तो धन्य थे ।

"सम्पादक"

तैंतीसवां शास्त्रार्थ

स्थान : जेजों, जिला होशियार पुर (पंजाब)



विषय : **क्या ईश्वर जगत्कर्ता है ?**

दिनांक : **१५ अप्रैल सन् १०१७ ई०**

सभापति : **श्रीमान महाशय देवी चन्द जी (हैड मास्टर—डी० ए० वी० हाई स्कूल होशियार पुर)**

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : **कवितार्किक श्री पण्डित नृसिंह देव शास्त्री दर्शनाचार्य (प्रोफेसर डी० ए० वी० कालेज लाहौर)**

जैनियों की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : **श्री पण्डित बनारसी दास जी जैन**

शास्त्रार्थ के आयोजन कर्त्ता : **महाशय लक्ष्मण दास जी (मन्त्री आर्य समाज जेजों)**

नोट—यह शास्त्रार्थ २३-५-१९१७ ई० को प्रथम बार छपा, उसके बाद अब प्रकाशित किया गया है।

शास्त्रार्थ से पहले

"ईश्वर जगत्कर्त्ता है" यह वेद का अटल सिद्धान्त सर्वोपरि विराजमान है, परन्तु कई एक सम्प्रदायी लोग उक्त सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते, जैसा कि जैन मतानुयायी ईश्वर को जगत्कर्त्ता नहीं मानते, वैदिक सिधान्तों का प्रचार करना आर्यों का मुख्य धर्म जानकर हमने तारीख १५-४-१९१७ई० को अपने आर्य समाज के उत्सव में उक्त विषय पर शास्त्रा करने के लिए भारतवर्ष के समस्त जैनियों को समाचार पत्र आदि द्वारा चैलेंज दिया था कि हम आपको शास्त्रार्थ का अवसर देते हैं। यहां के कई एक जैन भाइयों ने इस बात को स्वीकार कर बड़े समारोह से अपने विद्वान श्री पं० बनारसी दास जी को बुलाया, एवं हमारी ओर से कवितार्किक पं० नृसिंह देव शास्त्री दर्शनाचार्य प्रोफेसर डी० ए० वी० कालेज, लाहौर ठीक नियत्त समय पर पधारते ही प्लेटफ़ार्म पर शास्त्रार्थ करने के लिए खड़े हो गए। और उन्होंने शास्त्राथ सम्बन्धी कई एक नियमों को वर्णन किया, जो दोनों पक्षों के लिए योग्य थे, जिनको श्री पं० बनारसीदास जी ने सर्व जनता के समक्ष स्वीकार किया वह नियम यह है—

१. शास्त्रार्थ का विषय ईश्वर जगत्कर्त्ता है वा नहीं ? अस्ति (है) पक्ष आर्यों का एवं नास्ति (नही है) पक्ष जैनियों का।
२. शास्त्रार्थ संस्कृत वा देशी (हिन्दी) भाषा में होगा।
३. प्रथम बार दोनों वक्ता—दस-दस मिनट बोलेंगे पश्चात् पांच-पांच मिनट।
४. प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान तथा शब्द प्रमाण यह चारों प्रमाण विषय निश्चय के लिए यथा रुचि स्वीकृत हुए।
५. जो वक्ता शास्त्रार्थ प्रारम्भ करेगा वही समाप्त करेगा, दूसरे का अधिकार नहीं।
६. शास्त्रार्थ में दोनों पण्डित एक दूसरे से शास्त्रार्थ सम्बन्धी कुछ लेख अपनी रुचि अनुसार लिखा सकते हैं।
७. शरीर सम्बन्धी बाधाओं को दूर करने के लिए दोनों पण्डितों को शास्त्रार्थ के मध्य समान अधिकार है।

उक्त नियमों में नं० २ नियम के अन्तर्गत श्री पं० बनारसीदास जी ने हिन्दी में ही शास्त्रार्थ करने की स्वीकृति दी (श्री पं० बनारसी दास जैन संस्कृतज्ञ नहीं थे) एवं अन्य सभी नियम स्वीकृत होने के अनन्तर शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ।

शास्त्रार्थ का नियत समय दो घंटे थे, परन्तु श्री दर्शनाचार्य जी की प्रबल युक्तियों से घबराकर श्री पं० बनारसी दास जी पूरे समय को न निबाह सके इसलिए डेढ़ घण्टे के लगभग शास्त्रार्थ करके श्रोताओं की रुचि अनुसार समाप्त किया गया, दोनों पक्ष वालों की सम्मति से इस शास्त्रार्थ के सभापति श्रीमान महाशय देवी चन्द जी, हैड मास्टर डी ए० वी० हाई स्कूल होशियार पुर नियत किये गए, जिन्होंने अपने कर्त्तव्य को निष्पक्ष पालन क़िया।

शास्त्रार्थ का विषय बहुत सूक्ष्म तथा दर्शनों की परिभाषा कठिन होने पर भी श्री पं० नृसिंह देव शास्त्री जी बहुत सरल रीति से वर्णन करते थे, जिसको साधारण लोग भी भले प्रकार समझने में दत्तचित्त बने रहें, सो वैसे ही हमने क्रम से इसे छपवाकर सबके लिए प्रसिद्ध किया है, कृपया एकाग्र चित्त से पढ़ कर लाभ उठायें।

ता० २३-५-१७

निवेदक
"लक्ष्मण दास"
(मन्त्री आर्य समाज जेजों)

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित बनारसी दास जैन—

आर्य समाज के सिधान्त में जीव, ईश्वर, प्रकृति, तीन पदार्थ अनादि हैं, अब विचारणीय यह है कि ईश्वर निमित्त कारण तथा दयालु है वा नहीं, यदि निमित्त कारण दयालु ईश्वर होता तो कदापि कोई जीव पाप न करता, सर्वशक्तिमान ईश्वर पापों से अपनीं शक्ति द्वारा हटा देता, कोई जीव पाप न करता, आर्यों का ईश्वर दयालु है !

सज्जनों सुनो ! ध्यान से सुनो !! मैंने क्या कहा कि आर्यो का ईश्वर दयालु है परन्तु इनके यजुर्वेद में अध्याय १३ मन्त्र ४८ में वही दयालु ईश्वर मारने की आज्ञा देता है । इस प्रकार जीवों को पाप से न हटाने के कारण सर्वशक्तिमत्ता रूप-गुण तथा हत्या करने की आज्ञा देने से दयालुपना नष्ट हो जाने पर ईश्वर ही नष्ट हो गया । अर्थात् सिद्ध न हो सका क्योंकि गुण के नाश से गुणी का नाश हो जाता है ।

दूसरी बात यह है कि इन्द्रिय सन्निकर्ष-सम्बन्ध न होने से ईश्वर का प्रत्यक्ष नहीं, प्रत्यक्ष का अभाव होने पर अनुमान का कथन ही असम्भव है, सादृश्य न होने से उपमान तथा अद्यापि ईश्वर की सिद्धि न होने के कारण वेद रूप शब्द प्रमाण भी ईश्वर साधक नहीं हो सकता । किञ्च "क्षित्यं कुरादिकं कर्तृजन्यं" इत्यादि, आर्यों का ईश्वर साधक अनुमान भागासिद्ध हेत्वाभास है, जिस अनुमान-हेतु का एक भाग सिद्ध तथा दूसरा असिद्ध हो उसको "भागासिद्ध" हेत्वाभास कहते हैं ।

ऋग्वेद भाष्य भूमिका में परमाणु आदि को अनित्य माना गया है, पर ईश्वर जन्य नहीं अतएव उनमें कार्यपना होने पर कर्तृजन्य रूप-कर्त्ता से पैदा होना साध्य न होने के कारण उक्त हेतु अनैकान्तिक-व्यभिचारी भी ठहरता है, और दूसरी बात यह है कि अशरीरी कर्त्ता में कोई प्रमाण नहीं पाया जाता, जो-जो घटादि कार्य हैं वह सब बुद्धि वाले शरीरी कर्त्ता से जन्य हैं, इस प्रकार दृष्टान्त की सफलता वास्ते ईश्वर का शरीर मानना होगा, पर उसका शरीर किसी अन्य कर्त्ता से जन्य मानोगे तो अनवस्था दोष की आपत्ति होगी । शरीरी ईश्वर के मानने से वह जीव के समान अल्पज्ञ अल्पशक्ति वाला होने से ईश्वर ही न रहेगा, और कार्यत्व हेतु स्वरूपा सिद्ध है, क्योंकि घटपटादि से विलक्षण अवयसंयोग वाले पृथिव्यादि किसी कर्त्ता से जन्य प्रयत्क्ष सिद्ध नहीं, और वनस्य तरुतृणादि में 'कार्यत्व' होने पर भी कर्तृजन्यत्व' साध्य न होने से उक्त हेतु व्यभिचारी हैं, यदि सर्वज्ञ कर्त्ता से जन्य रूप साध्य मानोगे तो दृष्टान्त में साध्यवैकल्य दोष होता अर्थात् ऐसा कोई दृष्टान्त नहीं पाया जाता जो सर्वज्ञ कर्त्ता से जन्य हो, और पृथिव्यादि कर्त्ता से जन्य नहीं क्योंकि इनका कोई बनाने वाला शरीरी नहीं, इस अनुमान से 'कार्यत्व' सत्प्रतिपक्ष भी है, कर्त्ता की प्रत्यक्षउपलब्धि न होने से तथा आगमादि प्रमाण न पाये जाने से 'कार्यत्व' हेतु बाधित हेत्वाभास भी है अतएव अनुमान द्वारा ईश्वर कर्त्ता की सिद्धि आशामोदक के समान समझनी चाहिए ।

सबसे प्रबल दोष जगत्कर्तृवादी के मन में यह है—

"अन्वयव्यतिरेकगम्यो हि कार्य-कारणभावः" अर्थात्—कार्य कारण भाव का निश्चय अन्वयव्यतिरेक द्वारा होता है, यह सर्वतन्त्र सिद्ध नियम है, सो ईश्वर तथा सृष्टिरूप कार्य में परस्पर नहीं पाया जाता अर्थात् जिस प्रकार—"कुलालसत्वेघटसत्वम्" कुलाल के होने से घट होता है एवं—"कुलालाभावेघटाभावः" कुलाल के न होने से घट नहीं होता यह अन्वयव्यतिरेक कुलाल तथा घट के परस्पर कार्य कारण भाव का गमक है वैसे 'ईश्वर-सत्वेजगत्सत्वं' ईश्वर के होने से जगत बन सकता है यह अन्वय होने पर भी "ईश्वराभावेजगदभावः" ईश्वर के न होने पर जगत नहीं हो सकता

या व्यतिरेक नहीं बन सकता क्योंकि ईश्वरकर्तृवादी के मत में सर्वव्यापक ईश्वर का किसी देश में अभाव नहीं और बिना अभाव के व्यतिरेक प्रमाण की सिद्धि कैसे ? इसके सिद्ध न होने से स्पष्ट है कि जगत् रूप कार्य कर्त्ता से जन्य नहीं, या यों कहो कि ईश्वर तथा जगत् का परस्पर कार्य कारण भाव नहीं ।

श्री पण्डित नृसिंह देव शास्त्री दर्शनाचार्य—

पण्डित जी आप शास्त्रार्थ के नियमानुसार पहले यह लिख कर दे कि **"गुण के नाश हो जाने पर गुणी का नाश हो जाता है"** तब शास्त्रार्थ आगे चलेगा ।

नोट—

इस बात को सुनकर जैन पण्डित जी के होश उड़ गये, श्रोताओं में चारों ओर सन्नाटा छा गया । परन्तु शास्त्रार्थ के नियमानुसार पण्डित जी को लिखकर देना पड़ा ।

श्री पण्डित बनारसीदास जैन—

लाइये, कागज व कलम मैं अभी लिखकर देता हूं । और (तुरन्त लिखकर दे दिया) कि—

"गुण के नाश हो जाने से गुणी का नाश हो जाता है"

हस्ताक्षर—

बनारसी दास जैन

ता०-५५-४-१७

इसे लिखवाकर पण्डित जी ने अपने पास रख लिया एवं उत्तर देने लगे—

श्री पण्डित नृसिंह देव शास्त्री दर्शनाचार्य—

अब शास्त्रार्थ में आनन्द आयेगा, अब सुनो ! पण्डित जी महाराज !! ईश्वर जगत्कर्त्ता नहीं इस प्रतिज्ञा को छोड़ ईश्वर दयालु नहीं यह आपने दूसरी प्रतिज्ञा की है, इसलिए **'प्रथमेग्रासेमक्षिकापातः** का न्याय आप पर घटने से **'प्रतिज्ञाहानि'** रूप निग्रह स्थान में प्राप्त हो गये हो, **"गुण का नाश होने से गुणी का नाश होता है"** इस कथन से आपने जैन फिलासफी पर महा कलंक लगाया है प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा स्याद्वादमञ्जरी आदि जैन न्याय के प्रसिद्ध ग्रन्थों द्रव्यार्थिकनव तथा पर्यायार्थिकनय के स्वरूप को विचार करते हुए गुण के नाश से गुणी का नाश नहीं माना यदि जैन मत में गुणी का नाश माना जाएगा तो **'उत्पादव्ययध्रौव्यंसत्** उत्पत्ति विनाश तथा स्थिति सहित को "द्रव्य" कहते हैं इस द्रव्य-गुणों के लक्षण से विरोध होगा ।

अभिप्राय यह है कि जैन सिद्धान्त में सहभावी तथा क्रमभावी भेद द्वारा द्रव्य की दो अवस्था मानकर सहभावी अवस्था को गुण और क्रमभावी अवस्था को पर्याय कथन किया है, अर्थात् नये पर्याय हालत की उत्पत्ति पुराने पर्याय का नाश होने पर जिसमें असल जाति गुण सदा विद्यमान रहे उसे 'द्रव्य' कहते हैं जैसा कि एक सुवर्ण की अंगूठी बदलकर कान की बाली बना ली जाए तो बाली का उत्पन्न होना उत्पत्ति अंगूठी का न रहना नाश और पीत कठोरता आदि सोने के गुण का विद्यमान रहना 'ध्रौव्य' ही द्रव्य कहाता है, इस लक्षण के अनुसार प्रथम तो आपके सिद्धान्त में गुण का कभी नाश ही नहीं होता फिर आप गुण का नाश जैन सिद्धान्त विरुद्ध कहते हैं जिससे आप अपसिद्धान्त निग्रह स्थान से निगृहीत हो गये, यदि गुण शब्द से आपका तात्पर्य बदलने वाले पर्यायों से है तो भी आपकी इष्ट सिद्धि नहीं, पर्यायों के बदलने पर भी पर्यायी आपके मत में बना रहता है फिर गुण नाश से गुणी का नाश कैसे ? धन्य हो पण्डित जी जैन आगम से भी विरुद्ध कथन करने पर आप निर्भय रहते हैं, हमारे सिद्धान्त में तो पृथिवी परमाणुओं में रूप की परा-प्रत्ति बदलना होने पर परमाणुओं का नाश न होने से गुण का नाश गुणी के नाश का प्रयोजक नहीं, गुणी के नाश से भले ही गुण का नाश हो जाय पर गुणनाश से गुणीनाश का नियम नहीं, शास्त्र को विचार कर पूर्व पक्ष की रीति का

अवलम्ब करो; यजु० अध्याय १३। मन्त्र ४८। में मारने की आज्ञा नहीं। आपने बड़े ही व्यंग्य के साथ इस वाक्य को बार-बार दोहराया था, पर मजे की बात मन्त्र का थोड़ा था अंश भी नहीं बोला। बोलते भी कैसे? कभी वेदों को स्पर्श ही नहीं किया।

लीजिए पं० जी महाराज मैं मन्त्र बोलता हूं आप भी सुन लीजिये—

"इमं मा हिꣳ सीरेकशफं पशुम्"

(यजुर्वेद अध्याय १३ मन्त्र ४८,)

अर्थ भी बोलता हूं ताकि सभी श्रोताओं में पं० जी के झूठ का पता चल जावे—इस मन्त्र का अर्थ है इस एक खुर वाले पशु को न मारो अब कहिए महाराज वेद में मारने का विधान है या पशु रक्षा का विधान है।

और जो कहा है कि सर्वशक्तिमान जीवों को दयालु होने पर भी पाप से क्यों नहीं रोकता उसका उत्तर यों है सृष्टि के आरम्भ में परमेश्वर ने विधि निषेधात्मक कर्मों का वेद द्वारा उपदेश देकर पुण्य पाप को भले प्रकार सूचना कर दी है इस पर भी जो जीव कामादिवश होकर अपनी स्वतन्त्रता से पाप में प्रवृत्त होते हैं, इससे ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता में कोई धब्बा नहीं लग सकता, वस्तु के स्वभाव को मलीयामेट कर देने से ही सर्वशक्तिपना सिद्ध नहीं होता, भला मैं आप से पूछता हूं कि आपका ईश्वर भी तो सर्वशक्तिमान् है फिर अपने आपको मार कर नरक में क्यों नहीं चला जाता और दयालु भी है फिर किसी नारकी के स्थान पर दयाभाव से आप ही दुःख को भोग कर उसे नरक से क्यों नहीं निकाल देता, बतलाइये ऐसा आक्षेप होने पर आप के पास क्या समाधान है, अन्ततः आपको सर्वशक्तिमान का यही अर्थ करना पड़ेगा कि वह स्वभाव के अनुकूल ही करता है विपरीत नहीं, यहां भी यही मार्ग अवलम्ब करें, इससे सिद्ध हो गया कि दयालु का होना किसी के पापानुष्ठान या पापपरित्याग में साधक नहीं हो सकता, हां उपदेश द्वारा पाप से हटाना दयालु का स्वभाव है, सो वैदिक ईश्वर में सिद्ध सङ्गत है असङ्गत नही।

जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों के न होने से ईश्वर की असिद्धि कही है उसका उत्तर यह है कि रूपादि का अभाव होने के कारण ईश्वर लौकिक प्रत्यक्ष का विषय नहीं यह बात हमको इष्ट है ऐसे ही ईश्वर के समान कोई दूसरा ईश्वर नहीं इसलिए सादृश्य के अभाव द्वारा उपमान प्रमाण भी ईश्वर का साधक न रहो हमारी कोई क्षति नहीं, परन्तु अनुमान तथा शब्द प्रमाण से उसकी सिद्धि में कोई बाधा नहीं अर्थात्—

"क्षित्यंकुरादिकंकर्त्तृजन्यं कार्यत्वात्घटवत"

जो कार्य है वह अवश्य किसी उपादान कारण के स्वभावादि ज्ञाता बुद्धिमान् चेतन कर्त्ता से जन्य है, यह नियम है, इस नियम के अनुसार जिस प्रकार घट पट आदि कार्य होने से तत्तत् कुलाल कुविन्द-तन्तुवाय आदि चेतन कर्त्ता से जन्य हैं वैसे ही कार्यत्व धर्म वाले पृथिव्यादिक भी किसी बुद्धिमान चेतन कर्त्ता से जन्य हैं अल्पज्ञ अल्पशक्ति शरीरधारी जीवों की उनके उत्पन्न करने में शक्ति नहीं तथा जड़ पदार्थ स्वतः ही किसी प्रकार के आकारादि को धारण करने में असमर्थ हैं, जैसा कि जैनों के घर में दाल भात आदि अपने आप सिद्ध नहीं हो जाते, और पृथिव्यादिकों में 'कार्यत्व' कार्यपना आप को भी इष्ट है इससे सिद्ध है कि जो उनका कर्त्ता है वही ईश्वर है इस प्रकार विचार करने से सामान्यतोदृष्ट तथा परिशेष अनुमान ईश्वर के साधक स्पष्ट हैं और सम्बाहुभ्यां 'धमतिसम्पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन देव एकः' विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता इत्यादि आगम प्रमाण-वेदादि रूप शब्द भी ईश्वर सिद्धि में प्रमाण जानना चाहिए, अनुमान सिद्ध ईश्वर में आगम की पुष्टि भी अन्योन्याश्रय दोष से रहित सिद्ध हो गई।

जो श्री स्वामी दयानन्द जी कृत ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में परमाणुओं की उत्पत्ति मानने का दोष देकर 'कार्यत्व' हेतु को भागासिद्ध कथन किया सो ग्रन्थकर्त्ता के तात्पर्य को न समझकर दोष दिया गया है, वस्तुतः नहीं, वहां तात्पर्य है

कि सृष्टि उत्पत्ति के पूर्व परमाणु आदि व्यवहार का अभाव था इससे प्रलयावस्था के स्वरूप को जतलाया गया है परमाणुओं की उत्पत्ति नहीं। आपने तो ग्रन्थ का नाम ही बदल दिया, "ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका" को "ऋग्वेद भाष्य भूमिका" बना दिया, लगता है पं० जी सुनी सुनाई बातों को आकर कहने लगे, मेरा पण्डित जी से अनुरोध है कि ग्रन्थ न पढ़े तो कोई बात नहीं कम से कम ग्रन्थों के नाम ठीक से अवश्य याद कर लें।

आगे की बात जो पंडित जी ने कही है कि—

जो कर्त्ता के साथ शरीर का नियम बतलाया है कि कुलालादि की न्यायी ईश्वर भी शरीरी होगा अशरीरी कर्त्ता कहीं उपलब्ध नहीं होता, सृष्टिकर्त्तत्व के लोभ से ईश्वर को शरीरी मानोगे तो ईश्वर अशुद्धि आदि अनेक दोषों का आकर हो जाएगा सो भी ठीक नहीं क्योंकि कर्त्तृजन्यत्व-कर्त्ता से जन्य होना इस साध्य की व्याप्ति 'कार्यत्व' हेतु के सिर पर है सो कार्य चाहे शरीरी कर्त्ता से जन्य हो अथवा अशरीरी कर्त्ता से जन्य हो, उक्त व्याप्ति में शरीर रूप विशेषण अवच्छेदक नियामक नहीं हो सकता इसका विशेष विचार मेरे बनाए 'स्याद्वादध्वांतमार्तण्ड' नामक संस्कृत ग्रन्थ में तथा पं० गोपालदास जी वरैया कृत ट्रेक्ट नं० १२ की समीक्षा में किया गया हैं यहां विस्तार के भय से नहीं दर्शाया अर्थात् यदि जैन लोग दृष्टान्त में होने वाले सब धर्मों की सिद्धि साध्य में मानेंगे तो फिर अनुमान मात्र का ही उच्छेद हो जाएगा, जैसा कि इन्द्रियों के अनुमान में कुठार दृष्टान्त दिया जाता है, परन्तु जिस प्रकार कुठार से लकड़ी का छिलका वा मनुष्य की त्वचा उतारी जाती है वैसे ही इन्द्रियां द्वारा किसी की त्वचा नहीं उतारी जाती केवल ज्ञान क्रिया का साधकतम होने से त्वगादि इन्द्रियों की अनुमान से सिद्धि हो जाती है वैसे ही प्रकृत जगत्कार्य की सिद्धि में शरीर विशेषण निरर्थक ठहरता है, इस प्रकार शरीर का अङ्गीकार न करने से ईश्वर शरीरी पक्ष में होने वाले सब दोषों का उद्धार हो गया, और जैन पं० जी के उक्त कथन में उत्कर्ष सम जाति का प्रयोग होने से पराजय समझना चाहिये।

जो आपने कार्यत्व हेतु को "स्वरूपासिद्ध" कहा सो ठीक नहीं क्योंकि पृथिव्यादिको में कार्यपना स्वरूप से सिद्ध है और आप उनको जन्य ही मानते हैं केवल कर्त्ता के अंश में आपका विवाद है, और उक्त हेतु का व्यभिचार भी नहीं हो सकता, हेतु का व्यभिचार वहां होता है जहां हेतु साध्य के अभाव वाले अधिकरण स्थान में पाया जाय, सो "कार्यत्व" हेतु आत्मादि अजन्य नित्य पदार्थों में नहीं किन्तु यावत् उत्पत्ति वाले पदार्थों में ही रहता है, इस हेतु को 'सत्प्रतिपक्ष' दोष वाला कहना आपका भ्रम इसलिए है कि शरीर विशेषण देने का कोई फल सिद्ध नहीं होता अर्थात्—

"पृथिव्यादिकंकर्त्रजन्यंशरीराजन्यत्वात्"

विवाद का विषय पृथिव्यादि पदार्थ किसी कर्त्ता से जन्य पैदा नहीं किए गए क्योंकि वह शरीरी कर्त्ता से अजन्य है; आपके इस अनुमान में "प्रागभावाप्रतियोगित्व" उपाधि है जो २ पदार्थ प्रागभाव उत्पत्ति से प्रथम अभाव का प्रतियोगी नहीं होता वहीं कर्त्ता से अजन्य होता है जैसा कि उभयवाद सम्मत आत्मादि किसी कर्त्ता से जन्य नहीं क्योंकि उनका प्रागभाव उत्पत्ति से पूर्व अभाव नहीं पाया जाता, परन्तु पृथिव्यादिक सावयव होने से कार्य हैं और उनका कार्यपना ही उनके प्रागभाव को सिद्ध करता है इस प्रकार आपका प्रत्यनुमान सोपाधिक होने से दूषित ठहरता है फिर हमारा अनुमान ज्यों का त्यों प्रबल बना रहा।

और जो आपने अन्त में सब से प्रबल दोष दिया है कि अन्वयव्यतिरेक से कार्य कारण भाव का निश्चय होता है, परन्तु ईश्वर का जगत् रूप कार्य के साथ व्यतिरेक न पाए जाने के कारण ईश्वर जगत् के प्रति कैसे कारण हो सकता है सो कथन केवल आपके साहस को बोधन करता है क्योंकि—

पूर्वभावो हि हेतुत्वं मीयते येन केनचित्।
व्यापकस्यापि नित्यस्य धर्मिधीरन्यथा नहि॥

(न्याय कुसमाञ्जली)

अब आप अर्थ भी सुनिये—

सर्वत्र कार्यकारण भाव का निश्चय करने में अन्वयव्यतिरेक ही नही माना जा सकता किन्तु कार्य की उत्पत्ति क्षण से पूर्व अवश्य होना कारणपने को सिद्ध करता है, उसका निश्चय किसी स्थल पर अन्वयव्यतिरेक से होता है अथवा किसी स्थल में केवल धर्मी—साध्य वाले को सिद्ध करने हारे प्रमाणमात्र से कार्यकारणभाव का निश्चय हो जाता है जैसा कि बुद्धि आदि कार्यों के प्रति उनके समवायिकारण आत्मादि का कार्यकारण भाव केवल अनुमान प्रमाण से ही निश्चित हो जाता है क्योंकि आत्मादि किसी स्थल में वन्ह्यादि की न्याई प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं। सार यह निकला कि व्यापक पदार्थ का व्यतिरेक न होने पर भी बलवत् प्रमाण से उसकी कारणतासिद्धि में कोई बाधा नहीं, जैसा कि जैन मत में जो द्रव्य जीव पुद्गलादि पांचों द्रव्यों को अवकाश देवे उसे "आकाशद्रव्य" कहते हैं आकाशअमूर्तिक सर्वव्यापी तथा अनन्त प्रदेशी है इस व्यापी आकाश का जीवादि द्रव्यों के प्रति अवकाश प्रदान रूप क्रिया में कार्य कारण भाव जैन सम्मत है परन्तु यहां व्यतिरेक को उक्त कार्यकारणभाव के प्रति निश्चायक नहीं मान सकते यदि कोई आकाश रहित प्रदेश होवे तब "नस्यात् नस्यात्" कह कर व्यतिरेक का आकार लापन कर सकें पर ऐसा न होने से स्पस्ट सिद्ध है कि उक्त नियम सर्वदेशी नहीं।

श्री पण्डित बनारसीदास जैन—

ईश्वर जगत्कर्त्ता गुणवाला है वा गुण रहित है ? आपने निग्रह स्थान के बिना ही प्रतिज्ञा हानि रूप निग्रहस्थान को कथन किया है इसलिए आप ही निरनुयोज्यानुयोग रूप निग्रह स्थान से निगृहीत हो गए, अस्तु आगे हम निग्रहस्थान की चर्चा नहीं किया करेंगे हमने तो सत्यासत्य का निर्णय कर ा है जय पराजय नहीं, द्रव्यार्थिकनय से गुण का नाश नहीं होगा, आपने मेरे किसी हेत्वाभास का खण्डन नहीं किया और जिन चार प्रमाणों से मैंने ईश्वर का खण्डन किया उसका उत्तर आपसे नहीं दिया गया आपको यह ध्यान रहे कि कुण्डल का स्वरूप नष्ट होने पर भी सुवर्ण रहे पर कुण्डल तो नहीं रहता इस प्रकार जब पाप करने पर जीवों को पाप से नहीं हटाता तो दयालुपना नष्ट हो गया फिर ईश्वर ही न रहा।

श्री पण्डित नृसिंह देव शास्त्री दर्शनाचार्य—

मैं कब जगत्कर्त्ता ईश्वर को गुणों से रहित मानता हूं ? वह अपने सर्व शक्तिमत्ता आदि धर्मों से विशिष्ट है इसलिए आपका यह विकल्प "कर्णस्पर्शे कटिचालनन्याय मनुहरति" कर्ण स्पर्श करने के समय कमर को हाथ लगाने के समान है, जो आपने "निरनुयोज्यानुयोग" निग्रहस्थान से मुझे निगृहीत कहा है, यह तो आप पर ही घटता है क्योंकि आप तो प्रतिज्ञात विषय को छोड़कर ईश्वर दयालु नहीं है यह सिद्ध करने लग गए सो पूर्व प्रतिज्ञा का परित्याग हो गया इस प्रकार अयुक्त समय पर निग्रहस्थान के कथन करने से आप स्वयं उक्त निग्रहस्थान के पात्र हैं, यदि आप आगे निग्रह-स्थान से डर कर कथन न करने की प्रतिज्ञा करते हैं तो मुझे उसके प्रकट करने की कोई आवश्यकता नहीं, मैं भी निग्रहस्थान का नाम न लूंगा, यह शास्त्रार्थ सत्यासत्य का निर्णय या जय पराजय की आकांक्षा से है यह आपका मन ही जानता होगा हम इसमें कुछ विशेष कहना उचित नहीं समझते। हमने आपके सब हेत्वाभासों का उद्धार कर दिया मेरे कथन का पुनः अनुसंधान करो जिन चार प्रमाणों से आपने ईश्वर का खण्डन किया उसका उत्तर दे चुका हूं कि सामान्यतोदृष्ट अनुमान तथा शब्द प्रमाण से ईश्वर सिद्धि में कोई बाधा नही, और "कर्तृजन्यत्व" साध्य के साथ "कार्यत्व" हेतु के व्यभिचार का सर्वथा परिहार कर दिया गया कि कोई कार्यकर्त्ता के बिना नहीं हो सकता। धन्य हो पंडित जी ! कभी आप गुण का नाश मानते कभी कहते हैं कि गुण का नाश नहीं होता क्या यह कथन आपका "वदतोव्याघात" नहीं ? सुवर्ण का कुण्डलत्व न रहे पर सुवर्ण ज्यों का त्यों रहता है वह कथन तो मेरी बात का पोषण करता है मैं भी यही कहता हूं कि कुण्डलत्व गुण, धर्म नष्ट होने से भी सुवर्ण बना रहने से गुण धर्म का

नाश धर्मी के नाश का नियम से प्रयोजक साधक नही पंडित जी इस वात का उत्तर दें कि आपके जिन वीतरागों का राग गुण नष्ट हो गया, क्या वीतराग भी स्वरूप से नष्ट हो गए, यदि नष्ट हो गए तो किसने आपको आगम का उपदेश किया, यदि नष्ट नहीं हुए तो सिद्ध हुआ कि गुण का नाश गुणी के नाश में प्रयोजक नहीं, जीवों का पाप में प्रवृत्त होना ईश्वर की दयालुता का बाधक नहीं जीव अपनी स्वतन्त्रता से पाप में प्रवृत्त होते हैं, ईश्वर का उपदेश कर देना धर्म है वस्तु स्वभाव को अन्यथा कर देने से ही ईश्वरता हो ऐसा नहीं, जैसा कि आपके अभिमत ईश्वर का दृष्टान्त वाधकरूप से दिया गया था अब आपकी कोई वात ऐसी नहीं जिसका उत्तर शेष रह गया हो ।

श्री पण्डित बनारसी दास जैन—

यदि परमात्मा दयालु सर्वज्ञ है तो जीवों को पापों से क्यों नहीं बचाता इसका उत्तर नहीं दिया गया, हमारे मत में राग जीव का स्वाभाविक गुण नहीं, ज्ञान होने पर उसका नाश हो जाता हैं इसलिए वीतराग पुरुषों के नाश का दोष नहीं आ सकता, यदि परमेश्वर जगत्कर्त्ता है तो अन्य कुलालादि शरीरधारी कर्त्ताओं की न्याई उसका प्रत्यक्ष होना चाहिए, शरीरधारी को प्रत्यक्ष मानोगे तो उसका शरीर किसी अन्य ईश्वर में उत्पन्न किया, पुनः उसकी उत्पत्ति किसी अन्य से होगी इस प्रकार आपके मत में अनवस्था बनी रहेगी । जगत्कर्त्ता होने में कोई आगम प्रमाण कहना चाहिए, पृथिव्यादि तो स्वतः परस्पर कार्यकारण हैं उनको किसी कर्त्ता की अपेक्षा नहीं देखिए श्री स्वामी दयानन्द जी ने परमाणु आकाश उत्पत्ति वाला माना है देखो ऋग्वेदादि भाष्य भूमिकाका सृष्टि विषय ।

श्री पण्डित नृसिंह देव शास्त्री दर्शनाचार्य—

परमात्मा का दयालु तथा सर्वज्ञ होना जीवों के पापादि में साधक बाधक नहीं इसके विषय में युक्ति कह चुका हूं जैसा कि आपका सर्वज्ञ दयालु ईश्वर भी किसी को पाप कर्म से निवृत्त नहीं करता इत्यादि, यदि राग जीव का स्वाभाविक गुण नहीं तो फिर राग के नष्ट होने पर उनको 'वीतराग' क्यों मानते हो ? स्वभाव से तो जीव प्रथम ही वीतराग हैं, किसी निमित्त विशेष से राग मानो तो कहें कि वह कौन निमित्त है ? जिस से स्वतः वीतराग जीव भी राग युक्त हो गया, उभय प्रकार से रागगुण के नष्ट होने पर जीव गुणी का नाश नहीं होता यही मानते हो फिर आपका गुण नाश से गुणी नाश का पक्ष निर्युक्तिक ठहरता है पंडित जी मेरे इस प्रश्न का भी साथ ही उत्तर देना होगा राग तथा ज्ञान का क्या भेद मानते हैं ? जहां जिस काल में पर्याय रहता है वहां गुण रहता या नहीं ? राग, ज्ञान एक अधिकरण में रहते हैं या भिन्न-२ अधिकरण में पाए जाते हैं, और जो आपने कहा कि कुलालादि की न्याई परमेश्वर का प्रत्यक्ष होना चाहिए इससे यदि आपका तात्पर्य हो कि कुलाल शरीर की न्याई ईश्वर शरीर का प्रत्यक्ष होना चाहिए सो मेरे मत में ईश्वर का शरीर ही नहीं फिर प्रश्न कैसे ? यदि चेतनात्मा के प्रत्यक्ष का अभिप्राय हो तो मैं कह चुका हूं कि ईश्वर चाक्षुषादि प्रत्यक्ष का विषय नहीं ऐसा मानने से उसकी असिद्धि नही हो सकती, आप ही कहें कि आपके चेतन आत्मा का किसी को चाक्षुष आदि प्रत्यक्ष होता है ? और उसके न होने पर क्या आपकी सत्ता को न मानना चाहिये ? आप भी तो अपने चेतनस्वरूप का चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं कर सकते आप स्मरण करें मैं अपने पक्ष की पुष्टि में शब्द प्रमाण भी दे चुका हूं और अन्योन्याश्रय दोष का परिहार भी कर दिया, तथा अनुमान के हेतु दोषों का वारण कर दिया गया, आपने आज तक कोई शब्द प्रमाण ईश्वर के खण्डन में नहीं कहा, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका का उत्तर दिया गया उसका पुनः विचार करें ।

श्री पण्डित बनारसी दास जैन —

आकाश परमाणु के विषय में आज तक कोई उत्तर नही मिला, जिस प्रकार कुण्डलपने का नाश होने पर भी स्वर्ण ज्यों का त्यों बना रहता है नष्ट नहीं होता वैसे वीतरागों का रागगुण नष्ट होने पर भी "वीतराग" पुरुषों का (गुणी का) नाश नही हो सकता इसलिए वीतरागों के नाश का दोष कथन करना आपका साहसमात्र है, सर्वज्ञ पापों से नहीं बचाता इस दोष का परिहार आपसे नहीं हो सकता ।

श्री पण्डित नृसिंह देव शास्त्री दर्शनाचार्य—

आप जितनी बार उठते हैं अपनी रटी रटाई अबारत को पढ़ कर बैठ जाते हैं जो मैं पूछता हूं उसका उत्तर न देते और ना ही मेरे दिए समाधान का खण्डन करते हैं, भूमिका के विषय में कह दिया कि वह केवल प्रलयावस्था के स्वरूप को वर्णन किया है परमाणु आदि की उत्पत्ति में तात्पर्य नहीं, पंडित जी आप अपनी उक्ति के विरुद्ध कथन करने लग जाते हैं प्रथम आपने कहा था कि राग जीव का स्वाभाविक गुण नही अब सुवर्ण कुण्डल के दृष्टान्त से रागगुण नष्ट होने पर भी वीतराग का नाश नहीं होता ऐसा कथन करते हैं सो मेरे वाली बात स्वीकार कर ली कि गुण के नाश होने पर गुणी का नाश नहीं होता मेरे पिछले विकल्पों का उत्तर नहीं दिया, फिर पूछता हूं कि कुण्डल, सुवर्ण का गुण है वा नहीं, गुण और धर्म में आप कितना भेद मानते हैं, आप कुण्डलत्व तथा सुवर्णत्व दोनों में से गुण या गुणी किसको मानते हैं ? ईश्वर का सर्वज्ञ होना जीवों के पाप करने न करने में साधक बाधक नहीं जैसा कि आपके अर्हन्—तीर्थंकर भगवान् आप मानते हैं, ऐसा कई बार उत्तर दिया गया, आप इस पिष्टपेषण से कब तक काम चलायेंगे।

श्री पण्डित बनारसी दास जैन—

ईश्वर को गुण रहित कर्त्ता नहीं मान सकते पर उसके दयालुता आदि गुण सिद्ध नहीं होते अतएव जगत्कर्त्ता ईश्वर नहीं, अशरीरी ईश्वर प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है राग जीव का पर्याय है गुण नहीं।

श्री पण्डित नृसिंह देव शास्त्री दर्शनाचार्य—

हम ईश्वर को स्वगुण विशिष्ट ही मानते हैं, दयालुतादि गुणों की असिद्धि का परिहार करने से ईश्वर के जगत्कर्तृत्व में कोई बाधा नहीं, लोक में आचरणानुसार न्यायशील पुरुष को कोई भी निर्दय कथन नहीं करता, आप पुनः ईश्वर के शरीर के विषय में कथन करते हैं सो शरीर साध्य कर्मों के लिए शरीरी की आवश्यकता हो, पर सर्व-शक्तिमान अपने स्वाभाविक सामर्थ्य से बिना शरीर के ही जगत् को रच सकता है, जिस वस्तु में चाक्षुषादि प्रत्यक्ष की योग्यता न हो उसमें प्रत्यक्ष का बोध नहीं हुआ करता है, न्याय प्रक्रिया को भले प्रकार पढ़ें, यों तो इस समय आपके ईश्वर में भी प्रत्यक्ष का बोध मान लेना चाहिये, यहां आपके पास क्या परिहार है, पर्याय पर्यायी में किस सम्बन्ध से रहताहै, स्वरूप सम्बन्ध से वा किसी अन्य सम्बन्ध से ? प्रथम पक्ष में राग पर्याय के नाश से उसके पर्यायी जीव का नाश हो जायगा फिर मुक्ति किसकी मानोगे ?

श्री पण्डित बनारसी दास जैन—

परमेश्वर अशरीरी कर्त्ता है वा शरीरी प्रथम पक्ष इसलिए ठीक नहीं कि बिना शरीर के कोई कर्त्ता उपलब्ध नहीं होता शरीर सहित मानने में ईश्वर की व्यापकता नष्ट हो जायगी। (शेष पूर्ववत्)

श्री पण्डित नृसिंह देव शास्त्री दर्शनाचार्य—

मैं इन बातों का उत्तर कई बार दे चुका हूं पर और भी सुनें (जनता में हंसी ···) आपके कहने का अभिप्राय यही निकलता है कि किसी कार्य की सिद्धि में चेतन मात्र की प्रवृत्ति शरीर के बिना नहीं हो सकती पर यह एकान्त नियम नहीं, देखो आपका जीवात्मा शरीर से बाह्य पाकादि कार्यों को सिद्ध करने के लिए शरीर द्वारा ही प्रवृत्त होता है परन्तु शरीर के सञ्चालनादि कार्य को करने के वास्ते उसको किसी अन्य शरीर की अपेक्षा नहीं पर आपके उक्त कहे नियमानुसार जीव को किसी अन्य शरीर की अपेक्षा होनी चाहिए, यदि ऐसा मानोगे तो अनवस्थादि कई दोष आयेंगे, जहां अल्पशक्ति जीव के व्यवहार में ऐसा नियम पाया जाता है तो फिर सर्वशक्ति परमात्मा के विषय में क्या कहना अर्थात् उसको सृष्ट्यादि के रचने में शरीर के अपेक्षा नहीं यह बात ईश्वर की ईश्वरता में भूषण है दूषण नहीं इस प्रकार उसकी व्यापकता भी बनी रहती है। पंडित जी से मेरी प्रार्थना है कि कोई नई शंका करें या मेरे कहे पर ऐत-राज करें, व्यर्थ में समय बर्बाद न करें।

श्री पण्डित बनारसी दास जैन—

हम अपने तीर्थंकर अर्हन् भगवान् को सृष्टिकर्त्ता नहीं मानते इसलिए उसके दयालुतादि गुण बने रहते हैं। आप अपने भगवान के बारे में पहले बतायें, शेष प्रश्न आगे करूंगा।

श्री पण्डित नृसिंह देव शास्त्री दर्शनाचार्य—

आपके तीर्थंकर भगवान् एक देशी होने से सृष्टिकर्त्ता हो ही नहीं सकते यह बात ठीक है परन्तु आपके सिद्धान्त में दयालु तथा सर्वज्ञ तो हैं जब ऐसा है तो पापादि से रोकने न रोकने में समानता रही, और यह बात न्याय सिद्ध है कि हल शकटी आदि कोई भी जड़ पदार्थ चेतन प्रयोजक के बिना कार्यकरते नहीं देखे जाते पृथिव्यादि के लिए भी किसी चेतन प्रयोजक की अपेक्षा वैसी क्यों न मानी जाय अन्यथा आप कोई स्वपक्ष सिद्धि के लिए दृष्टान्त देवें।

श्री पण्डित बनारसी दास जैन—

मैं दो प्रकार के कर्त्ता मानता हुं एक चेतन दूसरे अचेतन, घट पटादि पदार्थ चेतन कर्त्ता के कार्य हैं तथा पृथिव्यादिक अचेतन के कार्य हैं, फिर ईश्वर की क्या आवश्यकता ?

श्री पण्डित नृसिंह देव शास्त्री दर्शनाचार्य

पृथिव्यादि अचेतन के कार्य हैं यह अभी साध्य है सिद्ध नहीं, जैसे घट पटादि कार्यों में चेतन सापेक्षता मैंने दृष्टान्त द्वारा स्पष्ट कर दी ऐसे आप भी अपने पक्ष की सिद्धि के लिए कोई दृष्टान्त बतलाएं जिससे मान लिया जाय कि अचेतन भी कार्य बनाया करता है।

श्री पण्डित बनारसी दास जैन

देखो बाँसों की रगड़ से आग पैदा हो जाती सो जड़ बांस ही अग्नि रूप कार्य के कर्त्ता हैं।

श्री पण्डित नृसिंह देव शास्त्री दर्शनाचार्य—

जड़ बांसों से अग्नि अपने आप उत्पन्न होती है वा किसी अन्य की शक्ति से होती है यह अभी साध्य है, जो दृष्टान्त आप देते हैं वह सब ही पक्ष साध्य कोटि में बने रहते हैं सो आज तक साध्य को कभी किसी दार्शनिक ने दृष्टान्त स्वीकार नहीं किया कोई ऐसा दृष्टान्त बतलायें जो साध्य के अन्तर्गत न हो।

श्री पण्डित बनारसी दास जैन—

पृथिवी से बुखारात उठ कर बारिश हो जाती है, वायु अनेक प्रकार के पदार्थों को उत्पन्न करती तृणादि को कहीं से कहीं ले जाती है इस दृष्टान्त से सिद्ध है कि जड़ भी कार्य को उत्पन्न करते हैं।

श्री पण्डित नृसिंह देव शास्त्री दर्शनाचार्य—

यह कथन भी पूर्व की न्याई साध्य है, हल, शकट, शकटी, घट, पट, हलवा, पूरी, आदि अनेक पदार्थ किसी चेतन अधिष्ठाता के बिना सिद्ध नहीं होते वैसे ही पृथिवी, वायु आदि कार्य पदार्थ अपनी सिद्धि तथा व्यवहार के लिए चेतन सापेक्ष हैं निरपेक्ष नहीं, वायु आदि अपने आप चलते हैं यह बात आप मेरे मुकाबले में कब सिद्ध कर चुके हैं ? अभी साध्य है, साध्य की सिद्धि के लिए दृष्टान्त दिया जाता है साध्य स्वसिद्धि में दृष्टान्तरूप नही हो सकता।

श्री पण्डित बनारसी दास जैन—

यदि जगत्कर्त्ता ईश्वर सर्वज्ञ होता तो पाप से अवश्य निवारण करता (इत्यादि पूर्व की न्याई रटी अबारत पढ़ कर बैठ गए)।

श्री पण्डित नृसिंह देव शास्त्री दर्शनाचार्य—

पण्डित जी सच बात तो यह है कि अब आपके पास मशाला समाप्त हो गया है। मैं आपके इस आक्षेप का

कई बार उत्तर दे चुका हूं कि जिस प्रकार आपका दयालु सर्वज्ञ ईश्वर पापों से नहीं हटाता इत्यादि, मैंने पीछे इसी शास्त्रार्थ के सम्बन्ध में कई प्रश्न किए आपने उनका उत्तर कोई नहीं दिया, आप कितना ही हेर फेर करें "घट्टकुट्यां-प्रभातम्" दृष्टान्त की न्याई चेतन कर्त्ता माने बिना आपका छुटकारा नही होगा।

श्री पण्डित बनारसी दास जैन—

आपने हमारे ईश्वर को दयालु सर्वज्ञ मानकर दोष का परिहार किया है इसलिए आप "मतानुग्रह" नामक निग्रह स्थान में आ गए हो, राजन्यायी पुरुष का दृष्टान्त ईश्वर की सर्वज्ञता में बाधक रहेगा, यदि ईश्वर होता तो अवश्य उसका प्रत्यक्ष होता।

श्री पण्डित नृसिंह देव शास्त्री दर्शनाचार्य—

धन्य हो पण्डित जी! आप पीछे प्रतिज्ञा कर आए हैं कि मैं निग्रहस्थान का नाम नहीं लूंगा क्योंकि सत्यासत्य का निर्णय करना है अब आपने फिर निग्रहस्थान की कथा प्रारम्भ कर दी आप क्षण-२ में अपनी प्रतिज्ञा को भूल जाते हैं "मतानुग्रह" नामक निग्रहस्थान वहां होता है जहां अपने पक्ष में दोष का परिहार न करके दूसरे की मानी बात को कहा जाय सो मैं स्वपक्ष में दोष का परिहार कर चुका हूं इसलिए आप अनिग्रहस्थान में निग्रहस्थान के कथन करने से "निरनुयोज्यानुयोग" तथा प्रतिज्ञा के परित्याग से प्रतिज्ञा हानि रूप निग्रहस्थान के पात्र हैं, न्याई पुरुष का दृष्टान्त अपने अंश में चरितार्थ है, अयुक्त नहीं, दृष्टान्त तथा दार्ष्टान्त की सब धर्मों में समता मानने से दृष्टान्त कथा का ही उच्छेद हो जायगा, और जिसका प्रत्यक्ष न हो वह पदार्थ हो ही नहीं, क्या यह नियम हो सकता है? आप भी चेतन कर्त्ता हैं पर किसी इन्द्रिय से नहीं दीखते हो, क्या आपकी सत्ता को न मानना चाहिए? क्योंकि आपके जिस शरीर का प्रत्यक्ष होता है सो आत्मा नहीं।

श्री पण्डित बनारसी दास जैन—

(आवेश में आकर) मेरे किसी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया, किसी हेत्वाभास का खण्डन नहीं किया ईश्वर शरीरी कर्ता है वा अशरीरी इत्यादि (पुनः पूर्ववत् बातों को दोहराया)।

श्री पण्डित नृसिंह देव शास्त्री दर्शनाचार्य—

मैं पहले ही जानता था आप अन्त में यही कहेंगे, परन्तु आपके कहने से क्या होता है? सुनने वाले लोग स्वयं निश्चय कर लेंगे मैंने आपके शरीरी अशरीरी आदि सब आक्षपों का समाधान कर दिया, और अनेक दृष्टान्तों से स्पष्ट किया कि चेतन के बिना कोई कार्य नहीं वन सकता, आज तक आपने संसारभर में कोई दृष्टान्त नहीं दिया कि अचेतन भी वुद्धि पूर्वक किसी का कर्त्ता होता है जिन बांस अग्नि आदि को कहते रहे वह सब साध्य कोटि में है, पर्यायी में किस सम्बन्ध से पर्याय रहता है? रागगुण तथा ज्ञान का क्या भेद है? जहां जिस काल में पर्याय रहता है वहां गुण रहता है वा नहीं? इत्यादि मेरे अनेक प्रश्नों का आपने किञ्चिन्मात्र भी उत्तर नहीं दिया इस प्रकार पूर्वोत्तर विचार से "ईश्वर जगत्कर्त्ता है" यह विषय निर्विवाद सिद्ध हो गया न्यायशील तथा बुद्धिमान् श्रोता लोग स्वयं निश्चय कर लेंगे।

ओ३म् शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

चौतीसवां शास्त्रार्थ

स्थान : गीदड़बाहा मण्डी (जिला फिरोजपुर) पंजाब

दिनांक : दोपहर बाद २ बजे से ५ बजे तक, सन् १९२० ई०

विषय : क्या भागवत् आदि पुराण वेदानुकूल हैं ?

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री ठाकुर पण्डित अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी (वर्तमान अमर स्वामी सरस्वती)

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पं० अखिलानन्द जी "कविरत्न"

सहायक : श्री पं० यदुकुल भूषण जो शास्त्री तथा श्री पं० लक्ष्मीदत्त जी (कौल निवासी)

शास्त्रार्थ के प्रधान : श्री पं० कालूराम जी शास्त्री

आर्य समाज के प्रधान : श्री सेठ कन्हैया लाल जी

अन्य उपस्थित पौराणिक उपदेशक मण्डल : श्री स्वामी दयानन्द जी बी० ए० व श्री स्वामी राम जी आदि।

" " आर्य समाज के उपदेशक : श्री पं० विद्यानन्द जी (ठाकुर अमर सिंह आर्य पथिक के साथी)

शास्त्रार्थ से पहले

मैं प्रचारार्थ भटिण्डा आया हुआ था, मेरा भटिण्डा में आना सुनकर गीदड़बाहा मण्डी आर्य समाज के प्रधान श्री सेठ कन्हैयालाल जी भटिण्डा में मेरे पास आए और उन्होंने मुझको बतलाया कि—सनातन धर्म सभा गीदड़बाहा का उत्सव होने वाला है। सनातन धर्म सभा ने आर्य समाज को चेलेंज दिया है कि—आर्य समाज हमारे साथ किसी विषय पर भी शास्त्रार्थ करले। हमने शास्त्रार्थ का चेलेंज स्वीकार कर लिया है कई स्थानों को पण्डितों के लिए पत्र लिखे हैं पर अभी तक किसी की स्वीकृति नहीं आई है, सो आ जायेगी, उससे पहले आप गीदड़बाहा, चलें पौराणिकों के साथ जो पत्र व्यवहार चल रहा है उसमें सहयोग दीजिए और व्याख्यान भी दीजिए।

मैं उनके साथ गीदड़बाहा मण्डी चला गया और सनातन धर्म सभा के साथ पत्र व्यवहार करता रहा।

मैंने पत्र व्यवहार द्वारा यह निश्चय कर लिया कि—

१. शास्त्रार्थ का विषय होगा—क्या पुराण वेदानुकूल हैं?

२. शास्त्रार्थ लेखबद्ध होगा और हिन्दी भाषा में होगा।

३. शास्त्रार्थ का प्रधान सनातन धर्म की ओर से ही कोई व्यक्ति होगा।

४. प्रधान समय बतलायेगा, वक्ताओं को विषयान्तर में जाने और असभ्यता युक्त, कटु, अश्लील तथा व्यक्तिगत आक्षेप वाले वाक्य बोलने से दोनों पण्डितों को रोकेगा।

लाहोर से पं० रामगोपाल जी शास्त्री तथा पं० भगवतदत्त जी को बुलाया जा रहा था और गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार को भी कोई शास्त्रार्थकर्त्ता भेजने को लिखा गया था। मुझको शास्त्रार्थ करने के लिए नहीं केवल पत्र व्यवहार के लिए ही रोका गया था मैं तो अपने घर जाने वाला था। श्री पं० रामगोपाल जी शास्त्री तथा पं० भगवद्दत्त जी दोनों ने आने से इन्कार कर दिया। गुरुकुल कांगड़ी से दो ब्रह्मचारी आये जो केवल धनुर्विद्या के कौतुक दिखाते थे। श्री सेठ कन्हैया लाल जी बहुत घबराये और कहने लगे अब क्या हो और कैसे हमारी लाज रहे।

मैंने कहा—अब मैं शास्त्रार्थ करूं, यही हो सकता है। प्रधान जी ने कहा कि—करिये! पर न जाने आपका शास्त्रार्थ कैसा होगा? मेरी आयु उस समय कोई पच्चीस वर्ष की थी, अनुमानतः उन्होंने मेरी आयु को देखकर ही ये बातें कही थीं। परन्तु मैं सन् १९१९ ई० में "पिण्डीघेप" जिला अटक (कैम्बलपुर) सीमा प्रान्त जो अब पाकिस्तान में है "मृतक श्राद्ध" वेदानुकूल है या वेद विरुद्ध? पर पौराणिक पण्डित "श्री सीताराम जी शास्त्री" से शास्त्रार्थ करके "शास्त्रार्थ केशरी" की उपाधि प्राप्त कर चुका था जो मेरे जीवन का प्रथम शास्त्रार्थ था। एवं "चूनियां" जिला लाहोर (वर्तमान पाकिस्तान) में भी "पं० गुरुदत्त" जी से शास्त्रार्थ करके अभूतपूर्व विजय प्राप्त कर चुका था, अनेकों शास्त्रार्थ करने के बाद भी मैंने प्रधान जी को कहा—मुझको पूर्ण विश्वास है कि हम सत्य पर हैं, मैं सत्य की विजय के लिए पूर्ण प्रयत्न करूंगा। प्रधान जी ने खुशी से नहीं बल्कि कुछ लाचारी वाली स्थिति में ही मरे मन से कहा—ठीक है तो फिर आप ही करिये!

शास्त्रार्थ पुराणों पर था, पर पुराण एक भी मेरे पास नहीं था। तो भी शास्त्रार्थ किया। और कैसा हुआ? यह आप स्वयं पढ़कर देखेंगे और विचारेंगे—प्रश्न अद्भुत ही है। सनातन धर्म सभा के उत्सव में जो-जो विद्वान आये थे, उनके नाम इस प्रकार थे—१. श्री स्वामी दयानन्द जी बी० ए० २. श्री स्वामीराम जी, ३. श्री पं० कालूराम जी शास्त्री (अमरोधा जिला कानपुर निवासी), ४. श्री पं० अखिलानन्द जी कविरत्न (अनूपशहर, जि० बुलन्दशहर निवासी), ५. श्री पं० यदुकुल भूषण जी शास्त्री (मुलतान वर्तमान पाकिस्तान निवासी), श्री पं० लक्ष्मी चन्द जी शास्त्री,

ग्राम कौल, (जि० करनाल-हरियाणा, निवासी), मौजूद थे। जिनमें से श्री स्वामी दयानन्द जी बी० ए० और श्री स्वामी राम जी शास्त्रार्थ होने के विरुद्ध थे। परन्तु शास्त्रार्थ अनिवार्य था, और पौराणिक दल इसलिए भी शास्त्रार्थ करना चाहता था कि—आर्य समाज के पास कोई शास्त्रार्थ कर्त्ता दिखाई नहीं देता था और उनके अपने पास दिग्गज शास्त्रार्थ महारथी चार दिखाई दे रहे थे।

शास्त्रार्थ सनातन धर्म सभा के पण्डाल में हुआ जो दोपहर दो बजे से पांच बजे तक होना निश्चय हुआ था। जिसमें श्री पं० कालूराम जी शास्त्री, "शास्त्रार्थ के अध्यक्ष" नियत हुए और "शास्त्रार्थ कर्त्ता" श्री पं० अखिलानन्द जी कवि-रत्न निश्चित हुए। एवं श्री पं० यदुकुल भूषण जी शास्त्री, व श्री पं० लक्ष्मी चन्द शास्त्री, "श्री पं० अखिलानन्द जी कविरत्न" के सहायक रूप में नियत्त किये गये।

और आर्य समाज की ओर से केवल मैं (अमरसिंह आर्य पथिक) ही रह गया। पाठकों को विदित होना चाहिए कि उस समय पौराणिकों में सबसे अधिक वाक् चतुर श्री पं० कालूराम जी शास्त्री माने जाते थे। और वह स्वयं पुराणों को वेदानुकूल सिद्ध करने के पचड़े में पड़ना नहीं चाहते थे। इसलिए उन्होंने नये सनातन धर्मी पंडित अखिलानन्द जी को इस दल-दल में फंसाया।

जब यह घोषणा हुई कि—शास्त्रार्थ के प्रधान श्री पं० कालूराम जी शास्त्री होंगे। तो सब कुछ जानते हुए भी मैंने पूछा कि—श्री पंडित कालूराम जी शास्त्री दोनों पक्षों की ओर से प्रधान होंगे या केवल सनातन धर्म की ओर से? उत्तर मिला कि—श्री पं० कालूराम जी शास्त्री दोनों पक्षों की ओर से प्रधान नियुक्त रहेंगे। यह सुनकर मैंने कहा—श्री पंडित कालूराम जी को सनातन धर्म के मंच पर नहीं बल्कि दोनों मंचों के बीच में बैठना चाहिये। यदि वह वहीं बैठेंगे तो हम उनको केवल सनातन धर्म का ही प्रधान मानेंगे और अपना प्रधान दूसरा बनायेंगे। इस बात पर पंडित कालूराम जी ने बहुत ननुनच की, परन्तु मैं अपनी बात पर अड़ा रहा, परिणामस्वरूप श्री पं० कालूराम जी को दोनों मंचों के बीच आकर बैठना पड़ा।

उस समय मेरी आयु बहुत थोड़ी थी, परन्तु मेरे इस कार्य को देखकर मैं सभी पर छा गया, और शास्त्रार्थ की समाप्ति पर तो कहना ही क्या?

आप लोग पढ़िये! और प्रसनन्ता प्राप्त करिये!!

वैदिक धर्म का—
अमर स्वामी सरस्वती

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री ठाकुर पण्डित अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी द्वारा प्रथम प्रश्न पत्र—

ओं शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा। शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णु रुरुक्रमः ॥

ओं नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि, त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि, तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम् ॥ ओं शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

सज्जन पुरुषो! आर्य सामाजिक तथा सनातन धर्मी कहलाने वाले लोग दोनों अपने-आपको वेदों का मानने वाला मानते तथा कहते हैं। परन्तु भागवत् आदि पुराणों के कारण ही हम दो भागों में बंट रहे हैं। और एक दूसरे के विरोधी बने हुए हैं. यदि पुराणों को बीच में से निकाल दिया जाये तो ...... हम दोनों दो न रह कर एक हो सकते हैं, इसलिए आज यह विचार कर रहे हैं कि "पुराण वेदानुकूल हैं या वेद विरुद्ध ? यदि आज—पुराण, वेद विरुद्ध सिद्ध हो जायें तो सनातन धर्मी कहलाने वाले लोग भी पुराणों को आज तिलाञ्जली दे दें, और आर्य समाज में सम्मिलित हो जावें।

पुराणों में मूर्त्ति पूजा करने वालों को—"विडम्बी" (धोखा देने वाला) या (धोखा खाने वाला) "मूढ़" (मूर्ख, जड़बुद्धि, तथा बैलों का चारा ढोने वाला गधा आदि उपाधियां दी हैं यथा—

१. य त्तीर्थ बुद्धिः सलिलेन कर्हिचित् जनेष्वभिज्ञेषु स एव "गोखरः ॥

२. यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम्। हित्वार्चां भजते "मौढ्यात भस्मन्येव जुहोतिसः ॥

३. अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्मा वास्थितः सदा तमवज्ञाय मां मर्त्यः कुरुतेऽर्चा विडम्बनम् ॥ (श्रीमद्भागवत्)

४. मृच्छिला धातु दार्वादि मूर्तावीश्वर बुद्धयः। क्लिश्यन्ति तपसा "मूढ़ाः" परां शान्ति न यान्तिते ॥

मूर्त्तिपूजा करने वालों के लिए पुराणों तथा पौराणिकों के ग्रन्थों में ये निन्दायुक्त उपाधियां दी गई हैं, चारों वेदों में से आप मूर्त्तिपूजकों के लिए ऐसी ही उपाधियां दिखा देंगे तो उस विषय में तो पुराण वेदानुकूल सिद्ध हो जायेंगे और यदि आपके मन्तव्यानुसार वेदों में मूर्त्ति पूजा का विधान है तो पुराण प्रत्यक्ष रूप में वेद विरुद्ध हुए। अतः उनको आपके द्वारा तिलाञ्जलि दे दी जानी चाहिए।

सत्य धर्मानुरागी सज्जनों! शस्त्रार्थ चाहे तीन घंटा होवे, तीन दिन—तीन महीने या तीन साल तक होता रहे। आज इस प्रश्न के साथ ही मेरी यह भविष्यवाणी है कि सारे सनातन धर्मी कहलाने वाले पण्डित मिलकर भी मेरे इस प्रश्न का उत्तर कदापि न दे सकेंगे और आज इस सारे पौराणिक मंडल को घोर पराजय का मुंह ही देखना पड़ेगा। इत्यलम् ॥

हस्ताक्षर—

"अमर सिंह आर्य पथिक"

नोट—

पौराणिक पक्ष की ओर से श्री पं० अखिलानन्द जी द्वारा निम्न पत्र लिखा गया जो आधा संस्कृत में तथा आधा हिन्दी में था।

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

श्री हरिः

मूसलोलूखल उपानहां पूजा-दयानन्देन संस्कार विधौ अंगीकृता कुतो न दिश्यते। सारे वेदों में मूर्त्ति पूजा का विधान है, यथा—

१. मुखाय ते पशुपते···, २. त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्धनम्···, ३. यस्य भूमिः प्रमा—अन्तरिक्षमुतोदरम् ।··· ४. सहस्र शीर्षाः पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्रपात्···।

इस प्रकार वेदों में मूर्त्ति पूजा का विधान है, तुम मूर्त्ति पूजा की निन्दा करते हो । इसलिए वेद निन्दक हो । "नास्तिको वेद निन्दकः" नास्तिक हो ।।

हस्ताक्षर—
"अखिलानन्द"

श्री ठाकुर पण्डित अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी—

सत्यासत्य की खोज करने वाले सज्जनों ! आज के शास्त्रार्थ का विषय यह नहीं कि—मूर्त्तिपूजा वेदानुकूल है या वेद विरुद्ध ? न आज का यह विषय है कि, स्वामी दयानन्द जी ने संस्कार विधि या सत्यार्थ प्रकाश में मूर्त्तिपूजा अंगीकार की है या नहीं । सत्यार्थ प्रकाश में मूर्त्तिपूजा का प्रवल खण्डन है, मूर्त्तिपूजा की हानियां भी लिखी हैं, स्वामी दयानन्द जी के ग्रन्थों से मूर्त्तिपूजा सिद्ध करने का यत्न करना यह सिद्ध करता है कि—"डूबते हुए इधर-उधर हाथ मार रहे हैं" ।

मेरा प्रश्न है कि—विडम्बी—मूढ़ बैलों का चारा ढ़ोने वाला गधा आदि मूर्त्तिपूजा करने वालों को पुराणों में बताया है, यदि ऐसा वेदों में नहीं है तो पुराण वेदों के विरुद्ध क्यों नहीं ?

सज्जनों ! आप लोग देख रहे हैं कि पंडित जी की क्या गति हो रही है ! ये दुर्गति है या सद्गति ? इसे आप सोचें ।

हस्ताक्षर—
"अमरसिंह आर्य पथिक"

नोट—

श्री पंडित अखिलानन्द जी बिना लिखे ही बोलने लगे ।

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

मदत्तानां मन्त्र प्रतीकानां अद्यापि न दीयते प्रत्युत्तर मिति खेदः केवल गल गर्दन मन्त्रणोतु न सिद्ध्यति कार्यम् ।।

(इन वाक्यों को तीन-चार बार दोहराते हुए) दयानन्द ने संस्कार विधि में पटेले और उस्तरे की पूजा और उस्तरे को नमस्ते भी लिखी है । वेदों में मूर्त्ति पूजा का विधान है, आर्य समाजी मूर्त्तिपूजा की निन्दा करके वेद निन्दक अर्थात् नास्तिक बन रहे हैं ।

श्री ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी—

सत्याभिलाषी सज्जनों ! आपने देखा कि—पंडित अखिलानन्द जी "किं कर्त्तव्य विमूढ़" हो गये हैं । पंडित अखिलानन्द जी आर्य समाज में थे, उसमें से निकाले हुए सनातन धर्म में आये, और "सिर मुंडाते ही ओले पड़ गये" हंसी······मैंने आरम्भ में ही भविष्यवाणी की थी कि मेरे प्रश्न का उत्तर कदापि न दिया जा सकेगा ।

सज्जनों ! यह छुरी और खरबूजे का खेल है । छुरी खरबूजे पर गिरेगी तो खरबूजा कटेगा, और खरबूजा छुरी पर गिरेगा तो भी ख़रबूजा ही कटेगा । जनता में हंसी·····।

पंडित जी महाराज़ बेचारे बहुत बुरी तरह फंस गये हैं । वेदों में मूर्त्ति पूजा का विधान बताने से पुराण वेद विरुद्ध सिद्ध होते हैं । और यदि वेदों में मूर्त्ति पूजा और मूर्त्ति पूजकों की निन्दा दिखाते हैं तो मूर्त्ति पूजा—जो इनके पेट पालन का परम साधन है वह छोड़नी पड़ती है । मैंने इनको ऐसे गोरखधन्धे में फंसाया है कि—अब बेचारों से कुछ करते नहीं बनता है । "इधर है कुंआ उधर है खाई" जायें तो कहां जायें ?

सज्जनों ! पुराणों में और भी देख़िये—मैं अब विस्तार से अपने दिये गये प्रमाणों का अर्थ भी बताता हूं ।

क्योंकि लिखने में इतना विस्तार नहीं हो सकता, अब पंडित जी ने स्वयं ही इस नियम को तोड़ दिया है। मेरा पहला प्रमाण था "यस्यात्म बुद्धि कुणपे............" जो श्रीमद्भागवत् पुराण स्कन्ध १० अध्याय ८४ का तेरहवां श्लोक है। जिसमें कहा है कि—

"जो मनुष्य वात, पित, कफ, युक्त शरीर को आत्मा मानता तथा पुत्रों और स्त्री आदि में आशक्ति रखता। मिट्टी आदि की बनी मूर्त्तियों को पूज्य जानता और जल के स्थानों को तीर्थ मानता है वह विद्वान पुरुषों में बैलों का चारा (घास आदि) ढोने वाला गधा है। अर्थात् विद्वान लोग उसको बैलों का चारा ढोने वाले गधे के समान मानते हैं। मेरा दूसरा प्रमाण था— यो मां सर्वेषु भूतेषु......" भागवत् पुराण स्कन्ध ३ अध्याय २९ का इक्कीसवां श्लोक है। इसमें कहा है—

"सकल प्राणियों में आत्मस्वरूप से रहने वाले मुझ ईश्वर का अपमान करके जो मुर्खता से केवल मूर्त्ति मात्र की ही पूजा करता है वही मूढ़ मानो केवल "भस्म में हवन" करता है। अर्थात् जैसे भस्म (राख) में हवन करना निष्फल है वैसे ही मूर्त्ति मात्र की पूजा या सेवा करना निष्फल है। इस प्रकार मेरा तीसरा प्रमाण था—अहं सर्वेसु भूतेषु...... जो उपरोक्त पुराण, स्कन्ध, व अध्याय का अगला श्लोक अर्थात्—बाईसवां श्लोक है। जिसमें कहा है कि—

"मैं सकल भूतों का आत्मा होने के कारण, प्राणी मात्र में निरन्तर रहता हूं। तिस मेरा तिरस्कार करके अर्थात् सकल प्राणियों में मुझको न देखकर जो मरण को प्राप्त करने वाले देह आदि में आत्म दृष्टि रखकर केवल मूर्त्ति मात्र में ही मेरी पूजा करता है वह पूजा का अनुकरण मात्र (ढोंग) करता है। अर्थात् वह "विडम्बी" ढोंगी है। इस प्रकार मेरा चौथा प्रमाण इन पौराणिकों के मान्य ग्रन्थ "महा निर्वाण तन्त्र" का था यथा "मृच्छिला धातु दार्वादि........" जिसमें कहा गया है कि --

"वे मूढ़ लोग जो (मूर्ति पूजक) हैं उसी क्लेश में तपते रहते हैं जो कभी भी परम शांति को प्राप्त नहीं हो सकते"।

भाइयों इस प्रकार पता चलता है कि पुराणों में मूर्त्ति पूजकों के लिए "मूढ़-गधा-विडम्बी" और न जाने किन-किन उपाधियों से अलंकृत किया है। परन्तु चारों वेदों में से आप मूर्त्ति पूजकों के लिए ऐसी ही उपाधियां दिखा देंगे तो इस विषय में तो पुराण वेदानुकूल सिद्ध हो जायेंगे और यदि आपके मन्तव्यानुसार वेदों में मूर्त्ति पूजा का विधान है। तो पुराण प्रत्यक्ष रूप में वेद विरुद्ध हुए अतः मैं पुनः कहता हूं "पुराणों को आपके द्वारा तिलाञ्जली दे दी जानी चाहिये"। जो मैंने संक्षेप में अपने पहले पत्र में भी उदधृत की थी और कहा था कि............(घण्टी).........।

श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

भाइयों ! आर्य समाजी नास्तिक हैं। नास्तिकों का तो मुंह देखना भी पाप है। (इस बात को सुनते ही सारी सभा में अशान्ति की लहर दौड़ गई और चारो तरफ ....हो......हुल्लड़ मच गया)।

श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री "शास्त्रार्थ के प्रधान"—

(बड़ी ऊंची आवाज में) भाइयो ! मुझको यह दिखाई देता है कि अब लड़ाई-झगड़ा अपना उग्र रूप धारण कर लेगा, इसलिए मैं अब इस झगड़े का भार अपने ऊपर लेने को तैयार नहीं हूं, अतः प्रधान की हैसियत से मैं अब शास्त्राथ समाप्त करता हूं। आप लोग मेरा कहना मानें और अपने-अपने घरों को जावें। सभा समाप्त ॥

नोट—

सभा समाप्त हो गई। देखते ही देखते सनातन धर्म सभा का पण्डाल सर्वथा खाली हो गया। श्री सेठ कन्हैया लाल जी आदि समस्त आर्य समाजियों ने श्री ठाकुर साहब को कन्धे पर उठा लिया। और खुशी के मारे नाचने व गाने लगे। चारों तरफ वैदिक नारों से आकाश गूंज उठा। सनातन धर्मियों में शोक छा गया। सभी सनातन धर्मी लोग पण्डित अखिलानन्द जी की निन्दा कर रहे थे। कि हमारे पंडित जी से तो न जाने क्यों कुछ भी न बोला गया। और सभी सनातन धर्मी अपने पंडित की कमजोरी को महसूस कर-करके शर्मिन्दा हो रहे थे। आर्य समाज के प्रधान श्री सेठ कन्हैया लाल जी ने कहा—ठाकुर साहब ! मुझे इतनी उम्मीद नहीं थी कि आप इस क़दर शास्त्रार्थ कला में प्रवीण हैं। नाम तो आपका जरूर सुन रखा था, परन्तु आपकी आयु को देखकर मैं हिचक रहा था। इस प्रकार यह शास्त्रार्थ समाप्त हुआ, सारे श्रोताओं पर आर्य समाज का बड़ा ही अच्छा असर पड़ा।

पैंतीसवां शास्त्रार्थ

स्थान : चांदपुर, जि० बिजनौर (उ० प्र०)

दिनांक : सन् १९२१ ई०

विषय : ईसाई मत की तालीम ?

शास्त्रार्थ कर्त्ता आर्य समाज की ओर से : श्री पं० बिहारी लाल शास्त्री "काव्यतीर्थ"

शास्त्रार्थ कर्त्ता ईसाइयों की ओर से : श्री पादरी ज्वाला सिंह जी

शास्त्रार्थ की भूमिका

ईसाई पादरी मनुष्य गणना के समय गणना करने वालों को, मेहतरों (भंगियों) की गणना अपने कागजों पर करके दे आते थे, और वह गणक उन्हीं फ़ार्मों के अनुसार लिख लेते थे। और पादरी लोग सभी मेहतरों को ईसाई लिख देते थे। मनुष्य गणना के समय मैंने इधर ध्यान दिया, और ईसाइयों के दिये हुये फ़ार्म इक्ट्ठे करके सरकार और जनता के सामने रक्खे, इनमें हिन्दू मेहतरों को भी ईसाई भरा हुआ था, ज़िले भर में मैंने आन्दोलन खड़ा कर दिया, तब पादरियों ने चांदपुर में मेहतरों की पंचायत इकट्ठी की, और उनको समझाने और बहकाने के लिये बड़े-बड़े पादरियों को बुलवाया, इनमें श्री पादरी ज्वालासिंह जी भी थे, श्री पादरी ज्वालासिंह जी अरबी इल्में मन्तक़ के बड़े मझें हुए विद्वान् थे, मन्तक़ी परिभाषा का प्रयोग तो, वो ऐसा करते थे कि, विरोधी चक्कर में आ जाये, सभी बातें दलीलों के साथ करते थे, परन्तु बाइबिल के ऊपर होने वाले आक्षेपों को बचाने में उनकी कला मात खाती थी। पादरियों ने तहसीली स्कूल के सामने अपना अखाड़ा जमाया, और हिन्दुओं व आर्य समाज को शास्त्रार्थ के लिए चुनौती दी !

नोट—

आर्य समाज ने चुनौती को स्वीकार कर शास्त्रार्थ निश्चित्त कर दिया, जिसमें आर्य समाज की ओर से मैं (बिहारी लाल शास्त्री) तथा ईसाइयों की तरफ़ से श्री पादरी ज्वालासिंह जी शास्त्रार्थ कर्त्ता नियुक्त हुए, सभा में कई हजार व्यक्ति शास्त्रार्थ का नाम सुनकर आए थे। जिनमें अधिकतर मुसलमान लोग थे। जो वड़े आलिम व अरबी के अच्छे-२ जानकार थे। जिनके सामने शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ।

"बिहारी लाल शास्त्री"

श्री पादरी ज्वालासिंह जी—

मेहरबान् सज्जनों ! यीसू ईश्वर का अवतार था। उसने रोगियों को अच्छा किया, मुर्दे ज़िन्दा किये, कोढ़ियों को ठीक किया। इसलिए हमें उस यीशू पर ईमान लाना चाहिये।

श्री पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री—

पादरी साहब ! यदि इन चमत्कारों के कारण ही ईसामसीह ईश्वर थे, और ईश्वर के इकलौते बेटे थे, तो जिस जिसमें यह चमत्कार दिखाने की शक्ति होगी वह ईश्वर और ईश्वर का पुत्र कहलायेगा, क्योंकि आपका पक्ष है कि— यीसू ईश्वर था, और उसमें हेतु आप देते हैं. "क्योंकि उसने चमत्कार दिखलाये" पादरी साहब ! ज़रा ग़ौर फ़रमायें, आपका यह हेतु कहीं और भी जा रहा है। केवल यीसू तक ही सीमित नहीं रहता, जैसे --ज़िला विजनौर में ही गुग्गा-ज़ाहिर-पीर, दीवान हुए हैं, वे सांपों के काटे हुये मनुष्यों को बचा लेते थे। आज भी उनके नाम पर दूध न देने वाली भैंसें दूध देने लगती हैं। वांझ औरतों के सन्तानें हो जाती हैं। और लोगों के विगड़े काम बन जाते हैं। अगर उलूहियत मसीह (मसीह के ईश्वरत्व) में यही दलील है, तब तो बहुत ही घटिया किस्म की एवं रद्दी दलील है। जो हेतु पक्ष में भी व्याप्त हो और अन्यत्र भी व्याप्त हो वह अतिव्याप्ति दोष से युक्त होता है। तर्क शास्त्र के अनुसार यह दलील ग़लत है।

श्री पादरी ज्वालासिंह जी --

पंडित जी ! ये आप क्या भाषा वोल रहे हैं ? कहां की भाषा बोल रहे हैं, ये बंगला है या मराठी है, कुछ समझ में नहीं आता। उर्दू ज़ुवान में बोलिए ये ज़ाहिर पीर का हाल कहां लिखा है ? वो कौन लोग हैं जो इस ज़ाहिर-पीर पर ईमान लाते हैं ? आपकी तो कुछ बातं ही समझ में नहीं आंई। हमने सोचा था कोई आलिम सामने खड़ा होगा, परन्तु

ये न जाने क्या कह रहे हैं। (श्रोताओं में हंसी होने के कारण पादरी साहब का खिसयाया सा होना) भाइयो! हमारे मसीह का हाल तो चार इन्जीलों में है। मसीह को इन्जील, खुदावन्द और खुदा का बेटा ठहराती है, यह दलीलें तवातुर (कठिन) हैं, आप इनको समझ भी नहीं सकते।

श्री पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री—

पादरी साहब! आपको पता होना चाहिये मैं भारत की राष्ट्र भाषा जिसे हिन्दी कहते हैं, वह बोल रहा हूं, हिन्द की भाषा हिन्दी, यह १८ करोड़ जनता की भाषा है, बंगला और मराठी की तो आपको पहचान ही नहीं है। दुर्भाग्य है कि इस प्रान्त में करोड़ों व्यक्ति जिस भाषा को बोलते हैं उससे आप नावाक़िफ़ (अनभिज्ञ) हैं। ज़ाहिर पीर के बारे में आप पूछते हैं कि उसका हाल कहां लिखा है? सो श्रीमान जी ज़ाहिर पीर का स्वांग (जि० मुरादाबाद) कांठ में छपा है, जो इतना बड़ा है कि अगर चारों इन्जीलों के ऊपर चढ़ बैठे तो इनका दम निकाल दे, आप पूछते हैं कि ज़ाहिर पीर पर विश्वास ही कौन करता है? तो जानेमन यहीं इसका प्रमाण लीजिए, हज़ारों हिन्दू और मुसलमान इसकी ज़ियारत करते हैं, उसकी मनौति मानते हैं, एक २ लाख तक मनुष्य गंज में उसकी छड़ियों के मेले में जाते हैं। ईसा मसीह की चर्चा कहीं भी रोमन इतिहास में नहीं है। केवल इन्जीले ही इस कथा को कहती हैं, और इन्जीलें भी बदलती रहती हैं, परन्तु ज़ाहिर पीर का ज़िक्र तो फ़ारसी इतिहास में भी है।

श्री पादरी ज्वालासिंह जी—

ये कहानियां झूठी हैं, पब्लिक औहामपरस्त (भ्रम की पूजक) है। ये सब बातें जहालत की हैं, खुदावन्द ईसा मसीह पर एतक़ाद (ईमान) लाना ठीक है, मनुष्यों की सबसे ज्यादा तादाद ईसा पर ईमान लाने वालों की है। योरुप व अमरीका में बड़े-२ लोग यीसू को मानते हैं, आपके ज़ाहिर पीर को ज़ाहिल लोग मानते हैं।

श्री पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री—

सुनिये पादरी साहब! हमें तो न ज़ाहिर पीर से कोई मतलब और न आपके ईसा मसीह से! हमारे दृष्टिकोण से तो दोनों ही अंध विश्वास हैं, जिसके सिर पर सींग है और पीछे पूंछ है। वे सभी पशु हैं। और जिनके पर हैं वे सभी पक्षी हैं। करामात चाहे यीसू मसीह की हो या ज़ाहिर पीर की हो, जो मोजज़े सृष्टि क्रम के विरुद्ध हैं, और बुद्धि के विपरीत हैं, वे सभी झूठे हैं। हमने तो तुलना के लिए ज़ाहिर पीर को पेश किया था। चमत्कारों को प्रमाण मानकर जो मत चलना चाहता है उसकी अब विज्ञान के युग में खैर नहीं है। योरुप और अमेरिका के विज्ञान वेत्ता और दार्शनिक जन ईसायत पर विश्वास नहीं रखते, केवल सेठ—साहूकार और राजनैतिक लोग ही ईसायत का पट्टा लगाये रहते हैं अथवा वे पादरी लोग जिनका कि ये पेशा है। वैज्ञानिकों से तो पोप और पादरियों का घोर संघर्ष हमेशा से चलता आ रहा है। रेखागणित का प्रचार करने वाली स्त्री हाई पशिया को पदारियों ने जीवित जला डाला, और जो व्यक्ति गैलेलियो-भूमि को अण्डाकार व घूमती हुई बताता था, उसे मिमेंन ने घोर-घोर यातनायें दी। आज योरुप व अमेरिका में विज्ञान का बोल-बाला है। विद्वद् जगत् में ईसायत की कोई पूछ नहीं है। और यहां भारत में भी आपका मिशन वे पढ़े-लिखे सीधे-साधे, ग़रीब और ग़र्ज़मन्द लोगों को जाकर बहकाता है। पढ़े-लिखे और उन्नत वर्ग में ईसायत की छदाम की भी कीमत नहीं लगती बुद्धिवाद की आंच में ईसायत की कलई उड़ जानी है। आपने ईसायत को बुद्धिवाद की आग पर रखकर ईसायत की बड़ी हानि कर दी।

श्री पादरी ज्वालासिंह जी—

आपका धर्म गुनाहों से आदमी को नहीं बचा सकता, बुद्धि की बातें ठोकरें खिलाती हैं। साइन्स आदमी को ईमान से हटाता है। सच्चा दीन मसीह का है। वह ग़रीबों के लिए है। थके मादों को मसीह बुलाता है, पढ़े-लिखे व बड़े २ लोग गुनाहों में फंसे रहते हैं। गुनाहों से छुटकारा फ़क़त मसीह ही दिलाता है। जो उसके नाम पर बाप्तिस्मा लेगा गुनाहों से छूट जायेगा, मसीह दुनिया को गुनाहों से बचाने के लिये ही सूली पर चढ़ा था।

श्री पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री—

पादरी साहब ! ये सब बातें आपकी अपने विश्वास की हैं, इन दावों के लिये कोई सबूत या दलील आपके पास नहीं है।

श्री पादरी ज्वालासिंह जी—

इस दावे के लिए दलीलें तवातुर (कठिन) हैं, जिसे आप समझ नही सकते।

श्री पण्डित बिहारी लाल जी शास्त्री—

आपके मज़हब की बातें, वे पढ़ें, महतर, चमार आदि समझ लेते हैं, मगर कमाल है पादरी साहब, मैं नहीं समझ सकता ! (जनता में हंसी·········) आपकी तवातुर दलीलें यही तो हैं कि लोग मिलकर जिस घटना का वर्णन करें वह ठीक ही होती है। अगर बहुत से लोगों ने गुट बना लिया हो तो झूठ-सच की परीक्षा कैसे करोगे ? पादरी साहब ! इन्जील तो मुद्दयी है, उसे गवाह चाहिये, तब दावा ठीक उतरेगा। मसीह के क्रूस पर चढ़ाये जाने का कहीं भी रोमन इतिहास में ज़िक्र नहीं है। ये सब नाटक पीटर पौलूस ने रचाया या बाद के पादरियों ने बनाया।

अगर मसीह खुदा का इकलौता बेटा था, तो खुदा ने उस समय कोई चमत्कार क्यों नहीं दिखाया ? प्रह्लाद के भगवान तो प्रह्लाद को बचाने तत्काल पहुंचते हैं। आसमानी बाप मसीह के **"एली-एली लामा सबक़तनी"** पुकारने पर भी चुपचाप बैठे रहते हैं, असल में मसीह को क्रूस पर चढ़ाने की कहानी मसीह को बदनाम करती है। और यह घटना ही सरासर झूठ है। देखो यूरोसलेम का पड़ौसी और कुल छः सौ वर्ष बाद का पैदा हुआ मज़हब इस्लाम क्या कहता है --

"व क़ौलेहिम् इन्ना क़त्लुल् मसीहा ईसब्ना मर्यमा, रसूलिल्लाहे वमा क़त्लू हो ? बमा सलब् हो" (सुरते निसा)

नोट—

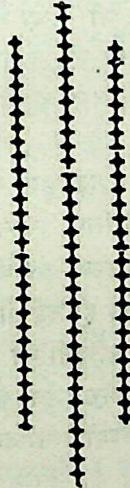
"इस आयत के बोलने पर वहां उपस्थित सभी मुसलमानों ने **"अल्ला हो अकबर"** के नारों से आकाश गुंजा दिया।" भाइयो सुनो ! जब पादरी साहब के मसीह क्रूस पर नहीं चढ़ाये गए तो आपके अक़ीदें (विश्वास) के मुताबिक़ इन्सान का कफ़ारा (प्रायश्चित्त) नहीं हुआ और न गुनाहों से छुटकारा मिला तो फिर बबाप्तिस्मा लेना और ईसाई बनना बेकार है।

इस प्रकार यह शास्त्रार्थ समाप्त हुआ, एवं इस शास्त्रार्थ का यह नतीजा हुआ कि उसके बाद बाल्मीकी भाई ईसाई नहीं लिखे गये।



छत्तीसवां शास्त्रार्थ

स्थान : राजदरबार, श्रीनगर (कश्मीर)



दिनांक : १२ सितम्बर सन् १९०६ ई०

विषय : क्या मुक्ति अवस्था में जीव जडवत् होता है ?

शास्त्रार्थ कर्त्ता आर्य समाज की ओर से : श्री पण्डित गणपति शर्मा जी,

ईसाइयों की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पादरी जानसन साहब

मध्यस्थ : श्री महाराजा प्रताप सिंह जी (कश्मीर)

॥ ओ३म् ॥

कश्मीर का मुबाहिसा

जम्मू कश्मीर का राज्य महाराजा गुलाबसिंह जी द्वारा स्थापित् हुआ। महाराजा गुलाबसिंह बड़े वीर योद्धा थे। श्री महाराजा गुलाबसिंह से पीछे उन्हीं के सुपुत्र महाराजा रणवीर सिंह जी जम्मू कश्मीर की गद्दी पर बैठे। महाराजा रणवीरसिंह जी बुद्धिमान तथा बहुत उन्नत विचारों वाले थे।

उनके बनाये कानून आज तक भी जम्मू कश्मीर में प्रचलित हैं महाराजा रणवीरसिंह जी चाहते थे कि राज्य भर में जितने भी मुसलमान हैं उनके पूर्वज हिन्दू ही थे वह सब फिर हिन्दू हो जायें और उनको फिर से अपने वंश वालों में मिला लिया जाय। इसके लिए उन्होंने देश भर के विद्वानों द्वारा सर्व प्रकार के पापों के प्रायश्चित से इकट्ठे कराये थे वह अच्छा ग्रन्थ "रणवीर कारित प्रायश्चित" के नाम से विद्यमान है।

महाराजा रणवीर सिंह जी ने ऋषि दयानन्द जी को जम्मू कश्मीर में बुलाने का विचार व्यक्त किया था, पर मूर्ख और धूर्त पौराणिकों ने यह बेल मढ़े न चढ़ने दी।

महाराजा रणवीर सिंह जी के पीछे उनके सुपुत्र श्री प्रतापसिंह जी महाराजा बने। महाराजा प्रतापसिंह जी बड़े धार्मिक थे और बड़े उदार थे। उनकी सरकार के अच्छे-अच्छे पदों पर आर्य समाजी भी थे। राय साहिब मक्खन लाल जी महकमा नहर के चीफ-इन्जीनियर थे श्री वंशीधर जी नन्दा किसी और विभाग में बड़े इन्जीनियर थे। श्री लाला दयालचन्दजी, श्री भगवान दास जी, लाला अनन्तराम जी, लाला ईश्वरदास जी, लाला नृसिंहदास जी आदि बहुत से आर्य समाजी सज्जन अच्छे-अच्छे पदों पर विद्यमान थे जम्मू कश्मीर राज्य में बहुत से आर्य समाज मन्दिर भी थे।

एक ईसाई पादरी का कश्मीर में आगमन—

पादरी "जानसन" योरोपियन (गोरा) संस्कृत पढ़ा हुआ था संस्कृत बोलता भी था अपने आपको दर्शनों का विद्वान् समझता था और दर्शनों पर शास्त्रार्थ करने के लिए स्थान-स्थान पर पौराणिक पण्डितों को ललकारता था। पौराणिक पण्डित उससे घबराते थे। प्रसिद्ध पण्डित नीलकण्ठ शास्त्री ईसाइयों से शास्त्रार्थ में हारकर ईसाई हो गया था, पण्डिता रमाबाई ईसाइयों से शास्त्रार्थ में हारकर ईसाई हो गई थी।

पादरी जानसन ने श्रीनगर कश्मीर में आकर पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा—वह कहता था हिन्दुओं के छैओं दर्शन आपस में एक दूसरे के घोर विरोधी हैं और दर्शनों से सिद्ध होता है कि—मुक्ति में जीव—जड़ के समान निष्क्रिय निश्चेष्ट और ज्ञान रहित होता है आदि। कश्मीरी पण्डितों का समुह उस पादरी से ऐसे डरता था जैसे शेर से हिरणों का समूह डरता और घबराता है।

श्री महाराजा प्रतापसिंह जी की अध्यक्षता में कश्मीर के पण्डितों के साथ पादरी "जानसन" का शास्त्रार्थ हुआ भी था उसमें पौराणिक पण्डित हार गये थे।

"पादरी "जानसन" महाराजा साहिब पर जोर डाल रहा था कि—आप मुझको विजयपत्र लिख दीजिए। महाराजा बहुत चिन्ता और परेशानी में थे कि क्या करें।

महाराजा साहिब ने श्री लाला दयालचन्द जी और लाला अनन्तराम जी आदि आर्य जनों को बुलाकर कहा कि—भाई सज्जनों! आर्य समाज के किसी विद्वान् को शीघ्र से शीघ्र बुलाओ। महाराजा साहिब—आर्य समाजी नेताओं और विद्वानों में से श्री महात्मा मुंशीराम जी तथा महात्मा हंसराज जी, पं० आर्यमुनि जी तथा पं० राजाराम जी शास्त्री के नाम जानते थे तब महात्मा मुंशीराम जी को लाला मुंशीराम जी और महात्मा हंसराज जी को मास्टर हंसराज जी कहते थे। आग्रह पूर्वक कहा कि उनको अतिशीघ्र बुलाओ।

देवयोग से शास्त्रार्थ महारथी हमारे दिग्गज विद्वान् श्री पं० गणपति शर्मा जी आर्य समाज हजूरी बाग में पहुच गये। श्री लाला दयालचन्द जी, श्री हरवंश लाल जी तथा डाक्टर कुल भूषण जी आदि ने श्री महाराज को सूचना दी कि हमारे पास देवयोग से महाविद्वान् पं० गणपति शर्मा जी आ गये हैं महाराज श्री ने गाड़ी भेजकर पण्डित जी को बुला लिया और पादरी को सूचना दे दी कि—शास्त्रार्थ के लिए आ जाओ पंडित जी ने श्री महाराज को आशीर्वाद स्वरूप एक गीता की पुस्तक और कुछ पुष्प दिये।

शास्त्रार्थ आरम्भ

कश्मीर महाराज ने "पादरी जानसन" को कहा कि हमारे पण्डित जी आ गये हैं आप शास्त्रार्थ आरम्भ करिये। हजारों श्रोता विस्मय युक्त थे कि क्या होता है। पण्डित गणपति शर्मा जी ने महाराज जी से कहा कि पादरी साहब को कहिये कि वे प्रश्न करें। हम उत्तर देने के लिए तैयार हैं।

पादरी जानसन ने पण्डित गणपति शर्मा जी की विद्वता सुनी हुई थी, तो भी पूर्ण रूप से परिचित न था। उस पर भी पादरी ने महाराजा साहब से कहा कि मेरा चैलेंज कश्मीरस्थ पण्डितों के लिए है। प्रवास में आये इन पण्डित जी से नहीं है। परन्तु महाराजा साहब ने उसकी बात को नहीं माना, और उसे पण्डित गणपति शर्मा जी के साथ शास्त्रार्थ करने के लिए विवश होना पड़ा।

पादरी जानसन साहब—पण्डित जी ! आप कहां के रहने वाले हैं ?

पण्डित गणपति शर्मा जी—
पण्डितों का कोई घर नहीं होता, यह सारी पृथ्वी मेरा घर है। शास्त्रार्थ करने से आपका प्रयोजन है, आप शास्त्रार्थ कीजिए।

पादरी जानसन साहब—आप हमसे निश्चित्त किये गये विषय पर शास्त्रार्थ करने आये हैं।

पण्डित गणपति शर्मा जी—
यह तो सर्व विदित है ही, चलो पहले आप यही बतलायें कि "शास्त्रार्थ" शब्द के क्या अर्थ हैं ? क्या शास्त्र से मतलब अपका छः शास्त्रों से है। और क्या आपको यह ज्ञात है कि, अर्थ शब्द-अनेकार्थ का वाचक है। अर्थ अर्थात् धन, अर्थ अर्थात् प्रयोजन, अर्थ अर्थात् द्रव्य, गुण, कर्म, (वैशेषिक दर्शन के अनुसार शास्त्र भी केवल छः ही नहीं हैं) धर्म शास्त्र हैं, अर्थ शास्त्र हैं, नीति शास्त्र हैं, आप जरा समझाइये कि आप किस शास्त्र का अर्थ करने आये हैं। जब आप "शास्त्रार्थ" शब्द का अर्थ समझायेंगे तब हम उत्तर देंगे।

पादरी जानसन साहब—(गड़बड़ाये व घबराये हुए से बोले) हम इसका उत्तर नहीं दे सकेंगे।

पण्डित गणपति शर्मा जी—क्या इसी बलबूते पर शास्त्रार्थ करने का चैलेंज दे रहे थे ?

नोट—
और पण्डित जी ने धारा प्रवाह संस्कृत बोलना आरम्भ कर दिया। सरस्वती पण्डित जी की जिह्वा पर विराजमान थी। आपने वेद शास्त्रों के प्रमाणों की झड़ी लगा दी, अपने अकाट्य प्रमाणों और युक्तियों की पादरी जानसन पर ऐसी छाप मारी कि जानसन की बोलती बन्द हो गई। इसके बाद पादरी जानसन संस्कृत छोड़ हिन्दी में बोलने लगा। पण्डित जी ने पादरी साहब को बार-बार ललकार कर कहा—कि वे अपने निश्चयानुसार छः शास्त्रों में से एक भी ऐसा प्रमाण दे दें जिससे यह सिद्ध हो जावे कि —**"मुक्ति अवस्था में जीव जडवत् होता है"** लेकिन पादरी साहब बोलने में ही असमर्थ रहे। और पण्डित जी के साथ शास्त्रार्थ करने को मना कर दिया।

महाराज (कश्मीर) सम्माननीय महाराजा प्रतापसिंह जी ने कहा—
जानसन आया तो बड़े घमण्ड के साथ, परन्तु पण्डित जी के पहले प्रश्न पर ही उसका सिर नीचा हुआ, जानसन उत्तर नहीं देता वह हार गया है। जाये अपने घर। हमारे पण्डित जी विजयी हो गये।

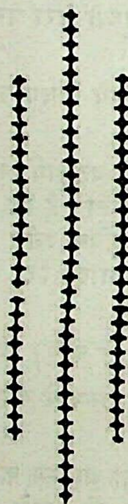
(सभा उठ गई, सर्वत्र पण्डित गणपति शर्मा जी की जय-जयकार होने लगी। महाराज ने भारी सम्मान के साथ पण्डित जी को विदा किया। इसके पीछे जम्मू राज्य में बहुत शीघ्र दस वर्ष में सौ गुणी संख्या आर्यों की हो गई थी। इतने आर्य समाजी किसी भी राज्य में नहीं बढ़े थे।

महाराजा सर हरिसिंह जी महाराज—
महाराजा श्री प्रतापसिंह जी के कोई पुत्र नहीं था महाराजा प्रतापसिंह जी के सहोदर भाई श्री राजा अमरसिंह जी थे उनके सुपुत्र श्री हरिसिंह जी महाराज, प्रतापसिंह जी के पीछे सिंहासनारूढ़ हुए और जम्मू कश्मीर के महाराजा बने।

महाराजा हरिसिंह जी हृदय से चाहते थे कि—जम्मू कश्मीर के वह सब मुसलमान जिनके पूर्वज हिन्दू थे वह फिर हिन्दू बन जावें महाराजा ने बहुत यत्न किया। मुझ(अमरसिंह)को भी बुलवाया और सारे राजपूतों में उनकी इच्छानुसार घूसा पर—**मरीजे जुर्रत पर लानत खुदा की। मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की!!!** राज्य के हिन्दुओं ने साथ नहीं दिया और जवाहरलाल नेहरू ने महाराजा सर हरिसिंह जी को राज्यच्युत कर दिया और राज्य से बाहर निकाल दिया श्री महाराज की बम्बई में मृत्यु हुई लगभग तीन करोड़ रुपये की सम्पत्ति लाला मेहरचन्द जी महाजन जो सुप्रीमकोर्ट के चीफ जज थे। के द्वारा डी० ए० वी० कालेज मैनेजिंग कमेटी को दी, जिससे **"नागबनी"**(जम्मू)में हरिसिंह एग्रीकल्चर स्कूल चल रहा है।

सैतीसवां शास्त्रार्थ

स्थान : कर्णपुरदत्त, जिला फर्रुखाबाद (उ० प्र०)



दिनांक : ४ जून सन् १९४६ ई०

विषय : परमेश्वर साकार है या निराकार ?

शास्त्रार्थकर्त्ता आर्य समाज की ओर से : श्री पण्डित सत्यमित्र जी शास्त्री, "वेद तीर्थ"

शास्त्रार्थकर्त्ता सनातन धर्म की ओर से : श्री स्वामी रामदेव जी

आर्य समाज के मन्त्री : श्री ठाकुर उदयपाल सिंह जी

आर्य समाज के प्रधान : श्री भोला सिंह जी

सनातन धर्म संघ के मन्त्री : श्री पण्डित गुलकन्दी अवस्थी जी

नोट—यह शास्त्रार्थ सामग्री श्री ठाकुर उदयपाल सिंह जी कर्णपुरदत्त निवासी द्वारा प्राप्त हुई, हम उनके आभारी हैं।

"सम्पादक"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री स्वामी रामदेव जी—

आर्य समाज के सिद्धान्त, वेदों और शास्त्रों के विरुद्ध है और बुद्धि के भी विरुद्ध हैं जैसे—आर्य समाज मानता है कि—ईश्वर जीव और प्रकृति ये तीनों अनादि हैं और नित्य हैं। यह मन्तव्य स्वामी दयानन्द जी का बनाया हुआ है वेदों और शास्त्रों से इन तीनों को नित्य और पृथक्-२ सिद्ध नहीं किया जा सकता है।

श्लोकार्धेन प्रविक्षामि, यदुक्तं ग्रन्थ कोटि भिः। ब्रह्म सत्यंजगन्मिथ्या, जीवो ब्रह्मैव नापरः॥

आधे श्लोक में यह बात कहता हूं जो बात करोड़ों ग्रंथों द्वारा कही गई है। वह यह है कि ब्रह्म सत्य है जगत् मिथ्या है जीव—ब्रह्म ही है पृथक् दूसरा नहीं है। यह ही सत्य सिद्धान्त है आर्यसमाज का तीन—ईश्वर जीव प्रकृति को पृथक्-पृथक् मानना असत्य है। जगत् स्वप्न की तरह मिथ्या है चारपाई पर सोया हुआ मनुष्य स्वप्न देखता है स्वप्न में रेल दिखाई देती है कभी स्वप्न देखने वाला मनुष्य अपने आपको कभी रेलगाड़ी में बैठा देखता है कभी हाथी पर चढ़ा देखता है पर सब झूंठा है मिथ्या है, न वहां रेलगाड़ी है और न वहां हाथी है।

सीप को देखकर मनुष्य को उसमें चांदी दिखाई देती है अर्थात् सीप में चांदी का भ्रम देखने वाले को होता है। कभी रस्सी को मनुष्य सांप समझकर डर जाता है जब उसको यह पता लग जाता है कि—यह सांप नहीं है रस्सी है तब उसका डर हट जाता है। इस ही प्रकार जगत् का भ्रम है जब यह निश्चय हो जाय कि—जगत् है ही नहीं मैं ब्रह्म ही ब्रह्म हूं तो निर्भयता आ जाय।

जीव स्वयं कुछ नहीं है जैसे सूर्य एक है और सौ बर्तनों में पानी डालकर रख दिया जाय तो बर्तनों में सूर्य का पृथक्-२ प्रतिबिम्ब दिखाई देता है इस ही प्रकार एक ब्रह्म के असंख्य प्रतिबिम्ब दिखाई देते हैं · है एक ही।

एक—ईश्वर के साकार होने को आर्य समाजी लोग नहीं मानते हैं, कुछ पढ़ते-लिखते तो हैं नहीं पढ़ते तो पता लगता कि जब ईश्वर अवतार रूप में आता है तो साकार हो जाता है।

श्री पण्डित सत्यमित्र जी शास्त्री—

शास्त्रार्थ का बड़ा शोर मचा रक्खा था, मैं—काशी की शास्त्री परीक्षा पास हूं और कलकत्ते की वेद तीर्थ परीक्षा पास हूं। वेद शास्त्र दर्शन उपनिषद सब कुछ पढ़ता हूं, सनातन धर्म की ओर से स्वामी जी आये हैं, आपने देख लिया, सुन लिया—स्वामी जी ने न वेद का कोई प्रमाण बोला न किसी शास्त्र का। ये स्वामी जी हैं इनको वेद शास्त्र आदि पढ़ने से क्या प्रयोजन।

पढ़ना लिखना ब्राह्मण का काम। भज भज साधो सीताराम॥

इनके विचार में जगत् मिथ्या है, वेद शास्त्र जगत् में है वह भी मिथ्या है इनके कम से कम चार जगत् गुरु कहलाते हैं मिथ्या जगत् के गुरू भी मिथ्या है गुरुगद्दियां जिनका करोड़ों रुपया बैंकों में जमा है वह भी मिथ्या हैं ये स्वयं भी मिथ्या हैं इनका सनातन धर्म भी मिथ्या है (भारी हंसी) "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" यह न वेद मंत्र है न किसी शास्त्र का वचन हैं अतः यह भी मिथ्या है, जनता में हंसी·········

स्वप्न में मनुष्य वही देखता है जो उसने जगत् में देखा या सुना होता है। केवल इतना भेद हैं कि—स्वप्न में—कोई शृंखला नहीं होती हैं वैसे स्वप्न भी मिथ्या नहीं होता है। रेलगाड़ी भी मिथ्या नहीं हाथी भी मिथ्या नहीं। स्वप्न में ये नहीं है तो जगत् में तो है।

सीप में चांदी का भ्रम होता है तो न सीप मिथ्या है न चांदी मिथ्या है। ठीक है सीपी में चांदी नहीं है पर क्या कहीं भी नहीं है—अन्यत्र तो है ही। रस्सी में सांप का भ्रम उसको ही होता है जिसने सांप को देखा है रस्सी में और सांप में कुछ समता है इस कारण उसका भ्रम हुआ रस्सी में ऊंट का भ्रम क्यों नहीं हुआ?

जो वस्तु है उसका भ्रम उसके सदृश वस्तु में होता है वस्तु दोनों सत्य हैं सीपी भी सत्य है चांदी भी सत्य है रस्सी भी सत्य है सांप भी सत्य है। मिथ्या केवल आपका विचार है।

जल में सूर्य के प्रतिबिम्ब दिखाई देते हैं इसमें इतनी बातें आवश्यक हैं—(१) प्रतिबिम्ब साकार का साकार में दिखाई देता है निराकार का कोई प्रतिबिम्ब होता ही नहीं। (२) यह भी आवश्यक है कि जिस वस्तु का प्रतिबिंब है वह और जिसमें प्रतिबिम्ब दिखाई देता है वह ये दोनों एक दूसरे से कुछ दूर होने चाहिए। ईश्वर निराकार है अतः उसका प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता है। ईश्वर और जगत् दोनों एक दूसरे से दूर नहीं हैं इस कारण भी ब्रह्म का प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता है। आपने तो प्रमाण कोई दिया नहीं, अब मेरे प्रमाण सुनिए। वेद में कहा है कि—ईश्वर जीव और प्रकृति ये तीन पदार्थ हैं।

द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व जातेः।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वावत्यनश्नन्न्योऽभिचाक शीति॥

एक वृक्ष है (प्रकृति या प्रकृति से बना संसार जगत्) उस परदो पक्षी बैठे हैं (एक जीवात्मा एक परमात्मा) इनमें से एक इस वृक्ष (जगत्) के फल खाता हैं दूसरा कुछ नहीं खाता वह केवल निरीक्षण करता है। वेद नित्य हैं वेद का प्रत्येक मंत्र नित्य है मंत्र सदा से है सदा रहेंगे अतः ये तीनों पदार्थ भी सदा रहने वाले अर्थात् नित्य हैं।

स्वामी जी ने गीता भी पढ़ी है या नहीं ? गीता में श्री कृष्ण जी का वचन है—प्रकृति पुरुषं चैव विद्धनादी। प्रकृति और पुरुष (परमात्मा और जीवात्मा दोनों अनादि हैं। गीता में तीनों पृथक् पृथक् हैं, ऐसा कहा है—देखो गीता—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च। क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षरः उच्यते॥

दो तो यह हैं एक क्षर दूसरा अक्षर—अर्थात् क्षर, जगत् और अक्षर जीव है।

उत्तमः पुरुषत्वन्यः परमात्म्मयेतिऽयुदाहरत्। त्र्यलोक माविष्य विभर्यत्यय ईश्वरः॥

एक इनसे उत्तम परमात्मा है जो तीनों लोकों में प्रविष्ट है और पालन करता है ईश्वर है।

जीव भी नित्य है अविनाशी है—नजायते म्रियते वा कदाचित्···यह न कभी उत्पन्न हुआ है और न कभी मरता है "न हन्यते हन्य माने शरीरे" गीता शरीर के नष्ट हो जाने पर भी यह नष्ट नहीं होता है। नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि··· गीता—न इस (जीव) को हथियार काटते हैं, न अग्नि जलाता है, न पानी गलाता है, न वायु सुखाता है।

ईश्वर निराकार ही है और कभी शरीर धारण नहीं करता है। यजुर्वेद अध्याय ४० मंत्र ८ में उसको 'अकायम्' बिना शरीर बताया है। यजुर्वेद·········में उसको 'अजायमान्, (अनुत्पद्यमान्) जन्म न लेने वाला कहा है। यजुर्वेद अध्याय मंत्र··· ·····में—"तदन्तरस्यसर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यः तः।" अर्थात् सबके भीतर और सबके बाहर अर्थात्—सर्वव्यापक कहा है यही गीता में भी है देखो, गीता·········"बहिरन्तश्च भूतानाम्" सबके भीतर और बाहर सर्वव्यापक बताया है। सर्वव्यापक वह ही हो सकता है जो निराकार हो साकार कभी सर्वव्यापक नहीं हो सकता॥

श्वेताश्वेतर उपनिषद में कहा है—

"अपाणि पादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षु स श्रृणोत्यकर्णः।

उसके पैर नहीं, उसके हाथ नहीं पर सब काम करता है बिना आंखों के देखता और बिना कानों के सुनता है आदि। तुलसीदास जी ने कहा है—

बिन पग चलै सुनै बिनु काना। कर बिन कर्म करै विधि नाना।
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बाणी वक्ता बड़ योगी।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। गृह्ह घ्राण बिनु वास अशेखा॥

कहिये ! वेद और शास्त्र तो आपने नहीं पढ़ें तुलसीकृत रामायण भी कभी पढ़ी है कि नहीं।

बस—रामदेव जी आदि अब उठकर भागें, गर्जे, शोर मचाते हुये गए कि हमारा अपमान होता है। जो उनकी हार का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इस प्रकार यह शास्त्रार्थ समाप्त हुआ। सत्यमेव जयते नानृतम्॥

अड़तीसवां शास्त्रार्थ

स्थान : ज्वालापुर (महाविद्यालय) हरिद्वार [उ० प्र०]

दिनांक : ८ अप्रैल सन् १९१२ ई० (सुबह १० बजे)

विषय : वृक्षों में "अभिमानी जीव" है या नहीं
(स्थावर में जीव विषयक निर्णय)

वृक्षों में जीव मानने वाले (वादी) शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पं० गणपति शर्मा जी "तार्किक शिरोमणि"

वृक्षों में जीव न मानने वाले (प्रतिवादी) शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री स्वामी दर्शनानन्द जी (जो पहले श्री पं० कृपा राम जी शर्मा जगरानवी के नाम से प्रसिद्ध थे)

शास्त्रार्थ के अध्यक्ष : श्री पं० पद्म सिंह जी शर्मा (सम्पादक—भारतोदय)

शास्त्रार्थ लेखक : श्री पं० रलाराम जी

नोट : इस शास्त्रार्थ की मूल कापी "श्री पं० नारायण मुनि जी" महाविद्यालय ज्वालापुर द्वारा प्राप्त हुई हैं, हम उनके हृदय से आभारी हैं।

विशेष : यह शास्त्रार्थ श्री पं० गणपति शर्मा जी के जीवन का अन्तिम शास्त्रार्थ है।

शास्त्रार्थ से पहले

श्री पं० गणपति शर्मा जी का यह अन्तिम और अपूर्व-शास्त्रार्थ, जिन महाशयों ने स्वयं सुना था वे तो अब तक उस समय को याद करके सिर धुन रहे हैं, और यह सोच कर कि अब ऐसा अवसर फिर इस जन्म में नहीं मिलेगा, अपने को धन्य समझ रहे हैं कि सौभाग्य से ही यह सुयोग हमें प्राप्त हो गया, आर्यसमाज के दो अप्रतिम तार्किक, निरुपम-वक्ता, अद्वितीयशास्त्रार्थकर्ता, अलौकिक-प्रतिभाशाली और अपने विषय के अपूर्व-विद्वान तथा प्रतिवादिभयंकर वाग्भटट् उपदेशक प्रवरों के संवादसंगर देखने और श्रवणसुधावर्षी वाग्विलास सुनने का अलभ्य लाभ मिल गया।

आहा! सचमुच ही वह कैसा विचित्र समय और पवित्र अवसर था, महाविद्यालय की सुरम्य भूमि के समीप विशाल बाग़ में कुदरती शामियाने के नीचे हज़ारों मनुष्यों का समाज जुटा है, एक ओर पीतवस्त्रधारी ब्रह्मचारी समूह, पंक्ति बांधे शान्तभाव से; पर उत्कर्ण हुआ, अपने आसन पर असीन है, दूसरी ओर गैरिक-रागरञ्जित-वेशविभूषित, पर विराग सम्पन्न अनेक सम्प्रदायों के साधु महात्माजन=जिन जीवन्मुक्तायमानों को विवादसंगर दिद्दक्षा और शास्त्रार्थ-शुश्रुषा खींच लाई है, आसन मारे विराजमान हैं। शेष श्रोतृ मण्डल फ़र्श पर परा बांधे डटा हुआ है, कोई नोट लेने के लिए चाकू निकाले पैन्सिल घड़ रहा है। कोई काग़ज़ के दस्ते संभाल रहा है, कोई अपने पाकिट बुक के पन्ने उलट रहा है, कोई किसी से काग़ज़ पेन्सिल मांग रहा है, कोई बार-बार घड़ी निकालकर देख रहा है कोई वक्त पूछ रहा है, शास्त्रार्थ शुरू होने में अभी कुछ देर है, पर श्रोता अभी से उतावले बेसब्रे हो रहे हैं, उन्हें एक-एक मिनट भारी हो रहा है, बैठे-बैठे गर्दन उठा उठा कर देख रहे हैं कि पण्डित जी और स्वामी जी आते तो नहीं!

निदान जिस घड़ी का इन्तज़ार था वह आई और सुनने वालों की दिली कशिश इन्तज़ार के बढ़े हुए तार में खींचकर वाग्भट्ट वीरों की जुगल जोड़ी को सभा मण्डप में ले आई।

ठीक निर्दिष्ट समय पर शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ, और जिस प्रकार हुआ, वह आगे देखिये। परन्तु प्रिय पाठक! इन शब्दों में वह अलौकिक-आनन्द कहां? जो उस समय वक्ताओं के धारा प्रवाह मधुर भाषणों से टपक रहा था, यह समझिये कि सुधारस-निष्पन्दी, भाषणनद, बड़े प्रबल वेग से बह रहा था, जिस में गोते खाते हुए, श्रोतृजन भी साथ-साथ बहे जा रहे थे, कई महाशय जो उस समृद्ध नद को काग़ज पैन्सल के छोटे-छोटे पात्रों में भरना चाहते थे, देखते रह गये! क्योंकि दरया को कूजे में बन्द करना, हर एक का काम नहीं है।

हमारे मित्र पं० रलाराम जी की लेखनपटुता और आशुग्राहिता प्रशंसनीय है कि उन्होंने उस प्रबल प्रवाह में से इन रले हुए मोतियों को रोल कर इकट्ठा कर लिया, और उन से यह सुन्दर काण्ड बना कर प्रस्तुत कर दिया, जो प्रिय पाठकों के कमनीय-काण्ड में समर्पित है। इस शात्रार्थ-मौक्तिकमाला निर्माण का सारा श्रेय पण्डित "रलाराम" जी को ही है, इसके लिए पाठकों को उनका ही कृतज्ञ होना चाहिए। "भारतोदय" अपने प्रिय पण्डित जी की इस अन्तिम यादगार को सुरक्षित दशा में सर्व साधारण के सम्मुख रख कर, बड़ा हर्ष अनुभव कर रहा है।

शास्त्रार्थ की पाण्डुलिपी (नोटों) के आधार पर, पंडित जी के सामने ही प्रस्तुत हो चुकी थी। जब अन्तिम बार वह पंजाब जा रहे थे, निवेदन किया कि महाराज! इसे सुनकर तसदीक़ कर दीजिए, कुछ भाग सुना, और कहा कि अब की बार आकर सब सुनेंगे, पर अफसोस! ऐसे गये कि अब तक न लौटे॥

विचार था कि वादी प्रतिवादी, दोनों महोदयों को एक बार सुना कर "शास्त्रार्थ" प्रकाशित किया जाय; किन्तु दु:ख है कि दुर्दैव ने यह इरादा पूरा न होने दिया, ईश्वर की कृपा है कि "प्रतिवादी" अभी मौजूद हैं, पर हाय, "वादी" को कहां से लावें? अब तो यह कहने का मौका भी नहीं रहा।

"लोग कुछ पूछने को आये हैं । अहले मय्यत जनाजा ठहरायें ॥

ओह ! संसार भी कैसा संसरणशाली और परिवर्तनशील है । कुछ ठिकाना है, यारो ! कल ही की तो बात ही है कि हम तुम सब अपूर्व शास्त्रार्थ-नद के प्रवाह में गोते लगा रहे थे, वाद प्रतिवाद की जबरदस्त लहरें, कभी इस किनारे और कभी उस किनारे उठा कर फेंक रहीं थी, किसी एक तट पर जमकर बैठना थोड़ी देर के लिए भी मुश्किल था, पर जिस ओर जाते अपूर्व आनन्द पाते थे । और यही चाहते थे कि इसी प्रकार हर्ष-पयोधि में हिलोरें लेते रहें ! आहा ! वह समय, अब तक आंखों में फिर रहा है, वक्ताओं की वह स्निग्ध गम्भीर-ध्वनि कानों में गूंज रही है, वह दिव्य दृश्य हृदय पर अब तक अंकित है, जिसे स्मृति की आंखें अच्छी तरह देख रही हैं, पर देखो तो कुछ भी नहीं ।

"ख्वाब था, जो कुछ कि देखा, जो सुना अफ़साना था" ॥

प्रत्यक्ष, परोक्ष और वर्तमान, अतीत हो गया, साक्षात् अनुभव, का विषय स्मृति मात्र रह गया, जिसे आंखों से देख और कानों से सुन रहे थे वह सिर्फ़ सोचने और याद करने के लायक रह गया । आह! ऐसा समय क्या कभी इस जन्म में फिर देखने को मिलेगा उस शान्त पावन मूर्ति के फिर भी दर्शन हो सकेंगे ? इन कानों से वे विचित्र बातें फिर सुन सकेंगे? किसी ने सच कहा है कि :—

"मनुष्य अपने चित्त पट पर नाना भाव और अनेक 'विचार रूपी रंगों' से मनोरथ चित्र बना कर तैयार करता है, और विधि एक नादान बच्चे की तरह हाथ फेर कर उसे मेट देता है" ।

"मेरे मन कुछ और है, कर्त्ता के मन और"

आगामी वर्ष के लिए जिन-जिन महोदयों के साथ जिस-जिस विषय पर शास्त्रार्थ और संवाद करने का प्रोग्राम पंडित जी बना रहे थे, वह यों ही रह गया । सुनने वालों के दिल की दिल ही में रह गई, अफ़सोस !

"यह आरजू थी, तुझे गुल के रूबरू करते, हम और बुलबुल बे ताब गुफ़्तगु करते ।"

होने को अब भी सब कुछ होगा, उत्सव होगा, व्याख्यान होंगे और शास्त्रार्थ भी होगा, सभा जुटेगी, श्रोता आयेंगे, कहने वाले कहेंगे, सुनने वाले सुनेंगे, वक्ता की वाणी से निकले हुए शब्द श्रोताओं के इस कान से उसमें होकर निकल जायेंगे, "पल्लाझाड़" कथा सुनकर उठ खड़े होंगे !

"कहने सुनने की गर्म बाज़ारी है, मुश्किल है मगर असर पराये दिल में ।
ऐसा सुनिये कि कहने वाला उभरे, ऐसी कहिये कि बैठ जाए दिल में" ॥

दिल में बैठने वाली बात कहने वाला, मिलना मुश्किल है अनेक शास्त्रार्थ देखे, और बहुतेरी वक्तृतायें सुनी, पर ऐसी प्रतिभाशाली ऊहवान् और मधुरभाषी, शास्त्रीय विषयों का सुवक्ता, विचित्र व्याख्याता हमारे देखने में तो आया नही, और आशा भी नहीं है ।

"मानो न अलीक भूमिकम्प ही से कांपता है, विद्युतादि-वेगों से पहाड़ हिलता नहीं; ।
भानुका प्रकाश भव्य कारण विकाश का है, तारों की चमक पाय "पद्म" खिलता नहीं ॥१॥
"शंकर" रवीली कड़ी रेती रेत डालती है, क्षुद्र छुरी छेनियों से हीरा छिलता नहीं ।
हाय "गणपति" की अनूठी वक्तृता के बिना, अन्य उपदेश सुने, स्वाद मिलता नहीं" ॥२॥

"संपादक"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पंडित गणपति शर्मा जी—

ओ३म् तत्सद् ब्रह्मणे नमः

अब आज इस बात पर विचार होगा कि वृक्षों में "अभिमानी" जीव है या नहीं, मेरा मत यह है कि वृक्षों में "अभिमानी" जीव है। सबसे पहले में इस विषय में वेद का प्रमाण देता हूं क्योंकि हम लोग आस्तिक हैं, और आस्तिकों के लिए "वेद" सबसे बढ़कर प्रमाण है। अतः वेद का प्रमाण पेश करता हूं। "अथर्ववेद" के प्रथम कांड के अनुवाक ६, सूक्त ३२, मन्त्र १ में देखो :—

"इदं जनासो विदथ महद्ब्रह्म वदिष्यति न तत्पृथिव्यां नो दिवि "येन प्राणन्ति वीरुधः।

इस मन्त्र में "येन प्राणन्ति वीरुधः" का अर्थ है कि "जिससे (वीरुधः) लताएँ-बेलें जीव को धारण करती हैं" इससे यह पाया जाता है कि वृक्षों में "जीव" है क्योंकि लताएं वृक्ष-जात्यन्तर्गत हैं। दूसरा प्रमाण :—

"जीवला न घारिषां जीवन्तीमोषधीमहम्"

(अथर्ववेद-कांड ८. अनु० ४. मन्त्र ६)

यहां "जीवन्तीमोषधीमहम्"—"जीती हुई औषधि को" इस प्रकार लिखा है, औषधि का "जीना" विना जीव के नहीं हो सकता—अब इन दो वेद मन्त्रों के प्रमाण के पश्चात् "छान्दोग्योपनिषत्" का प्रमाण पेश करता हूं :—

"अस्य सोम्य ! महतो वृक्षस्य यो मूले भ्याहन्याज्जीवन् स्रवेद्यो मध्ये भ्याहन्याज्जीवन् स्रवेद्यो ग्रे भ्याहन्याज्जीवन्, स्त्रवेत् स एष "जीवेना"त्मनानुप्रभूतः पेपीयमान मोदमानास्तिष्ठति ॥१॥ अस्य यदेका शाखां "जीवो" जहात्यथ सा शुष्यति. द्वितीयां जहात्यथ सा शुष्यति, सर्वं जहाति सर्वः शुष्यति ॥२॥ एवमेव खलु सोम्य ! विद्धीति होवाच जीवापेतं वाव किलेवं म्रियते न जीवो म्रियते इति……इत्यादि ॥

इसका अर्थ —हे सोम्य ! इस बड़े भारी वृक्ष को यदि मूल से काटें तो जीता हुआ स्रवण करता है (रस-दूध आदि के टपकने से तात्पर्य है), यदि मध्य भाग को काटा जाय तो जीता हुआ स्रवण (टपकता है) करता है। यदि अग्र-भाग (टहनी आदि) में काटा जाय तो जीता हुआ स्रवण करता है। इस रस आदि के टपकने से यह प्रतीत होता है कि यह वृक्ष जीवात्मा से (अनुप्रभूतः) व्याप्त या अधिष्ठित हुआ (पेपीयमानः) जल को तथा पृथिवी के रसों को अत्यर्थ (बहुत) पीता हुआ और लहलहाता रहता है और जब "जीव" इस (वृक्ष) की एक शाखा को छोड़ता है तब वह सूख जाती है। जब दूसरी को छोड़ता है तो वह भी सूख जाती है, जब तीसरी को छोड़ता है तो तीसरी सूख जाती है, यदि सारे पेड़ को छोड़ जाता है तो सारा पेड़ सूख जाता है। हे सोम्य ! इस प्रकार (जैसे कि, पेड़ जीव से युक्त होकर रस आदि को भूमि में से जड़ों द्वारा पी—पी कर हरा भरा रहता है और जीव के अलग हो जाने से सूख जाता है) यह (हमारा) शरीर, जीव से रहित हुआ-हुआ निश्चय पूर्वक मर जाता है, पर जीव नहीं मरता ……इत्यादि" ॥ इससे यह आया कि 'वृक्षों में जीव है'। यह तीन श्रुति के प्रमाण हुए, अब स्मृति का प्रमाण देता हूं देखो ! "मनुस्मृति" अध्याय एक, श्लोक ४१, से ५० तक—

"एवमेतैरिदं सर्वं मन्नियोगान्महात्मभिः।
यथाकर्म्म तपोयोगात्सृष्टं स्थावरजंगम् ॥४१॥ एवमेतैरिति—एवमित्युक्तप्रकारेण एतैर्मरीच्यादिभिरिदं सर्वं स्थावरजंगम् सृष्टम्। यथाकर्म यस्य जन्तोर्यादृशं कर्म तदनुरूपम् इत्यादि……

भावार्थ—"इस प्रकार मरीचि आदि ने सब "स्थावर" (वृक्ष लता आदि "जंगम" (पशुपंक्षी आदि) संसार बनाया, यह नहीं कि यों ही अट-सट बनाया, किन्तु (यथाकर्म) जिस जन्तु (जीव) का जैसा कर्म था उसी कर्म के अनुसार उसको तत्तद्योनि में पैदा किया……इत्यादि"।

इससे यही सिद्ध होता है कि जन्तु अपने कर्मों के अनुसार जंगम और स्थावर रूप सभी योनियों में जन्म लेता है, रहता है, तथा मरता है।

येषां तु यादृशं कर्म भूतानामिह कीर्तितम्। तत्तथा वोऽभिधास्यामि कर्मयोगं च जन्मनि ॥४२॥

इस श्लोक में यह प्रतिज्ञा करके कि "प्राणी किस-किस योनि में किस-किस कर्म के अनुसार कैसा-कैसा जन्म लेते हैं वह आगे कहता हूं" मनु महाराज कहते हैं :—

पशवश्च मृगाश्चैव व्यालाश्चोभयतोदतः। रक्षांसि च पिशाचाश्च मनुष्याश्च जरायुजाः ॥४३॥

अण्डजा पक्षिणः सर्पा नक्रा मत्स्याश्च कच्छपाः। यानि चैवंप्रकाराणि स्थलजान्यौदकानि च ॥४४॥

स्वेदजं दंशमशकं यूकामक्षिकमत्कुणम्। ऊष्मणश्चोपजायन्ते यच्चान्यत्किञ्चिदीदृशम् ॥४५॥

ऊपर लिखे इन-इन तीनों श्लोकों में 'जरायुज्ज', अण्डज और स्वेदजों की उत्पत्ति बता कर—

"उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः। औषध्यः फलपाकान्ताबहुपुष्पफलोपगाः ॥४६॥

अपुष्पाः फलवन्तो ये ते वनस्पतयः स्मृताः, पुष्पिणःफलिनश्चैव वृक्षास्तूभयतः स्मृताः ॥४७॥

गुच्छगुल्मं तु विविधं तथैव तृणजातयः। बीजकाण्डरुहाण्येव प्रताना वल्लय एव च ॥४८॥

इन तीनों श्लोकों में नाना प्रकार के वृक्षों, वेलों तथा वनस्पतियों की उत्पति का वर्णन किया है अर्थात् इन योनियों में भी गुण कर्मानुसार जीव जन्म लेता है, तदनन्तर, यह शंका उत्पन्न होने पर कि "यदि जीव इनमें जन्म लेता है तो चेतनता की प्रतीति हमें क्यों नहीं होती"? मनु महाराज उत्तर देते हैं :—

"तमसा बहुरूपेण वेष्टिताः कर्महेतुना। अन्तः संज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः ॥४९॥

इसका अर्थ श्रीमत्कुल्लूक भट्ट करते हैं कि :— "ये वृक्ष लता आदि तमोगुण से व्याप्त और सुखदुःख से युक्त होकर "अन्तःसंज्ञ" अर्थात् अन्तश्चैतन्य होते हैं और यह तमोगुण उन के अधर्मकर्मों (धर्म विरुद्ध कर्मों) से उत्पन्न होता है और नाना दुःखरूपफलों का देने वाला होता है यद्यपि सब शरीर धारी अन्तश्चैतन्य ही होते हैं अर्थात् शरीर के अन्दर ही ज्ञान का अनुभव करते हैं तो भी वृक्ष आदि को हमारे समान बाहर की ओर व्यापार आदि काम न करने से "अन्तः संज्ञ" कहा जाता है। यद्यपि "वृक्षाभिमानी जीव" भी "सत्" "रजः" और "तमः" इन तीनों गुणों से युक्त होता है तथापि तमोगुण की अधिकता के कारण तमोगुण से व्याप्त माना जाता है, इसी लिए सुख और दुःख दोनों को ही अनुभव करता है क्योंकि मेघों से वरसे हुए जल के स्पर्श से (वृक्षों को) सुख भी अवश्य होता है (ऐसा सभी को प्रतीत होता है)। इसी प्रकार :—

एतदन्तास्तु गतयो ब्रह्माद्याः समुदाहृताः। घोरेऽस्मिन् भूतसंसारे नित्यं सततयायिनि ॥५०॥

अर्थ—"ब्रह्मा से लेकर स्थावर (वृक्ष आदि) पर्यन्त यह सब जीव की उत्पत्ति के स्थान हैं इत्यादि" इस प्रकरण से यह बात सुस्पष्ट है कि मनु महाराज भी 'वृक्षों में जीव' का होना मानते हैं, तथा यह, श्रुति के अनुकूल होने से मान्य हैं।

इस प्रकार दो "श्रुति" के, एक "छान्दोग्योपनिषद्" का प्रमाण, तथा यह "मनुस्मृति" का प्रकरण, इस बात को सिद्ध करते हैं कि "वृक्षों में जीव है"।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी—

जो दो मन्त्र "अथर्ववेद" के प्रमाण रूप में पेश किए गये हैं—उनका अर्थ ठीक नहीं-जो अर्थ पंडित जी ने किया है वह पं० भीमसेन का किया हुआ है अतः स्वीकार नहीं हो सकता। मैं श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का अर्थ सुनाता हूं—दो प्रकार की हरक़त 'गति" होती है—"हरकते-इरादी" और "हरकते-इन्तजामी" अर्थात् "विशेषगति" और "सामान्यगति"। इस लिए "येन प्राणन्तिवीरुधः" में जिस परमात्मा की शक्ति से लताएं प्राण धारण करती हैं" ऐसा अर्थ है। संसार के सूर्य, चांद आदि सब पदार्थ परमात्मा की "सामान्यगति" (हरक़ते-इन्तजामी) से हरक़त करते हैं न कि उनमें कोई अभिमानी जीव है जिस (जीव) की "हरक़ते-इरादी" से कि वे-घूमते हों तथा लताएं प्राण धारण करती हों। जैसे एक मनुष्य के शरीर में जो गति (हरक़त) पाई जाती है यह "हरक़ते इरादी" कहलाती है, क्योंकि पुरुष उसे अपने इरादे (इच्छा) से करता है—मनुष्य के शरीर में जो खूंन की हरक़त है वह "हरकते-इन्तजामी" है, क्योंकि परमात्मा के प्रबन्ध से लहू की गति होती है, या जो मनुष्य की बनाई घड़ी में हरकत है वह "हरक़ते-इन्तजामी" है, क्यों कि परमात्मा के प्रबन्ध से लहू की गति होती है, या जो मनुष्य की बनाई घड़ी में हरक़त है वह "हरक़ते-इन्तजामी" है—इसी प्रकार लताओं में "प्राण धारण"-रूप-गति (हरक़त) परमात्मा की "हरक़ते-इन्तजामी" (सामान्यगति) से अभिप्रैत है—इसी प्रकार "जीवन्ती-मोषधीम्" इस मन्त्र में भी सामान्य जीवन से तात्पर्य है। अतएव वेदविरुद्ध स्मृति भी अप्रमाण है। वृक्षों में "जीव" के होने के विरुद्ध, में भी स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का प्रमाण देता हूं-देखो—तीसरी बार की छपी-"ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका"—पुरुषसूक्त, मन्त्र ४, पृष्ठ १२२

"त्रिपादूर्ध्वं उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः। ततो विश्वं व्यक्रामत् "साशनानशने" अभि:॥

इस मन्त्र के "साशनानशने" पद का अर्थ लिखते हैं कि—(ततोविश्व०) ततस्तत्सामर्थ्यत् सर्वमिदं विश्वमुत्पद्यते" किञ्च तत्? (साशनानशने०) यदेकमशनेन, भोजनकरणेन सह वर्त्तमानं जंगम जीवचेतनादिसहितं जगत् द्वितीयमनशनमविद्यमानमशनं भोजनं यस्मिंस्तत्, पृथिव्यादिकं च यज्जड़म् जीवसंबंध रहितम् जगद्वर्त्तते, तदुभ्यम् तस्मादित्यादि"

अर्थात् "उस परमात्मा के सामर्थ्य से यह सब संसार उत्पन्न होता है। कोन-कोन सा?—"एक वह जो भोजन करता है—जिसे "जंगम" जीव चेतना आदि से युक्त जगत् कहते हैं, और दूसरा वह जो भोजन नहीं करता, जैसे "पृथिव्यादि" जड़ जो कि जीव के संबंध से रहित जगत् है—यह दोनों प्रकार का जगत् पुरुष (परमात्मा) के सामर्थ्य कारण से उत्पन्न होता है"।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज इस "अनशन" शब्द के भाष्य में "जीव-सम्बन्धरहितम् पृथिव्यादिकं जड़म्" लिखते हैं अर्थात् जीव के सम्बन्ध से जो रहित हो वह "जड़" कहलाता है और वह पृथिव्यादिक है—सो "पृथिव्यादि" पद में "आदि" पद से पृथिवी के कार्य "वृक्ष" आदि भी पृथिवी के अन्तर्गत होने से जीव से रहित हैं क्योंकि पृथिवी जीव से रहित है अतएव जड़ है। तथा "वेद" में भी "जीव" का अभाव "वृक्षों में पाया जाता है। देखो—

"यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत्।
इन्द्रो यो दस्यूं रधरां अवातिरन्मरुत्वान्तं सख्याय हवामहे ॥५॥

ऋग्वेद, मं० १, अष्टक१; अध्याय ७, वर्ग १२॥

इस मन्त्र में "जगतः प्राणतः ऐसा लिखा है, अर्थात् "जो परमात्मा प्राण धारण करने वाले समस्त जगत् का या (विश्वस्य जगतः) गतिशील संसार का पति है"

"जगत्" को प्राण धारण करने वाला" विशेषण देना यह सिद्ध करता है कि जो गतिमान् नहीं है, वह प्राण धारण भी नहीं करता, या जो प्राण धारण करता है वह गतिमान् है। सो "वृक्ष" गतिमान् नहीं हैं, अतएव *"प्राणी" भी नहीं है, और "सजीव" भी नहीं है"।

श्री पंडित गणपति शर्मा जी—

"येन प्राणन्ति वीरुधः" में सामान्यगति (हरक़ते-इन्तज़ामी)। का कोई ज़िकर तक नहीं, स्वामी जी को कोई कारण बताना चाहिए कि मुख्यार्थ अर्थात् विशेष—"प्राणन" को छोड़ कर क्यों गौण—"प्राणन्" का आश्रयन् किया जाय? इसी प्रकार "औषधि" के लिए भी जो "जीवन्तीम्" विशेषण आया है, वहां भी सामान्यगति (हरकते-इन्तज़ामी) का प्रकरण नहीं है। वह अर्थ पं० भीमसेन जी का पेटेन्ट नहीं है। जब तक उस अर्थ में कोई दोष न दिखाया जाय, वह मान्य है। तथा जो "साशनानशने" पद के भाष्य में से "पृथिव्यादि" पद के अन्तवर्त्ती "आदि" पद से "वृक्ष लता" आदि का ग्रहण आप करते हैं, वह ठीक नहीं हैं, वहां "आदि" पद से "जल, वायु" आदि का ग्रहण होता है—यदि ग्रहण न कर आप "वृक्ष' आदि अर्थ लेने लगेंगे तो श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के लेख में पूर्वापर विरोध हो जायेगा, क्योंकि वह वृक्षों में जीव को मानते हैं। देखो सत्यार्थ प्रकाश—नवीं वार का छपा हुआ-पृष्ठ २३५,

"प्रश्न" - ईश्वर ने किन्हीं जीवों को मनुष्य जन्म, किन्हीं को सिंह आदि क्रूर जन्म, किन्हीं को हरिण, गाय आदि पशु, किन्हीं को "वृक्षादि" कृमि कीट पतंगादि जन्म दिये हैं," इत्यादि।

यहां स्पष्टतया "वृक्ष आदि" का जन्म स्वीकार करते हैं, इससे यह पाया जाता है कि परमात्मा जीवों को, उनके कर्मानुसार वृक्ष आदि योनियों में भी जन्म देता है अतः यहां (ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में) "आदि" पद से "वृक्ष" आदि का ग्रहण नहीं करना चाहिए—अन्यथा श्री स्वामी जी के लेख में पूर्वापर विरोध होगा। तथा जिस प्रकार आप विना किसी कारण या प्रकरण के, मेरे प्रमाण रूपेणोपन्यस्त वेदमन्त्रों में प्रधान अर्थ को छोड़कर, और (सामान्य प्राणन्) हरकते इन्तज़ामी का अवलम्बन कर, "गौण" अर्थ को स्वीकार करते हैं, इसी प्रकार में भी, आपके प्रमाणरूप "साशनानशने"पद की व्याख्या में "पृथिव्यादि" पद से लिए गये "वृक्षादि" पदार्थों की जड़ता को यदि "गौण" कहकर टाल दूं तो आप क्या कहेंगे? अन्यथा बताइये कि क्यों नहीं "वृक्ष" आदि की गौण जड़ता मानी जाय? क्योंकि "जड़" शब्द का प्रयोग "चेतन" और अचेतन" दोनों के लिए पाया जाता है। देखो! श्री भर्तृहरि जी क्या कहते हैं :—जाड्यं धियो हरति.........." कि "सतसंग" बुद्धि की जड़ता को हरता है"—"बुद्धि" की जड़ता कैसी? श्री गौतम महाराज कहते हैं कि—"बुद्धिरुपलब्धिज्ञानमित्यनर्थान्तरम्"—बुद्धि, उपलब्धि और ज्ञान ये एक ही पदार्थ के नाम हैं। फिर श्री भर्तृहरि जी "बुद्धि की जड़ता" कैसे कहते हैं? "ज्ञान की जड़ता"! "प्रकाश का अंधेरा! यह परस्परविरुद्धधर्म क्यों कर सम्बन्धी हो गये? इससे यही पाया जाता है, कि "जड़" शब्द का प्रयोग चेतन और अचेतन दोनों के लिए आता है; अतः श्री भर्तृहरि जी के वाक्य में "बुद्धि की जड़ता" से अभिप्राय "मान्द्य"-कुण्ठता से है। और यहां आपके मतानुसार "पृथिव्यादि" पद के "आदि" पद से गृहीत जो "वृक्ष" आदि पदार्थ हैं, "उनकी जड़ता का अभिप्राय जीवाभाव नहीं किन्तु वाह्यज्ञानाभाव है (क्योंकि वृक्ष वे "अन्तःसंज्ञ" होते हैं), यदि ऐसा प्रकरण आदि की अपेक्षा न कर, किया जाय तो क्या वह आपको अभीष्ट होगा? यदि नहीं तो, फिर मेरे पक्ष में, "सामान्य"=गौण अर्थ हो और आपके पक्ष में प्रधान! यह कहां का न्याय है? इस "अर्द्धजरतीय" न्याय का अवलम्बन क्यों किया जाय?

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी—

"Soul"=आत्मा और 'Life", प्राण में भेद है। मनुष्य में Soul आत्मा और Life प्राण दोनों हैं वृक्षों में *केवल Life "प्राण" है Soul "आत्मा" नहीं। अब "येन प्राणन्ति वीरुधः" में साक्षात् Life "प्राण" का निरुपण है—तो जिस परमात्मा की शक्ति से लताएं प्राण धारण करती हैं अर्थात् जिसकी "हरकते इन्तज़ामी" से लताएं (बेलें) 'प्राण श्वास लेती हैं" यह अर्थ हुआ' न कि कोई जीवात्मा अपनी हरकते इरादी से सांस ले रहा है क्योंकि किसी जीवात्मा का यहां प्रकरण नहीं, परमात्मा का तो प्रकरण हैं क्योंकि:—

नोट—*पंक्ति दो में कहा है कि वृक्ष प्राणी भी नहीं है, *पंक्ति ३४ में कहा है कि वृक्षों में प्राण हैं आत्मा नहीं। श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज के वाक्यों में परस्पर विरोध (वदतो व्याघात्) है। "अमर स्वामी"

"इदं जनासो विदथ" महद् ब्रह्म वदिष्यति, न तत् पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुध :"

इसका अर्थ यों है कि "हे लोगों ! उस "महाब्रह्म" को जानो, जिसके विषय में कि मैं तुमसे कहता हूँ...... इस प्रकार महाब्रह्म का प्रकरण उठाकर कहा है कि (येन०) जिस परमेश्वर (की हरकते इन्तजामी) से लताएँ प्राण धारण करती हैं। "अतः इस प्रकार हमने प्रकरण के अनुकूल ही गौण अर्थ किया है। इसी प्रकार दूसरे मन्त्र "जीवन्तीमोषधीम्" में भी "जीवन्तीम्" शब्द आया है—जो कि "जीव-प्राणने" धातु से बना है, "जीव" धातु का अर्थ "प्राण" (श्वास) लेना" है अतः "जीवन्तीम्" पद का अर्थ हुआ "जीती हुई (औषधी) को" अर्थात् "प्राण धारण करती हुई को", सो यहाँ भी "प्राणन्" मात्र का प्रकरण है, न कि किसी जीवात्मा का। और औषधी का "प्राण धारण करना हरकते-इन्तजामी से है न कि किसी जीवात्मा की "हरकते-इरादी" से।

तथा "सत्यार्थ प्रकाश" में से जो वृक्षादि शब्द को लेकर, आप वृक्षों में जीव का होना (श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के मत के अनुसार है, ऐसा) सिद्ध करते हैं वह ठीक नहीं, क्योंकि "वृक्षादि" शब्द "क्रम विरुद्ध" होने से प्रक्षिप्त है। प्रक्षिप्त" पद की पहचान यह है कि जिस शब्द के निकाल डालने से अर्थ में कोई क्षति या भेद (फरक) न आये और रहने से किसी प्रकार का दोष होता हो, वह प्रक्षिप्त है। यहाँ "वृक्षादि" पद के निकाल देने से कोई फ़रक़ अर्थ (मानों) में नहीं आता प्रत्युत क्रम ठीक हो जाता है और रहने से "क्रमविरोध" रूप दोष रहता है। तथा ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका के "साशनानशने" पद के भाष्य से विरोध हो जाता है—अतः "वृक्षादि" शब्द यहाँ प्रक्षिप्त है। "क्रम-विरोध" दिखाता हूँ, देखो "सत्यार्थप्रकाश—पृष्ठ २३५,

प्रश्न—ईश्वर ने किन्हीं जीवों को मनुष्य जन्म, किन्हीं को सिंह आदि क्रूर जन्म, किन्हीं को हरिण गाय आदि पशु, किन्हीं को वृक्षादि, कृमि कीट पतंगादि जन्म दिए हैं।"

यहाँ जगङ्म सृष्टि की जन्म-सम्बन्धिनी-विलक्षणता के उपन्यास से, ईश्वर में अन्याय आदि दोषों की आशंका करते-करते "हरिण गाय आदि पशु, के पश्चात् "कृमि कीट पतंग आदि" कहना चाहिये था क्योंकि पहले और अन्त में जंगमसृष्टि का प्रकरण है बीच में वृक्षादि" पद असम्बद्ध है क्योंकि वृक्षादि स्थावर है जंगमों में एक दम कूद कर स्थावर का आना क्रम को तोड़ देता है अतः प्रक्षिप्त है। एवं ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के "साशनानशने" पद के भाष्य से विरोध हो जाता है—क्योंकि वहाँ "पृथिव्यादिकं जीवसम्बन्धरहितं जड़म्" पृथिवी वृक्ष आदि को जीव के सम्बन्ध से रहित "जड़" लिखा है। यदि "सत्यार्थप्रकाश" में वृक्षादि" पद प्रक्षिप्त न माना जाय तो वृक्षादि के जन्म का प्रतिपादक-ग्रन्थ होने से जड़ प्रतिपादक ग्रन्थ से विरोध हो जायेगा—और यह समान कर्तृक ग्रन्थों में नहीं होना चाहिए—परन्तु "वृक्षादि" पद के निकाल डालने से क्रमविरोध और पूर्वापरविरोध दोनों दोषों की निवृत्ति हो जाती है। इसलिए यह "वृक्षादि" शब्द प्रक्षिप्त है। अतएव च श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के लेख में "पूर्वापरविरोध" रूप दोष के परिहार के लिए "वृक्षादि" पद को निकाल डालना चाहिए। न कि "साशनानशने" पद के भाष्य में लिए गए "पृथिव्यादि" पद के "आदि" पद से वृक्षादि अर्थ न लेना चाहिए। अर्थात् "वृक्षादि" अर्थ अवश्य लेना चाहिए। इसी प्रकार "वेदान्तदर्शन" (शारीरिक-भाष्य) में भी वृक्षादि में मुख्य ओर गोण जीवात्मा के होने के विषय में सिद्धांत किया है कि वृक्षों में मुख्य जीव नहीं है किन्तु "गोण" अर्थात् "अनुशायी" (?) जीव है। गूलर के फलों में जो कीड़े रहते हैं वे "अनुशायी", (?) जीव हैं, अर्थात् वृक्षादि के अभिमानी जीव न होकर जो केवल बसेरा मात्र लेते हैं वे "अनुशायी" (?) जीव कहलाते हैं जैसे मनुष्य के शरीर में अहंभाव वाला जीवात्मा तो "अभिमानी" जीव है और इस शरीर में यूका (जूँ) आदि "अनुशायी" (?) जीव है। देखो—

"अन्याधिष्ठितेषु पूर्ववदभिलापात्" (वेदान्तसूत्र, अध्याय ३, पाद १ सूक्त २४,)

इस सूत्र का शारीरिकभाष्य (उत्तर-पक्ष) व्रीह्यादिषु संसंगमात्रमनुशायिनः (?) 6 "प्रतिपद्यन्ते" अर्थात् व्रीहि (धान) आदि में—"अनुशायी" (?) जीव सम्बन्धमात्र रखते हैं"—

इस वेदान्त सूत्र तथा भाष्य के प्रमाण से भी यही पाया जाता है कि वृक्षों में "अभिमानी" जीव नहीं है। श्री कणाद महर्षि जी भी वृक्षों में जीवात्मा को नहीं मानते। देखो। "वैशेषिकदर्शन" :—

"तत्पुन: पृथिव्यादिकार्यद्रव्यंत्रिविधं शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञकम्"

अर्थात् "पृथिवी आदि कार्यद्रव्य "शरीर" "इन्द्रिय" और "विषय" इन भेदों से तीन प्रकार का है। इस सूत्र पर "प्रशस्तपाद-भाष्य, में व्याख्या देखों :—

"त्रिविधञ्चास्या : कार्यं शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञकम्.........तत्र शरीरं द्विविधं, योनिजमयोनिजन्...... इन्द्रियं गन्ध व्यञ्जक विषयस्तु द्व्यणुकादिप्रक्रमेणारब्धस्त्रिविधो मृत्पाषाण-स्थावर-लक्षण : तत्र भूप्रदेशाः प्राकारेष्टि-कादयो मृद्विकारा:, पाषाणा उपलमणिवज्रादय:, स्थावरास्तृण-गुल्मौषधि, तरु-लता-वितान-वनस्पतय इति।"

इस भाष्य में शरीर इन्द्रिय और विषय को पृथक्-पृथक् माना है, परन्तु यह तीनों पृथ्वी के कार्य हैं, और पृथिवी "जड़" है। अत: ये भी जड़ हैं, "भोगायतनम् शरीरम्" भोग का आश्रय, "शरीर" कहलाता है भोग के साधन "इन्द्रिय" है "विषय" भोग्य अर्थात् भोग में आने वाली वस्तु को कहते हैं। यहां पृथ्वी के विकार रूप जो विषय हैं, श्री प्रशस्तपादाचार्य, श्री कणाद महर्षि के दर्शन के भाष्य में बताते हैं कि वे (विषय) तृण (घास) आदि हैं। अब इन विषयों को, जो कि भोग्य हैं। यदि "शरीर" मान लिया जाये तो ! क्योंकि जब वृक्षों में "अभिमानी" जीवात्मा माना जायेगा तो यह वृक्ष आदि उस (जीवात्मा) के शरीर होंगे, वैशेषिक दर्शन से विरोध होगा क्योंकि "शरीर" और "विषय" में भेद है "विषय" अर्थात् भोग्य पदार्थ भोग का आश्रय (शरीर) नहीं हो सकते, अत: भोक्ता (जीवात्मा) के भोग्य (विषय) वृक्ष आदि हैं वे जड़ हैं अत एव जीव से रहित हैं, क्योंकि "चेतन शरीर" भोग्य (विषय) नहीं हो सकता (यद्यपि) शरीर भौतिक है तथापि चेतनाधिष्ठित होने के कारण गौणवृत्या "चेतन" के समान लोक में माना जाता है।

श्री पण्डित गणपति शर्मा जी—

"सत्यार्थप्रकाश" के वृक्षादि" पद को क्रमविरुद्ध नहीं कह सकते क्योंकि यहाँ क्रमश: किसी विषय का निरुपण नहीं है। "क्रम" की आवश्यकता तो वहाँ होती है जहां वक्ता किसी प्रतिपाद्य विषय में क्रम की विवक्षा रखता हो। यदि बिना विवक्षा के ही क्रम का अडंगा लगाया जायेगा तो वेद में भी "क्रमविरोध" हो जाएगा पुरुष सूक्त में देखो— "तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत:" इस मन्त्र में पशुओं की उत्पत्ति "तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋच:" इस मन्त्र में वेदों की उत्पत्ति "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्:" इसमें ब्राह्मण आदि वर्णों की उत्पत्ति तदनन्तर "चन्द्रमा मनसो जात:" में चाँद, सूर्य, वायु, प्राण और अग्नि आदि की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है।

यदि इस सूक्त पर "क्रमविरोध" का कुठार उठाया जाएगा तो "सूक्त" रूपी तरु का पत्ता-पत्ता छिन्न भिन्न हो जाएगा—"पशु" "वेद" ब्राह्मण आदि "वर्ण" चांद, सूर्य, वायु, प्राण और अग्नि" क्या इसी लिखे गये क्रम से उत्पन्न हुए थे ? क्या इस सृष्टिक्रम को कोई बुद्धिमान मान लेगा ? क्या यह बात बुद्धि में आ सकती हैं कि पशु पहले उत्पन्न हुए हों और वेद पीछे (मनुष्यों से पहिले)? क्या वे वेद पशुओं के आशय (मन) में प्रकाशित हुए थे ? क्या चाँद, सूर्य, आग, पानी, हवा आदि के उत्पन्न होने से पहले ही पशु और ब्राह्मणादि उत्पन्न हो गये और जीते रहे ? इस बात को कोई विज्ञानवेत्ता मान लेगा ? ऐसे "विरुद्ध क्रम" से आक्रान्त वेद को भी क्या आप प्रक्षिप्त मानेंगे ? यदि आप यहाँ "क्रम-विरोध" के कारण वेद मन्त्रों को प्रक्षिप्त मानने के लिए तैयार नहीं है, तो फिर "सत्यार्थप्रकाश" बेचारे ने ही क्या अपराध किया है ? (जनता में हंसी······) हम क्यों यहाँ वृक्षादि, पद को प्रक्षिप्त मान लें ? प्रक्षिप्त अंश वही माना जाएगा जहाँ क्रम की विवक्षा सिद्ध होगी, जब यहाँ (सत्यार्थप्रकाश में) किसी क्रम के प्रतिपादन में अभिप्राय ही नहीं

है तो फिर आप क्योंकि "क्रमविरोध" सिद्ध कर सकते हैं ? यहाँ तो केवल योनिवैलक्षण्य के उपन्यसन से, परमात्मा में अन्यायात्मकदूषण के (पूर्वपक्ष द्वारा) उद्‌भावन में अभिप्राय है जिसमें कि पूर्वपक्षी की ओर से श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने, वृक्षादि भी "जीवात्मा का शरीर (भोगाश्रय) होने के कारण रख दिए," वस इस शंका ग्रन्थ का इतना ही अभिप्राय है, अतएव प्रक्षिप्त भी नहीं है (हेत्वसिद्धेरित्यर्थः) क्योंकि आपका "विरुद्धक्रम" रूप हेतु ही सिद्ध नहीं हो सकता। जिसका कि अवलम्बन कर, आप विरोध (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका से) दिखाना चाहते हैं।

दूसरे यह है कि ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका से विरोध तो तब होगा न ? कि जब पहले आप "साशनानशने" पद के भाष्य के पृथिव्यादिपद के "आदि" पद से वृक्ष आदि का ग्रहण युक्तियुक्त है—ऐसा सिद्ध कर लेंगे। वही तो आप किसी प्रकार सिद्ध नहीं कर सकते, एक अस्वाभाविक और दीर्घकल्पना के पश्चात् आप "क्रमविरोध" आदि की दुर्घट घाटियों को तय करके यह निश्चय निकालते हैं कि "वृक्षादि" पद प्रक्षिप्त है। यह तो (वंशाल्लद्‌वाकर्षणोदाहरण मनुहरणमेतच्छ्रीमताम्) खोदा पहाड़ और निकला चूहा। और वह भी अधमुआ अतः "वृक्षादि" पद को प्रक्षिप्त कह कर "ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका" में के "साशनानशने" पद के भाष्य में से "पृथिव्यादि" पद के "आदि" पद से वृक्षों का ग्रहण करके, एवं उनकी जड़ता सिद्ध करके, सत्यार्थप्रकाश के इस प्रकरण से हमारे दिये गये "पूर्वापरविरोध" का परिहार आप नहीं कर सकते। सो महाराज ! भूमिका में "वृक्ष" आदि का ग्रहण न कर जल—वायु आदि का ग्रहण करना चाहिए—अन्यथा आपके पक्ष में मेरी ओर से दिए गए "पूर्वापरविरोध" का परिहार नहीं हो सकेगा इस लिए यही मानना चाहिए कि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज, वृक्षों में अवश्य "अभिमानी" जीव को मानते हैं।

"साइंस"—के अनुसार ही यदि आप Soul (आत्मा) और Life (प्राण) को मानते है तो पशुओं में भी आपको Life (प्राण) ही मानना चाहिए क्योंकि साइंटिस्ट लोग पशुओं में Soul (आत्मा) को नहीं मानते। अतएव पशुओं के मारने में हिंसा भी नहीं माननी चाहिए। परन्तु ऐसा मानने के लिए आप कभी भी तैयार नहीं हैं। यदि आप वृक्षों में साइंस के अनुसार तो "प्राण" मानें और पशुओं में (साइंस के विरुद्ध) आत्मा मानें तो यह "अर्धजरतीय" न्याया-चरण आपको शोभा नहीं देगा अतः वृक्षों में Life प्राण मात्र मानकर और उसका परमात्मा की "हरकते इन्तजामी" से चलना मानकर आप वृक्षों में जीव का अभाव सिद्ध नहीं कर सकते। क्योंकि "प्राण" बिना "जीव" के हो ही नहीं सकता। परमात्मा की हरकते-इन्तजामी तो सभी जगह मानी ही जाती है, मनुष्य के शरीर में भी तो परमात्मा की ही हरकते-इन्तजामी से "प्राण" चलते हैं। यदि जीवात्मा के ही अधीन प्राण हों तो मरते समय वह प्राणों को कभी भी न निकलने दे। अतः "येन प्राणन्ति विरुद्धः जीवन्ती मोषधीम्" इन मन्त्रों में लताओं आदि का प्राण धारण करना, बिना जीव के उत्पन्न ही नहीं हो सकता अतः वृक्षों में जीव का अपलाप कर, केवल हरक़ते इन्तजामी से काम नहीं चल सकता। क्योंकि प्राण बिना जीव के कभी रह ही नहीं सकता "आत्मा" का नाम ही जीव इसीलिए है कि यह प्राण धारण करता है देखो ! श्री महर्षि "पाणिनि" जी महाराज "जीव-प्राणने,, लिखते हैं कि जीव धातु प्राणन् (श्वास लेना रूप) अर्थ में है। और वृक्षों में प्राण आदि का होना पहले कही गई श्रुति और स्मृति द्वारा सिद्ध है—आप की "साइंस" भी इन में Life (प्राण) को मानती है। यदि इन्हें "नाइटरोजन" न मिले तो ये सूख जायें। अतः प्राण की सत्तां, जीव की सत्ता की साधिका है।

"वेदान्त सूत्र" में "मुख्य" और "गौण" जीव पर कोई विचार नहीं है, वहाँ तो "पञ्चाग्निविद्या" के प्रकरण पर विचार है। तथा, आपने जो मेरी पेश की हुई श्रुति पर, "गौण-प्राणन" मान कर आक्षेप किया था और उस में जो हेतु दिया था उस सबका निराकरण में कर चुका हूँ। अतः "श्रुति" तथा "छान्दोग्योपनिषत्" और "मनुस्मृति" के प्रमाण से यह मानना चाहिए कि "वृक्षों में जीव है"। अन्यथा आपको बताना चाहिए कि, जिस प्रकार, बिना कारण के, मन्त्रों में "सामान्य गति" का आश्रयण आप करते है ऐसे ही आपके "साशनानशने" पद के भाष्य में "पृथिव्यादि" पद में "आदि" पद से गृहीत वृक्षादि में "गौण जड़ता" (बहिः संज्ञत्वाभावात्मिका) क्यों न मानी जाय ? यह कहाँ का न्याय है कि मेरे पक्ष के हेतु को तो "गौणता" की उपाधि से उड़ा दिया जाय और आपका सोपाधिक-हेतु उसी गौणता से बचा रहे।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी —

"छान्दोग्योपनिषत्" के "अस्य सोम्य महतो वृक्षस्य" इत्यादि मन्त्र के प्रमाण से, जो वृक्षों में जीव का होना सिद्ध किया गया है, वह ठीक नहीं है, क्योंकि यहां "वृक्ष" शब्द का अर्थ "शरीर" है, "पेड़" नहीं। "द्वा सुपर्णा" इत्यादि मन्त्र में "वृक्ष" शब्द का अर्थ "शरीर" सही किया गया है, "वृक्ष" शब्द "ओवृश्व छेदने" धातु से बना है अर्थात् (अविद्या कार्यत्वात्तत्वज्ञानादिना छेदनयोग्यं शरीरमिति) "वृक्ष" नाम शरीर का है क्योंकि तत्वज्ञान आदि से छेदन किया जा सकता है। दूसरा हेतु यह है कि इस श्रुति में "म्रियते" पद आया है, वृक्ष के लिए "म्रियते" (मरना) पद कहीं नहीं आता। प्रत्युत शरीर के लिए ही "म्रियते" पद का प्रयोग होता है, "जीवात्मा" के लिए भी "म्रियते" पद नहीं आ सकता क्योंकि जीव "नित्य" है। इस लिए "अस्य सोम्य महतो वृक्षस्य" इस श्रुति से, "वृक्ष" शब्द शरीरपर्याय होने से, वृक्षों में जीव का होना सिद्ध नहीं हो सकता।

"सत्यार्थप्रकाश" में भी "वृक्षादि" पद प्रक्षिप्त है क्योंकि वहाँ "वृक्षादि" पद के होने से लेख का क्रम टूट जाता है, क्योंकि "ईश्वर ने किन्हीं जीवों को मनुष्य जन्म, किन्हीं को सिंह आदि क्रूर जन्म, किन्हीं को हरिण गाय आदि पशु, "किन्हीं को" "वृक्षादि"—इतने पाठ के पश्चात् पहली लेख प्रणाली के अनुसार, "कृमि कीट पतंगादि"— इस लेख के पूर्व "किन्हीं" को ऐसा पाठ अवश्य आना चाहिए था परन्तु ऐसा पाठ है नहीं, और विचार करने से ऐसा प्रतीत होता है कि "वृक्षादि" शब्द के पूर्व, जो, "किन्हीं को"—पद आया है वह कृमिकीटपतंगादि" पद से पहले था और जब "वृक्षादि" पद के मिला देने से वह ("किन्हीं को पद") उससे दूर जा पड़ा! अतः लेखशैली, तथा पूर्वोक्त (आर्थिक) क्रमविरोध तथा भूमिका के "साशनानशने" पद के भाष्य से विरुद्ध होने के कारण यह "वृक्षादि" पद प्रक्षिप्त है। क्योंकि यहाँ पृथक् अनमेल सा होने से खटकता है, अतः "सत्यार्थप्रकाश" के इस लेख से वृक्षों में जीव का होना सिद्ध नहीं किया जा सकता और न भूमिका के "साशनानशने" पद के भाष्यान्तर्गत "पृथिव्यादि, पद के "आदि" पद से लिए गए "वृक्षआदि" का अर्थ के कारण, पूर्वापरविरोध हो सकता है।

एवं ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, में जो आप वृक्षआदि की "गोण" जड़ता की कल्पना करते हैं कि जड़ता से अभिप्राय "बाह्य ज्ञानाभाव" क्यों न लिया जाय वह भी ठीक नहीं है क्योंकि वहाँ "जीवसम्बन्धरहितम् जड़म्" यह जड़ का लक्षण कर दिया गया है, "लक्षण" में गौणकल्पना नहीं हो सकती, क्योंकि लक्षण में औपचारिक (गौण) पद नहीं रखे जाया करते औपचारिक पद तो सामान्य बोल चाल आदि में ही हुआ करते हैं जैसे कहा जाए कि" "ज्वालापुर आ गया, यहाँ "ज्वालापुर-नगर" जड़ वस्तु है उसमें "आना" रूप क्रिया नहीं हो सकती। "अतः उसका गौण अर्थ यह लिया जाता है कि हम ज्वालापुर में आ गये" अतः वृक्षों की जड़ता से कोई गोण अर्थ नहीं लिया जा सकता क्योंकि यहाँ लक्षण कर दिया गया है कि हमारा (स्वामी दयानन्द जी का) अभिप्राय "जीवाभाव" से है तो यह बात अर्थात् सिद्ध हुई कि "जीवाभाव" से अतिरिक्त किसी अन्य अर्थ—की कल्पना वहां नहीं कर सकते, अब यह बात स्पष्ट हो गई कि पृथिव्यादि जीव से रहित हैं और इसे आप भी मानते है अन्यथा पृथिव्यादि में भी आप को जीव मानना पड़ेगा जो कि आपके मतानुरूप नहीं है। अतः भूमिका से विरोध न आने पाये इसलिए सत्यार्थप्रकाश में से "वृक्षादि" पद को निकाल डालना चाहिए!

तथा प्रशस्तपादभाष्य" में शरीर, इन्द्रिय और विषय के पृथक् पृथक् माने जाने से, "विषय" जो वृक्ष आदि हैं वे "शरीर" नहीं हो सकते। भोग का आश्रय ही "भोग्य" नहीं हो सकता। वृक्षआदि को यदि जीव से युक्त माना जाएगा तो वृक्षआदि, स्वाभिमानी जीव के शरीर होगें, ऐसी दशा में "वृक्ष" भोग का आश्रय "शरीर" हुआ—वह "भोग्य" क्यों कर हो सकता है? जैसे कि मनुष्य का "शरीर" "विषय" नहीं हो सकता, फिर चाहे वह (शरीर) पार्थिव ही क्यों न हो जैसे कि "विषय" पार्थिव हैं। परन्तु श्री कणाद के भाष्यकार श्री प्रशस्तपादाचार्य वृक्षों को भोग्य (विषय) कह रहे हैं, "विषय" भोक्ता के भोगने के लिए होते हैं, यदि वृक्षों में तदभिमानी जीव मानकर, उनको शरीर माना जाएगा,

तो वह जीव उसी शरीर को "भोग्य" कर जाय—इस प्रकार की कल्पना सर्वथा असमंजस है अतः यही निश्चय है कि "वृक्ष" विषय हैं अतएव जड़ हैं अर्थात् जीव-सम्बन्ध से रहित हैं।

वेदान्त में "पंचाग्निविद्या" का प्रकरण नहीं है, वहाँ तो यह कहा गया है कि "व्रीहिआदि में" अनुशायी (?) "जीव" संसर्गमात्र को प्राप्त होते हैं। और "छान्दोग्योपनिषद्" के "अस्य सोम्य महतो वृक्षस्य" इत्यादि भाग पर भाष्य में श्री शंकराचार्य जी लिखते हैं कि :—

"बौद्धमते स्थावराश्चेतनाः, कणादमते तु स्थावरा जड़ाः (?)"

अर्थात् बुद्धानुयायियों के मत में स्थावर (वृक्षादि) चेतन हैं और कणाद के मत में स्थावर जड़ हैं, इससे यह बात स्पष्ट है कि शंकराचार्य, आस्तिक कणाद के मत को स्वानुकूल होने से स्वीकार करते हैं और बौद्ध मत का खण्डन करते हैं। क्योंकि वे (बौद्ध लोग) नास्तिक थे, अतः वेदान्त सूत्र भाष्य तथा छन्दोग्योपनिषद भाष्य में श्री शंकराचार्य जी भी वृक्षों में जीव के अभाव को मानते हैं।

श्री पण्डित गणपति शर्मा जी—

यद्यपि यह बात सत्य है कि : "द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं "वृक्षं" परिषस्वजाते तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति"। तथा-समाने "वृक्षे" पुरुषों निमग्नो नीशया शोचति मुह्यमानः जुष्टं यदा पश्यत्यन्य-मीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः" ॥

इत्यादि मन्त्रों में "रूपकालंकार" होने के कारण "वृक्ष" शब्द का अर्थ "देह" ले लिया जाय क्योंकि यहाँ "जीवात्मा" तथा "परमात्मा" के तत्व का निरुपण उनको दो पक्षियों के समान मानकर किया गया है। जैसे पक्षी वृक्ष पर बैठते हैं और उनके (पिप्पल) फल को खाते हैं ऐसे ही जीव और परमात्मा रूपी पक्षियों के लिए "उच्छेदन-सामान्य" से। अर्थात् जैसे छेदन से, नष्ट हो जाने के कारण पेड़ का नाम "वृक्ष" है वैसे ही "देह" भी तत्वज्ञान से नष्ट (छिन्न) हो जाता है, अतः छेदनरूप-समानधर्म्मवान् होने के कारण "देह" के लिए यहाँ "वृक्ष" शब्द का प्रयोग हुआ है। "देह" वृक्ष रूप है। और इसीलिए "पिप्पल" शब्द, भोग्य के समान होने के कारण कर्मों के शुभाशुभ फलों के अर्थ में माना जाता है परन्तु "अस्य सोम्य महतो वृक्षस्य" इस श्रुति में कोई ऐसा कारण प्रतीत नहीं होता कि, क्यों यहाँ भी "वृक्ष" शब्द का अर्थ "शरीर" लिया जाय? यह कोई दलील नहीं कि एक स्थान में कारण विशेष से एक शब्द, अमुक अर्थ में आ गया अतः सर्वत्र उसी अर्थ में उसे माना जाय ऐसा मानने से सर्वत्र अव्यवस्था तथा अनाश्वास हो जाएगा। और प्रत्येक स्थान में, आप स्वरस अर्थ को छोड़कर "गौण" कल्पना करते हैं, कहीं "प्रक्षेप" का अड़ंगा लगा देते हैं, क्यों नहीं स्वरस अर्थ को स्वीकार कर सीधी कल्पना का अवलम्बन करते? जब "वृक्ष" शब्द का मुख्य प्रयोग "पेड़" के लिए सर्वलोक में किया जाता है तो बिना कारण, क्यों गौण कल्पना तक दौड़ने का परिश्रम उठाया जाए? एक क्षणभर के लिए यदि "वृक्ष" शब्द का अर्थ यहाँ बिना किसी कारण के आपके अनुरोध मात्र से, "शरीर" ही मान लिया जाए तो आप ही फिर बताइये कि —

"अस्य सोम्य! महतो वृक्षस्य मूले भ्याहन्यात्, मध्येऽभ्याहन्यात्, अग्रेऽभ्याहन्यात्, पेपीयमानो मोदमान-स्तिष्ठति एकांशाखां जहात, द्वितीयां तृतीयां... सा......... शुष्यति सर्वं शुष्यति।

इत्यादि में शेष "वृक्ष" पेड़ सम्बन्धी अंगों का क्या हाल होगा? इन बेचारों की क्या गति होगी? इनके वृक्ष। "शरीर" का अर्थ मानकर मूल (जड़), मध्य, अगला भाग शाखा (टहनी), एक शाखा, दूसरी शाखा, तीसरी शाखा सब शाखाएं, उन शाखाओं का सूखना, सारे "वृक्ष का सूखना" आदि शब्दों के झटपट स्फुरण होने वाले स्वरस अर्थ को छोड़ कर कहाँ तक गौण-कल्पना के लिए अन्ध्यं-शिरः कपाल को परिश्रान्त करेंगे।

और आप यह जो कहते हैं कि "वृक्ष" के लिये म्रियते (मरना) शब्द का प्रयोग नहीं होता और शरीर के लिए "म्रियते" प्रयोग होता है अतः "वृक्ष" शब्द का अर्थ शरीर, लेना चाहिए—यह भी आपका कहना ठीक नहीं है—यहाँ "म्रियते" पद शरीर के लिए आया ही है—पर, ऐसा नहीं, जिस प्रकार कि आप जोड़ तोड़ कर रहे हैं—उपनिषद् के सब प्रकरण को देखिए।

"भूय एव मा भगवान् विज्ञापयत्विति, तथा सोम्येति होवाच"

श्री आरुणि उद्दालक जी महाराज स्वपुत्र "श्वेतकेतु" को नाना प्रकार के दृष्टान्तों से "आत्म ज्ञान" के लिए उपदेश कर रहे हैं, श्वेतकेतु नहीं समझता और बार-बार कहता है कि भगवान मुझ को फिर बतावें कि आत्मा कैसे नित्य है और शरीर कैसे अनित्य है? पिता कहते हैं कि "सोम्य"! (दृष्टांत से समझाते हैं) "अस्य सोम्य! महतो वृक्षस्य" इत्यादि आरम्भ करके "सर्व जहाति सर्वः शुष्यति" जहां तक वृक्ष का दृष्टांत देकर दार्ष्टान्त वाक्य से उपसंहार करते हैं कि :—

"एवमेव खलु सोम्य विद्धीति होवाच, जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते न जीवो म्रियते इति"

इसी प्रकार। जैसे कि वृक्ष की दशा वर्णन की गई। हे सोम्य! जीव से वियुक्त होकर यह शरीर मर जाता है, जीव नहीं मरता" परन्तु आप दृष्टान्त तथा दार्ष्टान्तवाक्य को, सब एकमय (?) करके यह समझ रहे हैं कि यह "मरना" भी ऊपर आए "वृक्ष"। जिसका अर्थ आप "शरीर" मान बैठे हैं। के लिए ही प्रयुक्त हुआ है—हालांकि "म्रियते" पद दृष्टान्त में कहे गये वृक्ष के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ यदि ऐसा होता तो "जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते" न होता किन्तु "जीवापेतो वाव किलायं म्रियते" ऐसा पाठ होता जैसे कि ऊपर "सर्वःशुष्यति" में हुआ है क्योंकि वृक्ष शब्द पुंल्लिग है। उसके विशेषण भी पुंल्लिग में ही होने चाहिए थे। और कदाचित आप नहीं मानते और सर्वथा पाठ की अवहेलना तथा पूर्वाचार्यों की व्याख्या का निरादर कर स्वतन्त्र जोड़ तोड़ किए बिना नहीं सन्तुष्ट होते तो हम यह सिद्ध करते हैं कि वृक्षों के लिए भी "मरना" शब्द का प्रयोग होता है, देखिए! लोक में बोलते हैं कि "फ़सल मारी गई" खेती मारी गई"। तथा रघुवंश में देखिए!

अथवा मृदु वस्तु हिंसितुं मृदुनैवारभते प्रजान्तकः।
हिमसेकविपत्तिरत्र मे नलिनी पूर्वनिदर्शनं मता॥ (रघुवंश, १-८-४५)

इसकी टीका में "मल्लिनाथ" लिखते हैं :—

"अत्रार्थे हिमसेकेन तुषारनिष्यन्देन विपत्ति—र्मृत्युर्यस्याः सा तथा नलिनी पद्मिनी मे पूर्वं प्रथमम् निदर्शनमुदाहरणं मता"—

अत; संस्कृत भाषा में भी वृक्षों के लिए "मृत्यु" शब्द का प्रयोग आता है। अतः चूंकि, वृक्षों के लिए "म्रियते" पद का प्रयोग हो नहीं सकता इस लिए यहां "वृक्ष" शब्द का अर्थ पेड़ भी नहीं हो सकता" ऐसा आप नहीं कह सकते तथा जो आप श्री कणाद तथा श्री प्रशस्तपादाचार्य्य के सिद्धांत का उपन्यास कर श्रुति, स्मृति तथा श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के लेखों में मुख्यार्थ को छोड़ कर, गौण कल्पना तथा प्रक्षेप आदि प्रपञ्च रचते हैं वह ठीक नहीं है। क्यों कि श्रुति तथा श्रुत्यनुसारी स्मृति-वचनों से विरुद्ध होने के कारण, "कणादस्मृति" हेय (त्याज्य) है। यदि आप स्मृति के बल से। "वैशेषिकदर्शन" स्मृति ही है। काणादमत की स्थापना करेंगे तो हम भी मानवमत को स्मृतरूप से प्रत्यवस्थापित करेंगे। ("स्मृत्यनवकाशदोषप्रसंग इति चेन्नान्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रसंगात्") (वेदान्तसूत्र) का यही भाव है। इन दोनों में से एक को अवश्य मानना होगा और दूसरी को अवश्य छोड़ना होगा दोनों विरुद्ध ज्ञान की समर्पित होने से अंगीकार्य्य नहीं हो सकतीं। अतः श्रुति के अनुकूल होने के कारण मनु का पक्ष ग्राह्य है और श्रुति-विपरीत काणादमत अनुपादेय है। सो महाराज! वेदविरुद्ध काणादमत के बल पर, आप हम पर आक्षेप नहीं कर सकते। तथा छान्दोग्योपनिषद्-शांकरभाष्य में से "बौद्धमते स्थावराश्चेतनाः, काणादमते तु स्थावरा जड़ाः (?)। यह विचित्र पाठ सुनाकर मनमानी कतरव्योंत कर रहे हैं, देखिये! यहां का ठीक पाठ और उसका अर्थ—

"वृक्षस्य रसस्रवणशोषणादिलिङ्गाज्जीववत्त्वं दृष्टान्तश्रुतेश्च चेतनावन्तः स्थावरा इति, बौद्धकाणादमतम-चेतनाः स्थावरा इत्येतदसारमिति दर्शितं भवति" । इस शांकरभाष्य पर श्री आनन्दगिरीकृतटीका भी देखिये—

"यत्तु वैशेषिकवैनाशिकाभ्यां स्थावराणां निर्जीवत्वेनाचेतनत्वमुक्तं,तदेतन्निरस्तमित्याह-वृक्षस्येति । "आदि"—शब्दो वृद्धिमोदादिसंग्रहार्थः । "स एव वृक्षां जीवेनाऽत्मनाऽनप्रभूत" इति दृष्टान्तश्रुतिः ।।२।।

इसका अर्थ भी सुनिये—रस के टपकने और सूखने आदि हेतुओं से वृक्षों का जीववान् होना और दृष्टान्त-श्रुति से, स्थावर, चेतना वाले हैं (यह बात सिद्ध हुई,) (इतिहेतोरित्यर्थः) इस लिए, बौद्धों और काणादों का मत, कि स्थावर अचेतन (जड़) हैं यह बात "असार" (सारहीन-झूठ) है अथपित्या दिखा दी गई" । आनन्दगिरिकृतटीका का अर्थ भी देखिये—"वैशेषिक" अर्थात् बौद्ध आदि नास्तिक लोग, जो यह कहते हैं कि "जीव से रहित होने के कारण स्थावर अचेतन हैं"—यह बात खंडित हो गई अतः भाष्यकार कहते हैं "वृक्षस्य" इत्यादि, (मूल में) । भाष्य के "शोषणादि" पद में जो आदि पद है उससे वृद्धि और मोद (प्रसन्नता) आदि समझना । " स एव वृक्षों जीवेनात्मनानप्रभूतः"—यह "दृष्टा-न्तश्रुति" है । इस प्रकार शांकर भाष्य का यह ठीक पाठ तथा अर्थ, हमने खोल दिया है—आप जो पाठ सुनाते हैं वह, "पाठ" न जाने, कहा का है ? इसी प्रकार आप सब स्थानों में प्रमाणाभास तथा युक्त्याभास से, न जाने, क्यों प्रेम रखते हैं ? वेदान्तदर्शन के अध्याय ३ के प्रथमपाद में "पञ्चाग्निविद्या" सम्बन्धी नानाविचार हैं—उसमें से यह छटा अधिकरण है जिसे आप मनचाहा नोच घसीट रहे हैं—प्रथम तो "अनुशयी" शब्द है, "अनुशायी नहीं" । जिसका अर्थ है "अनुशय-वाले ।" "अनुशय" कर्म को कहते हैं । इसी पाद में **"कृतात्ययेऽनुशयवान् दृष्टस्मृतिभ्यां यथेतमनेवं च"** इस सूत्र में यह निश्चयकर चुके हैं कि "जो लोग "चन्द्रलोक" में जाते हैं, क्या वे अपने सब कर्मों के फल को भोग कर "भूलोक" पर उतरते हैं या कुछ कर्म (शेष) साथ लेकर उतरते हैं ? इस प्रकार आशंका करके वहां यह निर्णय किया है कि "कृतात्यये" अर्थात् उन कर्मों के । जिनके कारण कि "चन्द्रलोक" में जाते हैं । फल की समाप्ति पर "अनुशयवान्" अर्थात् और कर्मों से युक्त" । **चन्द्रलोकप्राप्तिनिमित्तककर्मेतर-कर्मवन्त इतिभावः** । ही उतरते हैं—इत्यादि । फिर इस छटे अधिकरण में यह विचार है कि वही "अनुशयी" । अनुशायी (?) नहीं । जीव जो कि चन्द्रलोक से अवरोहण कर रहे हैं क्या **"तइह व्रीहि-यवा औषधिवनस्पतयस्तिलमाषा इति जायन्ते"** इस श्रुति का यह अभिप्राय है कि वे जीव, व्रीहि (धान) औषधि आदि की जाति "जन्म" को प्राप्त हो जाते हैं या इन (वनस्पति आदि) से सम्बन्ध मात्र रखते हैं ? इस प्रकार सन्देह करके, पूर्वपक्षी की ओर से यह कह कर कि "धान आदि की योनि को प्राप्त होते हैं ऐसा मानना चाहिए"-निश्चय करते हैं कि **"अन्याधिष्ठितेषु पूर्ववदभिलापात्"** । अन्य जीवों से अधिष्ठित व्रीहि आदिकों में अनुशयी । अर्थात् "अनुशय" (कर्म) वाले जीवों का सम्बन्धमात्र होता है ।" परन्तु आप इस भाष्य के विपरीत "अनुशयी" का "अनुशायी" बनाकर, उसका मनमाना अर्थ बताते हैं । जो किसी शास्त्रकार ने नहीं माना और देखिये, सूत्र में "अन्याधिष्ठितेषु" पद साफ़ साफ़ बता रहा है कि "व्रीहिआदि" अन्य जीवों से अधिष्ठित होते हैं अर्थात् अन्य जीव, व्रीहिआदि के अधिष्ठाता (अभिमानी जीव) होते हैं जैसे हम अपने-अपने शरीर के अधिष्ठाता हैं । अतः आप यह किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं कर सकते कि श्री शंकराचार्य या श्री व्यास जी महाराज वृक्षों में "जीव" नहीं मानते थे, प्रत्युत यह बात निर्विवाद है कि ये दोनों ही अत्यनुकूल होने से वृक्षों में अधिष्ठित्-(अभिमानी) जीव को मानते हैं ।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी—

श्री कणाद महर्षि के मत से हमने श्रुति का गौण अर्थ किया आप उसका खण्डन "रघुवंश" के प्रमाण से करते हैं—कणाद के सामने कालिदास को क्यों प्रमाण माना जाय ? साहित्य के जानने वाले "आत्म विद्या" को क्या जानें-तथा लोक भी प्रमाण नहीं माना जा सकता—लोक में तो "फसल मारी गई" ऐसे स्थानों में गौण (उपचार से) प्रयोग होता है अतः लोक में "मरना" शब्द का प्रयोग वृक्षों के लिए आता है इस लिए श्रुति में भी ठीक है यहठीक नहीं । छान्दो-ग्योपनिषद् में यदि यह मान भी लिया जाय कि शंकराचार्य ने वृक्षों में जीव का होना लिखा है तो "अन्याधिष्ठितेषु पूर्वव-दभिलापात्" के भाष्य से विरुद्ध होने के कारण अप्रमाण है क्योंकि शंकराचार्य अशुद्धि (ग़लती) या विरोध कर सकते थे, वे ऋषि नहीं थे । "सत्यार्थ प्रकाश" के ११वें पृष्ठ में "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" का अर्थ करते हुए श्री स्वामी दयानन्द

सरस्वती जी महाराज लिखते हैं कि—"जो जगत् नाम प्राणी चेतन और जंगम अर्थात् जो चलते फिरते हैं, "तस्थुषः" अप्राणी अर्थात् स्थावर, जड़ पदार्थ पृथिवी आदि हैं"—इत्यादि प्रमाण से यह बात स्पष्ट है कि श्री स्वामी दयानन्द जी स्थावरों को जड़ मानते थे। तथा "सत्यार्थप्रकाश", के २२१ वें पृष्ठ में "कहीं-कहीं जड़ के निमित्त से जड़ भी बन और बिगड़ भी जाता है-जैसे परमेश्वर के रचित बीज पृथिवी में गिरने और जल पाने से वृक्षाकार हो जाते हैं" इत्यादि प्रकरण में भी जड़ बीज से उत्पन्न वृक्षों को जड़ ही मानते हैं। क्योंकि यहां जड़ पृथिवी और जड़ जल के निमित्त से, जड़ बीज का वृक्षाकार होना लिखते हैं। अतः इन दो प्रमाणों से यह बात सिद्ध है कि वृक्षों में से जीव नहीं है, इन कारणों से भी सत्यार्थ-प्रकाश के २३५वें पृष्ठ में से "वृक्षादि" पद प्रक्षिप्त है ऐसा प्रतीत होता है। पहले कही गई युक्तियों और इन दो प्रमाणों के विरुद्ध होने के कारण "वृक्षादि" पद को निकाल डालना चाहिए। वेदान्तदर्शनभाष्य में पूर्व पक्ष प्रमाण नहीं माना जा सकता आप पूर्वपक्ष पढ़ते हैं—उत्तरपक्ष प्रमाण है। १७६ स्थानों में मिलेगा कि वृक्षों में जीव नहीं है!

श्री पंडित गणपति शर्मा जी—

श्री शंकराचार्य के लेख में पूर्वापर-विरोध नहीं हो सकता, जिस मनमाने पाठ के बल पर आप विरोध दिखा रहे हैं-वैसा पाठ ही कहीं नहीं हैं, ऐसा विरोध केवल "वन्ध्यापुत्र" से "राम" के विरोध के समान है। वेदान्तदर्शन के अवरोहण प्रकरण की स्पष्ट व्याख्या करने पर भी यदि आप नहीं मानते तो इसका क्या किया जाय? और न इसका आप कुछ खण्डन करते हैं। आप कहते हैं कि "कालिदास तथा मल्लिनाथ का लेख प्रमाण नहीं हो सकता वे आत्मविद्या को क्या जानें"-हम आप से कहते हैं कि आप श्री शंकराचार्य का प्रमाण देते हैं वे भी प्रमाण नहीं होने चाहिए क्योंकि आर्यसामाजिक उन्हें भी तो ऋषि नहीं मानते! यदि आप शंकराचार्य के लेख को प्रमाणरूप से पेश करेंगे तो कोई वजह नहीं कि मल्लिनाथ जैसे षड्दर्शन के तत्ववेत्ता को प्रमाण न माना जाय-देखिये वे अपनी "विद्यापारदृश्वता" के विषय में कैसा अच्छा लिखते हैं—

"वाणी काणभुजीमजीगणद्वाशासीच्च वैयासिकी, मन्तस्तन्त्रमरंस्त, पन्नगगवीगुम्फेषु चाजागरीत। वाचामाकलयद्रहस्यमखिलं यश्चाक्षपादस्फुरां, लोके भूद्यदुपज्ञमेव विदुषां सौजन्यजन्यं यशः। मल्लिनाथकविः सोयमि-त्यादि.........।"

अर्थ—"जो (मल्लिनाथ) कणाद की वाणी (वैशेषिकदर्शन) जो जान चुका है और जो व्यास की वाणी (वेदान्तदर्शन) की शिक्षा पा चुका है। "तन्त्र" शास्त्र। (मारण, मोहन, उच्चाटन आदि विद्या के प्रतिपादक शास्त्र) में जो रमण कर चुका है। जो श्री पतञ्जलि के महाभाष्य में जागरूक (ख़बरदार) है अर्थात् जिसको "महाभाष्यान्त" व्या-करण स्मरण है। जो गौतम के बनाये न्यायशास्त्र के सम्पूर्ण तत्त्व को जानता है। विद्वानों के, "सौजन्य" से उत्पन्न यश का जो उपज्ञाता (ईजादकुनिन्दा) ध्यूरिएस्ट है। वह कवि (शायर) मल्लिनाथ इत्यादि"—इस प्रकार गुणगणसमन्वित महाविद्वान की बात को यों टाल देना—कि "ऋषि नहीं-यह नहीं-वह नहीं," ठीक नहीं! हम और आप लोगों की अपेक्षा वह महापण्डित था। "सत्यार्थ प्रकाश पृष्ठ २११" में बीज को जड़ कहा है—न कि वृक्ष को अभिमानी जीव से शून्य। मनुष्य, पशु आदि के शरीर भी तो "जड़-रजोवीर्य" से ही बनते हैं! अतः मनुष्य भी जड़ हैं, ऐसा नहीं कह सकते-एवं जड़ बीज से उत्पन्न वृक्ष चेतनात्मा से अधिष्ठित नहीं हैं, यह नहीं कह सकते। सत्यार्थ प्रकाश-पृष्ठ ११ में स्थावर से जड़ पृथिवी जल आदि लिए गये हैं न कि वृक्ष आदि। क्योंकि "स्थावर" पद का अर्थ स्थिर रहने वाला" है! अत एव स्थिर रहने वाले पृथिवी आदि पंचमहाभूत तथा वृक्ष आदि हैं—इसी कारण से कि यहां स्थावर शब्द से वृक्ष आदि का ग्रहण भी लोग न कर लें अतः "जड़,, विशेषण दिया है वरना पृथिवी आदि जड़ होते ही हैं यह लिखने की क्या आवश्यता थी?

इतने विचार के पश्चात दो बार श्री स्वामी जी तथा एक बार श्री पंडित जी बोले। परन्तु कोई नई बात न होने के कारण उन भाषणों के नोट यहां नहीं लिए गए। पहली ही बातों को दुहराया गया था। इस प्रकार एक घंटा के पश्चात् ११ बजे सभा बन्द हुई।

"इति पूर्वान्हिकम्"

अथोत्तराह्णिकम्

मध्याह्नोत्तर तीन बज कर १० मिनट पर पुनः विवाद प्रारम्भ हुआ। श्री पण्डित गणपति शर्मा जी ने प्रातःकाल के अपने सब प्रमाणों की संगति ठीक की, सभा को भूतपूर्व विवाद का वृतान्त संक्षेप से सुनाया। और "अन्याधिष्ठितेषु पूर्ववदभिलापात्"—सूत्र के "शारीरक" भाष्य का व्याख्यान सुना कर स्वपक्ष का इस प्रकार उपसंहार किया कि श्री शंकराचार्य जी महाराज वृक्षों में अभिमानी जीव (सुखदुःख का भोक्ता) मानते थे। तदनन्तर श्री स्वामी दर्शनानन्द जी ने अपने भाषण को प्रारम्भ किया।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी—

पण्डित जी ने अथर्ववेद के जो दो मंत्र प्रमाणरूप से वर्णन किए—उनका उत्तर सामान्य तथा विशेष-प्राणन की व्याख्या से दे चुका हूँ। अर्थात मैं यह बता चुका हूँ कि वहाँ ओषधी आदि के जीवन से तात्पर्य्य सामान्य जीवन से है। जैसे चाँद सूर्य आदि पदार्थ परमात्मा की "हरकते-इंतजामी" से ही गति (हरकत) करते हैं, ऐसे ही परमात्मा की सामान्य-नियामिकाशक्ति से वृक्ष आदि प्राण धारण करते हैं, किसी "अभिमानी" जीव की विशेषशक्ति से नहीं। और कि यह सामान्यगति का आश्रयण प्रकरण के अनुकूल है प्रतिकूल नहीं।

तथा जिस जिस योनि में जीव की स्थिति मानी जाय, वहाँ इस बात का विचार अवश्य करना चाहिए कि वह "कर्मयोनि" है या "भोगयोनि"!

उभययोनि-विचार से यह बात स्पष्ट हो सकती है कि इस योनि में जीव है या नहीं, क्योंकि जीव अपने शुभाशुभकर्मों के फलों को भोगने तथा नये कर्मों को करने के लिए ही शरीरादिसाधनात्मक योनियों को प्राप्त होता है। यदि मान लें कि जीव अपने बुरे कर्मों के कारण स्थावर (वृक्ष) भाव को प्राप्त होता है तो स्थावरों को "कर्मयोनि" या "भोगयोनि" में नहीं मान सकते। "कर्मयोनि" इस लिए नहीं कह सकते कि मनुष्ययोनि के अतिरिक्त और कोई कर्मयोनि संसार भर में नहीं है यह सर्वसम्मत बात है। यद्यपि मनुष्ययोनि में भी भोग होता है, तथापि मनुष्ययोनि कर्मप्रधान होने से "कर्मयोनि" ही मानी जाती है। भोग तो केवल (कर्म के साधनरूप) शरीर की रक्षा के लिए हैं। यद्यपि "कुर्वंते कर्म भोगाय कर्म कर्त्तुञ्च भुञ्जते" कर्म भोग के लिए करते हैं यह लोकोक्ति हैं, तथापि यह मनुष्यशरीर भोग की खातिर नहीं मिला है किन्तु यह शरीर कर्म करने के लिए ही मिला है। भोग आनुषङ्गिक है— "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतसमाः" इत्यादि श्रुति तथा "कर्मयोग" और "ज्ञानयोग" की प्रतिपादिका गीता का यही तात्पर्य है। अतः मनुष्ययोनि से भिन्न वृक्षआदिकयोनियों को (अभ्युपगमवाद से कहा जाता है, "लेखक") "कर्मयोनि" में नहीं मान सकते। तथा कर्म के साधन कर्मेन्द्रिय तथा ज्ञानेन्द्रियों के न होने से भी वृक्ष को कर्मयोनि में नहीं मान सकते। भोगयोनि वाले भी वृक्षआदिक नहीं हो सकते। क्योंकि भोग का साधन कोई इंद्रिय वृक्षों के पास नहीं है। तथा हर दो (कर्म तथा भोग रूप) योनियों में होने वाले अवस्थाकृत-लक्षण वृक्षों में नहीं घट सकते, क्योंकि हर एक योनि में जीव की (जागरित, स्वप्न तथा सुषुप्ति-रूप) तीन अवस्थाएँ होती है। यदि वृक्षों में जीव मान लिया जाए तो बताना चाहिए कि जागरितआदि तीनों अवस्थाएं क्यों कर, इनमें घट सकती हैं? "इन्द्रियार्थोपलब्धिर्जागरणम्" जिस अवस्था में इन्द्रियों द्वारा पदार्थों का अनुभव होता है उस अवस्था को "जागरण" कहते हैं—सो वृक्षों में इन्द्रियों के न होने से जागरणभाव सुतरां सिद्ध है जब जागरित-अवस्था ही नहीं तो "स्वप्न" अवस्था भी नहीं हो सकती—"जागरितसंस्कारजः प्रत्ययः सविषयः स्वप्नः" जागरित-अवस्था के संस्कारों से जन्य जो विषयों के सङ्कित प्रतीति (ज्ञान) होती है, उसे "स्वप्न" कहते हैं। जब "जागरित" ही नहीं तो बेचारे पेड़,

स्वप्न क्या देखेंगे ? एवं "सुषुप्ति" दशा भी वृक्षों में नहीं कह सकते क्योंकि "सुषुप्ति" जागरित आदि की अपेक्षा से होती है—जहां जागरित आदि अवस्थाएं नहीं होती वहीं "सुषुप्ति" भी नही हो सकती। यदि कहो कि वृक्षादि "समाधि" अवस्था में हैं तो "समाधि" "वीतराग" आदि सिद्ध पुरुषों में ही होती है, पशु वृक्षादि में नहीं होती। अत: वृक्षों में जीवों की कोई बात पाई ही नहीं जाती, और न कोई ऐसा प्रमाण है कि जीव अपने किसी प्रकार के कर्मों को भोगने के लिए वृक्षों में जन्म लेता है। "मनुस्मृति" अकेली प्रमाण नहीं हो सकती। श्रुत्यनुसारिणी ही स्मृति मान्य हुआ करती है। कोई ऐसी श्रुति बतानी चाहिए जिसमें यह कहा गया हो कि जीव कर्मों के फलों को भोगने के लिए वृक्षों में जन्म लेता है।

तथा "वैशेषिकदर्शन" में स्थावरों को "भोग्य" अर्थात "विषय" माना है—विषय=भोग्य, "साधन" अर्थात् "शरीर" नहीं हो सकते !

वेदान्त-दर्शन में "अन्याधिष्ठितेषु" सूत्र का अभिप्राय अधिष्ठातृरूप अभिमानी जीव से नहीं है, किन्तु जैसे बाग का स्वामी "अधिष्ठाता" कहलाता है, वृक्षादि के अधिष्ठाता स्वामी और लोग होते हैं और उनके वे (वृक्षादि) भोग्य होते हैं, ऐसे ही अन्य लोगों से अधिष्ठित (मक़बूज़ा) व्रीहि आदि में जीवों का सम्बन्धमात्र होता है, अर्थात् वृक्षों में या वृक्षों पर अनुशायी (?) (बसेरा लेने वाले पक्षी, कीट आदि) ही होते हैं—"अभिमानी जीव" नहीं—अत: वृक्षों में जीव का होना वेदान्तदर्शन से सिद्ध नहीं हो सकता, और यदि वृक्षों में जीव हो भी, तो उस दशा में वृक्ष "चेतन" होने—और चेतन (मनुष्यादि) के चेतन (धानआदि) भोग्य होंगे किन्तु ऐसा हो नहीं सकता, क्योंकि चेतन का भोग्य चेतन ही से संसार में दृष्टिगोचर नहीं होता—तथा उन (धानआदि) के खाने में हिंसा भी होगी।

"द्वा सुपर्णा ...." इत्यादि श्रुति में रूपक है, चेतन जो जीव और परमात्मा हैं उनकी समता चेतन पक्षियों से है, जड़प्रकृति की समता "वृक्ष" भी जड़ हैं—अन्यथा कुछ भी समता होने से "रूपक" ही ठीक न हो सकेगा। क्योंकि प्रकृति की और किसी धर्मद्वारा वृक्ष के साथ समता नहीं हो सकती। और स्वामी तुलसीराम जी (मेरठनिवासी) ने भी यही अर्थ किया है, अत: इस श्रुति से भी यह स्पष्ट हुआ कि वृक्ष "जड़" हैं। अतएव श्री १०८ स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने सत्यार्थ-प्रकाश (१९४ पृष्ठ में) "कुर्वन्नेवेह कर्माणि"—इत्यादि "मन्त्र के अर्थ में, अप्राणियों" के उदाहरण में वृक्षों को लिखा है—तथाहि—

"देखो सृष्टि के बीच में जितने प्राणी अथवा अप्राणी हैं, वे सब अपने-अपने कर्म और यत्न करते ही रहते हैं—जैसे पिपीलिका आदि का सदा प्रयत्न करते, पृथ्वी आदि सदा घूमते और वृक्ष आदि बढ़ते घटते रहते हैं .." इत्यादि —

अत: श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज वृक्षों को अप्राणी मानते थे। शेष सत्यार्थ-प्रकाश का जो प्रकरण आप अपनी ओर से पेश करते हैं उसमें "मिलावट" है, आप ने विचार नहीं किया—क्योंकि हम क्रम आदि का टूटना तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के प्रमाण से विरोध, इत्यादि कारण स्पष्ट कह चुके हैं। अत: आपके प्रमाण रूप से दिए गये सत्यार्थ प्रकाश के प्रकरण में "वृक्षादि" पद मिलाया गया है, और यही प्रकरण जहाँ "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" में आया है वहाँ भी मिलावट है, देखो—ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृ०२०५ में—(सं०१९३४ की छपी हुई—लाजरस कम्पनी बनारस का प्रेस)।

"द्वे सृती अशृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्। ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च"॥ ६॥ य० अ० १९ मन्त्र ४७, इस मन्त्र के भाष्य में लिखते हैं।

(द्वे सृती०) अस्मिन् संसारे पापपुण्यफलोपभोगाय द्वौ मार्गौ स्तः। एक: पितॄणं ज्ञानिनां देवानां विदुषां च द्वितीय: (मर्त्यानाम्) विद्या विज्ञानरहितानां मनुष्याणाम्"" इत्यादि।

इस भाष्य के हिन्दी अनुवाद में पण्डित भीमसेन जी ने "दूसरा नीचमति से पशु पक्षी, कीट, पतंग वृक्ष आदि का होना"--- इत्यादि सब मिला दिया है ! जिसका मूलभाष्य में नामोनिशान नहीं है । और "सत्यार्थ प्रकाश" तथा यहाँ, दोनों स्थानों में पण्डित भीमसेन जी लिखने वाले हैं, संस्कृत श्री स्वामी जी की है । अतः आर्यभाषा में उभयत्र पण्डित भीमसेन जी की—की गई मिलावट है । अतएव अमान्य है ।

श्री पंडित गणपति शर्मा जी—

"अथर्ववेद" के दोनों मन्त्रों के विषय में स्वामी जी ने कोई नया उत्तर नहीं दिया, वही पुराना उत्तर है । मन्त्र में सामान्य प्रमाण का कोई प्रकरण नहीं है, क्योंकि इस विषय में भाष्यआदि का कोई प्रमाण नहीं दिया गया तथा अन्यान्य हेतु, जो इन मन्त्रों के अर्थों के खण्डन में वाद-प्रवाह में आये उन सब का परिहार कर चुका हूँ । स्वामी जी को वताना चाहिए कि क्यों मुख्य अर्थ का परित्याग कर गौणअर्थ का आलम्बन किया जाय ?

तथा जहाँ-जहाँ आप "योनि" मानते हैं वहाँ-वहाँ जागरण आदि दशाओं की सत्ता आवश्यक मानते हैं—यह विचार आपका ठीक नहीं है क्योंकि जागरण अवस्था उस दशा का नाम है जिस दशा में कि जीव को इंद्रियों द्वारा पदार्थों का अनुभव होता है—सो हम आपसे पूछते हैं कि जन्म से अंधा, बहरा या मूक (गूंगा) पुरुष अपनी आंख या कान या वाणी से किसी दशा में कोई भी अनुभव या कर्म नहीं करता, अर्थात् इस बहरे या अंधे मनुष्य के लिए कर्ण या नेत्रकृत-जागरण अवस्था कभी भी नहीं होती, एवं स्वप्न और सुषुप्ति भी तत्तविन्द्रियविषयक नहीं होती, क्योंकि वहरा या अंधा मनुष्य स्वप्न में कभी भी श्रवण या दर्शन रूप व्यापार नहीं करता, यह अनुभव हैं । अतः जब पुरुषों के एक या दो इन्द्रियों के विषय में जागृत आदि अवस्थाओं का अभाव स्पष्ट है तो वृक्षों में भी यदि सब इन्द्रियों के न होने से, समस्त इन्द्रियविषयक जागरण आदि का अभाव हो गया तो क्या आपत्ति है ? जब एक योनि में, एक या दो इन्द्रिय विषयक जागरण आदि अवस्थाओं के न होने पर भी, आपको, वहाँ जीव की सत्ता से इन्कार नहीं, तो यदि किसी योनि में समस्त इन्द्रियों के न होने से, सकल इन्द्रिय विषयक जागरण आदि का अभाव हो जाय तो वहाँ भी आपको जीव की सत्ता से मुन्किर नहीं होना चाहिए ? उस अभाव से आप क्यों कर वृक्षों में जीवाभाव सिद्ध कर सकते हैं ? यदि एक स्थान में आप जागरण आदि के अभाव को जीवाभाव का हेतु (व्यतिरेकी) मानेंगे तो आपको अन्यत्र (मनुष्य आदि योनि में) भी (कतिपय-इन्द्रियाभावहेतुक) जागरण आदि के अभाव से, उतने अंश में जीवाभाव अवश्य मानना पड़ेगा—ऐसी दशा में "जीव" विकल हो जाएगा ? अतएव "अनित्य" भी आपको मानना पड़ेगा ।

यदि आप यह कहें कि "जीव के सुखदुख भोगने के साधन इन्द्रिय ही तो हैं" जहाँ जीव के साथ ये इन्द्रिय ही नहीं हैं वहाँ सुखदुख का भोग नहीं हो सकता, जहाँ सुख दुःख का भोग ही नहीं हो सकता, वहाँ जन्म लेकर जीव करेगा क्या" ?

सो इसके उत्तर में निवेदन है कि आपका यह विचार ठीक नहीं, आप यह समझे बैठे हैं कि "जीवात्मा इन्द्रियों के बिना सुख दुःख नहीं भोग सकता" किन्तु यह ख्याल ठीक नहीं है—क्योंकि जीवात्मा स्वप्न दशा में इन्द्रिय आदि से किसी प्रकार की सामग्री के अभाव में भी उसी प्रकार सुख दुःख का अनुभव करता है, जिस प्रकार कि जागृत काल में इन्द्रिय आदि सब सामग्री की उपस्थिति में । जागरण काल में होने वाली स्वप्नविषयिका स्मृति, इस बात की साक्षिका है एवं सुषुप्ति, काल में समस्त इन्द्रियों का अभाव होता है, उस दशा में महापातकी से लेकर महापुण्यात्मा तक महामूढ़ से लेकर महाश्रोत्रिय तक, महादरिद्र से चक्रवर्ती सम्राट तक बच्चे से बूढ़े तक, कीट पतंगआदि से तत्ववेत्ता महर्षि तक सब एकाकार वृत्ति में, एक सी दशा में हो जाते हैं- और उस दशा के विषय में सबका यह (स्मृति रूप) अनुभव है कि—

"सुखमहमस्वाप्सं न किं चिदवेदिषा मिति"—

मैं सुखपूर्वक सोया और मुझे कुछ सुध नहीं रही सो महाराज ? सुषुप्ति काल में सकल इन्द्रियों के अभाव में भी जैसे जीवात्मा सुख आदि को अनुभव कर लेता है इसी प्रकार तमाम इन्द्रियों के न होने पर वृक्ष भी सुख दुःख आदि

को अनुभव कर सकते हैं। अतएव श्री मनु महाराज वृक्षों को अन्तः संज्ञ, कहते हैं; अतः यह कहना कि "इन्द्रिय आदि के न होने से तथा जागृत आदि के न होने से वृक्षों में जीव नहीं है, यह बात नितांत असार है।

और सुनिए, आप यह कहते हैं कि "जागृत स्वप्न तथा सुषुप्ति रूप जीव की तीन अवस्थायें होती हैं "पर आपका यह कहना भी ठीक नहीं है इन अवस्थाओं के अतिरिक्त, जीव की मूर्च्छा" नामिका दशा भी देखी जाती है मूर्च्छा को जागरित दशा में नहीं मान सकते क्योंकि जागरण काल के समान मूर्च्छावस्था में इन्द्रियों से विषयों का कोई अनुभव नहीं होता मुच्छित मनुष्य जब होश में आता है तो कहता है में "इतने समय तक अन्धकार में अर्थात् बिल्कुल अज्ञानावस्था में पड़ा हुआ था मुझे कुछ सुध बुध न थी तथा जागरण काल में मनुष्य अपने शरीर को थामे रहता है किन्तु मूच्छित महाशय का देह भूमि पर धम से गिर पड़ता है अतः जागरण दशा में ही मनुष्य की मूर्छावस्था को मानना ठीक नहीं है एवं स्वप्न में भी "मूर्च्छा" दशा को नहीं मान सकते क्योंकि सुषुप्त तथा" मूच्छित मनुष्य में बहुत भेद है "कारण भेद,—सुपुप्ति अवस्था थकान से पैदा होती है, मूर्च्छा प्रबल आघात या विषादि से उत्पन्न होती है। "फलभेद, —"सोने से थकान दूर होती है" शरीर प्रकृतिस्थ हो जाता है। मूर्च्छा शरीर पात के लिए है—यद्यपि मूर्च्छा से अवश्य ही मृत्यु नहीं हो जाती तथापि बिना मूर्च्छा के मृत्यु नहीं होती मृत्युकाल में मूर्च्छा अवश्य आ जाती है अर्थात् मूर्च्छा मृत्यु का द्वार है।

स्वांस भेद—सोया हुआ पुरुष लगातार एक से स्वांस लेता है, उसका मुख प्रसन्न होता है; आखें बन्द रहती हैं। हाथ से छूने या बुलाने मात्र से उठ बैठता है, होश में आ जाता है। परन्तु मूच्छित पुरुष मूर्च्छावस्था में एक से साँस नहीं लेता कभी उसका साँस बिल्कुल बन्द हो जाता है। कभी वेग से चलने लगता है कभी धीरे-धीरे। आँखों को फाड़े रखता है या फटी हुई रहती हैं। कभी-कभी शरीर में कंप कँपी होने लगती है रोंगटे खड़े हो जाते हैं। मुख पीला (फ़क़) पड़ जाता है तथा अनेक भयानक लक्षण दिखाई देते रहते हैं, उसको चाहे सोटों से पीटों तो भी नहीं उठता होश में नहीं आता। सोये हुए पुरुष को उठाने के लिए कोई भी वैद्य के पास भागा नहीं जाता, मूच्छित के लिए तो वैद्य को बुलाये बिना कल (चैन) नहीं पड़ती इत्यादि अनेक कारणों से सुषुप्ति अवस्था में भी मूर्च्छा को नहीं मान सकते। अतः "मूर्च्छा" एक स्वतन्त्र अवस्था है जो "आयुर्वेद" में प्रसिद्ध है। समस्त जगत् में प्रख्यात है। सो महाराज ? मूच्छित दशा में जीव के साथ कोई भी इन्द्रिय नहीं होती और मूच्छित पुरुष अपनी मूर्च्छा अवस्था से छूटकर कहता है कि—

"अन्धेतमस्यहमेतावन्तं कालं प्रक्षिप्तोऽभूवं न किञ्चिन्मया चेतितम्,—दुखमस्वाप्सं गुरूणि मे गात्राणि भ्रमत्यनव, स्थितं मे मनः......इत्यादि"

यह अनुभव बिना इन्द्रियों के कैसे हो गया ? अतः स्वप्न, सुषुप्ति तथा मुग्धावस्था में जैसे बिना इन्द्रिय आदि के सुख दुःख का अनुभव हो जाता है इसी प्रकार "वृक्ष' भी इन्द्रियों के बिना सुख दुःख आदि को भोग सकते हैं। अतएव मनु महाराज साफ लिखते हैं कि—

"अन्तः संज्ञा भवन्त्येते सुखदुः खसमन्विताः"।

यदि कहा जाय कि वृक्षयोनि बुरे कर्मों का फल होने से सुषुप्ति के सदृश क्यों हुई ? सुषुप्ति में तो सुख होता हैं बुरे कर्मों का फल तो सर्वथा दुःख रूप होना चाहिए ? तो हम आप से पूछते हैं कि पापी को निन्द्रा क्यों आती है ? निन्द्रा में सुख होता है—पापी उसका भागी क्यों कर हुआ ? सो जैसे पापी को निन्द्रा में भगवान करूणेकसिन्धु सुख देते हैं ऐसे ही वृक्षों को परमात्मा यदि सुख देते हैं तो क्या बुरा करते हैं ? एवं प्रलयकाल में पापी को दुखाभाव क्यों होता है ?

"अन्याधिष्ठितेषु पूर्ववदभिलापात्"

सूत्र पर शारीरिक भाष्य को आपने अपने पक्ष की पुष्टि में धरा था वह उलटा आपके लिए हानिकर हुआ ? जब आप कोई अन्य उपाय न पाकर सूत्र के मनमाने अर्थ करने लगे, और "अधिष्ठित" पद से बाग के अधिष्ठाता की

सूझी पर आप की यह तर्कना केवल असम्बद्ध है ? अच्छी बात ? चलिए ! हाँ क्या कहा चेतन का चेतन, भोग्य या "भोक्ता" नहीं हो सकता ! भला क्यों ! लोक में नजर नहीं आता ! वाह इतनी बात थी। आइये हम आपको दिखाते हैं।

"मनुष्य का भोग्य बैल आदि होते हैं—अर्थात् मनुष्य उनसे काम लेते हैं। "विशोऽन्नेराज्ञाम् नार्य्यो भोग्याः पुंसाम्—ते च तासाम्" वैश्य या प्रजा के लोग राजाओं का भोग्य होते हैं। यह बात लोक में आबाल गोपाल अजाविपाल (पर्यन्त) प्रसिद्ध है। अतः "विषय" पद से जड़ ही भोग्य माने जायेंगे यह कुछ नहीं। अन्याधिष्ठितेषु सूत्र का प्रामाणिक अर्थ किसी आचार्य आदि का किया हुआ लाइए—आप अपना अर्थ प्रमाणतया पेश नहीं कर सकते।

"द्वासुपर्णा" मन्त्र में वृक्ष, का प्रकृति के साथ जोड़ तोड़ लगाकर, "जड़ता की समता" के बल पर आप ललकारते हैं कि "रूपक" नहीं बन सकता (पर महाराज) तभी तो जब आप मनमानी करते हैं, आचार्यों के अर्थ से अकारण वैर ! उस पर "रूपक" बन नहीं सकता ! सब्र कीजिए, बन जाएगा पहले ठीक अर्थ सुनिए अलंकार भी हो जाएगा।

"द्वा सुपर्णा" का अर्थ है कि जैसे दो पक्षी पेड़ पर बैठे हों, एक फल खाता हो और दूसरा केवल उसे देखता हो, ऐसे ही (पक्षिस्थानीय) जीव और परमात्मा, "वृक्षस्थानीय" देह पर बैठे हैं और "जीव" देह में होने वाले (फलस्थानीय) सुख दुःख को (खाता है) भोगता है और परमात्मा केवल द्रष्टामात्र है- इत्यादि।

सो जैसे पक्षियों का आधार "वृक्ष" होता है और उसके फल भोग्य होते हैं वैसे ही जीवात्मा तथा परमात्मा का आधार रूप "देह" है—यद्यपि परमात्मा सर्वव्यापी और स्वमहिम प्रतिष्ठित है, वह किसी के आधार पर नहीं रहता, तथापि यह शरीर परमात्मा का उपलब्धिस्थान है, इसमें ही परमात्मा के दर्शन होते हैं अतः कलपित-गौण आधाराधेयत्व भाव देह तथा परमात्मा का मान कर, श्रुति देह को परमात्मा का आधार कहती है। एवं जीवात्मा शरीर में आत्माभिनिवेशताके कारण सुख दुःख का भोक्ता ही है। अतः उपमान और उपमेय का परस्पर आधाराधेयभावात्मक सम्बन्ध मानकर श्लिष्ट एकता सुतरां उपपन्न हैं। और आप प्रातः काल के अपने तृतीय भाषण में द्वासुपर्णेत्यादि श्रुति में "वृक्ष" शब्द का अर्थ शरीर मान भी चुके हैं, पर अब अपने कथन के प्रतिकूल, आप वृक्ष के मुकाबिल असम्बन्ध प्रकृति को लाते हैं। और जड़चेतन की जुगल जोड़ी अपने सामने बिठाने का यत्न करते हैं। इसी प्रकार यदि आप समस्त धर्मों को मिलाने का प्रयत्न करेंगे तो दृष्टान्त दार्ष्टान्तिक, उपमानोपमेय भाव का सर्वथा विलोप हो जाएगा अतः जैसे "वृक्ष" पक्षियों का आधार है वैसे ही जीवात्मा तथा परमात्मा का आधार "देह" है—"आधारता की अपेक्षा से रूपकालंकार ठीक हो सकता है यह बात वर्णन कर चुका हूँ और आपको भी, प्रकृति (वृक्षस्थानीया) मानकर यह "आधारता" अवश्य स्वीकार करनी पड़ेगी इसलिए "आधारता" पर ही सन्तोष करना ठीक है—यदि आप आगे "जड़ता" आदि धर्मों को मिलाने लगेंगे—तो हम-शाखा, पत्ते, फूल, जड़ें तथा परिमाण आदि जो भी वृक्ष में दिखाई देगा प्रकृति के साथ मिलाना आरम्भ करेंगे—और उधर पक्षियों के पंख, चोंच, पंजे, अण्डे, बच्चे, घोंसला, जीवादि के साथ सब मिलाने पर बाध्य करेंगे पर आप नहीं मिला सकेंगे—अतः "आधारता" पर ही सबर करना ठीक है—अन्यथा बताइए ? समान प्रकरण की "ऋतंपिबन्तौ" "श्रुति के, "गुहां प्रविष्टो" में ये "गुहा" पद से प्रकृति की क्या समता होगी ? अतः शास्त्र के स्वकपोलकलपित अर्थों को छोड़ कर किसी प्रामाणिक अर्थ के बल पर बात कहिए—आप अपना ही अर्थ प्रमाणतया पेश नहीं कर सकते। अतः ,'प्रकृति जड़ है अतः "वृक्ष" भी जड़ हैं; यह बात सर्वथा निराधार है असमञ्जस है। एवं: जो प्रकरण हमने

ऋतं पिबन्तौ एवं सुकृत्य लोके गुहां प्रविष्टो परमे परार्धे। छायातपो ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः, ऋतं, अवश्यं भावि कर्म फलं, पिबन्तो भुञ्जानो, सुकृत्यस्य कर्मणो, लोके कार्यं देहे परस्य ब्रह्मणो द्वं स्थान-महतीति परार्ध हृदयं परमं श्रेष्ठं तस्मिन्या गुहा तनोरूपा बुद्धिरूपा वा तां छाया प्रविष्टौ स्थितो मिथः संबद्धो तोच ब्रह्म विदः कर्मिणः वदन्ति त्रिर्नाचिकेतोऽग्निश्चितो यस्ते त्रिणाचिकेताः ते वदन्ती त्यर्थः। नाचिकेत वाक्यानाध्ययन तदर्थज्ञानं तदनुष्ठानं चेति त्रित्वंबोध्यम्।

छान्दोग्योपनिषत् का पेश किया उसका कोई उत्तर नहीं दिया गया।

तथा "परिभाषेन्दु शेखर" की सर्वोद्विन्द्वो विभाषयैकवद् भवति"—३४ वीं परिभाषा के व्याख्यान में श्री नागोजी भट्ट लिखते हैं—

"तिष्यपुनर्वस्वोरितिसूत्रस्तं बहुवचनस्येतिग्रहणमस्या ज्ञापकं तदधीदं तिष्यपुनर्वस्वित्यत्र तद्व्यावृत्यर्थम् नचैवमप्यत्र जातिरप्राणिनामिति नित्यैकवद्भावेन बहुवचनाभावादिदं सूत्रं व्यर्थमिति वाच्यम्। आपोमयः प्राणइति श्रुतेराद्भिर्विना ग्लायमान प्राणानामेव प्राणत्वात्-स्पष्टञ्चेदं तिष्यपुनर्वस्वोरिति सूत्रे भाष्ये"।

इस परिभाषा में श्रीमन्महामहोपाध्याय श्री नागोजी भट्ट "आपोमयः प्राणः" इस श्रुति काप्रमाण देकर "प्राण, का लक्षण करते हैं कि "अद्भिबिना ग्लायमानत्वं प्राणत्वम्" जो जल के बिना मुर्झा जाय या नष्ट हो जाय उन्हें प्राण कहते हैं सो वृक्षों को यदि जल न मिले तो सूख जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं अतः वे प्राणी हैं। प्राण बिना जीव के नहीं रह सकते "अथेनं क्रामन्तं सर्वे प्राण उत्क्रामन्ति" और "नगोऽप्राणिष्वन्यतरस्याम्" तथा "जानपदकुंड" इत्यादि सूत्रस्थ "नील" शब्द पर प्राणिति च वार्तिक में मुखनासासञ्चारी वायु को प्राण माना है अतः "तिष्यपुनर्वस्वोरित्यादि" सूत्र से विरोध नहीं है अब यह बात सिद्ध हुई कि श्रीमन्महामुनि श्रीपतञ्जलि जी महाराज भी वृक्षों में अभिमानी जीव को मानते हैं।

सत्यार्थप्रकाश तथा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के विषय में आप जो जो कल्पनाएं करते रहे है उनका एक-एक करके खण्डन कर चुका हूं आप उसका कुछ परिहार नहीं करते—अतः स्वामी जी! श्री स्वामी दयानन्द जी के लेख से वृक्षों में अभिमान जीव का अभाव आप किसी प्रकार सिद्ध नहीं कर सकते "द्वेसृति" मन्त्र के प्रकरण को लेकर, जो आप पण्डित भीमसेन जी द्वारा की गई मिलावट बता रहे है—इसमें क्या प्रमाण है कि पण्डित भीमसेन ने मिलावट की है? ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका तथा सत्यार्थप्रकाश में जो कुछ लेख है वह अक्षरशः स्वामी जी का है, चाहे संस्कृत हो या आर्य भाषा हो। जब उनके नाम पर सब किताबें छपती हैं तो क्यों कर मान लिया जाय कि मिलावट है? जो श्री स्वामी दयानन्द महर्षि तमाम अवैदिक मन्त्रों के जाल का समूलोच्छेदन करने वाले थे वे अपने रचित पुस्तकों में इतने ग़ाफिल थे कि लेखक लोग जो चाहें मिला दें—इस बात को कौन बुद्धिमान मनुष्य मान लेगा—संस्कृत तथा आर्य भाषा में श्री स्वामी जी ही भाष्यकर्ता हैं—आवश्यक नहीं है कि जो अक्षर संस्कृत में लिखें वही हूबहू भाषा में लिखें—वे किसी स्थल में विशेष व्याख्यान की अपेक्षा से अधिक भी लिख सकते हैं तथा संस्कृत और आर्य भाषा के लेखक्रम भिन्न-भिन्न होने से नये ढंग पर भी बात लिखनी पड़ती है। हाँ जो, आप परस्पर विरोध दिखाते हैं उस सब का परिहार कर चुका हूं — उसका प्रति परिहार आपके पास कुछ नहीं है। अतः ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका तथा सत्यार्थप्रकाश के विवाद प्रसाद को किसी नई तर्क भूमिका पर उठाइये बार बार वही बात आपके पक्ष को थोथा किये जा रही है।

श्री पंडित गणपति शर्मा जी—

"अब के भाषण में भी सत्यार्थ प्रकाश तथा भूमिका के विषय में कोई नई बात नहीं कही गई— उसी पुरानी बात को कहा, केवल "पूर्वं तुनोक्तं अधुनापिनोक्तम्" वाली बात थी।" "लेखक"

"द्वासुपर्णा" मन्त्र में जीव-ब्रह्म दो पक्षियों के समान हैं—क्यों कि चेतनता समान धर्म से पक्षी तथा जीव ब्रह्म युक्त हैं – उधर वृक्ष तथा प्रकृति के जड़ होने से समता है अतः "वृक्ष", जड़ है। क्यों कि वेद "पुनरुक्ति" आदि दोषों से रहित हैं यदि यहाँ वृक्ष को जड़ न मानेंगे तो "प्रकृति" से समता न हो सकेगी अतः "जाति" दोष वेद में आयगा उसकी निवृत्ति के लिए वृक्षों को जड़ मानना चाहिए यह बात युक्तियुक्त भी है अन्यथा चेतनता की प्रतीति के न होने पर भी यदि आप वृक्षों में जीव मानेंगे तो मेज आदि वस्तुओं में भी "जीव" मानना पड़ेगा।

"मूर्च्छा नाम मनसो विचलितावस्था"—मन की विचलितावस्था का नाम मूर्च्छा है—वृक्षों में मूर्च्छा नहीं है—क्योंकि मूर्च्छा जागरण आदि अपेक्षा से होती है—जब जागरण आदि अवस्थाएं ही वृक्षों में नहीं तो "मूर्च्छा भी नहीं हो सकती। जाग्रत् अवस्था से पृथक् मूर्च्छा कोई अवस्था नहीं है यदि "मूर्च्छा" पृथक् कोई अवस्था होती तो जागरणादि के समान सब मनुष्यादिकों में नियमानुसार और प्रायः प्रतिदिन होती—परन्तु ऐसा है नहीं—और वीतराग पुरुषों में तो मूर्च्छा होती ही नहीं—अतः वृक्षों में जब योनि ही नहीं तो मूर्च्छा कैसे हो सकती है? अतएव "मन की विचलितावस्था रूप-मूर्च्छा" भी वृक्षों में नहीं हो सकती। एवं वेशेषिकदर्शन में वृक्षों को "विषय" अर्थात् भोग्य माना है—भोग्य भोक्ता नहीं हो सकते।

सत्यार्थ प्रकाश में, "कुर्वन्नेवेह कर्माणि"......................................मन्त्र के अर्थ में वृक्षों की गणना जड़ों में की है—

"भोग्य" नाम चेतना वश का है—सो चेतनता के न होने से भोग्य हैं—भोक्ता नहीं हो सकते। भोग्य ही भोक्ता नहीं हो सकता "आत्माश्रय" दोष होगा—आप ही अपने कन्धे पर कोई कैसे बैठ सकता है? और न अपेक्षाकृत हो सकते हैं—क्यों कि वृक्षों को भोक्ता मान कर किसी अन्य पुरुष आदि का भोग्य मानने से "जीव हिंसा" जायज़ माननी पड़ेगी। जहां यह कहा जाता है कि न्यून बुद्धि वाले अधिक बुद्धि वालों के भोग्य होते हैं वहां गौणतया भोग्य में अभिप्राय है क्यों कि सेवा आदि कराते हैं—क्या स्वामी, दास को मुख्यतया ही निगल जाता है? जैसे कि—

"अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि, हिंसाशनिहरसा हन्त्वेनम्। प्रपर्वाणि जात-वेदः शृणीहि मे, क्रविष्णुर्विचिनोतु वृक्णम्"।

में चिदवसान भोग्य (तथा उपचार प्रायेण) से तात्पर्य यह है। क्यों कि "क्रव्याद" उस अग्नि को कहते हैं जो मुरदे को खा जाता है—अर्थात् जो शव को जला देता है क्योंकि मुख्यतया हमारे समान आग मुरदे को नहीं खाती।

श्री पंडित गणपति शर्मा जी

अथर्ववेद के दो मन्त्र तथा छान्दोग्योपनिषत् के प्रमाण से यह बात कह चुका हूं कि वृक्षों में जीव है। "द्वासुपर्णा"—इत्यादि श्रुति के यदि आप प्रामाणिक अर्थ नहीं मानते और स्वकल्पित अर्थों पर ही जिद करेंगे तो भी, "आपका अर्थ ही ठीक है—इसे हम क्यों कर मान लें? मैं कहता हूं कि यहाँ "तोता और मेना" रूप दो पक्षियों से अभिप्राय है—आप इस का खण्डन कीजिए? बिना किसी प्रकरण आदि के अर्थ का निर्णय नहीं हो सकता, आप प्रकरणानुसार अर्थ की संगति ठीक कीजिये। और इस अर्थ में हेतु दीजिए—केवल पक्ष घोषणा से पक्ष सिद्धि नहीं हो सकती।

आप कहते हैं कि "वृक्षों में जीव नहीं है क्यों कि शास्त्र आदि का प्रमाण नहीं है अतः मूर्च्छा भी नहीं हो सकती"—मैं पूंछता हूं—"क्या अथर्ववेद और छान्दोग्य और मनुस्मृति शास्त्र नहीं है? क्या आपने इन प्रमाणों का कुछ खण्डन किया? यदि नहीं तो फिर क्यों कर आप कहते हैं कि "शास्त्र का प्रमाण नहीं है।" आप मूर्च्छा के लिए जागरण आदि की अपेक्षा को आवश्यक बतलाते हैं—परन्तु यह ठीक नहीं क्योंकि वृक्षों में जन्म से ही मूर्च्छा है वह एक जन्म रोग के समान है। तथा "मूर्च्छा" को आप जागरण अवस्था के अन्दर मानते हैं—अर्थात् जागरण अवस्था से भिन्न विशेष अवस्था उसे नहीं मानते-पर यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि जागरण काल में इन्द्रियों से विषयों का ग्रहण होता है—"मूर्च्छा" में नहीं होता। आप के पक्ष में कोई प्रमाण भी नहीं है—अतः मूर्च्छा का जागरण में अन्तर्भाव नहीं हो सकता।

तथा वृक्षों का सजीव होना हम शास्त्र से सिद्ध कर चुके हैं—और मूर्च्छा तो वृक्षों में स्पष्ट सी प्रतीत होती है जब अंधे या बहरे पुरुष में एक या दो इन्द्रिय विषयक-जागरणाद्यभाव साफ़ ज़ाहिर है और अंधे या बहरे में जीव के न होने या कम होने में आपको कोई शिकायत नहीं होती किन्तु जीव को आप मानते हैं तो फिर वृक्षों में समस्त-इन्द्रियां भाव निमित्तक-जागरणाद्यभाव दशा में क्यों नहीं जीव को मानते?

यह कोई नियम नहीं है कि भोक्ता चेतन ही हो और भोग्य जड़ ही हो। देखिये स्वामी और सेवक दोनों चेतन हैं—पर भोक्ता और भोग्य हैं शेर हरिणों को खाता है यहाँ भी भोक्ता चेतन हैं। पुरुष अन्न को खाता है यही भोक्ता चेतन और भोग्य जड़ हैं। मर्दुमखोर पेड़ मनुष्यों को खा जाते हैं यहाँ आपके मत से जड़ वृक्ष भी चेतन मनुष्य को खा जाते हैं। अतः आपके मतानुसार भोक्ता और भोग्य की व्यवस्था नहीं हो सकती।

शेष रहा कि यदि वृक्षों में जीव है तो उनके काटने से हिंसा होगी यह ठीक नहीं क्यों कि "बाधना लक्षणों धर्मोहिंसा" होती है—वृक्षों को काटने से बाधा (पीड़ा) नहीं होती यह बात प्रत्यक्ष है देखो ! अंगुली के कटने से सारे शरीर में दुःख होता है और अंगुली कटकर सूख जाती है अर्थात् जीते हुए शरीर से सम्बन्ध रखते समय जो बात अंगुली में होती है वह कटने पर नहीं रहती किन्तु कली (कोरक-शिगूफा) को डण्डी से तोड़ कर अलग धर दो सायंकाल की तोड़ी हुई प्रातः तक खिल जायगी तथा पेड़ में कोई पीड़ा आदि की प्रतीति भी नहीं होती। यदि पीड़ा होती तो अन्य शाखाओं पर भी फूल न खिलते अतः कटने पर वृक्षों में दुःख नहीं होता दुःखाभाव से तात्पर्य वृक्ष रूपी-शरीर निमित्तक दुःखाभाव से ही है—"पूर्व जन्म दुष्कृतकृतमनः सन्तापात्मकक्लेश" तो होता ही है अतएव मनु जी ने "सुखदुःखसमन्विताः" कहा है।

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी—

वृक्ष को यदि योनि माना जायगा तो वह बुरे ही कर्मों का फल होंगी यदि वृक्षों को उनके शरीर शम्बन्ध से कोई दुःख नहीं होगा तो पाप का फल वृक्षों को दुःख भी न हो सकेगा अतः पाप का फल दुःख भी अवश्य आपको वृक्षों में मानना चाहिए—ऐसी दशा में वृक्षों को काटने से हिंसा अवश्य होगी। शास्त्रों से वृक्षों में जीव का बताना "साध्यसम" है—

न हि साध्यसमो हेतुः सिद्धो साध्यस्य जुज्यते— (गौड़पादीय०)

आप कहते हैं कि "जीव" अविद्योपाध्यु पहित है किन्तु यह ठीक नहीं सब के मत में कार्य्योपाध्युपहित है। अतः वेदों में कार्योपाध्युपहित जीव माना गया है। अनुमान विना दृष्टान्त के नहीं हो सकता—"अजाद्वै जायते यस्य दृष्टान्त नास्ति वै"—(गौड़पादीय०) किसी वृक्ष में जीव को पहले सिद्ध कर लीजिए—तब शास्त्र के प्रमाण से सुख दुःख आदि का निर्णय कीजिये। जीव जैसे-२ कार्य करता है वैसे-२ शरीर को धारण करता है: इसमें कोई प्रमाण नहीं कि "जीव किन्हीं कर्मों से वृक्षों में जन्म लेता है। तथा उन में किसी ने आज तक मूर्च्छा नहीं देखी-प्रत्यक्ष आदि का अभाव इस विषय में स्पष्ट है मूर्च्छा के होने का काल बताना चाहिए ? रोग में वृद्धि तथा ह्रास भी तो होता है—मूर्च्छित मनुष्य में भी कभी मूर्च्छा बढ़ जाती है कभी घट जाती है—वृक्षों में ऐसा कहां है ? वृक्षों में मूर्च्छा की वृद्धि तथा न्यूनता में कोई प्रमाण देना चाहिए "संखिया, मनुष्य को नहीं मारता किंतु "संखिया" का खाना मारता है—वृक्ष नहीं मारता किन्तु वृक्ष से गिरना मारता है अतः "जड़" भोक्ता नहीं हो सकता, भोग योनि के लिए नियम चाहिए।

"मूर्च्छा, कोई पृथक् दशा नहीं है—"आदावन्ते च यन्नास्ति वर्त्तमानेऽपि तत्तथा"—(गौड़पादीय०) जिस वस्तु का आदि और अन्त नहीं होता वह वर्तमान में भी नहीं होती—"मूर्च्छा" अपने काल से पहले न थी—किन्तु जागरणावस्था थी, स्वकाल के पश्चात् भी नहीं होती प्रत्युत जागरण अवस्था ही होती है अतः आद्यन्त में जागरणावस्था के होने से मध्य में भी "जागरण" अवस्था ही थी शेष रही यह शंका कि यदि मध्य में भी "जागरण" ही है तो अब के समान मूर्च्छा में ज्ञान-ज्ञान (इन्द्रियजन्य) क्यों नहीं होता ? सो साफ़ ज़ाहिर है कि मन की "चञ्चलता" में ज्ञान नहीं हो मूर्च्छा में भी मन चञ्चल होता है अतएव ज्ञानाभाव है यह नहीं कि जागरणाभाव के कारण ज्ञानाभाव होगया ! क्योंकि सकता ऐसा प्रायः होता है कि जिस काल में मन पर कोई आभास नहीं होता तो "मूर्च्छा" हो जाती है शास्त्रों में "मूर्च्छा" कोई अलग अवस्था नहीं मानी गई। आयुर्वेदयक में अवस्था नहीं मानी गई—"रोग" माना गया है।

तथा वृक्षों में आप जन्म की मूर्च्छा बताते हैं ? यह ठीक नहीं है क्योंकि जन्म काल में हर एक प्राणी जगता हुआ पैदा होता है—सोता हुआ या मूर्च्छित या स्वप्न दशा में कभी कोई पैदा नहीं होता। यह बात सुस्पष्ट है फिर

दृष्टान्ताभाव में आप "अन्तः संज्ञ, कैसे कह सकते हैं ? पहले युक्ति द्वारा वृक्षों में जीव की सत्ता सिद्ध कर लो — तदनन्तर मनुस्मृति से "अन्तः संज्ञत्व" पर भी विचार हो लेगा— अन्यथा मनुस्मृति आदि "साध्यसम" होने से किञ्चित्कर होंगे। और संसार में वृक्षों में जीव के साथ व्याप्तिग्रह न होने से जीवाभाव सर्वसाधारण में प्रख्यात है। अतः वृक्षों में कोई जीव जाव नहीं है ! और असहाया मनुस्मृति कैसे प्रमाण मान ली जाय ? क्योंकि वेदमूलकस्मृति ही प्रमाण हुआ करती है। स्मृतियों में मिलावट हो सकती है।

श्री पण्डित गणपति शर्मा जी—

जिस प्रकार मनुष्यों में बाह्यबुद्धि होती है अर्थात् बाहर की ओर इन्द्रियों के व्यापार से प्रत्यक्षादि का ग्रहण जैसे मनुष्य आदि करते हैं वैसे वृक्षों में नहीं किन्तु वृक्ष अन्तःकरण से सुख दुःख को अनुभव करते हैं अतः अन्तःसंज्ञ हैं – यह मनु स्मृति निर्मूल नहीं है अथर्व वेद के दो मन्त्र तथा छान्दोग्योपनिषद् से वृक्षों में जीव का होना सिद्ध कर चुका हूँ — तथा अन्तसंज्ञता वेदानुकूल होने से (परतः) प्रमाण है इस बात को श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज भी मानते हैं। फिर भी आप युक्ति से सिद्ध हो तो शास्त्र को मानेंगे नहीं तो शास्त्र साध्यसम ही रहेगा—इसके क्या मानी ऐसा मानने से वेदादिशास्त्र प्रत्यक्षानुमानादि के अधीन होने के कारण स्वतः प्रमाण न रहेंगे। वेद विरुद्ध आपका तर्क कुछ नहीं कर सकता अतः वेदानुकूल तर्क हम कर रहे हैं—आपको वह मानवीय होना चाहिए। अतःकरणोपाधि से कार्योपाधि अभिप्रेत है। तथा प्रत्यक्ष ज्ञान में इन्द्रियजन्यत्व होने का नियम नहीं हैं। इन्द्रियाभाव में परमात्मा को ज्ञान कैसे हो जाता है ? तथा छोटे बेटे के जन्म की खुशी किसी इन्द्रिय का विषय नहीं हैं---पर प्रत्यक्ष अनुभूत है और सब किसी को होती है अँधेरे केप्रत्यक्ष विना इन्द्रियों के कैसे हो जाता है ! अँधेरा भावरूप नहीं—क्योंकि प्रकाश के आने पर नहीं रहता—अभाव रूप नहीं—क्योंकि प्रतीत होता है, — फिर आंख के अन्धे होने के कारण अन्धकार कैसे प्रत्यक्ष हो जाता है ! तथा भारीपन किस इन्द्रिय से ग्रहण होता है। भारीपने को सभी अनुभव करते हैं अतः विना इन्द्रियों के भी अनुभव हो सकता है-- एवं भोक्ता भोग्यादि को भी कोई व्यवस्था नहीं है यह बात पहले स्पष्ट कर चुका हूँ। मूर्छा को जागरणावस्था नहीं मान सकते—"आदावन्ते च, इत्यादि सृष्टि के सम्बन्ध की बात है, यदि यही नियम है, तो सुषुप्ति भी जागरण है— क्यों के, सुषुप्ति के आदि और अन्त में जागरण होता है—तो मध्य में भी जागरण होना चाहिए—एवं जारगण भी सुषुप्ति होना चाहिए -- यह क्या बात हुई ? सृष्टि से पूर्व भी प्रलय था अन्त को भी प्रलय होगा, अन्तः अब भी प्रलय है ? इसे कौन मान लेगा। (श्रोतागणों में चारों ओर सन्नाटे का आलम ··· ··· ···)

तथा मूर्छाकाल में मन विचल नहीं होता इसे सब जानते हैं। प्रत्युत सुषुप्ति के समान विशेष बाह्य पदार्थों का ज्ञानाभाव होता है। "क्लोरोफ़ार्म" से मूच्छित कर तजुरबा किया जा सकता है—अतः मूर्च्छा में मन की चंचलता के विषय में कोई प्रमाण नहीं है—स्वतन्त्र तथा उच्छृंखल तर्कना को छोड़कर शास्त्रानुकूल तर्क कीजिए—"साध्य सामवेद हैं" इस बात पर विचार कीजिये—

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज—

जब आप वृक्षों को मूर्च्छित मानते हैं और मूर्च्छा दशा में ज्ञान का अभाव मानते हैं—तो वृक्षों को भी ज्ञान नहीं होना चाहिए, परन्तु आप के कथन में "व्याघातदोष है।

किसी वस्तु का प्रत्यक्षादि-अनुभव, अंतः करण तथा इन्द्रियों के विना नहीं हो सकता अँधेरे का प्रत्यक्ष भी चक्षु से होता है—

"यद्गुणो येनेन्द्रियेण गृह्यते तन्निष्ठाजातिस्तदभावश्चते नेव गृह्ते,

इस नियम के प्रकाशाभाव या तेजोऽभाव, अँधेरा आँख से ही ग्रहण होता है—क्योंकि प्रकाश को नेत्र ही ग्रहण करता है। तथा मूर्च्छा काल में मन चंचल ही होता है, क्योंकि मकान की छत से गिरते समय मन चंचल तथा विकल हो जाता है—अतः मूर्च्छा से पहले मन का चंचल होना अनुभव सिद्ध है। तथा मूर्च्छा के पश्चात् भी मन की विकलता स्पष्ट है—अतः यह सिद्ध हुआ कि मूर्च्छा काल में भी मन चंचल होता है। यह क्यों कर मान लें कि वृक्ष अन्तः करणोपादि से

युक्त हैं इसमें क्या दलील है। युक्ति के बिना किसी बात का निर्णय नहीं हो सकता—"मद्याजी" गीता का अर्थ युक्ति के बिना कैसे निर्णीत हो सकेगा ? मूर्च्छित वृक्ष अन्त: सुखादि को कैसे ग्रहण कर सकेगा ? क्योंकि मूर्च्छा में आप ज्ञानाभाव मानते हैं। यही "विघात" दोष है।

"हरकते-इरादी, चेतन का धर्म है—यदि वृक्षों में हरकते-इरादी (विशेष गति-इच्छापूर्वक प्रवृत्ति) हो तो वहां चेतन माना जा सकता है—परन्तु वृक्षों में केवल "हरकते-इन्तजामी, (सामान्यगति) ही पाई जाती है अत: वृक्षों में जीव नहीं है। भाष्याचार्य पण्डित हरनामदत्त शास्त्री जी ने कहा कि "सामान्य विना विशेष के हो नहीं सकता"।

नोट—

स्वामी जी ने झटपट उत्तर दिया कि "प्रलय में होता है" इतने में परस्पर आग्रह बढ़ने लगा कि श्री प्रधान महोदय ने शास्त्री जी को न बोलने की प्रार्थना की, वे चुप हो गये। खूब खिल खिला कर सभा में हंसी हुई !! स्वामी जी ने फिर बोलना प्रारम्भ किया। लेखक—"रलाराम"

एक प्रकार की क्रिया सामान्यकारण की द्यातक है—यह वृक्षों में प्रसिद्ध है—अत: वृक्षों में हरकते-इन्तजामी है। हरकते-इरादी नहीं। अतएव वृक्ष जड़ है—क्योंकि ईश्वर की हरकते इन्तजामी से उनके उत्पन्न होने बढ़ने और फूल-फल कर सूख जाने का जैसा नियम बांधा गया है उसी के अनुसार उनकी अवस्थाएँ बदल-बदल कर रह जाती हैं-कोई ऐसी बात वृक्षों में नहीं पाई जाती जिससे यह निर्णय किया जा सके कि वृक्षों में हरकते-इरादी भी है अत: वृक्ष जड़ हैं। दु:खादि स्वसंवेद्य हैं औरों को क्या ख़बर कि अमुक पुरुष को दु:ख हो रहा है या नहीं "जिस तन लागे सोई जाने"। यह बात सर्व साधारण में प्रसिद्ध है—अत: "वृक्षों को सुख दु:ख होता है"—इसमें क्या प्रमाण है ?

श्री पंडित गणपति शर्मा जी—

यदि मूर्च्छा काल में, या मन की चंचलता में सुख या दु:ख का होना आवश्यक है—तो इसमें अनुभव का आकार आप बताएँ मुझसे क्या पूछते हैं। मैं तो मूर्च्छा में (बाह्य) ज्ञान का अभाव मानता हूँ।—ज्ञान आप मानते हैं क्योंकि जागरणावस्था में ही मूर्च्छा का अन्तर्भाव करते हैं, प्रमाण उलटा मुझसे मांगते हैं—जब आप मूर्च्छा में ज्ञान मानते हैं तो आपको बताना चाहिए कि मुझे ? ऐसा पूछना आपका "वदतोव्याघात" है और में जो मूर्छा में ज्ञान का अभाव मानता हूँ वह विशेष ज्ञान का अभाव मानता हूँ—अर्थात् मूर्च्छित को बाह्येन्द्रियों से होने वाला ज्ञान नहीं होता सामान्यज्ञान तो होता ही है क्योंकि मूर्च्छित पुरुष मूर्च्छा से छूट कर कहता है कि—"अन्धे तमस्येतावन्तम् कालं प्रक्षिप्तो भूवम्, न मया किंचिच्चेतितम्" इत्यादि स्मृति मूर्च्छा काल के अनुभव की साधिका है। ऐसे ही वृक्षों को अनेक जन्म कृत-सुकृत दुष्कृतों के कारण से बहुत सन्तान तथा सुखलब होता ही रहता है। वृक्षों को शरीर नियमित्तक वेदना नहीं होती—यह बात युक्ति पूर्वक मैं पहले कह चुका हूँ।

चेतन का लक्षण आप "हरकते इरादी" अर्थात् जो करने, न करने या अन्यथा करने में समर्थ हो, करते हैं—किन्तु यह ठीक नहीं है मुक्तावस्था में जीव जड़ है या चेतन यदि मानोगे तो चेतन का जड़ होना असम्भव है—यदि चेतन है तो बताइये उसकी "हरकते इरादी" मुक्तावस्था में क्या काम करती है ? यदि केवल सुख भोगता है तो सुख को आप स्वसंवेद्य मानते हैं, "परसंवेद्य" तो सुख आपके मत में हो ही नहीं सकता, फिर क्या दलील है कि मुक्ति में सुख होता है ?

हम तो यह मानते हैं कि स्वसंवेद्य भी चेष्टादि से परसंवेद्य हो जाता है। एक पुरुष दूसरे की ज्ञान इच्छादि को जान जाता है—योगी तो दूसरे के मनोगत को दूर से जान जाते हैं—संसार में कोई बात भी केवल परसंवेद्य नहीं रह सकती, जब "तिनके से लेकर ईश्वर तक के ज्ञान से मुक्ति होती है"—तो स्व-पर-संवेद्य का क्या कहना ? "एकेन विज्ञातेन सर्वमिदं विज्ञातं स्यात्"। एक परमात्मा के ज्ञान से जैसा सबका ज्ञान हो जाता है ऐसे ही परसंवेद्य, स्वसंवेद्य—हो जाता है। वेदविरुद्ध कणाद का प्रमाण कुछ नहीं कर सकता, हमने वेदों के तथा वेदानुकूल अन्यान्य प्रमाण दिये, उनका कुछ उत्तर आपने नहीं दिया।

"आर्षं धर्मोपदेशञ्च वेदशास्त्राविरोधिना । यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः ॥ (मनुस्मृति)

आस्तिकों के यहां वेदशास्त्रविरुद्ध किसी का वचन प्रमाण नहीं माना जा सकता, शास्त्रविरुद्ध तर्क हम प्रमाण नहीं मानेंगे—"तर्काप्रतिष्ठानात्"भोक्तृ-भोग्य-विषयक-व्यवस्था में जो विचार हमने दिए थे उनका कुछ उत्तर नहीं है, मूर्च्छा काल में, मैं मनुष्य में दुःख मानता हूं-आपको दुःख नहीं तो सुख ही मानना चाहिए ! अन्यथा उभयाभाव में मूर्च्छित मनुष्य जड़वत् (पाषाण सा) आपको मानना होगा ?

श्री० स्वामी दर्शनानन्द जी

"पारिभाषेन्दु" आदि के प्रमाण ठीक नहीं हैं, क्योंकि नागेश ऋषि नहीं थे । "शेखर" तो काकभाषा है छान्दोग्य के प्रमाण में "वृक्ष" शब्द का अर्थ "शरीर" है ,"शाखा" से अभिप्राय "अवयव" से है—क्योंकि वहां "म्रियते" पद आया है—"मरना" शब्द का प्रयोग वृक्षों के लिए नहीं आता । कालिदास तथा मल्लिनाथ का प्रयोग प्रमाण नहीं हो सकता "कवयः किन्न जल्पन्ति" ?

नोट—

इस वाक्य के सुनते ही सभा में हंसी......" लौकिक प्रयोग शास्त्र के अर्थ करने में निर्णायक नहीं हो सकते । किसी आर्ष प्रमाण से सिद्ध कीजिए ।

"अथर्ववेद" के दोनों मन्त्रों का पण्डित भीमसेन का किया अर्थ प्रमाण नहीं माना जा सकता । किसी ऋषि का भाष्य उन मन्त्रों पर पेश कीजिए तो विचार किया जा सकता है । "ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका" तथा "सत्यार्थप्रकाश" में विरोध होगा, यदि वृक्षों में जीव माना जाएगा । आपने उस विरोध का कुछ परिहार नहीं किया, श्री कणाद महर्षि के प्रमाण का आपने कुछ समाधान नहीं किया । जागरण-दशा में अवश्यमेव सुख या दुःख का अनुभव हो, इस बात का नियम नहीं है । क्योंकि जब चित्त सर्वात्मना किसी वस्तु में आसक्त होता है तो उस समय सुख या दुःख कुछ नहीं होता एवं अत्यन्त चंचलता में भी कुछ ज्ञान नहीं होता, "परसंवेद्य" के स्वसंवेद्य होने में भी तो कोई प्रमाण चाहिए ? वृक्षों को सुख या दुःख होता हैं, इस विषय में क्या प्रमाण है ? अतः वृक्षों के मूर्च्छितावस्था में मानने से अन्तःसंज्ञता या सुख दुःख समन्वितत्व का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता, और इन सब के अभाव में, वृक्ष सजीव हैं यह भी नहीं कह सकते । अतः वृक्षों में अभिमानी जीव का मानना भ्रान्तिमात्र है । तथा ईश्वर कनोरूप इन्द्रिय से जाना जाता है । गुण से गुणी का अनुमान किया जाता है, क्रिया से क्रियावान् का अनुमान किया जाता है अतः सृष्टि के निरीक्षण से जो परमात्मा का अनुमान किया जाता है । वह मन से ही तो किया जाता है ? अतः ईश्वरादि परसंवेद्य नहीं हैं । संसार में धोखा इसीलिए होता है कि मनुष्य परसवेद्य को नहीं जान सकता, यदि परसंवेद्य, स्वसंवेद्य हो जाया करे तो कभी कोई धोखा न खा सके । अतः वृक्षों, को ज्ञान होता है यह बात तब तक नहीं मानी जा सकती जब तक कहीं व्याप्तिग्रह न हो । बस वेद स्मृति और युक्ति से किसी प्रकार भी वृक्षों में अभिमानी जीव का होना सिद्ध नहीं हो सकता ।

नोट —

स्वामी जी के भाषण के अनन्तर ही एक ओर से झटपट यह शब्द सुनाई दिये कि अब "शास्त्रार्थ" बन्द हो जाना चाहिए, बहुत सी खलकत कांगड़ी से यहां लौट कर आई है और स्वामी जी के व्याख्यान को सुनने के लिए समुत्कंठित है, बहुत "हाँ हाँ, नाँ नाँ" के कोलाहल के पश्चात् यह निश्चित हुआ कि अब की बार पण्डित गणपति शर्मा जी बोल लें उसके पश्चात् (चूंकि भाषण का अन्त्यावसर स्वामी जी का था) यदि स्वामी जी चाहें तो उत्तर देकर अपना व्याख्यान आरम्भ कर दें । परन्तु स्वामी जी ने पण्डित जी के पश्चात् व्याख्यान ही दिया । यह इसलिए नहीं कि उत्तर नहीं दे सकते थे, प्रत्युत इसलिए कि व्याख्यान सुनने के लिए लोग बहुत उन्मनस्क हो रहे थे, शास्त्रार्थ को भावी वर्ष पर बड़े समारोह से करने के लिए मुलतवी किया । परन्तु शोक की श्री पण्डित जी दागे-मुफारकत दे गए! नहीं तो आगामी वर्ष श्री पण्डित आर्य मुनि जी आदि के साथ भी उनके शास्त्रार्थ होते जो कि बड़े मार के होते । परन्तु शोक कि अब वह तर्क चूड़ामणि व्याख्यान वाचस्पति स्वर्ग में बुध और बृहस्पति की प्रतिभा-परीक्षा के लिए इस अवध मानवलोक को छोड़कर सिधार गए ! !

"रलाराम"

श्री पंडित गणपति शर्मा जी का स्वपक्षोपसंहार—

मेरी ओर से दो मन्त्र अथर्ववेद के छान्दोग्योपनिषद् (शंकर भाष्य) मनुस्मृति महाभाष्य, तथा ब्राह्मण प्रामाण्योपजीवक श्री नागेशरचित परिभाषेन्दु शेखर (काक भाषा) में अभिमानी जीव के प्रतिपादक पेश किये गये। एवं सत्यार्थप्रकाश तथा मल्लिननाथ के प्रमाण भी दिए गए। जो सब के सब वेदानुकूल होने के कारण उपादेय हैं। वेदमन्त्र जब तक कोई दोष नहीं बताया जाय, तब तक वह हेय नहीं हो सकता, सत्यार्थप्रकाश और जो ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका का विरोधाभास दिखाया गया उसका भी निराकार कर दिया प्रमाण सम्बन्धी जो अन्याय प्रकरण प्रवाहपतित काकभाषा अक्षेप हुए उन सब का संक्षेप विवरण पूर्वक तथार्थं परिक्षेप किया गया परिभाषेन्दु शेखर में नहीं है—हाँ यदि उसमें नवीन न्याय की फाकिकाओं का समावेश किया जाय तो बेशक काकभाषा ही जाती है। वस्तुत: यह ग्रन्थ महाभाष्यान्त: प्रतिपादित परिभाषाओं का एक गुटका है। जो नागेशभट्ट महामुनि पतञ्जलिमहाराज की उक्ति के बिना एक शब्द भी प्रमाण नहीं मानते—उनके ग्रन्थ को काकभाषा कहना सज्जनजनविगर्हित है। फिर आप नियमानुसार जब तक उनकी उक्ति का खण्डन नहीं करते केवल काकभाषा कह कर टालने से विद्वत्तो आप नहीं कर सकते। प्राणी अप्राणी शब्द का निर्णय व्याकरण से ही होगा—"जीव" धातु प्राणनरूप अर्थ में आता है, इससे यह बात स्पष्ट है कि "प्राण" तथा "जीव" पर्यायवाची शब्द हैं, तो वेदों में, वृक्षों में, प्राण का कहना जीव की संज्ञा का निर्णायक होगा,—इत्यादि सब युक्ति पूर्वक कहा जा चुका है—"वृक्ष" शब्द का अर्थ—

"विप्रो वृक्षस्तस्य मूलञ्च संध्या, वेदा: शाखा धर्मकर्माणि पत्रम् तस्मान्मूल यत्नतो रक्षणीयं, छिन्ने मूलेनैवशाखा न पत्रम्" ॥

इस (वृद्धचाणक्य) के अनुसार सर्वत्र गौण नहीं किया जा सकता। नहीं तो "द्वा सुपर्णा" में आपका रूपकालंकार न वन सके ा। अत: प्रकरण आदि की व्यवस्था से —लोक, व्याकरण, कोश आदि सब प्रमाण मानना पड़ेगा। मूर्च्छा में यदि सुख दु:ख का अभाव होगा तो आत्मा, पाषाणवत् (जड़) हो जाएगा।

नोट—

अन्त में, इस प्रकार व्याख्यान के पश्चात्, हाथ जोड़कर बड़े आदरभाव से स्वामी जी महाराज की स्तुति तथा सभी का धन्यवाद कर श्री पण्डित जी मौन हुए, **"और ऐसे मौन हुए कि अब ऐसे शास्त्रार्थ और व्याख्यान स्वप्न हो गये।** इसके पश्चात् श्री स्वामी दर्शनानन्द जी का व्याख्यान प्रारम्भ हुआ, उसके आदि शब्द थे— कि "आर्य लोगों का शास्त्री को न समझना यह साबित करता है कि आर्य लोग स्वाध्याय नहीं करते......इत्यादि, वह एक सारस्वत महानद था—कि अनेक युक्ति प्रमाणाख्यानों की तरंगों से समृद्धवेग वह रहा था। डेढ़ घंटा तक व्याख्यान देकर स्वामी जी रात्रि को ११ बजे की गाड़ी में रावलपिंडी को चले गये—क्योंकि उनको गुरुकुल पोठोहार के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होना था।

लेखक—"रलाराम"

॥ इति ॥

आवश्यक—

आगे आप इसी शास्त्रार्थ को पद्य बद्ध पढ़ेंगे जिसको महाविद्यालय ज्वालापुर के उपाचार्य श्री डाक्टर सत्यव्रत शर्मा अज्ञेय जी ने "गागर में सागर" भरने का प्रयत्न किया है।

"सम्पादक"

इकत्तीसवें शास्त्रार्थ का पद्यानुवाद

भूमिका—

"स्थावर में जीव विषयक विचार" अपूर्व शास्त्रार्थ, आर्यसमाज के दो अप्रतिम तार्किक विद्वान पं० गणपति शर्मा एवं स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती के मध्य गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार) की पुण्य भूमि में जो आठ अप्रैल सन् उन्नीस सौ बारह को पंडित पद्मसिंह शर्मा की अध्यक्षता में हुआ था। जिसे तत्काल पं० रलाराम जी ने सुन कर लिपिबद्ध किया था, हिन्दी तथा संस्कृत भाषा के विद्वान, सुप्रसिद्ध साहित्यकार "श्री डॉ० सत्यव्रत शर्मा-अजेय" उपाचार्य गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर ने अपने अप्रकाशित महाकाव्य दर्शनानन्द के नवम सर्ग में इसे "खंडन—मण्डन" शीर्षक से 'पद्यबद्ध" किया है। पद्य में गद्य ज्यों का त्यों तो समा नहीं सकता, परन्तु कवि ने सागर को गागर में भरने का जो प्रयास किया है, वह स्तुत्य है। पाठकों के मनोरंजन तथा ज्ञान वृद्धि के लिए यह शास्त्रार्थ प्रस्तुत है।

—"सम्पादक"

पद्यानुवाद—

विभुपदाम्बुज की अनुरक्ति दे। हृदय में अपनी अभिव्यक्ति दे ॥
सुमति दे, यश दे,कृति शक्ति दे विभव दे, भवमें, भव भक्ति दे ॥
जो अपरिमेय है अतुल, अजेय, नियन्ता। जनयिता सभी का है, वह सवका हन्ता।
तं इन्द्रं, मित्रं, वरूणं वा जल्पन्ति। एक सद् विप्रा बहुधा सदा वदन्ति ॥

कमलासन पर सदा विराजित, सरस्वती माँ तुझे प्रणाम। मेरा ही मुख कमल बनाले मातेश्वरि तू अपना धाम ॥
हृत्तन्त्री को कर दे झंकृत, मात अलंकृत कर दे छन्द। सार-सार दे देवी शारदे ! दे प्रसार दे अगमानन्द ॥
अम्बे ! मेरे हृदय-हंस को, तू अपना वाहन ले मान। मेरी तुतली-तुतली रचना-वचनावली में भर दे प्राण ॥
गणपति शर्मा और दर्शनानन्द सुधी का शुभशास्त्रार्थ। अब मैं चित्रित करूं संज्जनों ! बिल्कुल ही निष्पक्ष यथार्थ ॥

सन् उन्नीस सौ बारह ईस्वी, तिथि थी श्रेष्ठ आठ अप्रैल। सभा महाविद्यालय में थी, जुड़ी जहां विप्रों की गैल ॥
पंडित 'पद्म सिंह जी शर्मा" सम्पादक थे बने प्रधान। वादी-प्रतिवादी दोनों को समय बराबर किया प्रदान ॥
पंडित जी वादी, स्वामी जी थे प्रतिवादी, उग्र अतीव। वाद विवाद विषय था निश्चित, "वृक्षों में अभिमानी जीव" ॥
धन्य-धन्य यह ज्वालापुर है, धन्य यहां का गुरुकुल धाम। उर ज्वाला को जहां मिटाने, आते रहते विज्ञ सुनाम ॥

तर्क शिरोमणि, निरूपम वक्ता, महारथी दो नों विद्वान। हृदयस्पर्शी, ममस्पर्शी, थे दोनों के वाणी वाण ॥
गुरुकुल का आंगन सुरम्य था, जिसमें शोभित बाग विशाल। थल में भी थे "पद्म" सुविकसित कुदरत ने किया कमाल ॥
दुर्वादल की दरी बिछी थी, लम्बा चौड़ा था मैदान। था कुदरती शामयाने सा, आसमान का तना वितान ॥
वाग्भट्टों का युद्ध देखने, हुए सहस्त्रों नर एकत्र। पीतवस्त्र धारी वटु शोभित, जैसे उदयोन्मुख नक्षत्र ॥

सब प्रशान्त बैठे कतार में उत्कंठा से हो उत्कर्ण। और दूसरी ओर विराजे थे सन्यासी गैरिक वर्ण ॥
थी विवाद-संगर-दिद्दक्षा, उर में सुश्रुषा के भाव। हुए आसननसीन साधुजन जीवन्मुक्त सुशील स्वभाव ॥
शेष, श्रोतृ मण्डल जमीन पर ड़टा, लिये अन्तस् में चाव। खींच वहां लाया उन सबको, विद्वानों का पुण्य प्रभाव ॥
कोई कागज ढूंढ़ रहा है कोई पैन्सिल रहा तराश। नोट कर सकें सार-सार को सबके मन में थी यह आश ॥

सरस सुधा रस-निष्यन्दी उस भाषण नद की धार अपार। समा सके कैसे कागज में, विज्ञ वाचकों! करो विचार ॥
किन्तु जह्नु सम वहां एक ऋषि "रलाराम" जी थे मौजूद। हुए सफल भाषण लेखन में, मिली उन्हें मन्जिल मकसूद ॥
रोल-रोल कर उस प्रवाह से रत्न, रची वचनों की माल। हुई प्रकाशित "भारतोदय" में पढ़ कर पाठक हुए निहाल ॥
उसको ही आधार मान कर, लिखता हूं मैं यह अध्याय। कैसा बना, बुरा या अच्छा, पढ़कर करें प्रज्ञजन न्याय ॥

तत् सद् ब्रह्म सुमर गणपति ने, भाषण किया प्रथम प्रारम्भ, प्रतिभाशाली अद्‌भुत वक्ता, वह थे आर्य-जगत् के स्तम्भ ॥
वह बोले-मेरा मत है यह, "वृक्षों में अभिमानी जीव। श्रुति अथर्व के प्रथम कांड से, रखता हूं निज मत की नींव ॥
"इदं जनासो विदथ" मन्त्र का पूर्ण रूप से धरिए ध्यान। और "यैन प्राणन्ति वीरुधः" का आशय भी लीजै जान ॥
"जिससे लता जीव को धारण करती है" यह अर्थ विशिष्ट। वृक्ष-जाति के अतंर्गत ही लता-आदि होती आविष्ट ॥

इससे यह पाया जाता है, वृक्षों में होता है जीव। इसी भांति वेदों में मिलते हैं प्रमाण उत्कृष्ट अतीव ॥
श्रुति अथर्व के कांड आठ, अनुवाक् चार का षष्ठ सु-मन्त्र। "जीवन्तीमोषधीमह्य" की, करे घोषणा सुखद स्वतन्त्र ॥
"जीवित औषधि" का मतलब है, औषधि में रहता है जीव। बतलाता छान्दोग्य उपनिषत् भी वृक्षों को सतत सजीव ॥
सौम्य! अगर तुम महावृक्ष की जड़ काटो तो टपके क्षीर। मध्य भाग काटो तो, तो भी टपके क्षीर, सुनो धर धीर ॥

अग्रभाग काटो तो, तो भी स्रवित क्षीर होता है सौम्य। क्षीर-स्रवण से ऐसा लगता, मानों तरू रोता है सौम्य ॥
जीवात्मा से व्याप्त वृक्ष पैंपीयमान रहता मुदवन्त। जीव छोड़ दे जब शाखा को, मुरझा जाती वह हा हन्त ॥
तजे दूसरी शाखा को तो, वह भी मुरझाती तत्काल। अगर तीसरी को तज दे तो, उसका भी हो ये ही हाल ॥
अगर छोड़ दे वह समग्र को तो! समग्र तरू जाता सूख। जीव-रहित तुम इस शरीर को भी समझो बस सूखा रूख ॥

श्रुतियों के पश्चात् मनुस्मृति का भी करता हूं उल्लेख। दस-श्लोक अध्याय प्रथम के, इकतालिसवें से लें देख ॥
"यो मरीचि आदिक महात्म जन ने मेरी आज्ञा उर-धार। तपोयोग से रचा सकल जग, स्थावर-जंगम, कृति अनुसार ॥
इससे होता सिद्ध, जीव यह अपने कर्मों के अनुसार। भिन्न योनियां धारण करता, जीता, मरता-बारम्बार ॥
कौन-कौन यह योनि धारता, किस किस कर्मधर्म-अनुसार। तुम्हें बताता हूं यह सब मैं, श्रुतियों का लेकर आधार ॥

पशु, मृग व्याल, पिशाच, रक्ष-जन, मनुज जरायुज है थल-जात। पक्षी, सर्प, नक्र मीनादिक, कहलाते अंडज जल-जात।
दंश, मशक, यूकाएं, मक्खी, मत्कुण को लो स्वेदज जान। बीजकाण्डरूह, स्थावर, वीरुध, वृक्ष, बैल, पुष्पित फलवान ॥
कहलाते उद्भिज्ज सभी यह, गुच्छ, गुल्म, तृणा लता-प्रतान। अपने गुण-कर्मानुसार ही, इनमें जनमें जीव, सुजान ॥
शंका हो उत्पन्न यहां पर, कैसी है ये अद्भुत रीति। जीव वनस्पतियों में तो क्या चेतनता की हो न प्रतीति ॥

वृक्षलतादिक तम-वैष्टित, सुख-दुःख समन्वित अन्तः संज्ञ। करते सुख-दुःख का अनुभव है, समझो तुम मत इन्हें असंज्ञ ॥
पावस के पानी को छू कर, आनन्दित होते हैं वृक्ष। महाराज मनु का यह मत है, रक्खा मैंने सभा-समक्ष ॥
"जीवोत्पत्ति स्थान सभी है, ब्रह्मा से स्थावर पर्यन्त।" इस प्रकार मनु ने भी माना वृक्षों में है जीवअनन्त ॥
वेद-विहित है ग्रन्थ मनुस्मृति, जिसमें श्रुति-संस्कृति-प्राधान्य। श्रुति से, उपनिषदों से, स्मृति से, हमें जीव वृक्षों में मान्य ॥

इतनी सुनकर स्वामी बोले तथ्य रखो क्यों तोड़-मरोड़। इन अथर्व वैदिक मन्त्रों का, अर्थ लिया मनमाना जोड़ ॥
पंडित भीमसेन-कृति व्याख्या, आर्यो! हमें नहीं स्वीकार। इन मन्त्रों का दयानन्द जी, सरस्वती कृत सुनिए सार ॥
दो प्रकार की गतियां होती, इक विशेष और इक सामान्य। उर्दू में "हरकते इरादी" और "इन्तजामी" ये मान्य ॥
अर्थ "येन प्राणन्ति वीरुधः" का सुजान यो लेवे जान। "जो परमात्मा की ताकत से धारण करें लताएं प्राण ॥

वह "हरकते इन्तजामी" सविशेष मानना है अयथार्थ। हैं अभिमानी जीव-रहित ये, जग के रवि शशि आदि पदार्थ ॥
जीव न होने से वह सब "हरकते इरादी" से लाचार। घूम न सकते वे स्वेच्छा से, लता न सकती जीवन धार ॥
नर-शरीर में पाई जाने वा ली गति है संकल्पीय। उसको वैसे करता मानव, जैसे होती चाह तदीय ॥
मगर खून की हरकत तो हरकते इन्तजामी है नित्य। प्रभु-प्रबन्ध से उदित अस्त हो, नभ-नक्षत्र, चन्द्र-आदित्य ॥

है हरकते इन्तजामी ही, नर-निर्मित घड़ियों की चाल। दीख रहा है जग-रचना में, स्रष्टा का ही हमें कमाल ॥
इसी तरह यदि लतिकाओं में, गति लख हो जीवन-अनुमान। उसको बस "हरकते इन्तजामी" ईश्वर की लीजै मान ॥
"जीवन्तीमोषधीम्" मन्त्र में भी "सामान्या" गति अभिप्रेत। वेद-विरूद्धास्मृति भी है यह, अप्रमाण मित्रों इस हेत ॥
ऋग्वेदादिक भाष्य भूमिका, पुरुष सूक्त का मन्त्र समर्थ। "त्रिपादूर्ध्वं" आदिक है, पद "साशनानशन" का ऋषिकृत अर्थ- ॥

"उसकी ही सामर्थ्य-शक्ति से, सर्वविश्व होता उत्पन्न। एक जीव जगम, चेतन है, जो खाता पीता है अन्न ॥
जीव दूसरा, करे न भोजन, "पृथिव्यादि" जड़, प्राण विहीन। प्रभु की ताकत से ही हो उत्पन्न द्विविध जग, नित्यनवीन ॥
स्वामी दयानन्द ने "अनशन" पद का है यों लिखा अर्थ। "जो कि जीव सम्बन्ध रहित जग, पृथिव्यदि वह जड़ असमर्थ ॥
"पृथिव्यादि" में आदि शब्द का अर्थ—"वृक्ष" हमको अभिप्रेत। जीव-रहित होती है पृथिवी, अतः वृक्ष निर्जीव, अचेत ॥

वेदों में भी—वृक्षों में पाया जाता है जीवाभाव। "यो विश्वस्य" आदि मन्त्रों में व्यक्त हुआ है ऐसा भाव ॥
इसमें "जगतः प्राणतस्यतिः" पद का अर्थ समझिये आप। "प्राणवान् गतिशील विश्व का, स्वामी वह निर्जर निष्पाप ॥
इसका मतलब जो कि प्राण धारण करता है वह गतिमान। जो गतिमान नहीं होता है, वह न धार सकता है प्राण ॥
अतः सिद्ध होता इस सबसे, वृक्ष नहीं होते गतिमान। उनमें जीव नहीं होता है, और न उनमें होते प्राण ॥

खंडन सुनकर गणपति बोले, सुनो सज्जनों, धर कर ध्यान। भला 'येन प्राणन्ति वीरुधः' में गतियों का कहा बखान ॥
है "हरकते-इन्तजामी" का जब न मन्त्र में आया जिक्र। फिर क्यों ग्राह्य, वजह बतलायें, स्वामी जी बेशक बेफ़िक्र ॥
क्यों छोड़े मुख्यार्थ, और क्यो, गौण अर्थ कर ले स्वीकार। प्राण प्राण हैं, उनका मतलब "हरकत" बेमानी बेकार ॥
"जीवन्तीमोषधीम्" वाक्य में, कहा उल्लिखित गति सामान्य। जब तक दोष न दरसे तब तक, भीमसेन-कृत टीका मान्य ॥

जो कि "साशनानशने" की व्याख्या में "पृथिवी-आदि" पदार्थ। उससे "वृक्ष-लता" आदिक का अर्थ ग्रहण करना अयथार्थ ॥
वहां "आदि" पद से होता "जल-वायु" आदि का तात्त्विक बोध। "वृक्ष" आदि यदि अर्थ करोगे, तो अपूर्ण रह जाए शोध ॥
दयानन्द के लेखों में हो, पूर्वापर-सम्बन्ध-विरोध। वह वृक्षों में जीव मानते, निर्विरोध ननु निर्-अवरोध ॥
दो सौ पैंतीस पृष्ठ, नवम संस्करण, लखो सत्यार्थ प्रकाश। "किसी जीव को मनुज जन्म देकर ईश्वर ने किया विकास ॥

सिंह आदि का क्रूर जन्म है, किया किसी को उसने दान। हरिण, गाय, पशु आदि योनि में, जन्म किसी को किया प्रदान ॥
दिया किसी को जन्म उसी ने 'वृक्ष-आदि' कृमि-कीट-पंतग। यहां स्पष्टतः "वृक्ष-आदि" का, जन्म मान्य जीवों के संग ॥
इससे है यह सिद्ध, ब्रह्म जीवों को कर्मों के अनुसार। वृक्ष आदि इन भिन्न योनियों में उपजाता बारम्बार ॥
जो प्रमाण रूपेण किये हैं, उपन्यस्त मैंने श्रुति-मन्त्र। उनका छोड़ "प्रधान" अर्थ, क्यों "गौण" गहो, होकर निज तन्त्र ॥

जो कि "साशनानशने" पद की व्याख्या में वर्णित "पृथिव्यादि"। आप "आदि" पद से उसके हैं गहते गौण अर्थ वृक्षादि" ॥
होगा पूर्वापर विरोध यों, ऋषि के लेखों में भी आर्य। अतः हमें "वृक्षादि" पदार्थों की जड़ता है अस्वीकार्य ॥
"चेतन" और "अचेतन" दोनों अर्थों में "जड़" शब्द प्रयुक्त। जैसे "जाड्यं धियो हरति" में, हुई बुद्धि की जड़ता उक्त ॥
जबकि "बुद्धिरूपलब्धिर्ज्ञानम्" इक पदार्थ के ही हैं नाम। फिर मति-जड़ता कैसी बोलो, क्या प्रकाश में तम का काम ॥

जड़ता का है अर्थ "कुंठता", नृपति भर्तृहरि को अभिप्रेत। यही लक्षणा और व्यंजना, शब्द-शक्तियों का संकेत ॥
"पृथिव्यादि" में भी जड़ता का, अभिप्राय नहि जीवाभाव। अपितु अर्थ उसका है, केवल बाह्यज्ञान का सतत अभाव ॥
प्रकरणादि की कर ना अपेक्षा, उपर्युक्त हम कर लें अर्थ। होगा क्या वह भला आपको, भी अभीष्ट स्वामिन् अव्यर्थ ॥
अगर नहीं तो, पक्ष हमारे में क्यों भला "गौण" अभिप्राय। पक्ष आपके में "प्रधान" हो ! तजे "अर्द्ध जरतीय"-न्याय ॥

श्री दर्शनानन्द जी बोले—"आत्मा और प्राण में भेद। सिर्फ़ प्राण ही हैं वृक्षों में, आत्मा नहीं कहें यह वेद ॥
किया "येन प्राणन्ति वीरुधः" में प्राणों का जो उल्लेख। जीवात्मा का नहीं, यहां लें परमात्मा का प्रकरण देख ॥
"जिस परमात्मा की ताकत से, करे लताएं धारण प्राण।" "येन" शब्द का स्पष्ट अर्थ यह, जीवात्मा का यह न बखान ॥
"इदं जनासो विद्ध" मन्त्र में लो उस "महद् ब्रह्म" को जान। जिस हर की "हरकते इन्तजामी" से लता धारती प्राण ॥

गौण अर्थ इस भांति किया है, हमने प्रकरण के अनुकूल। "जीवन्तीमोषधीम्" मन्त्र में, अर्थ व्याकरण के अनुकूल ॥
"जीव-प्राणने" धातु "जीव" का, मात्र "श्वास लेना" वाच्यार्थ। "जीती हुई औषधी को" 'जीवन्तीम्' पद का है शब्दार्थ ॥
अतः यहां भी 'प्राणन' का है प्रकट प्रकरण 'आत्मा' का न। है "हरकते इन्तजामी" औषध का धारण करना प्राण ॥
जो 'सत्यार्थ प्रकाश "लिखित" "वृक्षादि" शब्द को लेकर आप। जीव मानते वृक्षों में यह "क्रम विरुद्ध" 'प्रक्षिप्त प्रलाप ॥

जिन शब्दों के पृथक्-करण से, या रहने से जिनके लिप्त। भेद पड़े कुछ नहीं अर्थ में, उनको समझो तुम "प्रक्षिप्त" ॥
कोई फ़र्क नहीं पड़ता यदि, पद "वृक्षादि" करें पद-मुक्त। प्रत्युत क्रम सम्यक् हो जाता, तथ्य-कथ्य से हो संयुक्त ॥
यदि रहने दें 'क्रम-विरोध हो' और साथ ही "भाष्य विरोध"। अतः यहां "वृक्षादि" शब्द प्रक्षिप्त मानिये सखे ! सुबोध ॥
"प्रभु ने किसी जीव को मानव स्रजा" किसी को सिंह मृगादि। है वृक्षादि किसी को विरचा, रचा किसी को कृमि-कीटादि ॥

उपन्यस्त है यहां ईश की, जंगम-सृष्टि अनन्त अनादि। पहले मनुज पुनः मृग आदिक फिर "वृक्षादि" पुनः 'कीटादि ॥
"क्रम-विरोध" है इस प्रकरण में, इसको लेवें जान सुजान। जंगम रचना के वर्णन में, स्थावर का क्यों हुआ बखान ॥
जंगम मनुज सिंह कृमि आदिक, वृक्षादि—स्थावर संसृष्टि। जंगम में स्थावर का आना, क्रम-विरोध की करता सृष्टि ॥
अतः यहां वृक्षादि शब्द प्रक्षिप्त, असंगत, तथ्य-विहीन। इसे अलग कर देने से हो, क्रम-विरोध का दोष-क्षीण ॥

ऋग्वेदादिक भाष्य भूमिका से होता है यहां विरोध। श्वादि जीव-सम्बन्ध-रहित जड़, पृथिव्यादिकम् से हो बोध ॥
यदि सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ में, छपा हुआ यह पद वृक्षादि। मानेंगे प्रक्षिप्त नहीं, तो होंगे क्रम-विरोध दोषादि ॥
दोनों समकर्तृक ग्रन्थों में, पूर्वापर विरोध नहि ठीक। पृथिव्यादि में आदि शब्द है वृक्ष आदि का स्पष्ट प्रतीक ॥
पद वृक्षादि पृथक करने पर ही दोषों का हो परिहार। होते कीट सदृश सुमनो में, ऐसे पद प्रक्षिप्त असार ॥

वृक्षों में हो मुख्य जीव नहि, किन्तु गौण "अनुशायी" जीव। यह वेदान्त शास्त्र-सम्मत मत, जिसे मानते सुधी अतीव ॥
गूलर के फल में जो कीड़े रहते, वे अनुशायी जीव। अहंभाव वाला जीवात्मा, है मनुष्य-तनु-शायी जीव ॥
नर-शरीर में यूका आदिक, हैं अनुशायी जीव अनेक। यह शारीरिक भाष्य उल्लिखित है सिद्धांत, लखो सविवेक ॥
"व्रीहियादिषु संसर्गं मात्रमनुषायिनश्च प्रतिपद्यन्ते च। धान आदि में अनुशायी संसर्ग मात्र, ज्यों पैंचक-पैंच ॥

है प्रमाण वेदान्त सूत्र यह, तथा भाष्य भी प्रमिति अतीव। इनसे यही सिद्ध होता है, "वृक्षों में नहि नभिमानी जीव" ॥
एवं वृक्षों में जीवात्मा, को न मानते मान्य कणाद। वैशेषिक दर्शन में देखो-सुनो तत्पुनः सूत्र-निनाद ॥
जिसका अर्थ कि पृथिवी आदिक कार्यद्रव्य है तीन प्रकार। युवत शरीरेन्द्रिय-विषयों से, जिसे जानता बुध-संसार ॥
इसी सूत्र पर जो प्रशस्त पाद-प्रणति भाष्याख्या प्राप्त। वह शरीर, इन्द्रिय, विषयों को, पृथक मानती है पर्याप्त ॥

किन्तु कार्य तीनों यह भू के, भू जड़, जड़ इनको भी जान। भोगायतनं सदा शरीरम् गण को साधन मान ।।
भोग्य वस्तु है "विषय" कहाती, तीनों का अन्तर पहचान। पृथिवी के विकार तृण आदिक, यह 'प्रशस्त' कृत भाष्य महान् ।।
यदि विषयों को, जो कि भोग्य हैं, माने भोगायतन शरीर। वैशेषिक दर्शन-विरोध हो, विकृत कथ्य की हो तस्वीर ।।
देखो, भोग्य भोग का आश्रय हो सकता है नहीं, तथैव। जीवात्मा के विषय लता वृक्षादि जीव से रहित सदैव ।।

पुन: किया पंडित गणपति ने प्रस्तुत युक्ति-युक्त निज पक्ष। नहि सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ में, क्रमशः विषय निरूपण लक्ष ।।
होती क्रम की आवश्यकता वही, जहां क्रम का अनुरोध। विना विवक्षा ठीक नहीं है, क्रम विरोध का यह अवरोध ।।
"पुरुष-सूक्त" में तस्माद्यज्ञात्, सर्व हुतः मैं पशु-उत्पत्ति। तस्माद्याज्ञत्सर्वं हुतः ऋच में वेदों की फिर प्रतिपत्ति ।।
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत इसमें ब्राह्मणादि वर्णों का लेख। पुनः चन्द्रमा मनसो जातः में चन्द्रोदभव का उल्लेख ।।

उक्त सूक्त में क्रम-विरोध का आप चलाये अगर कुठार। सूक्त-विटप का पत्ता पत्ता छिन्न-भिन्न होंवे बेकार ।।
पहले पशु फिर वेद बाद में ब्राह्मण फिर शशि की उत्पत्ति। क्या कोई विज्ञानी लेगा मान सृष्टि-क्रम यह सापत्ति ।।
क्रम विरोध के कारण वैदिक मन्त्र नहीं यदि ये प्रक्षिप्त। तो "सत्यार्थ प्रकाश" ग्रन्थ भी क्रम विरोध मे है निलिप्त ।।
नहीं किसी क्रम का प्रतिपादन है "वृक्षादि" कथन में इष्ट। मात्र योनि वैलक्षण्योपन्यसन प्रदर्शन यहाँ अभीष्ट ।।

वेद भाष्य के पृथिव्यादि-पद का वृक्षादि न अर्थ विधेय। अपितु ग्राह्य अर्थ है यहां जल-वायु आदि ही सतत प्रमेय ।।
अतः मानना यही चाहिए दयानन्द-अभिमत-अनुसार। "वृक्षों में रहता अभिमानी जीव", प्रकृति का अति सुकुमार ।।
यदि साइंस मुताबिक तुमको "सोल" और 'लाइफ' है मान्य। तो पशुओ में केवल 'लाइफ' मान लीजिए विज्ञ वदान्य ।।
क्योंकि मानते हैं नहि पशुओं में आत्मा को साइंटिस्ट। और एतदनुसार मानिये, पशु-वध में कुछ भी न अनिष्ट ।।

आप मानने को ऐसा पर कभी नहीं होंगे तैयार। अतः कह रहा हूं जो कुछ मैं, स्वामिन् उस पर करें विचार ।।
यदि साइंस मुताबिक मानें सिर्फ आप वृक्षों में प्राण। बर खिलाफ साइंस, मान ले पशुओं में आत्मा श्रीमान् ।।
तो शोभा दे यह न आपको, अहो ! अर्थ जरतीय न्याय। जीवाभाव मान वृक्षों में, प्राण मानना है अन्याय ।।
विना जीव के प्राण नहीं हो सकता है सम्भव गतिमान। सभी जगह परमात्मा की हरकतें इन्तजामी लें मान ।।

चलें नू-तन में भी प्रभु की हरकतें इन्तजामी से प्राण। जीवात्मा का वश चलता तो प्राण न करते, महा प्रयाण ।।
मन्त्र "यैन प्राणन्ति वीरुधः" इसी अर्थ से है सम्पन्न। लता आदि का प्राण धारणा, बिना जीव नहि हो उपपन्न ।।
जीवात्मा का अर्थ यही है, वह धारण करता है प्राण। 'जीव प्राणने' कह पाणिनि ने किया जीव में प्राण-विधान ।।
मान रही साइंस आपकी वृक्षों में होते हैं प्राण। 'नाइटरोजन' बिना सभी वे सूख जायं, होवे निष्प्राण ।।

नहि वेदान्त सूत्र में वर्णित, 'मुख्य' 'गौण' जीवादि विचार। है पंचाग्नि विषय के प्रकरण पर उसमें तात्त्विक प्रस्तार ।।
मेरे द्वारा प्रस्तुत श्रुति पर किया आपने जो आक्षेप। मैंने उसका निराकरण कर दिया वखूबी, अति संक्षेप ।।
अतः आपसे मैं स्वामी जी, करूं निवेदन नम्र अतीव। मान लीजिए आप शास्त्र-सम्मत "वृक्षों में होता जीव ।।
आप अन्यथा सिद्ध करें यह मिथ्या मम श्रुति स्मृति प्रामाण्य। न तो मान लें कैसे हम, प्रस्तुत मन्त्रों में "गति सामान्य" ।।

उत्तर में बोले स्वामी जी, ज्ञान-गिरा गौरव-गम्भीर। उपनिषदों में लिखित वृक्ष का अर्थ 'पेड़' नहि, अपितु शरीर ।।
'ओव्रश्चू छेदने' धातु से, 'वृक्ष' शब्द होता है सिद्ध। जो कि तत्त्व ज्ञानादिक द्वारा, छेदन योग्य सदैव प्रसिद्ध ।।
लक्षण में भी गौण कल्पना होती नहीं कदापि विधेय। सतत जीव सम्बन्ध रहित जड़ ऋषि कृत अर्थ सभी को प्रेय ।।
बौद्ध मतै स्थावराश्चेतनाः पर उनको जड़ कहें कणाद। अतः कहा शंकराचार्य ने, असत् बौद्ध मत बेबुनियाद ।।

पंडित जी ने कहा कि देखो, उपनिषदों में वर्णित वृक्ष। वाचक मात्र वृक्ष का ही है, 'तन' प्रतीक इसका नहि लक्ष्य ॥
मूल, मध्य, शाखा, टहनी सब तरु के ही होते हैं अंग। 'अनुशायी' पद नहीं 'अनुशयी', जो कि रहे व्रीहियादिक सँग ॥
शांकर भाष्य देखने से तो होता है यह स्पष्ट प्रतीत। वृक्षों में वह जीव मानते, श्रुतियों के अनुकूल पुनीत ॥
और "शेष कर्मा" जीवों का, "व्रीहि" आदि से केवल योग। इसीलिए वह नहीं भोगते, सुख दुःखों का कोई भोग ॥

उचित नहीं प्रत्येक योनि में दशा-जागरण, स्वप्न, सुषुप्ति। दृग अभाव से देख न पाते, कुछ भी जग में अन्धे व्यक्ति ॥
किन्तु नहीं है इसका मतलब, ऐसे प्राणी हों निर्जीव। रहितेन्द्रिय होने पर भी यों, वृक्षों में होता है जीव ॥
जीवात्मा जैसे सुषुप्ति में, करता है सुख को अनुभूत। अन्तः संज्ञ वृक्ष भी वैसे, पाते हैं सुख दुःख प्रभूत ॥
दोनों ही थे महामनीषी, दोनों के थे पक्ष यथार्थ। अनिर्णीत रह गया किन्तु यह, विश्रुत वैज्ञानिक शास्त्रार्थ ॥

कारण समयाभाव बताकर किया सभापति ने एलान। इन दोनों के दरमियान फिर होगा यह शास्त्रार्थ महान् ॥
आगामी उत्सव पर आवें सुनने को श्रोता विद्वान्। क्योंकि कार्य वश स्वामी जी को करना है अन्यत्र प्रयाण ॥

सारस्वत-नद में नहा, पा कर हर्ष अपार।
गये दर्शनानन्द फिर गुरुकुल पोठोहार ॥ दोहा ॥

काल गति किन्तु अतीव कराल, न कोई इसको सकता टाल। बनाया गणपति को निज ग्रास काल ने आकर हाय अकाल ॥
हुआ सब आशाओं का अन्त, न विकसा फिर वह वाक्-वसन्त। नहीं आ पाया अगला पर्व, हन्त हा हन्त! हन्त हा हन्त!!
कहां अब ऐसे तार्किक प्रज्ञ, मनीषी वाचस्पति, शास्त्रज्ञ। दिखाई पड़ते हैं अब नहीं, कहीं भी वाणी के वह यज्ञ ॥
हमारा यह "अज्ञेय" विश्वास, उभय सुधियों का यह इतिहास। रहेगा हृदय-पटल पर लिखा, करेगा जग का बुद्धि-विकास ॥

पद्यानुवादक—
"सत्यव्रत शर्मा अज्ञेय"



उन्तालीसवां शास्त्रार्थ

स्थान : सिकन्दराबाद, कम्पनी बाग, (जिला—बुलन्दशहर) उ० प्र०

विषय : क्या वेद इलहामी किताब है ?

दिनांक : सन् १९२४ ई० (समय दोपहर दो बजे) दिन बृहस्पतिवार

प्रधान : श्री पं० विश्वबन्धु शास्त्री एवं श्री पं० देवेन्द्र नाथ शास्त्री—सांख्याचार्य जी

शास्त्रार्थ कर्त्ता आर्य समाज की ओर से : श्री पं० रामचन्द्र जी देहलवी

शास्त्रार्थ कर्त्ता मुसलमानों की ओर से : श्री मौलवी अब्दुल हक़ विद्यार्थी

नोट—

छपी पुस्तक पर सन् छपा नहीं था, पूज्य अमर स्वामी जी महाराज इस शास्त्रार्थ में मौजूद थे। उनकी स्मृति के आधार पर ही समय दिया गया है।

"संपादक"

शास्त्रार्थ आरम्भ

मौलवी अब्दुलहक़ विद्यार्थी—

बिस्मिल्ला हिर्रहमानर्रहीम.. ।

माननीय ! पंडित जी महाराज ! तमाम खूबियां उस ही की ज़ात में हैं, जो सब आलमों का परवरदिगार है, वह उन खूबियों में से दूसरों को भी देता है लिहाजा जो किताब ईश्वरीय ज्ञान होने का दावा करे वह उस ज़ात का आला इल्म दे जिसकी तरफ से वह आई है, और साथ ही मनुष्य जाति की तालीम और तरबियत के लिए हो, उस पुस्तक को यह भी बताना चाहिए, कि उस हस्ती का क्या नाम है ? और कि मैं इन्सानों की तरबियत के लिए आई हूँ। वेद किन लोगों को दिए गए उनका नाम बतलाइये ? सनातन धर्मी लोग वेदों का प्रकाश ब्रह्माजी पर मानते हैं। और आर्य सामाजिक लोग, अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा पर तथा इस सम्बन्ध में दोनों का एक मत नहीं है, श्री स्वामी विवेकानन्द जी का मत है कि, वेद ४१४ ऋषियों ने बनाये हैं; इसके सिवाय इन प्रश्नों का भी उत्तर दीजिए १—वेदों की तादाद कितनी है जो नाजिल हुए हैं ? २—वेद ११३१ थे, कोई कहते हैं ११२७ थे, परन्तु आर्य, केवल चार ही वेद किस आधार पर बताते हैं ? ३—वेद कहां नाजिल हुए ?

पंडित राम चन्द्र देहलवी—

हमको स्वीकार है, कि सारी खूबियां ईश्वर की ज़ात में है। और वह उनमें से ओरों को भी देता है। और आपके पहले प्रश्न का उत्तर यह है कि वेद में परमात्मा के गुणों के वर्णन करने वाले सैकड़ों मन्त्र है, जिनमें से मैं केवल एक पढ़ता हूँ। "सपर्यगाच्छुक्रमकायम व्रण मस्नाविरं शुद्धमपाप विद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्-व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः" [1]आपके दूसरे प्रश्न का उत्तर वेद मन्त्र से देता हूँ, गौर कर लीजिए ----

'त्वामग्ने प्रथममायु मायवे देवा अकृण्वन्नहुषस्यविश्पतिम्।
इडां कृण्वन्मनुष्यस्य शासनी पितुर्यत्पुत्रोममकस्य जायते ॥११॥

(ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त ३१, मन्त्र ११,)

अर्थात् हे अग्ने: विज्ञान युक्त सभाध्यक्षः विद्वानों ने मनुष्य की विज्ञान वृद्धि के लिए इस (इलाम) वेद वाणी को प्रकाशित किया।

हजरत ! इलहाम शब्द तक आपने वेद से लिया है। इस वेद मन्त्र में "इलाम्" शब्द जो आया है, उसी का रूपान्तर 'इलहाम्' है। जिसका अर्थ है 'ज्ञान' या विद्या, सरस्वती। उस परमात्मा का नाम यजुर्वेद अध्याय ४० के [2]प्रथम मन्त्र में आया हुआ है, और "ओ३म्" जिसका नाम है उस परमात्मा का वर्णन (खं ब्रह्म) इन दो शब्दों से किया गया है, जिसका अर्थ यह है कि, वह "बलिहाज मकाने ग़ैर महदूद"[3] है, क्योंकि आकाशवत् व्यापक है, और बलिहाज सिफ़ात यानी गुणों से वह सर्व श्रेष्ठ है इस लिए उसका नाम ब्रह्म है। आपका यह कहना कि वेद के मुलहमान्[4] का

टिप्पणी—

[1]वह परमात्मा सर्व व्यापक है सर्व कार्य शीघ्रता से करने वाला शरीर रहित नसनाड़ी के बन्धन तथा छिद्र रहित, शुद्ध पवित्र, पापरहित है महान ज्ञानवान् और मननशील है सब ओर स्वयं सत्ता वाला . सदा रहने वाली अनादि प्रकृति से जीवों के लिए सारे पदार्थों को ठीक-ठीक बनाता है। [2]यजुर्वेद अध्याय ४० के प्रथम मन्त्र में नहीं अन्तिम मन्त्र में। [3]स्थान की दृष्टि से असीम है। [4]जिनको वेद का ज्ञान प्राप्त हुआ। "अमर स्वामी सरस्वती"

नाम वेद में होना चाहिए, आपकी भूल है, क्योंकि किसी पुस्तक में उसके प्रकाशक का नाम होना उसको तवारीखी[1] साबित करता हैं, मुझे लगता है, हजरत ! आपको कुरान के स्वप्न आ रहे हैं। जिसमें सिवाय किस्सों के और कुछ नहीं है। ऋषियों ने वेदों द्वारा यह जान कर कि, "नाम" पहचान के लिए हुआ करता है, अपना नाम वेदों के प्रकाश के अनन्तर रखा जो क़रीने क़यास[2] है, वेद ब्रह्मा जी पर प्रकट हुए ! ऐसा सनातनी भाइयों का कहना हमारे विरुद्ध कभी नहीं पड़ता, यह तो आपकी समझ का फेर है, देखिए गायत्र्युपनिषद में लिखा है—"वेदवित् ब्रह्मा भवति" तो चारो ऋषियों को वेद ज्ञान होने के कारण "ब्रह्मा" कहना ही पड़ेगा—अतः चारों पर या एक शब्द में बृह्मा पर वेदों का प्रकाश कह देना विरोध पैदा नहीं कर सकता। स्वामी विवेकानन्द जी भूल करते हैं, यदि कहते हैं कि वेद ४१४ ऋषियों ने बनाये हैं, वे मन्त्रार्थ के द्रष्टा माने जाते हैं, मूजिद[3] नहीं।

[4]तस्माद् यज्ञात्सर्वहुतः.. इत्यादि मन्त्र से चारों वेदों के नाम का सबूत दिया, "वेद ११३१ थे", यह कहना आपकी अज्ञानता है, सनातनी भाई वेद के व्याख्यानों को भी वेद नाम से पुकारते हैं, इस वास्ते आपको भ्रम हुआ है, किन्तु क्या आप नहीं जानते हैं कि मय तर्जुमे के कुरान को भी तो कुरान ही कहा जाता है, क्या आप उसको "तर्जुमा और कुरान" के नाम से पुकारते हैं ? ११२७ सिर्फ वेदों की शाखायें हैं, जब इनमें चार वेद और मिला दिये गए तब ११३१ हो गई, जैसे जड़ और शाखा दोनों का नाम "वृक्ष" ही है, इसी तरह वेद और उनकी शाखाओं को भी सनातनी भाई 'वेद' कह देते हैं।

वेद कहां नाजिल हुए ? इसका उत्तर यह है कि, 'त्रिविष्टप'[5] में नाजिल हुए जो कि सबसे उन्नत स्थान है। और आबो-हवा के लिहाज़ से भी उत्तम है। 'त्रिविष्टप' का अर्थ है जहां ज्ञान, उपासना और कर्मकाण्ड में मनुष्य जाति का प्रवेश हुआ हो।

मौलवी अब्दुल हक़ विद्यार्थी—

मेरा कहना है कि ज़ाति[6] नाम में सारी सिफ़ात[7] होनी चाहिए, किन्तु 'ओ३म' शब्द (अव) धातु से बनने के कारण रक्षा वाची है, इसलिए 'उमू मियते मानवी' (अर्थ-साम्य) लाज़िम आता हैं। जो भी रक्षा करेगा वह ओ३म्' होगा ज़ाति नाम 'अल्लाह' शब्द की तरह बिना धातु के मानना चाहिए, इसके सिवाय जब कि सब वेद मन्त्रों पर उनके मुसन्नफ़ों[8] के नाम मौजूद है, और अथर्व का नाम उस ही में कई जगह आया है तब यह कहना कि वेदों में न तो कोई नाम है और न कोई [9]तवारीख है, कैसे ठीक हो सकता है ? हां ! तीनों वेदों में अथर्व वेद के अर्थ में अथर्व शब्द कहीं नहीं आया—अपने कहने से दावा सिद्ध नहीं होता; इस वास्ते अथर्व वेद अपने वेद होने का प्रमाण यदि स्वयं दे तो माना नहीं जा सकता —यह कहना कि वेद 'त्रिविष्टप' में नाजिल हुए, इसलिए ठीक नहीं, क्योंकि 'नार्थपोल'[10] दुनियां में सबसे ऊँची जगह है, अब आप इन प्रश्नों का और उत्तर दें कि—आपका ईश्वर कहता है कि मुझे तृप्त कर, मुझे सुख दे और यकीनी इल्म दें, ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त १६४ मन्त्र ३० को पढ़िये और ग़ौर कीजिए वहां लिखा है कि "ईश्वर पुष्ट होता है।"[11]

पंडित राम चन्द्र देहलवी—

हम यह मानतें है जनाब ! कि ज़ाति नाम में तमाम सिफ़ात आ जाती है, किन्तु "अव" धातु का अर्थ केवल रक्षा ही करना, यह आपकी भूल है, आपने अपने नाम के पूर्व [12]पण्डित लगाया हुआ है, किन्तु आप संस्कृतज्ञ नहीं हैं। नहीं तो क्या ऐसी मोटी भूल करते ?

टिप्पणी—

[1]ऐतिहासिक, [2]बुद्धि के अनुकूल है, [3]बनाने वाले, [4]तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दासि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ।। यजु० उस परमेश्वर से ऋग्वेद, सामवेद यजुर्वेद और (छन्दांसि) अथर्ववेद प्रकट हुए। [5]अब उसको तिब्बत कहा जाता हैं (अ० स्वा०) [6]मुख्य नाम, [7]गुण, [8]बनाने वालों, [9]इतिहास, [10]उत्तरी ध्रुव, [11]इस मंत्र में जीव का वर्णन है, [12]"मौलवी अब्दुल हक़ विद्यार्थी जी अपने नाम के साथ "पं० अब्दुल हक़ विद्यार्थी" लिखते थे ! जिस पर पण्डित जी ने उपरोक्त बात कही, तो विद्यार्थी जी का चेहरा देखने लायक बन गया था।" (अमर स्वामी)

पंडित रामचन्द्र देहलवी—

खैर ! सुनिए मौलवी साहब जी, "अव" धातु के १६ अर्थ है। (शास्त्रार्थ में जल्दी के कारण १७ अर्थ वताये गए थे) जिनमें परमेश्वर के सब गुणों का समावेश हो जाता है, क्योंकि धातुओं के अनेक अर्थ होते हैं, किन्तु आप बताइये, अल्लाह किस मसदर[1] से बना है ? अगर यह शब्द बेमसदर है तो इसका अर्थ "मुस्तजमे जमीं सिफ़ाते कमालिया" अर्थात् सर्वोत्कृष्ट गुणागार करना, आपका मन माना और बेक़ायदा अर्थ है, यदि इसके मुकाबले में आपके अक़ीदे के मुवाफ़िक़[2] में खुदा का नाम "अल्ला" की जगह "पल्ला" रख दूं तो आप किस क़ायदे से इसे गलत सिद्ध करेगें ? जबकि आप ही की तरह मैंने भी मनमाना शब्द खुदा के लिए मुक़र्रिर कर लिया है, ख़याल कीजिए कि जैसे ही खुदा की ज़ात बामाना[3] है ऐसे ही खुदा के लिए बोला गया शब्द भी बामाना होना चाहिए अर्थात् मस्दरी[4] हो—जिसमें कि सारे सिफ़ाती नाम आ जावें, लेकिन आपका अल्लाह इन तमाम खूबियों से शून्य है, अगर मैं "अल्लाह" का मसदर "इलाह" बता दूं तो आप कैसे गलत सिद्ध कर सकते हैं ? उसू मियते मानवी[5] तो धातु के एकार्थ वाची होने से ही हो सकती है, अन्यथा नहीं आपका यह कहना कि जिस-जिस मन्त्र पर जिस-जिस ऋषि का नाम है वह-२ उसने बनाया हैं, ऐसा कहना हज़रत आपकी नावाक्फियत को जाहिर करता है। ये तो वे ऋषि हैं जिन्होंने सबसे पहले वज़रिये मुराक़वे (समाधि) में अग्नि आदि ऋषियों के बाद उस-२ मन्त्रों के अर्थों को जाना, और जनाया वे वेदों के [6]मूजिद न थे जैसा कि आपका ख़याल है अथर्व वेद के अर्थों में अथर्व शब्द को प्रथम के तीनों वेदों में न बताना और ऐसा बड़ा दावा करना आपकी अज्ञानता है। ऋग्वेद मण्डल-६ सूक्त १५, मन्त्र १७ में अथर्व शब्द अथर्व के अर्थों में आया है। महर्षि दयानन्द का भाष्य देख लीजिए, और सदा के लिए इस ऐतराज को छोड़ दीजिए। आपके उसूल के मुवाफ़िक़[7] अपने कहने से अपना दावा सिद्ध नहीं हो सकता तो कुरान का अपने मुताल्लिक यह दावा कि में खुदा की तरफ़ से हूं, विश्वास योग्य न होगा। हम वेदों को स्वतः [8]प्रमाण मानते हैं, अतः वेद अपने प्रामाण्य के लिए दूसरे की अपेक्षा नहीं करते। आपका 'नार्थपोल' को सबसे ऊँची जगह बताना तब तक विश्वास योग्य नहीं जब तक आप सप्रमाण इसे सिद्ध न करें, वेदों के प्रकाश के लिए सबसे ऊँची जगह ही केवल शर्त नहीं है, बल्कि उसके साथ यह भी लाज़िम है कि, वह स्थान आबो-हवा के लिहाज़ से मनुष्य ज़ाति के सर्वथा योग्य हो, जहां वह अपनी शारीरिक और धार्मिक उन्नति पूर्ण रूप से कर सके। ईश्वर के इल्म हासिल करने का मन्त्र इस अर्थ को नही बताता बल्कि वहां गुरु-शिष्य का वर्णन है यदि आप संस्कृत का अन्वय देखते तो आपको भ्रम न होता परमात्मा की तृप्ति की बात उस परोपकारी के तुल्य है जो अपनी आज्ञा का पालन देखकर तृप्त होता है।

मौलवी अब्दुल हक़ विद्यार्थी—

अच्छा, पण्डित जी आप यह बताइये कि एक ऋषि मन्त्रों के अर्थों को कैसे देख लेता है ? वह कौन सा तरीका है ? दूसरे यदि "अव" धातु के अर्थ १७ ही होते हैं तो गोया खुदा की सिफ़ात भी महदूद हो गई,[9] क्या इससे ज़ियादा सिफ़ात उसमें नहीं है ? मेरा दावा है कि 'ओ३म्' का लफ़्ज़ वेद में नहीं है, इसके सिवाय एक अरब ९६ करोड़ वर्ष वेदों के प्रकाश को हुए तो उस वक्त से तो ऋषि-मुनियों के नाम ज़ाहिर नहीं हुए और ४-५ हज़ार वर्ष से मनुस्मृति बनने से ज़ाहिर हो गये, यह बात कैसे मानी जा सकती है ? यदि वेद का ज्ञान मनुष्य मात्र के लिए है, तो बताइये वेदों के अनुयायी हिन्दुस्तान से बाहर कितने हैं ? (इल्लाले ना लिया) के अर्थ ज़ाहिर करने के हैं, और इब्तिला के माने सिफ़ाते मक्फ़ी का ज़ाहिर[10] कर देना है। आपने ईश्वर की तृप्ति की बाबत खूब उत्तर दिया, यदि जनाब तृप्ति होती होगी तो वैदिक ईश्वर

टिप्पणी—

[1]धातु, [2]विश्वास के अनुकूल, [3]सार्थक, [4]धातुवाला, [5]अर्थ की समता, [6]बनाने वाले, [7]अनुसार, [8]अपने आप में [9]ईश्वर के गुण-सीमित हो गये, [10]छुपे हुए गुणों को प्रकट करना।

की होती होंगी, हमारे खुदा की नहीं, चाहे तमाम दुनियां नेकी या बद आमाल करे, खुदा को उससे कोई आराम या तकलीफ़ नहीं होती, मगर आपके यहां यह बात आती है कि —हे ईश्वर ! आप सुख-दुःख के सहन करने वाले हैं, सो आपका ईश्वर सुखी और दुखी भी होता है।

पण्डित रामचन्द्र देहलवी —

जनाब आला ! आपने पूछा कि ऋषि-मुनी मन्त्रों का अर्थ कैसे-कैसे देख लेते हैं ? सुनिये मौलवी साहब इधर ग़ौर फ़रमाएं ! ऋषि-मुनी मन्त्रों का अर्थ इस तरह देख लेते हैं जैसे सूफी मुराक़वे (समाधि) में परमात्मा के आनन्द को प्राप्त कर लेते हैं। और उनको इसका इल्म भी होता है, ',ऋषि" शब्द ऋ गतौ धातु से बना है, जिसके अर्थ ज्ञान गमन प्राप्ति के हैं, (इल्म-हरकत हुसूल है) जिससे विदित होता है कि वे ज्ञान द्वारा ईश्वर के ज्ञान को प्राप्त करते हैं, और औरों तक पहुंचा देते हैं। अब लीजिए "अव्" धातु की बात ! जनाब ! यह ठीक है कि "अव्" धातु के १६ अर्थ हैं, किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि ईश्वर में सिर्फ १६ ही गुण हैं, ब्लकि इसका मतलब यह है कि, परमात्मा में जितने गुण हैं, वे सब इन्हीं में आ जाते हैं। आप अपने जहन से खुदा की कोई सी सिफ़्त मुझसे पूछिये, में साबित करके बता दूंगा, सो हजरत इतना जामे नाम[१] 'ओ३म' है, देखिये—"ओ३म् खं ब्रह्म" ४० वे अध्याय के अन्त में आता है, वहीं जरा ग़ौर से देखिए-आप तो अपने को वेदों का पण्डित बताकर, यह भी न जान पाये, महा आश्चर्य है। और आपका यह कहना कि एक अरब छियानवें करोड़ वर्ष से तो ऋषि-मुनियों के नाम ज़ाहिर नहीं हुए ४-५ हजार वर्ष से ज़ाहिर हो गये ठीक नहीं। वेद कोई इतिहास नहीं जो किन्ही खास मनुष्यों का नाम बतावें, यह तो कुरान ही है जो कहानी किस्सों से भरपूर है, और जो एक स्मृति से ज्यादा [२]वक़अत नहीं रखती, वेद ने तो स्पष्ट कहा है कि 'वेदो का इलहाम ऋषियों के हृदयों में हुआ, देखिये ऋग्वेद में कहा है - ऋषिषु प्रविष्टाम्··· ··· ··· ···,

(ऋग्वेद मण्डल १० सूक्त ७१)

यहां "ऋषिषु" बहुवचन है, जिसके अर्थ तीन और तीन से अधिक होते हैं। और हम चार पर वेदों का प्रकाश मानते हैं, इससे जितना कि वेद से प्रमाण मिलना चाहिए उतना तो सिद्ध है, और बाकी की बात ? कि उनके नाम भी थे, यह एतिहासिक है, यह बाद की पुस्तकों ने साबित किया। सामान्यतया सारे "ऋक्०" का देवता "अग्नि" है, "यजुर्वेद" का देवता "वायु" है। "सामवेद" का देवता "आदित्य" और "अथर्ववेद" का देवता "अंगिरा" है। इससे भी ऋषि-मुनियों को मदद मिली कि वेदों के इलहाम आने के बाद इस प्रकार वे अपना नाम रखें (ऋक्) के अर्थ स्तुति के हैं।

अर्थात् वस्तुओं की प्रशंसा करे। अग्नि का कार्य हर कसीफ़[३] वस्तु को लतीफ़[४] करने का है, जिससे कि उस वस्तु की पहचान या ताअर्रुफ़[५] होता है, इसलिए "ऋक्" के प्राप्त करने वाले का नाम "अग्नि" हुआ। यजुर्वेद जिस धातु से बना है, उसके अर्थ मिलाने के हैं, वायु भी दो या उससे अधिक वस्तुओं को मिलाता है, इस लिए उस ऋषि का नाम "वायु" है, जो यजुर्वेद का प्रकाशक हैं, "साम" शब्द के अर्थ "आनन्द" के हैं, यह उपासना परक है, आदित्य भी अनेक वस्तुओं को परस्पर मिलाकर नबातात[६] और हैवानात[७] की शक्ल में बदल देता है, इस लिए उस ऋषि का नाम "आदित्य" हुआ। "अथर्व" शब्द के अर्थ 'निश्चल' के हैं, यानी मुस्तक़िल व क़ायम, अंगिरस का अर्थ अंगों का पूर्ण करने वाला है, तकमील पर हर मनुष्य एक जगह जाकर ठहर जाता है, वहां उसके कार्य की समाप्ति होती है ! उसी का नाम अंगिरा हैं,—वेदों में जगह-जगह "अथर्वाङ्गिर सोमुखम्" वग़ैरा आता है, इससे ऋषियों को साफ यह सूचना मिलती है, कि "अथर्व" का लाने वाला "अंगिरा" हैं।

टिप्पणी—

[१]मुख्य नाम, [२]महत्ता, [३]स्थूल, [४]सूक्ष्म, [५]परिचय, [६]वनस्पति वृक्षादि, [७]मनुष्य और पशु पक्षी।

यह कहना कि वेदों के मानने वाले सिवाय हिन्दोस्तान के ओर कहीं नहीं, आपकी अनभिज्ञता को बताता है ? शायद आप समझते होंगे कि वेद किसी किताब का नाम है। और उसके मानने वाले ही उसके "पैरोकार" कहाये जा सकते हैं, यह आपकी भूल है। वेद का अर्थ ज्ञान है, अतः दुनिया में इल्म के मुआफ़िक़ जितने सिद्धान्त प्रचलित हैं उन सबका [1]मसदर व मख़रज वेद है। आप ऐसा कोई उसूल बतावे जो दुनियां के किसी हिस्से में माना जाता हो, परन्तु वेद में न हो, उसूल का मानना वेद का मानना है, न कि वेद कह के उसको मानना। वेद का मानना है इल्लेनालमा के अर्थ ज़ाहिर करने के नहीं हैं ब्लकि जानने के हैं लुग़त देखिये ! इब्तिला के माने सिफ़ातेमक्फ़ी का ज़ुहूर है, जिसका माना (अर्थ) है कि मुमतहिन पर इम्तिहान देने वाले की क़ाबलियत का ज़ुहूर हो जाता है, न कि वह ज़ाहिर करने वाला होता है, ईश्वर की तृप्ति की बाबत तो हम कह चुके हैं वह बार-बार कहना ठीक नहीं।

मौलवी अब्दुल हक़ विद्यार्थी—

"अग्निः पूर्वेभिः" इस मन्त्र से साबित होता है कि वेद सृष्टि के आदि में नहीं हुए ब्लकि बाद के हैं, गवाही के लिए सायणाचार्य कहता है कि पूर्वेभिः से मुराद, वसिष्ठ, वामदेव वगैरा से हैं। तथा ओ३म् में तमाम खूबीयां कहां से पाई जाती हैं ? जबकि वह रक्षार्थक है, आर्य्याभिविनय में लिखा है कि खुदा चोरी करता है, हमल गिराता है। खुदा जानवरों में दाखि़ल हो जाता है। इनका तुम्हारे पास क्या उत्तर है ? वेद मन्त्रों को देखने से पता चलता है कि जिस गरज़ के लिए ऋषियों ने मन्त्रों को बनाया है वही उसका देवता है, रावण का भाष्य भी इसी प्रकार है। ज़ाती नाम सारे सार्थक नामों का होता है, ओ३म् की तरह नहीं जो एक ही अर्थ को बतावे, आपने मान लिया है कि वेदों के अनन्तर भी इलहाम होता है।

पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

यह मन्त्र किसी भी पुरुष को वेदों से पूर्व उत्पन्न हुआ नहीं बताता परन्तु एक सदाक़ते अज़ली को बताता है; जो हर वस्तु और हर मनुष्य के साथ हर ज़माने में निस्वते ज़मानी का प्रकट करने वाली है, यानी हर वस्तु एक की अपेक्षा से पुरानी है, और एक की अपेक्षा से नई है इस लिए वेद ने नये और पुराने का ज्ञान देने के लिए इस मन्त्र का प्रकाश किया है। सायण ने वसिष्ठादि ऋषियों को पूर्वेभिः आदि से जो निर्देश किया है वह अपने निज की अपेक्षा से, क्योंकि ये लोग सायण से पूर्व हो चुके हैं, इसी प्रकार जो मनुष्य जिस समय उत्पन्न होगा उसके लिये पूर्वोत्पन्न मनुष्य पूर्वेभिः में शुमार होंगे। और ईश्वर उन ऋषियों अथवा मनुष्यों का उपास्य होगा। मराक़बे का उत्तर हम पहले दे चुके आप बार-बार उस ही को कह देते हैं, ओ३म् के सम्बन्ध में भी उत्तर दिया जा चुका है। खुदा के चोरी करने और हमल गिराने के सम्बन्ध में जो कि आर्याभिविनय मन्त्र ४६ में आया है, यह बताया है कि, ईश्वर हमारे भोगों को और गर्भादि को [2]ज़ाया न होने दे और उनकी रक्षा करे, चोरी शब्द 'चुर' से बनता है, जिसके अर्थ खण्डन करना, वंचन करना और हरण करना है, जिनका अर्थ है कि हमारे ऐश्वर्य को हमसे दूर न कर अर्थात् नाश न कर क्योंकि, ईश्वर पापी के सारे सामान जो भी आराम के होते हैं उन्हें धीरे-धीरे पृथक (दूर) कर देता है, और मनुष्य [3]मुफ़लिस हो जाता है, इस लिए चोरी शब्द यहां आया है, यहां लौकिक चोरी से मुराद नहीं, यहां दण्ड से अभिप्राय है, जैसे कि राजा जबर्दस्ती पाप के कारण पापी का माल हर लेता है, यह चोरी नहीं कही जा सकती, क्यों कि राजा की तरफ से है, यह नियम राजा और प्रजा दोनों में एक सा नहीं होता, हम अपना माल भी जबर्दस्ती किसी से नहीं ले सकते, परन्तु राजा लेते हुए भी चोर नहीं होता, क्योंकि वह दण्ड के रूप में यह कार्य कर रहा है, इसी प्रकार ईश्वर भी करता है। परमात्मा का जानवरों में दाखि़ल होना बे मानी बात है, यह प्रमाण कहीं नहीं मिला शायद ईश्वर की व्यापकता प्रकट करने के लिए कहीं वर्णन होगा जिसको आप भली प्रकार [4]अक्स न कर सके। दिखाईये वह प्रकरण क्या है ? अगर इस्मज़ात के अर्थ होते हैं तो मस्दर उसका जरूर होना चाहिए, महज़ मन-माना नहीं माना जा

टिप्पणी—

[1]मूल और भण्डार, [2]व्यर्थ, [3]निर्धन, [4]अक्स=ग्रहण।

सकता, मन्त्रों के देवता ऋषियों का विचार किया हुआ मजमून (विषय) है। न कि बनाया हुआ, यदि रावण का भाष्य हो तो पेश कीजिए, कथन मात्र से किसी वस्तु की सिद्धि नहीं हो सकती, हमारे ईश्वर का जाती नाम मुसलम्मा तमाम नामों का है यह सिद्ध कर दिया गया, किन्तु आपका अप्रसिद्ध है, वह धातु के बिना कभी सिद्ध नहीं हो सकता। वेदों के प्रकाश के अनन्तर भी इल्हाम (ज्ञान) होना आर्य समाज का एक साधारण उसूल (नियम) है, उस पर आपको आश्चर्य क्या है ? किन्तु मौलवी साहब ! कहीं हिदायती इलहाम न ले लेना, मैं उस इलहाम का जिक्र करता हूँ जिसको हर मनुष्य समाधिस्थ होकर विचार करने से प्राप्त कर सकता है।

मौलवी अब्दुल हक़ विद्यार्थी—

पण्डित जी महाराज किसी भी शब्द के अर्थ मालूम करने के लिए उस भाषा का कोष देखना चाहिए, आपका यह कहना कि वेदों में जितने शब्द आये हैं, वे गुण-कर्म-स्वभाव को बताते हैं, न कि किसी विशेष व्यक्ति को ! यह माना नहीं जा सकता, क्योंकि निरुक्त प्रस्कण्व का अर्थ कण्व का पुत्र करता है, मैं वेद के कण्व उसका पिता और दादा तथा वशिष्ठ के बाप का नाम तक दिखाने को तैयार हूँ। देखिए वेद कहता है—"हे ! तुम जो कण्व की बात को सुनते हो प्रस्कण्व की बात को भी सुनों (ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त ४५ मन्त्र ३०) इसी सूक्त के चौथे मन्त्र में कण्व के पुत्र का जिक्र है, 'अग्नि पूर्वेभिः' मन्त्र में आप सदाक़ते अज़ली बताते हैं, यदि हम यह भी मान लें कि हर वस्तु निस्वतन् नई और पुरानी भी हो सकती है तो भी बताइये—सायण ने भृगु और अंगिरा वगैरह को पूर्वेभिः में क्यों शुमार किया ? कुरान में आया है कि—"लहुल अस्मा उल् हुस्ना" यानी उसी ही के लिए तमाम अच्छे नाम होते हैं। इसलिए अल्लाह शब्द एक अंग्रेज ने भी अपनी डिक्शनरी में यही लिखा है कि—'COMP RISING ALL THE ATTRIBUTES OF PERFACTION' किन्तु 'ओ३म्' हर मन्त्र के शुरू में नहीं बोला जाता, बल्कि गाने वाले शुरू में जैसे स्वर लगाते हैं, उसी प्रकार गाने के कारण इसका नाम 'ओ३म्' रख लिया है। एक प्रश्न और है; "अग्नि" आदि तो सब ऋषि कहाये परन्तु ऋषि दयानन्द 'महर्षि' क्यों हुए ? दूसरे यदि मन्त्र कृत के अर्थ विचार करने के हैं, अर्थात् मन्त्र का अर्थ विचार और उसको करने वाला मन्त्र कृत हुआ तो ईश्वर कृत भी वही हुआ (ऋग्वेद मण्डल ७ सूक्त २२ मन्त्र ६) में भी पुराने और नये ऋषियों का जिक्र है। (ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त ८० मन्त्र १६) में अथर्व और मनु का जिक्र है इनका उत्तर सविस्तार दीजिए।

पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

हम भी मौलवी साहब ! इस बात को मानते है कि हर भाषा का कोष ही उनके अर्थों को जाहिर (प्रकट) करता है। परन्तु हमने जिन शब्दों का अर्थ करके बताया है, वे सब व्याकरणानुकूल और लुग़त के मुआफ़िक हैं। यदि आप कुछ विद्या बल रखते हैं तो हमारे किये अर्थों का खण्डन कीजिये, आपकी बात का खण्डन तो इतने से ही हो जाता है कि कण्व इत्यादि किन्हीं विशेष गुणों के वाचक हैं, संज्ञा शब्द नहीं है, क्योंकि हर विशेष से पहले सामान्य होता है, लकड़ी पहले होती है, कुर्सियां बाद में होती है, आप खुश तो बहुत होते हैं जब यूरोपियन लोगों के गले-सड़े एतराज को हमारे सामने पेश करते हैं, किन्तु आपको यह खबर नहीं कि—ऋषि दयानन्द के बताये हुए वेद भाष्य के तरीके में वे सब उड़ जाते हैं, सुनिये 'कण्व' के अर्थ 'मेधावी' पुरुष के हैं। "प्रस्कण्व" के उससे भी अधिक विद्वान के है, वसिष्ठ के अर्थ "कायम" (मिजाज) के हैं। "प्रस्कण्व" की आवाज सुनने का यह अर्थ है कि अत्यन्त मेधावी मनुष्य की बात पर ज्यादा अमल करो। कण्व के बेटे का अर्थ है मेधावी पुरुष के विद्यार्थी, देखो-ऋषि दयानन्द का भाष्य (मण्डल १ सूक्त ४५ मन्त्र ४) सायण ने तो भृगु और अंगिरा को "अपनी अपेक्षा से न कि वेदों की अपेक्षा से" 'पूर्व' में गिना है। इसी तरह हम भी अपने पूर्वों को पूर्वे कह सकते हैं। "लाहुल उल०" में कोई हमको एतराज नहीं सिवाय इसके कि—'रऊफुर्रहीम' कुरान में खुदा के और रसूल दोनों के लिए आया है। जिससे शिरकतें इल्मी साबित होता है, और [1]इस्मसिफ़ात का नाम होता है, लिहाजा "शिरकत फिस्सिफात" सिद्ध होता है, और [2]वहदानियत का नाश हो जाता है।

---

[1]गुणों में एकता। [2]ईश्वर का एक होना।

'ओ३म्' को गवैयों का प्रारम्भिक स्वर बताना आप ही जैसे मनुष्यों को शोभा देता है। यदि मैं भी 'अल्लाह' को गवैयों का स्वर बता दूं तो आपके पास क्या उत्तर है? स्वामी दयानन्द जी को महर्षि हम आदरार्थ और सम्मानार्थ कहते हैं, यह निस्वती तौर पर नहीं बोला जाता, और जब आपके यहां मुहम्मद साहेब सैयदुल मुसिलीन (भेजे हुओं में सरदार) कहे जाते हैं, जो सबसे पीछे आये। तो फिर आपको महर्षि शब्द लगाने में हमारे ऊपर क्यों एतराज़ है? ईश्वर कृत के अर्थ हैं कि वेद ईश्वर के बनाये हुए हैं, और ऋषियों कृत मन्त्र के अर्थ है कि ऋषियों ने विचारा या आपने ऋग्वेद मन्त्र १ और ७ का जो हवाला दिया उसमें पुराने और नये शब्द का यही अर्थ है; जो पूर्व कह चुके हैं। अथर्व के अर्थ अहिंसक और क़ायम मिज़ाज पूर्ण, और मनु का अर्थ ज्ञानी है, क्योंकि यह मन ज्ञाने से बना है।

नोट—

अनेक बार दोहराने के कारण कई बार के प्रश्न एक जगह ही लिख दिए हैं।

मौलवी अब्दुल हक़ विद्यार्थी—

मैं अरबी जुबान को खुदा की जुबान मानता हूं, व्योमन् का अर्थ आकाश है और ईश्वर भी हैं, अतः ओ३म् नाम इसमें जाने से आकाश वाचक भी हुआ। अल्लाह में अलिफ़्-लाम् इनसेपरेबिल (Inseperable) हैं। कण्व का नाम आठवें मण्डल में पचास दफ़ा आया है। "जिनके खुदा का नाम पैदा उनका खुदा पैदा" ऋषि ही पहुँचाने वाला ऋषि ही प्राप्त करने वाला है। और हमारे यहाँ इसके लिए नबी और रसूल दो शब्द पृथक्-पृथक् आये हैं। वेद वहाँ उतरे हैं जहां, गंगा, यमुना, सरस्वती, मौजूद हैं। पहले गुणी का नाम होना चाहिए पीछे गुण का, एवं वामदेव ऋषि का नाम वेद में मौजूद है—हमारे यहां खुदा कुरान की खुद हिफ़ाजत करता है, जैसा कि उसने कहा है-"इन्नालहूलहाँफ़िज़ून"।

पण्डित राम चन्द्र जी देहलवी—

मौलवी साहब सुनिये, अरबी जुबान को खुदा की जुबान मानना महज़ दावा ही दावा है, इसमें सबूत कोई नहीं, और ऐसा कहना कुरान के भी खिलाफ़ है, जरा खुदा की बात का तो ध्यान रक्खा करो। खुदा कहता है कि—

"इन्नमा यस्सर्नाहुबिलिसानेकैला अल्लहुंयतज़क्करून्"

अर्थात् "बस सहल कर दिया है हमने इसको तेरी जुबान में ताकि लोग समझें" खुदा साफ फर्माता है कि, अरबी जुबान इन्सानी जुबान है, क्योंकि यहां पर 'तेरी जुबान में' करके कहा गया है, न कि खुदा की जुबान में! खुदा की जुबान तो वह है जिससे सहल करके कुरान दिया गया है। वह सिवाय देववाणी के और नहीं हो सकती, देववाणी का अर्थ ही "अल्लाह की जुबान है" अगर कुरानी खुदा सहल न करता तो आपसे कई जन्म में भी इसका शुद्ध उच्चारण न हो सकता था। व्योमन् का अर्थ जो आकाश किया गया है, वह बिल्कुल ठीक है, आप आकाश के अर्थ केवल आकाश नहीं लेते हैं, वेदान्त को देखिए जहाँ आकाश ईश्वर का वाचक है, जिसमें जीव और प्रकृति भी शामिल हो जाती है, ईश ऐश्वर्य धातु से ईश्वर शब्द बना है। जिसके अर्थ ऐश्वर्यवान् के हैं। जीव और प्रकृति, परमात्मा का ऐश्वर्य है और व्योमन् में वि० ओम् और अन् है, जिनका अर्थ है, जीव, ईश्वर और प्रकृति! अतः सिद्ध है व्योमन् का अर्थ आकाश ठीक है जो ईश्वर वाचक है। अलिफ़-लाम् को अभेद्य बताना आपका महज़ मन माना है, क्योंकि आप कोई नियम पेश नहीं कर सकते, मैं कहता हूँ कि यह तारीफ़ी है और यह शब्द इलह् मस्दर से बना है। जिसका अर्थ माबूद (उपास्य देव) के हैं।

ऋग्वेद मण्डल ८ में 'कण्व' शब्द जो अनेक बार आया है, वह मेधावी मनुष्य का ही वाचक है। जहां भिन्न-भिन्न कामों की सिद्धि ऐसे मेधावी मनुष्य के उपदेश से ही हो सकती है। विशेष पुरुषों के नाम ख़याल करना महज़ जहालत और नाफ़हमी का सबूत है। और आपने यह बात खूब कही कि "जिनके खुदा का नाम पैदा उनका खुदा पैदा" इस भोलेपन पर हमको हंसी आती है, अगर आपकी दलील सही मानी जावे तो जिस जुबान का 'अल्लाह' शब्द है, जब वही जुबान पैदा शुदा है तो अल्लाह भी पैदा शुदा हुआ। हज़रत! इन दलीलों से परमात्मा में दोष नहीं आता, मसदर वह हकीकत हैं जो खुदा की ज़ात में तमाम कमालात का सबब है, न कि वह जो आपको वहम हो रहा है। ऋषि शब्द के "ऋ" गतौ धातु से दोनों अर्थ होते है, ज्ञान का प्राप्त करने वाला और पहुँचाने वाला, वेद मन्त्र के द्वारा वेदों का प्रकाश ऐसे मुल्क (देश) में बताना जहां गंगा आदि नदियां हों, केवल दावा है, जो केवल जाहिलों में ही खप सकता है, विद्वानों

में नहीं, अगर आप यह साबित कर दें तो मैं एक हजार रुपए देने को तैयार हूँ। यह कहना कि पहले गुणी का वर्णन हो, पीछे गुण का, यह सर्वथा अमान्य है, क्योंकि पहचान वज़रिये सिफ़ात होती है। ज़ात कोई पृथक् वस्तु नहीं है, केवल पृथक-पृथक वर्णन का नाम गुण है, और सम्पूर्ण गुणों का नाम ज़ात है, आप कुरान में 'बिस्मिल्लाह' से लेकर वन्नास तक कोई ऐसी आयत पेश करें जिसमें खुदा की ज़ात का बयान हो। लेकिन यह याद रहे कि वह 'बशक्ले सिफ़ात' न हो। 'फइल्लम् तफ़्अलू वलं तफ़्अलू' पर अगर तुम पेश न कर सके (जैसा कि तुम पेश न कर सकोगे) मेरी ही बात सादिक़ रहेगी कि बयान सिफ़ात ही का होता है, और उस ही से ज़ात पहचानी जाती है। वामदेव भी पूर्व की भांति किसी पुरुष विशेष का नाम नहीं, वामदेव ऋषि प्रशस्त विद्वान् दीर्घ दर्शी पुरुष का वाचक है, कुरान की खुदा-खुद हिफ़ाज़त करता है, अगर आपका यह कथन सत्य होता तो पहले वाली किताबों में तहरीफ़ (प्रक्षेप) न होता, और अगर वह हिफ़ाज़त करना जानता था, और प्रक्षेप न हटा सका तो अब भी प्रक्षेप हो जावेगा। वेद के मुताल्लिक परमात्मा ने स्वयं कहा है कि—

"पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति"

अर्थात् परमात्मा के उस ज्ञान को देखो जो न नष्ट हुआ और न कमजोर होता है। यह ईश्वर के नियम की तरफ़ भी इशारा है, जो वेदानुकूल ही संसार में चल रहा है। अर्थात् ईश्वरीय नियम में न फ़र्क़ है, न कभी होगा। यानी परमात्मा के कौल (वचन) और फेल दोनों लातग़य्यर और लातबद्दल हैं।

मौलवी अब्दुल हक़ विद्यार्थी—

यद्यपि वेद मन्त्र से, यह सिद्ध नहीं होता कि, वेद गंगा, यमुना वाले मुल्क में प्रकाशित हुए हैं, तथापि इनका नाम तो वेद में है, अब मैं वेद के मन्त्र का एक टुकड़ा बोलता हूँ आप उसका क्या अर्थ लेगें कृप्या बतलावें—"नवधाऽथर्वणो-वेदः" इससे नौ वेद सिद्ध होते हैं। 'नबी' का अर्थ कुरान खुद बयान करता है, जिनको अल्लाह-ताला मवऊस करता है— देखिए—"कानन्नास उम्मतन् वाहवतन् फ़ब असल्लाह हुन्नवीईन् मुबश्शरीन व मुंज़रीन्" और आपके सामवेद में केवल ७२ मन्त्र उसके अपने है, बाकी ऋग्वेद के हैं। अथर्व वेद का प्रथम मन्त्र—ये त्रिषप्ता परियन्ति... . है। किन्तु भाष्यकार ने शन्नो देवी रभिष्टये .... इत्यादि लिखा है। यमयमी सूक्त में जो स्त्रीलिंग के शब्द हैं, वे स्त्रियों के बनाये हुए हैं, और पुल्लिंग यम के बनाए हुए हैं। इन सब बातों से भी पण्डित जी महाराज "वेद इलहाम सिद्ध नहीं होता"।

पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

आपने जो यह कहा है कि, मैं गंगा-यमुना की स्तुति करता हूँ, यह ठीक नहीं, गंगा आदि शब्द रूढ़ी नहीं है, इनके अर्थ निरूक्तकार ने स्वयं किए हैं, कि गंगा गमनात् इत्यादि। वहाँ देखिए तेज चलने वाली का नाम गंगा, धीरे चलने से यमुना, सैकड़ों जलवाली होने से शतुद्रि आदि। इस प्रकार के गुण वाचक शब्द वेदों में देखकर भारतवर्षीय लोगों ने उन-उन गुण वाली नदियों के नाम गंगा आदि रखे हैं, न कि गंगा नदी के बाद वेदों की उत्पत्ति हुई है। सारी दुनियां की नदियां इन्हीं नामों में आ जाती है। क्योंकि प्रत्येक नदी का गुण इन मन्त्रों में वर्णित है। नवधा से आशय है नौ शाखायें देखिए महाभाष्य ज़रा समझकर पढ़िये, नकल के लिए भी अकल की जरूरत है।

'नबी' का अर्थ जो कुरान ने किया है, वह मुबश्शरीन और मुंज़रीन में भी लग जाते हैं, इसलिए कोई वैशिष्टय नबी में नहीं रहता, मैंने नबी का मसदर पूछा था जिसका आपने कोई उत्तर अभी तक नहीं दिया, सामवेद में ७२ मन्त्र विशेष हैं, यह ठीक है, परन्तु प्रकरणानुसार वहां पर सारे मन्त्रों का अर्थ भिन्न है। "शन्नो देवी........." का प्रथम पाठ यज्ञ के कारण भाष्यकार ने किया है। यमयमी सूक्त में स्त्री का वर्णन होने से स्त्रीलिंग शब्द है, न कि स्त्री के बनाए हुए हैं, कुरान में "सीग़ामौन्निसक" आने से वह आयत क्या स्त्री ने बनाई होगी? नहीं! यह माना नहीं जा सकता। अब आपका कोई प्रश्न नहीं रहा जिसका मैंने उत्तर न दिया हो, मैं आशा करता हूँ कि आप मेरे इन प्रश्नों से सन्तुष्ट हुए होंगे।

नोट—

इसके बाद मौलवी साहब जी ने उन्हीं पुरानी बातों को दोहराया और ये आज प्रथम दिन का शास्त्रार्थ शान्तिपूर्वक समाप्त हुआ। दोनों ही फ़िरकों की तरफ़ से कोई गड़बड़ी या हाय...हुल्ला बिल्कुल नहीं हुआ।

चालीसवां शास्त्रार्थ

स्थान : सिकन्दराबाद—जिला बुलन्दशहर (उ०प्र०)

दिनांक : सन् १९२४ ई० दिन के ढाई बजे, (दूसरा दिन शुक्रवार)

विषय : कुरान से इलहाम की तारीफ़ के मुताबिक़ क्या कुरान इलहामी किताब है ?

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पंडित रामचन्द्र जी देहलवी

मुसलमानों की तरफ से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री मौलवी अब्दुल हक़ विद्यार्थी तथा मौलाना असमतुल्ला खां साहिब

नोट : यह संस्मरण श्री श्याम लाल जी (पटियाला) निवासी द्वारा प्राप्त हुआ । उनके हम हृदय से आभारी हैं ।

"सम्पादक"

नोट—आज दिन अति सुन्दर था, कल की सी गर्मी नही थी आठ-नौ हजार मनुष्यों की उपस्थिति थी, जुमें के कारण शास्त्रार्थ में आध घण्टा मुसलमानों ने बढ़वा लिया था। इस वास्ते ठीक २ बजे की जगह ढ़ाई बजे शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ।

शास्त्रार्थ आरम्भ

पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

१. कुरान से इलहाम की तारीफ़ और उस तारीफ़ के मुताबिक कुरान इलहामी है, यह साबित कीजिए, क्योंकि 'इलहाम' शब्द ही कुरान में सिर्फ एक जगह आया है। और वह भी कुरान के लिए नहीं। कुरान को 'वही' तो कहा है किन्तु इलहाम नहीं कहा जैसा कि इस आयत में साफ है। "कुल् इन्नमा अन्बशरुम मिस्लुकुम् यूहा इलैया" अर्थात् कह दे कि मैं एक बशर मानिन्द तुम्हारे हूं और मुझ पर 'वही' होती है।

२. इसका क्या सबूत है कि जिब्राईल 'वही' के पहुंचाने में भूल कर या जानकर गलती नहीं करते थे। जब कि खुदा तक जिब्राईल की पहुंच ही न थी, इसके सिवाय खुदा से कोई दू ब दू बातें भी नहीं कर सकता, देखिये आयत—"वमाकानाले बशरिन् ऐ युक्कलिम हुल्लाहुवल्ला वहयन् ओमिन् बराए हिजाबिन औयुर सिलरसू लनुफ़ यूहेया बे इज़् हीं मायशाइन्नहू अलीयुन् हकीम्।"

अर्थात् किसी मनुष्य को मक़दूर नहीं कि कोई खुदा से दू ब दू बातें कर सके। मगर 'वहे' के जरिये से या परदे के पीछे से या वह रसूल भेजे कि जो उसके हुक्म से जो वह चाहे 'वही' करे, वह खुदा बहुत बड़ा और हिक्मत वाला है। इससे सिद्ध है कि जिब्राईल दू ब दू बातें नहीं कर सकते थे। और फिर बिचौलिये की जरूरत भी क्या थी। जबकि खुदा हर जगह मोजूद है। और अगर जरूरत है तो खुदा महदूद है।

३. 'मुतशाविहात' (जनके अर्थों का यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकता, और "हुर्फ़ मुक्तयात" (पृथक-पृथक अक्षर) भी कुरान में मौजूद हैं। 'मुतशाविहात' आयतों का अर्थ सिवाय अल्लाह के और कोई नहीं जान सकता और इसी तरह 'हुर्फ़ मुक्तयात' भी हैं, देखिये तीसरी सूरत का पहला रुकूअ—

"हुवल्लज़ी अन्ज़ल अलैकल् कितावामिन्हू आयातुम् मुहक्मातुन् हुलहमुल्ल किताब व जखरू मुतशाविहातफ् अम्म ल्लज़ीनां फ़ी क़ुलूवे हिमजयुगम फ़यत्ताविऊना मात श्री बहा मिनहु अब्तिगा ३ अल्फ़ित्नते वब्तिगा अलावील है, माया अलमुतावीलहू इल्लल्लाह (म) वर्रा लिखू ना फ़िल् इल्मयक़ूलूना आमन्ना विही कुल्लुम् मिन् इन्दि रब्बिना"

अर्थ—वही है जिसने यह किताब तुम पर उतारी है। जिसमें से बाज आयतें पक्की हैं, और वही असल किताब है, और दूसरी मुवहम। तो जिन लोगों के दिलों में कजी है, वह तो कुरान की उन्हीं आयतों के पीछे पड़े रहते हैं, ताकि फ़िसाद पैदा करें, और ताकि उनके असली मतलब की टोह लगायें, हालांकि अल्लाह के सिवाय उनका असली मतलब किसी को भी मालूम नहीं, और जो इल्म में बड़ी पायगाह रखते हैं, वे तो इतना कह कर रह जाते हैं कि इस पर हमारा ईमान है। सब हमारे परवर दिगार की तरफ़ से है, जब कुरान में ऐसी आयत है जिनका अर्थ खुदा के सिवाय और कोई नहीं जान सकता तो इनका नाज़िल होना बिल्कुल फ़जूल और अवस है। इसी तरह हुर्फ़ मुक्तयात भी बा लिहाज मानों के पहुंच से बाहर है, क्योंकि हर मनुष्य अपनी इच्छा से इनका अर्थ कर सकता है। इस लिए कुरान इलहामी पुस्तक नहीं है। अहमदी लोगों ने अपनी कुरान में "फ़िल इल्म, के बाद भी वक्फ़ (विराम) रखा है, जो साफ कुरान में प्रक्षेप है, यह तब्दीली (परिवर्तन) आर्यों के डर से की गई है। मुसलमानों को चाहिए कि उनसे पूंछें कि यह क्यों किया है?

नोट—

ऐसा कहने पर सारे मुसलमानों में खलबली सी मच गई, मेज के पास बैठे मौलवी कुरान के वर्क [पन्ने] पलट-२ कर देखने लगे और देखने के बाद चुप बैठे रह गये, इसका कोई जवाब उनके पास न था।

४. कुरान में नमाजों की तादाद (गिनती) नहीं है यानी नमाजें पांच हैं, यह कहीं नहीं लिखा और न उनके समय ही दिए हैं। हाँ! सुबह और शाम की नमाज का जिक्र तो बहुत जगह है, जो हमारी संध्या की ही नक़ल है।

५. कुरान में कलमा इकट्ठा नहीं है, फिर उसको कैसे माना जावे ?

६. क़ुरान में शिर्क की तालीम है, ख़ुदा ने ख़ुद कहा है कि सिवाय ख़ुदा के और किसी को सिजदा नहीं करना चाहिए, मुसलमान भी यही मानते हैं कि—'ग़ैरल्ला' यानी अल्लाह से ग़ैर को सिजदा करना हराम है, देखिये आयत—"वमिन् आयाते हिल्लैलू वन्नहारू वश्शम् सुवलकमर लातसजुदू लिश्शम्से वलालिल् कमरे वस्जुदू खिल्लाहिल्ल जी खलक़ हुन्नाइन्न् क़ुन् तुम्र्ईयाहू तावुदून"। अर्थात् उसी की निशानियों में से हैं। दिन-रात, सूरज और चाँद, सिजदा करो न सूरज को न चाँद को, सिजदा करो अल्लाह ही को कि जिसने इनको पैदा किया है। अगर तुमको उसकी इबादत करनी है।

अत: सिद्ध है कि ख़ुदा पैदा शुदा चीजों के सिजदे को मना करता है, लेकिन दूसरी जगह आदम के सिजदे के लिए फ़रिश्तों को हुक्म देता है, यह कुरान में शिर्क की तालीम है, शैतान इससे इन्कार करता है, और शिर्क से इन्कार की सजा ख़ुदा की तरफ़ से यह होती है कि वह हमेशा के लिए लानती गन्दाना जाता है। इस लिए परस्पर विरोध होने से क़ुरान इलहामी नहीं हो सकता।

७. ख़ुदा और शैतान के काम में फर्क नजर नहीं आता। ख़ुदा और शैतान व रुए क़ुरान—दोनों बहकाते हैं। देखिये आयत—"आतुरी दूना अन् तह्‌दू मन् अज्वल् लल्लाह वमैं युज् लि लिल्लाहु फ़लन् तजिदलहू सवीला" क्या तुम यह चाहते हो कि—राह दिखाओ उसको जिसको अल्लाह गुमराह करे, तुममें से कोई उसको राह रास्त नहीं दिखा सकता।

यहां खुदा और शैतान में कुछ भी भेद नहीं है इसी लिए व अक़ायदे इस्लाम ख़ुदा के बन्दों की तादाद कम और शैतान की ज्यादा है, देखिये लिखा है कि—"वक़लीलुम् मिन् इबादे यश्शकूर" अर्थात् मेरे बन्दों में बहुत कम शुक्रगुजार हैं" इसलिए भी ऐसी तालीम देने वाला क़ुरान इलहामी नहीं हो सकता।

८. शैतान के मुकाबले में ख़ुदा आजिज नजर आता है इसी वास्ते जबकि वह आदम को सिजदा न करने के जुर्म में दर्गाह से रोंदा गया तो उसने ख़ुदा से क़यामत तक की मोहल्लत मांगी, ख़ुदा ने बिना सोचे, समझे फ़ौरन तब तक की छुट्टी दे दी। और खुदा की इज्जत की क़सम खाकर कहा कि मैं तमाम लोगों को बहकाऊँगा। सिवाय उनके जो तेरे ख़ालिस बन्दे हैं, यहाँ शैतान के रौब से ख़ुदा गऊँब हो गया है जो ऐसे बदकार को हमेशा की छुट्टी देता है, इतना क़मजोर "ख़ुदा का कलाम" नहीं माना जा सकता।

९. वर्तमान क़ुरान की तरतीब व सूरतें इलहाम नहीं हैं। क्योंकि जो तरतीब इस समय क़ुरान की है, वह हजरत उस्मान ने पलट कर शाया (प्रकाशित) की है पहले नुस्खे जला दिये गये और बहुत सी आयत व सूरतें उस असिल क़ुरान से गायब हैं, जो ख़ुदा की तरफ़ से नाजिल हुई थी, बहुत सी बकरीयां चर गई, जो पत्तों पर लिखी हुई थी। इस तरह क़ुरान अपनी असली हालत में मौजूद नहीं है, और उसको ग़ैर मुबहम और ग़ैर मुहर्रफ़ कहना मुसलमानों की खुशफ़हमी और अन्ध श्रद्धा ही है।

१०. क़ुरान वरुए क़ुरान अदना दर्जे की तालीम देती है देखिये आयत—"युरी दुल्लाहु ऐं युख़फ़्फ़िफ़ अलकुम् वखुलिक़ लुइन्सानों ज्वईफ़ा" अर्थात अल्लाह चाहता है कि तुम पर से बोझ हल्का करे और इन्सान कमजोर पैदा किया गया, इस लिए ऊपर की दोनों बातों से भी सिद्ध है कि क़ुरान इलहाम नहीं। अब सुनिये मैं आपकी ख़ातिर सच्चे

इलहाम की शरायत भी सब बताये देता हूं। मैंने ऊपर १० कारण बतायें जिनको मद्दे नज़र रखते हुए दुनियां का कोई भी आलिम कुरान को इलहामी सिद्ध नहीं कर सकता, यह मेरा दावा है। हां! अब आप सच्चे इलहाम की शरायत सुनिये—

वह सृष्टि के आरम्भ में पाक मनुष्यों के पाक दिलों में बिला वास्ते गैरी ज़ाहिर किया जावे—तो क़ुरान इब्तिदाये दुनियां में पैदा नही हुआ यह तो सभी जानते हैं, मगर जिन पर कुरान नाज़िल हुआ वे भी वरुए कुरान गुनाह से ख़ाली न थे देखिए आयत—"लियग़ फिरा लकल्लाहु मातक़्क़हम मिन् जम्बिक व मा त आख़िरा" ताकि तेरे अगले और पिछले दोनों गुनाह माफ़ कर दिये जावें। इस लिए इन उपरोक्त हेतुओं के कारण क़ुरान इलहामी पुस्तक नहीं है।

मौलाना अस्मतुल्ला खाँ—

(तपाक से उठकर) बोले! वल्लाह!! आपने तो १० मिनट में ही इस क़दर सवाल किये हैं कि शायद में सारे वक्त में भी उनमें से थोडों का भी जबाब न दे सकूंगा—हाँ! एक-एक सवाल का एक-एक वक्त में जवाब दूंगा। सुनिये—जब विषय सच्चा इलहाम रक्खा गया है, तो आप उसी के मुताविक़ बहस करें जनाब! आपने तो ईंट ही टेढ़ी रक्खी है, तो मकान क्या ख़ाक बनेगा?

नोट—आप के लिए मुसलमानों ने पहले से ही बड़ा रोब डाला हुआ था कि बड़े पण्डित है, संस्कृत के बड़े विद्वान हैं, और साहव क़ुरान के तो कहने ही क्या है? आपने अपनी तक़रीर में किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया २-४ शेर पढ़ते रहे, और आप की बातों पर लोग हँसते रहे, पं० रामचन्द्र जी देलहवी जी के इतने प्रश्नों में से एक को भी छुआ तक नही। अन्त में सिर्फ़ आर्य समाज पर २-३ ऐतराज कर दिये और कहा "क्यों जनाब! आपको शैतान से इतनी मुहब्बत क्यों है? आप ज़रा आर्याभिविनय तो उठा कर देखें जिसमें लिखा है कि—"पिरिया भोजनानि मापर-मोषी" यानि ऐ ओ३म् जी महाराज! हमारे प्यारे-प्यारे बर्तनों को मत चुरा। देखिए आपके ओ३म् जी महाराज चोरी भी करते हैं -'मायोवधी" हमको मत मार, यहां आर्यों के ओ३म् जी मारते भी हैं। अव बताइये वेद इलहामी कैसे है?

नोट—"आपने इसी तरह इधर उधर की बातें करके १० मिनट खतम किये, आप इतने घबड़ा गये कि "भोजनानि" का अर्थ बरतन करने लगे। आपको एक अक्षर भी संस्कृत का नहीं आता था, और न क़ुरान का ही आपको कोई खास ज्ञान था, न मालुम मुसलमानों ने आपको क्या समझकर खड़ा कर दिया शास्त्रार्थ के काबिल अगर आप होते तो आपके प्रेसीडेन्ट (प्रधान) को यह नही कहना पड़ता कि शुरु में अस्मतुल्ला जी खडे होगें और फिर अगर ज़रूरत हुई तो बादे नमाज़ मौलवी अब्दुल हक़ साहिब खड़े होंगे।"

पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी—

शाबास! उत्तर देने को खड़े हों तो आप सरीखे!! मज़ा आ गया तक़रीर सुन कर, आपको खुद तो मेरा ख्याल है शर्म छू कर भी नही गई, मौलवी साहब जी मुझे एक बात बताइये अगर आप मेरे प्रश्नों का जवाब नहीं दे सकते थे, तो खडे क्यों हो गये? मौलवी साहब! मैंने तो सच्चे इलहाम के विषय में ही प्रश्न किये हैं। कुरान से इलहाम की तारीफ़ तौर क़ुरान के इलहाम होने का सबूत मांगना, क्या विषय से बाहर की बातें हैं? आपने अपना उत्तर तो दिया नही, उलटे आप मुझ पर सवाल करते हैं। इससे आप स्वयं गिरते जाते हैं, "प्रिया भोजनानि" को गलत सलत पढ़ कर और भोजनानि का अर्थ बरतनों करके अपने नाम के आगे "पण्डित" लगाते हो। अफ़सोस! महा अफ़सोस!! मौलवी जी मुझे देहलवी कहते हैं! राम चन्द्र देलहवी!! तुम्हें आज छटी का दूध न याद दिलाया तो मुझे भी लोग कैसे देहलवी के नाम से याद करेगें! आप इसी बलबूते पर पण्डित बने फिरते हों! आज तुम्हारी सारी कलाई खुल गई, 'अन्धो में काणा राजा' आज देख लेंगे मुसलमान भाई भी कि हमारा मौलवी कितना वड़ा पण्डित है? में पहले इसका ही अर्थ करता हूं। और मौलवी जी से खास तौर पर दर्खास्त करूंगा कि ग़ौर से सुनें!

नोट—इतना सुनना था कि मुसलमानों में सन्नाटा छा गया, तथा मौलवी को "काटो तो खून नहीं" वाला हाल हो गया। "सुनों! ग़ौरे से इसका अर्थ सुनों—प्र पूर्वक मुष् धातु से प्रमोषी शब्द बनता है। जिसका अर्थ धीरे-धीरे किसी वस्तु को नष्ट कर देना है। यही 'चुर' धातु का अर्थ है। *चुर धातु वञ्चने-खण्डने-हृते इस प्रकार तीन अर्थों में आती हैं। सो यहां अपहरण अर्थ है, अर्थात परमात्मा पापी मनुष्य की सारी सुख सामग्री को उसके कर्म के मुताबिक धीरे-धीरे नष्ट कर देता है। यही यहां आशय है। हज़रत आगे पढ़ो स्पष्ट लिखा है "नष्ट न कर" शैतान से हम इस लिए मोहब्बत करते है कि शैतान ही ने सबसे पहले खुदा के सामने शिर्क से इन्कार किया था। अब आपने और कुछ कहा ही नहीं, जवाब क्या दिया जावे? अगर मौलवी साहब आप में ताक़त हो तो मेरे प्रश्नों का उत्तर दीजिये।

मौलाना अस्मतुल्ला खां—

देखिये! आपके वेद में आता है—"सहसर शरिसा पुरूषः सहस्त्रक्षः सहसर पाद"। यानी वह खुदा हजार सिर वाला, हज़ार टांगों वाला, और हज़ार आखों वाला है, वाह रे ओ३म् जी महाराज! तुम तो कांणे भी हो तथा लगँडे भी हो, ओ३म् जी को पता ही नहीं कि एक सिर में दो आंखे होती हैं। और दो टांगे होती हैं। आप शैतान पर ऐतराज़ करते हैं, मगर ज़रा थम जाइये मैं आप से पूछूंगा कि आपके ईश्वर जी ने सांप क्यों पैदा किये? आपने कहा कि—"बर्रा लिखू ना फिल इल्म" पर वक्फ़ है। हर्फ़ मुक्तयात के अर्थ ऐसे हैं जैसे बी० ए०, एम० ए०, अक्षरों में। उर्दू जुबान में लफ़्ज़ क़हहार और मुतकब्बिर गलत अर्थों में इस्तेमाल होते हैं। आपकी तरफ से "सच्चा इलहाम" शास्त्रार्थ का विषय रखना इस बात को साबित करता है कि कोई झूठा इलहाम भी होता है। तो क्या वेदे मुक़द्दस झूठा इलहाम है? आपने जो रसूल के गुनाह बयान किये, वे रसूल के न थे, ब्लकि उन लोगों के थे जिन्होंने रसूल के ख़िलाफ़ किया था। इसके बाद आपने कहा कि—अथर्व वेद में एक मन्त्र और है जिसमें ओ३म् जी महाराज को हजार बाजू वाला कहा है। और यह भी लिखा है यथा—"स भूमिँसर्वतः स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशांगुलम्" यानी ईश्वर जी महाराज जमीन से दश अंगुल ऊपर हैं, कहीं-कहीं खुदा को तीन पाद वाला कहा है, एक जगह वेद में आया है कि 'उस्ताद शागिर्द से कहता है कि मैं तेरी गुदा को शुद्ध करता हूँ और शागिर्द कहता है कि मैं तेरी लिंगेन्द्रिय को पवित्र करता हूँ" इसके सिवाय आपके ओ३म् जी यह भी कहते हैं कि "योऽस्मान्द्वेष्टियं वयं द्विष्मस्तम्वो जम्भेदध्मः" यानी जिससे हम द्वेष करे उसे तू नष्ट कर दे। भाईयो क्या यह कभी खुदा का कलाम हो सकता है?

पंडित राम चन्द्र जी देहलवी—

मौलवी साहब! कृप्या वेद मन्त्र अगर शुद्ध नही पढ़ सकते तो केवल उस मन्त्र का पता ही बोल दिया करें, मन्त्र हम पढ़ दिया करेगें। पर आपके पाण्डित्य का रोब बेचारे मुसलमान भाईयो पर कैसे पड़ेगा? उनकी नज़रों में आप तो पण्डित जो ठहरे, दूसरे मुझे आपके ऊपर निहायत अफ़सोस है कि आप ऐसे जलसे में खड़े होकर लोगों को बहकाने पर उतारु हो रहे हैं, अगर आप जवाब नहीं दे सकते, और महज़ सवाल ही करना चाहते हैं तो ख़ैर! सवाल ही कीजिये, मगर इस क़दर फ़रेब से क्यों काम ले रहे हैं, क्या आप इस तरह इस्लाम को जिताने की आशा करते हैं? और क्या इसी तरह इस्लामी दुनिया को आप अन्धेरे में रख के खुश करना चाहते हैं, यह बात आपके योग्य नहीं हैं, न मुनाज़रे के मुवाफ़िक है "वाचंते शुन्धामि" इस वेद मन्त्र का गलत उलटा तर्जुमा पढ़ने का आपको क्या अधिकार है? क्या आप अभी झूठे साबित न होंगे फिर कहां मुह छिपाओगे जनाब? आपने जो कहा है कि, "गुरू-शिष्य से, और शिष्य-गुरू से" (शेष वाक्य कह कर मैं अपनी जुबान गन्दी करनी नही चाहता वह तो तुम्हे ही मुबारिक हो)..............कहता है कि, दिखाइये यह कहां लिखा है? अगर आप दिखा देगें तो मैं आपको एक हजार रुपया इनाम दूंगा। (श्री देहलवी जी ने गुस्से से गर्ज कर

टिप्पणी—

*चुर धातु का अर्थ वेद में अपहरण करना इसी तरह होता है जैसे क़ुरान में खुदा के लिए क़हहार और मुतकब्बिर शब्द आते हैं जिनका अर्थ अरबी लुग़त में ग़ालिब और बड़ाई वाले के हैं, लेकिन उर्दू में जालिम और मग़रूर के है।

कहा) ....मौलवी साहब ! तर्जुमें कों समझने के लिए भी अकल की जरूरत है, इसमें तो यह बयान है कि गुरू शिष्य से कहता कि ,मैं विविध प्रकार की शिक्षाओं से तुझे पवित्र करता हूँ। देखिये-वेदमन्त्र "वाचते शुन्धामि" का भाष्य, इसका आशय यह है कि मैं जलादि से बाह्य शुद्धि और उपदेश से आन्तरिक शुद्धि का उपदेश तुझे देता हूँ। अर्थात् जल से इन्द्रियों को पवित्र रखना और इग़लाम तथा व्यभिचार आदि दोषों से बचना आन्तरिक शुद्धि है। वेदानुसार "मातृमान्, पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद" अर्थात् बच्चे के मातापिता और आचार्य तीनों गुरु हैं, जिस प्रकार छोटे बच्चे की इन्द्रियों की शुद्धि माता करती है, इसी प्रकार उसको पिता भी सिखाता है, किन्तु जो बातें उससे भी रह जाती है, उसका उपदेश आचार्य देता है, और स्वयं उसको सिखाता है कि प्रत्येक इन्द्रिय को शुद्ध और पवित्र इस प्रकार रखना चाहिये। अब बताइये ! मौलवी साहब इसमें क्या दोष है ? कौन सी ग़लत बात यहां कही है ? परन्तु दुःख तो यह है कि आपको अपने घर का तो कुछ ज्ञान ही नहीं है। और दूसरों की भली बातें भी आपको बुरी लगती हैं। क्या आपको क़ुरानी जन्नत के लौंडें याद नहीं है ? जो हमेशा लौंडे ही रहे चले जाते हैं। न कभी जवान होंगे न कभी बूढ़े होंगे। भला इसका तो कोई जवाब दीजिए ?

"सहस्र शीर्षा" इस वेद मन्त्र के अर्थ को कृपा कर एक बार पढ़ तो लिया होता। देखिये वहां सहस्र का अर्थ है असंख्य और पुरुष का अर्थ है "पुरिशेते इति पुरुषः" अर्थात् जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्यापक है वह परमात्मा 'सहस्र-शीर्ष' यानी अनन्त ज्ञान वाला, 'सहस्त्राक्षः' अर्थात् सर्वज्ञ, सर्व दृष्टा, और सहस्रपात्-सर्व व्यापक है। इसी तरह 'सहस्र-बाहु' का अर्थ भी अनन्त बलशाली है।

अब आपने जो हर्फ़े मुकत्तियात की मिसाल पेश की है, बी० ए० या एम० ए० इसकी तरफ़ जनाब ग़ौर कीजिये, आपके ये सब अर्थ फ़र्जी हैं, भला यदि मैं एफ० ए०, बी० ए० एम० ए०, का अर्थ कर दूं Fat ass bad ass mad ass" यानी मोटा, बुरा और बावला, गधा, तो बताइये आप क्या जवाब देंगे ? और किस क़ायदे से इसका खण्डन करेंगे, हमारे यहां तो कोषानुसार एक अक्षर का भी अर्थ होता है किन्तु आपके यहां तो कोई अर्थ नहीं हो सकता। वेदे मुक्कद्दस झूठा इलहाम नहीं ब्लकि जो भी झूठे इलहाम हैं, वे अपने को सच्चा कहते हैं, इस वास्ते यह इम्तियाजी सिफ़त इलहाम शब्द के साथ लगाई गई है। रसूल के गुनाहों की बावत आपने क़ुरान के अर्थों के बिल्कुल विपरीत कहा है, इस वास्ते आपका कथन असत्य है। आप फिर क़ुरान को पढ़कर देख लीजिये। "सं भूमि ७" इस वेद मन्त्र का अर्थ भी आपने उल्टा किया है। इसका अर्थ तो साफ यह है कि, प्राकृतिक कार्य और कारणों में व्याप्त होता हुआ भी परमात्मा इस पंच भौतिक स्थूल और सूक्ष्म जगत से परे है। इस जगत के दस अंग हैं, परमात्मा उन सब में व्यापक भी है। और उन सबसे परे भी है। यहां पर परमात्मा के प्राकृतिक होने का पूर्ण खण्डन किया गया है। अंगुल का अथ अंग अर्थात् अवयव है, त्रिपाद शब्द से उसके विराट् स्वरूप का वर्णन है। अर्थात् वह सत्-चित्त-आनन्द, स्वरूप है। सत् जो उसके स्वरूप का प्रकृति रूप एक पाद है, वही सृष्टि प्रलय रूप है। और आप जिसका बयान कर रहे हैं। कि वह सबसे ऊपर है, वह उसका शुद्ध स्वरूप है। जो जीव और प्रकृति से परे है। "योऽस्मान् द्वेष्ठि" इस वेद मन्त्र का यह आशय है कि हम जिससे द्वेष करते हैं, उनसे मुराद, दुष्ट और अधर्मियों से है। और जो द्वेष करते हैं—उनसे मुराद धर्मात्मा पुरुष हैं, यानी धर्मात्मा सदा दुष्टों से नफ़रत करते हैं। और दुष्ट धर्मात्माओं से, उनको बाक़ायदा दंड देना भी आवश्यक है, अतः वेद ने बताया है कि जो हमसे द्वेष करते हैं, उनको हम तेरे जम्भ (दाढ़) अर्थात् तेरे काबू में रखते हैं। जैसे दाढ़ किसी वस्तु को पकड़ कर आवश्यकतानुकूल चबा डालती है। इसी तरह जो जितना दुष्ट हो उसको उसके अनुकूल दंड देना इस वेद मन्त्र का आशय है। यह मन्त्र राजा और ईश्वर परक है। आपके सारे प्रश्नों का मैं सविस्तार उत्तर दे चुका किन्तु आपने क्या उत्तर दिया ? इसको पब्लिक अच्छी तरह जानती है।

नोट—"मौलाना अस्मतुल्ला की हालत अब ऐसी न रही जैसी शुरु में थी, आपने पुरानी बातें दोहरा कर ही अपना सारा वक्त पूरा किया केवल आपकी जुबाने मुबारिक से सिर्फ़ दो बातें सुनाई पड़ी (क्योंकि अब आप बहुत धीमे बोलने लगे थे) एक तो यह कि "पाद" शब्द का अर्थ "पैर" है जैसा कि "पद्भ्यां शूद्रोऽजायत् से सिद्ध है। दूसरे आपने

कहा कि महाशय जी आप यह तो वताइये कि ओ३म् जी महाराज ने सांप क्यों पैदा किये ? (इन दो प्रश्नों के सिवाय आपने उल्लेख योग्य कोई बात नहीं कही) । इसके अनन्तर मुसलमान लोग नमाज़ पढ़ने चले गये, वापिस आने पर अब आपको अयोग्य समझ कर बैठा दिया गया (मुसलमान लोग खुद ही कह रहे थे कि इन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया) ख़ैर ! अलामान के लेख के मुताविक पहिले इस्लामी पहलवान के एक तरफ बैठ जाने पर अब "मौलवी अब्दुल हक़" आपकी जगह पर मुबाहिसा करने को तशरीफ़ लाये"।

पंडित रामचन्द्र जी देहलवी—

मेरे मेहरवान दोस्त अब्दुलहक साहब ! चूंकि मेरे सुयोग्य दोस्त मौलाना असमतुल्ला साहब ने कोई उत्तर नहीं दिया, अत: जब आप उनकी जगह आये हैं तो आपको लाज़िम है कि पहले आप उन सवालात को हल करें जो पीछे किए जा चुके हैं, मौलाना असमतुल्ला साहब ने अन्त में यह कहा था कि—"पद्भ्यांशूद्रोऽजायत:" यहाँ "पाद" के अर्थ "पैर" के हैं। सो उत्तर यह है कि पद् का अर्थ पैर भी होता है किन्तु यहाँ यह अर्थ नहीं है, अर्थ प्रकरणानुसार होता है। दूसरे मौलाना साहब ने सांप वाली बात कही थी। उसका उत्तर है कि परमात्मा ने सांपों को इस लिए पैदा किया कि सभी इंसानों की बदआमालियों की एवज़ खुदा ऐसी योनि उत्पन्न करे कि जिससे दोनों काम हो जावें, यानी जीव अपने पाप का फल भोग ले, और दूसरों को—हवा में व्याप्त जहर से बचा ले कि जिसको वह अपने शरीर में पैदा कर देता है।

मौलाना अब्दुल हक़ विद्यार्थी—

"खालिकलु इन्सानुज्वईफ़ा" का अर्थ हैं कि इन्सान स्वयं अपने हिदायत की किताब तैयार नहीं कर सकता इसे सिर्फ़ खुदा ही दे सकता है। 'मुताशावेहात' अलंकारों का नाम है जो मुह कमात के मातहत रहने चाहिए, जैसे खुदा की कोई बीवी नहीं है, पर मोहकमात है, लेकिन वेद में श्री और लक्ष्मी को उसकी बीबियों के तुल्य बताया गया है, यह अलंकार है इसी तरह कुरान में भी जानिये – अलिफ-लाम्-मीम् के अर्थ है—(अल्लह्-आलमु) कि मैं "अल्लाह" जानने वाला हूं ये ही अर्थ इस्लाम के पूर्व पुरुषों ने किए हैं। नमाज़ के मुताल्लिक कुरान में "हाफिज़् अलस्यलवाते वस्वलातिल बुस्त" अर्थात् नमाज़ों का और बीच की नमाज़ का तक़ेयद रखो, चूंकि स्वल बात बहुवचन है जिसमें तीन और तीन से ज्यादा नमाज़ आ जाती है, और इसके आगे स्वलातिलवुस्ता कहा है, यानि बीच की नमाज़ पांच में ही हो सकती है कम में नहीं। कलमा इस लिए मानना चाहिए क्योंकि हज़रत मोहम्मद साहब खुदा के रसूल हैं। और उन्हीं के जरिये से सदाकत का इज़हार हुआ है, अल्लाह बन्दे को गुमराह ठहराता है, । करता है यह बात नहीं है। और शैतान तो इन्सानों में से भी होते हैं और जिन्नों में से भी।

पंडित रामचन्द्र जी देहलवी—

आपने खालिकल का अर्थ बिल्कुल गलत अर्थ किया है इससे पहले टुकड़ों को नहीं देखा, जिसका स्पष्ट अर्थ है कि अल्लाह तुम पर से बोझ हलका करना चाहता है, अर्थात् पहले अहकामात की निस्वत अवसहल अहकामात नाज़िल करना चाहता है। क्योंकि क़ुरानी ज़माने में इन्सान कमजोर पैदा किया गया जनाब ! यहाँ अहमदियों के ज़बरदस्त अक़ीदे असूले हूरतका (विकासवाद) की भी तरदीद होती है, जो कहते हैं कि दुनिया की हर चीज तरक्की करती जाती है, और इसी तरह इलहाम नाज़िल हुआ है, लेकिन क़ुरान से ही इसकी तरदीद कर दी गई है, इसको ज़रा विचारपूर्वक देखिये। जब मुतशाविहात के मुताल्लिक साफ़ लिखा है कि खुदा के सिवाय इनका अर्थ और कोई नहीं जान सकता, फिर आपका मनघड़न्त अर्थ कैसे मान लिया जाये ? दुःख की बात यह है कि आप क़ुरान पर भी पचोड़ा फेरे देते हैं। अलिफ़-लाम-मीम के अर्थ जब तक आप किसी लुग़त के आधार पर नहीं करते तो अन्य बिना किसी लुग़त के लगाये अर्थ हर्गिज नहीं माने जा सकते। मैं यदि यह मान भी लेता हूँ कि स्वलातिल बुस्ता का अर्थ बीच की नुमाज़ है। तब भी मेरा प्रश्न तो हल नहीं होता, मैं पूछता हूँ कि आपने पाँच नमाज़ इससे क्यों ले ली ? तीन ही क्यों न ले ली ? तीन का भी तो बीच हो सकता है। उल्मा इस्लाम ने एक दर्जन से भी ज़ियादा तरीक़ पर इसके अर्थ किये हैं, यहाँ तक कि हर नुमाज़ को स्वलातिल बुस्ता कहा है, फिर मैं आपसे यह भी पूछता हूँ कि क़ुरान शरीफ़ में पाँच का हिन्दसा लिखने में क्या कुछ ख़राबी आती थी, इसका ज़रा उत्तर दीजिये ? अब क़लमे को लीजिए – आप यदि यह कहें कि मुहम्मद साहब की कलमें में शमुलियत का यही सबूत है कि वे रसूल थे, तो मैं पूछता हूँ कि उनसे पहले जिब्राईल रसूल

थे उस्ताद और वाल्देन भी रसूल हुए इनका नाम भी क़लमे में आना चाहिए। ख़ुदा की बावत यह कहना है कि बन्दों को गुमराह ठहराता है, करता नहीं, यह आपकी बेबुनियादी तावील है। आप वहाँ का तर्जुमा देखिये उसमें भी 'करता है' यही शब्द लिखा है। मैं मानता हूँ कि शैतान खसलतन इन्सान भी होते हैं, लेकिन क़ुरानी शैतान इन्सान नहीं जिस पर मेरा ऐतराज़ है वह और है। आप ग़ोर कीजिये।

मौलवी अब्दुल हक़ विद्यार्थी—

पण्डित जी महाराज आप खुदा और रसूल को ऐसा समझिये जैसे जार्जपंजम और उसका चपरासी। हिन्दुओं ने कृष्ण जी वगैरह को ईश्वर ही मान लिया था। किन्तु कहीं मुहम्मद साहब को ख़ुदा न मान लिया जावे इसलिए क़लमे में रसूल का नाम लिखा जाता है। यह तो जनाब! शिर्कत की नफ़ी है, शिर्कत नहीं है कहीं आप तो अग्नि, वायु आदि के पूजन का निषेध दिखावें ?

पंडित रामचन्द्र जी देहलवी—

निस्संदेह बादशाह के चपरासी भी होते हैं। किन्तु हर मौक़े पर ऐसा नहीं कहा जाता कि यह राज्य शहन्शाह जार्जपंजुम और उसके चपरासी का है। या यह हुकम जार्जपंजम का है और इसे अल्लादिया चपरासी लाया है। इसे बार-बार कोई आदमी नहीं कहता, यह तो ठीक है कि आपने कहने को ज़ुबानी तौर पर मुहम्मद साहब को रसूल ही माना है मगर अमली तौर पर ख़ुदा से भी ज्यादा बढ़ा दिया है (इस्लामी तौहीद का नमूना पण्डित मुरारी लाल जी का बनाया हुआ देखिए) इसीलिए तो लोग यह कहते हैं कि—**मुहम्मद की जलवे नुमाई न होती। क़सम है खुदा की खुदाई न होती।।** यहाँ ख़ुदा साहब अपनी ख़ुदाई को ही ज़ाहिर करने में क़ासिर और कमज़ोर बताये गये हैं, यह महज़ आपका दावा ही दावा है कि क़ुरान मजीद में तमाम मज़हबी किताबों का निचोड़ है, अगर आपमें कुछ दम-खम हो तो बताइये कि इल्म हिन्द-सा क़ुरान में कहाँ है ? मनुष्य के विवाह का समय और उसकी हद दिखाइये। जबकि ख़ुदा ने खुद रसूल को हिदायत की, कि आगे शादियाँ करना बन्द कर दो।

मौलावी अब्दुल हक़ विद्यार्थी—

तमाम पिछली बातों को दोहराते हुए कहा—यदि मुहम्मद साहब न होते तो मैं कहता हूं कि खुदा का नाम भी न आता। आप जो कहते हैं कि क़ुरान में सारी विद्या दिखाओ, मैं कहता हूं आप ही वेद में मोटर कार दिखा दो। दूसरे मुमतनेयात का वजूद ही मुहाल है आपको क्या दिखाऊँ ?

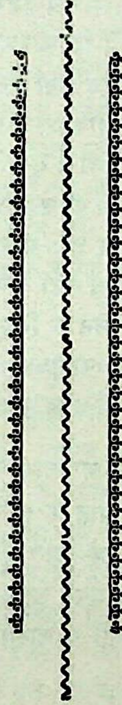
पंडित रामचन्द्र देहलवी—

शाबाश ! आपने सारे शास्त्रार्थ (मुबाहिसे) में एक यही मार्के की बात कही है। आपका कहना ठीक है कि अगर मुहम्मद साहब न आते, खुदा का नाम भी न आता, मगर क्या हज़रत आदम, इब्राहीम, मूसा, दाऊद, ईसा अलेहे-मुस्सलम ने ख़ुदा के नाम को ज़ाहिर नहीं किया अगर किया जैसा कि आप मानते हैं तो आपका कथन बिल्कुल ग़लत है। और आज आपके इस ख़ुदा से तमाम बुजुर्गों की तहक़ीर व तज़लील होती है। वेद में मोटर-कार लिखी हुई दिखाने का मुतालबा करना तो जनाब अक़्ल को नुमाईश में रक्खे जाने की तहरीक करता है। बड़े मियां तो बड़े मियां, छोटे मियां सुभान अल्लाह ! अब बेचारे मुसलमान भाई सोच रहे होंगे कि जिसे हमने अपना रहनुमा बनाया, उसने ही किश्ती को डुबो दिया, अब किसे आपकी जगह पर खड़ा करेंगे ? थोड़ा जनाब उन बेचारों की तरफ भी ग़ौर फ़रमाओ। जिनकी नज़र चारों तरफ़ से आप पर ही लगी हुई है। हज़रत ! मैंने तो क़ुरान में उसूल हिन्दसा पूछा था न कि जोड़, तकसीम, गुणा, भाग। वेद ने भी उस उसूल को बता दिया है जो तमाम तरह की मशीनों में एक-सा काम करता है। आपको क्या खबर नहीं कि एक ही उसूल के मातहत कुट्टी काटने, आटा पीसने, दाना दलने वगैरह की मशीनें चल रही हैं। ज़रा सोच समझकर ऐतराज़ कीजिए।

नोट—मौलाना ने इस बार ऊपर कही बातों को दुहराते हुए कहा कि आर्यों के यहां एक विषय के मुताल्लिक कोई कुछ कहता है कोई कुछ, इसलिए किसको सही माना जावे और किसको ग़लत माना जावे ? इस प्रकार अपना कोई सही उत्तर न देते हुए अब्दुल हक़ साहब ने जैसे-तैसे अपनी टर्न का समय काटकर आज का मुबाहिसा शान्ति पूर्वक समाप्त किया, वैदिक धर्म की अपने-पराये पर अमिट छाप पड़ी। सभी श्रोतागण देहलवी जी की प्रशंसा करते हुए चले गये।

इकतालीसवां शास्त्रार्थ

स्थान : सिकन्दराबाद, (जिला—बुलन्दशहर) उ० प्र०



विषय : तनासुख (आवागमन)

दिनांक : १९२४ ई० दिन के दो बजे (ईदगाह का खुला मैदान)
(तीसरा दिन शनिवार)

शास्त्रार्थ कर्त्ता आर्य समाज की ओर से : श्री पंडित रामचन्द्र जी देहलवी

सहायक : श्री पंडित शिव शर्मा जी
श्री पंडित मुरारी लाल जी शर्मा
श्री पंडित ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केसरी

शास्त्रार्थ कर्त्ता मुसलमानों की ओर से : श्री मौलाना धर्मपाल जी

सहायक : १. श्री मौलाना अस्मतुल्ला खां साहब
२. श्री मौलवी अब्दुल हक़ विद्यार्थी

मुसलमानों की ओर से प्रधान : श्री जनाब शाह मुहम्मद खां साहिब

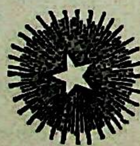
शास्त्रार्थ से पहले

आज रात्रि से ही घनघोर वर्षा हो रही थी, और बराबर आज ४ ता० को भी होती रही, बाहर से आये हुए सैकड़ों हिन्दू और आर्य भाई इस कारण अत्यन्त दुःखी थे कि शास्त्रार्थ ऐसी मूसलाधार वृष्टि में नहीं हो सकेगा। किन्तु परमात्मा की दया से दिन के बारह बजे कुछ समय के लिए वर्षा रुकी, परन्तु सुबह का मौसम देखकर वर्षा के कारण श्री पण्डित रामचन्द्र देहलवी जी देहली को आ रहे थे, क्योंकि आज मुबाहिसा (शास्त्रार्थ) होना असम्भव था। और यही दोनों तरफ से निश्चय होने वाला था, किन्तु जब मुसलमानों ने सुना कि वे देहली चले गये तो उन्होंने हठ पकड़ ली और कहा कि हम आज ही शास्त्रार्थ करेंगे, बरसते हुए पानी में ही सबको जाना पड़ा एवं अगले स्टेशन पर ही श्री पण्डित देहलवी जी को टेलीफोन करके रोका गया, और वहां से ६-७ मील पैदल चलकर आपको वापिस आना पड़ा, गुरुकुल सिकन्दराबाद के ब्रह्मचारियों ने न दिन देखा न रात एवं न वर्षा देखी न धूप बराबर बड़ी मुस्तैदी के साथ प्रत्येक प्रकार का प्रबन्ध करते रहे श्री पण्डित रामचन्द्र देहलवी जी को लेने के लिए दस-दस, बारह-बारह वर्ष के बच्चे भी ६-७ मील पैदल गये एवं वापिस आये, इस गुरुकुल के जैसे बच्चे परमेश्वर सारे देश में पैदा करे। जिनको अपने देश और अपने समाज की उन्नति में ऐसी ही लगन हो जैसी इस गुरुकुल में दीख पड़ती है।

बारह बजे कुछ वर्षा कम हुई तो सारे नगर में शास्त्रार्थ का समाचार दिया गया आज स्थान परिवर्तन भी कर दिया गया था, उसकी भी सूचना दे दी गई कि आज ईदगाह के खुले मैदान में तनासुख विषय पर शास्त्रार्थ होगा। सारे नगर में यह खबर बिजली की तरह एकदम फैल गई एवं देखते ही देखते ८-१० हजार श्रोतागण मैदान में इकट्ठे हो गये। एक मज़े की बात तो यह थी कि मुसलमानों ने तो अपने ऊपर शामियाना भी तनवा लिया था, मगर आर्य समाज के पण्डित बिना किसी छत्री और साये के मूसलाधार वृष्टी में शास्त्रार्थ कर रहे थे। क्योंकि लगभग आधे घण्टे बाद ही बारिश ने ज़ोर पकड़ लिया था।

आज मुसलमानों की तरफ से प्रश्न करने का दिवस था और विषय था "तनासुख" अर्थात् "आवागमन" इस्लाम की तरफ से "मौलाना धर्मपाल" प्रश्न कर्त्ता के रूप में आये, आपको जो कुछ कहना था वह सब लिखा हुआ था। और उन लिखे हुए वर्कों पर भी अपनी बनाई कुफ़्र तोड़ पुस्तक के वर्क चिपकाये हुए थे। उनको हाथ में लेकर पढ़ते हुए शास्त्रार्थ मंच पर प्रथम बारी में बोलने के लिए खड़े हुए।

"लेखक"



शास्त्रार्थ आरम्भ

मौलाना धर्मपाल—

मैं आर्य समाज से कुछ लेने आया हूँ देने नहीं, और मानिन्द एक रेगिस्तानी ज़मीन के और मानिन्द एक शागिर्द के आपके सन्मुख खड़ा होता हूँ। किन्तु यह खूब जानता हूँ कि जीत मेरी ही होगी। क्योंकि मैं हक़ पर हूँ। जैसाकि महाभारत के युद्ध में अर्जुन हक़ पर था और द्रोणाचार्य बातिल मैं आपको समझाता हूँ—द्रोणाचार्य ने कौरवों का नमक खाया था, इस वास्ते वे अन्त तक अधर्म की तरफ से लड़ते रहे। किन्तु अर्जुन को आशीर्वाद देते रहे कि तेरी ही विजय हो और अन्त में उसकी ही विजय हुई। आप भी खाये हुए नमक की झूठी तरफ़दारी कर रहे हैं, इस वास्ते आशीर्वाद दीजिये कि मेरी विजय हो, मैंने आर्य समाज से ही बहुत कुछ सीखा है। मगर जब देखा कि आर्य समाज के पास आत्मा की शान्ति के लिए कुछ नहीं है तब लाचार चोटी कटा कर फिर मुसलमान हो गया………… (बीच में)

पंडित शिव शर्मा—

प्यारे धर्मपाल ! आज की बहस मसले तनासुख पर थी और पब्लिक मुन्तज़िर थी कि आप इसी विषय पर रोशनी डालेंगे, परन्तु आपने तो न मालूम कहाँ की कहानियां शुरू कर दीं जो एकदम फ़जूल हैं, खैर ! आप खुद कहते हैं कि मैं मानिन्द एक सूखे रेगिस्तान की तरह हूँ जिसे शान्ति के लिए शीतल जल चाहिए, दोस्त मैं पूछता हूँ कि आपको आर्य समाज से निकले आठ साल हो गये क्या इस्लाम ने आपको अभी तक ऐसी कोई वस्तु नहीं दी। जिससे आपकी प्यास बुझती और शान्ति होती, मैं कहता हूँ कि वहाँ रक्खा ही क्या है? यह और बात है कि किन्ही लोभ और लालच में फंस कर आप मुसलमान हो गये हैं। आपने कहा कि मानिन्द अर्जुन के मैं हक़ पर हूँ, आप आशीर्वाद दें, जैसे द्रोणाचार्य ने अपने शिष्य को दिया था, ठीक है अगर मैं यह समझता हूँ कि आप हक़ पर हैं, तो मैं ही क्या तमाम दुनिया आशीर्वाद देती। मगर मैं देखता हूँ कि आप हक़ पर नहीं है, जिसकी कलई अभी खुली जाती है, मैं अपना समय नष्ट नहीं करना चाहता आप विषय पर प्रश्न कीजिये पिछला रोना मत रोइये, क्योंकि इसका फल कुछ न होगा। इस खराब मौसम में ये जो हज़ारों की संख्या में जनता बैठी है ये कोई बेवकूफ़ नहीं है। इस बात को ख़याल करिये जनाब! और प्रश्न करिये !!

नोट—

इतना कहने पर भी आपने पुनः ऐसी ही बातें पढ़नी शुरू कीं जिससे जनता में बड़ा कहकहा मचा चारों तरफ़ बड़ा भारी हंगामा खड़ा हो गया। हम उस फ़जूल के किस्से को न लिख कर केवल काम की बातें लिखते हैं। मौलाना धर्मपाल ने जब स्थिति बिगड़ती देखी तो हाथ उठाकर कहा अच्छा सुनो ! ध्यान देकर सुनो !!

मौलाना धर्मपाल—

मैं तनासुख को योनि चक्र के नाम से पुकारता हूँ, योनि का अर्थ है, स्त्री की उपस्थेन्द्रिय—इस योनि चक्र को हिन्दू और आर्य दोनों ही मानते हैं और चूंकि यह उत्सव हिन्दू और आर्यों का मुश्तर्का है, इस वास्ते मेरे प्रश्न दोनों पर होंगे।

नोट—

इसका खण्डन बीच ही में खड़े होकर श्री पण्डित मुरारी लाल शर्मा जी ने किया और इश्तहार का हवाला देकर बताया कि जलसा केवल आर्यों का है मुश्तर्का नहीं है। हिन्दू केवल इन्तज़ाम में शामिल हैं, मुसलमानों के प्रेसीडेन्ट जनाब शाह मुहम्मद खाँ ने बहुत हाथ पैर पीटे कि किसी तरह यह जलसा हिन्दू और आर्यों का मुश्तर्का साबित हो किन्तु शास्त्रार्थ के जो नियम तय हुए थे उनको दिखलाने पर खां साहब चुप हो गये।

मौलाना धर्मपाल—

योनि चक्र हिन्दू और आर्य दोनों मानते हैं और ये यह भी मानते हैं कि अपने-अपने किये हुए कर्मों के मुताबिक हरेक प्राणि मरने के बाद मां की योनि के द्वारा उसके पेट में आकर उलटा लटकता है। और फिर नौ माह बाद उसी रास्ते से बाहर आता है। ऐ मुसलमानो ! क्या तुम जानते हो यह क्या बात हुई ? समझो कि तुम आज खान बहादुर या अपने घर के अमीर या कोई सेठ हो, तो कल मरने के बाद इनके अक़ीदे के मुताबिक अपने ही अस्तबल के घोड़े, गधे, खच्चर, कुत्ते, बिल्ली भी बन सकते हो, कल तुम मर्द थे आज औरत भी बन सकते हो। भला ऐसे फ़जूल अक़ीदे को कौन-सा शरीफ़ आदमी पसन्द करेगा ?

पंडित रामचन्द्र देहलवी—

मौलवी धर्मपाल जी ! बस इसी बलबूते पर आर्य समाज से शास्त्रार्थ करने आये थे। आप जानते हैं कि आज का विषय तनासुख है क्या सचमुच आप तनासुख पर ही बहस कर रहे हैं, अच्छा होता जो बजाये आपके कोई और आलिम खड़ा होता। खैर ! आपने योनि शब्द का बार-बार जो स्त्री की उपस्थेन्द्रिय अर्थ किया और कहा है कि योनि शब्द का यही अर्थ है, यह आपकी नावाक़फ़ीयत का नमूना है। नहीं तो आप बताइये "शास्त्रयोनित्वात्" इस वेदान्त सूत्र के योनि शब्द का क्या अर्थ है ? आपको समझना चाहिए कि योनि कारण और योनि उत्पत्ति स्थान का भी नाम है। अगर योनि के मुताल्लिक़ देखना हो तो सूरए तहरीम की पिछली आयत को देखिये कि बड़े-बड़े वर्गुज़ीदा शख़्सों की रूह कौन-से रास्ते से फूंकी गई थी आयत भी सुनिये—"वमर्य मिन्नता इम्रानल्लती अह्सनत् फ़र्जहा फ़नफ़ख़नाफ़ीह मिर्रूहिना" यानि मयम बेटी इमरान की जिसने रोकी अपनी शहवत की जगह फिर हमने फूंक दी अपनी तरफ़ की जान, (तर्जुमा शाह अब्दुल क़ादिर, देहली) अब कहिये आपका मिज़ाज ठिकाने आया या नहीं कि बिना आमाल के नबी रसूल और पैगेम्बर इसी रास्ते से दाखिल किये गये। और इसी से निकाले गये, फिर हमारे यहाँ तो सब कर्मानुसार होता है। जिस पर कोई ऐतराज़ नहीं हो सकता। अगर मसामात भी आपके नज़दीक योनियाँ ही हैं तो रोज़े के दिनों में जो मुसलमान फ़व्वारे से मसामातों के ज़रिये ठंडक पहुँचाते हैं वे अपनी योनियों के ज़रिये से ही पहुँचाते होंगे। क्योंकि अरबी में फ़र्ज के अर्थ शर्मगाह और सुराख़ दोनों के हैं, माँ के पेट में उलटा लटकना तो सभी के लिए है, क्या मौलाना आप सीधे लटके थे, या सभी मुसलमान सीधे लटकते हैं और क्या आप या सभी मुसलमान भाई किसी और रास्ते से पेट में प्रविष्ट हुए थे ? और बिना कर्म उधर से घुसना आपने कैसे पसन्द किया ? जनता में हंसी ·········।

हालांकि हमारे यहां तो अमैथुनी सृष्टि भी कर्मानुसार होती है, आपका यह कहना कि कर्मों के अनुसार मनुष्य गधे और खच्चर बन जाते हैं, बिल्कुल ठीक हैं, आज आप कैसी बातें करते हैं ? क्या यह मसले तनासुख शास्त्रार्थ हो रहा है ? आप सबको तो हज़रत आदम की तरह पैदा होना चाहिए था, गधा और खच्चर ही नहीं, मनुष्य पाखाने का कीड़ा तक बन जाता है, यह उसकी सज़ा है। ख़याल कीजिये जो मनुष्य आज चोरी, ज़िनाकारी या और कोई बद-ऐमाल करता है, सरकार उसको पकड़ कर बन्दकर देती है। और उससे कहार, धोबी, मेहतर वगैरह का काम लेती है। चाहे वह मौलवी खान बहादुर हो या अन्य कोई भी क्यों न हो। आप वहां क्यों नहीं बोलते कि देखो जो आज इज्जतदार मौलवी है वह कल मेहतर बन रहा है। यह कैसा बुरा है, जनाब धर्मपाल साहब ! आप इसको क्या कहते हैं, क़ुरान शरीफ ख़ुद बताता है कि ख़ुदा ने बनी इस्त्रराईल की एक कौम को हुकुम उदुली के ऐवज़ वन्दर और सूअर बना दिया था देखिए आयत—"मल्लानो हुल्लाहु वग़ज़िबअलैहि व जअला मिनहु मुल् क़िरदत वल् ख़नाज़ीर।" अर्थात् जिन पर अल्लाह ने लानत की और अपना गज़ब नाज़िल किया उनमें से बहुत-सों को बन्दर और सूअर बना दिया·········· कहिये जनाब आपके पास इसका उत्तर क्या है ? दूसरे खैर हम तो यह मानते हैं कि कर्मों के अनुसार फल मिलता है, किन्तु आप ही बतायें कि इन्हीं बैठे हुए मुसलमानों में कोई लगंड़ा, कोई अंधा, कोई, काणा, कोई, अमीर, कोई ग़रीब, कोई मौलवी कोई बेवकूफ़ ! यह भेद क्यों है ? आपके ख़ुदा साहिब ने बिला किसी वजह के इनमें यह इख़तलाफ़ क्यों पैदा कर दिया है ? और फिर अगर आपकी योनि के रास्ते पेट में जाने से शान घटती है तो क्यों नहीं और कोई रास्ता ख़ुदा ने बताया, धर्मपाल जी ! आप अपनी किताब ही बेचने आये है या कुछ मुबाहिसे की तैयारी भी करके लाये हैं।

मौलाना धर्मपाल जी—

पण्डित देहलवी साहब ! आपको पता होना चाहिए कि औरत की योनि इस क़ाबिल नहीं होती जो इन्सान के आने-जाने को ठीक अन्ज़ाम दे सके, इसलिए उसे रोयल रोड बनाने के लिए यजुर्वेद में आपके आचार्य मीहधर ने घोड़े से सम्भोग करना लिखा है। ताकि वह स्थान वसीह हो जावे और हिन्दू तथा आर्यों का आवागमन भली प्रकार हो सके, इसीलिए उनके बुजुर्ग महादेव के लिंग की पूजा करने लगे थे, और इसीलिए यह माना गया था कि धोबन से सोहबत (सम्भोग) करना अयोध्या के समान और चांडाली से सोहबत करना काशी के समान है, बल्कि किसी-किसी ने तो यहां तक भी लिखा है कि अपनी मां तक को भी नहीं छोड़ना चाहिए। वह सारा कुफ्र और यह सारी पूजा इस आवागमन के मसले से चली है, अब सोचिये कि यह कितनी गन्दी बात है ? (जनता में शोरोगुल········भारी क्षोभ········)

पंडित रामचन्द्र देहलवी—

मोलाना धर्मपाल ! क्या आप जानते हैं कि किसके सामने खड़े हो ? आपको आर्य समाज पर ऐतराज करना चाहिए था, मगर ऐतराज करते हैं आप वाम मार्गियों पर जिनका खण्डन खुद आर्य समाज करता है, ऋषि दयानन्द इन तमाम बातों का स्वयं खण्डन करते हैं, और आप फ़ज़ूल उन्हीं को दोहरा कर वक़्त जाया कर रहे हैं। मेरी आदत नहीं है कि मैं एक सभ्य सोसायटी में खड़ा होकर आपके समान बकवास करूं, और लोगों को झूठ-मूठ बहकाऊं। मैं तो कहता हूं कि आप भी आर्य समाज का ही काम कर रहे हैं। केवल भेद यह है कि दूसरा प्लेट फार्म लगाकर और ज़रा असभ्य बनकर कर रहे हैं, आपने इसका उत्तर क्यों नहीं दिया कि आपके यहां सुअर और बन्दर कैसे बने ? अब की बारी में इसका उत्तर अवश्य देना होगा। रही लिंग पूजा की बात ? सो जनाब ! सच पूछिये तो लिंग की पूजा तो सच्ची इस्लाम करता है सुनिये —

न में गर्द द मुसल्लाअतान में गर्द द मुसलमानी।
यकीनं शुद किवरकेस्त बुनियादे मुसलमानी ॥

अर्थात् (कोई मनुष्य) नहीं होता है, मुसलमान तब तक जब तक कि नहीं होती है मुसलमानी यानी (लिंग पूजा) मुझे यक़ीन हो गया कि मुसलमानी की बुनियाद लिंगेन्द्रिय के ऊपर है, आप ख़याल करें कि ज़रा-सी खाल को काटने पर कितनी खुशियां होती हैं, दावतें उड़ती हैं, और बाजे बजते हैं, यह लिंग की खुली पूजा नहीं तो क्या है ? इसके सिवाय यहां तो हिन्दू लिंग पर पानी ही डालते हैं, और वह भी उस लिंग पर नहीं, बल्कि इस मूर्त्ति के द्वारा भगवान पर। किन्तु हज़रत तुम तो बताओ कि वह "संगे-असवद" क्या है ? जो काबे की दीवार में लगा हुआ है। किताबें खोल कर पढ़ो यह वही महादेव का लिंग है जो हज़रत के पेश्तर मक्के में पुजता रहा और अब भी पुज रहा है। और जिसको कि हर एक मुसलमान वहाँ जाकर (बोसा देता) चूमता है, अगर आपमें दम-खम हो तो साबित कर दें कि वह महादेव का लिंग नहीं हैं। सुनिये ! कान खोलकर सुनिये !! मिस्टर सैल क्या कहते हैं कि—काबा और संगे असवद क्या है ?

"THE KABA", IS ON OBLONG MASSIVE STONE BUILDING FIFTEEN PACES LONG, FOURTEEN BROAD AND ABOUT THIRTY FIVE PACES HIGH. AT THE HAJRUT –ASWAD THE BLACK STONE WHICH IS PROBABLY AREAEROLITE. ITS EXISTANCE IS AN OBJECT OF WORSHIP IN AN CONOCLOOLIC RELIGION IS AN ANOMALY A RELIC OF PAGANIOM IN THE VERY HEART OF ISLAM."

अर्थात् "काबा" एक मुस्ततील भारी पत्थरों की इमारत है, जो पन्द्रह क़दम लम्बी; चौदह क़दम चौड़ी और अनुमान पैंतीस फीट ऊँची है—इसके आग्नेय कोण में हज़रे अस्वद् "काला पत्थर" है जो गालिबन् संगे सहाब है। इसकी मौजूदगी एक बुत शिकन (मूर्त्ति पूजक) धर्म में एक पूजा की चीज है ,और उनके सिद्धांत के विरुद्ध है। वह एक पुरानी मूर्त्ति पूजा का निशान है जो ख़ास इस्लाम के हृदय देश में मौजूद है। (मिस्टर सैल ने मोहम्मद साहब के जीवन चरित्र में लिखा है।)··············मेरा ख़याल है अब कुछ मौलाना धर्मपाल जी ! आपके ज़हन में कुछ बात उतरी

होगी। इसके सिवाय आपने वाम मार्गियों के मुताल्लिक यह कहा है कि—अपनी माता तक को भी नहीं छोड़ना चाहिए। इसका उत्तर आप आर्य समाज से क्या चाहते हैं ? दुनिया में सैकड़ों मज़हब बुरे से बुरे हैं, उनका उत्तरदायित्व आर्य समाज पर क्या है ? आप आर्य समाज से प्रश्न करते हैं, या वाम मार्गियों से ? हमारा उत्तर है कि हम इन बातों को नहीं मानते, किन्तु साथ ही हम यह बता देना चाहते हैं कि वाम मार्गी तो थे ही, परन्तु आपके यहां क्या कसर बाक़ी है ? जो कि उसी की एक शाख है। क्योंकि बहुत से काम आपके वैदिक-धर्म से उलटे हैं, सबूत के लिए आदम-हव्वा की कथा को मुलाहज़ा फ़रमाइये—

मुसलमान मानते है कि सृष्टि की आदि में हज़रत आदम को पैदा करके हव्वा को आदम की पसली से पैदा किया, इस वास्ते हव्वा आदम की बेटी हुई। अब हव्वा का आदम से विवाह हुआ इस वास्ते हज़रत धर्मपाल साहब ! बाप से बेटी का विवाह हुआ, जनाब डा० अब्दुल हकीम खां साहब, मौलवी ने जो कि आपके फ़िरके अहमदिया से ही पहिले ताल्लुक रखते थे, उसी आयत से यह साबित किया है कि सबसे पहिले हव्वा पैदा हुई। और उन से आदम पैदा हुए इस लिहाज़ से मां से बेटे की शादी होती है। (मुसलमानों में से चारों ओर से आवाजें आई—"लाहोल बिला कुव्वत···) और उन दोनों से दुनिया भर में तमाम मर्द और औरत फैला देना सगे बहन भाई की शादी को साबित करता है। जिससे किसी भी मुसलमान को इंकार नहीं हो सकता, जनाब ! यह है असल वाम मार्ग का सिद्धांत !! जिसमें मुहर्रमातें अबदी भी यानी (मां, बहन, बेटी भी) नहीं छूटती और जो माद्दा मुसलमानों की बुनियादी पैदाईश में पड़ा हुआ है। मैं आप से फिर प्रार्थना करता हूँ कि आप इन बातों में न जावें। नहीं तो याद रहे मैं भी इस्लाम की ढ़की हुई गंदगी खोलने पर मजबूर हो जाऊंगा, शास्त्रार्थ तनासुख (आवागमन) पर है, आप उसी पर बहस करें और हमारे मन्तव्यों पर दोष दें।

नोट—

मौलाना ने उठकर उन ऐतराज़ातों का जो उन पर किये गये थे कोई जवाब न दिया और फिर आगे के वर्क पढ़ने शुरू कर दिये, हमारा खयाल है कि उन्होंने सारी कुफ़ तोड़ नामक पुस्तक पढ़ डाली, और वाम मार्गियों की बातें लेकर मुसलमानों को भड़काते रहे, उन्होंने कई दफ़ा उन्हीं बातों को दोहराया जिनको पेश्तर कह चुके थे। सिर्फ़ अबकी बार दो बातें नई कही जो यहां दी जाती हैं।

मौलाना धर्मपाल—

मनुस्मृति में मनु जी महाराज ने बताया कि जो मनुष्य अपने गुरु की स्त्री से ज़िना (सम्भोग) करता है वह वृक्ष बनता है और जो मनुष्य कोई नशीली वस्तु इस्तेमाल करता है वह भी इसी प्रकार की योनी प्राप्त करता है, इत्यादि। प्यारे हिन्दु और आर्य भाईयो तुमको ये शाक ये फल ये घास जानते हो कब नसीब होते हैं ? जब तक कि अपने गुरु की स्त्री से ज़िना न किया जावे तो एक तिनका भी घास का देखने को न मिले इस वास्ते अगर तुम, गाजर, मूली, बैंगन आम, अमरूद खाना चाहते हो तो इनकी तालीम के मुताबिक़ अपने उस्ताद की जोरु से ज़िना करो तब तुमको ये सब चीजे खाने को मिल सकती हैं इसका नाम आवागमन है, जिस पर हिन्दुओं को फ़खर है, इसके सिवाय स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने भी भंग पी थी, इस वास्ते इनके मनु जी महाराज के अनुसार वे भी कीट पतंग बनने चाहिए। (बन्दर और सुअरों का उत्तर देते हुए आपने कहा कि वे तो इसी जन्म में तबदील कर दिये गये थे। दूसरें में नहीं जैसे लकवे से मनुष्य की सूरत और हो जाती है)।

पंडित रामचन्द्र देहलवी—

मौलाना आपने सिर्फ़ यही एक प्रश्न आर्य समाज पर किया है, चलो गनीमत है, अच्छा सुनिये—अपने गुरु की स्त्री से ज़िना करने वाले मनुष्य यदि वृक्ष योनि में जाते हैं तो इसमें क्या बुराई है ? लेकिन आपका यह कहना कि घास वगैरा इसी ज़िना की वजह से होती है ठीक नहीं, क्योंकि घास वगैरा पैदा होने का कारण सिर्फ़ यही तो नहीं

है। और भी बहुत से कारण हैं। जैसे कोई कहे कि फलां काम करने से पांच रुपये मिलेंगे, इसका मतलब यह नहीं होता कि और किसी काम की एवज ५ रुपये नहीं मिलेंगे, जिस तरह एक बद फ़ैली की सजा एक साल की क़ैद है, तो क्या आप यह कहेंगे कि बस उसी बदफ़ैली से एक साल की क़ैद हो सकती है। और से नहीं। चोरी, ज़ारी, जुआबाज़ी, ग़रज सैंकड़ों ऐसे फ़ेल हैं, जिनसे एक साल की कैद हो सकती है, इसी तरह परमात्मा के नज़दीक इस प्रकार के अनन्त कर्म है जिनका फल वृक्षादि की पैदाइश है, सिर्फ़ ज़िना नहीं है। आपका नीच योनियों को बुरे कर्मों का कारण बताना अर्थात् यह कहना कि नीच योनियों से बुरा कर्म कराती हैं कतई गलत है, कर्म-कारण होते है जनाब, अच्छे और बुरे फल के, न कि फल कारण होते हैं बुरे और अच्छे कर्मों के ! इस लिए आपने अपने ऐतराज़ में यह बुनियादी गलती की है।

दूसरे जो भी पाप कर्म मनुष्य करते हैं वह उसके बुरे और दुखदाई फल को प्राप्त करने या भोगने की गरज़ से नहीं बल्कि वखिलाफ़ इसके हर मनुष्य पाप कर लेने के बाद उसके दुख रूपी फल से बचने का प्रयत्न करता है। जैसे चोर चोरी करके जेल खाने से बचने के वास्ते छिप जाता या भाग जाता है। इससे साफ साबित है कि लोग दुनियावी लज्ज़ात और इन्द्रियों के मजे की खातिर पाप कर्म करते हैं जो दोनों सूरतों में होता है, यानी तनासुख के न मानने वाले भी इसी मजे के मारे पाप कर्म करते हैं न कि आखिरत के अज़ाब को भोगने के वास्ते ! तो यह कैसे कहा जा सकता है कि तनासुख या योनियों में जाना पापों का कारण है ?

जैसी यह मौजूदा दुनियां है उससे आप और मैं दोनों इन्कार नहीं करते हैं, बदी (बुराई) इसमें ज्यादा है इससे भी आपको इन्कार नहीं है, मुसलमानों में हिन्दुओं से ज्यादा पाप करने वाले मौजूद हैं इससे भी किसी मुंसिफ को इन्कार नहीं हो सकता यानी तनासुख जैसे अकीदे के न मानने वाले भी पापों से बचे नहीं, परन्तु और ज्यादा फंसे हुए हैं। और फसने का कारण दोनों अकीदे वालों में समान है यानी लज्ज़ाते दुनियां और इन्द्रियों की चाट भगाना, तो आपका यह खयाल महज़ गलत नहीं तो और क्या हो सकता है ? जब आप कहते हैं कि योनियां पाप का कारण हैं, हां अगर हम यह कह दें कि खुदा का दोजख को पहले ही तैयार कर देना इस बात का कारण है कि लोग पाप कर्म करें और उसमें दाखिल हों तो कुछ बेजां नहीं हो सकता, जबकि खुदा का कहना भी इनसे पूरा होता है देखो—"व तम्मत् कलिमातो रब्बिकालल अम्ला अन्ना जहन्नमा मिनल्‌जिन्नते वन्ना से अलमईन" अर्थात्—और पूरा होकर रहेगा, मेरे रब का कहना कि हमको भरनी है दोजख जिन्नों और आदमियों से इकटठा। यहां है तरगीब बुरे कार्यों की ताकि दोजख खाली न रहे, हमारे यहां कोई ऐसे नुकस (कमी) की बात नहीं है।

जब हर सूरत में इन्सान बदी की तरफ़ ज्यादा मायल रहते हैं चाहे आवागमन के मामले होवें या न होवें। ईश्वर का ऐसी ऐवज में जो तीनों काल में इसी तरह के वाकये होने वाले थे, एक ऐसा तरीका मुकर्रिर करना था, जिससे जीव अपने पाप का फल भी भोग ले और (दरख्त (पेड़) वगैरा बन कर) दूसरों को भी लाभ पहुंचा दे तो क्या हर्ज वाकै होता है ? आपको यह माकूल बात तो पसन्द नहीं परन्तु बिना कर्म के दुख सुख वाली नामाकूल बात पसन्द है। यह वह असली जवाब है जो तुम्हारे आइन्दा होने वाले तमाम ऐतराज़ात को जो किसी भी नीच योनि के मुताल्लिक किया जावे हमेशा के लिए रदद् कर देता है।

ऋषि दयानन्द ने अज्ञान दशा में भंग पी थी उनको इसके गुण व दोषों का पता न था, इस लिए उन्होंने स्पष्ट तौर से स्वयं कहा है कि मैंने अज्ञान दशा में भंग पी है, अतः उनको इतना दोषी नहीं कहा जा सकता, और फिर भी हम स्वीकार करते हैं कि भंग जैसी मामूली चीज को अज्ञान दशा में पीने का भी यदि कोई प्रायश्चित है तो उनको भी करना पड़ेगा, लेकिन जरा आप तो बताइयेगा कि रसूले खुदा ने अंगूरी शराब पीई और वह भी मस्जिद में पीई, जिसका नाम मस्जिदे फ़ज़ीख हुआ, फ़ज़ीख के अर्थ अंगूरी शराब के हैं जिसका पीना इस नाम पड़ने का कारण हुआ। इस लिए कुरान में आया हुआ है कि—"लातकर बुस्वलाता व अन्तं स्वकारा हत्ता ला अलममातकलून" अर्थात् "तुम नमाज के करीब न जाओ, जब तक नशे की हालत में हो, यहां तक कि जो कुछ कहते हो उसे समझने लगो" यानी नमाज के वक्त को छोड़ कर तुम नशा कर सकते हो।

अब कहिये आप हज़रत ! इस शराब नोशी का क्या फल पायेंगे। जब कि कुरान में खुद एक जगह शराब को हराम बताया है।

नोट—

अब मौलाना धर्मपाल जी के बोलने की अन्तिमबारी थी, उन्होंने वही पुरानी बातें कहना आरम्भ किया, जिनका किये गये प्रश्नों से दूर का भी सम्बन्ध नहीं होता था। एवं वही कुफ़ तोड़ पुस्तक के पन्ने उलट-उलट कर पढ़ने लगे। उनसे बार-बार कहा गया कि, पहले प्रश्नों का उत्तर दो, पुस्तक वाद में पढ़ना, किन्तु आपने एक न सुनी, इसकी वजह यह थी कि धर्मपाल बहुत बड़ी तादाद में "कुफ़ तोड़" नामक पुस्तक यहां वेचने के लिए लाये थे। और इस तरीके से उसका एडवर टाइजमेंन्ट (विज्ञापन) कर रहे थे। मगर उनको बहुत निराश होना पड़ा, क्योंकि यह पुस्तक बहुत थोड़ी तादाद में बिकी, खैर यह आपकी बोलने की अन्तिम बारी थी, तो भी आप उसी किताव को सुना रहे थे, आपने अपनी तकरीर में अपनी तरफ से इतने गन्दे शब्द इस्तेमाल किए जिनको शायद कोई सभ्य मनुष्य सुनना भी पसन्द नहीं करेगा मैंने उनको यहां देना उचित नहीं समझा इसलिए श्री लाजपत राय जी जब पुरानी छपी प्रति को सुधार करके प्रेस कापी बना रहे थे, मैंने इस गन्दे मैटर को काट दिया था।

यदि आर्य समाज की किसी माननीय पुस्तक का हवाला देकर कुछ पढ़ा जाता तो मैं उसे जरुर देता, मुझे अफ़सोस है कि आज के मुबाहिसे (शास्त्रार्थ) में मौलाना धर्मपाल ने सिर्फ़ मुसलमानों को खुश करने के लिए गन्दे अश्लील और भद्दे शब्द ही इस्तेमाल किये। अन्त में मुझे देहलवी जी ने बोलने को कहा तो मैंने उपसंहार रूप मे बोला—

ठाकुर अमर सिंह शास्त्रार्थ केसरी—

मेरे प्यारे धर्मपाल जी आपने मुबाहिसे की न तो कोई तैयारी ही की थी, और न आर्य समाज पर कोई प्रश्न ही किया, और न इधर से किये गये प्रश्नों का कोई उत्तर ही दिया, मेरा ख्याल है कि अगर बजाये आपके कोई और मामूली से मामूली मुसलमान भी खड़ा होता तो कुछ न कुछ अपने विषय पर बोलता, आपने इन वेचारे मुसलमानों की बड़ी मट्टी पलीद कराई, जो आपसे वड़ी-बड़ी उम्मीदें लगाये बैठे थे। और हाँ जनाब धर्मपाल जी ! आपको एक पाप और लगेगा जो सिर्फ़ तुम्हारी वजह से हुआ है। (बीच में ही तड़क कर मौलाना धर्मपाल जी उठे और वोले.......... ...

मौलाना धर्मपाल—

सारे पाप और बुराई हम मुसलमान लोग ही करते हैं। पुण्य करने के लिए खुदा ने सिर्फ़ आपको भेजा है।

ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केसरी—

जनाब ये देहलवी जी ही थे, जिनके सामने आपने अपनी पुस्तक वेमतलब पढ़ी है, वर्ना मैं होता तो आपको मस्जिद में भेजता, यहां केवल मुबाहिसा ही होता, ये कोई बुकसेलर की दुकान नहीं थी। जब किताबें ही वेचनी थी। तो किताबें ही वेचते, क्यों मुबाहिसे का सहारा लेकर इन बेचारे मुसलमानों का पैसा खींच रहे हो। मैंने आपको पाप वाली वात कही थी। सुनो भाईयो गौर से सुनो ! आज जितने भी मुसलमान यहां मुबाहिसे में बैठे हैं उनमें से एक भी "असर की नमाज़" पढ़ने नहीं गया, जो कि सब नमाज़ों में बढ़िया मानी जाती है। मुसलमानों में चारो तरफ कोलाहल, एवं हिन्दुओं में तालियों की गड़गड़ाहट..........जो सिर्फ मौलाना धर्मपाल जी की वजह से ही हुआ है, ये क्योंकि ये लोग समझे बैठे होंगे कि मौलानासाहब आज असर की नमाज से भी कहीं ज्यादा बढ़िया चीजें नोश करा देंगे। परन्तु परांठे के चक्कर में रोटी भी गई, यह पाप किसे लगेगा ? इस वास्ते आप सब मुसलमानों को मौलाना सहित प्रायश्चित करना चाहिए, आज का मुबाहिसा समाप्त होता है। जनता में बुलन्द आवाज़..............बोलो वैदिक धर्म की जय ! महर्षिदयानन्द की जय !! (जयकारों से आकाश गूंज उठा, तथा आर्य समाज का बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा)।

बयालीसवां शास्त्रार्थ

स्थान : सिकन्दराबाद—जिला बुलन्दशहर (उ०प्र०)

विषय : मुलाहिम की मासूमियत पर विचार (अर्थात् हजरत मौहम्मद साहब के निरुपाप होने पर विचार)

दिनांक : सन् १६२४ ई० (चौथा दिन रविवार)

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : पंडित मुरारी लाल जी शर्मा

सहायक : पंडित रामचन्द्र जी देहलवी एवं पूर्व पंडित गण

मुसलमानों की तरफ से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री मौलवी अब्दुल हक़ विद्यार्थी

सहायक : मौलाना अस्मतुल्ला खां साहिब

नोट : यह मूल कापी हमें श्री श्याम लाल जी (पटियाला) निवासी द्वारा प्राप्त हुई, उनका हम हृदय से आभार प्रकट करते हैं। छपी पुस्तक से सन् आदि का कुछ पता नहीं चलता था पूज्य अमर स्वामी जी महाराज की स्मृति से ही सन्, माह व दिन का पता चल सका।

शास्त्रार्थ से पहले

आज फिर सिकन्दराबाद की पुरानी ईदगाह में दो बजे से शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ, श्रीमान पण्डित रामचन्द्र देहलवी जी का गला निरन्तर तीन दिन मेंह (बारिश) में बोलने के कारण पड़ गया था, इस लिए आज आर्य समाज के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ महारथी श्री पण्डित मुरारी लाल जी शर्मा वक्ता के आसन पर पधारे। जिस शुभ दिन के लिए पण्डित जी ने महीनों से अनथक परिश्रम किया था वह सुन्दर घड़ी आई देख कर उनके आनन्द का ठिकाना न रहा, उन्होंने अपने मुखालिफ़ को लक्ष्य करके कहा कि आज अन्त के दिन मैं बूढ़ा आपके सामने इस धर्म युद्ध के लिए उपस्थित होता हूँ, आप सब मौलवी मिल कर मेरे प्रश्नों का उत्तर दें, मुसलमानों ने कहा कि आज के लिए यह नियम किया जाए कि आधा-२ घन्टे कई मौलवी और पण्डित परस्पर शास्त्रार्थ करें पण्डित जी ने इस पर उत्तर दिया कि आपके लिए हम छुट्टी देते हैं कि चाहे कोई मौलवी उत्तर दे, किन्तु हमारी तरफ़ से एक ही पण्डित बोलेगा, केवल पण्डित रामचन्द्र जी दो आयते तमहीद की प्रथम पढ़ेंगे, पश्चात शेष प्रश्नोत्तर मुझसे होंगे, इस नियम के तै हो जाने पर शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ, आज के शास्त्रार्थ का विषय था "मुलहिम की मासूमियत पर विचार" अर्थात् "हज़रत मुहम्मद साहब के निष्पाप होने पर विचार' आज सभी मौलवी खुश थे कि हमारी तरफ से कोई भी मौलवी बोल सकेगा, परन्तु सामने से केवल एक ही पण्डित बोलेगा। आज हमारे सारे मौलवी मिलकर पण्डित की मट्टी पलीद कर देंगे मुसलमानों में चारों तरफ खुशी की लहर दौड़ रही थी। अन्य भी सभी श्रौतागण बड़ी ही दिल चस्पी से आँख व कान इस बूढ़े पण्डित की ओर एक टक लगाये बड़ी उत्सुकता के साथ बैठे थे। पण्डित राम चन्द्र जी देहलवी बोलने के लिए खड़े हुए तो चारों तरफ सन्नाटे का आलम बन गया। और शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ।

"अमर स्वामी सरस्वती"

शास्त्रार्थ प्रारम्भ

पंडित रामचन्द्र देहलवी—

मौवज्जिज़ हाज़रीन—मैं गला पड़ जाने के कारण अधिक नहीं बोल सकता हूं, केवल तमहीद के तौर पर क़ुरान की दो आयते पढ़ कर यह साबित करना चाहता हूं कि मुलहिम यानि जिस पर इलहाम (परमेश्वरीय ज्ञान) हुआ हो वह बेगुनाह यानी काम, क्रोध, लोभ, मोह, वगैरा से पाक और पवित्र हो, उसका जीवन चरित्र शुद्ध हो, वह परमेश्वर का पूर्ण भक्त होना चाहिए, मैं हज़रत मोहम्मद साहब को बड़ी इज्ज़त की निगाह से देखता हूं, किन्तु उनको बे गुनाह हर्गिज़ नहीं मानता, और इस लिए क़ुरान की दो आयते आपके सम्मुख पेश करता हूं।

नोट—

मूल कापी में आयतें नहीं दी गई हैं। जिनका अर्थ यह है कि ऐ नबी! तेरे अगले और पिछले गुनाह माफ़ कर दिये गये, और तुझको पाया हमने गुमराह पर हिदायत की। इन दोनों आयतों से सिद्ध है कि मुहम्मद साहब निष्पाप होते तो ख़ुदा यह क्यों कहता कि—नबी होने से पहले और नबी होने के बाद के तेरे गुनाह माफ़ कर दिये गये, इस वास्ते स्वयं क़ुरान यह बताता है कि मुहम्मद साहब बेगुनाह नहीं थे।

पण्डित मुरारी लाल शर्मा—

आपने पण्डित जी से तमहीद के तौर पर दो आयतें सुनी, जिनसे साफ़ ज़ाहिर है कि हज़रत साहब गुनाहगार थे, मैं अब कुछ हदीसें पेश करता हूं। ध्यान से सुनों, हदीस सही मुसलिम जिल्द ४ सफ़ा १४१८ को देखो जिसमें

लिखा है कि रसुल्लिलाह् वले हि असलम यानी (हज़रत मुहम्मद साहब) की निगाह पड़ी एक औरत पर, और आप अपनी बीवी जैनव (मुसलमानों की मां) के पास तशरीफ़ लाये और वहां एक चमड़े को दवा ग़त देने के लिए मल रही थी, फिर आपने अपनी हाजत उनसे पूरी की, और फिर अपने यारों की तरफ़ निकले और फ़रमाया कि औरत जब सामने आती है तो शैतान की सूरत में आती है। और जब जाती है तो शैतान की सूरत में ही जाती है। फिर जब किसी औरत को कोई देखे तो जरूर है कि अपनी बीवी के पास आवे यानी सोहबत करे कि उसके दिल का ख़याल जाता रहे। अब मैं पूछता हूं कि यहां मौहम्मद साहब ने मानसिक पाप किया या नहीं? क्योंकि पाप—"मनसा, वाचा, कर्मणा" इस प्रकार तीन तरह से होता है। आप बताइये कि एक औरत को देख कर हज़रत की तबियत बिगड़ी या नहीं? दूसरा प्रश्न यह है कि आपने यारों से जाकर कहा कि औरत जब सामने आती है तो शैतान की शक्ल में आती है, जब किसी औरत को देखें तो अपनी बीवी मे जाकर सोहबत करें ताकि दिल का ख़याल जाता रहे। मैं पूछता हूं कि यदि किसी के बीवी न होवे तो किसके पास जावे? या ऐसे मौके पर क्या करे? तीसरा प्रश्न यह है कि आपने तीसरे दिन वाले मुबाहिसे (शास्त्रार्थ) में स्त्री और पुरुषों का हक़ (अधिकार) बराबर बताया था, और आज औरत को शैतान की सूरत बताते हो। और हां हज़रत साहब के ग्यारह बीवियां (पत्नियां) थी उनकी किन में शुमार होगी? और क्या किसी मुसलमान को हक़ है कि वह किसी शैतानी से विवाह करे।

मौलवी अब्दुल हक़ विद्यार्थी—

हज़रात! आज की वहस मुलहिम की मासूमियत को क़ुरान शरीफ़ से पेश करना था, किन्तु अफ़सोस है कि पण्डित जी ने क़ुरान से कोई आयत पेश नहीं की सिर्फ़ दो आयतें पण्डित रामचन्द्र जी ने पढ़ी है, मगर उनको ठीक नहीं विचारा है, यहां पहली और पिछली आयतों को देखने से यह मालूम होता है कि कुफ्फ़ारों के गुनाह माफ़ किये गये। मुहम्मद साहब के नहीं, कुफ्फ़ारों ने मुहम्मद साहब को बहुत सताया, तब भी उन्होंने कुफ्फारों के गुनाह माफ़ कर दिये, अगर आप हदीस ही पेश करते हैं तो कीजिए, किन्तु वह क़ुरान के विरुद्ध न हो। औरत को देखकर रसूल की तबियत बिगड़ी, यह हदीस में कहीं नहीं लिखा है तबियत बिगड़ना तो नियोग के मसले में है वहां भी कोई नियोगन होगी हमारे यहां तो पर्दा था।

नोट—विद्यार्थी जी ने शैतान का कोई जवाब नहीं दिया ऊपर के उत्तर का प्रत्युत्तर देते हुए पण्डित जी ने क़ुरान की आयते पुनः पढ़ी और कहा—

पण्डित मुरारी लाल शर्मा—

विद्यार्थी जी ज़रा क़ुरान को हाथ में लीजिए, वहां का तर्जुमा देखिये, साफ लिखा है कि तेरे गुनाह माफ़ किये गये, और कौन से गुनाह जो तूने नबी होने से पहले और पीछे किये थे। अब बताइये यहां कुफ़्फ़ार कहां से आ गये? आपने जो पूछा है कि रसूल की तबियत बिगड़ी, यह हदीस में कहां है? मैं पूछता हूं कि जब आं हज़रत ने आकर जैनव के साथ में हाजत पूरी की तो क्या इससे दूसरी औरत को देखकर रसूल की तबियत का बिगड़ना साबित नहीं होता? और जब कि तुम भी जब किसी औरत को देखो तो अपनी बीवी के पास जाकर सोहबत करो; ताकि दिल का ख़्याल जाता रहे, क्या इससे यह साबित नहीं होता कि रसूल की तबियत बिगड़ी? अब इसके सिवाय और दो हदीसे भी पेश करता हूं। "उम्मे हातुल उम्मा" जिसको कि जनाब नज़ीर अहमद साहब एल०एल०बी० देहली ने बनाया है। खोल कर पढ़िये—"इस वक्त बीवी, आयशा की उम्र ६ साल की थी और जनाब पैग़म्बर साहिब की ५० साल की, चूंकि इस वक्त बीवी आयशा की उम्र बहुत छोटी थी इस वास्ते वाल्देन (माता-पिता) ने इस वक्त उसको रूखसत (विदा) नहीं किया, जब उसके रूखसत होने का वक्त आया तो उनकी वाल्दा (मां) ने उसके बचपन के खिलौने भी साथ कर दिए थे, जब बीवी आयशा अपने घरेलु कामों से फ़ारिग़ होती तो अपनी सहेलियों के साथ गुड़ियों से खेला करती, जब कभी इस खेल के वक्त पैग़म्बर साहिब आ निकलते तो लड़कियां इधर-उधर छिप जाती, मगर पैग़म्बर साहिब लड़कियों को पकड़-२ कर बीबी आयशा के पास भेजते, और कहते कि—जाओ खेलो किसी बात का डर नहीं है, पैग़म्बर साहब

कभी-कभी अपनी बीवियों से मिज़ाज खुश तबई भी किया करते थे और बीवी आयशा से ज्यादातर। एक मर्तबा का ज़िक्र है कि जनाब रसूलिल्लाह ग़ज़वए तबूक या शायद ग़ज़वये हुनेन से तशरीफ़ लाये बीवी आयशा के घर एक बड़ा ताक़ था जिस पर पर्दा पड़ा रहता था ताक़ में बीवी आयशा के गुड्डे-गुड़िया सम्भालें हुए रक्खे थे। इत्तफ़ाक से हवा चली और पर्दा उठ गया, पैग़ेम्बर साहब ने ताक़ की गुड़ियों की तरफ़ ईशारा करके पूछा कि यह क्या है? उन्होंने कहा कि ये मेरे खेलने की गुड़िया है, गुड़ियों में एक घोड़ा था, जिस पर कागज के दो पर लगे हुए थे, पैग़ेम्बर साहब ने घोड़े की तरफ़ ईशारा करके पूछा कि यह क्या है? जवाब दिया घोड़ा है। फिर पूछा ओ हो घोड़े के पर भी हुआ करते हैं? बीवी आयशा ने बरबस्ता जवाब दिया कि आपने सुना नहीं ये सुलेमान अलेस्सलम के परदार घोड़े थे, यह सुनकर पैग़ेम्बर साहब खिल खिला कर हंस पड़े। अब हदीस भी सुनिये, सही बुखारी जिल्द ३५५ पारा १३ किताब पैदाइश "हज़रत आयशा कहती हैं कि मैंने रसूले खुदा के लिए एक तकिया भर दिया, जिस पर तस्वीरें थीं, वह छोटा सा था, बस आप दोनों दरवाजों के दरम्यान खड़े हो गये, और आपके चेहरे का रंग बदलने लगा, मैंने कहा कि या रसूल्लिलाह! हमसे क्या क़सूर हुआ? आपने फ़र्माया वह तकिया कैसा है? मैंने कहा यह तकिया मैंने आपके लिए बनाया है ताकि आप इस पर लेटें, आपने फ़र्माया कि क्या तुम नहीं जानती कि फ़रिश्ते उस घर में नहीं जाते कि जिसमें तस्वीर हो और जो शख़्स तस्वीर बनाता हो, क़यामत के रोज़ उस पर अज़ाब होगा और अल्लाह उन लोगों से फर्मावेगा कि जो सूरतें (शक्लें) तुमने बनाई हैं उनको जिन्दा करो, अब बताइए कि इन दोनों से रसूले खुदा के घर में कुफ़ लाज़िम आता है या नहीं और बुत परस्ती साबित होती है या नहीं? औरों को नसीहत और खुदरा फ़ज़ीहत वाला कथन साबित है। आपने रसूल होते हुए भी आयशा को गुड़ियों के खेलने से नहीं रोका, दूसरे तकिये पर तस्वीरें बनाने के कारण हज़रत आयशा पर क़यामत के रोज़ अज़ाब होगा या नहीं? और अल्लाह इनसे कहेगा या नहीं कि तुमने जो सूरत बनाई है उनको जिन्दा करो। इस वास्ते खुदा के कौल (कथन) के मुताबिक़ आप गुनाहगार ठहरे, क्योंकि अपने घर में खिलौनों से खेलने पर मना नहीं किया, तथा इस हदीस के मुताबिक आपके घर फ़रिश्ते आ नहीं सकते, फिर वही कैसे नाज़िल हुई इसका सही उत्तर दीजिये।

मौलाना अब्दुल हक़ विद्यार्थी—

चूंकि हदीस में लिखा है कि जब कोई तस्वीर आपके सामने आती थी तो आप तोड़ देते थे। यह खुद हज़रत आयशा कहती हैं, फिर इस तकिये पर ऐसी तस्वीरें नहीं थी, जिनकी पूजा होती है, हम नज़ीर अहमद की किताब नहीं मानते, सिर्फ़ क़ुरान और हदीस मानते हैं। (इस दफ़ा भी आपने पहिले प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया) और कहा कि—तबियत बिगड़नी तो वहाँ देखिये जहाँ लिखा है कि पाराशर ऋषि ने मछोदरी के साथ ज़िना (बलातकार) किया, और विश्वामित्र ने मेनका के साथ (यहाँ आपने सारी कथा पढ़ी और चुप हो गये)।

पंडित मुरारी लाल शर्मा—

मौलाना साहब! यदि हम यह भी मान लें कि वे तस्वीरें तोड़ देते थे, तो बताइये हज़रत आयशा का तस्वीरें तोड़ने का जिक्र कहाँ है? बल्कि वहाँ तो आप खुश हुए हैं। अगर आप कहें कि तकिया फाड़ दिया था, तो फाड़ भी दिया हो लेकिन तस्वीरें बनाना तो साबित है, फिर हज़रत आयशा पर अज़ाब लाज़िम हुआ या नहीं? आप यदि नज़ीर अहमद खाँ का लिखा नहीं मानते तो "मदारिज़ुल नबव्वत" देखिए—यह सब कुछ वहाँ भी लिखा है। और "मदारिज़ुल नबव्वत" पढ़कर सुनाई गई। आपने पाराशर और विश्वामित्र की जो लम्बी कथा कही, वह प्रथम तो हम मानते नहीं दूसरे बहस तो मुलहिम पर हैं, अगर आप ऐतराज़ करते हैं तो, अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा (मुलहिम) पर करें, क्योंकि इन्हीं चारों पर वेद नाज़िल हुए हैं, मैं फिर आपको याद दिलाता हूं कि हज़रत की तबियत बिगड़ी और उन्होंने सोहबत की इसका उत्तर क्या है? इन प्रश्नों के सिवाय मैं फिर एक और हदीस पेश करता हूँ ज़रा ध्यान पूर्वक देखिए—"सही मुस्लिम जिल्द एक ज़िक्र अलहैज़" में लिखा है कि—बीवी आयशा से रिवायत है कि हम में से जब कोई रजस्वला होती है तो रसूल्लिलाह उसको हुकम करते तहमद बाँधने का, फिर उसके साथ मुबाशरत

करते "नौवी" ने कहा है कि मुवाशरत एक तो जिमा के माने हैं। वह हैज़ की हालत में हराम है और एक मुवाशरत यह है कि नाफ़ से ऊपर और घुटनों से नीचे मुवाशरत करे। ज़कर से या बोसे से या आलिंगन-चुम्बनादि करे यह हैज़ की हालत में हलाल है। अब प्रश्न यह है कि रसूले खुदा होकर भी चार दिन अपनी तबियत को जो नहीं रोक सकता वह कैसे ज़ाहिद और बेगुनाह हो सकता है? दूसरे नाफ़ से ऊपर और घुटनों से नीचे मुवाशरत करने के क्या अर्थ है? और इस दशा में वीर्य स्खलित होना पाप है कि नहीं? तीसरे हमारे हिन्दू भाइयों में अदने से अदना भाई भी रजस्वला की दशा में यह फ़ेल नहीं करता फिर इस्लाम धर्म का प्रवर्त्तक, नवी कहाने वाला रसूले खुदा यदि यह नापाक काम करता है तो वह पाक कैसे माना जा सकता है? कृपा कर इन सब प्रश्नों का उत्तर नम्बर वार दीजिए क्योंकि टालने से काम नहीं चल सकता।

नोट—

मौलवी अब्दुल हक़ साहिब फिर उठे किन्तु उनका दिली जोश ठण्डा पड़ गया, पिछली हदीस के पेश करने से मुसलमानों और मौलवियों के चेहरे फ़ीके पड़ गए, आपने कहा कि इस हदीस में मुवाशरत करना तो जरूर लिखा है, मगर उसका अर्थ सिर्फ़ प्यार करना है, विषय भोग का वताइये इसमें जिक्र कहाँ है? पंडित जी ने कहा कि मौलवी साहब ज़रा आँख खोल कर पढ़िये और देखिये यहाँ "ज़कर" शब्द आया है, जिसका अर्थ मनुष्य की उपस्थेन्द्रिय है। मौलवी साहब ने बड़े जोश में आकर कहा कि—हदीस में "ज़कर" शब्द नहीं है, अगर हो तो दिखाइये। इस पर उनको पुस्तक दे दी गई, अपनी पुस्तक में ज़कर शब्द देखकर मौलवी अब्दुल हक़ को अत्यन्त दुःख हुआ क्योंकि अब इसका और उत्तर भी क्या होता? मुसलमानों का हृदय भी अपने रसूल की इस हरक़त से विचलित हुए बिना न रहा, ठीक इसी समय कहा गया कि नमाज़ का वक्त हो गया है। और कुछ थोड़े से मुसलमान नमाज़ पढ़ने को चले गये आधा घन्टे के बाद मुवाहिसा पुनः आरम्भ हुआ।

दूसरे वक्त का मुबाहिसा आरम्भ

पंडित मुरारी लाल शर्मा—

मौलवी साहब आपने इस हदीस का कोई उत्तर नहीं दिया तो खैर अब एक और हदीस सुनिये और रसूल की तरफ से मुसलमानों के दिल से हटती श्रद्धा को फिर से पैदा करने का प्रयत्न कीजिए। देखिए—"सही मुस्लिम जिल्द सालिस सफ़ा ११५९"यहाँ लिखा है कि—सब बीवीयां आपके (साथ) थी और उस रात आपने सबसे सोहवत की और अखीर में गुसल जनावत किया। अब दूसरी हदीस को देखिये—"सही मुस्लिम जिल्द चौथी सफ़ा १४६१" मुसलमानों द्वारा शोर मचाना······इसमें कहा है कि ऐसा निकाह भी तो किसी का नहीं हुआ जिसमें अल्लाह पाक क़ाजी और जब्राईल वकील और आसमान से परे बालाएं अर्श उक्द हुआ हो, अब इन दोनों हदीसों पर प्रश्न थे कि—हज्ज के मौके पर सब बीवीयों से भोग करना किसी ज़ाहिद और खुदा परस्त का काम नहीं हो सकता, आप बताइये, रसूले खुदा ने खुदा की रात में कितनी देर इबादत की? और किस-किस वक्त नुमाज़ अदा की और ऊपर लिखे पाक कार्य को कितने वक्त तक करते रहे? जनता में हंसी·········तथा एक ही रात में सब बीवीयों से यानी ९ बीबीयों से सोहवत (सम्भोग) करना क्या किसी मुलहिम का काम है, जबकि एक मामूली आदमी भी ऐसा नहीं करता। दूसरी हदीस की बाबत में आपसे पूछता हूँ कि आपने अपने मुतबन्ने की बीवी से जिसका नाम "ज़ैनव" था आसमान पर बालायें अर्श निक़ाह किया, जिसमें खुदा, क़ाजी, और जब्राईल वकील बनें। इससे प्रथम तो खुदा मुजस्सिम साबित हुआ, क्योंकि उसने निक़ाह पढ़ा और आपने सुना, दूसरे अर्श भी साबित होता है जहाँ निक़ाह पढ़ा गया, तीसरे बताइये—ज़ैनव के कबूल किए बिना निक़ाह कैसे हुआ? और आप आसमान मैं कैसे गये?

नोट —

इस कथन से सारे मुसलमानों में खलबली मच गई, और घबराहट पैदा हो गई, चारों ओर कोहराम मच गया। मौलवी अब्दुल हक़ को भी अपना पीछा छुड़ाना भारी हो गया बड़ी मुश्किल से बिमारों की तरह खड़े हुए और बोलना शुरू कर किया —

मौलाना अब्दुल हक़ विद्यार्थी—

आं हज़रत ने जहाँ बीवीयों से सोहबत की वहाँ सोहबत का अर्थ है संगत करना, जैसे कोई मनुष्य किसी आलिम की सोहबत करे। (जनता में बेहद हँसी............)

नोट—

मौलवी साहब ने कुछ इधर-उधर की लीपा-पोती की, ज़ैनब की बाबत कोई जवाब नहीं दिया सिर्फ़ यही कहा कि—पण्डित जी ! यहाँ खुदा और अर्श की बहस नहीं है, जो आप ले बैठे, और आप चुप-चाप बैठ गये। (यहाँ पर शास्त्रार्थ में केवल ५-५ मिनट बोलने का नियम कर दिया गया था)।

पण्ड़ित मुरारी लाल शर्मा—

मौलाना ! यहाँ सोहबत का अर्थ जो आपने किया वह कहाँ तक ठीक है ? यहाँ बैठे लोगों पूछ लीजिए। क्योंकि वहाँ लिखा है कि अखीर में आपने जनाबत का ग़ुसल किया, और फिर रात में ही सोहबत करने का क्या अर्थ हुआ, और वह सोहबत की भी थी तो वह क्या थी, जनता से हंसी........इसका खुलासा कीजिए।

मौलाना अब्दुल हक़ विद्यार्थी—

यदि सोहबत का अर्थ यह न होगा तो आप मुसलमान हो जाइयेगा अन्यथा मैं आर्या हो जाऊंगा।

पण्ड़ित मुरारी लाल शर्मा—

मौलाना ! खुदा न करे तुम्हें आप आपरेशन से आर्या बनना पड़े आपको पता होना चाहिए आर्या शब्द स्त्रीलिंग है। जनता में बेहद हंसी......... आप आर्य ही बनें। हम मौलाना आपको तावान (इनाम) देगें अगर सोहबत का अर्थ आप ही साबित कर देगें, अन्यथा आपकी शर्त हमें मन्जूर है, लीजिए—मैं कुछ हदीसे और सुनाता हूँ। ताकि आपकी पूरी तसल्ली हो जावे।

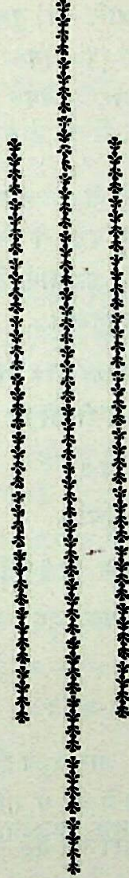
नोट—

पण्डित जी ने अपने पक्ष की पुष्टि के लिए मारिया, क़ुवतिया, लौंड़ी की हदीस पढ़ना शुरू ही करना चाहते थे कि मौलवियों ने हल्ला मचा दिया और शास्त्रार्थ से एक घन्टा पूर्व ही भाग निकले। मौलवियों की जैसे-तैसे जान बची, किन्तु स्थानीय (सिकन्दराबाद) एवं आये हुए आस-पास के मुसलमानों पर इनके भागने का बहुत ही बुरा असर पड़ा, और उनको अपनी कमज़ोरी खुद ही साफ़ ज़ाहिर हो गई। हम फिर अन्त में कहते हैं कि—यदि मुसलमानों को ज़रूरत हो तो इन हदीसों के रहते आं हज़रत को बेगुनाह साबित करें।

"अमर स्वामी सरस्वती"

तैतालीसवां शास्त्रार्थ

स्थान : भिवानी (हरियाणा)



दिनांक : सन् १९३७ ई०

विषय : क्या महर्षि दयानन्द जी का जीवन व उनके रचित ग्रन्थ निष्कलंक थे ?

शास्त्रार्थकर्त्ता आर्य समाज की ओर से : श्री पण्डित मनसा राम जी वैदिक तोप

शास्त्रार्थकर्त्ता सनातनधर्मियों की ओर से : श्री पण्डित भीमसैन जी

आभार : यह अप्राप्य सामग्री भिवानी निवासी श्री "फूल चन्द जी शर्मा "निडर" द्वारा प्राप्त हुई ।

—"सम्पादक"

शास्त्रार्थ से पहले

भिवानी शहर में एक शास्त्रार्थ का आयोजन किया गया, जिसमें सनातन धर्म की ओर से पं० भीमसैन जी तथा आर्य समाज की ओर से मैं (पं० मनसा राम जी वैदिक तोप) निश्चित हुए। पौराणिकों ने शास्त्रार्थ आदि कुछ करना नहीं था, इसलिए उन्होंने आर्य समाजियों को पीटने की योजना पहले से ही तैयार कर रखी थी और भारी संख्या में उपस्थित होकर, आर्य समाज भिवानी में ठहरे मुझे (पं० मनसा राम जी आदि को) बुलावा भिजवा दिया। (उस शास्त्रार्थ में भिवानी निवासी श्री पं० फूल चन्द शर्मा जी "निडर" भी मौजूद थे।) मैं (पं० मनसा राम जी) बहुत से आर्य भाइयों के साथ शास्त्रार्थ मैदान में उपस्थित हो गया। वहां पर दो मंच पहले से ही तैयार थे, अपने पूर्व निश्चित मंच पर जाकर मैं तथा आर्य समाजी लोग जाकर बैठ गये।

शास्त्रार्थ का प्रधान सनातनधर्मी था, जो बहुत ही धूर्त व झगड़ालू था, उसने कहा पहले हमारा पण्डित २५ मिनट बोलेगा। बाद में तुम लोग उत्तर देना तुम्हें भी २५ मिनट उत्तर के लिये दिये जायेंगे। इतना कहते ही पं० भीमसैन जी ने बोलना आरम्भ कर दिया—बार-बार कहने पर भी कि शास्त्रार्थ से पहले कोई नियम व विषय आदि तय कर लिये जावें, परन्तु उन लोगों ने एक न सुनी और बोलना आरम्भ कर दिया।

१. स्वामी दयानन्द ने रामाबाई को मेरठ में बुलाया और उसे १००) रु० तथा एक मलमल का थान दिया। और स्वामी दयानन्द की एक जमींदार के लड़के से दोस्ती थी।

२. सन्यासी को धन देना स्वामी जी ने लिख दिया।

३. विद्वानों का नाम स्वामी जी ने देवता लिख दिया।

४. शाखा ११२७ स्वामी जी ने मान ली वास्तव में ११३१ हैं।

५. स्वामी जी ने चार वेद, चार ऋषियों पर प्रकट हुए, यह बतलाया जो गलत है। वेद केवल ब्रह्मा जी पर ही प्रकट हुए थे।

६. आर्य समाज वेद का क़तल कर रहा है। आदि-आदि

इस प्रकार कुछ और प्रश्न भीमसैन जी ने किये, और बहुत ही गन्दे तरीके से हाव-भाव दर्शा कर स्वामी दयानन्द व आर्य समाजियों को बुरा-भला कहा हम उत्तर की प्रतीक्षा में बैठे थे, तो २५ मिनट समाप्त होने के बाद हमने प्रधान जी को समय की ओर इशारा किया, तो प्रधान जी ने कहा—आप चुप बैठे रहिये। हम पुनः बोले ! तो प्रधान ने खड़े होकर खुले शब्दों में आर्य समाज व स्वामी दयानन्द जी महाराज को गालियां देना आरम्भ कर दिया विवश होकर मैं उत्तर देने खड़ा हुआ ही था कि चारों ओर से पत्थर व लाठियां बरस पड़ीं। हम लोग हाय-हाय करके बाहर को भागे, जैसे तैसे जान बची, कई हमारे व्यक्ति लहू-लुहान हो गये, किसी की टांग टूट गई, कोई किसी अंग से जख्मी हो गया। मुझे वो २५ मिनट जीवन भर याद रहेंगे। बाद में मैंने एक छोटा सा ट्रैक्ट ज़िसमें इन २५ मिनट में जो-जो प्रश्न हम पर किये गये थे, उनका उत्तर देकर छपाया जिसका प्रकाशक "आर्य समाज भिवानी" है। एवं श्री के० ए० देसाई के प्रबन्ध से श्री अम्बिका प्रिंटिंग वर्क्स सिटी ब्रान्च भिवानी में सन् १९३७ में ही छपा था। जिसकी २००० प्रतियां छपाई गई थीं एवं मूल्य दो पैसे था। उस ट्रैक्ट का नाम भी मैंने "मेरे पच्चीस मिनट" ही रखा था। जिसमें मैंने केवल यही बताया कि अगर मुझे समय दिया जाता तो मैं उनके प्रश्नों का क्या उत्तर देता।

"मनसा राम"

नोट—

आगे आप वही प्रश्नोत्तर "मेरे पच्चीस मिनट" के रूप में पढ़िये और लाभ उठाइये।

—"सम्पादक"

शास्त्रार्थ आरम्भ

पण्डित भीमसैन जो—

उपस्थित सज्जनों ! स्वामी दयानन्द ने रामाबाई को मेरठ में बुलाया और उसे एक सौ रुपये तथा एक मलमल का थान दिया, और दयानन्द की एक जमींदार के लड़के से दोस्ती थी। ये सब बातें इनके गुरु को क्या कलंक रहित साबित करती हैं ?

पण्डित मनसा राम जी वैदिक तोप—

रामाबाई एक ब्राह्मण वंश की विदुषी लड़की थी, वह एक कायस्थ से विवाह करना चाहती थी, अतः इसी बात पर उसके बाप ने उस लड़की को घर से निकाल दिया था। स्वामी जी ने उसकी विद्या की प्रसिद्धि सुनकर इस विचार से कि वह ब्रह्मचारिणी रह कर स्त्रियों में वैदिक धर्म का प्रचार करे। उससे पत्र व्यवहार कर उसे मेरठ में बुलाया, और उसके व्याख्यान मेरठ समाज में करवाये। जब उसने ब्रह्मचारिणी रहकर प्रचार करना स्वीकार न किया तो उसे सत्कारपूर्वक भेंट और मार्ग व्यय देकर विदा कर दिया, इसमें आक्षेप की क्या बात है ? रामाबाई का आना ऐसे ही संदेहजनक नहीं है जैसे सीता का दस महीने रावण के घर रहना संदेहजनक नहीं है। जमींदार के लड़के की बात आर्य समाज की किसी पुस्तक में नहीं लिखी। स्वामी जी महाराज के विषय में अन्य मतावलम्बियों का लेख आर्य समाज के लिए कोई प्रामाणिक नहीं है। हम इस बात का चैलैन्ज करते हैं कि कोई मर्दे मैदान आर्य समाज के ग्रन्थों से स्वामी जी के बारे में कोई ऐसा लेख दिखावे जो स्वामी जी को कलंकित करता हो। वरना हम सनातन धर्म के मान्य ग्रन्थ पुराणों से शिवजी का वैश्यागमन, कृष्ण का शराब पीना, कुब्जा से व्यभिचार करना आदि दिखायेंगे जिनसे सिद्ध होता है कि सनातन धर्म अपने पूर्वजों को किस प्रकार कलंकित करता है। कुछ संक्षेप रूप में उदाहरण देता हूं। ध्यान दीजिये—

कौशल्या का घोड़े से जोड़ना—

"होताऽध्वर्यु स्थतोद्गाताध्येन समयोजयन् ॥३५॥

(बालमीकी० बालकाण्ड सर्ग १४)

अर्थात्—तदनन्तर अध्वर्यु होता हुआ तथा उद्गाता ने कौशल्या को घोड़े के साथ नियोजित किया।

गौ चर्म से नदी—

रन्ति देवस्य यज्ञेताः पशुत्वेनोपकल्पिताः। अतश्चर्मण्वतींराजन् गोचर्मभ्यः प्रवर्तिता ॥८२॥

(महा० अनु० अ० ६६)

अर्थात्—राजा रन्तिदेव के यज्ञ में उन गौवों को पशु वध में प्रयोग किया गया। इसलिए गौवों के चर्म से चर्मण्वती नदी बह निकली।

कुब्जा संभोग से मरी—

कुब्जामृता च संभोगाद्धास सारजकोमृतः ॥२३॥

(ब्रह्मवैवर्त पुराण खं० ४, अध्याय १०६)

अर्थात्—कृष्ण से सम्भोग के कारण कुब्जा मरी, और कपड़ों के कारण धोबी मरा।

आगत्य मथुरां कुब्जां जघान मैथुनेन च ॥६२॥

(ब्रह्मावैवर्त० खं० ४ अध्याय ११५)

अर्थात्—कृष्ण ने मथुरा में आकर कुब्जा को मैथुन से मार दिया।

राम से महर्षियों की भोगेच्छा—

पुरामहर्षयः सर्वेदण्डकारण्य वासिनः। दृष्ट्वा रामम् हरिं तत्र भोक्तुमिच्छत्सु विग्रहम् ॥१६६॥

(पद्मपुराण उत्तर खण्ड अध्याय २७२)

अर्थात्—पहले दण्ड कारण्य में बसने वाले महर्षि, सब राम के साथ भोग करने की इच्छा से आपस में लड़ पड़े।

ब्रह्मा का पोती को देखकर वीर्यपात—

ततो वस्त्रं समुत्क्षिप्य सती वक्त्रमहंमुने। अवेक्षं किल कामार्तः प्रहृष्टेनानतरात्मना ॥२६॥
ममरेतः प्रचस्कंद ततस्तद्वीक्षणाद्द्रुतम् ॥२८॥

(शिव० रुद्र० सती० अ० १९)

ब्रह्मा ने कहा कि—तब मैंने कपड़ा उठाकर सती के मुख को देख लिया, मैं काम से आर्त हो उठा, और मेरा मन प्रसन्न हुआ। उसके मुख देखने से मेरा वीर्य शीघ्रता से निकल पड़ा।

महादेव का रण्डीबाजी करना—

नन्दी ग्रामे पुरा कश्चिन्महानन्देति विश्रुता। बभूव वार वनिता शिवभक्ता सुसुन्दरी ॥२॥ एकदा च गृहे तस्या वैश्यो भूत्वा शिव स्वयम् ॥१३॥ सातेन संगता रात्रौ वैश्येन विट धर्मिणा। सुखं सुष्वाप पर्यं के मृदु तल्योप शोभिते ॥२०॥

(शिव० शतरुद्र० अ० २६)

अर्थात्—पहिले नन्दी ग्राम में महानन्दा नाम की रण्डी मशहूर थी। वह शिव की भक्तिन थी, और अति सुन्दर थी। एक दिन शिवजी महाराज स्वयं वैश्य (व्यापारी) बनकर उसके घर गए, वह वैश्या उस वैश्य रूप शिवजी से रात्रि में नर्म-नर्म पलंग पर सुख के साथ समागम करने के लिए सोई।

कृष्ण ने अर्जुन को अर्जुनी बनाकर उससे सम्भोग किया—

समालोक्यार्जुनीयाऽसोमदनावेशविह्वला ॥१८८॥ तस्याः पाणिं गृहीत्वैव सर्व क्रीड़ा वनान्तरे ॥१८९॥
यथा काम रुहोरेमेमहायोगेश्वराविभूः ॥१९०॥

(पद्म० पाताल० अ० ७४)

अर्थात्—कृष्ण ने अर्जुन को काम से व्याकुल अर्जुनी बना हुआ देख कर उसके हाथ को पकड़ कर वन में क्रीड़ा करते हुए इच्छा के अनुसार उससे रमण किया।

मां-बहिन-बेटी-भतीजी से विवाह करना—

स्वकीयांचसुतां ब्रह्मा, विष्णु, देवं स्वमातरम्। भगिनीं भगवाञ्छंभुर्गृहीत्वा श्रेष्ठ तामगात् ॥२७॥
इतिश्रु त्वावेद-मयं वाक्यं चादिति संभवः। विवस्वान् भ्रातृजां सज्ञां गृहीत्वा श्रेष्ठवान्भूत ॥२८॥

(भविष्य० प्रतिसर्ग० खं० अ० १८)

अर्थात्—अपनी पुत्री को ब्रह्मा, मां को विष्णु, और बहिन को महादेव विवाह द्वारा ग्रहण करके श्रेष्ठता को प्राप्त हो गये। इस वेदानुकूल वाणी को सुनकर सूर्य ने भी भतीजी से विवाह कर लिया।

कृष्ण का शराब पीना—

तस्मिन्नहनि देवोऽपि सहान्तः पुरिकैर्जनैः। अनुभूय जल क्रीड़ां यान् मासे वते रहः ॥.१७॥ स्वभावतोऽलय सत्वानां जघनानि प्रसुस्त्रवः ॥२७॥ भित्वा वासांसि शुभ्राणि पत्रेषु पतितानितु ॥३४॥

(भविष्य० ब्राह्म० अ० ७२)

अर्थात्—श्रीकृष्ण जी भी उस दिन अपनी स्त्रियों समेत जल क्रीड़ा का अनुभव करके एकान्त में शराब पी रहे थे। शाम्ब को देखकर जो स्त्रियां स्वभाव से ही अल्प सत्त्व वाली थीं, उनकी जाँघें टपक पड़ीं और खड़ा होने पर सारा मशाला कपड़ों में से छन-छनकर घास और पत्तों पर गिर पड़ा।

राक्षसों का ब्रह्मा से मैथुन करने के लिए उनके पीछे भागना—

पाहिमां परमात्मंस्ते प्रेषणेना सृजं भजाः ता इमा यभितुं पापा उपक्रामन्तिमां प्रभो ॥२६॥

(भागवत० स्कन्द ३ अ० २०)

अर्थात्—ब्रह्मा ने विष्णु से पुकार की, कि हे परमात्मन मेरी रक्षा करो। मैंने आपकी आज्ञा से ही, प्रजा पैदा की थी, किन्तु ये पापी मेरे साथ ही मैथुन करने के लिए मेरे पीछे भाग रहे हैं।

इत्यादि-इत्यादि कथायें और लेख पौराणिक सनातन धर्म के मान्य ग्रन्थ महिधर भाष्य और अठारह पुराणों में विद्यमान है।

परन्तु बिल्ली को स्वप्न में भी छिछड़े ही नजर आते हैं। इन पौराणिकों का अपना इतिहास व पूर्वज सभी कलंकित हैं ही, इन्हें दूसरे के घर में भी वही गंदगी नजर आती है। अब मैं संसार भर के सनातन धर्मियों से पूछता हूं कि क्या इन उपरोक्त सप्रमाण बातों का कोई जवाब तुम्हारे पास है? खुद कांच के महल में बैठ कर दूसरों पर पत्थर मारते हो, इसका परिणाम स्वयं सोचो।

पं० भीम सैन का दूसरा प्रश्न था कि—

पण्डित भीम सैन जी—

सन्यासी को धन देना स्वामी दयानन्द ने लिखा है।

पण्डित मनसा राम जी वैदिक तोप—

इसमें स्वामी जी ने लिख कर क्या पाप कर दिया? सन्यासी को परोपकारार्थ धन देना तो अथर्व वेद में साफ लिखा है, देखिये—"येनयतिभ्यो मृगवेधने हिते" (अथर्व०, २०-९-३) इसी का अनुमोदन (मनुस्मृति ११-६) में किया है, यथा—"धनानि तु यथाशक्ति" जिसका भाव स्वामी दयानन्द जी महाराज ने अपने शब्दों में "विविधानि च रत्नानि" इत्यादि द्वारा सत्यार्थ प्रकाश में दिया है, अतः स्वामी जी का लेख ठीक है।

आपके मतानुसार सन्यासियों को धन देना तो मना है। किन्तु कान्फ्रैंसों के लिए ११००) का लेना ठीक है? और सन्यासियों का मठ बना कर रहना, हाथी पर चढ़ना, लाखों रुपये की सम्पत्ति का मालिक होना कैसे ठीक है?

पण्डित भीम सैन जी—

विद्वानों का नाम स्वामी जी ने देवता लिख दिया।

पण्डित मनसा राम जी वैदिक तोप—

स्वामी जी का लेख ठीक है। इसमें आपके ही घर के प्रमाण इस प्रकार हैं। "सत्यमेवदेवा अनृतं मनुष्याः" (शतपथ-

१-१-१४) सत्य बोलने वाले देवता और झूठ बोलने वाले मनुष्य होते हैं। "विद्वाᳬसोहदेवाः" (शतपथ ३-७-३-१०) विद्वानों का नाम देवता है, "एवं योगिनोऽपिदोपनाद्देवाः" (महिधर भाष्य, यजुर्वेद ३१-९) इस तरह प्रकाशमान् होने से योगियों का नाम देवता भी है।

इस प्रकार विद्वानों का नाम देवता स्वामी जी महाराज ने ठीक ही लिखा है। और क्या इन तिलकधारी-छापामारों, निरक्षक भट्टाचार्यों को देवता लिखते ?

पण्डित भीम सैन जी—

शाखा ११२७ स्वामी जी ने मान ली जबकि वास्तव में ११३१ शाखायें हैं।

पण्डित मनसा राम जी वैदिक तोप—

मूल के विना शाखा किसकी ? अतः चार मूल वेद हैं, और ११२७ उसकी शाखा अर्थात् व्याख्या ग्रंथ हैं, यही बात व्यास जी ने भी लिखी है। यथा—"एक विंशतिसाहस्त्रं ऋग्वेदं मां प्रचक्षते। सहस्रशाखंयत् सामये वैं वेद विदो जनाः ॥९४॥ षट्पंचाशतमष्टौच सप्तंत्रिंशतमित्युत। यस्मिञ्छाखायजुर्वेदे सोऽहमध्वर्य्यवे स्मृतः ॥९५॥ पंचकल्पमथर्वाणं कृत्याभिः परिबृंहितम् ॥९६॥

(महाभारत शान्तिपर्व अध्याय ३४२)

अर्थात्—ऋग्वेद की २१, सामवेद की १०००, यजुर्वेद की १०१, तथा अथर्व वेद की पांच यह कुल मिलकर ११२७ शाखा अर्थात् वेदों के व्याख्यान हैं, ये मूल वेद नहीं हैं।

स्वामी जी ने भी शाखायें ही कहा है, वेद तो नहीं कहा ? क्या व्यास जी के इस उत्तम कथन को पढ़ते समय सनातनधर्मियों की आंखों में मोतिया विन्द उतर आता है ?

पण्डित भीम सैन जी—

स्वामी दयानन्द ने चार वेद, चार ऋषियों पर प्रकट हुए बतलाये, यह गलत है, वेद सिर्फ़ एक ब्रह्मा जी पर ही प्रकट हुए थे।

पण्डित मनसा राम जी वैदिक तोप—

स्वामी जी का लेख ठीक है, जैसे कि आपके ग्रन्थों में प्रमाण मौजूद हैं, यथा—"अग्नअग्नेर्ऋग्वेदोवायोर्यजुर्वेदः सूर्य्यात् सामवेदः" (शतपथ; ११-५-८-३) तथा "यदथर्वांगिरसः सय एव" (शतपथ; ११-५-६-७) व "अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्। दुदोह यज्ञ सिद्धयर्थं मृग्यजुः सामलक्षणम् ॥ (मनुस्मृति, १-२३) तथा "श्रुतिरथर्वाङ्गिरसीः" (मनुस्मृति, ११-३३)। इन प्रमाणों से स्पष्ट है कि परमात्मा ने चार वेद श्री अग्नि, श्री वायु, श्री आदित्य तथा श्री अंगिरा इन चार ऋषियों पर प्रकट किये, तथा उन ऋषियों से ब्रह्मा ने पढ़े। श्रीमान् जी ! मानते आप भी चारों वेदों का चार ऋषियों पर प्रकट होना ही है। केवल फ़र्क यह है कि, आपने चारों की पीठ को जोड़कर चार मुख वाले एक ब्रह्मा की कल्पना कर ली, जो कि असम्भव है। और हमने चारों को पृथक-पृथक माना, जो कि सृष्टिक्रम के अनुकूल और सम्भव है।

पण्डित भीम सैन जी—

आर्य समाज नास्तिकता का प्रचार कर वेदों का क़तल कर रहा है। स्वामी दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में नियोग आदि की ऐसी शर्मनाक बातें लिखी हैं जो सब वेद विरुद्ध हैं, आर्य समाज गौरक्षक नहीं बल्कि गौ भक्षक हैं। इनकी सभी मान्यताएं वेद विरुद्ध हैं।

पण्डित मनसा राम जी वैदिक तोप --

अब मैं कुछ उदाहरण देकर बताता हूं कि वेदों का क़तल हम लोग करते हैं या सनातनधर्मी ? एवं नास्तिक हम हैं या वे लोग ! आदि-आदि ।

गर्भवती गौ को मार कर होम करना—

"एक पदीमेकं पदं स्यात्स्तां वपयैकपद युताम्। द्विपदीं वपया अङ्गैश्च द्विपदयुताम्। त्रिपदीं त्रीणिपदानि यस्यास्तामु पयुड्ढोमैं स्त्रिपदीं। चतुष्पदी पत्नी संयाजैश्चतुर्भिः पादैर्वाचतुः पादयुताम्। अष्टापदीं स्वपादैं गर्भपादैश्चाष्टपादयुताम् एवं भूतां वशां गमयित्वा भूतान्यनु प्रथन्तामिति संबधः स्वाहा सुहुतमस्तु ॥

(यजुर्वेद, ८-३० पर महीधर भाष्य)

अर्थात्—चर्वी से एक पदी, चर्वी और अंगों से द्विपदी, होम से त्रिपदी, पत्नी संयाज से चतुश्पदी अपने पैर तथा गर्भ के पैर मिला कर अष्टपदी गौ का होम करना चाहिये ।

श्राद्ध में गौ मांस—

"हे जात वेदः, जातं वेदो धनं यस्मात् स जात वेदाः तत्संबोधने हे जातवेदः पितृभ्योऽर्थाय त्वं वपां धेनु सम्बन्धिचर्म विशेषं त्वं वह मापय ॥

(यजुर्वेद, ३५-२० पर महीधर भाष्य)

अर्थात्—हे जात वेदः तू पितरों के लिए गाय की चर्वी प्राप्त कर ।

रानी का घोड़े के साथ सोना—

"महिषी अश्व समीपे शेते । हे अश्वगर्भधं गर्भधारकरेतः ॥ अहं आकृष्य क्षिपामी ॥ तं चरेतः आकृष्य क्षिपसि ।

(यजुर्वेद, २३-१९, माहीधर भाष्य)

अर्थात्—यजमान की स्त्री घोड़े के पास सोती है, और कहती है कि हे घोड़े मैं तेरा गर्भ धारण कराने वाला वीर्य खैंचकर अपने में डालती हूं । और तू भी उस वीर्य को खैंचकर मेरे में डाल ।

घोड़े के लिंग को योनि में डालना—

महिषी स्वयमेवाश्वशिश्न माकृष्य स्वायोनौ स्थापयति । वाजी अश्वो रेतोदधातु मयि वीर्यं स्थापयतु ॥

(यजुर्वेद, २३-२०, महीधरभाष्य)

अर्थात्—यज्ञमान की स्त्री घोड़े के लिंग को स्वयं खैंचकर अपनी योनि में स्थापित् करती है । और कहती है कि यह घोड़ा मेरे में वीर्य स्थापन करे।

लिंग का योनि में प्रवेश—

"हे अश्व ! महिष्या गुदोपरि वीर्यं धारय। लिंगंयोनौ प्रवेशय ॥

(यजुर्वेद, २३-२१, महीधरभाष्य)

अर्थात— हे घोड़े ! तू यज्ञमान की स्त्री की गुदा के ऊपर वीर्य ड़ाल, अर्थात लिंग को योनि में प्रवेश कर ।

कुमारी से मखौल—

"अध्वर्य्वादयः कुमारी पत्नीभिः सह सोपहासं वदन्ते। अंङ्गुल्या योनिं प्रदेशयन्नाह' हले-हले इति शब्दयन्ती स्त्रीणां शीघ्र गमने योनौ हलहला शब्दोभवतीत्यर्थः। यदाभगे शिश्नमागच्छति तदा योनिर्नितरां वीर्यं क्षरतिः ॥

(यजुर्वेद, २३-२२, महीधरभाष्य)

अर्थात्—अध्वर्यु आदि कुमारी तथा पत्नियों से मखौल करते हैं, उंगलियों से योनि की शकल बनाकर इशारा कर-कर के कि स्त्रियों के शीघ्र चलने में योनी के अन्दर हल-हल शब्द होता है। जब योनि में लिंग प्रवेश करता है, तो योनि निरन्तर वीर्य झरने लगती है।

अण्डकोषों का कांपना—

"होता परिवृक्तामाह यदा अस्याः परिवृक्तायाः ह्रस्वं स्थूलं च शिश्नं योनिं प्रतिगच्छेत् तदा वृष्णौ अस्याः योनिरुपरिकम्पेते यथा उदक पूर्णे गोः शफे पदे मतस्यौ कम्पेते ॥ (यजुर्वेद, २३-२८, महीधर भाष्य)

अर्थात्—होता परिवृक्ता रानी को कहता है कि, जब तेरी योनि में छोटा और मोटा लिंग घुसता है तो दोनों अण्ड-कोश उसकी योनि पर कांपते हैं। जैसे पानी से भरे हुए गौ के खुर में दो छोटी मछलियां तड़फती हैं।

पौराणिक सनातन धर्म का नास्तिकपन—

"न मांसभक्षणे दोषो, न मद्ये न च मैथुने। प्रवृत्ति रेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महा फला ॥ (मनुस्मृति, ६-५६)

अर्थात्—न मांस खाने में कोई दोष है, न शराब पीने में, न व्यभिचार करने में। यह तो प्राणियों की प्रवृत्ति ही है। यदि छोड़ दें तो महाफल है। यहां निवृत्ति को फलदायक बतलाया है। प्रवृत्ति को दोषजनक नहीं बतलाया परन्तु आगे मनुस्मृति में ही, "मांस न खाने पर" पाप बतलाया है, यथा—

"नियुक्तस्तु यथा न्यायं योमासं नात्ति मानवः। स प्रेत्य पशुतां याति संभवाने कविंशतिम् ॥ (मनुस्मृति, ५-३५)

अर्थात्—यज्ञ, मधुपरक और श्राद्ध में पकाये मांस को जो नहीं खाता वह मरकर इक्कीस जन्म तक पशु योनि में जाता है।

श्राद्ध में गौ मांस—

"मांसेनैकादश प्रीतिः पितृणांमाहिषेणतु। गव्येनदत्तै श्राद्धेतु सम्वत्सर मिहोच्यते" (मह० अनु० अ० ८८)

अर्थात्—भैंसे का मांस श्राद्ध में ब्राह्मणों को खिलाने से पितरों की ग्यारह महिने तक की तृप्ति होती है। और ग का मांस श्राद्ध में ब्राह्मणों को खिलाने से पितरों की एक वर्ष तृप्ति होती है।

रन्ति देव के यहां मांस भोजन—

अहन्य हनि वध्येते द्वे सहस्त्रे गवां तथा। समांसं ददतोह्यन्नं रन्ति देवस्य नित्यशः ॥६॥

(महाभारत वन० अ० १०७)

अर्थात्—महात्मा रन्ति देव के यहां हमेंशा मांस वाला भोजन देने के लिए दो हजार गौवें मारी जाती थी।

श्राद्ध में गौ मारने से पुण्य—

पितृ प्रसादाद्युष्माभिस्संप्राप्तं सुकृतं भवेत्। गां प्रोक्षयित्वा धर्मेणापितृभ्यश्चोपकल्पिता ॥५०॥

(शिवपुराण० उमा० अ० ४१)

अर्थात्—पितरों की कृपा से तुमको पुण्य प्राप्त हुआ, क्योंकि तुमने गौ का प्रोक्षण करके पितरों के निमित्त करके उसका मांस खाया है।

रुक्मणी के विवाह में गौ मांस—

गवांलक्षं छेदनं च हरिणानां द्विलक्षकम् ॥६१॥ एतोषांपकवपांसंच भोजनार्थंचकारय ॥६३॥ सजा संभृत संभारो बभूव सत्वरं मुदा। निमन्त्रणं च सर्वत्र चकार चसुताज्ञाया ॥६६॥ (ब्रह्मवैवर्त० खं० ४, अध्याय १०५)

अर्थात्—रुक्मणी के विवाह पर रुक्मि ने तजवीज की, कि एक लाख गौ काटी जावें, और दो लाख हिरण काटे जावें, और इनका मांस भोजन के लिए पकाया जावे, राजा ने पुत्र की आज्ञा के अनुसार सारी तैयारी कर ली, और सबको निमन्त्रण दे दिया।

महादेव द्वारा अण्डकोष भोजनार्थ—

आस्वादितं न चान्यैस्तु भक्ष्यार्थेचददाम्यहम्। अधो भागे चमेनाभेर्वर्तु लौफलसंनिभौ ।।१२३।। भक्ष्यछ्वंहिसहितालम्बौ मे बृषणाविमौ। अनेन चापि भोज्येनपरा तृप्तिर्वविष्यति ।।१२४।। (पद्म० स्टष्टि० अ० २६)

अर्थात्—महादेव ने देव दूति से कहा कि यह मेरी नाभि के नीचे फल के समान, किसी से भी न चखे हुए तथा मिले हुए दो अण्डकोष तुमको खाने के लिए देता हूँ। इस भोजन से तुम्हारी अतयन्त तृप्ति हो जाएगी।

राजा चैत्र द्वारा ब्राह्मणों को मांस भोजनार्थ—

पंचकोटिगवां मांसंसां पूपंस्वन्न मेव च ।।९८।। एतेषांनदीराशीर्भुञ्जते ब्राह्मणमुने ।।९९।।

(ब्रह्मवैवर्त० प्रकृति० अ० ६१)

"पाँच करोड़ गौवों का मांस, पूडे और पापड़, राजा चैत्र ने यज्ञ में ब्राह्मणों को खिलाये।"

सनातन धर्म में स्त्री को वश में करने का विलक्षण नुसखा—

निज शुक्रं गृहीत्वां तु वाम हस्तेन यः पुमान्।
कामिनी चरणं बामं लिपेत्स स्यात्स्त्रियः प्रियः ।।१४।। (गरुडपुराण, आचार० अ० १८५)

अर्थ—जो आदमी अपना वीर्य निकाल कर अपने वायें हाथ से जिस स्त्री के वायें पैर में लेप कर दे वह आदमी उस स्त्री का प्यारा हो जाता है। अर्थात् वह स्त्री उसके वश में हो जाती है।

सनातन धर्म में रण्डियों की मुक्ति का उपाय—

ततः प्रभृतियोऽन्योऽपि रत्यर्थं गृहमागतः।
स सम्यक् सूर्य वारेण समं पूज्यो यथेच्छया ।।५५।। (भविष्य० उत्तर० अ० १११)

अर्थ—यदि इतवार (रविवार) के दिन ब्राह्मणों को बिना फीस सम्भोग के लिए खुली छुट्टी कर दे तो रण्डियों की मुक्ति हो जावेगी। और सीधे स्वर्ग लोक को जावेंगी। अब देख लिया उन सनातन धर्मी पण्डितों ने! कि उनके मान्य ग्रन्थ कितनी अच्छी शिक्षा देते हैं। जो मानव मात्र के लिए कितनी हितकर है। मुझे अगर वहाँ समय मिलता तो मैं कुछ कहता, यहाँ पर केवल संक्षेप में थोड़ा-सा बताया है। परन्तु इन लोगों का काम है, अपने घर की गन्दगी को तो कभी देखना नहीं, अन्यों पर कीचड़ उछालते रहना।

अब आप स्वयं निर्णय करेंगे कि आर्य समाज नास्तिक है, या सनातन धर्म? वेदों का कतल आर्य समाज करता है। या सनातन धर्म? गौ की रक्षा आर्य समाज करता है या सनातन धर्म? आदि-आदि बहुत-सी बातें हैं। यह हैं मेरी वह पच्चीस मिनट की तकरीर जो कि मैंने भीमसैन की तकरीर के उत्तर में करनी थी।

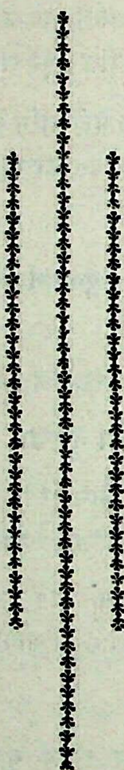
"मनसा राम"

नोट—कहीं पर भी शास्त्रार्थ का आयोजन हो, भविष्य में हर विद्वान को चाहिए कि इन धूर्तों की सब गतिविधियों की अच्छी प्रकार छानबीन कर लें। कहीं कोई पण्डित भूल से मेरी तरह इन चाण्डालों का शिकार न बनें। जैसा कि मेरे साथ हुआ।—।। इति शम् ।।

"मनसा राम"

चवालीसवां शास्त्रार्थ

स्थान : नीमच (मध्य प्रदेश)



दिनांक : २७ जून, सन् १९२९ ई० (प्रथमदिन)

विषय : सत्यार्थ प्रकाश प्रभृति ग्रन्थ सर्वथा वेद विरुद्ध हैं।

शास्त्रार्थ कर्त्ता पौराणिकों की ओर से : श्री पण्डित अखिलानन्द जी "कविरत्न"

सहायक : श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री

शास्त्रार्थ कर्त्ता आर्य समाज की ओर से : श्री पण्डित बुद्धदेवजी विद्यालंकार (स्वामी समर्पणा- : नन्द सरस्वती)

सहायक : श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी

आर्यसमाज के मन्त्री : श्री राम नारायण जी

आर्य समाज के प्रधान : महाशय श्री हीरालाल जी

सभापति : श्री राम बहादुर ठाकुर देवी सिंह जी (जज) नीमच कैंट

नोट—यह शास्त्रार्थ लगातार चार दिन तक हुआ जो श्री पं० फूलचन्द शर्मा जी 'निडर' भिवानी निवासी द्वारा प्राप्त हुआ, हम उनके हृदय से आभारी हैं, जिन्होंने इस लुप्त शास्त्रार्थ सामग्री को प्रकाशन हेतु प्रदान किया—

"सम्पादक"

शास्त्रार्थ से पहले

श्री पंडित कालूराम शास्त्री जी एवं आर्यसमाज नीमच छावनी के बीच जून, १९२९ में शास्त्रार्थ की भूमिका बनी। जिसमें काफी लम्बा चौड़ा पत्राचार हुआ, जिसमें सनातन धर्मी पण्डितों की ओर से भरसक प्रयत्न किया गया था कि किसी तरह शास्त्रार्थ न होने पावे। परन्तु आर्य समाज के अधिकारियों ने पीछा न छोड़ा, और श्री पंडित कालूराम जी की अनुचित शर्तों को भी मानते हुए २७-६-२९ से शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। २७-६-२९ ई० को समय लगभग ९ बजे रात्रि से श्रीमान् राय बहादुर ठाकुर देवी सिंहजी जज—छावनी नीमच की—अध्यक्षता में श्री पंडित कालूराम जी शास्त्री की ओर से श्री पंडित अखिलानन्द जी कविरत्न एवं आर्यसमाज की ओर से श्री पंडित बुद्धदेव जी विद्यालंकार (जो बाद में स्वामी समर्पणानन्द जी के नाम से विख्यात हुए) के मध्य शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ, प्रथम अपना-अपना लेख तैयार किया जाता था, और पश्चात् सुना दिया जाता था। श्री पंडित कालूराम जी शास्त्री ने निम्न-नियम निश्चित करके भिजवाये जिनमें आर्यसमाज कुछ परिवर्तन करना चाहता था, परन्तु उस परिवर्तन पर सनातन धर्मी शास्त्रार्थ करने को तैयार न थे, इसलिए उन्हीं नियमों को मानते हुए शास्त्रार्थ करना तय हो गया।

शास्त्रार्थ के नियम—

१. तारीख २७-६-२९ को "सत्यार्थ प्रकाश वगैरा ग्रंथ वेद विरुद्ध हैं।" इस विषय पर शास्त्रार्थ होगा, सनातन धर्मी —स्वामी दयानन्द के ग्रन्थों को वेद विरुद्ध सिद्ध करेंगे। और आर्य समाज सनातन धर्मियों के प्रश्नों को वेदों से मिलाकर स्वामीजी के ग्रन्थों की वेदानुकूलता सिद्ध करेगी।

२. तारीख २८-६-२९ को सनातन धर्मी यह सिद्ध करेंगे कि आर्य समाज स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों को पैरों के के नीचे कुचल रहा है, और आर्यसमाज यह सिद्ध करेगी कि, वह स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों को सर्वथा सत्य मानती है।

३. शास्त्रार्थ प्रत्येक दिवस रात्रि के ९ बजे से आरम्भ होकर १२ बजे रात्रि को समाप्त हो जाया करेगा, जिस दिन रात्रि को वर्षा हो जायेगी, उस दिन शास्त्रार्थ मुलतवी (कैंन्सिल) होकर अगले दिन वही शास्त्रार्थ वर्षा खुलने पर होगा।

४. शास्त्रार्थों में पूर्व पक्ष सनातन धर्म का एवं उत्तर पक्ष आर्य समाज का होगा।

५. प्रत्येक शास्त्रार्थ में हर पक्ष को ३० मिनट का समय मिलेगा, पहले ३० मिनट सनातन धर्म को फिर ३० मिनट आर्यसमाज को, इसी नियम से ३ घण्टे तक शास्त्रार्थ होगा, प्रत्येक ३० मिनट में से २२ मिनट में शास्त्रार्थ का परचा लिखना होगा, और आठ मिनट में लिखा हुआ परचा ज्यों का त्यों जनता को सुनाना होगा।

६. इस शास्त्रार्थ में सनातन धर्मियों की जिम्मेदारी हम लेगें, कि यदि कोई हमारी तरफ से शास्त्रार्थ के मध्य में ताली बजावेगा या जय बोलेगा या किसी भी प्रकार का हुल्लड़ मचावेगा, उसे हम रोकने के जुम्मेदार हैं। इसी प्रकार आर्य-समाजियों की जुम्मेदारी आर्यसमाज को लेनी होगी।

७. शास्त्रार्थ का स्थान सेठ बालचन्द जी का फड़ सदर बाजार होगा।

८. आर्यसमाज, छावनी नीमच के भद्र पुरुष, सनातन धर्मी भद्रपुरुषों को लेकर श्रीमान् माननीय रायबहादुर जज साहिब को विश्वास दिलाकर कि हम दोनों पक्ष दंगा नहीं करेंगे, शास्त्रार्थ की मंजूरी हासिल करें।

९. इस शास्त्रार्थ में किसी पक्ष की तरफ से कटु वाक्य या कटाक्ष नहीं होगा। इस कारण दोनों पक्ष जज साहिब या इन्सपेक्टर साहिब पुलिस से सभापति होने की प्रार्थना करें।

१०. शास्त्रार्थ के परचे तीन बनेंगे, एक सभापति को देना होगा दूसरा विपक्षी को, तीसरा पर्चा खुद को रखना होगा, जो सज्जन मूर्खता से शास्त्रार्थ के विषय को छोड़कर विषयान्तर में जावेगा उसकी हार समझी जावेगी, ऐसा न हो कि "कलकत्ते की मोटर पर जयपुर के राजमहलों का जवाब मिले।"

११. शास्त्रार्थ के छपवाने का अधिकार प्रत्येक पक्ष को होगा, जो चाहे शास्त्रार्थ छपवावे, और जो चाहे न छपवावे।

हमने नियम आदि ऐसे बनाए हैं जिनमें समाज को कोई उज्र न हो, नियमादि पढ़कर हमारी भांति प्रकाशित कर दें, यह मन्त्री, आर्य समाज से प्रार्थना है। यदि मन्त्री जी तारीख २३-६-२९ तक इसका उत्तर न छापेंगे तो हम समझ लेंगे कि आर्य समाज शास्त्रार्थ में कलई खुलने से घबराती है।

"तारीख २२-६-२९" "कालूराम शास्त्री"

(हाल—मुकाम, जावेद)



शास्त्रार्थ आरम्भ

(१) पण्डित अखिलानन्द जी "कविरत्न"—

"श्रीः हरये नमः"

माननीय सज्जन गण ! आर्यसमाज वेदों को मानता है । स्वामी दयानन्द ने जो-जो बातें अपने ग्रन्थों में लिखी हैं, उनकी वेद मूलकता समाजी सिद्ध करें यथा—सत्यार्थ प्रकाश के १-८-१८ में राहु-केतु आदि नामों से ईश्वर का ग्रहण किया गया है । वेद के "शंनोग्रहाश्चांद्रमसाः, १९-९-१०" इस मन्त्र से यह बात विरुद्ध है । समाजी उसकी वेद मूलकता सिद्ध करें । "प्रसूता स्त्री दूध न पिलावे, धाई दूध पिलावे" "यह लेख भी दयानन्द का वेद विरुद्ध है, क्योंकि यजुर्वेद में इमेस्तनमूर्जस्वंत-पंस्तेस्तनः" इन दो मन्त्रों से माता के स्तन पिलाने का आदेश है । इसलिए दयानन्द का यह लेख विधि विरुद्ध है । समाजी इसकी वेद मूलकता सिद्ध करें । दयानन्द ने पुत्र का परिवर्तन करना लिखा है । वेद में—"परिषद्यंह्यरणस्य······" "नहिग्रभायारणः······" ये दो मन्त्र इसका विरोध करते हैं, दयानन्द ने आपस में भिन्न वर्ण के पुत्र लेने का आदेश लिखा है, समाजी इसकी वेद मूलकता सिद्ध करें । "ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के पृष्ठ १३२" में दयानन्द ने ""यत्पुरुषं······" इस मन्त्र का अर्थ करते हुए ईश्वर में मूर्खपन लिखा है । जिस ईश्वर ने "तस्माद्यज्ञात्······" इस मन्त्र प्रमाण से वेद प्रकट हुए, उसको मूर्खत्वादि गुणवाला लिखना कहां तक उचित है ? इसकी वेद मूलकता समाजी सिद्ध करें । दयानन्द ने "ब्राह्मणोस्य मुखमासीत्······" इस मन्त्र से सत्यार्थ प्रकाश में उपादान कारण के सदृश गोल-माल मुख का आकार होना—आक्षिप्त किया है । इसी प्रकार कुरान की एक आयत पर आक्षेप करते हुए स्वर्ग को अवैदिक माना है, इसी प्रकार—' योनि संकोचन विधि, वीर्याकर्षण की विधि," और "सालम मिश्री का नुसखा" लिखा है । इन सब बातों की समाजी वेद मूलकता सिद्ध करें । वेद मन्त्र का ही प्रमाण वेद मूलकता माना जावेगा, क्योंकि समाजी वेद को ही प्रमाण मानते हैं !

हस्ताक्षर—"अखिलानन्द"

["पंचशतानि"—यह श्रुति वाक्य ब्राह्मण का है, मन्त्र ब्राह्मण "योर्वेदनामधेयम्"]

(१) **पण्डित बुद्धदेवजी विद्यालंकार**—आर्य समाज के पक्ष पर आक्षेप करते हुए अखिलानन्द जी ने आरम्भ से ही भूल की है । आर्यसमाजी केवल वेदों को ही प्रमाण मानते हैं, यह कथन अशुद्ध है । आर्यसमाजी वेदों को स्वतः प्रमाण मानते हैं, और अन्य ग्रन्थों को भी वेदानुकूल होने पर परतः प्रमाण मानते हैं । आपने जो मन्त्र राहु-केतु के नाम का पढ़ा, उसमें राहु केतु नाम नक्षत्र का है, जिसमें आपने कोई प्रमाण नहीं दिया, बल्कि इसके विपरीत प्रमाण मैं उपस्थित करता हूं । यथा—"एकंसत् विप्राबहुधावदन्ति तदेवाग्नि स्तदादित्यस्तद्वायुस्तद् चन्द्रमाः" अर्थात् उस एक परमात्मा को अनेक प्रकार से विद्वान् वर्णन करते हैं । उसी का नाम अग्नि है, उसी का नाम आदित्य है, उसी का नाम वायु है, उसी का नाम चन्द्रमा है । प्रसूता स्त्री के सम्बन्ध में आपने जो मन्त्र पढ़ा है, वह दूध पिलाने वाली दाई के सम्बन्ध में भी वैसा ही, संगत होता है, जैसा माता के ! इसमें माता का शब्द कहीं नहीं है । पुत्रों में परिवर्तन के सम्बन्ध में प्रथम तो भिन्न वर्ण के पुत्र बदलने का वर्णन कहीं नहीं हैं, बल्कि उसका उल्टा सत्यार्थ प्रकाश में तो यह लिखा है कि—यदि किसी पुरुष के घर में भिन्न वर्ण के गुणों वाला पुत्र हो तो उसको उसी वर्ण में भेज देना चाहिए, इसके लिए वेद का प्रमाण देखिए—अथर्व वेद में कहा है—राष्ट्री

सङ्गमनी……" अर्थात् राजसभा कहती है कि, "यङ्कामये तंतमुग्रं कृणोमि तंब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्" अर्थात् मैं जिसे चाहूं ब्राह्मण उग्र ऋषि आदि उपाधि देती हूं। "ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका" में जो "पुरुष सूक्त' की बात आई है सो ऋषि दयानन्द के वेद भाष्य में देखने से स्पष्ट हो जाती हैं, वहां उन्होंने लिखा है उस परमेश्वर की सृष्टि में मूर्खत्वादि गुणों से शुद्र उत्पन्न हुआ, यही अर्थ यहां भी समझना चाहिए।

वेद में शरीर को स्वस्थ रखने का तथा उन औषधियों के प्रयोग का उपदेश है सो सालम मिश्री आदि सब उसमें आई, अथर्व वेद के "स्वर्ग सूक्त" में तो ग्रहस्थाश्रम का वर्णन है। जिसका तात्पर्य यह है कि, उत्तम ग्रहस्थियों के चारों ओर अनेक युवतियां घूमें तो भी उनकी इन्द्रियों को कामाग्नि दाह नहीं करता, यही बात वहीं "नेनान्यमः परिमुष्णाति रेतः" कहकर स्पष्ट की है। आपके स्वर्ग का वहां वर्णन भी नहीं।

(२) पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

माननीय सज्जनगण ! आर्यसमाज वेदों को स्वतः प्रमाण मानकर भी उसका प्रमाण न दे सका, इसका मुझे खेद है। "शनोग्रहाश्चांद्रमसाः……" इस मन्त्र में राहु और केतु "चान्द्रमसग्रह" माने हैं। "तदेवाग्नि……" इस मन्त्र में राहु केतु का नाम तक भी नहीं है। मैं अथर्व वेद का मन्त्र पेश करता हूं, समाजी उसको न छूकर यजुर्वेद का मन्त्र पेश करते हैं, बुद्धिमान इस बात पर विचार कर लें। "इमं स्तनमूर्जस्वंत…" यह मन्त्र संस्कार विधि में, माता के स्तनपान में विनियुक्त है। सत्यार्थ प्रकाश में उसके विरुद्ध धात्री स्तनपान में लगाया है। यह परस्पर विरुद्ध लेख ही दयानन्द का अवैदिक है। बेटे का आपस में परिवर्तन सत्यार्थ प्रकाश में स्पष्ट लिखा है, वहां राज सभा बतलाने वाला मन्त्र कदापि नहीं है। अन्य वर्ण का पुत्र अन्य वर्ण को प्राप्त हो,—यह "परिषद्यं……" इस वेद मन्त्र के विरुद्ध है। ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के मन्त्र में वेद भाष्य लिखते हुए मूर्खत्वादि गुण ईश्वर में माने हैं। दयानन्द का लेख परस्पर विरुद्ध होने के कारण कहीं पर भी मान्य नहीं है। एक मन्त्र पर दो प्रकार का भाष्य ही दयानन्द की योग्यता का परिचायक है। मुख से उत्पन्न होने पर ब्राह्मण गोलमाल होना चाहिए। यह वात योनिदेशोत्पन्न जनों के समक्ष में विपरीत पड़ती है। समाजी उपादान-कारण के योग्य ही अपना आकार मानते हैं। स्वर्ग में जाना सनातन धर्म का सिद्धान्त है। "अनस्थाः पूताः……" व "घृतह्रदोमधुकल्पाः…" ये दो मन्त्र इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण है। दयानन्द ने सुखाधिक्य को स्वर्ग मानकर वैदिक स्वर्ग का जो खंडन किया है वह हिन्दू धर्म के विपरीत है। "बाल ब्रह्मचारी दयानन्द को योनि संकोचन का क्या अनुभूत था ? या इसमें कोई वैदिक प्रमाण है, सालम मिश्री का प्रयोग किस वेद मन्त्र के आधार पर लिखा गया है। "सन्यासी दयानन्द को—ढीला हो करके वीर्य डालना चाहिए ! यह बात कहां से मालूम हुई ?" मैंने प्रत्येक बात पर वेद का विरोध उपस्थित किया है। आर्यसमाजी दयानन्द के लेख को वेदमूलक सिद्ध नहीं कर सकते हैं, केवल दयानन्द का उपहास जनता में कराते हैं।

हस्ताक्षर—"अखिलानन्द"

(३) पण्डित बुद्धदेवजी विद्यालंकार—

"इमेमेस्तन मूर्जस्वतं……" यह मन्त्र, माता के स्तनपान के समय में भी बोला जा सकता है और दाई के भी। आपने इसमें कोई इसका कारण नहीं दिखाया कि—दाई के विषय में इसका प्रयोग क्यों नहीं हो सकता ? राहु-केतु के सम्बन्ध में आपने जो मन्त्र पेश किया है। उसमें आए हुए चन्द्र-आदित्य आदि शब्दों का क्या अर्थ है ? सो मैंने यजुर्वेद के मन्त्रों से आपको दिखलाया, इसमें क्या अपराध हुआ ? "चान्द्रमसा ग्रहा……" का अर्थ है चन्द्रमा अर्थात् परमात्मा के ग्रहण अर्थात् ज्ञान को उत्पन्न करने वाले गुण इसी प्रकार आगे समझना। और सुपुत्र की प्रशंसा करने वाले मन्त्र से पुत्र परिवर्तन का खंडन कैसे हुआ ? हर एक मनुष्य के लिए उसका और सुपुत्र यदि उसके गुणों वाला हो तो श्रेष्ठ है। परन्तु यदि इन गुणों वाला न हो तो राजसभा उससे छीन लेती है। गर्भाधान का प्रकरण लीजिए—"रेतो मूत्रं विजहाति योनिंप्र विशदिन्द्रये" क्या चरक आदि महर्षियों ने जो गोमांस का गुण वर्णन किया, वह स्वयं अनुभव करके किया ?

"अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धाः······" आदि मन्त्रों का अर्थ यही है कि, जब कोई ब्रह्मचर्य पूर्वक ग्रहस्थाश्रम में प्रवेश करता है तो उसका ग्रहस्थाश्रम स्वर्ग बन जाता है। मुख से ब्राह्मण पैदा हुए तो मुख जैसे होने चाहिए। इसका सम्बन्ध तो आज के विषय से कुछ नहीं, तो भी इसका उत्तर देता हूं। ऋषि पूछते हैं कि उत्पत्ति किस प्रकार की मानते हो? क्या जैसे शाखा से शाखा फूटती है। यदि इस प्रकार की उत्पत्ति मानोगे तो उसका रूप मुख जैसा ही होना चाहिए, दूसरी उत्पत्ति वीर्याधान से होती है। सो क्या विशुद्ध पुरुष के मुख में किसी ने वीर्याधान किया था? इन सबके अन्त में मैं पुनः पूछता हूं कि आपने वेद विरोध कहां दिखाया? वेद विरुद्धता तो इसको कहते हैं कि, जैसे वेद में परमेश्वर को "अकाय" कहा है। तो कोई परमेश्वर को शरीरधारी कहे, तो यह वेद विरुद्ध कहाता है। परन्तु आपने अभी तक कोई इस प्रकार का विरोध वेद में नहीं दिखाया। एक बात आपने और खूब कही कि सत्यार्थ प्रकाश में पुत्र परिवर्तन के विषय में अथर्व वेद का प्रमाण नहीं दिया तो तुम क्यों देते हो? सो महाराज आप मांगते हैं इसलिए देता हूं। आप मेरे किए हुए अर्थ का खण्डन करके दिखाइए, आप समझ रखिये कि पुत्र परिवर्तन की बात ऋषि की बुद्धि का चमत्कार दिखाती है। एक और वह लोग हैं जो सन्तान को किसी प्रकार का अधिकार नहीं देना चाहते, दूसरी ओर वह हैं जो अयोग्य पुत्र को भी सब अधिकार देना चाहते हैं। आप अभी कहते हैं कि योग्य को दो, और अयोग्य के छीन लो, वेदों में कहां लिखा है कि अयोग्य पुत्रों के अधिकार छीन लो? मैंने अथर्ववेद का प्रमाण देकर बतला दिया कि राजसभा ही ऋषि, ब्राह्मण, उग्र, आदि पदवियां देती हैं।

दूध की धारा का वर्णन भी उत्तम ग्रहस्थ का ही वर्णन करता है। इस प्रकार आपके सब······(समय समाप्त हो गया)।

"बुद्धदेव"

(३) पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

माननीय सज्जनगण !

दयानन्द के समस्त ग्रन्थ परस्पर विरुद्ध तथा वेद विरुद्ध हैं। यह बात दो बार के लेख से मैं सिद्ध कर चुका हूं। समाजी मेरे प्रश्नों में से एक का भी उत्तर न दे सके, यह बात जनता को विदित है। मैंने प्रत्येक बात में वेद का विरोध दिखलाया है "शंनोग्रहः······" इस वेद मन्त्र में राहु और केतु इन दो उपग्रहों का वर्णन है। यर्वेजुद के मन्त्र में ये दोनों ग्रह नहीं लिखे हैं, इसलिए "तदेवाग्निः······" यह मन्त्र इस प्रसंग में अप्रांसंगिक है। जो मन्त्र स्तनपान में विनियुक्त है, वह मात्र स्तनपान का ही संस्कार विधि में वर्णन करता है। धात्री का नहीं, "नहिग्रभाधारणः······" इस मन्त्र में (अन्योदर्योमनसामंतवाऊ) यह अन्य पुत्र के लेने में निषेध करता है। तब पुत्र परिवर्तन कैसे हो सकता है? ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के लेख का अभी तक कोई उत्तर समाजी नहीं देते हैं, क्या करें? परस्पर विरुद्ध लेख का समर्थन कहां तक हो सकता है। मुख से उत्पन्न होने की बात—योनि प्रदेश से उत्पन्न प्रसंग का उपहास करती है। दयानन्द का यह लेख सर्वथा शोचनीय है। स्वर्ग में जाना वेद-मूलक है। जहां पर बहुत सी स्त्रियां और दूध-दही की नहरें बहती हैं यह बात वेद बतलाता है। समाजी स्वर्गलोक को जमीन पर मानने में कोई मन्त्र नहीं दे सकते हैं, यहां पर प्रश्न दयानन्द का है। चरक ऋषि का नहीं, बाल ब्रह्मचारी दयानन्द स्त्री प्रसंग की बातों को कैसे जानता था? क्या समाधि लगाकर—योनि संकोचन ही देखा करते थे? इस पर प्रमाण दीजिए नहीं तो उनको बाल ब्रह्मचारी कहना छोड़ दीजिए। सालम मिश्री वाला—दयानन्द का लेख अभी तक खटाई में पड़ा हुआ है। यदि आपको वेद का प्रमाण नहीं मिलता है तो किसी अन्य ग्रन्थ का ही प्रमाण दे दीजिए। अभी तक मैंने अपने लेख में १. "शंनोग्रहाश्चान्द्रमसाः······" २. इमंस्तनमूर्जस्वंतं······" ३. परिषद्यं ह्यरणस्मः······" ४. नहिग्रभायारणः······" ५. अनस्थाः पूताः···" ६. घृतह्रदामधुकुल्या···" इतने मन्त्र पेश किए हैं। ये मन्त्र दयानन्द के लेख को परस्पर विरुद्ध तथा वेद विरुद्ध सिद्ध करते हैं, समाजियों ने इन मन्त्रों को अभी तक छुआ भी नहीं है। इस कारण दयानन्द का मत सर्वथा वेद विरुद्ध है।

हस्ताक्षर—"अखिलानन्द"

(३) पण्डित बुद्धदेवजी विद्यालंकार—

१. ऋषि दयानन्द ने राहु-केतु नाम के नक्षत्र संसार में हैं, इसका खण्डन नहीं किया, किन्तु इनकी पूजा का खण्डन किया है। सो आप प्रमाण से कहीं नहीं दिखा सके।

२. छः दिन माता दूध पिलावे फिर दाई, वही मन्त्र दोनों में पढ़ा जा सकता है। ऐसा नहीं हो सकता इसका क्या प्रमाण है ? फिर दाई रखना समर्थों के लिए लिखा है। सबके लिए नहीं।

३. "नहिग्रभायादि·····" मन्त्र पराये पुत्र को अपना औरस कहने का निषेध करते हैं। न कि दत्तक का। इस विषय में अथर्व वेद का प्रमाण मैंने दिया, उसका खण्डन आप नहीं कर सके।

४. ईश्वर की बेवकूफी वाले प्रश्न का उत्तर दिया जा चुका है।

५. आपने उपादान कारण और आधार में भी भेद नहीं समझा, योनि को उपादान कारण बताते हो ? विद्वान लोग हंसेंगे, कुछ सोच समझकर बोलो।

६. वेद से स्वर्ग के ऊपर होने का मन्त्र आपने पढ़ा नहीं, जब पढ़ोगे तो उत्तर भी दे दिया जावेगा।

७. दयानन्द जी महाराज की बात का चरक के आधार पर उत्तर दिया इसमें क्या क्षति हुई ? वेद मन्त्र भी मैंने पढ़ दिया था, योनि संकोचन में क्या बात वेद विरुद्ध है ? सो आपने नहीं बताई। शरीर रक्षा के लिए औषध प्रयोग वेद में बताया है। यह आप भी मानते हैं। फिर खास सालम मिश्री का नाम वेद में क्यों आवे ! क्या वेद में ब्राह्मण का आदर करना लिखा हो तो उसके साथ क्या आपका नाम आना आवश्यक है ? क्या आप दिखला सकते हैं कि वेद या पुराण या किसी स्मृति में कि कहीं "अखिलानन्द को ब्राह्मण" लिखा है। फिर आप किस आधार पर अपने आपको ब्राह्मण कहते हो ? (जनता में हंसी···) वेद में सब बात बीज रूपेण कहीं हैं। उनका विस्तार ऋषियों ने आयुर्वेद ग्रन्थों में किया है। फिर भला आपका क्या सालम मिश्री को ढूंढ़ना कुछ युक्तिसंगत है ?

मैंने वेद विरुद्ध होने का उदाहरण "अकायं" इस वेद शब्द के विरुद्ध परमात्मा को शरीरधारी मानने वालों का दिया है। इसी प्रकार आप भी देते तो कुछ सिद्ध होता।

दूध-घी-शहद आदि का धरती पर होना तो प्रत्यक्ष से भी सिद्ध है। आपके अर्थ में कुछ प्रमाण नहीं, अन्तरिक्ष लोक आदि का अर्थ प्रश्नोपनिषद में देखें वहां आश्रमों को ही लोक कहा गया है। इस प्रकार आप ऋषि के सिद्धान्तों का वेद से कहीं भी विरोध नहीं दिखा सके। हां ! कहते अवश्य रहे कि मैंने विरोध दिखाया है। विद्वान् स्वयं समझ लेंगे।

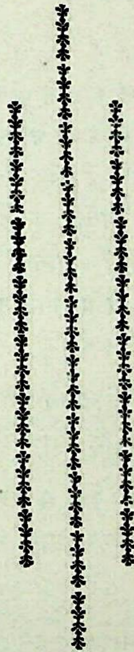
हस्ताक्षर—"बुद्धदेव"

नोट—

इस प्रकार ये प्रथम दिन का शास्त्रार्थ शान्ति पूर्वक समाप्त हुआ। बल्कि बीच-बीच में पण्डित अखिलानन्दजी ने नियोग के विषय को लेकर कुछ गलत बातें व्यंग्यात्मक ढंग से कही जिससे जनता में शोरोगुल हुआ, परन्तु अधिकारियों द्वारा उसे शान्त करा दिया गया था।

पैतालीसवां शास्त्रार्थ

स्थान : नीमच (मध्य प्रदेश)



दिनांक : २८ जून, सन् १९२९ ई० (दूसरा दिन)

विषय : क्या आर्यसमाजी स्वयं स्वामी दयानन्द के सिद्धांतों को जूते से कुचलते हैं ?

आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार

सहायक : श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी

पौराणिकों की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पण्डित अखिलानन्द जी "कविरत्न"

सहायक : श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री

आर्यसमाज के मन्त्री : श्री रामनारायण जी

आर्यसमाज के प्रधान : श्री महाशय हीरालाल जी

सभापति : श्री राय बहादुर ठाकुर देवी सिंह जी (जज) नीमच कैन्ट

शास्त्रार्थ प्रारम्भ

(१) पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

मान्नीय सज्जन गण !

आर्यसमाज प्रवर्तक दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के चौथे भाग में विधवा विवाह का खण्डन और नियोग का मण्डन लिखा है। और उसमें "अन्य मिच्छस्व······" का मन्त्र भी प्रमाण में दिया है। वेद के आधार पर जिस नियोग का आदेश दयानन्द ने लिखा है, क्या समाजी उसका पालन करते हैं ? यदि करते हैं तो उसका आफिस या आश्रम कहां पर खोला हुआ है ? कृपया उसका पता बतावें, और निषिद्ध विधवा विवाह का प्रचार वे क्यों करते हैं—दोनों बातों का पालन न करना दयानन्द की आज्ञा का उल्लंघन नहीं है तो और क्या है ? दयानन्द ने लिखा है कि—"गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के समय में पुरुष या स्त्री से न रहा जाए तो किसी से नियोग करके उसके लिए पुत्रोत्पत्ति कर दे।" क्या गर्भ धारण करने पर दूसरा गर्भ धारण हो सकता है ? समाजी उत्तर दें।

दयानन्द ने प्रोषित भर्तृका के लिए ६-३-८ वर्ष बीतने पर नियोग का आदेश दिया है। हम यदि ऐसे व्यक्ति बतावें कि जो इस अवधि से ऊपर हुए समय से बाहर गये हैं। तो क्या उनकी स्त्रियों के लिए समाजियों ने कुछ प्रबन्ध किया है ?

लोक में यह प्रत्यक्ष है कि पशु भी एक सजातीय स्त्री से जब नियुक्त होता है तब अन्य पशु उस स्त्री का पीछा नहीं करते हैं। दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में एक स्त्री का एक साथ चार-चार के संग नियोग लिखा है। क्या समाजी ऐसा करते हैं ?

दयानन्द ने "उदीर्ष्वनारि······" मन्त्र का भाष्य लिखते हुए कहा है कि पति के मरने पर पहले नियोग करके—और नियोग से पैदा हुए बच्चों को दायें भाग करके, तब उसका दाह करे। क्या समाजी इस आज्ञा का पालन करते हैं ?

दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि, "जो गाय के गोबर से चौका लगाते हो तो अपने गोबर से चौका क्यों नहीं लगाते हो" यह प्रश्न दयानन्द ने क्यों उठाया है ? इसका आशय समाजी स्पष्ट करें। दयानन्द लिखते हैं कि—"एक विधवा स्त्री दो अपने लिए और दो-दो अन्य चार नियुक्त पति के लिए सन्तान पैदा कर सकती है। और एक मृत स्त्री का पुरुष भी दो अपने लिए और दो-दो अन्य चार विधवाओं के लिए पुत्र उत्पन्न कर सकता है। इस बाँट (?) बारे में क्या-क्या मसले समाजी हल कर चुके हैं ? इन प्रश्नों का उत्तर स्वामी दयानन्द के ग्रंथों के आधार पर दें। अपनी ओर से मनमानी बातों के आधार पर नहीं।

हस्ताक्षर—"अखिलानन्द"

(१) पण्डित बुद्ध देव जी विद्यालंकार—

ऋषि दयानन्द ने विधवा विवाह का निषेध कहीं नहीं किया है, और न नियोग को आवश्यक धर्म बतलाया है। नियोग करने की जरूरत जिसे हो वह करे। और जिसमें नियोग के अतिरिक्त दूसरे समय में संयम से रहने की शक्ति हो वह नियोग करे। जैसे व्यास जी ने किया, और सहस्रों ब्राह्मणों ने क्षत्रियों की स्त्रियों के साथ किया, जिसमें संयम की शक्ति न हो वह विधवा विवाह कर ले, आर्य समाज में नियोग इसलिए नहीं होता कि—बहुधा लोग अपने आपको इस संयम के योग्य नहीं पाते। और विधवा विवाह कर लेते हैं। और कुछ लोग इसलिए नहीं करते कि वह आवश्यकता अनुभव ही नहीं करते। गर्भवती के विषय में अखिलानन्द जी ने कोरा झूठ बोला है। गर्भवती के साथ स्वामी दयानन्द जी ने कहीं समागम करने को नहीं

लिखा। इसी प्रकार का कोरा झूठ "उदीर्ष्व नारि......" इस मन्त्र के विषय में बोला है। इसी प्रकार एक समय चार पुरुषों के साथ समागम के विषय में भी झूठ बोला है। यह इबारत (पाठ) पढ़कर सुनाते तो पता लग जाता। मेरा दावा है कि यह शब्द वह कदापि नहीं दिखा सकेंगे।

आदमी के पाखाने के विषय में भी झूठ बोला है, इस प्रकार उनकी आज की स्थापना एक झूठों का सिलसिला है। नियोग को विधवा विवाह से श्रेष्ठ इसलिए बताया है कि विधुर अथवा विधवा को दण्ड देना अभीष्ठ है। जिससे भयभीत होकर स्त्री-पुरुष एक-दूसरे के लिए सदा प्रेम का भाव रक्खें, किन्तु इसमें बड़े संयम की आवश्यकता है।

इसलिए जो ऐसा न कर सकें वह विधवा विवाह कर लें किन्तु इससे उनके द्विजत्व में बट्टा अवश्य लगेगा क्योंकि यह शूद्र धर्म है, परन्तु भ्रूण हत्या, गर्भपात आदि महापातकों से बचने के लिए लोग विधवा विवाह अथवा विधुर विवाह करते हैं। जिसको "अधर्म" ऋषि दयानन्द ने कहीं नहीं लिखा। आप अब उसमें प्रमाण देखिए जो व्यास जी ने नियोग किए हैं महाभारत में आदि पर्व १०६ अध्याय में "ब्राह्मणों ने क्षत्रिय स्त्रियों से नियोग किया" देख लीजिए।

"बुद्धदेव"

(२) पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

माननीय सज्जन !

दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में विधवा विवाह द्विजों में नहीं होना चाहिए, यह लिखा है। ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में विधवा का स्पष्ट खण्डन है, शूद्र के अलावा द्विज, विधवा विवाह नहीं कर सकता है, नियोग की आज्ञा दयानन्द ने स्पष्ट शब्दों में विधवा और मृत स्त्रीक पुरुष के लिए दी है। जिसका पालन समाजी नहीं करते हैं। यही उन पर लांछन है। विधवा विवाह का प्रचार दयानन्द के लेख के विरुद्ध है। विधवा विवाह के बाद नियोग मण्डन स्पष्ट है। विधवा से न रहा जाय तो वह दूसरा गर्भ गर्भवती होने पर भी धारण करे। यह लेख प्रत्यक्ष है। प्रोषित पति का ८/६/३ वर्ष के बाद नियोग करे। यह दयानन्द का आदेश सत्यार्थ प्रकाश में स्पष्ट है। मृतभर्तृका स्त्री शव का दाह तब करे जब पहले नियोग की बातचीत हो जाए। यह आज्ञा दयानन्द की समाजी लोग पालते हैं या नहीं। विधवाश्रम की तरह नियोगाश्रम का होना दयानन्द की आज्ञा का पालन करना है। इसका रजिस्टर, दफ्तर और नियोग संख्या का हिसाब रखना समाजियों का फर्ज है। लोक प्रत्यक्ष दृष्टान्त को न छू कर जो समाजियों ने उत्तर दिया है, वह प्रत्यक्ष में विस्पष्ट है। जिस आज्ञा को दयानन्द ने उपस्थित किया है। उसका पालन न करना उनका अनादर है। व्यास जी की बात उपस्थित करना नियोग का समर्थन नहीं है। वहां (प्रसूति वेंरदानजा) वाला प्रमाण वरदान से सम्बन्ध रखता है। यहां पर प्रसंग व्यासजी का नहीं बल्कि समाजियों का व दयानन्द के कथन का है। समाजी ऐसा क्यों नहीं करते ? यदि जरूरत नहीं है तब दयानन्द ने ऐसा आदेश क्यों दिया है ? मैंने जो बातें पूछी हैं उनका उत्तर न देकर केवल समय यापन करना समाजियों को उचित नहीं है। १. नियोग का अनादर, २. विधवा विवाह का प्रचार ३. मृत भर्तृका का शवदाह से पूर्व नियोग, ४. विधवा दो और अपने लिए दो-दो अर्थात् चार-बार अन्य नियुक्तों के लिए सन्तान पैदा करे, इत्यादि आज्ञाओं का पालन समाजी करते हैं या नहीं ? यही बात आज के शास्त्रार्थ में द्रष्टव्य हैं।

हस्ताक्षर—"अखिलानन्द"

(२) पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

दायें भाग करके तथा नियोग करके दाह किया जावे, यह इबारत सारे सत्यार्थ प्रकाश में से कहीं नहीं दिखाई गई, इसलिए यह झूठ है। दीर्घ रोगी शब्द बराबर पुस्तक में उपस्थित है, मूल लिखित पुस्तक (Manucript) में भी है, यदि किसी संस्करण में भूल से रह गया हो तो उसके आधार पर आर्य समाज को कोसना सरासर अन्याय है, नियोग का रजिस्टर खुला

था जिसमें सबसे ऊपर नाम १८ पुराणों के कर्त्ता व्यासजी का लिखा हुआ है। यहीं तक नहीं बल्कि भीष्म जी ने पहिले फीस द्वारा नियोग करने को कहा था, पर व्यासजी ने यह काम (Honorary) तौर पर कर दिया। इसलिए फीस की जरूरत नहीं पड़ी। पति के बाहर जाने पर जो ब्रह्मचारिणी न रह सके उसे नियोग की आज्ञा मनु महाराज ने दी है। सो आप भी मानते हैं। हमारे पास किसी स्त्री ने प्रार्थना नहीं की। जो स्त्रियां संयम से रहें वह चाहे सारी आयु ब्रह्मचारिणी रहें। नियोग अवश्य करना चाहिए यह कहां लिखा है? कुत्ता जब कुतिया के साथ समागम करता है, तो दूसरा कुत्ता कभी तो चण्डी पाठ करने लगता है, और कभी श्री गणेश कर बैठता है। परन्तु इसकी नकल पुरुषों को नहीं करनी चाहिए, और न ऋषि दयानन्दजी के लेख में इसकी कहीं गन्ध भी है। हां पुराणों के बृहस्पति जी ने यह लीला अवश्य की थी। और कुत्ते के बराबर भी सभ्यता नहीं दिखलाई।

हस्ताक्षर—"बुद्धदेव"

(३) पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

माननीय सज्जन गण!

विधवा विवाह शूद्रों के लिए है। यह बात समाजियों ने स्वीकार की। हम इसके लिए धन्यवाद देते हैं, परन्तु दयानन्द ने जिसको शूद्रों के लिए लिखा है। समाजी उसका द्विजों में प्रचार क्यों करते हैं। दयानन्द की ओर से उत्तर न देकर व्यास जी का बार-बार नाम लेना प्रसंग के बाहर जाना है। महाभारत में (प्रसूतिर्वरदानजा) यह पाठ है। वहां नियोग नहीं—बल्कि वरदान से उत्पत्ति का प्रकरण है, आज के पहले पर्चे में मैंने दयानन्द के लेख का उद्धरण दे दिया है। उसको न देखकर बार-बारलेख मांगना समाजियों की भूल है। महाभारत का मूल पाठ न पढ़कर केवल हिन्दी पढ़ना धोखा देना है। वहां पर यह प्रसंग नहीं है। मनु ने (अयंद्विजैर्हि···) पद्य के द्वारा नियोग को साफ पशु धर्म बतलाया है। उन्होंने वर्ण संकरता का भय भी दिखाया है। दयानन्द ने जो लेख लिखा है और जो (जज साहब) को दिखाया भी गया है उसको न मानकर हर एडीशन में पाठ बदलना—समाजी लज्जाजनक नहीं मानते, यह कितना अनर्थ है। (उदीर्ष्वनारी······) मन्त्र का भाष्य लिखते हुए दयानन्द ने जो बात नियोग के विषय में लिखी है, उसको समाजी बार-बार पूछने पर भी नहीं पढ़ते, यह जनता देख रही है और गर्भ पर गर्भ धारण करने वाली बात का जो जवाब समाजी दे रहे हैं, उस पर भी जनता ध्यान दे रही है। चार बार तक प्रेस की गलती होने पर भी पुस्तक बिकता रहा, यह कितना अन्याय है। प्रोषित भर्तृका वाली बात का उत्तर समाजी अभी तक न दे सके। आठ-छः तीन वर्ष बाद नियोग करना—दयानन्द की साफ आज्ञा है। यदि समाजी चाहें तो हम फहरिस्त दे सकते हैं, दो-दो अपने लिए और दो-दो अन्य पुरुषों के लिए कुल मिलाकर दस सन्तान नियोग से पैदा करे, यह दयानन्द की आज्ञा क्यों नहीं मानी जाती? हमने विधवाश्रम की तरह नियोगाश्रम की फहरिस्त मांगी है। परन्तु समाजी उसको पाप समझकर छिपाते हैं, यदि समाजियों में दम हो तो हम चैलेन्ज करते हैं कि, वह इसको वैदिक धर्म सिद्ध करें, रही—गू-गोबर की बात! उस पर हम फिर भी पूछ सकते हैं, आज के लेख में जो-जो बातें हमने दयानन्द ग्रन्थ खोलकर दिखा दी है। दयानन्दी उनमें से एक का भी उत्तर न दे सके। यह उनका घोर पराजय है।

हस्ताक्षर—"अखिलानन्द"

(३) पण्डित बुद्धदेवजी विद्यालंकार—

गर्भवती स्त्री के पति को नियोग की आज्ञा क्यों की गई? यह देवताओं के गुरु बृहस्पति जी की कथा से स्पष्ट है जरा गौर कीजिए—

बृहस्पति जी के बड़े भाई की स्त्री गर्भवती थी, परन्तु वह कहने लगे कि मैं मैथुन तुम्हारे साथ ही करूंगा। उसने बहुत समझाया पर वह बोले कि मैं तो करके ही छोड़ूंगा। इस प्रकार कहकर वह पिल ही पड़े, इस पर गर्भ में पड़ा बालक

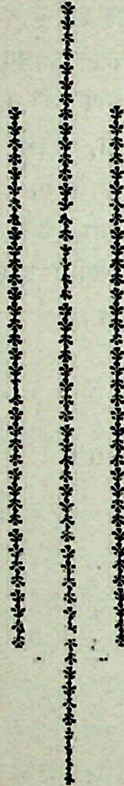
चिल्लाया—"भोस्मात मैवं कार्षास्त्वंद्वयोर्नास्तीह सम्भव :" हे चाचा ऐसा न करिए, यहां दो की गुंजाइश नहीं है। इस पर भी वह न माने, और गड़बड़ कर ही डाली, आखिर जब वीर्योत्सर्ग का समय आया तो बच्चे ने टांगें अड़ा दी और वीर्य बाहर ही गिर गया, इस प्रकार की लीला बृहस्पति को गुरु मानने वालों से अधिक सम्भव है। इसलिए नियोग का यह तरीका ऋषि दयानन्द ने विशेष करके सनातन धर्मियों के लिए लिखा है। दस वार केवल सन्तान के लिए समागम करने को आप धोखा कहते हैं, परन्तु "अनावर्तौं राजपुत्र स्त्रिया भर्ता पतिव्रते" (महाभारत आदि पर्व अध्याय १२२) यह है सनातन धर्म की चांद मारी ! विधवा विवाह शूद्रकर्म है। किन्तु एक शूद्र कर्म करने से वह शूद्र नहीं हो जाता, कुछ दोषी अवश्य हो जाता है। हम शूद्र कर्म की अनुज्ञा भ्रूणहत्यादि महापातक से बचने के लिए देते हैं, परन्तु आपको तो व्याभिचार और भ्रूणहत्या पसन्द है। विधवा विवाह नहीं, दाहकर्म से पहले नियोग आप कहीं नहीं दिखा सके। यह आपको घृणित झूठ है। शौक ! कि आपके पढ़ने पर भी इन शब्दों की गन्ध तक कहीं नहीं मिली, लेकिन "बेशर्म की बला दूर, मारे वो और चढ़े नूर" आपको इतना भी पता नहीं कि वेन पहले था कि मनु, ! समागम का वर्णन महाभारत में स्पष्ट मौजूद है। एडीशन में पाठ शुद्ध करने के विषय में आप सभापति तक को मूर्ख कह गए, जनता क्या इतना भी नहीं जानती कि छापे में भूल हो सकती है। आपके पास किस-किसने कहा कि हम नियोग करना चाहते हैं। नियोग इच्छा पर है, आवश्यक नहीं। जिसकी नियोग की इच्छा न हो उसे भी जबंदस्ती नियोग कराना तो कहीं नहीं लिखा।

हस्ताक्षर—"बुद्धदेव"

नोट—इस प्रकार आज का शास्त्रार्थ समाप्त हुआ।

छयालीसवां शास्त्रार्थ

स्थान : नीमच (मध्य प्रदेश)



दिनांक : २६, जून, सन् १६२६ ई० (तीसरा दिन)

विषय : क्या भागवत्, आदि पुराण वेद विरुद्ध हैं ?

आर्यसमाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार

सहायक : श्री पण्डित रामचन्द्र जी देहलवी

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री

सहायक : श्री पण्डित अखिलानन्द जी "कविरत्न"

आर्यसमाज के मन्त्री : श्री राम नारायण जी

आर्यसमाज के प्रधान : महाशय श्री हीरालाल जी

सभापति : श्री राय बहादुर ठाकुर देवीसिंह जी, (जज) नीमच कैन्ट

शास्त्रार्थ से पहले

आज के दिन आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता श्री पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार थे, परन्तु सनातन धर्म वालों ने अपना वकील (शास्त्रार्थ कर्त्ता) बदल दिया था ! उन्होंने सोचा था कि अखिलानन्द जी का कोई विशेष प्रभाव नहीं हो रहा, शायद पंडित कालूराम जी उनसे ज्यादा प्रभाव डाल सकें, प्रथम के दो दिनों में सनातन धर्म का पूर्व पक्ष था। परन्तु आज आर्यसमाज का पूर्व पक्ष था। पंडित कालूराम शास्त्रीजी प्रज्ञाचक्षु थे। इसलिए थोड़ा बहुत लिखवाया गया, ज्यादातर मौखिक ही कहा, अब आप पंडित कालूराम जी को भी देखिए कि उन्होंने सनातन धर्म के पक्ष की वकालत में कितने तीर चलाये।

—सम्पादक

शास्त्रार्थ आरम्भ

पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

उपस्थित भद्र जनों ! आज सनातन धर्म की नाव को बचाने के लिए माननीय पंडित श्री कालूराम जी शास्त्री (प्रज्ञाचक्षु) उपस्थित हुए हैं। उनमें मेरी प्रार्थना है कि पूर्व निश्चयानुसार मेरे निम्न प्रश्नों का उत्तर दें।

१. पुराण में देवताओं को अति छोटे यत्न से या भूल से भी याद कर लेने पर मुक्ति या अन्य बड़े सुख देने वाला बताया है। यथा-अजामिल चण्डाल कन्या, इसके विरुद्ध वेद हों "विभक्तकारं हवामहे···" इस मन्त्र में यथा योग्य फल देने वाला लिखा है।

२. पुराणों में व्याभिचार का आदर्श व उपदेश है, यथा—दारूवन की कथा, ब्रह्म का पुरौहित्य, अनुसूया के त्रिदेव की कथा, वेद इसके विरुद्ध "सप्त मर्यादा······" मन्त्र से इसका निषेध करता है।

३. पुराण द्यूत का उपदेश करता है। यथा—शिव-पार्वती ने किया, वेद इसका निषेध करता है।

४. पुराण मुख नासिका में वीर्याधान बताता है, यथा सूर्य ने किया। वेद ने योनि में बताया है।

पण्डित कालूराम जी शास्त्री—

'सज्जनों ! अजामिल ने मुसीबत में नारायण नाम का स्मरण किया, और वह यमपाश से छूट गया, इसी प्रकार चाण्डाल कन्या विप्लव पत्र से मोक्ष प्राप्त हुआ, हमारे यहां ही क्यों स्वामी दयानन्द ने आर्याभिविनय में ऐसा ही लिखा है। उपनिषदों में भी ऐसा ही मन्तव्य है, और वेद में भी इसी प्रकार कहा है, फिर पुराणों में ही यह आक्षेप क्यों है ? अब रही बात ! लिंग और योनि की, सो दारूक बन की कथा से इसका क्या सम्बन्ध है ? योनि-भग-वीर्य तो वेदों में भी आये हैं, कोई काम की बात कहो पण्डित जी !

पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

क्या पण्डितजी आप स्वामी दयानन्द जी महाराज के मत को मानते हो? जो आर्याभिविनय आदि ग्रन्थों का हवाला दे

रहे हो दिन-रात उनको गाली देने वाले, समय पड़ने पर कैसे उनकी आड में छुपना चाहते हो। ये भी खूब रही कि—"मीठा-मीठा गडप, कड़वा-कड़वा थू" दुनियां आपको तब तक ईमानदार समझे जब आप स्वामी दयानन्द के शेष सिद्धान्तों को भी मानने लगो। क्या हम आशा करें कि कभी आपके भीतर भी सत्य का प्रकाश होगा, बाहर की आंखें तो आपके हैं नहीं, भीतर की आंखों से ही देख लीजिए। परन्तु सच बात तो यह है कि "मनस्यन्मद् वचस्यन्यद् कमर्ण्यन्यसद दुरात्मनाम" हैं। आपका असली मतलब तो स्वामी दयानन्द जी के सिद्धान्तों को पलटना है पंडित कालूराम जी आप स्वयं नहीं पढ़ सकते तो ठीक है किसी अन्य से ही पढ़वाकर देख लीजिए सत्यार्थ प्रकाश में इस सिद्धान्त पर ये प्रश्नोत्तर हैं।

प्रश्न—क्या स्तुति आदि करने से ईश्वर अपना नियम छोड़ स्तुति प्रार्थना करने वाले का पाप छुड़ा देगा, उत्तर—नहीं, प्रश्न—तो फिर स्तुति प्रार्थना क्यों करना, उत्तर—उनके करने का फल अन्य ही है। प्रश्न—क्या है? उत्तर—स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना का निरभिमानता, उत्साह और सहायता का मिलना, उपासना से परब्रह्म का मेल और उसका साक्षात्कार होना। अब समझ गए, पं० जी, कि आर्यसमाज व दयानन्द जी महाराज क्या मानते हैं? अब रही बात! पाप निवृत्ति की प्रार्थना क्यों मौजूद हैं? वह इसलिए है कि प्रत्येक जीव पुरुषार्थ पूर्वक परमात्मा से यह कामना करे कि, मेरा पाप निवृत्ति कीजिए, अर्थात मुझे पाप से हटाइए। अर्थात् भविष्य में मैं पाप न करूं। यह मतलब नहीं है कि मुझे पिछले पाप का फल नहीं मिलेगा इसके विरुद्ध पौराणिक लोग कृत पाप के फल की निवृत्ति कहते हैं। आर्यसमाज और वेद अनागत पाप से निवृत्ति कहते हैं, कितना भारी अन्तर है ओंकार का जाप स्वास्ति-शान्ति पाठ का हेतु भी इसी प्रकार समझ लीजिए। आपने इसी प्रकार मेरे किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया, बल्कि उनकी लीपा-पोती कर उनको ऐसे ही उड़ाना चाहा है। मैं फिर कहता हूं कि लिंग और योनि जब ये शब्द दोनों साथ आये हैं तो साहचर्य अभिधाशक्ति से लिंग का अर्थ मूत्रेन्द्रिय ही है। ये आप समझते हुए भी किनारा कर गये। क्या आप बतला सकते हैं कि महादेव जी के लिंग का बिजली वाला पावर हाऊस कहां है? क्या कोई बिजली को हाथ में ले सकता है? मेरे आरम्भ से अब तक सारे प्रश्न ज्यों के त्यों हैं। सभी पर दृष्टीपात करके उत्तर दीजिए।

पण्डित कालूरामजी शास्त्री—

पंडित जी आज भी बिजली के तार को लोग हाथ में ले लेते हैं। देवी भागवत के "शम्भो: पपात भुवि लिंगम" इसमें लिंग का अर्थ प्रकृति है। तथा वहां कथा में कहा है कि बिजली का तार गिरा और अपने कारण में समा गया। वेद में मूर्ति पूजा उपस्थित है। हमने जो अर्थ किए हैं उनको काटा होता तो हम जानते, उसको नहीं काट सके पुराणों में जुए का निषेध है। रही ब्रह्माजी की बात! ब्रह्मा का विवाह पुष्य नक्षत्र में हुआ था। इस कारण उनका वीर्य गिरा। यह मानसिक सृष्टि का वर्णन है। आपने अनुसूया की कथा, मां-बेटे, भाई-बहिन का ब्याह कहा है। सो वह प्रक्षिप्त है। इसलिए इस बारे में कुछ कहने की जरूरत नहीं है।

पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

वाह! पंडितजी मान गए, मैं बिजली की बात कहता हूं। आपने बिजली का तार कह दिया, क्या बिजली में और उसके तार में कोई फर्क नहीं होता? (जनता में हंसी···) आप स्पष्ट करें कि महादेव के लिंग वाला बिजली का पावर हाऊस कहां है? वहां इन्जीनियर कौन हैं? आदि। एक और बड़ी प्रसन्नता की बात है कि पहिले के पौराणिकों और पंडित कालूराम सनातन धर्मी में आकाश व पाताल का अन्तर दिखाई दे रहा है। पहिले जो भाषार्थ पौराणिक विद्वानों के किए हुए हैं, तथा हस्तलिखित भी मौजूद हैं। और सनातन धर्मी प्रेसों में ही छपे हैं उन सब में तो महादेव के हाथ में मारकीनी कम्पनी के बने हुए बिजली के तार को पकड़े हुए जाना, और तार के गिर पड़ने का जिक्र कहीं भी नहीं है। क्या पंडितजी ने जो अपने मनमाने अर्थ किए हैं उनको कहीं पर दिखला सकते हैं? इस प्रकार तो पंडित जी सारे पुराणों के अर्थ अपने मन से कर देंगे जिनका न कोई सिर है ना पैर! जैसे रात्रि में जुआ खेलना पद्म पुराण में मौजूद होते हुए भी यह कहना कि जुए का निषेध है। यह धृष्टता नहीं तो और क्या है? और पंडितजी ने बेमतलब जिस विषय से आज का दूर का भी सम्बन्ध नहीं जिक्र कर दिया वह

है मूर्ति पूजा, "मांगे आम, देवें वेर" वाह पंडितजी ये भी खूब रही। क्या आपसे कोई पूछ सकता है। कि आज इस विषय से क्या सम्बन्ध है ? (जनता में हंसी······) आज आपका काम उत्तर देना है। प्रश्न तो हमें करने हैं आपको नहीं। आपने ब्रह्मा जी के विवाह की भी अनोखी वात कही। क्या नक्षत्र ब्रह्माजी से भी प्रवल थे जिनके कारण उनका वीर्य गिरा। दूसरी बात ! ब्रह्माजी ने ही सृष्टि रची, और सृष्टि के साथ-साथ नक्षत्र भी रचे गए, जब पुष्य नक्षत्र बन चुका होगा उसके बाद ही ब्रह्मा का विवाह हुआ अर्थात् सृष्टि निर्माण के वाद, इसी नक्षत्र दोष से ही ब्रह्मा का वीर्य गिरा। दूसरी तरफ कहते हैं कि यह मानसिक सृष्टि का वर्णन है। ये परस्पर विरोध क्यों ? या तो सृष्टि समय की सफेद बर्फ के ढेर की घटना कहिये या बाद की। दोनों बातों का एक साथ परस्पर विरुद्ध कहना झूठ साबित करता है अनुसूया व विवाह वाली बातों को प्रक्षिप्त मानकर पंडितजी ने अपना पीछा छुड़वा लिया। पर आज इतनी आसानी से पीछा छुटने वाला नहीं है। मेरे सारे प्रश्न वैसे के वैसे ही रखें हैं।

हस्ताक्षर—"बुद्धदेव"

पण्डित कालूराम जी शास्त्री —

मैं पंडित जी के सब प्रश्नों का उत्तर बराबर देता आ रहा हूं। उस पर भी यह हठ पकड़ना कि कोई उत्तर नहीं मिला, जनता स्वयं जान लेगी। पंडितजी ने एक वात सूर्य देवता के वीर्यधान की वात कही थी पंडितजी को पता होना चाहिए कि भोग योनि वाले (देव) चाहे जिस स्थान पर भोग कर सकते हैं। सूर्य व उसकी स्त्री और अश्विनी कुमारों का ये सब वर्णन यहां आलंकारिक रूप में किया गया है। बल्कि देवी भागवत में शंकरजी की पूजा लिखी है इसको आर्यसमाजी छिपा गए। यह चोरी और सीना जोरी नहीं है तो और क्या है ? और आर्य पंडितजी को पता होना चाहिए कि जीव स्वर्ग में जाकर कर्म नहीं करता। पर आर्यों को हठ तो वरदान रूप में मिला हुआ है। जिसे वे छोड़ नहीं सकते। अपनी ही अपनी कहें जावेंगे। "अट्ट भी मेरी, पट्ट भी मेरी, और अंट्टा मेरे बावा का" क्या कहें इन समाजियों की बुद्धि को। मैंने सब प्रश्नों के उत्तर दे दिए हैं। कोई वात बकाया नहीं रही।

"कालूराम"

पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

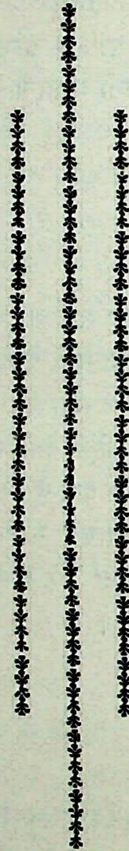
सज्जनों ! पंडितजी का भी कमाल है, अपने पूर्वजों के अर्थों को एक तरफ रखकर अपने मन से सबका अर्थ अलंकारिक रूप में उपस्थित कर रहे हैं। क्या इनको माना जा सकता है ? जबकि पुराणों के टीकाकार स्वर्ग में से चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे हैं कि कालूराम का अर्थ ठीक नहीं। हमारा अर्थ देखो। परन्तु पंडितजी मान ही नहीं रहे। सत्य को न मानकर इस विषय में आर्यसमाज को ही पराजित वताना उनका स्वयं का पराजय है। क्यों न पंडितजी अपने आलंकारिक भाष्यों से युक्त सभी पुराणों को छपवा डालें। स्वर्ग में जीव कर्म नहीं करता। वह भोग योनी है। वहां वे न खाते हैं न पीते हैं, न कोई कर्म करते हैं। यह कथन पंडित कालूराम जी का पुराण विरुद्ध है। जबकि पुराणों में देवता संधि विग्रह, स्त्री प्रसंग व अन्य कर्म भी करते हुए लिखे हैं। यह उनका पुराण विरुद्ध कथन उनकी हार साबित नहीं करता है तो और क्या है ? पर उनका भी दोष क्या है। अगर वास्तविकता को माने तो सत्य को स्वीकार करना पड़ेगा इसलिए उनका अर्थ बदलकर जनता को भ्रम में डालना तथा अपना पीछा छुड़ाना है। परन्तु आज के शास्त्रार्थ में जनता जान चुकी है कि पुराणों की शिक्षा क्या है ? तथा वह कहां तक मानने योग्य है।

हस्ताक्षर—"बुद्धदेव"

नोट—आज के शास्त्रार्थ में पंडित कालूरामजी से कोई उत्तर न बन पड़ा, जिसका प्रभाव बहुत बुरा पड़ा, इस बारे में पौराणिक लोग स्वयं पंडितजी को कह रहे थे। इस पर झुंझलाकर पंडित कालूराम ने कहा कि ठीक है। अखिलानन्द जी मौजूद है। मैं कल से शास्त्रार्थ नहीं करूंगा तुम लोग अखिलानन्द से ही शास्त्रार्थ कराओ।

सैंतालीसवां शास्त्रार्थ

स्थान : नीमच (मध्य प्रदेश)



दिनांक : ३० जून सन् १६२६ ई० (चौथा दिन)

विषय : सनातनी लोग सनातन सिद्धांतों पर आचरण नहीं करते हैं।

शास्त्रार्थ कर्त्ता आर्य समाज की ओर से : श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार

सहायक : श्री पण्डित रामचन्द्रजी देहलवी

शास्त्रार्थ कर्त्ता सनातन धर्मियों की ओर से : श्री पण्डित अखिलानन्द जी "कविरत्न"

सहायक : श्री पण्डित कालूराम जी शास्त्री

आर्य समाज के मन्त्री : श्री रामनारायण जी

आर्य समाज के प्रधान : महाशय श्री हीरालाल जी

सभापति : श्रीमान सब इन्सपैक्टर पुलिस (नीमच कैन्ट)

शास्त्रार्थ से पहले

आज भी पूर्ववत् शास्त्रार्थ हुआ, पूर्व तीन दिन सभापति श्री राय बहादुर ठाकुर देवी सिंह जी थे, परन्तु आज के सभापति श्रीमान सब इन्सपेक्टर पुलिस थे। पूर्व पक्ष आर्य समाज का ही था। आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता पूर्ववत् ही रहे। परन्तु सनातन धर्मियों की ओर से पं० कालूराम जी को हटाकर श्री पं० अखिलानन्द जी को ही नियत किया गया। यह आज शास्त्रार्थ का अन्तिम दिन था। बड़ी भारी भीड़ थी। पिछले तीन दिनों की भांति आज भी समय पर शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ।

"सम्पादक"

शास्त्रार्थ आरम्भ

पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

सज्जन वृन्द ! आज हमें अपने भाइयों से यह पूछना है, कि श्री मद्भागवत् पुराण में लिखा है कि—

"यस्यात्म बुद्धिः कुणपेत्रिधातुके स्वधीः कलत्रादिसु भौमइज्य धीः।
यत्तीर्थ बुद्धिः सलिलेन कर्हिचित्तः, ज्जिनेशुभिज्ञेषु स एव गोखरः॥ १३॥
(श्री मद्भागवत पुराण स्कन्द १० अध्याय ८४, श्लोक १३)

अर्थात्—मूर्ति को देवता मानने वाला, और जल को तीर्थ मानने वाला गधे के समान है। जब पुराण में मूर्ति पूजा की इतनी निन्दा की है तो आप मूर्ति पूजा क्यों करते हैं ? गौभिलगृह्यसूत्र में गऊ मारना लिखा है, हमारे भाई बहुत अच्छा करते हैं कि नहीं मारते, पर क्या वह कारण वता सकेंगे कि वह क्यों नहीं मारते ? देखिए (गौभिलगृह्यसूत्र अ० ३ खं० १० सूत्र १४ व २१) सनातन धर्मी वेद भाष्य में घोड़े का लिंग पकड़ कर रानी अपनी योनि में डाले ऐसा लिखा है देखिए— यजुर्वेद अध्याय २३, मण्डल २०,) वहीं पर मारना भी लिखा है। वाल्मीकि रामायण में यह दोष मर्यादा पुरुषोत्तम की माता पर लगाया है। देखिए—

कौशल्या तंदपं तत्र परिचर्यसमग्रतः।
क्रियाणं विशसासैनं त्रिभिः परमवा मुदा हयेन न समयोजयन्॥
(वाल काण्ड सर्ग १४ श्लोक ३३ से ३५ तक)

भविष्य पुराण में ब्राह्मण पर्व अध्याय ७३, में महाराज श्री कृष्ण चन्द्र जी का सुरा पान लिखा है। क्या सब मद्य-शाला सनातन धर्म सभा की शाखायें हैं ? और यह महिला अश्व-सम्भोगाश्रम कहीं खुला हो तो उसका भी क्रम या पता बता दें। "यजुर्वेद अध्याय ६ श्लोक १५, यथा—मनसा आप्यायता······आप्यायताम्" में लिखा है कि, यदि मन्त्रों में बकरे को मारकर फिर उसका मंगल मनाने की विचित्र कथा लिखी है तो अवश्यमेव सनातन धर्मी इस पर आचरण करते होंगे। परन्तु हम बहुधा देखते हैं कि—ऐसा नहीं होता, क्या पण्डित मण्डली ने ऐसे यज्ञ का कभी अनुभव किया है ?

"बुद्धदेव"

पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

माननीय सज्जन गण !

आज के प्रश्नों में व समाज ने भागवत के "यस्यात्म बुद्धिः……" पद्य द्वारा मूर्ति पूजा पर आक्षेप किया है। परन्तु उस पद्य में (नं०) पर ध्यान नहीं दिया। भावार्थ, प्रकृति पूजा का विरोध में नहीं है, किन्तु—विशिष्ट तत्वों की उपासना का विधि पूर्वक आचार न करने पर है। सनातनधर्मी वैदिक रुद्र की (त्र्यम्बक) मन्त्र के आधार पर प्रकृति में वेद की उपासना करते हैं। गौभिलगृह्यसूत्र में जो अष्ट का प्रकरण है, वह नैमेत्तिक है। (अश्वालंगभगवालंभ) कलि काल में वर्जित है। इस कारण नहीं करते। गोमेध में गो शब्द इन्द्रिय परक है। गौ नाम कोष में इन्द्रियों का है। इसमें विधि वाक्य समाज ने पेश नहीं किया है। जिनमें नरमांस तक के खाने का आदेश हो वह भी गौ रक्षक होने का दावा करे। (किमाश्चर्य मतः परम्)। कौशल्या ने मृत घोड़े के साथ कैसे गमन किया। क्योंकि—"क्रियार्णोशिसासैनं" इस पद्य से उसका काटना सिद्ध है। मरे हुए घोड़े से गमन करना असम्भव है। भविष्य पुराण में जो लिखा है। वहां सुरा का अर्थ शराब नहीं है। "सुरैरादीयत-इतिसुरा……" इसी निर्वर्णन से "अमृत" को सुरा कहते हैं। यजुर्वेद के मन्त्र में बकरे का नाम तक नहीं है। "अनुत्वामंच" देखिए—हमने इन सब बातों का उत्तर लिख दिया है। इतिहास सर्वांश में प्रमाण नहीं होती है। बुरी और भली सभी बातें इतिहास में रहती हैं। उनमें राम का आचरण करना, और रावण का न करना बुद्धिमानों को उचित है। आपने ऐसा कोई आक्षेप नहीं किया, जो देश के तरीके पर वेद अथवा पुराण कहता है, किसी ने आचरण किया हो। उसका सब पालन करें, यह नियम सब पर लागू नहीं है। सनातन धर्म में मांस खाना धर्म नहीं माना जाता है। और न शराब पीना, क्योंकि मनु स्मृति में लिखा है कि—"'निवृत्तिलुमहाफला……" ५-५६, में ऐसा लिखा है। जब यह बातें लाजमी नहीं हैं तो उनके आचरण का न करना भी पाप नहीं है।

हस्ताक्षर—"अखिलानन्द"

पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

श्रीमद्भागवत की लीला ज्वालाप्रसाद जी के अनुवाद से खुल जाती है। जुहुयात् विधि वाक्य नहीं, तो क्या है ? गौ नाम इन्द्रिय का है। यह कैसी लंगड़ी बात कही, बीसवें सूत्र में स्पष्ट पशु शब्द मौजूद है। आपको अश्वमेध की विधि का भी पता नहीं, घोड़ा मारने के पीछे मरे घोड़े का लिंग रानी स्वयं खींचकर डालती है। सुरा का अर्थ आपने "अमृत" खूब किया। अगला प्रकरण देखिए, वहीं पर आगे लिखा है कि—सुरापान से बेहोश स्त्रियों ने साम्ब को देखा और उनके जंघन चू पड़े। आपने न पुस्तक देखी है और न ही पढ़ी है। शास्त्रार्थ करने आ गए। पर आप यह ध्यान रक्खें कि इस प्रकार की मनमानी स्वरचित मनघडन्त बातों से जनता को धोखे में नहीं डाल सकते। (श्रोताओं में सन्नाटे का वातावरण……)

मैंने मन्त्र में बकरे का नाम नहीं कहा, मन्त्र भाष्य में कहा था, सो वहां साफ मौजूद हैं। क्यों भाईयों ! आपको याद होगा कि कल के शास्त्रार्थ में तो पुराण वेदों से भी पहिले इनके पंडित जी ने कहे थे, परन्तु आज वे त्वारीख (इतिहास) में बदल गये। परन्तु मैं तो इतिहास में से माननीय लोगों का ही उदाहरण दे रहा हूँ। आर्य समाजी किसी मूर्ति की पूजा नहीं करते। मैं उस्तरे को दस जूते मारता हूँ। आप शिवलिंग को मार दें तो पता लग जाएगा। बार-बार उस्तरे की पूजा स्वामी दयानन्द ने की है। कह देते हैं। अब और लीजिए पुराण लीला पांच करोड़ गौवों का मांस—"अध्याय १११ ब्रह्मवैवर्त पुराण खण्ड १०५ प्रकृति खण्ड में रुक्मिणी के विवाह का जिक्र है, वहां कहा है कि ५ लाख गौवों का वध, तथा जो देह को आत्मा न समझे वह गधा है। यह भी क्या दार्शनिक बात कही है ? बिल्कुल उपादान कारण के जोड़ की है। मनुस्मृति के पांचवे अध्याय में लिखा है—

नियुक्तस्तु यथान्यायं यो मांसनाभि मानवः।
सप्रेत्य पशुतां याति सम्भवानेकविंशतिम ॥

(मनुस्मृति)

इसके साथ ही तीसरे अध्याय में लम्बी लिस्ट भी दी है। जिसमें बकरी आदि के मांस से पितरों की तृप्ति लिखी है। और वहां "तत्वामिषेण कर्त्तव्यं" यह विधि वाक्य स्पष्ट लिखा है।

"बुद्धदेव"

पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

विवेकी पुरुषों में जो पूज्य बुद्धि न माने वही गधा है। वह स्वयं वे मान चुके हैं। अबकी बार भूल भी गया। खाली हिन्दी पढ़कर ही (जाफर जटल्ली) वाला किस्सा गाया-गया, "छुग ओखली-मूसल खेत का पटेला पूजने वालों को ऐसा ही कहकर निर्वाह करना पड़ता है। विधिवाक्य ही कहा जाता है, ब्रह्मवाक्य नहीं। "मादयत्तीतिमद्यं" वेद वाक्य इस निवचन से अमृत का नाम ही मद्य है। चलिए—कहां चलते हैं। रोने की शकल दिखाकर रोइये नहीं। "नियुक्त लुपशान्यायं" इस पद्य का "कुर्याच्छिदभपशु" पद्य से सम्बन्ध है। अबकी बार पांच कोटि गवमांसं—यहां पर "मा-या-अंशं इस विग्रह से तन्मूलक गोदान द्रव्य का ग्रहण है। मांस का नहीं। यहां तक तो हमने आपका उत्तर दिया, अब लीजिए अपनी घर की बातें—जो ऋषि-महर्षि मान चुके हैं। नरमांस भक्षण विधि घर की देख लीजिए। और ऊपर से निराकार का वीर्य पान कर लीजिए। मन्त्र में मरे हुए घोड़े से समागम करने वाला एक पद भी दिखा दीजिए। जो बात मूल मन्त्र में नहीं है। उसको पढ़कर जनता को धोखा देना उचित नहीं है। यहां ईंट का जवाब पत्थर से दिया जाता है। अन्ध शिष्य मण्डली इस बात को ध्यान में धरे। इतिहास की बात हम फिर दुहरा देते हैं, इतिहास में उस-उस काल की सभी बातों का वर्णन मिलता है, कंस और कृष्ण एक ही समय में थे। दोनों का इतिहास भागवत् में है। आप कंस को अच्छा मानते हैं या श्री कृष्ण चन्द्र जी महाराज को? कहिए तो सही! आज बोलती क्यों बन्द है? ये होली के दिनों में पढ़ने लायक सत्यार्थ प्रकाश नहीं है। या सनातन धर्म के ग्रन्थ है। अबकी बार बकरा उड़ गया—(क्यों?) धर्म शास्त्रों में, वेदों में, कहीं पर भी मांस खाने का विधि वाक्य नहीं है। गौ मांस का जिक्र करते हुए बार-बार आपको लज्जा आनी चाहिए। आप खुश हो रहे हैं। क्या इसी हिसाब से आप गौ रक्षक बनते हैं। छुरे (उस्तरे) पर जूते लगाना! पहले दयानन्द से तो पूछ लीजिए।

हस्ताक्षर—"अखिलानन्द"

पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

सज्जनों! भविष्य पुराण उत्तर पर्व के अध्याय १११ में लिखा है कि, कृष्ण जी की पत्नियां वेश्या हुई। और फिर उनको मोक्ष का उपाय बताया गया कि रविवार के दिन ब्राह्मण को भोजन करावे और बिना फीस सम्भोग करावे। तो उनकी मुक्ति हो। पहले उस्तरे को मैं जूता मारने को तैयार हूँ। आप अपने देवताओं को मार कर दिखावें। नरमांस का कोई हवाला नहीं दिया, हमारी किसी पुस्तक में नहीं लिखा। मनुस्मृति अध्याय ५ श्लोक २२ में पशु पक्षियों का ब्राह्मणों द्वारा मारना लिखा है। हमने जो इतिहास दिखाया है। आपके पूज्य पुरुषों का दिखाया है, रावण आदि का नहीं। "गवां लक्षछेदनस्य" ब्रह्मवैवर्त कृष्णार्जुन खण्ड अध्याय १०५, इस मूल में तो सन्देह न था, बल्कि अर्थ में सन्देह था, सो पढ़कर सुना दिया कल्प सूत्रों के वाक्य, विधि वाक्य नहीं हैं। इसमें आपने फिर भूल की। आपको अपना सिद्धान्त भी ज्ञात नहीं। स्पष्ट क्यों नहीं कहते कि गौभिल को हम नहीं मानते। या महिधर के भाष्य को नहीं मानते। मद्य पीने से उनकी बुरी हालत होना साफ बताता है कि यह अमृत नहीं बल्कि शराब है। आप पांच करोड़ गौवों का मांस खा गये, सोलह हजार रानियों का चूआ पी गए। उस पर शराब भी पी गए। मां का अंश आपने खूब कहा। आपको तालव्य (श) तथा दन्तीय '(स)' में भी भेद नहीं मालूम। मरे पशु के साथ भोग आपके यहां लिखा है। और इसलिए लिखा कि घोड़ा अपनी मर्जी से कहीं लिंग प्रवेश न कर दें। किन्तु रानी अपनी इच्छानुसार प्रवेश कर सके। इसीलिए मारा गया। पृष्ठ ३०३ पर कहीं भी नर मांस नहीं लिखा शौक है—कि आपके ग्रन्थ तो होली में भी पढ़ने लायक नहीं है। क्योंकि गौ मांस तो वहां भी नहीं खाया जाता, कवियों का दोष सिद्धान्तों पर नहीं आता यह मांस पार्टी का उत्तर है।

"बुद्धदेव"

पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

न खन्जर उठेगा, न शमशीर इनसे। ये बाजू मेरे आजमाये हुए हैं॥

अबकी बार वैश्या प्रसंग को छोड़कर बाकी कुछ नहीं। जो कुछ हमने दूसरे नम्बर के पर्चे पर लिखा था उस पर कुछ नहीं कहा गया। कृष्ण जी ने अमृत पान किया, मद्यपान नहीं। गुरुकुलों में धर्मपाल ने जो लकारोपासना सिखाई उस पर भी तो ध्यान दीजिए। "यज्ञार्थं पशवः……" पद्य का उत्तर "कुर्याद्घृतपशुं……" इस पद्य के साथ में दिया जा चुका है। मरे घोड़े का लिंग कभी आपने अपने हाथ में लेकर देखा ? देखिए खड़ा होता है कि नहीं। "नियोजित करे" यह मूल पाठ का अर्थ नहीं। मांस शब्द में (स) और (श) का भेद "श० सर्पोः" पद्य पढ़ने पर मालूम होगा। बारहकड़ी भौंकने वाले गुरुकुलों के कुली इन बातों को क्या समझें। (जनता में रोष का वातावरण……) ब्राह्मण मांस नहीं खाते। यह बात जो आपने अपनी ओर से जोड़ दी है, आगे-पीछे के प्रकरण के विरुद्ध है। गृह्य और कल्प सूत्र, यज्ञ की प्रक्रिया बताते हैं, वे विधि वाक्य नहीं है। तुम कृष्ण को न मानों। इससे क्या कृष्ण अमान्य हो सकते हैं। उल्लू को अगर न दीखे तो क्या सूर्य उदय नहीं होता। दयानन्द ने छुरे को (नमस्ते) तक लिखा है देखिए—"शिवोनामाशि……" मन्त्र ? हमने सत्यार्थ प्रकाश का ३०३ पृष्ठ बताया। उसे क्यों नहीं पढ़ा ? नर मांस का पाठ भी पूरा नहीं पढ़ा। अबकी बार पुरानी सब बातें भूल गये। एक का भी उत्तर न कहा गया। यह शुद्धि का बहाना करके पेट भरना, हिन्दू-मुसलमानों में दंगा कराना, विधवा बेचकर पेट भरना, फन्ड गायब करना, गुरुकुल से गधे निकाल कर, क्या पंडिताई का धोखा देना नहीं है ? (शास्त्रार्थ के बीच में) चारों ओर से हो—हल्ला मच गया, मारो कमीने को, आदि-आदि गाली वाक्यों से अखिलानन्द जी का स्वागत हुआ। बड़ी मुश्किल से शान्ति की गई।

पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

पण्डित जी महाराज ! आप जुबान संभाल कर बोलिए। नहीं तो धज्जियां उड़ा दी जावेगी ! आपको जो भी कहना है सिद्धान्त पर कहिए, ये इस प्रकार की ऊट-पटांग बातें कहकर अपनी विजय हासिल करना चाहते हो ? परन्तु सब जनता जान चुकी है कि आज शास्त्रार्थ के चौथे दिन आर्य समाज ने सनातन धर्म का चौथा मना दिया। (जनता में हंसी……)

सभापति—

मेरी प्रार्थना है कि यह श्री पं० अखिलानन्द जी महाराज की इस आज के शास्त्रार्थ में बोलने की अन्तिम बारी है। इसके बाद शास्त्रार्थ समाप्त ही है। इसलिए जैसे आरम्भ से शास्त्रार्थ शान्तिपूर्वक ढंग से चला आ रहा था, उसी प्रकार इसका समापन भी हो।

पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

समाजियों ने जितने सनातन धर्म पर प्रश्न किए थे। उन सबका यथा क्रम मैंने उत्तर दे दिया। अब केवल ग्रंथ पढ़ने के लिए एक मिनट का समय श्री प्रधान जी से मांगता हूँ जिससे समाजियों की पूर्ण तसल्ली हो जावें। और जनता भी इनकी पोल को भली भांति जान जावे।

सभापति—

समय दिया जाता है। आप पढ़कर सुना सकते हैं।

पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

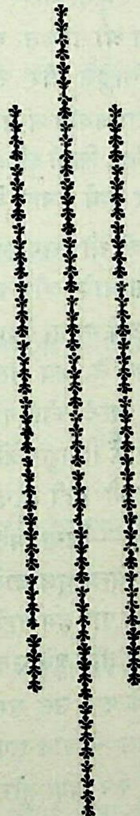
सुनिये पहिले संस्करण का ३०३ पृष्ठ का लेख। सुरा के बारे में, "सुरापरिवाद्धि जो……" यह मनु वाक्य देखिए, ब्राह्मणों पर आक्षेप जो आपने किया वह लेश मात्र भी नहीं घट सकता है। अब का लेख आपका कचूमर निकालने वाला है। अबकी बार जैसा घोर पराजय आपका हुआ जनता जान चुकी है। (जनता में हँसी……)

सभापति द्वारा—पंडित जी महाराज समय समाप्त, अच्छा-अच्छा ठीक है। मैं केवल एक मिनट………

सभापति—बिल्कुल नहीं, एक बार मौका दिया जा चुका—बस ! ओ३म् शान्ती ! शान्ती !! शान्ती !!!

अड़तालीसवां शास्त्रार्थ (टकराव)

स्थान : (अरनियाँ जिला बुलन्दशहर) उ० प्र०



शास्त्रार्थ कर्त्ता आर्य समाज की ओर से : श्री ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी

शास्त्रार्थ कर्त्ता सनातन धर्म की ओर से : श्री पण्डित माधवाचार्य जी शास्त्री

आर्य समाज के मन्त्री : श्री रामचन्द्रजी वर्मा (स्वर्णकार)

शास्त्रार्थ की पृष्ठभूमि

पण्डित माधवाचार्य जी को एक बार एक सनातन धर्मी कहलाने वाले संन्यासी ने ग्राम अरनियाँ जिला बुलन्द-शहर (ठाकुर अमर सिंह जी का जन्म स्थान) में बुलाया। पण्डित माधवाचार्य जी ने दिल्ली से आते ही पूछा कि—ठाकुर अमर सिंह जी यहाँ हैं या नहीं ? उनको बताया गया कि – हैं तो जरूर परन्तु न होने के बराबर ही हैं। वह सख्त वीमार हैं। उठ बैठ भी नहीं सकते हैं, बहुत कमजोर हैं। दूसरे दिन श्री पण्डित माधवाचार्य जी का भाषण हुआ उसमें उन्होंने आर्य समाज की वहुत निन्दा की। आर्य समाज को उन्होंने हिरणाकुश और रावण का वंश वतलाया। तथा ग्राम अरनियाँ को उन्होंने लंका कहा और अपने आपको लंका दहन करने वाला अर्थात् लंका को जलाने वाला महावीर (हनुमान) बताया। साथ ही शास्त्रार्थ के लिए चैलेन्ज कर दिया और कहा कि जिस किसी भी आर्य समाजी में साहस हो वह कल या परसों तक शास्त्रार्थ कर लें "सनातन धर्म सच्चा वेदानुकूल धर्म है और आर्य समाज वेद विरुद्ध मत है"।

उस समय आर्य समाज अरनियाँ के मन्त्री श्री रामचन्द्र जी वर्मा (स्वर्णकार) थे। वह बहुत चिन्ता करते हुए चारपाई में पड़े हुए श्री ठाकुर अमर सिंह जी के पास आये और कहने लगे कि माधवाचार्य जी ने आर्य समाज को शास्त्रार्थ का चेलेन्ज दे दिया है और कहा है कि—"सनातन धर्म सर्वथा वेदानुकूल धर्म है और आर्य समाज वेद विरुद्ध मत है" कोई भी आर्य समाज २ दिन तक हमारे साथ शास्त्रार्थ कर ले, अब बताइए कि—शास्त्रार्थ करने के लिए किसको बुलायें ? ठाकुर जी ने कहा कि—शास्त्रार्थ करने वाला इतनी जल्दी कोई नहीं मिल सकता है। मन्त्री जी ने कहा कि—आप दिल्ली में किसी का नाम वतायें तो मैं जाकर दिल्ली से ले आऊँ। ठाकुर जी ने कहा कि—दिल्ली में कोई शास्त्रार्थ कर्त्ता नहीं हैं। रामचन्द्र जी ने कहा कि—हम तो मुँह दिखाने योग्य भी नहीं रहेंगे, ठाकुर जी ने देखा कि—रामचन्द्र जी बहुत ही दुखी हृदय के साथ यह कह रहे हैं, तो ठाकुर जी ने कहा कि—चिन्ता मत करो आप किसी प्रकार मुझको उनके सामने ले चलिए। वह मुझको इस अवस्था में देखकर भी शास्त्रार्थ का चैलेन्ज भूल जायेंगे। मन्त्री जी ने कहा कि—आप तो बिस्तर से उठ भी नहीं सकते हैं, इस अवस्था में आपको वहाँ ले जाने का पाप हम नहीं करेंगे। ठाकुर जी ने पूछा कि—उनका व्याख्यान किस समय होगा, मन्त्री जी ने बताया कि—दोपहर के पीछे तीन वजे उनका व्याख्यान होगा। मन्त्री जी तो वहुत ही दुखी मन से चले गए। अब ठाकुर जी को चैन कहाँ ? ठाकुर जी के पास उस समय चार विद्यार्थी थे उनको ठाकुर जी ने कहा कि—तुम पुस्तकों के अमुक-अमुक दो बक्स पौराणिकों के पण्डाल के पास छुपा करके रख आओ और एक आराम कुर्सी गद्दा लेकर वहीं गुप्त रख आओ। विद्यार्थियों ने वैसा ही तत्काल कर दिया और आकर वता दिया कि—हम यह सब कर आये, अब क्या आदेश है ? श्री ठाकुर जी ने कहा कि—अब मुझको एक हलकी चारपाई पर लिटाकर आप लोग चारपाई सहित मुझको वहाँ ले चलो। विद्यार्थियों ने वैसा ही किया। चारपाई पर ठाकुर जी को जाते देखा तो सारे गाँव में यह खबर बिजली की भाँति फैल गयी, और सारा ग्राम वहाँ इकट्ठा हो गया, चारपाई—पण्डाल से थोड़ी दूर छोड़कर आराम कुर्सी पर बिठाकर पौराणिकों के पण्डाल में विद्यार्थियों तथा ग्रामवासियों ने यथास्थान पहुंचा दिया।

पण्डित माधवाचार्य जी का भाषण ठाकुर जी को देखते ही दूसरे रंग में होने लगा, पण्डित माधवाचार्य जी ने कहा कि—सनातन धर्म और आर्य समाज दोनों सहोदर भाई हैं, दोनों एक छाती पर लगी हुई दो भुजायें हैं, दोनों एक माथे में लगी हुई दो आँखें हैं। सनातन धर्म और आर्य समाज एक कैंची के दो फलके हैं। दोनों फलकों को जोड़ने वाली एक कील होती है सो वेद की कील ने दोनों को जोड़ा हुआ है आदि। श्री ठाकुर अमर सिंह जी आर्य पथिक और श्री कुँवर सुखलाल जी आर्य मुसाफिर की भी बहुत प्रशंसा की, क्योंकि दोनों ही वहाँ उपस्थित थे जिनको पण्डित जी देख भी चुके थे। व्याख्यान समाप्त होने पर—आराम कुर्सी पर लेटे हुए ही श्री ठाकुर साहब ने कहा कि—

श्री पंडित ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी—

सज्जनों श्री पण्डित माधवाचार्य जी ने कल आर्य समाजियों को शास्त्रार्थ का चैलेन्ज किया था, सो मैं शास्त्रार्थ करने के लिए आ गया हूं। इसलिए अब विधिवत शास्त्रार्थ हो जाना चाहिए।

श्री पंडित माधवाचार्य जी शास्त्री—

इस सभा के प्रवन्ध कर्त्ताओं ने यह कह दिया है कि यहां शास्त्रार्थ नहीं होगा। हमको भी उन्होंने शास्त्रार्थ से रोक दिया है। इसलिए शास्त्रार्थ तो नहीं होगा। हां ! शंका कोई करना चाहे तो उनको पर्ची दे दी जावेगी। उस पर्ची पर अपनी-अपनी शंका लिख दें, हम समाधान कर देंगे।

श्री पंडित ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी—

पण्डित जी महाराज ! अन्य कोई भी शंका नहीं करेगा, केवल मैं ही शंका करूंगा।

श्री पंडित माधवाचार्य जी शास्त्री—

आप सबके ठेकेदार हैं ?

श्री पंडित ठाकुर अमरसिंह जी—

हां मैं ! सबका ठेकेदार हूं।

श्री पंडित माधवाचार्य जो शास्त्री—

क्या ये जो सब आदमी बैठे हैं सभी आपके ही हैं ?

श्री पण्डित ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी—

जी हां ! ये सब मेरे ही आदमी हैं।

श्री पंडित माधवाचार्य जी शास्त्री—

(श्रोताओं की ओर इशारा करते हुए) अरे भाई ! क्या कोई और शंका नहीं करेगा ? आप इतने व्यक्ति बैठे हैं आप भी तो शंका करो।

श्रोतागण—

(चारों तरफ से एक ही आवाज आई) हम सबकी तरफ से केवल गुरुजी (ठाकुर अमरसिंह जी) ही शंका करेंगे उनके अलावा अन्य कोई भी शंका नहीं करेगा।

नोट—

सारे अरनियां ग्राम में श्री ठाकुर अमरसिंह जी को नाम लेकर कोई नहीं पुकारता यहां तक कि ठाकुर साहब तक कोई नहीं कहता, केवल "गुरूजी" के नाम से ही जाने जाते हैं। कोई-कोई जो बहुत पुराने व्यक्ति हैं वे भले ही "ठाकुर जी" के नाम से पुकार लेते हैं।

श्री पंडित ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी—

भाइयो सुनो !

मैं जानता हूं बुलबुल जो है तेरी हकीकत।
एक मुक्त उस्तखवा पर दो पर लगे हुए हैं ॥शेर॥

पण्डित जी महाराज ! आपने यह कहा था कि—"सनातन धर्म सर्वथा वेदानुकूल धर्म है और आर्य समाज सर्वथा वेद विरुद्ध मत है। "सो मुझको समय दीजिए तो मैं वेदों में सौ बार "आर्य" नाम दिखाऊं। आप वेदों में कहीं "सनातन धर्म" नाम दिखाइए ?

श्री पंडित माधवाचार्य जी शास्त्री—

सज्जन पुरुषों ! हमें आपस में लड़ना नहीं चाहिए, मेल मिलाप से रहना चाहिए। ऐसी कोई बात नहीं करनी चाहिए जिससे आपस में बैर पैदा हो। ठाकुर साहब ने वेद में से सनातन धर्म शब्द दिखलाने की बात कहीं आप वेद मन्त्र सुनिए—'सनातन मेन बाहु.............पुनर्णवः." (बीच में..........)

श्री पंडित ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केशरी—

पण्डित जी महाराज ! यहाँ के "सनातन" शब्द किसी धर्म का वाचक नहीं है। सनातन नाम यहाँ जीवात्मा का है "पुनर्णवः" कह कर जीव को यहाँ बार-बार जन्म कर बार-बार नया सा होने वाला है। "कृणवन्तो विश्वमार्यम्" इस मन्त्र में आर्य शब्द गुण धर्म बताता है। इसमें सारे विश्व को "आर्य" बनाने की बात है। आपके अमरकोश में "महा कुल कुलीनार्य श्रेष्ठ सज्जन साधव" कह कर "आर्य" को उत्तम कुल, श्रेष्ठ, सज्जन, साधु, कहा है। आर्य बनाने का अर्थ धर्मात्मा बनाना है। परन्तु पण्डित जी महाराज महाभारत में "सनातन धर्म व्यभिचार का नाम है" देखिये—

उद्दालक की पत्नी को कोई व्यक्ति एकान्त में व्यभिचार के लिए पकड़ कर ले जाने लगा तो उसके बेटे स्वेत-केतु ने ले जाने वाले पर क्रोध किया तो उद्दालक ने कहा-"मा तात कोपं कार्षीस्त्वंएष धर्मः सनातन"-बेटा क्रोध मत करो यह तो सनातन धर्म है। (जनता में बेहद हँसी......) आर्य बनना श्रेष्ठ बनना है। आर्य बनाने अर्थात् धर्मात्मा बनाने का उपदेश वेद में हैं। सनातन धर्म व्यभिचार का नाम है। वेद में इसका नामोनिशान तक भी नहीं है।

नोट—

श्री ण्डित माधवाचार्य शास्त्री जी ने यह कह कर कि—"समय समाप्त हो गया है" वाद बन्द कर दिया और घोषणा कर दी कि—कल को मैं अपने व्याख्यान में यह बताऊँगा कि "शिवलिंग—ओंकार है"। इस पर श्री ठाकुर अमर सिंह जी ने श्रोताओं से कहा कि—

"भाइयों ! आपने पण्डित जी की बात को सुना। अब मेरी भी सुनो ! पण्डित जी तो 'शिवलिंग' को 'ओंकार' सिद्ध करेंगे। परन्तु मैं आप लोगों को बताऊँगा कि शिवलिंग—ओंकार नहीं बल्कि "व्यक्ति विशेष की मुत्रेन्द्रिय और भोगेन्द्रिय" है। आप लोग अधिक से अधिक संख्या में आ यें, सभा समाप्त !!

दूसरा दिन

नोट—

दूसरे दिन भी श्री ठाकुर साहब जी बिमारी अवस्था में ही पूर्व दिन की भाँति चारपाई पर लेटे हुए ही सभा मण्डल में पहुँचे। रात्रि को उत्सव के प्रबन्ध कर्त्ताओं ने आपस में माधवाचार्य जी के पास जाकर यह कहा कि—कल को या तो पण्डित जी आपका भाषण न हो और यदि हो तो किसी ईश्वर भक्ति आदि विषय पर हो। नहीं तो ठाकुर जी आयेंगे और सब किए कराए को चौपट कर देंगे। सब मामला गड़बड़ हो जाएगा। इस पर भी पण्डित माधवाचार्य जी ने कहा कि—आप लोग नहीं समझते अगर इस विषय को लेकर मेरा व्याख्यान न हुआ तो मेरा घोर अपमान है। मैं स रा व्याख्यान ईश्वर भक्ति पर करके अन्त में केवल यह कहूँगा कि "शिवलिंग ओंकार का प्रतीक है"। अगले दिन इसी प्रक र व्याख्यान हुआ व्याख्यान के अन्त में यही वाक्य श्री शास्त्री जी ने कहा तभी तुरन्त श्री ठाकुर जी ने गर्ज कर कहा—पण्डित जी सुनिए ! ध्यान से सुनो !!

श्री पंडि । ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी—

सज्जनो ! पण्डित जी का व्याख्यान बड़े ही शान्तीपूर्वक ढंग से हो रहा था हमें उस पर कोई आपत्ति नहीं थी। अन्त के वाक्य पर हमें अवश्य कुछ कहना है। देखिए शिवपुराण में लिखा है कि—शिवजी ऋषियों की पत्नियों के आगे—नंगे खड़े हो गए तो शिवजी को शाप दिया कि—तुम्हारा लिंग पृथ्वी पर गिर जावे। सो गिर गया। वही यह गोल-मटोल सिर वाला है। (बीच में...)

श्री पंडित माधवाचार्य जी शास्त्री—

ठाकुर साहब ! वह लिंग उपस्थेन्द्रिय नहीं बल्कि झण्डा सदृश एक चिन्ह विशेष था।

श्री पंडित ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी—

बहुत शोर सुनते थे, पहलू में दिल का।
जो चीरा तो एक कतरा खूं न निकला ॥

सज्जनो ! ये मेरे पास शिव पुराण धर्म संहिता ग्रन्थ है, देखिए इसमें क्या लिखा है ? (पुस्तक पढ़ते हुए)---

"ऋषियों ने कहा था कि इसने (शिवजी ने) धर्म विरुद्ध काम किया है, इसलिए इसका यह लिंग काट दिया जावे यहाँ लिंग का नाम "शिश्न" कहा है "सवृषणाम्" अण्डकोशों सहित काटने को कहा है।

ब्रह्माण्ड में कोई सनातन धर्मी कहलाने वाला कोई भी पण्डित नहीं जन्मा है जो शिवलिंग को उपस्थेन्द्रिय के सिवाय कुछ और सिद्ध कर सके। श्रोताओं में चारों तरफ हर्ष का वातावरण व तालियों की गडगडाहट……।

नोट—

इसी बीच ग्राम दशहरी के श्री ठाकुर भौमसिंह जी अपने आपको सनातन धर्मी कहा करते थे, वह सभा में हाथ जोड़ कर खड़े हो गए। और बार-बार चिल्ला कर कहने लगे कि–भगवान के वास्ते इस प्रसंग को बन्द कर दीजिए। तभी तुरन्त माधवाचार्य जी व उनकी शिष्यमण्डली ने रामधुन आंरम्भ कर दी--श्री राम जय राम जय जय राम ॥

"बस खेल खतम, पैसा हजम"

आवश्यक द्रष्टव्य

ग्राम अरनियां में आर्य समाज मन्दिर—

जिस ग्राम में अस्सी वार्षिकोत्सव आर्य समाज के हो चुके अनेकों शास्त्रार्थ हुए, सारे देश में विख्यात चतुर्मुखी शास्त्रार्थ कर्त्ता महात्मा अमर स्वामी जी महाराज (पूर्व श्री ठाकुर पण्डित अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी) तथा देश भर में विख्यात कुंवर सुखलाल जी आर्य मुसाफिर एवं एक दर्जन से अधिक विद्वान और व्याख्याता जिस ग्राम ने दिये हो, उस ग्राम में केवल धनाभाव के कारण आर्य समाज मन्दिर न हो यह बड़ी लज्जा की बात है। काफी समय पहले आर्य समाज को लगभग २०० गज भूमि बिना मूल्य के मिली थी, वह एक बेईमान ने ९००० रुपये में बेच ली। अब इस स्थिति को देखते हुए ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी जी के सुपुत्रों (१. श्री मृत्युञ्जय सिंह जी राही, २. श्री शत्रुञ्जय सिंह जी एम० ए०, ३. कविवर श्री धनञ्जय सिंह जी एम० ए०) ने पाँच सौ गज भूमि समाज मन्दिर को दान स्वरूप दी है। एवं शास्त्रार्थ केशरी जी के पौत्रों ने २५००) रु० आर्य समाज मन्दिर के निर्माण हेतु दिये। इस मन्दिर को पूर्ण करने में लगभग एक लाख रुपये का खर्च होगा।

९२ वर्ष की आयु बीतने पर श्री महात्मा अमर स्वामी जी महाराज ने प्रण कर लिया है कि--मैं आर्य जनों से धन माँग-२ कर "अरनियां" में आर्य समाज का "वेद मन्दिर" अवश्य बनाऊंगा। महात्मा जी चलने फिरने में असमर्थ हैं, इसलिए मैं कहता हूँ कि--

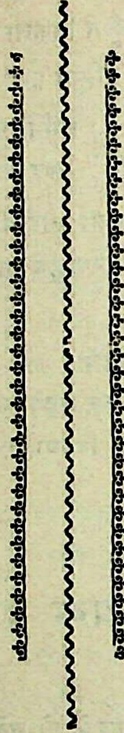
मिटे न बात कहीं, तुम पै मिटने वालों की।
तुम्हारे सर हैं हया, इन सफेद बालों की ॥

आप लोग इस पवित्र कार्य में दिल खोलकर आर्थिक सहयोग दें।

निवेदक—
शिवराज सिंह शास्त्री, अरबीफ़ाजिल (बम्बई)
मूल निवासी अरनियाँ (जि० बुलन्दशहर) उ० प्र०

उन्नचासवां शास्त्रार्थ

स्थान : भिवानी (हरियाणा)



विषय : वर्ण व्यवस्था गुण, कर्म, स्वभाव से है या जन्म से है ?

दिनांक : ६ अप्रैल सन् १९२९ ई० प्रातःकाल साढ़े नौ बजे से साढ़े-ग्यारह बजे तक, स्थान (सनातन धर्म पाठशाला) भिवानी

सभापति : श्री पंडित श्रीदत्त जी वैद्य, आनरेरी मजिस्ट्रेट भिवानी (हरियाणा)

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पंडित बुद्धदेव जी 'विद्यालंकार'

सनातन धर्म की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पंडित अखिलानन्द जी 'कविरत्न'

सहायक : श्री पंडित कालूराम जी शास्त्री

शास्त्रार्थ के लेखक : श्री पंडित मंगलदत्त जी आर्योपदेशक (स्नातक, वेद विद्यालय काशी)

नोट : इस शास्त्रार्थ का संस्मरण आठ अप्रैल सन् १९२९ ई० का भिवानी से छपा हुआ श्री पण्डित "फूल चन्द जी शर्मा" (निडर) जी के सौजन्य से (मूल कापी के रूप में) प्राप्त हुआ, उनके हम हृदय से आभारी हैं।

"सम्पादक"

शास्त्रार्थ से पहले

दिनांक ६-४-२६ प्रातः काल ९॥ बजे से ११॥ बजे तक भिवानी की सनातन धर्म पाठशाला में, सनातन धर्म व आर्य समाज के मध्य एक बड़ा ही मनोरंजक शास्त्रार्थ हुआ, आर्य समाज की ओर से मूर्ति पूजा, वर्ण व्यवस्था, तथा मृतक श्राद्ध इन तीन विषयों पर शास्त्रार्थ करने को ललकारा गया था, बड़ी कठिनता से पिण्ड छुड़ाने के लिए अपनी स्वाभाविक टाल-मटोल के बाद सनातन धर्मी भाई किसी तरह शास्त्रार्थ के लिए तैयार हुए और कहा कि हम केवल एक विषय पर ही शास्त्रार्थ करेंगे, आर्य समाज ने कहा, चलो ! एक ही सही। शास्त्रार्थ में संस्कृत का लेख संस्कृत में सुनाया जाता था, फिर उसका भाषा में अनुवाद कर दिया जाता था, आरम्भ में आर्य समाज की ओर से, प्रतिलिपि पत्र सभापति को देते हुए कहा गया कि, वे उस पर हस्ताक्षर कर दें, इस पर सभापति जी ने कहा कि मैं शास्त्रार्थ के अन्त में मूल का प्रतिलिपि से मिलान करके हस्ताक्षर करूंगा। मध्य में सनातन धर्मियों की ओर से शोर मचाया गया कि हमारे पत्र पर हमारे हस्ताक्षर हैं, आर्य समाज के पत्र पर क्यों नहीं ? इस पर आर्य समाज की ओर से उत्तर दिया गया कि—जब सभापति जी हमारे पत्र पर हस्ताक्षर करेंगे, उस समय हम भी कर देंगे। इस कोलाहल में स्वभावानुसार सनातन धर्मी पंडित कालूराम ने खड़े होकर आर्य समाज के लिए अपशब्द कहे। जिसके कारण फ़िसाद बहुत ज्यादा बढ़ जाने के कारण सभापति (श्री पण्डित श्री दत्त जी आनरेरी मजिस्ट्रेट) जी को सनातन धर्म सभा की ओर से क्षमा मांगनी पड़ी।

"पण्डित मंगल दत्त आर्य्योपदेशक"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पण्डित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

(१) यजुर्वेद अध्याय ३१ में कहा गया है—"ब्राह्मणोस्य मुखम्" इस छोटे से वाक्य में वेद ने इतनी बातें भर दी हैं। (क) जिस प्रकार मुख शरीर में सबसे ऊंचा है, इसी प्रकार ब्राह्मण समाज में सबसे ऊँचा है। (ख) जिस प्रकार मुख शीतोष्णादि द्वन्दों का संहारने वाला है, इसी प्रकार ब्राह्मण को तपस्वी होना चाहिए। (ग) जिस प्रकार मुख संपूर्ण ज्ञान का भंडार है, इसी प्रकार ब्राह्मण भी विद्या का भंडार होना चाहिए। (घ) जिस प्रकार मुख खाया हुआ भोजन पेट को दे देता है, इसी प्रकार ब्राह्मण को भी त्यागी होना चाहिए। (ङ) जिस प्रकार मुख का काम बोलना है, इस ही प्रकार ब्राह्मण का काम उपदेश देना है। इस प्रकार वेद भगवान ने इस छोटे से वाक्य में, ब्राह्मण के गुण कर्म तथा समाज में उसका पद, यह सब बातें स्पष्ट कर दी है, यही वेद की गंभीरता है।

(२) सनातन धर्मियों की ओर से इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार किया जाता है कि "ब्राह्मण विराट् पुरुष के मुख से पैदा हुआ" इसमें निम्न दोष हैं—(क) इस अर्थ से वेद मन्त्र केवल बाजीगर के तमाशे की कहानी रह जाती है, कि जैसे बाजीगर मुख से लोहे के गोले निकालता है ऐसे ही विराट पुरुष ने मुख से ब्राह्मण उगल दिए, इस उपाहासनीय कथा से संसार को क्या लाभ हो सकता है ? (ख) यदि ब्राह्मण शब्द में अपत्य-प्रत्यय माना जावे और उसका अर्थ गौण न लेकर ब्राह्मणः अपत्यम् (ब्राह्मण का बेटा) ऐसा लिया जाये तो यह मानना पड़ेगा कि विराट् पुरुष के मुख में किसी ब्राह्मण और ब्राह्मणी ने गर्भाधान किया। यह बातें महाराज जी ! न तो कोई सनातन धर्मी मानता है, और न उनके किसी पौराणिक गपोड़े में ही मिलती है। (ग) इससे पूर्व मन्त्र में, चार प्रश्न वाक्यों में चार प्रथमा विभक्ति हैं, उत्तर वाक्य में भी तीन प्रथमा है, सो एक पञ्चमी सातों को कैसे बदल सकती है ? (घ) उपक्रम में "कतिधा व्यकल्पयन्" ये शब्द पड़े हुए हैं, और मध्य में "किं पादा उच्येते" (कौन सी चीज पैर कहलाती है) ये शब्द पड़े हैं, उपसंहार में "तथा लोकान्

अकल्पयन्" शब्द पड़े हैं, जिससे सिद्ध होता है कि विराट् पुरुष कोई शरीर धारी पुरुष विशेष नहीं, किन्तु केवल एक अलंकारिक कल्पना मात्र है। (ङ) यदि जो मुख से पैदा हुआ वह ब्राह्मण कहलाया, ऐसा मान लिया जाय तो केवल वह मनुष्य ब्राह्मण माना जावेगा जो विराट् पुरुष से उत्पन्न हुआ, क्योंकि उसके पीछे कोई मुख से उत्पन्न नहीं हुआ।

(३) यजुर्वेद अध्याय २६ मन्त्र १५ में लिखा है "धियाविप्रोऽजायत" अर्थात् ब्राह्मण "धी" से पैदा हुआ। वेद के कोष निघण्टु में "धी" शब्द के दो अर्थ दिये हैं एक कर्म दूसरा बुद्धि। इससे सिद्ध होता है कि ब्राह्मण बुद्धि अथवा कर्म से पैदा होता है।

(४) जब ब्राह्मणत्व जैसा सर्वोत्तम पद बिना किसी प्रयत्न के प्राप्त हो तथा सहस्र दुराचार करने पर भी छीना न जा सके, दूसरी ओर अन्य लोग सैकड़ों प्रकार का तप करने पर भी उच्च पद न पा सकें। तो जाति में एक ओर हराम ख़ोरी पैदा हो जाती है, और दूसरी ओर निराशा, ये दोनों ही आर्य जाति के सर्वनाश का कारण बन रही है।

(५) मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक १६८ में लिखा है कि जो ब्राह्मण वेद नहीं पढ़ता वह जीते जी अपने अनुयायियों सहित शूद्र हो जाता है, और आगे अध्याय ७ श्लोक ४२ में लिखा है कि विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण हुए कुल्लुक भट्ट ने अपनी टीका में लिखा है कि विश्वामित्र इस ही जन्म में ब्राह्मण हुए न कि जन्मान्तर में।

(६) भविष्य पुराण ब्राह्म पर्व अध्याय १६ श्लोक ५८ में लिखा है कि विश्वामित्र ने बड़ा तप किया, परन्तु ब्राह्मणत्व नहीं प्राप्त हुआ, फिर प्रतिपदा के उपवास करने से उसको उसकी देह से ब्राह्मणत्व प्राप्त हुआ। ब्राह्मण पर्व में ही आगे अध्याय ४२ में लिखा है कि व्यास धींवरी से, तथा व्यास के पिता पराशर चाण्डली से, शुकदेव जी तोती से, कणाद उलूकी से, ऋषि शृंगी हिरणी से, मन्दपाल मल्लाही से, वशिष्ठ वेश्या से, माण्डव्य मेंढकी से, पैदा हुए। परन्तु अपने तप के बल से ब्राह्मण बन गए। ब्राह्म पर्व में ही अध्याय ४० श्लोक ३४ को देखिए, यथा—

तस्मान्नगोरश्व वत्कश्चिज्जाति भेदोऽस्ति देहिनाम्। कार्य शक्ति निमित्तस्तु संकेतः कृत्रिमो भवेत्॥

अर्थात्—मनुष्यों में गाय व घोड़े के समान जाति भेद नहीं है। कार्य शक्ति के निमित्त ब्राह्मण क्षत्रिय आदि संकेत "कृत्रिम" हैं।

(७) श्री मद्भागवतपुराण स्कंध ५-४-१३ में लिखा है कि राजा नाभि के सौ पुत्रों में से ८१ पुत्र कर्मों से शुद्ध होकर ब्राह्मण हो गए।

(८) भविष्य पुराण—प्रति सर्ग पर्व खंड ४ अध्याय २१ श्लोक १५ से १७ में लिखा है कि सरस्वती की आज्ञा से कण्व ऋषि ने १०,००० मलेच्छ मिश्र देश से लाकर भारत में बसाये जिनमें से २००० वैश्य बने।

पंडित अखिलानन्द जी कविरत्न—

सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ११ पृष्ठ २४६ में लिखा है कि, जाति भेद ईश्वर कृत है। मनुस्मृति में कहा है कि ब्राह्मण शूद्र नहीं होता है। बल्कि शूद्र जैसा हो जाता है। वशिष्ठ मुनि को वेश्या पुत्र कहने वाले स्वयं वेश्या पुत्र है। मनुस्मृति में लिखा है कि वशिष्ठ आदित्य ऋषियों में से थे, फिर वे वेश्या पुत्र कैसे हो सकते हैं ? वेद में प्रार्थना की गई है कि हमें ऐसा ब्राह्मण मिले जिसके पिता व दादा भी ब्राह्मण हों। आर्य समाज के वेद भाष्य में लिखा है कि, परमात्मा की मूर्खता से शूद्र उत्पन्न होता है।

पंडित बुद्धदेव जी विद्यालंकार—

(१) जाति भेद ईश्वर कृत इतने अंश में है कि ईश्वर ने ही चार वर्णों के बनाने का उपदेश किया है, परन्तु इतने अंश में मनुष्य कृत है कि कोन मनुष्य किस वर्ण के योग्य है। (यह बात सत्यार्थ प्रकाश के उस ही स्थल से पढ़कर सुना दी गई। जिस पाठ को सनातन धर्मी पंडित पढ़ते थे, वे चालाकी से इस पंक्ति को नहीं पढ़ते थे)।

(२) मनुस्मृति में शूद्रत्व शब्द है "तस्य भावस्त्वतलौ" इस सूत्र के अनुसार "त्व" प्रत्यय का अर्थ "शूद्र जैसा" कभी नहीं हो सकता।

(३) वशिष्ठ को वेश्या पुत्र हमने नहीं कहा, बल्कि भविष्य पुराण में लिखा होने के कारण आपके मतानुसार वेद व्यास जी ने कहा है। इसलिए पंडित अखिलानन्द जी की गाली कथन के अनुसार वेद व्यास जी भी वेश्या पुत्र हुए (जनता में हंसी ...)हमारी समझ में यदि कोई वेश्या पुत्र ऋषि बने तो वेश्या पुत्र होने के कारण उसके गौरव को कोई बट्टा नहीं लगता, अपितु उसका गौरव और भी बढ़ जाता है। क्योंकि यदि कोई करोड़ पति का पुत्र करोड़ पति बनें तो उसकी अपेक्षा उसका गौरव और भी अधिक होगा कि दिवालिये का पुत्र होकर करोड़ पति बने। पौराणिक पडित को इतना भी पता नहीं है कि, बालमीकी रामायण उत्तर काण्ड ५७ सर्ग के कथनानुसार वशिष्ठ एक राजा के शाप से मर कर फिर वेश्या के गर्भ से दो देवता के वीर्य से उत्पन्न हुए।

(४) हमें ऐसा ब्राह्मण मिले जिसके पिता व दादा ब्राह्मण हों, इस प्रार्थना से तो यह सिद्ध होता है कि ऐसे भी ब्राह्मण होते हैं जिनके पिता व दादा ब्राह्मण न हों। जनता में हंसी........।

नोट—

मूर्खता से शूद्र उत्पन्न होने के विषय में एक बड़ी ही मनोरंजक घटना हुई, वेद भाष्य सभापति जी के हाथ में दे दिया गया, और जब उन्होंने पढ़कर सुनाया तो वहाँ यह शब्द लिखे थे कि—"ईश्वर की सृष्टि में मूर्खत्वादि गुणों से शूद्र पैदा होता है।" इस पर जनता में तालियों की गड़गड़ाहट............।

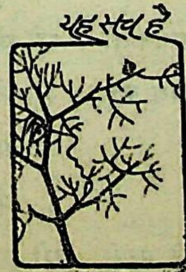
शास्त्रार्थ के अन्त में—

आर्य समाज की ओर से पंडित बुद्धदेव जी विद्यालंकार जी ने पंडित अखिलानन्द जी को ललकार कर पूछा कि आप शेष विषयों पर भी शास्त्रार्थ करेंगे या नहीं ? जिसका उत्तर उन्होंने अपने स्वभावानुसार सनातन धर्म की जय के कोलाहल के साथ दिया। और उठ कर चले गये।

इस शास्त्रार्थ में महर्षि दयानन्द जी की एक अभूतपूर्व विजय—

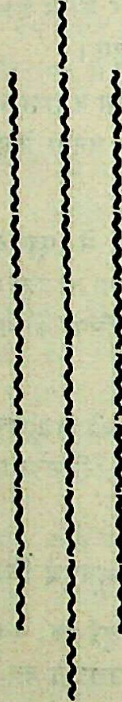
इस शास्त्रार्थ में एक मजेदार बात यह हुई कि, जब पौराणिक पंडित जी से उर्वशी नामक वेश्या के गर्भ से वशिष्ठ पैदा हुए, प्रश्न किया गया तो उनसे कोई उत्तर न बन पड़ा तो उन्होंने आर्य समाज के भाष्यों की शरण लेकर कहने लगे कि—उर्वशी का अर्थ बिजली है। और यह अर्थ सायण भाष्य में लिखा है। ऋषि दयानन्द कृत वेद भाष्यों को सायण के नाम से उपस्थित करना इस बात को सूचित करता है कि; पौराणिक मण्डल को झख मारकर ऋषि दयानन्द की शरण लेनी पड़ती है। साथ ही इससे धूर्त्तता की भी खूब कलई खुलती है। सायण भाष्य में तो स्पष्ट ही वशिष्ठ का उर्वशी नाम की अप्सरा से उत्पन्न होना और मित्रा (तरूण) नामक दो देवताओं के वीर्य से उत्पन्न होना लिखा है। जिससे उसके वेश्या होने में कोई संदेह नहीं रहता है।

इस प्रकार यह शास्त्रार्थ का आयोजन समाप्त हुआ।



पचासवां शास्त्रार्थ

स्थान : आरा (बिहार)



दिनांक : १६ जौलाई, सन् १८९१ ई०

विषय : क्या मूर्ति पूजा वेदानुकूल है ?

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थकर्त्ता : श्री पंडित तुलसी राम स्वामी जी (शर्मा)

सनातन धर्म (वैष्णव सम्प्रदाय) की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : १. श्री पंडित हीरानन्द शर्मा जी

२. श्री बाबू रामानन्द जी

३. श्री पंडित देवकी नन्दन जी आदि

आर्य समाज के मन्त्री : श्री ब्रह्मानन्द जी

सनातन धर्म सभा के मन्त्री : श्री पंडित भगवत्सहाय जी

प्रकाशकीय

सज्जनों काफी समय से पूज्य महात्मा अमर स्वामी जी महाराज मुझे कहते थे कि मेरे पास अपने ही पुस्तकालय में उर्दू में छपा हुआ एक जबलपुर का व एक मक्खनपुर का शास्त्रार्थ है, आप कुछ परिश्रम करें तो अवश्य मिल सकता है। मैंने एक-२ करके सारा पुस्तकालय ढूंढ़ मारा परन्तु वे प्राप्त नहीं हुए, ग्यारह दिन के बाद मक्खनपुर वाला शास्त्रार्थ तो मुझे मिल गया, जो श्री डा० लक्ष्मी दत्त जी आर्य मुसाफ़िर का मुसलमानों से हुआ था। अब जबलपुर वाला शास्त्रार्थ रह गया। मैंने उसके लिए जबलपुर भी लिखा वहाँ से भी कोई उत्तर नहीं आया। मैं बड़ा चिन्तित था। एक दिन अचानक मैं आयुर्वेद के ग्रन्थ देख रहा था। तो एक पुस्तक मिली जिसमें जिल्द खोलते ही लिखा था, "सत्यार्थ विवेक निरीक्षणम्" जिसका प्रकाशन काल १६०१ ई० था, मैंने मन में सोचा इस ग्रन्थ का आयुर्वेद से क्या सम्बन्ध? तो उसे अन्दर से पन्ने पलट-२ कर देखने लगा, तो बीच में एक ट्रैक्ट उसमें लगा हुआ मिला "आरा का अभूतपूर्व वृतान्त"। मैंने इस वृतान्त का बहुत बार जिक्र सुन रक्खा था, परन्तु अधिक प्राचीन होने के कारण मैंने सोच लिया था कि शायद ही वो वृतान्त मुझे कहीं मिले। उस दिन जो प्रसन्नता मुझे हुई, प्रकट नहीं कर सकता। अब वही शास्त्रार्थ आपके समक्ष है। जबलपुर का शास्त्रार्थ अभी नहीं मिला, हो सकता है वह भी कभी इसी तरह प्राप्त हो जाए। पूज्य अमर स्वामी जी महाराज का पुस्तकालय अस्त-व्यस्त अवस्था में है। उसके कई कारण है। किसी योग्य शिष्य का उनके पास न होना! आर्थिक समस्यायें!! आदि-२।

मेरा ये संकल्प है कि शास्त्रार्थ विषयक जो भी सामग्री प्राप्त होगी मैं उसे प्रकाशित करा कर जीवित कर दूंगा। इस लिए किसी भी सज्जन के पास कोई भी अप्रकाशित शास्त्रार्थ सामग्री किसी भी भाषा में मिले, वह अवश्य भेजें, मैं उन्हीं के नाम से उनका आभार प्रकट करते हुए उसे प्रकाशित करूंगा। पूज्य अमर स्वामी जी महाराज, व श्री पंडित रामचन्द्र जी देहलवी, आदि विद्वानों के शास्त्रार्थ जिनका हमारे आर्य भाइयों को ज्ञान भी नहीं हैं, वो मुझे प्राप्त हो चुके हैं। उनको भी तीसरे भाग में प्रकाशित किया जावेगा। अब आप यह छोटा सा ऐतिहासिक वृतांत पढ़िये और लाभ उठाइए!! मैंने मूल कापी को ज्यों का त्यों प्रकाशित किया है।

"सम्पादक"

शास्त्रार्थ से पहले

विदित हो कि तारीख १२ जुलाई को श्री युत पंडित तुलसी राम शर्मा, अध्यापक पाठशाला रियासत कुचेसर जिला बुलंदशहर इस (आरा) नगर में पधारे और आकर १३, १४, १५, और १६ तारीख को अनेक विषयों पर व्याख्यान दिये। किन्तु तारीख १६ के व्याख्यान में पंडित हीरानन्द जी आदि कतिपय पौराणिक पंडित भी कुछ शंका समाधान वा प्रश्नोत्तर आदि की इच्छा से आये। परन्तु पंडित तुलसी राम शर्मा के व्याख्यान को सुन, भीतर (मन) में ही कुछ समझ कर स्वयं मौन साध कर बाबू रामानन्द जी को भाषा (हिन्दी) द्वारा कुछ कथन करने को सन्नद्ध (तैयार) किया। बाबू साहब कहने लगे कि देखो भाई—"वेदों में बहुत मन्त्र मूर्ति पूजा प्रतिपादक हैं परन्तु हम उनको सभा में नहीं पढ़ते, क्योंकि हम संस्कृत नहीं जानते। और बिना इसके (संस्कृत) जाने उच्चारण अशुद्ध होगा। और अशुद्धोच्चारण में दोषापत्ति है। इत्यादि बहुत कुछ कहा। जबकि इसके पश्चात्त पंडित तुलसी राम जी उत्तर देने को खड़े हुए तो पौराणिकों ने हल्ला मचाया, और उत्तर बिना सुने खड़े होने लगे। और संस्कृतज्ञ पंडित (हीरानन्द) ने कुछ भी संस्कृत में प्रश्नोत्तर का साहस न किया, लाचार सभा विसर्जित हुई।

अगले दिन लोगों ने बहुत कोलाहल मचाया, कि शास्त्रार्थ करेंगे। परन्तु करें तो भारत के सूखे दिन ही न आ जायें! जब हरिद्वार में ही न किया जहाँ बड़े-२ पंडित आये थे, तो यहाँ वाले क्या करेंगे? अस्तु! भय के मारे प्रथम जांच के लिए एक पंडित को जो यहाँ के निवासी नहीं थे, किन्तु ग्रामान्तर के थे। श्री पंडित तुलसी राम स्वामी जी के पास भेजा, उन पंडित जी का नाम पीछे विदित हुआ कि—वह वैष्णव संप्रदाय के अधीन शेखरान्त पंडित देवकी नन्दन थे। और आते ही बोले कि—

"लशक्वतद्धिते" इत्यत्र शकारो पादानं किमर्थं सामर्थ्यश्चेवुच्यताम्॥

श्री पंडित तुलसीराम जी ने उत्तर दिया कि—

"यद्यपि भावावृशाय लिंगज्ञानाऽनभिज्ञाय 'सामर्थ्य'मिनि नपुंसके वक्तव्ये सामर्थ्यश्चेदिति पुंलिंगतया भाषमाणायेमां लब्वींशङ्कां कुर्वाणाय नोत्सहे प्रत्युत्तर मितुं यतः सुबोधेनैव शास्त्रार्थयितव्यं नाऽबोधेनेति तथापि अधीत शेखरान्तत्वस्य मानं माभूदिति कृत्वा प्रत्युत्तरयामि-सुगमेयं शंका समाधानं चापि तथाहि "लशक्वतद्धिते" इत्यत्रशकारोपादानं हि करिष्यमाणादि पदेषु जशः शीत्यादि शिदादेशेषु च इत्सञ्ज्ञार्थमन्यथेत्संज्ञा कथं बोभूयादिति"॥

नोट—

ऐसा उत्तर पाकर पण्डित देवकी नन्दन जी व्याकरण से निकल कर न्याय में चले, तब पण्डित तुलसी राम स्वामी ने पूछा कि यदि आपका नवीन न्याय पठित है तो अवच्छेदक अथवा अवच्छिन्न शब्द का तात्पर्य कहिये। जब इन शब्दों पर पण्डित देवकी नन्दन जी ने बोलना पसन्द न किया, तब पंडित तुलसी राम जी ने कहा कि—यदि आपको गौतम कृत सूत्रों में (न्याय में) कुछ पूछना हो तो पूछिये—

पण्डित देवकी नन्दन जी ने गौतम सूत्रों में तो कुछ न पूछा, परन्तु भागवत के दशम् स्कन्द का श्लोक—"ब्रह्मन् ब्राह्मण्य निर्देश्ये…………….." पढ़ कर बोले! देखो-श्रुति में लिखा कि, निर्गुणोपासना नहीं कर सकते, इस लिए सगुणोपासना कर्त्तव्य है। पण्डित तुलसी राम जी ने कहा कि—जो श्रुति आप बोलते हैं वह तो हमारे याद है कि भागवत के दशम स्कन्द का श्लोक है, वह भला कभी श्रुति हो सकता है? तथा आपके पक्ष की पुष्टि इसके अर्थ से नहीं होती, ईश्वर अपने सर्वशक्तिमत्वादि गुणों से सगुण तथा जरा-मरण-शोक-जन्म-दुःख आदि से रहित होने से निर्गुण भी कहाता है। इस पर पंडित देवकी नन्दन जी बोले कि जब शरीरी नहीं तो सगुण कैसे होगा? पंडित तुलसी राम जी ने उत्तर दिया कि—जैसे आकाश शब्द गुण विशिष्ठ है परन्तु शरीरी नहीं, ऐसे ही जानो। पंडित देवकी नन्द जी बोले कि—आकाश के भी होने में अनुमान हैं, क्योंकि वह सगुण हैं, पंडित तुलसी राम जी ने उत्तर दिया कि – धन्य हो! अनुमान आप के कथन मात्र से है अथवा किसी हेतु से? आपकी वही प्रतिज्ञा है और हेतु भी वही है। आप क्यों न्याय शास्त्र की धूल करते हैं? इस पर पंडित देवकी नन्दन जी उठ खड़े हुए और पौराणिक मण्डली में जाकर कहा कि— जब तक कोई पंडित काशी आदि से न आवे तब तक यहाँ का कोई वैय्याकरण अथवा नैयायिक उस आर्य पंडित से शास्त्रार्थ नहीं कर सकता। वह कोई मामूली पंडित नहीं है॥

इसके पश्चात पंडित हीरानन्द जी की ओट में होकर सारे पौराणिक मण्डल ने शास्त्रार्थ का निश्चय किया, और नियम तय करके १८-७-९१ को समय निश्चित कर दिया। जिसमें विशेष नियम यह था कि शास्त्रार्थ संस्कृत में एवं लिखित रूप से होगा! जनता को केवल उसकी भाषा बना कर सुना दी जाया करेगी।

(मूल प्रति से उद्धृत)

अब आप यह मूल पत्र व भाष्य देखिए! समझिए!! और निर्णय करिए!!!

"ब्रह्मानन्द मन्त्री—आर्य समाज आरा"
—"सम्पादक"

शास्त्रार्थ आरम्भ

श्री पंडित हीरानंद जी शर्मा

१८-७-९१

॥ श्री श्री विजयतेतराम् ॥

इदानीन्तन काले ये केचित्परमेश्वरादि मूर्त्ति पूजन बहिर्मुखा वस्तुतस्त्वनार्य्याश्किन्त्वार्य्य मानिनस्तेषां श्रुति-स्मृति विरुद्धां प्रज्ञां धिग्धिगिति मन्यामहे यतो वेद विहितो धर्म्मस्तद्विरुद्धोऽधर्म्मस्तथा च वेदस्य पुरुषोत्तमस्य निश्वासतो जनिर्ज्ञायते तथा च पुरुषोत्तमस्य नाभिपङ्कनादब्रह्मणोऽपि जनिश्श्रूयते तेनैव परमेश्वरेण ब्रह्मा वेदाँल्लब्धवान् तथा च श्रुतिः यो ब्राह्मणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै इत्याद्याश्श्रुतय ईश्वरम्मूर्त्तिमत्त्वम्प्रतिपादयन्ति तथा च स्मृतिरपि प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती वितन्वताजस्य सतीं स्मृति हृदीत्यादि तथान्या श्रुतिरेकोऽहं बहुस्यामित्यादि कथनेऽहङ्कारस्य निष्ठा मूर्त्तिमत्त्वे घटेत नत्वमूर्त्तिमत्त्वे तथा च स्मृतिरपि एक एव ही विश्वात्मा भूते भूते व्यवस्थितः । एकधा बहुधा चैव दृश्यते जल चन्द्रवत् । तथान्या श्रुति-"ब्राह्मणोस्य मुखमासीतेत्यादि कथने मुखस्य निष्ठा मूर्त्तिमत्त्वे घटेत नत्व मूर्त्तिमत्त्वे। तथा च "सहस्त्रशीर्षा पुरुषस्सहस्त्रा-क्षस्सहस्त्रपादिरत्याद्युपनिषद्वाक्यैर्मूर्त्तिमत्त्वमायाति । अग्रे किम्बहुनालापेन वेदस्य षड़गंत्वात्षट् शास्त्राण्यपि वेदांगानि प्रसिद्धानि तेष्वपिमूर्त्तिपूजादिलक्षणं द्रष्टव्यमिति। अग्रे ये नास्तिका अनार्य्या आर्य्यमानिनोधूर्त्ताः परवञ्चनपरास्ते नियतदिवसे विद्वत्सभायां स्वबलपौरुषम् दर्शयन्तु। एतदर्थ-मिदानीम्विज्ञापन पत्रं रचित मित्यलम् ॥

"सम्मतिरत्र हीरा पण्डितशर्म्मणः"

भावार्थ—

आजकल जो लोग कि, परमेश्वरादि मूर्त्ति पूजा के विरुद्ध हैं, वे वास्तव में अनार्य हैं। किन्तु अपने को आर्य्य मानते हैं। हम उनकी श्रुति स्मृति-विरुद्ध बुद्धि को धिक्कार मानते हैं। धर्माऽधर्म का ज्ञान वेद से होता हैं, और वेद परमेश्वर के श्वास से उत्पन्न हुए, और ईश्वर की नाभि से ब्रह्मा हुए। उसी से ब्रह्मा ने वेद पाये। "यो ब्रह्माण विदधा........" इत्यादि श्रुतियां (वास्तव में श्रुति नहीं है उपनिषद हैं) ईश्वर को मूर्त्ति प्रतिपादन करती है। ऐसे ही "एकोऽहं बहुस्याम्........" इत्यादि श्रुति वाक्यों में अहंकार मूर्त्त में घट सकता है। न कि अमूर्त्त में। तथा "एक एव हि वि........." यह स्मृति भी यही सिद्ध कर सकती है। तथा "ब्राह्मणोस्य मुखमासीत्..... ......" इत्यादि श्रुति वाक्य में मुख की निष्ठा, मूर्त्त में हो सकती है न कि अमूर्त्त में। तथा "सहस्त्रशीर्षा........" इत्यादि उपनिषद वाक्यों से—(बीच में ही श्री पंडित तुलसी राम जी ने कहा)।

श्री पंडित तुलसी राम स्वामी जी—

वाह ! वाह!! ऊपर पहले तो उपनिषद को श्रुति लिखा अब श्रुति को उपनिषद कहते हैं, भाईयो ! विदित होता है कि पण्डित जी ने वेदों का दर्शन भी नहीं किया। अर्थ सहित पठित होना और तदनुसार शास्त्रार्थ करना तो दूसरी बात है। यद्यपि हम नहीं चाहते कि पत्रों की अशुद्धियों पर कुछ बात कहें परन्तु दिग्दर्शन मात्र इनका वैया-करणत्व तो देखिए कि—"वस्तुतस्त्वनार्य्याश्किन्त्वार्य्य........" यहाँ मूर्धन्य षकारादेश तथा श्रुयते यहाँ ह्रस्व उकार तथा परमेश्वरेण ब्रह्मा........यहाँ उपादान में तृतीय तथा ईश्वरम्मूर्तिमत्त्वं..... यहाँ ईश्वर शब्द से द्वितीया षष्ठयर्थे तथा मुखमासीतेत्यादि में आसीत् के स्थान में सस्वर आसीत् तथा अनुस्वार को परसवर्ण भी अनेक स्थलों में चिन्त्य है। और हाँ ! यो ब्रह्मणं........इस उपनिषद वाक्य को श्रुति का वाक्य कहते हैं तथा सहस्त्रशीर्षा........श्रुति वाक्य को उपनिषद कहते हैं, सज्जनों ! ऐसे ही वेद वेत्ता वेदों में मूर्ति पूजा सिद्ध करने का यत्न करने चले हैं। (सभी सभा में सन्नाटा छा गया, एवं पौराणिक पंडित का चेहरा पीला पड़ गया)।

श्री पंडित हीरानंद जी शर्मा—

सज्जनों ! आपको इस तरह की बातें करके बहकाया जा रहा है। श्रुति वाक्य में……………………

(बीच में ही श्री पंडित तुलसी राम जी ने यजुर्वेद देते हुए कहा कि देखिए भाइयो…………) इसी बीच पंडित हीरानन्द जी बोले—कि यह कोई बड़ी भारी गल्ती नहीं है। मूल-चक तो हो सकती है ……जनता में हँसी और तालियों की गड़गड़ाहट…… पुन: पंडित हीरानन्द जी बोलने खड़े हुए हां ! तो सज्जनों !! मैं कह रहा था, कि श्रुति वाक्य में मुख की निष्ठा, मूर्त्त में हो सकती है, न कि अमूर्त्त में। तथा इस प्रकार श्रुति वाक्यों से भी मूर्त्त होना सिद्ध है। कहां तक कहें कि वेदों के अंग छः शास्त्रों में भी मूर्त्ति पूजा आदि लक्षण देखना चाहिए। आगे जो नास्तिक आर्याभिमानी, अनार्य्य और दूसरों के बहकाने वा ठगने वाले हैं, वे अपनी शक्ति का प्रदर्शन करें। इति—

श्री पंडित तुलसी राम स्वामी जी—

॥ ओ३म ॥

आरा

१९ जौलाई सन् १८९१ ई०

ये केचनेह जगति सच्चिदानन्दादिलक्षणलक्षितं परमात्मानं वेदविरुद्धान्स्वकपोलकल्पितेतिहासपुराणाभासान् वेदानुकूलान्मन्यमाना मूर्तिमन्तं मन्यन्ते तेषां तत्तद्ग्रन्थानुसृतपाषण्डमतध्वंसनाय तत्प्रेषित पत्रस्याद उत्तरमाविष्क्रि्ते-- यद्भवद्भि: प्रमाणभूतां कामपि श्रुतिं स्मृतिं वाऽविन्यस्यं-वाऽलेखि "वेदस्य पुरुषोत्तमस्य नि:श्वासतो जनिर्ज्ञायते तथा च पुरूषोत्तमस्य नाभिपङ्कजाद् ब्राह्मणोऽपि जनिश्श्रूयत" इति च चाऽग्रे "यो ब्रह्माणं विदधाती" त्याद्युपनिषदुल्लिखिता सा तु न श्री मतां पक्ष पोषणक्षमा, यतस्तस्यां ब्रह्मा पुरूषोत्तमस्य नाभिपङ्कजादुत्पन्न इत्यक्षरमात्रमपि न दृश्यतेऽत एवान्यभुक्तमन्यद्वान्तमितिवदेव भवद भाषणमुपेक्ष्यते। अग्रेपि च "प्रचोदिते" त्यादि भागवतस्थश्लोकार्धो नैनमभिप्रायं पुष्यति तस्यापि तदर्थपरत्वाभावादिति। अहंकारस्य निष्ठा मूर्तिमन्वे घटेतेत्यत्रापि प्रमाणाभाव: एव ब्राह्मणोस्य मुख-मासीदित्यादावपि निराकारत्व प्रतिपादक मन्त्र विरोधात् न भवदभिप्रेतार्थस्साधुर्मुखादासीदित्यदर्शनाच्च। एव मेव सहस्त्रशीर्षेत्यत्रापि तन्मन्त्रपराऽर्धे सभूमिंयंसर्वतस्स्पृत्वेत्यादितो विरोधापत्तेरियत्तावत: सर्वं भूमिस्पर्शनाशक्यत्वात्। अग्रे या कुवाचोऽपशब्दाश्च ये विन्यस्ता: खलु भवद्भिर्न तत्तदुत्तरयितुमुत्सहामहे यतो-ददतु ददतु गालीर्गालिमन्तो भवन्तो वयमिह तदभावान्नैव दातुं समर्था:। जगति विदितमेतद्दीयते विद्यमान नहि शशकविषाणं कोपि कस्मै ददातीति। अथ च परस्परमाभिमुख्येन शास्त्रार्थंयिदा चेत्तर्हि नियमान्स्थानम् प्रवन्ध कर्त्तारञ्च प्राप्ताधिकारं राजपुरूषं "मजिस्ट्रेट" इत्यभिधं स्वप्रवन्धेनैव नियोज्यतां वयं केवलं शास्त्रार्थं करिष्यामो नाऽन्यत्प्रबन्धकर्तृनियोजनादि इति शम्॥

हस्ताक्षर : "तुलसीराम शर्म्मण:"

भावार्थ—

जो लोग कि वेद विरुद्ध, अपने रचित इतिहास व पुराणादि को वेदानुकूल मानते हुए, सच्चिदानन्ददादि लक्षणों वाले ईश्वर को मूर्त्ति मान् मानते हैं, उनके उन-उन ग्रन्थों से प्रचरित पाषण्डमत के खण्डनार्थ उनके भेजे पत्र का उत्तर दिया जाता है—

आपने ईश्वर के श्वास से वेद, और नाभि से ब्रह्मा की उत्पत्ति लिखी परन्तु इसमें कोई श्रुति वा स्मृति का प्रमाण नहीं लिखा और "यो ब्रह्माणं वि……" इस से भी आपका पक्ष सिद्ध नहीं होता वैसे भी यह श्रुति नहीं बल्कि उपनिषद का वचन है। नाभि से उत्पत्ति का अक्षर मात्र भी उसमें नहीं आया, इस लिए महाभाष्य का यह लेख मात्र उपहास योग्य है, कि "अन्यद्भुक्तमन्यद्वान्तम्" अर्थात् प्रतिज्ञा कुछ और प्रमाण कुछ और खैर ! आपने उपनिषद को तो श्रुति कहा ही था, आगे भागवत् के आधे श्लोक को स्मृति कहा है। उस श्लोक का भी यह अर्थ नहीं कि—नाभि से ब्रह्म हुए। बल्कि नाभि शब्द तक उसमें नहीं आया है। यह जो लिखा कि अहंकार मूर्त्त में ही रहता है। इसमें भी कोई प्रमाण न्याय आदि का नहीं दिया, "ब्राह्मणोस्य मुखमासीत्……… ‥" इसका भी यह अर्थ नहीं कि ब्राह्मण मुख से हुए क्योंकि "मुखात्" ऐसे पद वहां नहीं, यदि किसी क्लिष्ट कल्पना से यह अर्थ किया भी जायेगा तो निराकार प्रति-

पादक वेदों के अन्य मन्त्रों से परस्पर विरोध आवेगा सहस्त्रशीर्षा........" इसका भी यदि आपका अर्थ माना जावे तो "स भूमि ँ सर्वं........" इस उसी मन्त्र के उत्तरार्द्ध से विरोध आवेगा क्योंकि जो परिमित है वह व्यापक नहीं हो सकता और जब कि उत्तरार्द्ध मन्त्र में व्यापकत्व है। तो पूर्वार्द्ध में परिमितत्व कैसे ठीक होगा, वेदों के अर्थ समझने को बुद्धि चाहिये। कि कहीं परस्पर विरोधादि दोष न आ जाय। और अशुद्धियों तथा गालियों का "अनार्य्य, धूर्त्त, ठग इत्यादि का" उत्तर तो हम क्षमा करके नहीं देते, क्योंकि "नीतिनिन्दतु........." में लिखा है कि जो जिसके पास होता है सो ही देता है। शश शृंग तो कोई किसी को नहीं देता, इसलिए आप गालियाँ दें, परन्तु हमारे पास तो शास्त्रीय प्रमाण वा युक्ति के अतिरिक्त गाली एक भी नहीं! दे कहाँ से? यदि सम्मुख होकर (मौखिक रूप से) शास्त्रार्थ की इच्छा हो तो नियम, स्थान और प्राप्ताधिकार राज पुरुष मजिस्ट्रेट को प्रवन्धकर्त्ता नियत कीजिए। हम केवल शास्त्रार्थ करेंगे। ॥ इति ॥

श्री पंडित हीरानंद जी शर्मा—

"राम०"

श्री मते रामानुजाय नमः २०-७-६१

भावत्कवरविरचितपत्रं न सुशोभनं यस्मिन्नैवं लिखित्वा प्रेषितन्तदुच्यते तेषान्तत्तद्ग्रन्थानुसृतपाषण्डमत-ध्वंसनाय तत्प्रेषित पत्रस्यादउत्तरमाविष्क्रियते इति त्वदीय पत्रे या संस्कृतावली सा अशुद्धतरा तदुच्यते पातञ्जलिना पाषडेति पदं क्व लिखितन्तद्दर्शय मन्मानसे त्वितथम्प्रतिभाति भवान्भाष्यार्थविदुषाम्मन्यसे स्वं शिरोमणिम्। अतो निर्भय-नायन्नो दूरदेशं समागतस्तन्नमन्तःपरम्। यतस्त्वत्स दृशो जन एकां लज्जां परित्यज्य त्रैलोक्यविजयीभवेदिति लोके प्रसिद्धम् विचारदृष्ट्या भवानेव पाषण्डपथाश्रितो न तु वयन्तथा च भवता यल्लिखितम्पत्रे यो ब्रह्माणं बिदधातित्याद्युपनिषदुल्लि-खिता सा तु न श्री मोतां पक्ष पोषण क्षमा मत्प्रार्थनया मत्पूर्वं प्रेषितपत्रम्पुनर्द्रष्टव्यम् यो ब्रह्माणाम्विदधाति पूर्वमित्यत्र श्रुतावुपनिषत्पदन्नालेखि किन्तु सहस्त्रशीर्षेत्यादिविषये ह्युपनिषत्पदम्व्यलेखि तथा च कप्यास पुण्डरीकाक्षेणत्वया सम्यङ्-नार्दाश इति मन्मनो मन्यते तथा च भवता पत्रेयद्विलिखितं ब्रह्मा पुरूषोत्तमस्य नाभिपङ्कजादुत्पन्न इत्यक्षर—मात्रमपि न दृश्यते तत्सत्यं तत्र हेतुस्साक्षात्स्वमेव वेदावतारोऽसि तथापि स्वनिष्ठज्ञान जन्यपदार्थं न वेत्सि यथा कश्चिन्नादर्शम्विना स्वशरीर स्थमपि नेत्रं न पश्यति तद्वद्भवान् नुमीयते। अथ च पत्र कुत्रापि श्रुतावजशब्दस्य पोठा दृश्यते तस्यायमर्थो ज्ञातव्य आद्वासुदेवाज्जायते इत्यजो ब्रह्मा अकारो वासुदेवश्चेत्यभिधानात् कुत्रचिदजशब्देन परमेश्वरस्य बोधो जायते तथा च अन्यद्भुषतमन्यद्वान्तमिति वृत्त्वं त्वयि समक्षं घटते नत्वस्मदादिषु तथा मन्त्र शब्दस्य पाठो वेदविहितस्तत्र वेदस्यैव प्रामाण्यता वेदनिष्ठ मन्त्रस्याप्रामाणयता इत्यत्र किम्प्रमाणका श्रुतिर्वदति तद्विचार्यारम्प्रेषणीयम्। तथा च सुखेन मन्यते वेदं हृदि तस्यैव खण्डनम्। अतस्त्वाधमनुसृत्य भजस्व रघुनन्दनम् ॥१॥ नो चेद्यमभटास्त्वां वै ताडयिष्यन्त्यसंशयः। ततो लज्जाम्परित्यज्य भजस्व रघुनन्दनम् ॥२॥ लोकस्य लज्जया किं स्याद्यतोऽधर्म्मः प्रणश्यति। इति मत्वा सुबुद्धे भजस्व रघुनन्दनम् ॥३॥ उदरम्भरणार्थाय धर्म्मं त्यजसि वै मृषा। इति ज्ञात्वा स्थिरी भूत्वा भजस्व रघुनन्दनम् ॥४॥ यत्रस्य लेखने श्रद्धा यदिस्यात्तव मानसे। नेत्रद्वयं तद रामात्प्रार्थनीयं पुनः पुनः ॥५॥ यैराहूतो भवानत्र धर्म्ममूर्त्तिस्सनातः। ते सभांकर्त्तुमुद्युक्ता भवन्त्विह सुमेधसः ॥६॥ इत्यलम्!

"पाषण्डमतोच्छेदक विद्वद्वर हीरानन्दपण्डितशर्म्मणः"

भाषार्थ—

तुम्हारी चिट्ठी ठीक नहीं क्योंकि "पाषाण्ड......" यह संस्कृतावली अशुद्ध है, बताओ पांतञ्जली ने भाष्य में "पाषाण्ड" शब्द कहां लिखा है? आप अपने को भाष्य वेत्ताओं का शिरोमणी समझ कर दूर देश में आकर निर्भय हो गया है ऐसा मत मान। तुझसा मनुष्य एक लज्जा को उतार कर त्रिलोक विजयी हो जावे। विचार दृष्टि से तो आपका ही पाषण्ड मत है न कि हमारा। और आपने जो "यो ब्रह्माणं........" इसको उपनिषद लिखा है, सो हमारा पत्र फिर देखो कि हमने "यो ब्रह्माणं ...." को श्रुति और सहस्त्रशीर्षा........" को उपनिषद लिखा है। तुझ कप्पास पुण्डरीकाक्ष ने अच्छे प्रकार नही देखा। यह जो लिखा कि ब्रह्मा के, नाभि से उत्पन्न होने को एक

अक्षर मात्र से भी "श्रुति" का आशय नहीं, सो ठीक है। उसमें कारण तू ही साक्षात् वेदों का अवतार है। तो भी अपने ज्ञान जन्य पदार्थ को नहीं जानता जैसे कोई नहीं अपने में के शरीरस्थ नेत्र को भी नहीं देखता ऐसे ही आपका हाल है। श्रुतियों में जहाँ तहाँ ब्रह्मा को "अज" कहा है जिसका अर्थ यह है कि "अ" अर्थात् वासुदेव से जो उत्पन्न हुआ सो "अज" अर्थात् ब्रह्मा एकाक्षर कोश के प्रमाण से कहीं-२ अज शब्द ईश्वर वाचक भी है। महाभाष्य का उपहास तुझ पर घटता है। हम पर नहीं, मन्त्र का पाठ तो वेद ही का है, फिर वेद को मानना और उसके मन्त्र को न मानना इसमें कौन श्रुति प्रमाण है? सो विचार कर पत्र भेजना॥ "श्लोकार्थ"—तू केवल मुख से वेद को मानता है, परन्तु हृदय में उसी का खण्डन करता है। इससे अपने पाप को स्मरण करके राम को भज! ॥१॥ नहीं तो यमदूत तुझे निस्सन्देह ताड़ेंगे इससे लज्जा छोड़ राम को भज ॥२॥ लोक लज्जा से क्या जिससे धर्म का नाश होता है। हे सुदुर्बुद्धे! ऐसा समझ कर राम को भज ॥३॥ तू वृथा पेट के कारण धर्म को छोड़ता है, स्थिर होकर राम को भज ॥४॥ यदि तेरे मन में पत्र लिखने की है तो राम से बार-बार दो नेत्र मांग ॥५॥ जिन्होंने तुझ सनातन धर्म मूर्त्ति को यहाँ बुलाया है वे सभा को उद्यत होवें॥ इत्यलम्!

नोट—

इस पत्र को सुन कर सभा में भयंकर रोष पैदा हुआ, पौराणिकों ने भी इसे अच्छा नहीं समझा। एक पौराणिक ने सभा में खड़े होकर कहा, पंडित जी महाराज! कुछ भी हो, ये पंडित जी भी हमारे अतिथि हैं, हमें इनका इस प्रकार अपमान नहीं करना चाहिये! "बीच में ही पंडित तुलसी राम शर्मा जी ने खड़े होकर कहा—

श्री पंडित तुलसी राम स्वामी जी—

सज्जनों! आप दुखी न होवो, जिसके पास जो होता है वह वही देता है। मैंने पहले भी इस बात को कहा था, अब इनके पत्र में देखो! "आप तो "पतञ्जलि" को "पातञ्जलि" लिखना अशुद्ध नहीं समझते, और यदि हमारे पत्र में "पाषण्ड" का "पाखण्ड" अर्थात् लेख भ्रम से एक रेखा अधिक खिंच गई तो ऐसे कूदे! ओहो!! बड़ी अशुद्धि निकाली, परन्तु महात्मा जी अपने पत्रों की बड़ी-बड़ी स्थूल व्याकरण की अशुद्धियाँ जिनको हमने संस्कृत पत्रों के नोट में लिखा है समाधान तो करना था!! दूसरे धन्य हो आप जो इस पत्र में अपनी भूल को फिर से दृढ़ करते हो कि हां हमने "यो ब्रह्माणं ...." इस उपनिषद को श्रुति तथा "सहस्त्रशीर्षा......" इस यजुर्वेद मन्त्र को उपनिषद लिखा था। भला श्रोता गण क्या आपको विश्वास होता है कि इन लोगों ने कभी वेदों का दर्शन भी किया है? तिस पर आर्य्यों से शास्त्रार्थ! इन्होंने पहले तो उपनिषद को श्रुति लिखा खैर,!! उससे भी ईश्वर की नाभि का नाम निकला, फिर जहाँ "अज" शब्द ब्रह्मा का वाचक बतलाया तिस पर एकाक्षर कोष के प्रमाण से सिद्ध किया तब भी ईश्वर की नाभि का वर्णन "अज" शब्द में नहीं आया! श्रोताओं अब आप ही स्वयं सोचो कि इससे अधिक परास्त होना किसे कहते हैं? और फिर इनका तो गीत ही निराला है, भाईयों! हमने कब कहा है कि हम वेद मन्त्र को नहीं मानते? हमारे पत्रों को पुन: पढ़ कर देख लो। जबकि इनका कहना है कि वेद को मानना, परन्तु वेद मन्त्र को न मानना। वाह! वाह!! क्या कहें इनकी बुद्धि को?

॥ ओ३म् ॥

भो भोः पौराणिका! आरा

२१-७-१८९१ ई०

यदुक्तमस्मान्प्रतिभवान्भाष्यार्थविदुषाशिरोमणिरित्यादितस्तथास्तु—परमस्माभिः कृतानां प्रतिवादानामुत्तराण्यददाना भवन्तो निरुत्तरीभूताः परास्ता इत्यसंशयं विदुषाम्। "श्लोका"—अधीतशेखरान्ताऽस्त्वच्छास्त्रार्थमेव नोद्यताः। व्याकरणस्याऽनभिज्ञानांका कथास्ति भवादृशाम् ॥१॥ प्रतिवादः कृतो यासामशक्तीनां भवतां मया। न ता उद्धृत्य गच्छन्ति मृषा निर्लज्जतां गताः ॥२॥ अशुद्धानि तुवर्त्तन्ते भवच्छ दपादनि च। परंतूपेक्षणं दृष्ट्वा मृषा यूयं प्रगर्विताः ॥३॥ श्रयते श्रयते यत्रासीतेत्यासीविति स्थितौ। भवदीयेति भावत्कपदादीन्यशुभानि हि ॥४॥ स्पष्टा यमभटा यूयं प्रत्यक्षा दृष्टीगोचराः। साधुभिर्मो नमास्येयं ताडकेषु भवत्सु वै ॥५॥ परन्तु ये नरावरा भवादृशाः सुपण्डिताः। समीक्ष्यते न

तैर्नरैर्वरैः स्वकार्य्यं साधने ॥६॥ पाडित्यं भवतां प्रशंस्यमनिशं ज्ञातं मया तत्त्वतो, मैरत्यन्तकुवाच्यवर्षणपरैर्लज्जोज्भयतें दूरतः। नेरानी वयमुत्सहामह इति व्यर्थं भवदभाषणम्, आश्चर्यन्त्विदमेव मन्मनसि यद्विद्वज्जना ईदृशाः ॥७॥

"ससंभतिरत्र तुलसी राम शर्म्मण"

भाषार्थ—

भो भोः पौराणिकाः !

आपने जो हमको भाष्य वेत्ताओं का शिरोमणि'''इत्यादि लिखा, सो ऐसे ही सही ! परन्तु हमने आपके जिन पक्षों का खण्डन किया था, उनमें से एक का भी समाधान "सिवाय गाली प्रदान" के आपने नहीं किया, तब विद्वान लोगों में तो निस्संदेह आप निरुत्तर होकर परास्त हो गये। "श्लोकार्थ"—जबकि शेखरान्त व्याकरण पढ़ें पंडित ही शास्त्रार्थ को उद्यत नहीं हुए तो आपसे व्याकरण वेत्ताओं की तो बात ही क्या है ? ।१॥ आपकी जिन उक्तियों का मैंने खण्डन किया था, बिना ही उनका समाधान किये आप गर्जते हैं तो कहिये लज्जा से दूर है वा नहीं ? ॥२॥ आपके पत्रों के पद तो अशुद्ध हैं ही परन्तु (हमारी ओर से) उपेक्षा देख कर आपको गर्व हो गया ? ॥३॥ श्रुयते, आसीत और भावत्क आदि पद अशुद्ध हैं, किंतु श्रूयते, आसीत्, भवदीय, इत्यादि पद होने चाहिये ॥४॥ (यह जो लिखा कि यमदूत तुझे ताड़ना करेंगे) सो ताड़ना करने को तो आप लोग प्रत्यक्ष ही हैं कि जनके सामने सत्पुरुषों को मौन ही श्रेष्ठ है ॥५॥ "जनता में हंसी''''''" परन्तु जो महात्मा आपके समान पण्डित हैं वे स्वार्थ साधन में तत्पर हैं, और नहीं देखते ॥६॥ आपका पाण्डित्य जो रात दिन-प्रशंशा करने योग्य है, मैंने अच्छे प्रकार जान लिया, जो कि आपने अत्यन्त गाली वर्षा में तत्पर होकर लज्जा को दूर छोड़ दिया है। अब आपके साथ भाषण करना व्यर्थ है, किंतु आश्चर्य यह है कि पंडितों की जब यह दशा है ! (मूर्खों का तो कहना ही क्या है ?) ॥७॥

"तुलसी राम शर्मा"

श्री पंडित हीरानंद जी शर्मा—

श्री सच्चिदानन्दविग्रहो रामः शं सन्तनोतुतराम् ॥

भवदीयेतिभावत्कपदं सिद्ध्यति तद्धिते। तद्ज्ञानार्थं गुरोः पादपंकजं समुपैहि भोः ॥१॥ एतावच्चेन जानासि का कथा भाष्यदर्शने। अतस्तिरस्कृतो विद्भिश्शेखरज्ञैर्दयालुभिः ॥२॥ यद्यशुद्धतरं दृष्टं पदम्पत्रविनिर्मितम्। प्रमाणन्तत्र वक्तव्यंकपोलकथनञ्विना ॥३॥ कर प्रोत्साहितो वालो बालोमातुरग्रे प्रनृत्यति। तथानार्य्यसभामध्ये गात्रं धुन्वन्प्रनृत्यसि ॥४॥ अंगीकृतं स्ववक्त्रेण स्वंनयं मत्पराभवं। नोचेद्वराटिका मात्रन्नैव दास्यन्त्यनार्य्यकाः ॥५॥ वेदो निष्ठा समज्यायां हृदी पैगम्बर दृढ़ा। ज्ञायते तव चास्माभिः क्षुधा नः किंकरिष्यसिं ॥६॥ वने जालं सञ्चितय व्याधो गृह्णाति पाक्षिणः। तथा त्वामभिजानीमः काग रूपं समागतम् ॥७॥ काकः काकस्य जानाति वाचं हृद्यां मनोहराम (काकवागनभिज्ञश्चेदहमत्र किमद्भुतम् ॥८॥ पञ्चाननस्य का कीर्त्तिर्मार्जारस्य निपातने। द्वयोर्बलंको प्रसिद्धमज्ञाः सुज्ञा विदन्ति वै ॥९॥

"संमतिरत्र दुर्ज्जनमुखध्वंसकहीरानन्द शर्मणः"

भाषार्थ—

श्री सच्चिदानन्द विग्रहो रामः शं सन्तनोतुतराम ॥

भवदीय के स्थान में भावत्क पद, तद्धित में सिद्ध होता है। उसके समझने को गुरु चरणों में जा ॥१॥ जब इतना ही नहीं जानता तो भाष्य क्या देखा होगा ? इसलिये शेखरज्ञ दयालु पण्डितों ने तिरस्कार किया ॥२॥ यदि हमारे पत्र में अशुद्ध पद देखें हैं तो कपोल कथन को छोड़ कर उसमें प्रमाण देना चाहिए ॥३॥ जिस-२ सूत्र से जो-२ पद सिद्ध नहीं होता उस-२ का दूषण देना कपोल कथन को छोड़ कर ॥४॥ जैसे माता हाथ बजाती है और बालक नाचता है वैसे तू अनार्य्यों की सभा में शरीर धुन कर नाचता है ॥५॥ अपने मुख से अपना जय और मेरा पराजय मान लिया। नहीं तो अनार्य्य लोग एक कौड़ी नहीं देगें, ॥६॥ सभा में वेद पर और मन में पैगम्बर पर तेरी दृढ़ निष्ठा को हम जानते हैं,

क्रोध में हमारा क्या करेगा ? ॥७॥ वन में जाल फैलाकर व्याध, पक्षियों को पकड़ता है। ऐसे ही काक रूपी तुझको आया हुआ हम जानते हैं ॥८॥ काक की मनोहर वाणी को काक ही जानता है। यदि में काक भाषा को न समझूं तो क्या आश्चर्य है ? ॥९॥ बिल्ली को गिराने में सिंह की क्या कीर्ति है ? दोनों का बल सबको विदित है ॥१०॥

"संमतिरत्र गुर्जनसुरवध्वंसक हीरानन्द शर्मण:"

नोट—

इस पत्र को पाठकगण विचारें कि जिन-२ पदो को हमारे पंडित जी ने अशुद्ध ठहराया था, उन पर सिद्धि के सूत्र वे लिखें या हम ? सफाई के गवाह तो मुद्दयी से कहीं नहीं मांगे जाते !—आपके तो अशुद्ध ! और प्रमाण हम दें !! धन्य हो !!! इस पत्र को लेकर "शास्त्रार्थ कमेटी" आर्य समाज आरा ने विचार किया कि—शास्त्रार्थ तो वास्तव में हो चुका, अब गाली गलोच का उत्तर हमारे पास क्या है ? अत: श्री पंडित तुलसी राम शर्मा के कुचेसर से बुलाने का प्रयोजन यथा सम्भव सिद्ध हो गया, अब पंडित जी को "दानापुर" नगर में भी हो आना चाहिए, यह भी विचारा गया कि कदाचित् पौराणिक लोग पण्डित जी के चले जाने पर चेतें तो अच्छा हो !—महाशय ! ऐसा ही हुआ कि—पंडित जी "दानापुर" पहुँचे और पौराणिक लोग "गेहेशूर" की भांति चट्ट सभा करके कहने लगे कि "आर्य्य पंडित भाग गया" ॥ महाशयों ! हम तो यही चाहते थे कि—किसी प्रकार ये चेतें—सो पण्डित तुलसी राम शर्मा जी दानापुर से फिर आये और हमने फिर नोटिस दिया कि—

नोटिस आर्य समाज की ओर से—

॥ विज्ञापन नोटिस ॥

आर्य समाज-आरा
२७-७-१८९१ ई०

"विदित हो कि श्री पंडित तुलसी राम स्वामी जी के दानापुर चले जाने पर पौराणिकों ने जो हल्ला मचाया था जि "पण्डित जी भाग गये"। यद्यपि पंडित जी दस दिन तक रहे और किसी पौराणिक ने चूं तक नहीं की-किन्तु यह सुनकर पंडित जी पुन: आरा में आये हैं' अब यदि आज सायं काल तक दो व्यक्ति आकर शास्त्रार्थ के नियम स्थिर न करेंगे तो पंडित जी अधिक नहीं ठहरेंगे। और पौराणिक परास्त समझे जायेंगे। इति—

"ब्रह्मानन्द"
मन्त्री—आर्य समाज "आरा"

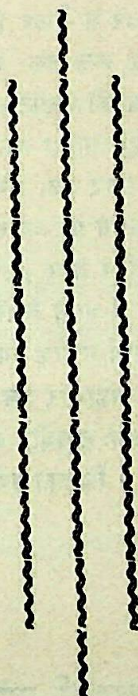
नोट—

इस नोटिस पर रात्रि को दो-तीन पुरुष आये और नियमों में बहुत देर तक वादानुवाद रहा, अन्त को बाबू रामानन्द जी, धर्म सभा के बोले कि यदि तुम न्याय शास्त्र को मानो तो हम अपने दक्षिणि आचार्य जी को बुलावें। श्री तुलसी राम जी ने कहा कि - हाँ ! युक्ति विषय में न्याय मानेंगे, परन्तु आपके पंडित दो दिन में आ जायें तो में ठहरा रहूँ। क्योंकि मुझे कुचेसर से चले २१ दिन तथा आरा में आये १६ दिन हो गए हैं, मैं १२ तारीख को यहाँ आया था, आज २७ तारीख हैं, मैं बहुत दिन नहीं ठहर सकता, बाबू रामानन्द ने कहा,—दो दिन में तो नहीं, परन्तु आयेंगे अवश्य। श्री पंडित तुलसी राम जी ने कहा—अच्छा ! मैं लखनऊ में दस दिन ठहरूंगा यदि इन दस दिनों में आप अपने पण्डित के आने का समाचार देंगे, तो मैं तुरन्त उपस्थित हूंगा। तत्पश्चात श्री पंडित तुलसी राम शर्मा लखनऊ में दस दिन रहे, और दो पत्र श्री बाबू भगवतसहाय जी (सनातन धर्म सभा के मन्त्री) के नाम भेजे, कि-बाबू रामानन्द जी के गुरु आये वा नहीं ? परन्तु उत्तर "ना" का पाकर पण्डित जी कुचेसर चले गये। पौराणिक पंडित जिनका बाबू रामानन्द ने वादा किया था, आज तक शास्त्रार्थ करते हैं ? उसके बाद कभी भी पौराणिकों ने सिर उठाने का प्रयास नहीं किया, और शास्त्रार्थ का तो नाम ही भूल गये ! "यतोधर्मस्ततोजय" ओ३म्, शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

मन्त्री—आर्य समाज "आरा"

इक्यावनवां शास्त्रार्थ

स्थान : संगरूर (रियासत जीन्द)



विषय : क्या मूर्तिपूजा वेदोक्त है ?

दिनांक : ७ अक्तूबर, सन् १९४० ई० प्रातःकाल साढ़े आठ बजे दोपहर १२ बजे तक)

शास्त्रार्थ कर्त्ता आर्य समाज की ओर से : श्री पंडित मनसाराम जी "वैदिक तोप"

शास्त्रार्थ कर्त्ता (सनातम धर्म महावीर दल) पौराणिकों की ओर से : श्री पंडित अखिलानंद जी "कविरत्न"

आर्य समाज के प्रधान : श्री भगवान दास जी

आभार : आर्य समाज संगरूर (पंजाब) के अधिकारियों का आभार प्रकट करते हैं, जिन्होंने यह उर्दू में छपी अप्राप्य शास्त्रार्थ सामग्री, प्रकाशनार्थ हमें भिजवाई ।

"सम्पादक"

शास्त्रार्थ से पहले

सगंरूर (रियासत जीन्द) में १२ सितम्बर से लेकर १५ सितम्बर १९४० ई० सनातन धर्म महावीर दल का सालाना जलसा था। इस जलसे में आरम्भ मे लेकर अन्त तक गोपाल मिश्र हरियानवी और बाबा चमनलाल ने आर्य समाज और महर्षि श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज को भरपेट गालियाँ दी। और आर्य समाज व महर्षि दयानन्द जी के विषय में सैकड़ों भ्रांतियाँ फैलाई। आर्य समाज नही चाहता था कि मौजूदा नाजूक वक्त में छेड़छाड़ करके आपस के ताल्लुकात (सम्बन्धों) में दुश्मनी पैदा की जावे। मगर जब सनातन धर्मी पण्डितों ने सिवाय आर्य समाज और ऋषि दयानन्द के खिलाफ जहर उगलने के और किसी विषय पर व्याख्यान ही नहीं दिया तो मजबूरन स्थानीय आर्य समाज ने उसकी सफाई के लिए पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप (उपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा) पंजाब को संगरूर में बुलाया; पण्डित जी ने आते ही ३० सितम्बर १९४० से अपने व्याख्यानों का सिलसिला आरम्भ किया, जिनमें से अवतार-वाद, मृतक श्राद्ध, मूर्तिपूजा, फलित ज्योतिष, एवं आर्य समाज क्या है ? और वर्ण व्यवस्था पर प्रकाश डाला, और उनके सारे सवालों का जवाब दिया। इस पर सनातन धर्म महावीर दल की तरफ से २ अक्तूबर १९४० ई० को शास्त्रार्थ का चैलैन्ज आया, जो मन्जूर किया गया और सनातन धर्म महावीर दल के साथ मय शर्तों के शास्त्रार्थ करना तय हो गया। और सात अक्तुबर सन् १९४० को दो शास्त्रार्थ हुए। जिनका पूर्ण विवरण यहाँ दिया जाता है।

निवेदक—
"भगवानदास"
(प्रधान, आर्य समाज संगरूर)

शास्त्रार्थ आरम्भ

"७ अक्तुबर सन् १९४० ई० को प्रातः काल साढ़े आठ बजे आर्य भाई, श्री पण्डित मनसा राम जी को साथ लेकर ठाकुरद्वारा, (नाभा दरवाजा के बाहर) में पहुंचे, और शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। जो ठीक बारह बजे शान्ति-पूर्वक समाप्त हुआ, सनातन धर्म महावीर दल की तरफ से श्री पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न थे, पण्डित मनसाराम जी ने निम्नलिखित प्रश्न मूर्ति पूजा पर किये—

१. चारों वेदों के अन्दर से "मूर्ति पूजा" शब्द दिखलाओं ?

नोट—

पण्डित अखिलानन्द जी कवि रत्न ने इस प्रश्न का उत्तर शास्त्रार्थ के अन्त तक नहीं दिया।

पंडित अखिलानन्द जी कविरत्न—

वेदों में "अर्चत-प्रार्चत"..........मन्त्र में लिखा है कि पूजा करो।

पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप—

महाराज जी इसमें यह कहाँ लिखा है कि परमात्मा की जगह पर मूर्ति की पूजा करो ? हम पूजा करने के विरूद्ध नहीं हैं। पूजा ही करनी है तो माँ की पूजा करो, बाप की पूजा करो, गुरु की पूजा करो; साधु-सन्यासी, महात्माओं की पूजा करो, जिनसे कोई फ़ायदा पहुँच सके, लेकिन इस मन्त्र में मूर्तिपूजा का नामोनिशान भी मौजूद नहीं, (इस पर अखिलानन्द जी खामोश हो गये, और आखिर तक भी मूर्तिपूजा शब्द चारों वेदों में से नहीं दिखला सके)

पण्डित मनसाराम जी वैदिकतोप —

चारों वेदों के अन्दर से कोई ऐसा मन्त्र दिखाओ जिससे ये साबित हो सके कि परमात्मा की मूर्ति, लकड़ी, पत्थर या किस धातु की इतनी लम्बी, इतनी चौड़ी या इतनी मोटी और इस शक्ल की बनाकर परमात्मा की जगह पर बनाकर उसकी पूजा की जावे। और उस मूर्ति को साथ रोटी खिलाना, पानी पिलाना, वगैरा, प्राणधारियों का सा व्यवहार किया जावे।

पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

युजुर्वेद में कहा है कि मेरा सोना, मेरा ताँबा, मेरा पर्वत आदि-आदि इससे ये साबित है कि वेद में मूर्ति बनाने का ज़िकर है।

पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप—

(युजुर्वेद निकालकर बताते हुए) कहा कि, मेरे गेहूँ, मेरे चावल, मेरे उर्द, मेरे तिल आदि क्या इनकी भी मूर्ति बनने का ज़िकर है? वास्तविक बात यह है कि इसमें तो परमात्मा ने यह बतलाया है कि ऐ इन्सानों मैंने तुम्हारे लिए ऊपर लिखित चीजों को पैदा किया है, इसमें मूर्ति बनाने का ज़िकर तक भी नहीं हैं।

नोट—

इसके बाद पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न खामोश हो गये, और इस बारे में कुछ नहीं कहा।

पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप—

यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र ८ में लिखा है कि परमात्मा बिना मूर्ति वाला है, इसलिए इसकी मूर्ति नहीं बन सकती।

पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न—

परमात्मा का एक दिव्य यानि अजीबो गरीब शरीर होता है, जिसको आम लोग नहीं देख सकते, बल्कि ज्ञानी और योगी ही देख सकते हैं।

पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप—

पण्डित जी महाराज। यह यजुर्वेद पर महिधर और शांकर कृत भाष्य है, देखो इसमें कहा है कि परमात्मा का स्थूल, सूक्ष्म और लिंग इन तीनों ही प्रकार का शरीर नहीं होता; और फिर यह क्या बात है कि इसका शरीर आम लोगों को तो दिखाई देता नहीं लेकिन विद्वान व योगी लोगों को नज़र आता है। इससे तो साबित है कि राम व कृष्ण दोनों ही परमेश्वर न थे। क्योंकि उनके शरीर को तो रावण, सुग्रीव, मारीच, कंस, शिशुपाल आदि-आदि सभी लोग देख सकते थे।

नोट—

इस प्रश्न पर भी पण्डित अखिलानन्द जी ने शास्त्रार्थ के आखिर तक एक भी लफ़ज नहीं कहा।

पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप—

यजुर्वेद अध्याय ३२ मन्त्र ३ में लिखा है कि परमात्मा की मूर्ति नही बन सकती। ये मेरा भी दावा है।

पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न —

पण्डित जी इस मन्त्र का ये अर्थ नहीं है, और आपके जैसे दावे तो हमने बहुत देखे हैं। इस मन्त्र में क्या है? ध्यान से सुनो इसका अर्थ है कि परमात्मा के कोई बराबर नहीं है, और न हो सकता है।

पंडित मनसाराम जी वैदिक तोप—

जब परमात्मा के बराबर ही कोई नहीं हो सकता, तो मूर्तियाँ कैसे परमात्मा के बराबर हो सकती हैं ?

नोट—

पण्डित अखिलानन्द जी कविरत्न इस पर भी आखिर तक खामोश रहे।

पंडित मनसाराम जी वैदिक तोप—

यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र ९ में लिखा है कि जो परमात्मा की जगह, प्रकृति की पूजा करता है, वह नरक में जाता है।

नोट—

इस पर पण्डित अखिलानन्द जी ने अण्ड-बण्ड कुछ के कुछ अर्थ करने चाहे। जिस पर पण्डित मनसाराम जी ने महिधर और शांकर भाष्य पेश करके ललकार कर कहा, पण्डित जी ! अगर हिम्मत है तो इसका कुछ और अर्थ करके दिखलाओ ? जिस पर पण्डित अखिलानन्द जी अन्त तक चुप रहे, और उसका जवाब नहीं बना।

पंडित मनसाराम जी वैदिक तोप—

पुराणों में भी मूर्ति पूजा का खण्डन मौजूद है, चूनाचें भागवत पुराण स्कन्ध, १०अध्याय ८४, श्लोक १३, में लिखा है, कि जो मूर्ति पूजा करते हैं वह गधे व बैल की बराबर हैं।

नोट—

इस पर पण्डित अखिला नन्द जी ने इस श्लोक के कुछ और अर्थ पैश करने की कोशिश की, लेकिन पण्डित मनसाराम जी ने सनातन धर्म के पण्डितों का किया हुआ अर्थ पढ़कर सुनाया, जिससे पण्डित अखिलानन्द जी के होश उड़ गये, और वे उसका कोई अन्य अर्थ नहीं कर सके।

पंडित मनसाराम जी वैदिक तोप—

शिवलिंग की मूर्ति चरित्र से गिराने वाली है, इसलिए उसकी पूजा नहीं करनी चाहिए। देखो शिव पुराण कोटि रूद्र संहिता अध्याय १२ में साफ लिखा हुआ है, कि पार्वती की भग (योनि) में शिव के लिंग को कायम करके ये पूजा की जाती है।

नोट—

इस पर चारों तरफ शोरोगुल मच गया, पण्डित अखिलानन्द जी ने खड़े होकर कहा कि; ये प्रमाण गलत है, और में नवल किशोर प्रैस-लखनऊ की छपी भाषा टीका वाली पुराण को नहीं मानता, "और इस बात को लिखित रूप में भी दे दिया"। इस पर पण्डित मनसाराम जी ने असल शिव पुराण वैंक्टेश्वर प्रैस बम्बई का छपा हुआ, पैश करके उसका अर्थ किया, और एक शिवलिंग की कथा भविष्य पुराण में से पढ़कर सुनाई तथा एक कथा महाभारत में से दिखलाई। जिस पर आखिला नन्द जी को कोई जवाब नहीं बन पड़ा और ये फर्माया कि भग (योनि) लिंग और योनि के कुछ और भी अर्थ हो सकते हैं, वा नहीं जो आप समझते हैं। क्योंकि संस्कार विधि के विवाह प्रकरण में "ओ३म भगाय स्वाहा" लिखा हुआ है। क्या इसका भी भग के अर्थ में वही मानोगे ? और स्वामी दयानन्द जी ने वर के लिए लिखा है कि वह स्त्री की योनि को शहद लगाकर चाटे। (चारों तरफ शोरोगुल्ल............)

पंडित मनसाराम जी वैदिक तोप—

खामोश ! शान्ति से सुनों !! मेरी अर्ज केवल यही है। मुझे पता है कि अब पण्डित जी इस प्रकार की बातें करके अपना पिण्ड छुड़ाना चाहते हैं। पर मैं आज इन्हें छोडूंगा नहीं। देखो ? अमर कोप में लिखा है कि "भग" शब्द

के ६ अर्थ होते हैं। जिनमें १.मकामे मखशूप (विशेष जगह) २. मरणीय सम्पत्ति ३. जलाहो जलाल (शानो-शौकत) भी शामिल हैं। और योनि शब्द का अर्थ स्वरूप भी होता है, और लिंग का अर्थ निशान भी हो सकता है। लेकिन जहाँ ये अकेला, भग और लिंग शब्द होगा वहाँ केवल यही अर्थ लिये जावेंगे। जैसे कि संस्कार विधि में ":भगाय स्वाहा" का अर्थ ये है कि मैं अपना मर्तबा (रुतबा) और जाहो जलाल (शानो-शौकत) हासिल करने के लिए ये प्रण करता हूँ, मगर जहाँ पर लिंग-योनि या भग और लिंग इकट्ठे आवेंगे वहां पर मुकाम मखशूष के अलावा और कोई अर्थ हो नही सकता। इसके अलावा मौका व मुहाल (वक्त के अनुसार) भी देखना जरूरी है। मिसाल के तौर से भागवत में आता है कि "गोपियां दोनों हाथों से अपनी योनि को ढक कर पानी से बाहर आई" और भविष्य पुराण में लिखा है कि "जिसकी भग (योनि) पर बाल न हो वह राजा की बीवी होती है" और गरुड पुराण में लिखा है कि इन चीजों का लेप करने से लिंग लम्बा और मोटा हो जाता है। इन जगहों पर लिंग, भग और योनि का मुकाम मखशूष ही अर्थ होगा। इसके अलावा अन्य कोई अर्थ हो ही नहीं सकता। ऐसे ही शिवलिंग पूजा की कथाओं में भी लिंग और भग शब्द का अर्थ कुछ और नहीं हो सकता। आपके सामने शिवालय मोजूद है, इसके अन्दर गोल-गोल शकल बनाकर बीच में एक मूसल सा गाड रक्खा है, बताओ वह शिव के कौन से अंग का निशान है? दोस्तों ये मुकाम मखशूष की पूजा! बेशर्मी का निशान और चरित्र से गिराने वाली नहीं है तो और क्या है? संस्कार विधि में योनि को शहद लगा कर चाटना कहीं भी नहीं लिखा जैसे कि पण्डित जी ने कहा है, वहाँ तो सिर्फ ये लिखा है कि इन मन्त्रों का पाठ करके स्नान किया जावे, स्वामी जी ने इन मन्त्रों का कोई अर्थ नहीं किया, अपनी तरफ से मन घडन्त अर्थ करके एतराज करना, ईमानदारी के बाहर है।

नोट—

इस पर पण्डित अखिलानन्द जी खामोश हो गये और आखिर तक इन प्रश्नों का उत्तर न दे सके। एवं पण्डित मनसाराम जी की उपरोक्त बातों को श्रोताओं ने सुनकर सनातन धर्म को बड़ी गालियां दी, जिससे पण्डित अखिलानन्द जी पर ढेरों पानी पड़ गया, एवं सनातनी लोग सभी मुर्दों की तरह खामोश बैठे रहे।

पंडित मनसाराम जी वैदिक तोप—

मूर्तियों के बहाने से शराब का पीना ओर मांस का खाना प्रचलित किया गया, इसलिए ब्रह्मवैवर्त पुराण खण्ड ४ अध्याय १०५ में मूर्ति पर चढ़ाकर हिरण, बछड़े, बकरे, मैंढ़े और गऊ तक के मांस को प्रयोग करना लिखा है।

पंडित अखिलानन्द जी कवि रत्न—

यह ब्रह्मवैवर्त पुराण में नहीं है। सन् १८७५ ई० के छपे सत्यार्थ प्रकाश में बन्ध्या गऊ को मारना और उसके मांस को प्रयोग करना भी लिखा है।

नोट—

"परन्तु जब पण्डित मनसाराम ने पुस्तक से पढ़कर सुनाया कि यह, रुकमणी के विवाह की तैयारी का जिकर है, तो आप इतना कहकर चुप हो गये, "कि यह राक्षसों के खाने के लिये प्रस्ताव किया गया था।", हालाँकि वहाँ पर राक्षसों की उपस्थिति का नाम तक नहीं है।"

पंडित मनसाराम जी वैदिक तोप—

सत्यार्थ प्रकाश का प्रथम संस्करण स्वामी जी की देख-रेख मे नहीं छपा, इसलिए इसमें बदमाश लोगों ने ऐसे ही मिलावट कर दी, जैसे कि रामायण और महाभारत आदि में कर दी गई है। जब स्वामी जी को पता लगा, तो स्वामी जी ने जितनी उस सत्यार्थ प्रकाश की प्रतियाँ मिल सकी उन सब को इकट्ठा करके जला दिया; और शुद्ध करके दूसरा संस्करण छपवाया, और विज्ञापन द्वारा आम जनता को सूचित कर दिया कि, उसमें बहुत अशुद्धियों के होने के कारण उसे जला दिया, अतः हम उस संस्करण को नहीं मानते हैं, और इसीलिए शुद्ध करके दूसरा छपवा दिया है। इस लिए पहला संस्करण जलाने के योग्य है, मानने के योग्य नहीं।

पंडित मनसाराम जी वैदिक तोप—

मूर्ति पूजा के बहाने से व्यभिचार फैलाया गया, इसलिए भविष्य पुराण उत्तर पर्व अध्याय १११ में लिखा है कि "वैश्या को चाहिए कि रविवार के दिन ब्राह्मणों को बिना फीस व्यभिचार की पूरी छूट दे दे" तो वह विष्णु लोक को सीधी चली जावेगी।

नोट—

इस प्रश्न पर पण्डित अखिलानन्द जी ने अन्त तक मुंह नहीं खोला। केवल इधर-उधर की बातें कर समय बर्बाद करते रहें।

पंडित मनसा राम जी वैदिक तोप—

बुद्धि और दलील से भी मूर्ति पूजा साबित नहीं होती है, पत्थर के चूहे पर बिल्ली झपट्टा नहीं मारती और ना ही पत्थर की बिल्ली पर कुत्ता झपट्टा मारता। पर दुःख है कि बुद्धिमान कहलाने वाला मनुष्य कुत्ते और बिल्ली के बराबर भी समझ नहीं रखता, वह असली और नकली को भी नहीं पहचान सकता, पत्थर की मूर्ति के मुंह में भोजन ठूंसते हैं, पर इश्वरीय नियम को कौन बदल सकता है। दुनियां में कोई प्राणधारी ऐसा नहीं है, जो रोटी तो खाता हो, और टट्टी न जाता हो। लेकिन ठाकुर जी को खाना तो रोज खिलाते हो, लेकिन टट्टी एक दिन भी नहीं ले जाते। फिर लिंग पर लड्डू को चढ़ाना भी कुछ समझ में नहीं आता। हिन्दुस्तान के चार करोड़ आदमी पेट पर हाथ रख कर सो जाते हैं, उनको यह पता नहीं कि पेट भर कर रोटी कैसे खाई जाती है। और हजारों यतीम बच्चे कपड़े न होने की वजह से सर्दी व गर्मी में तकलीफ को महसूस करते हैं। परन्तु हम परमेश्वर की बनी जिन्दा मूर्ति को छोड़कर (मनुष्य) को छोड़कर पत्थरों को रोटी खिलाते तथा कपड़े पहनाते हैं। जब सोमनाथ के मन्दिर पर महमूद गजनवी ने चढ़ाई की तो आम राजपूत लड़ने को तैयार बैठे थे, परन्तु पण्डितों ने कहा कि सोमनाथ जी अपनी सुरक्षा स्वयं करेंगे। तुमको लड़ने की कोई जरूरत नहीं है। आखिर ! राजपूत लोग पण्डितों के कहने में आकर बैठे रहे। और महमूद गजनवी ने सोमनाथ के मन्दिर पर कब्जा कर लिया, और मूर्ति को तोड़कर उनसे करोड़ों ही नहीं अरबों रुपये के हीरे जवाहारात, सोना आदि ऊटों पर लाद कर गजनी को चला गया। और हजारों की तादाद में मर्द, औरत व बच्चों को कैद करके ले गया, और हिन्दुस्तान का एक-एक बच्चा गजनी में दो-दो रुपये में बेचा गया, और तब से हिन्दुस्तान के गले में ऐसा गुलामी का फन्दा पड़ा हुआ है कि आजाद होने में नहीं आता। जब तक हम इस मूर्तिपूजा की लानत को नहीं छोड़ेंगे, हमारा देश गुलामी से आजाद नहीं हो सकता। परमात्मा हमारे देश को इस बीमारी से जल्दी ही मुक्ति दिलावे।

पंडित अखिलानन्द जी कविरत्न—

भाइयों आपने पण्डित जी का लम्बा चौड़ा भाषण सुना, जो बिलकुल सार रहित था, जनता में हँसी········ हँसो मत देखो आर्य समाज के ग्रन्थों में भी उस्तरे की पूजा, और ऊखल व मूसल की पूजा तथा डण्डे व सुहागे की पूजा लिखी है, क्या मूर्ति इन चीजों से भी बुरी है। पण्डित जी बतावें। (श्रोताओं में सन्नाटा ·····) और ऋग्वेद में यह भी लिखा है कि ऐ इन्द्र ! तेरा पत्थर का शरीर हो।" इससे मूर्ति पूजा साबित होती है।

पंडित मनसा राम जी वैदिक तोप—

यहाँ पर ऋग्वेद में इन्द्र से मुराद राजा है। और राजा के लिए परमेश्वर का ये आदेश है कि तुम्हारा शरीर पत्थर की तरह मजबूत होना चाहिए और संस्कार विधि अनुसार विवाह में जो लड़की का पांव पत्थर पर रखवाया जाता है, उससे भी यही मुराद है कि तुम पत्थर की तरह से अपने गृहस्थ आश्रम में मजबूत रहना, इन दोनों जगहों पर परमेश्वर की मूर्ति का जिक्र तक भी नहीं है। आपने जो आर्यसमाज के ग्रन्थों में से मूर्ति पूजा साबित करने की फ़िजूल कोशिश की है, मैं आपको चेलैन्ज करता हूं कि आप आर्य समाज के किसी ग्रन्थ में से ये शब्द निकालकर दिखावें कि "उस्तरे की पूजा करो" या "ऊखल-मूसल की पूजा करो" या "सुहागे व डण्डे की पूजा करो" हाँ ! आर्य समाज उन

चीजों का जायज़ इस्तेमाल मानता है। परमेश्वर की जगह पर उनकी पूजा नहीं मानता। और आर्य समाज ने कहीं पर "उस्तरे या ऊखल-मूसल वा सुहागे वगैरा का मन्दिर बनाकर पूजा शुरू कर रखी हो तो आप उस जगह का नाम बतलाने की कृपा करें" वर्ना व्यर्थ में झूठ बोलकर जनता को सन्देह में व गलत रास्ते पर डालने की कोशिश न करें। वैसे भी मैं आपकी ये गलत कोशिश कामयाब नहीं होने दूंगा।

पंडित अखिलानन्द जी कविरत्न—

देखो ऋग्वेद के मन्त्र—"रूपं रूपं प्रतिरूपोबभूव………" ६-४७-१५, में कहा है कि इन्द्र अनेक रूप धारण करता है, इससे परमात्मा का अवतार व मूर्ति पूजा सावित होती है।

पंडित मनसा राम जी वैदिक तोप—

इस मन्त्र में 'इन्द्र' नाम जीव आत्मा का है, और वह जन्म-जन्मान्तरों में अनेक शरीरों के द्वारा अनेक रूपों को धारण करता है। यहाँ पर परमेश्वर का जिक्र नहीं है।

पंडित अखिलानन्दजी कविरत्न—

महाराज! 'इन्द्र' का अर्थ "जीवात्मा' नहीं हो सकता।

पंडित मनसा राम जी वैदिक तोप—

(निरुक्त का प्रमाण दिखाते हुए) कहा कि "ये देखिए! निरुक्त में कहा है कि जो कर्म को करता है वह 'इन्द्र' है। इसलिए इन्द्र होने की वजह से जीवात्मा का नाम भी इन्द्र हुआ। इस प्रकरण में इन्द्र का अर्थ, जीवात्मा ही ठीक है। क्योंकि परमात्मा निराकार और एकरस होने की वजह से अनेक रूपों को धारण नहीं करता।

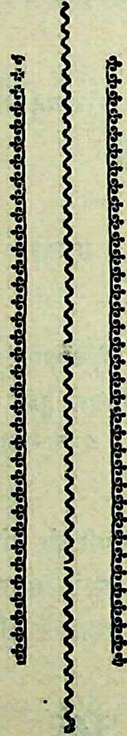
नोट—

इसपर पण्डित अखिलानन्दजी के मुँह पर चुप्पी की मोहर लग गयी, और यह पहला शास्त्रार्थ शान्तिपूर्वक, साढ़े तीन घण्टे के बाद समाप्त हो गया। और दोनों तरफ के श्रोताओं एवं शास्त्रार्थकर्त्ताओं का धन्यवाद करके जलसा समाप्त किया। इस शास्त्रार्थ का आम जनता पर आर्य समाज के वैदिक सिद्धान्तों का बड़ा ही अच्छा प्रभाव पड़ा।



बावनवां शास्त्रार्थ

स्थान : संगरूर (रियासत जीन्द)



दिनांक : ७ अक्तूबर, सन् १९४० ई० (दोपहर बाद)

विषय : क्या मृतक श्राद्ध वेदानुकूल है ?

आर्य समाज की ओर से शास्त्रार्थ कर्त्ता : श्री पंडित मनसा राम जी "वैदिक तोप"

शास्त्रार्थ कर्त्ता पौराणिकों की ओर से : श्री पंडित अखिलानन्द जी "कविरत्न"

शास्त्रार्थ आरम्भ

पंडित अखिलानन्द जी कविरत्न—

सज्जनों मैं वेदों के कुछ मन्त्र आपके सामने पेश करता हूँ जिनमें जबर्दस्त मृतकों का श्राद्ध करना लिखा है देखों—

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं ....इत्यादि। अधामृताः पितृषु संभवन्तु.........इत्यादि। ये निखाता ये परोक्ता ये दग्धा ये वोद्धिता..............इत्यादि। गच्छन्तु येऽमृता............इत्यादि।

इन मन्त्रों में मृतक श्राद्ध का करना मौजूद है, और देखो संस्कार विधि में भी समावर्तन संस्कार में स्वामी दयानन्द जी ने मृतक श्राद्ध को स्वीकार किया है। और विवाह के समय "मधुपर्क विधि" में जो मधुपर्क के चारों तरफ छींटे दिए जाते हैं, वो भी पितरों के लिए ही होते हैं, इससे साबित हुआ कि आर्य समाज भी मृतक श्राद्ध को मानता है।

पंडित मनसाराम जी वैदिक तोप—

कविरत्न जी ने अगर्चे वहुत से वेद मन्त्र पेश किये, लेकिन उन मन्त्रों में से एक मन्त्र में भी मृतक श्राद्ध-शब्द मौजूद नहीं है। इन मन्त्रों का तो कहना ही क्या है, चारों वेदों में से भी मृतक श्राद्ध शब्द नहीं दिखलाया जा सकता, फिर इन मन्त्रों में एक मन्त्र भी ऐसा मौजूद नहीं है, जिससे ये साबित हो कि मरे हुए पितरों की सेवा करनी चाहिए। और इन मन्त्रों में से एक मन्त्र से भी ये साबित नहीं होता कि ब्राह्मणों को भोजन कराने से पितरों की तृप्ति होती है। हाँ ! इन मन्त्रों में पितर शब्द मौजूद अवश्य है। जिसके सम्बन्ध में हमारा ये दावा है कि पितर शब्द जीवित मनुष्यों पर ही लागू होता है। मरे हुओं को पितर ही नहीं कहना चाहिए क्योंकि निरुक्त में पितर शब्द के ये अर्थ लिखे हैं कि रक्षा करने वाला, परवरिश करने वाला एवं पैदा करने वाला, इन तीनों का नाम पितर है। एवं कविरत्न जी को याद होगा जिन्होंने इनको शास्त्रार्थों में कई बार छटी का दूध याद दिलाया उनका नाम ठा० अमर सिंह जी हैं। उन्होंने एक पुस्तक सिर्फ "जिवित पितर" नाम से ही लिखी है जिसमें पितर शब्द के १२४ प्रमाण दिये हैं जिसमें साफ साबित किया है कि पितर शब्द का अर्थ जीवित ही है, मरे हुए नहीं। इसलिए मेरा भी कहना है कि रक्षा करने का काम जीवित रहता हुआ ही कर सकता है। मरा हुआ कोई किसी की क्या? अपनी भी रक्षा नहीं कर सकता। अगर मरा हुआ कोई किसी की रक्षा कर सके तो हिन्दुओं पर कभी मुसीवत ही नहीं आनी चाहिए, जब जरूरत पड़े तो श्री रामचन्द्र जी महाराज धनुष बाण लेकर हमारी रक्षा कर जाया करें। श्री कृष्ण चन्द्र जी अपना सुदर्शन चक्र लेकर हमारी इमदाद कर जाया करें। और जब जरूरत पड़े तो भीमसैन जी अपनी गदा लेकर अपने दुश्मनों को बिल्कुल समाप्त कर जाया करें। लेकिन नहीं, भाईयो ! मरे हुओं ने आज तक किसी की कोई रक्षा नहीं की, और न ही कर सकते। शायद कभी पं० जी ने अपनी रक्षा कराई हो तो वह वह तो पं० जी ही जानें। (जनता में हँसी ....) और न ही मरे हुए बच्चों की परवरिश कर सकते। अगर मरे हुए बच्चों की परिवरिश कर सकें तो यतीमखाने (अनाथालय) खोलने की जरूरत ही न पड़े, सबको मरे हुओं के हवाले कर देना चाहिए। तथा मरने के बाद कोई सन्तान भी पैदा नहीं कर सकता, अगर मरने के बाद कोई औलाद पैदा कर सके तो विधवा विवाह की कोई जरूरत ही न पड़े। इससे साफ़ जाहिर है कि "पितर" शब्द मरे हुओं के लिए नहीं बल्कि जीवितों के लिए ही लागू होता है। मरे हुओं को पितर नहीं कहते, जो पण्डित जी ने ये दो मन्त्र पेश किये कि—"गच्छन्तु येऽमृता ....इत्यादि। अधामृता पितृषु .... इत्यादि।

इन दोनों मन्त्रों में भी "मृता" शब्द नहीं है बल्कि "अमृता" शब्द है। "अ" का पूरा लोप हुआ-हुआ है। जिससे साबित है कि जीवितों को ही पितर कहते हैं। मरे हुओं को नहीं; इसके अलावा पं० जी ने जो ये मन्त्र—"आधत्त पितरो गर्भं कुमार............इत्यादि।देकर बतलाया कि यजमान की स्त्री अगर पिण्ड हाथ में लेकर यह मन्त्र पढ़ते हुए पितरों से प्रार्थना करे कि हे पितरो तुम मेरे गर्भ धारण करो, जिसके कि फूलों की माला पहनी हुई हों, यह कहकर उस पिण्ड को खा जावे तो उसके बड़ी अकलमन्द औलाद पैदा होगी। पण्डित जी का अर्थ बिल्कुल गलत है। पहली बात तो ये है कि पिण्ड खाने से क्या कभी औलाद पैदा हो सकती है ? अगर पिण्ड खाने से ओलाद पैदा हो जावे तो किसी को विवाह करने की जरूरत ही नहीं रहती। जिसने पिण्ड खाया उसके औलाद पैदा हो गई, फिर स्त्रियों को सम्भोग करने की क्या आवश्यकता है ?

"अगर कोई स्त्री अपने पति से प्रार्थना करे कि हे पति तुम मेरे गर्भ धारण करो तो ये तो किसी हद तक ठीक भी है लेकिन पितरों से प्रार्थना करना तो तहज़ीब व धर्म के खिलाफ़ है।" "ऐसा गर्भ धारण करो जिसके कि फूलों की माला पहनी हुई हो, तो क्या गुलाब का बगीचा भी पेट में ही लग जायेगा जिसमे कि लड़का फूलों की माला पहने हुए पैदा होगा।" पण्डित जी कुछ तो होश की बात करो (जनता में हंसी ··) इससे साबित है कि ये मन्त्र पितृ पिन्ड प्रमाण का नहीं है। बल्कि ये मन्त्र तो वेदारम्भ संस्कार का है, जब बच्चा आठ वर्ष का हो जाता है, तो माँ और बाप लड़कों को जनेऊ पहना कर और खुशी से उसके गले में फूलों की माला पहना कर उसे गुरुकुल में ले जाते हैं। और गुरुकुल के अध्यापक जिनका नाम विद्या पढ़ाने की वजह से पितर है, उनसे प्रार्थना करते हैं कि हे पितरो तुम इस लड़के को अपने गुरुकुल में ऐसी हिफ़ाजत के साथ रक्खो जैसे माता अपने बच्चे को गर्भ में हिफ़ाजत के साथ रखती है। जिससे ये बच्चा आदमी कहलाने के काबिल बनें। क्योंकि बिना विद्या के तो आदमी, आदमी ही कहलाने के काबिल नहीं बनता। पं० जी ने जो ये मन्त्र बोला कि—"ये निखाता...............इत्यादि। इसका अर्थ कहते हैं कि जो पितर खोदे गये है, जो पितर बीझे गए हैं, जो पितर जलाये गये हैं, जो पितर निकाले गए हैं, उनको हमारे मकान पर भोजन करने के लिए बुला लाओ। ये अर्थ भी पण्डित जी का ठीक नहीं है। क्योंकि खोदना, बींझना, जलाना और निकालना ये चारों कर्म शरीरों के साथ होते है, जीवों के साथ नहीं, क्योंकि जीव न खोदा जाता है, न बीझा जाता है, न जलाया जाता है न निकाला जाता है। फिर भला इस प्रकार के शरीर हमारे मकान पर भोजन करने को कैसे आवेंगे ? दरअसल इसका अर्थ ये है कि जो खोदने वाले हैं, यानी जो नमक, सोना, चाँदी की खानों को खोदते हैं, और जो बीझने वाले हैं यानी खेती की विद्या को जानते हैं, और जलाने वाले हैं, यानी हमारे लिए बिजली वगैरा को जलाते हैं। और जो निकालते हैं यानी समुद्र में से मोती-मूंगा आदि निकालते हैं, इस किस्म के जो इन्जीनियर हैं और देश की रक्षा करने की वजह से पितर कहलाते हैं, उनको हमारे मकान पर भोजन करने के लिए बुला लाओ। इस मन्त्र से भी यही साबित हुआ कि पितर शब्द जीवितों के लिए ही लागू होता है। मरे हुओं के लिए नहीं। अर्थात् 'अग्निस्वाता' पितर अग्नि में जले हुओं का नाम नहीं है, क्योंकि अग्नि में शरीर जलता है, जीव नहीं जलता, और जले हुए शरीर का यज्ञ में आकर भोजन करना तथा उपदेश करना असम्भव है, पौराणिकों के मतानुसार शिव पुराण में ब्रह्मा के पसीने से और मनुस्मृति में मरीची ऋषि से अग्निस्वत पितरों की पैदाइश हुई है। लिहाजा "अग्निस्वाता" पितर से मुराद अग्निविद्या में माहिर इन्जीनियरों से है। पं० जी ने संस्कार विधि के समावर्तन संस्कार का हवाला दिया है। वहां पर भी ब्रह्मचारी गुरुकुल से निकलता हुआ अध्यापक लोगों से प्रार्थना करता है कि हे पितरो तुम मुझको अपने उपदेश से ऐसे पवित्र करो जैसे ये जल पवित्र है। और विवाह संस्कार में मधुपर्क को छींटे देने का अर्थ ये है कि लड़के व लड़की को ये शिक्षा दी जाती है कि जब तुम भोजन करने लगो तो अपने चारों ओर बैठे हुए लोगों को भोजन देकर बाद में भोजन करो। अकेले भोजन मत करो, इन दोनों जगहों में मृतक श्राद्ध का नाम तक मौजूद नहीं हैं। इसके अलावा हम पं० जी से पूछना चाहते हैं कि हमारे जो आपस में माता-पिता-भाई-बहन के रिश्ते हैं, क्या वे रिश्ते आपस में जीवों के हैं या शरीरों के ? या जब तक जीव व शरीर मिला रहता है अर्थात् इन दोनों के मिश्रण के ? तब तक वो ताल्लुकात कायम रहते हैं ? अगर कहो कि जीवों के आपस में ताल्लुकात हैं, तो ये बात गलत है। जीव न किसी का

माता-पिता और न भाई-बहन है, अगर कहो कि शरीरों के है। तो ये बात भी गलत है। क्योंकि जीव के निकलने के बाद शरीर को हम चन्द घन्टे भी अपने घर में नहीं रख सकते। इससे साबित है कि जब तक जीव और शरीर का मेल है तभी तक हमारा उनका, माता-पिता, भाई-बहन का रिश्ता है। जब जीव व शरीर अलग-२ हो जाते हैं तो जीव अपने कर्मानुसार दूसरे जन्म में चला जाता है। और शरीर को जला दिया जाता है। फिर हमारा उसके साथ, माता-पिता भाई-बहन का कोई भी रिश्ता नहीं रह जाता। इससे भी साबित है कि पितर शब्द जीवितों के लिए ही है। मरे हुओं के लिए नहीं।

पण्डित अखिलानन्द की कविरत्न—

भाइयो! स्वामी दयानन्द जी ने सन्यास लेते वक्त श्राद्ध किया था। और संस्कार विधि में समावर्तन संस्कार के समय यज्ञोपवीत बदल कर पितरों को जल देना लिखा है। इससे साबित है कि आर्य समाज के स्वामी दयानन्द मृतक श्राद्ध को मानते हैं, और देखो कठ उपनिषद में श्राद्ध शब्द मौजूद है, और अथर्व वेद में ब्राह्मणों को भोजन कराने से यश व स्वर्ग की प्राप्ति लिखी है। सुनो मन्त्र भी सुनो। "इममोदनं निदधे ब्राह्मणेषु..... ....।" इस मन्त्र में ब्राह्मणों को भोजन कराने से यश व स्वर्ग की प्राप्ति लिखी है, आप कैसे कहते हैं कि ब्राह्मणों को भोजन कराना नहीं लिखा?

पण्डित मनसाराम जी वैदिक तोप—

पण्डित जी महाराज कठ उपनिषद कोई वेद नहीं है। और इसमें भी मृतक श्राद्ध शब्द मौजूद नहीं है। अब आप कहेंगे कि इलाजुलगुर्बा में लिखा है। तनिक प्रश्न करने से पहले यह जरूर सोच लिया करो, सामने कौन बैठा है। मैं आपकी ये हेरा फेरी बिल्कुल चलने नहीं दूंगा। बलकि आपके कहने के मुताबिक श्राद्ध शब्द ही मौजूद है। जो कि जीवितों के लिए ही इस्तेमाल हो सकता है, मरे हुओं के लिए नहीं। रही स्वामी दयानन्द के सन्यास की बात! आपको ये पता होना चाहिए कि स्वामी दयानन्द जी ने जब सन्यास लिया था तो वे सनातनधर्मी थे, इसलिए सनातन धर्म के अनुसार उन्होंने श्राद्ध किया हो तो हम उसके उत्तरदायी नहीं हैं। आप संस्कार विधि में से जनेऊ बदलता हुआ दिखावें, "अपसव्य" होने का अर्थ ये है कि खुद बाईं तरफ़ और पितरों को दायीं तरफ़ खड़ा करे, इसलिए "अपसव्य" का अर्थ जनेऊ बदलना नहीं होता। पर आपको पता कैसे चले? करी तो है केवल मध्यमा ही पास, अर्थ करने चले शास्त्रों का! (सनातनधर्मी श्रोताओं में खलबली ....)

पण्डित जी महाराज सुनो! देखो महाभारत में लिखा है कि जब दुर्योधन घर से निकला तो मृग उसके अपसव्य थे, तो क्या आपके ख्याल में भी मृगों ने जनेऊ बदला था? हम ब्राह्मणों को भोजन कराने के विरुद्ध नहीं हैं, अगर कोई वेद और शास्त्रों के ज्ञाता विद्वान् ब्राह्मण हों, और हम उनको भोजन करावें, और वह हमारे बच्चों को अच्छी शिक्षा दें, और हमको भी नसीहत करें तो इससे हमारा यश भी फैलेगा, और हमको स्वर्ग यानी सुख की भी प्राप्ति होगी। इसलिए हम ब्राह्मणों को भोजन कराने के विरुद्ध नहीं हैं। लेकिन अथर्व वेद के इस मन्त्र में भी यह बयान नहीं किया गया कि ब्राह्मणों को भोजन कराने से मरे हुए पितरों की तृप्ति होती है। इसलिए हमारा दावा बदस्तूर कायम है। हम हैरान है कि ये अर्थों का अनर्थ क्यों किया जा रहा है।

ये सारी की सारी पेट की लीला है, जिसके लिए लोगों को बहकाया जा रहा है। पण्डित जी महाराज आप सरीखे स्वार्थी लोगों ने धार्मिक ग्रन्थों में यह लिख मारा कि पितरों की तृप्ति के लिए श्राद्धों में ब्राह्मणों को अलग-२ किस्म के जानवरों का माँस खिलाना चाहिए। देखो मनुस्मृति अध्याय ३, श्लोक २६८ में लिखा है कि मछली का मांस ब्राह्मण को खिलाने से पितरों को दो माह तक तृप्ति होती है। (सनातन धर्मियों की तरफ से जबर्दस्त शोरोगुल व हगामा खड़ा करना ....और पण्डित अखिलानन्द जी ने पण्डित मनसाराम जी को विषयान्तर बतलाना।

सुनो ! सुनो !! अभी क्या हुआ पण्डित जी, अभी से बिलबिलाने लगे, अभी तो मैंने पूरी तरह से तुम्हारी पोल खोलने की शुरूआत भी नहीं की, अभी ये हाल है तो आगे क्या होगा ? देखो मृतक श्राद्ध के न मानने में जहाँ और बहुत सी दलीलें हैं, वहां एक दलील ये भी है। कि श्राद्धों में पितरों की तृप्ति के निमित्त ब्राह्मणों को भिन्न-२ जानवरों के मांस ही नहीं बल्कि गऊ के मांस तक के खिलाने का विधान मौजूद है। और ये वेद के विरुद्ध होने के कारण मानने योग्य नहीं है।

पंडित अखिलानन्द कविरत्न—

(बीच में ही खड़े होकर) पंडित जी देखो मांस का पिण्ड वेद में नही है।

पंडित मनसाराम जी वैदिक तोप—

पंडित जी देखो जब मांस का पिण्ड वेद में नहीं है, और मनुस्मृति व शिवपुराण एवं रामायण व महाभारत में मौजूद हैं, तो इन किताबों में ये लेख वेद के विरुद्ध हैं। आप मेहरबानी करके यह लिखकर देवें "कि मांस का खाना वेद के विरुद्ध है" तभी शास्त्रार्थ आगे चलेगा, तथा यह भी लिखें कि "इन किताबों के लेख वेद के विरुद्ध हैं"।

नोट—

इस प्रकार पंण्ति मनसा राम जी ने लिखवाने की जिद्द पकड़ ली जिस पर सनातन धर्मियों की तरफ से बड़ा शोर मचाया गया, और इस शोरों सर में एक घण्टा खराब कर दिया, आखिर में अखिलानन्द जी ने यह कहा है कि—पं० मनसाराम जी ने सुबह मूर्ति पूजा के शास्त्रार्थ में जो यह कहा था कि हम दयानन्द और लाजपतराय को धर्म नहीं मानते, अगर उनकी किताबों में भी कोई बात वेद के विरुद्ध हो तो हम उसे मानने को तैयार नहीं। अगर पं० मनसाराम जी ये बात लिखित रूप में दे देंगे तो में भी इस बात को लिखकर देने को तैयार दूं। इस पर पं० मनसाराम जी ने अपनी इस बात को लिखकर पं० अखिलानन्द जी को दे दिया और पं० अखिलानन्द जी ने अपनी कही बात को लिखकर पं० मनसाराम जी को दे दी। कि—"श्राद में मांस का खाना वेद के विरुद्ध है और जहाँ-जहाँ मांस का खाना लिखा है वह वेद के विरुद्ध है।" इस तहरीर (लेख) के मिलने पर पं० मनसाराम जी ने मांस के प्रकरण को छोड़ दिया। और अपनी तकरीर आरम्भ की।

पंडित मनसाराम जी वैदिक तोप—

देखो भाइयो तुम्हारे सामने ये बात तो मान ली, अब रही बात मृतक श्राद की ? ये बात अकल और दलील दोनों के खिलाफ है। मैं पं० जी से पूछना चाहूंगा वो नोट भी कर लें, कि पितर यहाँ खाने के लिए आते हैं। या उनको वहीं पर मिल जाता है ? अगर ये कहो कि यहाँ आकर खाते हैं तो वहाँ कौन बैठकर खाते हैं ? गरूड़ पुराण का एक पक्ष ये है कि "पितर ब्राह्मणों के पेट में बैठकर खाते हैं" जब ब्राह्मणों को न्योता दिया जाता है तो पितर ब्राह्मणों के पेट में आकर बैठकर जाते हैं। जब ब्राह्मण खीर खाता है तो पितर उस खीर को बीच में ही लपक लेते हैं पेट तक पहुँचने ही नहीं देते जैसे चील ऊपर फेंके गए रोटी के टुकड़े को ऊपर से ही ऊपर लपक लेती है। नीचे नहीं गिरने देती। (चारों तरफ हँसी का वातावरण ·········) क्या यह बात कोई भी व्यक्ति मान सकता है ? क्यों कि अगर पेट में बैठे हुए पितर खीर को खा जावे तो उस खुराक से ब्राह्मणों की भूख दूर नहीं होनी चाहिए। दूसरा पक्ष ये है कि "पितर ब्राह्मणों के साथ बैठकर खाते हैं।" इस पर सवाल ये हैं कि क्या पितरों के लिए अलग से भोजन परोसा जाता है या पितर ब्राह्मणों वाली थालियों में ही खा जाते हैं? अगर कहो कि पितरों के लिए अलहदा थालियां परोसी जाती हैं, तो ये बात प्रत्यक्ष के विरुद्ध है। और अगर कहो कि ब्राह्मणों की थालियों में ही खा जाते है तो ये बताओं कि पहले ब्राह्मण खाते हैं या पितर या दोनों एक साथ। अगर कहो कि ब्राह्मण पहले खाते तो क्या बाद में पितर ब्राह्मणों का भूठा खाते हैं ? अगर कहो कि पितर पहले खाते हैं तो ब्राह्मण पितरों का भूठा खाते हैं। अगर दोनों इकट्ठे खाते हैं तो दोनों ही भूठा खाते हैं, (सभा में सन्नाटा ·······) भूठा खाना शास्त्रों के विरुद्ध है। अगर पितर खाने के लिए अपने पुत्र आदि के घर आते हैं तो श्राद्धों के दिनों में ऐसे दृश्य दिखाई देने चाहिए कि सैकड़ों जानवर और मनुष्य मर जाएं,

और दो घन्टे के बाद ही जीवित हो जाएं, क्यों कि पितर अपनी योनि को छोड़कर ही तो भोजन करने आवेंगे, पर ऐसे दृश्य हमको आज तक कहीं नहीं दिखाई दिये, या सभा में से कोई खड़ा होकर बतावे कि किसी ने ऐसा दृश्य देखा हो। या स्वयं पंडितजी बतावे। वर्तमान मनुस्मृति में यह लिखा है कि—"जब ब्राह्मणों को निमन्त्रण दिया जाता है तो पितर उसके पीछे-पीछे लग जाते हैं, अगर ब्राह्मण बैठता है तो पितर भी बैठ जाते हैं। यदि ब्राह्मण खड़ा होता है, तो पितर भी खड़ा हो जाता है। यदि ब्राह्मण चलता है, तो पितर भी चलने लग जाता है। यह बात भी बुद्धि के विपरीत है। भला अगर किसी के चार लड़के हों एक बम्बई में दूसरा कलकत्ते में तीसरा दिल्ली में तथा चौथा लाहौर में रहता हो, और चारों ने श्राद्ध तो एक ही दिन करना है, तो पितर बेचारे को तो बड़ी आपत्ति आ गई। बतलाओ वह बम्बई वाले ब्राह्मण के पीछे फिरेगा या कलकत्ते वाले के या दिल्ली के या लाहौर वाले ब्राह्मण के पीछे?

पंडित अखिलानन्द जी कविरत्न—

श्राद्धों मे पितरों के निमित्त ब्राह्मणों को खिलाया हुआ भोजन इस तरह पहुँचता है जैसे लैटर बक्स के द्वारा चिठ्ठी और मनीआर्डर पहुँचता है। (जनता में हँसी ·········) इस तरह पितरों को सब कुछ मिल जाता है। देखो आर्य समाजी लोग भी स्वामी दयानन्द का श्राद्ध करते हैं, आर्य पर्व पद्धति में दयानन्द के नाम की आहूती देनी लिखी है! "दयानन्दाय स्वाहा" इससे सिद्ध है कि मृतक श्राद्ध को आर्य समाजी भी मानते है।

पंडित मनसाराम जी वैदिक तोप—

वाह! वाह!! खूब कही लैटर बक्स में तो ऊपर से चिठ्ठी डाली जाती है। और नीचे से निकाली जाती है। क्या इसी तरह से ब्राह्मण जो ऊपर से खीर खाते हैं वह भी ब्राह्मणों के नीचे से निकल कर पितरों को मिलती है? और मनीआर्डर वाली बात! तो सर्वथा असत्य है क्यों कि मनीआर्डर करते समय हमको पता लिखना पड़ता है; क्या श्रद्ध करने वाले को भी अपने पितरों का पता है कि वो कहां हैं? और क्या कभी बिना पते के भी मनीआर्डर होता है? और फिर मनीआर्डर की तो रसीद वापिस लौटकर आ जाती है। तो क्या तुम्हारी खीर पूड़ी की भी कभी रसीद आई है? कि वो पहुँची भी है या नहीं। या पार्सल रास्ते में ही लुट जाता है? यह हमारे पास आर्य पर्व पद्धति है। इसमें कहीं भी "दयानन्दाय स्वाहा" नहीं लिखा है, अगर हिम्मत है तो इसमें से निकाल कर दिखाओ?

पंडित अखिलानन्द जी कविरत्न—

लाइये मैं दिखाता हूँ, (पुस्तक लेकर आधा घन्टे तक उलटते-पलटते रहे पर उसमें उन शब्दों को, बार-२ ललकारने पर भी नहीं दिखा सके) (सभा में सन्नाटा············)

पंडित मनसाराम जी वैदिक तोप—

आपके पद्म पुराण में यह कथा आती है कि एक ब्राह्मण व ब्राह्मणी थे; वे दोनों मर गए तो ब्राह्मणी तो मर कर कुतिया बनी और ब्राह्मण मर कर बैल बना और दोनों अपने पुत्र के घर में ही आ गए, जब उस पुत्र के माता-पिता का श्राद्ध आया तो उसने अपनी स्त्री को कहा कि मैं तो बैल को लेकर खेत में हल जोतने के लिए जाता हूँ, आज मेरे माँ-बाप का श्राद्ध है। तुम अच्छी प्रकार के भोजन बनाकर ब्राह्मणों को खिला देना। यह कह कर लड़का तो बैल लेकर खेत में चला गया, पीछे से स्त्री ने खीर बनाई, जब खीर बन कर तैयार हो गई तो स्त्री ने खीर का बर्तन चूल्हे से उतार कर चौके में रख दिया, स्त्री तो किसी काम के लिए बाहर गई, इतने में सांप ने खीर के बर्तन में मुंह डाल दिया, कुतिया बैठी हुई देख रही थी, उसने समझा कि खीर में सांप का विष गिर गया होगा, इस खीर को ब्राह्मण खायेंगे तो वो मर जायेंगे मेरे बेटे को पाप लगेगा। इसलिए उसने अपनी पुत्रवधू के सामने उस खीर के बर्तन में मुँह डाल दिया, कि इस खीर को मेरी झूँठी समझ कर, यह बहु ब्राह्मणों को न देवे। बहु ने यह देखते ही चूल्हे में से जलती-२ लकड़ी निकाल कर कुतिया की पीठ पर ऐसे जोर से मारी कि उसकी कमर टूट गई, और वह कुतिया चिल्लाती हुई भाग गई, स्त्री ने वह खीर फेंक दी फिर चौका-बर्तन शुद्ध करके भोजन बनाया, और ब्राह्मणों को खिला दिया। इसके पीछे वह लड़का भी बैल को लेकर

वापिस आ गया, आधी रात के समय वो कुतिया बैल के पास गई और कहने लगी कि देखो ! हमारे बेटे ने आज व्यर्थ ही श्राद्ध किया, मुझे तो आज झूठा टुकड़ा भी नहीं मिला एवं मेरी पीठ भी दर्द कर रही है। (जनता में तालियों की गड़गड़ाहट ....)। बैल ने कहा मुझे भी लड़का प्रातः काल से खेत में ले गया, मेरा मुँह रस्सी से बाँध कर अब तक हल में चलाता रहा, एक तिनका भी मेरे पेट में नहीं गया। अब यह आपका ही श्राद्ध है ! और आपका ही पुराण है! ! कहिए क्या कहना है पं० जी ये कथा झूठी हो या सच्ची, हमको इससे कुछ मतलब नहीं, पर इससे यह सिद्ध है ! ! ! कि श्राद्ध का भोजन उसके माता-पिता को नहीं मिला, जो उसके घर में ही मौजूद थे, इससे सिद्ध है कि ब्राह्मण का किया हुआ भोजन मृत पितरों को नहीं पहुँचता।

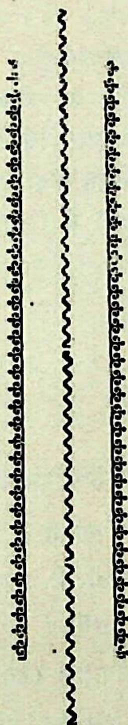
नोट—

पण्डित अखिलानन्द जी की ये अन्तिम बारी थी, तो वह अब बोलने को खड़े हुए और अपनी पुरानी बातों को ही दोहराते रहे, नये प्रश्नों को छुआ तक नहीं और न ही किसी बात का कोई उत्तर दिया, पण्डित मनसाराम जी की इनके बोलने के बाद अन्तिम बारी बोलने की थी। अतः ज्योंहि पण्डित मनसाराम जी बोलने को खड़े हुए त्योंहि पण्डित अखिलानन्द अपने पौराणिक दल के साथ अपनी पुस्तकें बाँधकर रफूचक्कर हो गये। हालांकि यह शास्त्रार्थ के नियमों में पहले ही निश्चय हो चुका था कि जो पक्ष अन्तिम भाषण समाप्त होने से पहले उसको बिना सुने भाग जायेगा या जयकारे आदि बोलेगा, उसकी हार मानी जायेगी। पर इस नियम की परवाह किये बिना वह भाग गये, और बाहर से किसी पौराणिक ने एक ईट का टुकड़ा पण्डित मनसाराम जी को मारा, जो उनको न लगकर उनके सामने मेज पर आकर गिरा, परमात्मा की कृपा से पण्डित मनसाराम जी बाल-२ बच गये। फिर शेष रहे लोगों को बिठा कर आर्य समाज मन्दिर में ही पण्डित मनसाराम जी का अन्तिम भाषण जो शास्त्रार्थ विषय का उपसंहार रूप था कराया गया। पण्डित जी ने मृतक श्राद्ध की धज्जियाँ उखाड़ फेंकी, भाषण समाप्त करके शान्ति पाठ हुआ, उसके बाद वैदिक धर्म आदि नारों के साथ सभा विसर्जित की गई। इन दोनों शास्त्रार्थों का संगरूर निवासी व आस पास से आई जनता पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा, नगर में सनातन धर्मियों के विरुद्ध सिद्धांतों पर यत्र-तत्र चर्चा होती रही। एवं आर्य समाज का बहुत ही अच्छा प्रभाव रहा।



तिरेपनवां शास्त्रार्थ

स्थान : बेहट (जिला—सहारनपुर) उ० प्र०



विषय : मोक्ष विचार

अध्यक्ष : श्री कृष्ण लाल (एडवोकेट)

दिनांक : १० व ११ जौलाई, सन् १९६६ ई०

शास्त्रार्थ कर्त्ता आर्य समाज की ओर से : श्री पंडित ओम प्रकाश जी शास्त्री "विद्याभास्कर"

सहायक : श्री पंडित शान्ति प्रकाश जी गुड़गांवा निवासी

शास्त्रार्थ कर्त्ता ईसाईयों की ओर से : श्री पादरी गुलाम मसीह जी

सहायक : श्री पादरी डीम साहब जी

मध्यस्थ : श्री धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड

प्रांगण : जनता इंटर कालेज (बेहट)

शास्त्रार्थ के आयोजन कर्त्ता : जिला आर्य प्रतिनिधि सभा (सहारनपुर) उ० प्र०
मंत्री श्री राजेन्द्र प्रसाद आर्य

शास्त्रार्थ से पहले

आर्य उप प्रतिनिधि सभा जिला सहारनपुर (उ० प्र०) की ओर से दिनांक १० व ११ जुलाई सन् १९६९ ई० को जनता इन्टर कालेज (वेहट) के प्रांगण में यह शास्त्रार्थ हुआ जिसे हजारों व्यक्तियों ने देखा था, इसाई पादरियों द्वारा प्रचार में चैलेन्ज दिये जाने पर सभा ने उनका चैलेन्ज स्वीकार करते हुए विद्वानों को बुलवा कर शास्त्रार्थ का आयोजन कर वैदिक धर्म की दुन्दुभी बजाई। इस शास्त्रार्थ में आर्य समाज की भारी विजय हुई, एवं इसाईयों को मुंह छुपा कर भागना पड़ा, शास्त्रार्थ लिखित व मौखिक दोनों प्रकार से हुआ था, परन्तु काफी प्रयास के बाद मुझे केवल लिखित शास्त्रार्थ ही उपलब्ध हो सका जो इस ग्रन्थ में दे रहा हूँ। भाषा ज्यों की त्यों लिखि हुई है। उसमें एक शब्द की भी रद्दो वदल नहीं है। इस शास्त्रार्थ का इतना अच्छा प्रभाव रहा था कि आज भी उस इलाके के व्यक्ति इस शास्त्रार्थ को याद करते हैं।

निवेदक—
"लाजपत राय आर्य"

शास्त्रार्थ सम्बन्धी प्रश्न पत्र संख्या १—

१. आर्य समाज के सिद्धान्तानुसार "मोक्ष" की परिभाषा क्या है ?

२. जीव आत्मा मुक्त अवस्था को कब प्राप्त करता है ?

३. क्या जीव आत्मा सनातन और अविनाशी है, जन्म और मरण रहित है ? और बदलता नहीं है, और आत्मा हर बन्ध में बगैर किसी कमी और बढ़ाव में वहीं आत्मा है ?

४. मुक्त अवस्था में जीव आत्मा कितने समय तक रहता है ?

५. जब से संसार की उत्पत्ति हुई, तब से अब तक ऐसे मुक्ति के समय कितने वार पूरे हो चुके हैं अथवा कितने महाकल्प पूरे हुए है?

६. जीव आत्मा मुक्त अवस्था में लीन होता है या नहीं ? अगर लीन होता है तो किस दरजे पर पहुँच कर होता है, अगर लीन नहीं होता तो मुक्त अवस्था में उसकी रहने की जगह कौन-सी है ?

७. तमाम जीव आत्मा आवागमन के द्वारा भले कर्मों के कारण कितनी बार "मुक्त" हो चुके हैं।

कृपया आप उक्त प्रश्नों के जवाब दें।

तारीख १०-७-१९६९ — "ह० गुलाम मसीह"

शास्त्रार्थ सम्बन्धी उत्तर पत्र संख्या १—

१. तीनों प्रकार के दुःखों से जीव की अत्यन्त निवृत्ति।

२. जब जीव मानव देह में आकर निष्पाप अर्थात् केवल पुण्य मात्र कर्म स्वाभाविक रूप से करने लगता है तब वह मोक्ष का पात्र बनता है।

३ हां, जीव स्वरूप से अनादि और अनन्त है। परन्तु स्वाभाविक रूप से चेतन और कर्म में स्वतन्त्र होने के कारण जो कर्म करता है उनके अनुसार परमात्मा की न्याय व्यवस्था से शरीरों में आता जाता रहता हैं, विभिन्न शरीरों में जन्म लेने पर भी जीव के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं पड़ता हैं परन्तु शरीरों के साधनों के आधार पर उसकी शक्ति के इन्तजार में अन्तर अवश्य प्रकट होता है।

४. परान्त काल तक।

५. असंख्य बार जिन्हें परमात्मा ही जानता है।

६. इस प्रश्न को स्पष्ट करें आपका क्या भाव है?

७. इस प्रश्न का उत्तर पूर्व प्रश्न के उत्तर में आ चुका है—यह अल्पज्ञ जीव के ज्ञान से बाहर हैं। केवल सर्वज्ञ परमात्मा ही जानता है।

१०-७-६६ "ह०—ओम्प्रकाश शास्त्री"

शास्त्रार्थ सम्बन्धी प्रश्न पत्र संख्या २—

८. जीव आत्मा के बन्ध का क्या कारण है?

९. क्या ईश्वर का स्वाभाविक गुण पैदा करना है या नहीं?

१०. ईश्वर जन्म देने में स्वतन्त्र है या नहीं? यदि स्वतन्त्र है तो जीव कर्मों के आधीन कैसे हो सकता है? क्योंकि जीव का पाप परमेश्वर की पवित्रता के विरुद्ध है, इसलिए अपने विरुद्ध ही जीव पाप के अधीन होगा या नहीं? यदि अधीन हैं तो यह बुद्धि और धर्म के विरुद्ध है और इससे यह भी सिद्ध होता है कि मुकददम इल्ले फामली जीव होगा या परमात्मा? सत्यार्थ प्रकाश अध्याय ८ में स्वामी दयानन्द जी फरमाते है कि मुख्य निमित्त कारण परमात्मा है?

११. जीव के जन्म के कारण कितने हैं और कौन-कौन से हैं?

१२. आवागमन के चक्कर में अथवा योनियों में ईश्वर जीव को किस अभिप्राय के लिए भेजता है?

१३. आवागमन के सबूत में दलीलें दीजिए जिनसे सिद्ध हो सके कि आवागमन की शिक्षा ठीक है?

१४. क्या ईश्वर पवित्र है या नहीं? यदि पवित्र है तो पाप पर उसकी कभी विजय होगी या नहीं?

१५. ईश्वर ने सृष्टि को पैदा किया तो उसको आज तक कितना समय हुआ है? जिसमें जीव आत्मा आवागमन में आता जाता रहता हैं? कृपया जवाब दें।

१०-७-६९ "ह०—गुलाम मसीह पादरी"

८. अविद्या और उसके तजन्य कर्म। इन्हीं कर्मों के कारण जीव बन्धन में डाला जाता है।

९. सृष्टि का पैदा करना, रखना और उसका प्रलय करना तथा जीवों के पाप पुण्यों का फल ठीक-ठीक देना यह परमेश्वर के स्वाभाविक कर्म हैं।

१०. वह जीवों के कर्मानुसार ही फल देता है क्योंकि स्वतन्त्रता का अर्थ बिना हेतु कार्य करना नहीं होता अपितु ईश्वर की सर्वशक्ति मत्ता और स्वतन्त्रता का भाव इतना ही है कि वह निमित्त कारण के रूप में किसी अन्य व्यक्तित्व की सहायता नहीं लेता।

११. जीव के गुण कर्म तथा स्वभाव ही जन्मों के कारण हैं।

१२. उसके सुधार के लिए ताकि वह पवित्र कर्म करके मोक्ष का अधिकारी बन सकें।

१३. आज "आवागमन" शास्त्रार्थ का विषय नहीं हैं। इस पर चाहें तो कल शात्रार्थ कर सकते हैं।

१४. ईश्वर तो पूर्ण पवित्र है परन्तु निज पापों पर विजय तो स्वयं अपने प्रयत्न से करनी होगी अर्थात् जब तक स्वयं जीव पाप कर्म करना नहीं छोड़ता। तब तक वह पाप को नहीं जीत पाता यदि पापों से बचाने की जिम्मेदारी स्वयं जीव की न होकर ईश्वर की होती है तो संसार में सभी को निष्पाप हो जाना चाहिए था और जो पाप संसार में व्याप्त है उसका उत्तरदायित्व परमात्मा पर होगा परन्तु ऐसा मानना सर्वथा अयुक्त है।

१५. सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय का चक्र तो अनादि है परन्तु इस सृष्टि को लगभग २ अरब वर्ष (१,९७,२९, ४९,०७० वर्ष) पैदा हुए हो गए हैं।

१०-७-६९

"ह० — ओमप्रकाश शास्त्री"

शास्त्रार्थ सम्बन्धी प्रश्न पत्र संख्या ३—

१६. प्रश्न संख्या 1 के जवाब के अनुसार तीनों प्रकार के दुःखों के नाम बताइये और उन दुःखों से जीव की अत्यन्त निवृत्ति कैसे होती है ?

१७. प्रश्न संख्या २ के जवाब के अनुसार क्या जीव आत्मा का स्वाभाविक रूप पुण्य करना है, वह पाप नहीं करता है और जीव आत्मा देह में आकर निष्पाप रहता है ?

१८. प्रश्न संख्या २ के जवाब के अनुसार आपने माना है कि जीव आत्मा का स्वाभाविक रूप पुण्य है तो प्रश्न पत्र संख्या ३ के अनुसार परमात्मा की न्याय व्यवस्था उसके शरीरों में आता जाता रहने का सवाल नहीं उठता क्योंकि उसने कोई पाप नहीं किया है, अगर पाप किया है तो उसका स्वाभाविक रूप पुण्य न रहा ?

१९. जीव का अनादि गुण क्या है ? पुण्य है या पाप है, या कुछ और है ?

२०, प्रश्न संख्या ४ के जवाब के अनुसार परान्तकाल का समय कितना है ?

२१. जीव की मुक्ति अनन्त के लिए है या नहीं ? जबकि आपके प्रश्न ५ के जवाब के अनुसार महाकल्प की तादाद सिर्फ परमात्मा ही जानता है और उसका समय भी परमात्मा ही जानता है और उसकी गिनती भी परमात्मा ही जानता है तो आपके पास क्या सबूत है कि महाकल्प होता है, किसी धर्म शास्त्र का हवाला नहीं बल्कि सबूत दें क्योंकि हवाला कभी सबूत नहीं होता है ?

२२. महाकल्प कितने वर्षों का है ?

१०-७-१९६९

"ह०—गुलाम मसीह"

शास्त्रार्थ सम्बन्धी उत्तर पत्र संख्या ३—

१६. आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक। ये तीनों दुःख अज्ञानजन्य है इसलिए ज्ञानपूर्वक शुभ कर्म करके ही दुःखों से मुक्ति सम्भव है।

१७. जीव अपनी स्वाभाविक अल्पज्ञता के कारण पाप तथा पुण्य रूप विविध कर्म करता हैं, अतः जब वह पूर्ण निष्पाप नहीं होता तब तक दुःख सुख रूपी द्वन्द्वों में फंसा रहता है जब पूर्ण निष्पाप हो जाता है तो परमेश्वर के सान्निध्य से आनन्द को अनुभव करता है इस ही स्थिति का नाम "मोक्ष" है।

१८. जीवात्मा का स्वाभाविक रूप पुण्य है ऐसा मैंने नहीं लिखा—अपितु जब जीव स्वाभाविक रूप से अर्थात खसलतन केवल पुण्य मात्र कर्म करता है तब वह मोक्ष को प्राप्त करता है।

१९. जीव का अनादि गुण न केवल पुण्य करना है और न पाप करना अपितु जीव अल्पज्ञता तथा स्वतन्त्रता के कारण चेतन होने की दशा में दोनों प्रकार के कर्म करने में स्वतन्त्र है तथा उसके फल भोगने में परतन्त्र है।

२०. यह आपको हमारे ग्रन्थों को पढ़कर जानना चाहिए क्योंकि यह एक हमारे सिद्धांत की "इस्तला" (पारिभाषिक शब्द) है उसे जाने बिना आप इस विषय पर शास्त्रार्थ करने को क्यों उद्यत हुए ?

२१. यदि मुक्ति का प्रारम्भ है तो उसका अन्त भी अवश्य होगा। एक किनारे की नदी कभी नहीं होती, चूंकि कर्म सीमित है तो उसका फल भी सीमित ही होगा अतः परान्तकाल के उपरान्त जीवात्मा पुनः जन्म लेने की स्थिति में आ जाता है।

२२. इसके उत्तर के लिए उत्तर संख्या २० देखें।

१०-७-१९६९

"ह० ओमप्रकाश शास्त्री"

शास्त्रार्थ दिनांक ११ जुलाई सन् १९६९ ई० (दूसरा दिन)

प्रश्न कर्त्ता :—श्री ओमप्रकाश जी शास्त्री

उत्तर दाता :—श्री पादरी गुलाम मसीह जी

अध्यक्ष :—श्री सेठ रामलाल जी अग्रवाल

नोट—

शेष अधिकारी १० जौलाई वाले ही रहे।

शास्त्रार्थ सम्बन्धी प्रश्न पत्र संख्या १—

सेवा में,

श्री पादरी साहिब ! कृपया आप निम्न प्रश्नों का समाधान करने की तकलीफ करें !

१. "मोक्ष" शब्द के आपके यहाँ लफ्जी मायने (अर्थ) क्या हैं ?

२. जीव को ही मोक्ष मिलता है तो आपके अकीदे में जीव की क्या तारीफ़ है ?

३. आया मोक्ष कर्मों पर मबनी है या ईश्वर की इच्छा या रहम पर ?

४. मोक्ष में जीव के क्या अहसासात होते हैं ?

"ह०—ओमप्रकाश शास्त्री"

११-७-१९६९

शास्त्रार्थ सम्बन्धी उत्तर पत्र संख्या १—

१. "मनुष्य ने जितने पाप किये हैं उनकी सजा से छुटकारे को पाना उसके पापों का क्षमा होना अथवा ईश्वर पापी के पापों को माफ कर दें और फिर कभी याद न करें। पापी मनुष्य की गुनाह कराने की आदत जाती रहें अर्थात् मनुष्य का पाप करने का स्वभाव जाता रहे। पहला युहन्ना अध्याय ३ जो कि खुदा से पैदा हुआ है वह गुनाह नहीं कर पाता क्योंकि उसका तुख्य उसमें बना रहता है बल्कि गुनाह ही नहीं कर सकता क्योंकि वह खुदा से पैदा हुआ है।

२. आत्मा ईश्वर की सृष्टि है।

३. मोक्ष कर्मों पर मबनी नहीं है क्योंकि ईश्वर प्रेम है और उसकी दया और अनुग्रह के द्वारा मोक्ष मिलता है जो यीशु मसीह में सिद्ध होता हैं।

४. मोक्ष में आत्मा ईश्वर के राज्य में ईश्वर की संगति का हज उठाता है।

"ह०—गुलाम मसीह"

११.७.६९

शास्त्रार्थ सम्बन्धी प्रश्न पत्र संख्या २—

५. आपके इस पत्र में ज्ञातव्य है कि पाप से छुटकारे का नाम मोक्ष है, या पाप की सजा से ? क्या केवल पापों के ढ़ाप देने मात्र से कृत कर्म समाप्त हो सकते हैं ? यदि अशुभ कर्म फल बिना ढ़ाप कर व्यर्थ किये जा सकते हैं तो क्या शुभ कर्म भी ढाप कर व्यर्थ किये जा सकते हैं ? स्पष्ट करें।

६. क्या ईसा मसीह पर केवल ईमान लाने मात्र से यह सम्भव है कि उसकी गुनाह करने की आदत जाती रहेगी या उसका स्वाभाव नष्ट हो जायेगा। यदि हाँ तो फिर क्या ईसाइयों में क्रिमिनल व्यक्ति नहीं है ? और यदि नहीं तो फिर ईसा पर ईमान लाना व्यर्थ रहा।

७. यदि मोक्ष कर्मों पर मबनी नहीं है तो फिर निम्नलिखित इन्जील के वाक्य जिनमें शुभ कर्मों को करने का आदेश है तो वह क्यों है ?

(अ) "क्योंकि परमेश्वर की इच्छा यह है कि तुम पवित्र बनो कि व्यभिचार से बचे रहों। और तुम में से हर एक पवित्रता और आदर के साथ आपने पात्र को प्राप्त करना जाने। और यह कामाभिलाषा से नहीं उन जातियों की नाई जो परमेश्वर को नहीं जानती कि इस बात में कोई अपने भाई को न ठग और न उस पर दांव चलायें क्योंकि प्रभु इन सब बातों का पलटा लेने वाला है जैसा कि हमने पहिले तुम से कहा और चिताया भी था।"

थिस्सलुनीकियों ४-४ से—६ (पृष्ठ संख्या १८२)

(ब) "क्योंकि अध्यक्ष को परमेश्वर का भण्डारी होने के करण निर्दोष होना चाहिए न हठी न क्रोधी न पियक्कड़ न मारपीट करने वाला और न नीच कमाई का लोभी। पर पहुनई करने वाला भलाई का चाहने वाला संयमी न्यायी पवित्र और जितेन्द्रिय हो और विश्वास योग्य वचन पर जो धर्मोपदेश के अनुसार है बना रहे कि खरी शिक्षा से उपदेश दे सकें और विवादियों का मुह भी बन्द कर सकें।"

(तितुस के नाम पौलुस प्रेरित की पत्री १-७-६ पृष्ठ संख्या १६१)

(स) "क्योंकि सच्चाई की पहचान प्राप्त करने के पीछे यदि हम जान बूझ कर पाप करते रहे तो पापों के लिए फिर कोई बलिदान बाकी नहीं।" (इब्रानियों १०-२६ पृष्ठ संख्या १६६)

(द) "पर जो कोई उसके वचन पर चले उसमें सचमुच परमेश्वर का प्रेम सिद्ध हुआ है। हम इसी से जानते हैं कि हम उसमें है। जो कोई यह कहता है कि मैं उसमें बना रहता हूँ उसे चाहिए कि आप भी वैसा ही चले जैसा वह चलता था।" (यूहन्ना की पहली पत्री २-५,६ पृष्ठ संख्या २१२)

(य) "वह हर एक को उसके कामों के अनुसार बदला देगा जो सुकर्म में स्थिर रहकर महिमा और आदर और अमरता की खोज में हैं उन्हें वह अनन्त जीवन देगा। पर जो विवादी हैं और सत्य को नही मानते वरन अधर्म को मानते है उन पर क्रोध और कोप पड़ेगा। और क्लेश और संकट हर एक मनुष्य के प्राण पर जो बुरा करता है आएगा पहिले यहूदी पर फिर यूनानी पर।" (रोमियों २—६—६ पृष्ठ संख्या १३३)

(र) "तुम प्रभु मसीह के दास हो और जो बुरा करता है वह अपनी बुराई का फल पायेगा वहां किसी का पक्षपात नहीं।" (कुलुस्सियो ३— २५ पृष्ठ संख्या १८०)

टिप्पणी—

इस आयत में तो अध्यक्ष अर्थात् विशप तक को सच्चरित्र रहने और शुभ कर्म करने का आदेश देकर कर्मों के महत्व को स्पष्ट स्वीकार किया गया है।

८. आत्मा यदि सृष्टि है तो उसका उपादान कारण यानी इल्लते माद्दी क्या है? और खुदा ने उसे क्यों पैदा किया?

दि० ११-७-६६ "ह०—ओमप्रकाश शास्त्री"

शास्त्रार्थ सम्बन्धी प्रश्न पत्र संख्या २—

"जय मसीह की"

५. हमने अपने पहले पत्र में इस तरह से नहीं लिखा है जैसा कि आपने प्रश्न पत्र संख्या ५ में लिखा है (पाप के छुटकारे का नाम मोक्ष है या पाप की सजा से) कृपया आप हमारा पहला पत्र पढ़ने का कष्ट करें उसमें क्या शब्द नहीं है और उस पर फिर प्रश्न करें। हम मानते हैं कि मसीहत में शुभ कर्मों को न करने की शिक्षा नहीं परन्तु यह मानते हैं कि मनुष्य अपने आप शुभ कर्म करने के योग्य नहीं, बल्कि शुभ और अशुभ कर्म अपने जीवन में दोनों कर्म करता है और यह उस समय तक ऐसा ही करता रहेगा जब तक नया जन्म अथवा पवित्र आत्मा का जन्म प्राप्त न करे।

(युहन्ना ३ अध्याय पद ३ व ५)

मसीहत में शुभ कर्मों के फल का मुतालबा है

(कुलस्यों अध्याय १ पद १०)

मनुष्य शुभ और अशुभ कर्म तो करता है मगर शुभ कर्मों का फल उसको नहीं लगता जब तक वह मसीह यीशु में आत्मिक रीति से पायबन्द नहीं होता जैसे कि खट्टे आम का पेड़ मीठे आम में वन्ध होकर स्वाभाविक रीति से मीठा फल लगता है। इसी तरह आत्मिक जन्म पाये हुए मसीह में स्वाभाविक तौर से शुभ कर्मों का फल लगता है वह स्वाभाविक रीति से अशुभ कर्म नहीं करता। (पहला युहन्ना ३-९)

मसीहत मानती है कि कोई मनुष्य पूर्ण रीति से पवित्र नहीं है बल्कि पापी है। (रोमियो ३-९ से २२)

६. मसीहत मानती है कि मसीह पर केवल ईमान लाने से पाप करने का स्वभाव नहीं जाता रहता बल्कि पाप करने का स्वभाव उस समय जाता रहता है जब मनुष्य मसीह यीशु में पाबन्द होकर नयी मखलूक बन जाता है उसका पुराना स्वभाव अथवा पाप करने वाला स्वभाव जो कि बिगड़ा हुआ स्वभाव है न कि फितरती स्वभाव बिगड़े हुए स्वभाव का सुधार यीशु मसीह में जुड़ कर या पाबन्द होकर होता है जो मसीह कहलायें क्रिमनल भी हों वह मसीह में पाबन्द नहीं हुए इसलिए उनका बिगड़ा हुआ स्वभाव बदला भी नहीं है। (बाइबल पैनियो ८-९) के अनुसार ऐसों को ईसाई नहीं कहा जाता। बाइबल का तो फैसला है कि मसीह वह है जिसमें मसीह की रूह है इसलिये जो मनुष्य इसका व्यक्तिगत अनुभव करना चाहें वह मसीह में रूहानी तौर पर पायवन्द होकर कर सकता है।

७. हम पहले भी लिख चुके है कि मसीहियत शुभ कर्मों का खण्डन नहीं करती बल्कि शुभ कर्मों से ऊपर का मुतालबा करती है अथवा शुभ कर्मों का फल और वह शुभ कर्मों का स्वभाव मसीह में पायबन्द होकर प्राप्त करता है जिसका अनुभव बहुत से सच्चे मसीहियों ने अपने जीवन में किया है वह नये मखलूक बने हैं और शुभ कर्मों का फल लाते हैं।

८. आत्मा ईश्वरीय मखलूख है, ईश्वर ने अपनी शक्ति से नेस्त को हस्त किया है, बाइबल में लिखा है— "ईश्वर अपनी आज्ञा से चीजों को ऐसे बुला लेता है जैसे मौजूद है ईश्वर ने आदम को बनाया उसने जीवन का दम फूंका कि खुदा जो मुहब्बत है अपना महबूब बनाया। मुहिब के लिए महबूब का होना जरूरी है।"

दि० ११-७-६९ "ह०—गुलाम मसीह"

शास्त्रार्थ सम्बंधी प्रश्न पत्र संख्या-३—

९. प्रश्न यह था कि क्या ईसा मसीह पर ईमान लाने मात्र से पाप की निवृत्ति जिसे आपने आदत या खसलत कहा था—वह खत्म हो जाती है? इसका आपने कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दिया।

१०. आदम को भी नेस्त (अभाव) से हस्त (भाव) नहीं किया गया बल्कि उसके लिए भी मिट्टी जो उसकी देह का इल्लते माद्दी था उसे उसने इस्तेमाल किया तो फिर जीवों को पैदा करने के लिए कौन इल्लते माद्दी उपादान कारण था? क्या यह मुमकिन है कि नेस्त से हस्त हो जावें और यदि जीव आपके अकीदें में पैदा होता है तो फिर वह अनन्त नहीं हो सकता जैसा कि आप मानते हैं, क्योंकि जो पैदा होता है वह फ़ना (नष्ट) भी नहीं होता है। और जो पैदा नहीं होता वह फ़ना (नष्ट) भी नहीं नहीं होता। यह सिद्धांत है।

११. दो परस्पर विरोधी सिद्धांत नहीं माने जा सकते या तो मोक्ष आपके ईश्वर की कृपा पर मानना होगा या कर्मों के आधार पर। बाईबिल में जो परस्पर विरोधी सिद्धांत हैं उनका समन्वय आप कैसे करेंगे?

१२ यदि आदम को ईश्वर ने अपने स्वरूप में बनाया तो ईश्वर का स्वरूप पवित्र ज्ञान स्वरूप, आनन्दमय आदि लक्षण युक्त हैं उसके सदृश आदम क्यों नहीं हुआ? जो नहीं हुआ तो उसके स्वरूप में नहीं बना और आदम को उत्पन्न किया तो ईश्वर ने अपने स्वरूप ही को उत्पत्ति वाला किया, पुनः वह अनित्य क्यों नहीं? और आदम को उत्पन्न कहाँ से किया? जैसा कि बाईबिल में लिखा है—

"जब ईश्वर ने कहा कि हम आदम को अपने स्वरूप में अपने समान बनावें। तब ईश्वर ने आदम को अपने स्वरूप में उत्पन्न किया, उसने उसे ईश्वर के स्वरूप में उत्पन्न किया उसने उन्हें नर और नारी बनाया। और ईश्वर ने उन्हें आशीष दिया। (पर्व १ आ० २६-२८)

११-७-१९६९ "ह०—ओमप्रकाश शास्त्री"

नोट—उपरोक्त प्रश्नों का पादरी सहाब उत्तर न दे सके उनके साथ पादरी डीन सहाब भी थे। समयाभाव का कारण बताकर उठ भाग खड़े हुए। आर्य समाज की भारी विजय हुई आर्य समाज, व श्री स्वामी महर्षि दयानन्द जी की जय जयकार से सारा आकाश गूंज उठा। और प्यारा "ओ३म्" ध्वज लहराने लगा।

"राजेन्द्र प्रसाद आर्य"
मन्त्री आर्य उपप्रतिनिधि सभा (सहारनपुर)

शास्त्रार्थ के अन्त में मध्यस्थ की घोषणा

१० और ११ जुलाई १९६९ को आर्य उप प्रतिनिधि-सभा जिला सहारनपुर की ओर से बेहट (जिला सहारनपुर) में ईसाई पादरी श्री गुलाम मसीह और आर्य समाज के सुप्रसिद्ध प्रचारक श्री पं० ओमप्रकाश शास्त्री के मध्य जो शास्त्रार्थ हुआ उसको आदि से अन्त तक सुनने और लिखित शास्त्रार्थ को भी देखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। ११ जुलाई को मध्यस्थता के लिए नियम पूर्वक मेरा नाम प्रस्तुत किया गया था। जो सर्वसम्मति से अनुमोदित हुआ। मैं श्री पं० ओमप्रकाश जी शास्त्री को जिन्होंने वैदिक धर्म के प्रतिनिधि रूप से शास्त्रार्थ किया विजयी घोषित करता हूँ। क्योंकि उन्होंने बड़ी योग्यता प्रमाण और तर्क द्वारा अपने पक्ष को जनता के सम्मुख रखा। पादरी गुलाम मसीह जी ने अच्छी योग्यता और शिष्टता के साथ अपने पक्ष को रखने का प्रयत्न किया जिसके लिए मैं उनकी प्रशंसा करता हूँ। किन्तु पुनर्जन्म आदि न मानने और बुद्धि विरुद्ध ईसाई मन्तव्यों में विश्वास के कारण वे पं० ओमप्रकाश जी शास्त्री के बहुत से प्रश्नों और प्रबल तर्कों का कोई सन्तोषजनक समाधान नहीं कर सके यह निष्पक्ष जनता को स्पष्ट प्रतीत हुआ।

"ह० धर्मदेव विद्यामार्त्तण्ड"

शास्त्रार्थ के अन्त में

श्री पंडित शांति प्रकाश जी शास्त्रार्थ महारथी का—

ईसाईमत पर अनुसंधानात्मक भाषण !

नक्कारा धर्म का बजता है, आये जिसका जी चाहे।
सदाकत वेद अकदस आजमाये, जिसका जी चाहे॥

आजकल ईसाई पादरी हर ग्राम और हर नगर में छा गए हैं। कई स्थानों पर उन्हें शास्त्रार्थ के लिए कहा गया। पता नहीं यहाँ इस बेहट (ग्राम) में लुके छिपे इन्होंने किस प्रकार चैलेन्ज किया। और मैं आर्य उपप्रतिनिधि सभा जिला सहारनपुर के अधिकारियों को धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने शास्त्रार्थ की चुनौती स्वीकार की और मुझे भी आपके दर्शन करने का अहोभाग्य प्राप्त हुआ। इनकी शिक्षा यह है कि यदि तुम्हारे एक गाल पर थप्पड़ मारे तो दूसरा गाल भी उसके सामने कर दो। मैंने कहा कि यदि यह सत्य है तो इस दृष्टि कोण से योरुप और अमेरिका में ईसाइयत का दिवाला निकल चुका है क्योंकि वहां इस सिद्धान्त का नामोनिशान तक दिखाई नहीं देता। अमेरीका और योरुप की इसाई जातियाँ युद्ध की तय्यारियों में वियतनाम में युद्ध मे संलग्न होकर परमाणु बम तथा हाइड्रोजन बम से भी अधिक विनाश करने वाले हथियारों से सुसज्जित होकर संसार को सर्वनाश के मार्ग पर ले जाने में वेग के साथ भागी जा रही

हैं। परन्तु अमेरिका आदि देशों में रहने वाले ईसाई इस भारतवर्ष में आकर थप्पड़ खाने का उपदेश देना भी कोई अर्थ रखता है, जिसके लिए करोड़ों डालर व्यय किये जा रहे हैं। यह सब दया के वश में होकर या भारत को मुक्ति दिलाने के कारण नहीं किया जा रहा है, अपितु इसमें भारत की शक्ति को जड़ से उखाड़ कर एशिया को साम्राज्यवाद के चंगुल में फिर से फंसाने की भावना काम कर रही है। यही भाव हजरत ईसा और उनके शिष्यों के दिल में विद्यमान थे जो उस समय के बादशाह ने असफल बना दिए। इन्जील से सिद्ध है कि हजरत ईसा मुक्तिदाता के रूप में सर्व साधारण को बहका कर अपने पीछे चलाना चाहते थे, जिससे राज्य अधिकारियों के विरुद्ध विद्रोह किया जा सके।

मसीह ने शिष्यों को आदेश दिया कि वे हथियार खरीदें। अपने माल असबाब और अपने कपड़े बेचकर भी तलवारें खरीदें। शिष्यों ने आदेश का पालन पूर्ण रूप से किया। यह नहीं कहा कि हम शान्ति के दूत हैं। संसार के मुक्तिदाता को तलवार से क्या काम? तलवारें खरीदी गईं, उनका उपयोग भी हुआ। परन्तु बादशाह को गुप्तचरों ने सूचित कर दिया था, जिससे मसीह को पकड़ने का निर्णय राज्य सत्ता को करना पड़ा।

मसीह के प्यारे शिष्यों में एक "यहूदा" नाम के शिष्य ने केवल ३०) रु० रिश्वत के लोभ में मसीह को पकड़वाने में कुछ भी संकोच न किया। वह सिपाहियों को वहाँ ले आया, जहाँ ईसा अपने शिष्यों समेत छिपे हुए थे। यहूदा ने मसीह के पैर पकड़ कर कहा – रे रब्बी ! सलाम। सिपाही समझ गये कि यही ईसा है जो यहूदियों का बादशाह बनना चाहता है। मसीह के शिष्य लड़ने को उद्यत हो गए। एक ने तलवार भी चलाई और एक सिपाही का कान कट गया। किन्तु शिष्यों की हार हुई। ईसा मसीह पकड़े जाकर अपराध सिद्ध होने पर फाँसी पर चढ़ा दिए गए। उनके शरीर पर एक तख्ती लटका दी गई कि यह यहूदियों का बादशाह है।

सिपाहियों, यहूदियों और जनता ने ईसा से कहा कि आप कल तक तो चमत्कार व करामात के दावेदार थे आज क्या हो गया? यदि कोई चमत्कार है तो फाँसी से बचकर दिखाइए। तब हम जानें कि तू सच्चा ईश्वर का रसूल है। इस अवस्था में हम तुम्हें अपना बादशाह स्वीकार कर लेंगे। मसीह चिल्लाया और ईश्वर से प्रार्थना की कि "ऐली ऐली लिमा सबक तनी" ऐ परमेश्वर ! ऐ खुदा !! तूने मुझे क्यों छोड़ दिया। यह मौत का महादुःख मुझ से टाल दे। किन्तु कुछ न बन सका। न चमत्कार दिखाया जा सका न ही करामात। आखिर फाँसी ने अपना काम किया और प्राण निकल गये। युसुफ ने लाश को कबर में दबा दिया। दूसरे शिष्य ताड़ में थे कबर उखाड़ फैंकी, लाश गुम कर दी गई और प्रसिद्ध कर दिया कि मसीह फाँसी पाकर फिर जीवित हो आकाश को चढ़ गया। वह संसार के पापों के बदले स्वयं फाँसी पर चढ़ कर संसार के लिए कुफ्फारा करके ईमानदारों को पापों से मुक्ति दिलवा गया। पादरियों को अवसर मिल गया कि वे मसीह के नाम का ढिंढोरा पीट कर लोगों को ईसाई बनावें, अपने सांसारिक तथा राजनैतिक स्वार्थों को पूरा करें कि मसीह तुम्हारे लिए मुक्तिदाता है। यदि तुम मसीह की भेड़ों में शामिल होकर ईसा पर विश्वास लाओगे तो तुम्हारे पाप क्षमा कर दिए जायेंगे। तुम्हारी सिफारिश मसीह स्वयं करेंगे और तुम मुक्ति का अधिकार प्राप्त करोगे।

जनता को बहकाने का यह ढंग खूब निराला है। यदि मसीह में करामात व चमत्कार होता तो फाँसी से बचने की करामात दिखा कर यहूदियों की शर्त पूरी करके उनके बादशाह बनते। मसीह से उनके देश के लोगों ने करामात देखनी चाही तो न दिखा सके और कह दिया कि नबी असम्मानित नहीं होता। किन्तु अपने देश में इसलिए आसरा छोड़ना पड़ा है। आज पादरी लोग अशिक्षितों के सामने भारत में करामात की डींग मार रहे हैं। यदि उन्हें अपने वचन का ध्यान है तो "साहस करके आयें और जहाँ चाहें आयें और जहाँ चाहें चमत्कार दिखायें या शास्त्रार्थ कर लें" आर्य समाज हर समय तैयार है। मसीह के जीवित हो आकाश पर जाने की कहानी को ठीक करके दिखायें अन्यथा ईश्वर से भय खाएं और भ्रमों से बचें। स्वर्ण, सुन्दरी तथा भूमि का लोभ देकर लोगों को ईसाइयत के चंगुल में न फंसायें।

मैं भारतीय, अमेरिकन और यूरोपियन पादरियों को आर्य समाज की ओर से खुला चेलेन्ज देता हूँ कि वे ईसा मसीह को मुक्ति दाता सिद्ध करें। जब कि बाइबिल स्वयं इस बात का निषेध करती है। बाइबिल में कितने ही स्थानों पर शुभ कर्मों से मुक्ति का प्राप्त होना लिखा है। देखिये—

१. इस प्रकार ईमान भी यदि उसके साथ शुभ कर्म न हो तो वह अपनी सत्ता से मुर्दा है। —याकूब

२. तू इस बात पर ईमान रखता है कि खुदा एक है। खर अच्छा करता है ......किन्तु ए निकम्मे आदमी! क्या तु यह भी नहीं जानता कि ईमान शुभ कर्मों के बिना बेकार है। —याकूब

३. बस तुमने देख लिया कि मनुष्य केवल ईमान से नहीं अपितु शुभ कर्मों से रास्ताबाज बनता है। —याकूब

४. जो मुझसे ऐ खुदावन्द ! ऐ खुदा वन्द!! कहते हैं। उनमें से हर एक आकाश के साम्राज्य में न पहुँचेगा। किन्तु वही जो मेरे आसमानी बाप की इच्छा पर चलता होगा। —मती

५. तुम धोखे में न पड़ो। ईश्वर ठट्टे में नहीं उड़ाया जाता क्यों कि मनुष्य जो कुछ बोता है वही काटेगा। —गलेतों

६. तू अपनी बातों से ही पापी और अपनी बातों से ही निष्पाप ठहरेगा। —मती

७. फिर उसने कहा-होश्यार हो कि तुम क्या सुनते हो जिस नाप से तुम नापते हों उसी से तुम्हारे लिए नापा जायेगा। —मती

८. कि हाकिम धर्मात्माओं को नहीं पापियों को भय का कारण है। बस यदि तू चाहे कि हकूमत से न डरें तो नेकी कर। —रोमियो

९. क्योंकि प्रभु की आँखें धर्मी लोगों पर हैं और उसका कान उनकी प्रार्थनाओं पर किन्तु पापी खुदाबन्द की दृष्टि में हैं। —बतरस

१०. क्योंकि इब्न आदम अपने पिता के जलाल में अपने फरिश्तों के साथ आयेगा तब हर एक को उसके कर्मों के अनुसार बदल देगा। —मती

बाइबिल के दस प्रमाण पेश किए गए हैं, कि मुक्ति ईमान पर नहीं अपितु शुभ कर्मों से प्राप्त होती है। यहाँ वैदिक सिद्धान्त है जो वेद के कितने ही मन्त्रों में बताया गया है। यहाँ केवल एक मन्त्र ही पर्याप्त होगा—

प किल्विषमत्त ना धारोस्ति न यन्मित्रैः सममान एति।
अनूनं पात्रं निहितं न एतत पक्तारं पक्‍: पुनराविशगति॥ (अथर्ववेद)

इस मन्त्र का भाव यह है कि ईश्वर के न्याय में कोई भी दोष, कभी नहीं है। सिफारिश भी नहीं चल सकती और न कोई मनुष्य अपने किसी मित्र या पीर पैगम्बर की सहायता से स्वयं किए हुए पाप के बदले से चूक सकता है।

ईश्वर ने हर रूह के साथ मन का पात्र लगाया है दिल के बर्तन में जैसे भी अच्छे बुरे कर्मों के प्रभाव डाले जावें, उसी के अनुसार फल देना ईश्वर का नियम है। जैसा कोई बोता है वैसा ही काटता है ईश्वरीय न्याय में रत्ती भर का अन्तर नहीं आता।

बाइबिल के उपर्युक्त अन्तिम प्रमाण में आदम के बेटे को फरिश्तों के साथ आकर और कर्मों के अनुसार बदला देने का वर्णन है। इब्न आदम का अर्थ यहाँ ईसा मसीह से है। बाइबिल के हिन्दी अनुवादों में इसके अर्थ मनुष्य के पुत्र किए गए हैं। जिससे स्पष्ट है कि ईसा मसीह मनुष्य का पुत्र था। किन्तु ईसाइयों ने उसे खुदा का इकलौता बेटा कहना शुरू कर दिया। हालांकि स्वयं बाइबिल में फरिश्तों को भी "खुदा के बेटे" लिखा है। फिर शुभ कर्मी तमाम के तमाम खुदा के बेटे हैं। सन्धि करने वाले खुदा के पुत्र हैं। दाऊद बादशाह, मसीह और खुदा का पहलोटा बेटा कहलाया। सुलेमान का भी मसह हुआ जिससे वह भी मसीह और खुदा का बेटा है। विशेष कर आदम को बिना माता पिता के सीधा खुदा से पैदा हुआ माना गया है। इसलिए हजरत ईसा के केवल खुदा का इकलौता बेटा होने की विशेषता और इस कारण से उसके द्वारा पापों की क्षमा की आशा का सिद्धांत समाप्त हो गया। ईसाइयों

का यह प्रोपैगण्डा कि ईसा पर ईमान लाने से पाप क्षमा होकर स्वर्ग मिलता है और ईसा खुदा का बेटा है। वह स्वयं बाइबिल के सिद्धान्तों के प्रतिकूल होने से भी अमान्य है।

फिर हजरत ईसा इब्न मरियम या मरियम के बेटें भी कहलाते हैं इसलिए यह स्वयं पाप से रहित थे, यह सिद्धान्त भी गलत है। क्योंकि आदम ने खुदा की अवज्ञा करके स्वर्ग के निषिद्ध वृक्ष से फल खाया और आदम के इस अपराध के कारण भूमि धिक्कृत हुई किन्तु आदम को बहकाया उसकी स्त्री हव्वा ने। इसलिए स्त्री क्यों कर पापों से पवित्र हो सकती है ?

ईसाइयों के सिद्धान्त के अनुसार यदि ईसा मसीह बिना बाप का होने से निष्पाप थे तो स्त्री से पैदा होने के कारण कम से कम आधे पापी तो अवश्य मानने होंगे। फिर बाइबिल की स्वयं आज्ञा है कि—

१. कोई सत्कर्मी नहीं। एक भी नहीं। —रोमियों

२. कौन कह सकता है कि मैंने अपने दिल को शुद्ध किया है और पाप से शुद्ध हूँ। —अमसाल

३. यदि हम कहें कि हम निष्पाप हैं तो हम झूठे हैं और अपने आप को धोखा देते हैं। —युहन्ना

४. कोई मनुष्य पृथ्वी पर ऐसा सत्यवादी नहीं कि नेकी करें और भूल न करें। —वाअज

५. कोई मनुष्य जैसी जान तेरे हजूर में सत्यवादी नहीं ठहर सकती। —रबूर

हजरत ईसा भी पादरी के कथनानुसार स्त्री से पैदा होने के कारण बाइबिल के सिद्धान्त को सामने रखते हुए सच्चे न थे। हम यह स्वयं नहीं कहते अपितु बाइबिल कहती है। इसलिए ईसाई मित्रों को हमारे से नहीं अपितु बाइबिल से गिला होना चाहिए। और यदि ईसाई बाइबिल को सच्चा मानते हैं तो ईसा के मर्द से पैदा न होने का सिद्धान्त केवल इन्हें निष्पाप सिद्ध करने के लिए काफी नहीं है। जबकि स्त्री से पैदा होने पर भी निष्पाप होना बाइबिल से सिद्ध करना कठिन है।

ईसाइयों का सिद्धान्त है कि ईसा मसीह मरियम से बिना अपने पिता के द्वारा उत्पन्न हुए थे। मरियम पवित्रात्मा से, बिना अपने किसी मानवीय साधन से, गर्भवती हुई जिससे ईसा मसीह की उत्पत्ति हुई यह भी चमत्कार के रूप में माना जाता है। किन्तु इस प्रकार की उत्पत्ति सर्वथा असम्भव है। क्योंकि किसी भी मनुष्य की केवल माता से (पिता के बिना) उत्पत्ति असम्भव है। यह बात प्रकृति नियम के प्रतिकूल होने से बुद्धिमानों के निकट भी मानने योग्य नहीं है। सत्यार्थ प्रकाश में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने कुंवारी से पैदा होने के सिद्धान्त पर भारी समालोचना की है। आज तक कोई ईसाई इसका उत्तर नहीं दे सका।

फिर ईसाई ईसा को कुमारी के पेट से मानते हैं। यह सबसे बड़ी भूल है, जिससे ईसाइयों को हर स्थान पर लज्जित होना पड़ता है। असली बाइबिल इबरानी भाषा में थी इसमें "अलमा" शब्द आया है जिसका अर्थ कुमारी नहीं बल्कि युवती होता है। चाहे वह विवाहिता हो। केवल कुमारी की शर्त इसके साथ नहीं।

मरियम की सगाई यूसुफ के साथ हुई जो युरोशलम के गलील सूबा में नासरत के स्थान पर आबाद था। उस समय यहूदियों की रीति के अनुसार कुछ लोग सगाई के बाद अपनी मंगेतर से मेल जोल करने में आजाद समझे जाते थे। किन्तु अच्छे लोगों में यह बुरा भी समझा जाता था। फिर भी इसका रिवाज था। इसलिए ईसा मसीह यूसुफ के द्वारा मरियम से पैदा हुए क्योंकि विवाह से पूर्व और सगाई के बाद हजरत ईसा मसीह पैदा हुए, इसलिए वह इब्नमरियम के नाम से प्रसिद्ध हुए। इसमे खुदा का इकलौता बेटा होने की कोई भी बात नहीं। बाइबिल स्वयं हजरत ईसा के पिता का नाम यूसुफ बताती है जो बढ़ई (Carpenter) था। देखिए—

१. वह यूसुफ का बेटा यसूह नासरी है। (नया अहदनामा)

२. क्या वह बढ़ई का बेटा नहीं और इसकी माता मरियम नहीं कहलाती। (नया अहदनामा)

३. वह यूसुफ का बेटा था। (नया अहदनामा)

४. उसकी मां ने उसे कहा कि ऐ बेटें ! तूने हमसे क्यों ऐसा किया और चला गया। देख, तेरा पिता और मैं कुढ़ते हुए तुझे ढूंढ़ते थे। (इंजील)

५. और जिस समय माता पिता उस लड़के यीसू को अन्दर लाये। (इंजील)

मैं समझता हूँ ये पांच प्रमाण यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं कि ईसा मसीह हजरत यूसुफ के पुत्र थे। जो दाऊद नबी के वंश में था। यह वंश अबीद से चला था, जिसको उसकी विधवा माता से अपनी सास की आज्ञा से अपने मरे पति के लिए, पति के किसी निकट के सम्बन्धी के द्वारा पैदा किया गया था। इसलिए बाइबिल में हजरत मसीह को इब्न दाऊद बार-२ लिखा है। दाऊद के वंश में यूसुफ था, इसलिए हजरत ईसा मसीह को खुदा का इकलौता बेटा सिद्ध करके उनसे पापों की क्षमा, सिफारिश और स्वर्ग की प्राप्ति के सारे सिद्धान्तों की सफाई हो गई। नहीं तो बाकी मनुष्य खुदा के बेटे न मानकर शैतानों के बेटे मानने होंगे। जिसे ईसाई लोग भी किसी रूप में मानने को तैयार नहीं होंगे।

हजरत ईसा का स्वयं अपना कहा हुआ आदेश भी बताना अत्यावश्यक है कि उनके नाम का जप करने वाले ईसाई भाई होश करें और संसार को मनुष्य पूजा के गहरे गर्त में गिराने का कारण न बनें। लीजिए! इंजील में स्वयं ईसामसीह का आदेश है कि—

"तू मुझे नेक क्यों कहता है! नेक कोई नहीं, मगर एक अर्थात खुदा। (बाइबल पृष्ठ सं० ९३८)

ईसाई तीन खुदा मानते हैं। इनका नाम तसलीस (त्रित्व) रखते हैं। ईश्वर, पवित्रात्मा और यीसू मसीह! इन तीनों पर विश्वास लाये बिना ईसाइयत अधूरी है। जो इन तीनों में से एक पर भी ईमान न लायें उसकी मुक्ति न होगी। इन तीनों में से भी अधिक बल ईसा मसीह पर ईमान लाने से मुक्ति के सम्भव होने के सिद्धान्त पर है। देखिये—

१. तथापि यह जान कर भी कि आदमी शरीअत के कर्मों से नहीं अपितु केवल यीसू मसीह पर ईमान लाने से रास्तबाज ठहरता है .... क्योंकि शरीअत पर आचरण से कोई मनुष्य धर्मी न ठहरेगा। (गलीतो)

२. काम करने वालों की मजदूरी दान नहीं अपितु अधिकार समझी जाती है। किन्तु जो व्यक्ति काम नहीं करता अपितु अधर्मी को धर्मी ठहराने वाले पर ईमान लाता है उसका ईमान इसके लिए रास्तबाज गिना जाता है। (रोमियों)

शरीअत की भी छुट्टी हो गई। केवल मसीह पर विश्वास करो और रास्तबाज कहलाओ। न आचरण की आवश्यकता का और न शरीअत का झंझट। कितना सस्ता नुस्खा है। केवल ईमान से रास्तबाज कहलाकर संसार में मौज उड़ाई जाय। पाप किए जाए और परलोक में ईमान के जोर से स्वर्ग भी प्राप्त कर लिया जाये। यह है ईसाइयत के सिद्धान्त का संक्षेप। हर सम्प्रदाय ने मुक्ति को सस्ता करने के अपने अपने नुसखे बनाये हैं जिनका परिणाम पाप की बढ़ती हुई यह अवस्था है इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। इसी प्रकार ईसाई मित्रों ने ईसा मसीह को पापों की क्षमा का साक्षी मानकर पुण्य की समाप्ति कर दी है। ईसा मसीह पर विश्वास लाना अत्यावश्यक है। किन्तु खुदा और पवित्रात्मा पर भी ईमान लाने की शर्त है। अन्यथा तसलीस बेचारी अधूरी रहेगी। आज दिन तक समझदार लोगों को तसलीस का सिद्धान्त समझ में नहीं आया। बड़े बड़े तार्किक विद्वान व फिलास्फरों ने इसको समझने से कानों पर हाथ धरे हैं। तसलीस का एक भाग पवित्रात्मा है? यह क्या है उसे बाइबिल के शब्दों में ही पढ़िये—

"और ऐसा हुआ कि जब लोग बपतिस्मा पा चुके और यीसु भी बपतिस्मा पा कर प्रार्थना कर रहा था, तो आसमान खुल गया और पवित्रात्मा शरीर के रूप में कबूतर के समान यीसू पर उतरा।"

ईसाई मानते हैं कि ईश्वर ईसा से पवित्रात्मा के द्वारा बात करता और अपना इलहाम भेजता था। यह पवित्रात्मा कबूतर की शकल में ईसा मसीह पर उतरता था? विचारने योग्य है और आप सभी दूर-दूर से आये हैं इस बेहट में। क्या कबूतर मनुष्य की भाषा बोल सकता है? ऐसी अवस्था में हजरत ईसा मसीह को परमेश्वर के ज्ञान का अर्थ मालूम होना कैसे सम्भव? कबूतर ईश्वरीय ज्ञान, आज्ञाएँ व इलहाम ईसामसीह पर कैसे पहुँचा और समझा सका? इसका उत्तर ईसाई पादरियों को देना होगा। ये ईसाई पादरी यीसू के चमत्कारों के बारे में बतलाते फिरते हैं और यहाँ भी हरिजन भाइयों को इन्होंने ईसाई बनाया है तो सुनलो मसीही चमत्कारों की वास्तविकता क्या है?

जनता में ईसाई लोग बड़ा प्रचार ईसाई चमत्कारों का कर रहे हैं किन्तु इनकी कुछ भी वास्तविकता नहीं। मसीह का पहला चमत्कार शराब के बढ़ा देने के बारे में हैं। पानी डालकर शराब को बढ़ा देना क्या बड़ी बात है ? फिर यह कौन सा शुभ कर्म था जिस पर इतनी डींग हाँकी जाय। लड़की को जीवित कर देने के बारे में स्वयं इंजील में लिखा है कि वह मरी नहीं अपितु सोती है। युरोशलम के एक तालाब का भी इंजील में वर्णन आता है कि उससे कई रोग दूर हो जाते थे। यहीं से थोड़ी दूर देहरादून में सहस्र धारा में गन्धक का जल प्रवाहित होता है जिसके कारण कई रोगों को दूर करने की शक्ति उस जल में है। इंजील के वचन के अनुसार ईसा मसीह ने जबकि वह भूखे थे अंजीर के वृक्ष से फल मांगा और उस फल का मौसम न होने के कारण अंजीर के वृक्ष ने फल नहीं दिया तो हजरत ईसा ने उसे श्राप देकर सुखा दिया। इसमें मसीह पर मौसम का ज्ञान न होने का दोषारोपण होता है। फिर खुदा की अवज्ञा भी की क्यों कि अंजीर का पेड़ ईश्वरीय नियम के आधीन था वह बे मौसम कैसे फल देता ? चमत्कार तो यह था कि हजरत ईसा की आज्ञा से उसे मौसम के बिना भी उस समय फल लग जाता, पक जाता और उससे मसीह अपनी भूख मिटा सकते। जब ईसामसीह अपनी भूख को वश में नहीं रख सके तो दूसरे चमत्कार वह क्या दिखा सकते थे ? इसलिए चमत्कार का वास्ता देकर अशिक्षितों को बहकाने की बात दूसरी है। अन्यथा इंजील यह क्यों लिखती :—

"यीसू ने उनसे कहा कि नबी अपने देश और सम्बन्धियों और घर के सिवाय और कहीं अपमानित नहीं होता और वह कोई चमत्कार वहां न दिखा सका।" (इंजील पृष्ठ ३६)

"क्योंकि झूठे मसीह और झूठे नबी उठ खड़े होंगे और ऐसे बड़े निशान और विचित्र काम दिखायेंगे कि यदि सम्भव हो तो बड़ों को भ्रम में डाल देवें।" (इंजील पृष्ठ २८)

"झूठे नबियों से सावधान रहो। जो तुम्हारे पास भेड़ों के वेश में आते हैं किन्तु अन्दर से फाड़ने वाले भेड़िये हैं। (इंजील पृष्ठ १०)

मुर्दा से जीकर जीवित आसमान पर जाने की वास्तविकता भी कुछ ऐसी है। इंजील ने दावा किया है :—

"इसके बाद तुम इब्न आदम को कादिर मुतलिक की दाई और बैठे और आकाश के बादलों पर आते देखोगे। (इंजील पृष्ठ ३२)

यदि खुदा की दाई और है तो बाई ओर भी होगी। फिर वह खुदा शरीरधारी होने से जन्म मरण के चक्कर में फँसने से कोई मनुष्य ही होगा जिसे खुदा समझ लिया गया। जब आसमानों की सत्ता वर्तमान विज्ञान व फिलासफी में नहीं है तो ईसा मसीह का वहाँ जाना कैसे ? कबर से चौथे दिन जी उठना और आसमान पर जाने की गाथा नितान्त झूठी भ्रम पूर्ण है और अमान्य है।

इसलिए ईसाई मित्रो ! इस भ्रम जाल से पीछा छुड़ाकर पवित्र वेद की शरण में आओ। हम आपको गले लगाने को तैयार हैं। ईश्वरीय सेना में शामिल हो जाओ और ईश्वरीय धर्म वेद के प्रकाश से अपने हृदयों को प्रकाशित करो। पोपों से किनाराकशी करके जितनी शीघ्रता की जा सके उतना अच्छा है। कुछ हमें अपनी सरकार से भी कहना है। वह कब तक यह तमाशा देखती रहेगी। जनता लुट रही है। उसके धर्म पर सस्ती मुक्ति के बहाने से दिन दहाड़े डांका डाला जा रहा है। धर्म प्रचार की स्वतन्त्रता के रहते हुए भी धोखे या छल से प्रचार का निषेध करने की आवश्यकता है। आज मुझे भी उक्त शब्द आपके सम्मुख यहाँ आकर कहने पड़े। मैं आप सबका तथा जिले सहारनपुर के अधिकारियों को हार्दिक धन्यवाद देता हूं साथ ही यह भी आवश्यक है कि समझदार लोग जनता को ईसाइयों के छल कपट से बचाने का पक्का निश्चय कर लें। सारे भारत के आर्यसमाजी निश्चय कर लें कि हमने पादरियों के भ्रमों से लोगों को बचाना है। याद रखिये कि आज भारत की सबसे बड़ी सेवा यह है कि भारत को ईसाईयों के पंजों से मुक्त करा कर इसको और विभाजन से बचाया जाये। बस यहीं पर अपना वक्तव्य समाप्त करता हूं, मेरे ईसाइयों से कुछ प्रश्न हैं उन्हें ध्यान से सुनों—

सुनिए—कोई ईसाई भी बैठा हो तो कान खोलकर सुन ले—

मेरे विश्व के समस्त ईसाइयों से प्रश्न हैं

जिनका ठीक और सन्तोष जनक उत्तर देने पर ५००) पुरुस्कार दूंगा—

१. ईश्वर का लक्षण करो।

२. ईश्वर को किसी वस्तु की आवश्यकता है ? यदि है तो वह ईश्वर नहीं फिर उसके बेटा कैसा ?

३. ईश्वर एक है तो बाइबिल में पिता, पुत्र, पवित्र आत्मा यह तीन क्या हैं ?

४. खुदा की रूह मसीह पर कबूतर के आकार में मसीह के ऊपर प्रकट हुई क्या यह ठीक है? यदि है तो तीनों में से कौन सा कबूतर है बताइए ? सिद्ध करो कि वह ईश्वर है।

५. नबी रसूल का जीवन पवित्र होना चाहिए फिर शराबी-कबाबी, व्यभिचारी, पुत्रियों तथा बहिनों से कुकर्म करने वाले कैसे अच्छे और ईश्वर-भक्त कहाये जा सकते हैं ?

६. सच्चे मसीही का लक्षण यह है कि वह साँप से डसा ले, संखिया खाले तो कोई हानि न हो व पहाड़ को हिला दे। क्या कोई पादरी तमाम योरुप में है जो ऐसा कर सके ? जब कोई नहीं तो क्यों मसीह का ढोल पीटकर लोगों को ईसाई बनाया जाता है ? जब योरुप में कोई मसीही नहीं।

७. धर्म के लक्षण करो फिर, बाइबिल को उस पर घटाओ।

८. मसीह जब खुद सूली पर चढ़कर अपने को नहीं बचा सका वह हमको कैसे बचा सकता हैं ? इससे तो प्रहलाद अच्छा है जो सब परीक्षाओं से बच गया।

९. जब ईश्वर में परिवर्तन नहीं होता तो उसके ज्ञान में परिवर्तन कैसे हो गया सिद्ध करो कि बाइबिल ईश्वरीय ज्ञान है।

१०. जब मसीह के निकट सब मनुष्य बराबर हैं फिर योरुप वाले, एशिया वाले व अफ्रीका वाले ईसाइयों से क्यों नफरत करते हैं ? और इनको अपने होटलों में जगह नहीं देते और वहाँ के पादरी उसका क्या इलाज करते हैं ?

११. मसीह के पढ़े होने का क्या प्रमाण है ? कोई पुस्तक उसकी लिखी हुई दिखलाओ सब इंजील उसके शिष्यों की लिखी हुई हैं।

१२. जो पढ़ा ना हो तो वह कैसे पैगम्बर हो सकता है ? सम्भव है उसने वह पुस्तक दूसरों से लिखा ली हो।

१३. इस भाषा को समझाओ "एक वह स्त्री जो कई पति कर चुकी थी उसने (मसीह) से रहस्यमय बात चीत की।"
(योहन्ना ७ अध्याय आयत ७ से १७)

१४. बाइबिल उत्पत्ति की पुस्तक में लिखा है कि खुदा आदम को बनाकर रोया वा पछताया। क्या सारे संसार के पादरी इसे बाइबिल के रोने वाले ईश्वर को वास्तविक ईश्वर सिद्ध कर सकते हैं ?

"एक नौजवान लड़के को प्रेम के साथ गोद में बिठाया और छाती से लगाया"
(योहन्ना अध्याय १३ आयत २३ से २९)

नोट—क्या ६ वर्ष की आयु वाले कृष्ण को मक्खन चुराने वाला वा गोपियों के साथ विषय भोग का कलंक लगाकर हंसने वाले पादरी वा सती सीता को कलंक लगाने वाले बड़े बड़े पादरी तीस वर्ष की आयु में ऐसे कामों के करने वाले मसीह की पोजीशन कैसे पवित्र कर सकते हैं ? यद्यपि मेरे दिल में मसीह की पवित्रता का गहरा असर है।

१५. पुस्तक इस्तना अध्याय २१ आयत २३ में लिखा है कि—

जिसको फाँसी दी जाती है वह खुदा का लानत किया हुआ है अब ईसाई पादरी बतलावें कि मसीह जो फाँसी पा गए उनको क्या कहें ?

१६. मसीह ने कहा है कि शरीयत का मानने वाला लानती है (मिती अध्याय ५ आयत १७) फिर मसीह ने खतना कराया पोहम्मा से दीक्षा ली उसको क्या कहें ?

१७. मा० अबज अध्याय २० आयत ४ में लिखा है कि—"मनुष्य ईश्वर के निकट क्यों कर सच्चा है और वह भी औरत से पैदा हो ! क्यों कर पवित्र हो ? फिर मसीह मरियम से पैदा हुआ सच्चा क्यों कर हो सकता है ?"

१८. "मसीह ने गाली दी" गाली देने वाला कभी ईश्वर भक्त नहीं हो सकता, कहाँ खुदा का बेटा ?
(मिती अध्याय २३ बालूफा अध्याय १२ वां मरकस अध्याय १२)

१९. पौलूस कहते हैं—

"चोर-शराबी गाली देने वाला स्वर्ग में नहीं जा सकता" कुनन्थेन प्रथम ६/१०" फिर मसीह ने शराब पी, गाली दी वा गधी खुलवा ली। बिना मालिक की आज्ञा के इसको स्वर्ग कैसे मिलेगा ? जब मसीह को स्वर्ग नहीं फिर यह पादरी क्यों पब्लिक को धोखा देते हैं जब गुरू ही स्वर्ग के योग्य नहीं ?

२०. "खुदा उस बुर्ज को जिसको आदम के बेटे बनाते थे देखने उतरा।" (उत्पत्ति की पुस्तक ११/५) क्या ऐसा ही ईसाइयों का ईश्वर है ? सिद्ध करो कि ईश्वर चढ़ता या उतरता है।

२१. ईसाइयों की पुस्तक ६/१८ में पेलूस लिखता है कि—
खुदा का झूठा होना असम्भव है किन्तु यरमियाँ की पुस्तक ४/१० में लिखा है "ए खुदा तूने निश्चय रूप से इस कौम को और यरूशलम को यह कहकर धोखा दिया कि तुम सलामत रहोगे यद्यपि तलवार उनकी जान पर लगी"

पादरी लोगों ! अमरीका के दीवानों ! बोलो कौन सच्चा है और तुम्हारा ईश्वर कितना झूठा है ?

२२. निकास की पुस्तक १२/१६ में लिखा है कि—
खुदा ने इस्राइल के पुत्रों से कहा कि वे अपने मकानों पर खून का निशान लगा दें ताकि लहू को देखकर तुमको छोड़ दूं। क्या ईसाइयों के ईश्वर को इतनी भी बुद्धि नहीं है कि वैसे ही जान सके। खून के निशानों की उसको क्या आवश्कता हुई ? क्या यह ईश्वर सर्वज्ञ हो सकता है ? और भी बहुत से प्रश्न हैं। पहले केवल इन्हीं प्रश्नों के उत्तर दें, अगर साहस हो तो आयें मैदान में।

॥इति शम्॥

निवेदक—
"पण्डित शान्ति प्रकाश"



अमर स्वामी प्रकाशन विभाग द्वारा प्रचारित साहित्य

अमर स्वामी सरस्वती कृत—

१.	निर्णय के तट पर (प्रथम भाग) (शास्त्रार्थ संग्रह)		१२५-०० (प्रैस में)
२.	,, (द्वितीय भाग)		१२५-००
३.	,, (तृतीय भाग)		१२५-०० (प्रैस में)
४.	कौन कहता है द्रौपदी के पाँच पति थे ?		१०-००
५.	सत्यार्थ प्रकाश मण्डन		८-००
६.	महर्षि दयानन्द लोगों की दृष्टि में		३-००
७.	गीता में ईश्वर का स्वरूप		३-००
८.	सन्ध्या के मन्त्रों की व्याख्या		३-००
९.	शिवाजी का पत्र : महाराजा जय सिंह के नाम (मूल फ़ारसी तथा हिन्दी अनुवाद सहित)		३-००
१०:	अमर गीताञ्जली ३ भाग		१२-००
११.	मूर्ति पूजा और शंकराचार्य (परा पूजा)		२-००
१२.	मूर्ति पूजा का धन्यवाद	श्री नारायण प्रसाद बेताब	१-००
१३.	महर्षि दयानन्द कब और कहां ?	महेश प्रसाद मौलवी आलिम फ़ाजिल	३-००
१४.	सत्य साईं बाबा का कच्चा चिट्ठा	वीना गुप्ता एम०ए०	००-४०
१५.	रजनीश भगवान का शैतान ?	,, ,,	००-४०
१६.	ईश्वर सिद्धि	पं० रामचन्द्र देहलवी शास्त्रार्थ महारथी	००-५०
१७.	मन्दिरों की लूट	पं० देव प्रकाश अरबी फ़ाजिल	१५-००
१८.	MURDER OF GANDHI (What ? Why ?? When ???)	Statement By : NATHURAM GODSE	१०-००
१७.	आर्य समाज के प्रवेश पत्र		३-०० सैंकड़ा
२०.	दयानन्द दर्शन (Philosophy of Swami Dayanand)	डा० वेद प्रकाश	१५-००

नोट—हमारे द्वारा प्रकाशित लगभग ५३ पुस्तकें हैं एवं लगभग ३०० पुस्तकों के हम वितरक हैं, पूर्ण जानकारी के लिए प्रकाशन से सम्पर्क स्थापित् करें, एवं बृहद सूची पत्र प्राप्त करें।

द्वारा—"प्रोपराईटर"
अमर स्वामी प्रकाशन विभाग
गाजियाबाद-२०१००१
(उ० प्र०)

॥ ओ३म् ॥

आवश्यक द्रष्टव्य

निर्णय के तट पर-तृतीय भाग

(शास्त्रार्थ संग्रह की प्रकाशन योजना)

"इस भाग का प्रारूप भी (द्वितीय भाग) जो आपके हाथ में हैं बिल्कुल वैसा ही होगा पृष्ठ सं० ३५० के लगभग होगी। इस भाग में निम्न शास्त्रार्थ आयेंगे इनके अलावा कोई और भी प्राचीन शास्त्रार्थ सामग्री प्राप्त होगी तो वह भी अवश्य दी जावेगी।

जो सज्जन इस भाग को ६०)रु० देकर ३१ दिसम्बर १३८६ ई० तक ग्राहक बन जायेंगे उनको इसी आधे मूल्य से भी कम अर्थात् साठ रुपये में ही यह ग्रन्थ फरवरी १९८७ ई० तक दे दिया जावेगा।

छपने के बाद इसका मूल्य १२५)रु० होगा। ग्रन्थ की तैयारियां अभी से आरम्भ हो गई हैं।

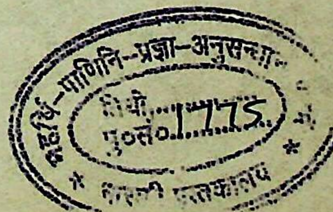
इस ग्रन्थ के शास्त्रार्थों का विवरण—

इस ग्रन्थ में भी लगभग ४० शास्त्रार्थ आयेंगे जिनमें कुछ शास्त्रार्थ तो बहुत ही आवश्यक हैं। एवं बहुत ही प्राचीन हैं। जो अनेकों सम्प्रदायों के साथ अलग-२ विषयों पर हुए हैं।

आप लोग ६०)रु० प्रति के हिसाब से अपनी प्रति सुरक्षित करा लें। किमधिकम्!!

पता—
१०५८, विवेकानन्द नगर
गाजियाबाद—२०१००१
(उ० प्र०)

वैदिक धर्म का—
"अमर स्वामी सरस्वती"



इस ग्रन्थ के प्रकाशन पर आर्थिक सहयोग

१.	श्री जी० आर० सैनी चण्डीगढ़	१५०-००
२.	,, धर्मदास आनन्द प्रकाश, अम्बेहटा (सहारनपुर) उ० प्र०	२००-००
३.	,, पी० सी० पण्डित (जैस्टिस) चण्डीगढ़	३०१-००
४.	,, महात्मा प्रेमप्रकाश जी वानप्रस्थी, धूरी (पंजाब)	३००-००
५.	श्रीमती विद्यावती सभरवाल, नासिक रोड़, (महाराष्ट्र)	१००-००
६.	श्री राजा रणञ्जयसिंह जी, अमेठी, सुलतानपुर (उ० प्र०)	५००-००
७.	,, रामदास जी, दयानन्द आल इन्डिया सालवेशन मिशन होशियारपुर (पंजाब)	१००-००
८.	,, सोमप्रकाश जी, मन्त्री आर्य समाज अम्बेहटा (सहारनपुर) उ० प्र०	१००-००
९	,, लक्ष्मी प्रसाद-रामप्रसाद, गढ़वा (पलामू) बिहार	१००-००
१०.	,, ओमप्रकाश जी कपूर, चण्डीगढ़	२५१-००
११.	,, जयन्ति लाल हरजीवन दास संघवी, बम्बई-१६	१००-००
१२.	,, बालक राम जी कमल, (घड़ियों के व्यापारी) सान्ताक्रुज बम्बई-५४	१०००-००
१३.	श्रीमती सावित्री देवी शर्मा, सफदरजंग एनक्लेव, नई दिल्ली-२९	१००-००
१४.	श्री बी० डी० गुप्ता, प्रधान आर्य समाज भाण्डूप, बम्बई-७८	५००-००
१५.	,, सुधीर कौड़ा सुपुत्र श्री वेदप्रकाश कौड़ा, राजनगर, गाजियाबाद (उ० प्र०)	५००-००
१६.	,, डॉ० एल० पी० गुप्ता (B.A.M.S) मैन रोड़, कोरवा, (मध्य प्रदेश)	२००-००
१७.	,, रूपचन्द-गंगाराम (कपड़े के व्यापारी) कचेरी रोड़, चालिस गाँव (महाराष्ट्र)	२००-००
१८.	,, राधेश्याम, द्वारा-जगन्नाथ एण्ड सन्स मालवीय रोड़, पानीपत (हरियाणा)	१००-००
१९.	,, गजानन्द जी आर्य सुपुत्र स्व० श्री लालमणि जी आर्य, कलकत्ता	२०००-००
२०.	,, नारायण मुनिश्चतुर्वेदी जी गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर (सहारनपुर) उ० प्र०	१००-००
२१.	,, मन्त्री जी आर्य समाज सरदारपुरा, जोधपुर (राजस्थान)	२५०-००
२२.	,, कृष्णदेव मदान, मढ़ाताल, जबलपुर (म० प्र०) जी ने अपने पिता स्व० श्री मोहन लाल मदान जी की पुण्य स्मृति में,	१०००-००
२३.	,, देवराज जी गुप्त दयानन्द इन्स्टीट्यूशन शोलापुर (महाराष्ट्र)	२५१-००
२४.	कु० विद्यावती आनन्द, पंचशीला पार्क, नई दिल्ली-१७	२५०-००
२५.	श्री कैप्टिन देवरत्न आर्य, द्वारा-आर्य समाज सान्ताक्रुज, बम्बई-५४	४०००-००
२६.	,, फूलचन्द जी आर्य, आर्य समाज बड़ा बाजार, कलकत्ता-७	२००-००
२७.	,, आर्य समाज बड़ा बाजार, १ मुंशी सदरुद्दीन लैन, कलकत्ता-७	१०००-००
२८.	,, सुभाषचन्द आर्य S/o श्री पृथ्वी नाथ जी, घरौंण्डा (करनाल) हरियाणा	२००-००
२९.	,, मन्त्री जी, आर्य समाज माडल टाऊन, पानीपत (हरियाणा)	२००-००
३०.	श्रीमती विमला बागड़िया, न्यू अलीपुर, कलकत्ता	२५०-००
३१.	,, ठाकुर अवधराज सिंह जी, ताड़तला जौनपुर (उ० प्र०)	१०१-००
३२.	,, मन्त्री जी द्वारा, आर्य वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर (सहारनपुर) उ० प्र०	४३५-००
३३.	,, जयप्रकाश जी शास्त्री एम० ए०, आर्य समाज सिकन्द्राबाद (बुलन्दशहर) उ० प्र०	१०२-००
३४.	श्रीमती सावित्री देवी C/o श्री टी० के० शर्मा एडवोकेट, अहिंसा सर्किल, जयपुर (राजस्थान)	१००-००
३५.	,, जगदीश मुनी जी मन्त्री-सार्वदेशिक दयानन्द सन्यासी+वानप्रस्थ मण्डल, ज्वालापुर (सहारनपुर) उ० प्र० के माध्यम से	५०००-००

हम अपने इन सभी सहयोगियों के हृदय से आभारी हैं, जिनके सहयोग से यह प्रकाशन सम्भव हुआ।

"मिट जायेंगे एक दिन सब धन, धरती धाम।
"अमर" रहेगा कल्प तक दानवीर का नाम"॥

वैदिक धर्म का—
"अमर स्वामी सरस्वती"